

जीवन साहित्य

'जीवन-साहित्य'

लेख-सूची

नियम

१ 'जीवन-साहित्य' प्रत्येक मास के पहले सप्ताह में प्रकाशित होता है। १० तारीख तक अंक न मिले तो अपने यहां के पोस्टमास्टर से मालूम करें। यदि अंक डाकखाने में न पहुंचा हो तो पोस्टमास्टर के पत्र के साथ हमारे कार्यालय को लिखें।

२ पत्र-व्यवहार में अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य दें। उसमें कार्रवाई करने में सुगमता और शीघ्रता होती है।

३ बहुत से लोग ग्राहक किसी नाम से होते हैं और आगे का चंदा किसी नाम से भेजते हैं। इससे गड़बड़ी हो जाती है। इस सम्बन्ध में मनीआर्डर के कूपन पर स्पष्ट सूचना होनी चाहिए।

४ पत्र में प्रकाशनार्थ रचनाएं उसके उद्देश्य के अनुकूल भेजी जायं और कागज के एक ही ओर साफ-साफ अक्षरों में लिखी जायं।

५ अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए साथ में आवश्यक डाक टिकट आने चाहिए।

६ समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां भेजी जायं।

७ पत्र के ग्राहक जुलाई और जनवरी से बनाये जाते हैं। बीच में रुपया भेजनेवालों को सूचना दे देनी चाहिए कि उन्हें पिछले अंक भेज दिये जायं या आगे से ग्राहक बनाया जाय।

—व्यवस्थापक

आभार

'मण्डल' का नया वर्ष १ जनवरी से प्रारम्भ होता है। जिन महानुभावों ने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से हमारे कार्य में गत वर्ष सहयोग दिया है, इस अवसर पर हम उनका आभार स्वीकार करते हैं।

हम विशेष रूप से ऋणी हैं अपने उन हितैषियों के, जिन्होंने स्वयं सदस्य बनकर या बनाकर 'मण्डल' की 'सहायक सदस्य योजना' को सफल बनाने में योग दिया है। हमें यह सूचना देते हुए बड़ा हर्ष हो रहा है कि एक-एक हजार रुपये देकर ३१ दिसम्बर १९५२ तक १०१ सदस्य बन चुके हैं। हमारा संकल्प कम-से-कम पांच सौ सदस्य बनाने का है और इस कार्य को हम १९५३ के वर्ष में पूरा कर लेना चाहते हैं।

हमें विश्वास है कि हमारे सभी हितैषी बंधु हिन्दी-साहित्य के सम्वर्द्धन और अच्छी-अच्छी पुस्तकों के प्रसार के लिए इस सत्कार्य को सफल बनाने में उसी आत्मीयता और तत्परता के साथ सहयोग देंगे, जिसके साथ कि वे अबतक देते रहे हैं।

सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

विनीत
—मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री

पुस्तक-प्रेमियों के लिए अपूर्व अवसर

हिन्दी की कुछ चुनी हुई पुस्तकें

आधे मूल्य में

पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि 'मण्डल' का वार्षिक स्टॉक लेने पर कुछ ऐसी पुस्तकें निकली हैं, जो आज प्रायः अप्राप्य हैं, या पुराने संस्करणों की हैं। कुछ ऐसी पुस्तकें भी हैं, जिनकी जिल्द आदि में मामूली खराबी आ जाने के कारण मरम्मत करा दी गई है। कुछ पुस्तकें अन्य प्रकाशकों की हैं, जो सामान्यतः बाहरी पुस्तकों के न बेचने की नीति के कारण निकाली जा रही हैं। इन सब पुस्तकों की सूची मूल्य-सहित इस पृष्ठ के पीछे दी जा रही है।

ये सब पुस्तकें पाठकों को आधे मूल्य में मिल सकेंगी, लेकिन साथ में उन्हें स्व० भवानीदयालजी सन्यासी की आत्मकथा 'प्रवासी की आत्मकथा', मूल्य ८) तथा पं० श्रीकृष्णदत्तजी पालीवाल की 'गीतामृत' मूल्य ३॥) में से दोनों या एक लेना आवश्यक होगा। इन पुस्तकों पर भी पाठकों की सुविधा की दृष्टि से वही कमीशन मिलेगा, जो अन्य पुस्तकों पर दिया जायगा। पाठकों को छूट होगी कि ये सब पुस्तकें ले लें, या अपनी मर्जी की चुनकर मंगालें।

इस सुविधा

का

लाभ शीघ्र ले लीजिये। पुस्तकों की प्रतियां थोड़ी हैं

और

मांग अधिक होगी। इसलिए देर होने पर कहीं आपको निराश न होना पड़े।

व्यवस्थापक

सस्ता साहित्य मण्डल

नई दिल्ली

'मण्डल' की पुस्तकें

नाम पुस्तक	लेखक	मूल्य
हमारी राजनैतिक समस्यायें	(प्रो० शान्तिप्रसाद वर्मा)	५)
मौलाना आज़ाद	(महादेवभाई देसाई)	२।।)
यात्रा	(कमला चौधरी)	२।।)
जयसंधि	(जैनेन्द्रकुमार)	३)
जादूगरनी	(हरिकृष्ण प्रेमी)	।।।)
रंगसागर	(सागर निज़ामी)	६)
सोना और नर्म	(रामचन्द्र तिवारी)	३)
विजयनगर साम्राज्य का इतिहास	(डा० वासुदेव शरण)	४)
पूर्वी और पश्चिमी दर्शन	(डा० देवराज दिनेश)	२।।)
अंग्रेजों से मेरी अपील	(गांधीजी)	।=)
गीताप्रवचन	(विनोबा भावे)	२।।)
रियासती जनता की समस्यायें		।।।)
हिन्दी गीता	(हरिभाऊ उपाध्याय)	।।)
अशोक के फूल	(हजारीप्रसाद द्विवेदी)	२।।)
तरंगित हृदय	(आ० अभयदेव शर्मा)	१।)
रूपान्तर	(जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द)	।।)
किसान और कम्युनिस्ट	(एन जी रंगा)	२)
रचनात्मक कार्यक्रम	(गांधीजी)	।)
,, ,, कुछ सुझाव	(राजेन्द्रबाबू)	।)
ग्रामसेवा	(गांधीजी)	।)
किसानों का सवाल	(डा अहमद)	=)
गोन की माया	(मशरूवाला)	।)
गांवों का आर्थिक सवाल		≡)

नाम पुस्तक	लेखक	मूल्य
कन्या शिक्षा	(पं० चन्द्रशेखर)	।।)
गीताबोध	(गांधीजी)	।)
मंगलप्रभात	(,,)	।)
गांधीजी के जीवनप्रसंग	(त्रिवेदी)	६)

—अन्य प्रकाशन—

नाम पुस्तक	लेखक	मूल्य
गांधीवाद-मार्क्सवाद	(संकलन)	३)
जीवन जौहरी—जमनालालजी	(ऋषभदास रांका)	१।)
व्यक्ति और राज	(सम्पूर्णानन्द)	१।)
रेशमी टाई	(रामकुमार वर्मा)	२)
जुगनू	(श्रीमन्नारायण अग्रवाल)	३)
समाजसेवा	(विश्वम्भरसहाय प्रेमी)	१।)
विश्वसंघ की ओर	(केलाजी)	३=)
जीवनबिहार	(काका कालेलकर)	२)
अन्तर्राष्ट्रीय विधान	(सम्पूर्णानन्द)	६)
पशु और मानव	(हक्सले)	३।।)
आर्थिक संगठन		।।।)
नन्दिनी	(चन्द्रकुंवर बर्त्वाल)	१।)
आचार्य कृपलानी		३)
जयभारत		।=)
रामरहमान		१।)
शान्ति की चिनगारियां		१।)
सन् '४२ का विद्रोह (अंग्रेजी में)		७।।)
कम्पोस्ट या खाद		।)
भाइयों और बहनो	(गांधीजी)	।)

उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश तथा बिहार प्रादेशिक सरकारों द्वारा स्कूलों, कालेजों व लाइब्रेरियों तथा उत्तरप्रदेश की ग्राम-पंचायतों के लिए स्वीकृत

जीवन-साहित्य

अहिंसक नवरचना का मासिक

वर्ष १४] जनवरी १९५३ [अंक १

सच्चा सुख और आनन्द

विनोबा

कुछ लोग कहते हैं कि जमीन मांग कर नही मिलती है, मार कर मिलती है । संघर्ष के बगैर कोई भी चीज हासिल नही होती । संघर्ष जीवन का आधार और बुनियाद है। लेकिन मैं पूछता हूँ कि माता जब बच्चे को दूध पिलाती है, तब क्या उसके स्तन के साथ बच्चे का संघर्ष हुआ था ? हाँ, अगर आप उसको प्रेम का सघर्ष कहो, तो मैं मंजूर करूँगा। सारी दुनिया ही प्रेम पर चलती है । मरने वाले व्यक्ति को अंत काल के समय अपने प्रेमीजनों को देखकर खुशी होती है, हृदय को तसल्ली होती है । तो क्या वहाँ उसकी आँखो का उन लोगों के साथ संघर्ष होता है ? लेकिन इन लोगो की गलती यही है कि ये ढंग से नही सोचते, और अगर वे ऐसा नहीं सोचेंगे तो उनके सारे काम निकम्मे साबित हो जायंगे । उपनिषदों ने गाया है कि यह सारी सृष्टि आनन्द में से पैदा हुई है और आनन्द ही मे लीन होती है । आज हरएक को कुछ-न-कुछ आनंद हासिल है ही । लोग कहते है कि सुख की प्राप्ति के लिए कोशिश करनी चाहिए। लेकिन सुख के लिए आप कोशिश क्यो करते है ? वह तो आपका ही स्वरूप है । आप स्वयं सुख-राशि, सुख-निधान और सुख-समूह है । इसलिए आप खुद ही सुख हैं । शक्कर मुह में डालने से सुख नही निर्माण होता । चैतन्य रस तो आपके ही मुह में है, जो सुख पैदा करता है । आनंद आप खुद हैं, इसलिए आनद की प्राप्ति के लिए कोई भी कोशिश नही करनी है । अगर कुछ करना ही है तो दु:ख की प्राप्ति के लिए करो, और वही आज आप कर रहे हैं ! आपने दु:ख की प्राप्ति के लिए आजतक जितनी मेहनत की है, वह करना छोड़ दो तो अपने मूल स्वरूप को प्राप्त करोगे । आप आनंदमय हैं । अत आनद की प्राप्ति के लिए नही, आनंद की शुद्धि के लिए आपको कोशिश करनी है । किसी को शराब पीने मे आनंद आता है, किसी को पढने में, तो किसी को दान देने में और किसी को सेवा करने मे । इस तरह अलग-अलग प्रकार का आनंद होता है। जिसका आनंद शुद्ध है, उसका जीवन उन्नत होता है । विष्ठा और मूत्र मे पड़े हुए कीड़ों को वहीं पड़े रहने में आनंद आता है ।

गांधीजी

भगवानदीन

हमने अपने लेख का शिरनाम 'गांधीजी' क्यों चुना, इसका कारण है।

गांधीजी के पांच नाम हमें मालूम हैं, दो चार और हों तो अचरज नहीं। (१) महात्मा (गांधी) (२) बापू (गांधी) (३) राष्ट्र-पिता (गांधी) (४) मां (गांधी) (५) गांधीजी।

(१) 'महात्मा गांधी' की जीवनी उनके काम की हो सकती है जिन्होंने उन्हें महात्मा का पद दिया और वह शायद इन कारणों से दिया होगा

(अ) बैरिस्टर हो कर भी वह ऐसे कपड़े पहनते थे जो कोई बैरिस्टर नहीं पहनता।

(ब) राज-काज जो झूठ के बगैर एक कदम आगे नहीं चल सकता, या यों कहिये, झूठ और हिंसा उसकी दो टांगें हैं, उन टांगों को काट कर उस राज काज में सत्य और अहिंसा नामी दो टांगें लगाईं और उसे इतना तेज दौड़ाया जितना तेज वह अपनी कुदरती टांगों से भी नहीं दौड़ सकता था या कम-से-कम, हिन्दुस्तान में तो नहीं दौड़ रहा था।

(स) अपने कपड़े घटाते घटाते लंगोटी तक पहुंच जाना और उसे बकिंघम महल तक ले जाना।

(द) राम भजन करना और राम-राम कहते प्राण देना।

(२) 'बापू गांधी' की जीवनी उनके काम की हो सकती है जो सचमुच अपने आपको उनका बेटा समझते हैं और उनको अपना बाप मानते हैं और गांधीजी भी जिनको बेटे की तरह समझते थे।

(३) 'राष्ट्र-पिता गांधी' की जीवनी उनके काम की हो सकती है जिनको हम नीचे (अ) में गिनायेंगे और उनके गौर-समझ कर अध्ययन की चीज हो सकती है जिनके नाम हम (ब) में गिनायेंगे और उनके लिए टीका लिखने के काम की हो सकती है जिनके नाम हम (स) में गिनायेंगे।

(अ) वे लोग जो गांधीजी के साथ रहकर मिनिस्टर बन गये, पार्लमेन्ट या असेम्बली के मेम्बर बन गये, गवर्नर या राष्ट्रपति की जगह पा गये या राज-काजी मामलों में ऐसी जगह बना बैठे जहां बैठे बिठाये खाने-पीने-पहनने का खासा प्रबन्ध हो जाता है।

(ब) वे लोग जो इस फिकर में हैं कि कांग्रेस या और कोई राजकाजी संस्था किस तरह हथियाई जाय और किस तरह उसका पूरा मालिक बना जाय।

(स) वे लोग जो लिखने के सिवा दूसरा काम नहीं कर सकते और यह भी चाहते हैं कि कोई ऐसा तरीका निकल आवे जिससे आसानी से इतना अच्छा गुजारा तो चल ही सके जितना एक डिप्टी कलक्टर का चलता है। यह हैं लेखक और कवि।

(४) 'मां गांधी' की जीवनी तो ऐसी बहनों के ही काम की हो सकती है जो उस बहन जैसा जी रखती हों, जिसने उन्हें मां-गांधी का पद दिया।

औरतें सचमुच बहुत साफ दिल होती हैं। वे तो अपने पति या पुत्र के मर जाने पर भी यह बात साफ-साफ कह कर रोती हैं कि उनको यह-यह सुख अपने पति या पुत्र से मिलते थे और अब वे उस सुख से वंचित हो जायंगी।

राजकाजी मैदान में इतनी खरी बात आजतक कृपलानी के सिवा किसी ने नहीं कही। वह तो गांधीजी के साथ इसलिए थे कि उनके साथ रहने से स्वराज मिलने की गारन्टी थी। उनकी हिंसा-अहिंसा से उन्हें इतना ही सरोकार था जितना कि वह स्वराज दिलाने में मददगार हुई। अगर इसी तरह की साफ-साफ बात और कांग्रेसियों ने भी कही होती और उनकी वह सब बातें इकट्ठी कर ली गई होतीं तो राजकाजी मामलों के लिए गांधीजी की आलीशान एक बड़े काम की जीवनी तैयार हो गई होती और शायद फिर चाणक्य के अर्थ-शास्त्र पढ़ने की किसी को जरूरत न रह जाती।

हम 'गाधीजी' सिरवन्ध लिख रहे है यानी उनकी ऐसी जीवनी थोडे से शब्दो मे दे रहे है जो एक, दो, तीन, चार के काम की तो है ही, बाकी सबके काम की भी हो सकती है। हम राजकाजी काम, समाजी काम, धार्मिक काम और इसी तरह के और सब काम दूसरे नम्बर पर रखते है। पहले नम्बर पर तो हम आदमी के उन गुणो को ही रखते है जिनको लेकर वह इन सब कामो में सफल होता है।

गाधीजी का बचपन, सब बच्चो की तरह, उतना ही नकली था जितना आम तौर से बच्चों का हुआ करता है। हा असलियत कभी दब नही पाई। समझ आते-आते वह असलियत अपना काम पूरे जोरो से करने लगी। उन्होंने कभी किसी बात को सिर्फ इसलिए नही माना कि वह उनके मा-बाप की है, उनके किसी और बुजुर्ग की है, ऋषियो की है या उन ग्रथो की है जिन्हे ईश्वर के मुह से निकला हुआ माना जाता है। उन्होंने तब पूरा विश्वास किया जब उस पर अमल कर के देखा और यह भी देखा कि उस अमल से उनमें आत्म-बल बढता है या नही। अगर उससे आत्म-बल घटते देखा तो एक-दो दिन ही कर के छोड दिया और अगर घटते देखा न बढते देखा तो उसे महीनो निभाया और अगर यह पता चला कि किसी काम से आत्म-बल बढता है और दिनो-दिन बढता ही है तो उसके पीछे चिपक गये, यहा तक कि उसीको परमात्मा मान बैठे और मरते दम तक उस का साथ नही छोडा।

वह उमर भर अपने को वैष्णव कहते रहे। वैष्णव धर्म अलग कोई धर्म नही, हिन्दू धर्म का एक पथ है, पर क्या सब वैष्णव-पंथियों ने उन्हें वैष्णव माना? कुछ ने माना, कुछ ने मरते दम तक मान कर नही दिया।

गाधीजी वैष्णव-धर्मी थे, क्योकि उनके मा-बाप वैष्णव थे। अगर उनके मा-बाप शैव होते तो वह उमर भर शैव रहते, पर रहते वैसे ही और करते वही जो उन्होने किया, और मरते दम तक करते रहे। अब कहिये, उनका वैष्णव धर्म क्या रहा। धर्म बदल कर वह करते भी क्या? नाम-धारी धर्म तो कुछ रिवाजो का नाम है, और हर धर्म के रिवाज हमेशा और हर जगह, हर आदमी के लिए, हर ख़याल से, हर वक्त बदलने के काबिल होते है, पर धर्म के ठेकेदार उनके बदलने में टाग अडाते। अब गाधीजी वैष्णव पथ छोड़ कर जिस पथ या धर्म को अपनाते, वहा उन्हे उसी तरह के रिवाजो के तोड़ने का काम करना पडता, जिस तरह का काम उन्होने वैष्णव पथ में किया। फिर पंथ या धर्म बदलने की मूर्खता वह क्यो करते? गाधीजी से पहले, लाला लाजपतराय अपना धर्म बदल कर क्या फायदा उठा पाए? लाला लाजपतराय पैदायशी जैन थे। सर सैय्यद से दरख्वास्त की कि वह उन्हे मुसलमान बना लें, सर सैय्यद ने साफ़ इन्कार कर दिया। लालाजी आर्य समाजी हो गये यानी वैदिक धर्म अपना लिया, पर काम वही करते रहे जिसकी उन्हे लगन थी। आर्य समाज मे रिवाजो के मामले में उन्हे वही टक्कर लेनी पडी जो वह समझ रहे थे कि जैनियों से अलग होकर न लेनी पडेगी। गाधीजी ने इससे पाठ लिया और अपनी जगह अड़े रहे और किया वह जो उनके अन्दर का राम उन्हें करने को कहता था। जिस वैष्णव को गरज पडी उसने उनको वैष्णव मान लिया, जिसको गरज नही थी उसने नही माना।

अब यह हुआ कि सत्य और अहिंसा को लेकर कुछ जैन उन्हे जैनी कहने लगे, कुछ ईसाई उन्हें ईसाई मानने लगे, पारसी उन्हें पारसी समझने लगे, मुसलमान मुसलमान कहने लगे। कुछ मुसलमानों को इससे तसल्ली न हुई कि वह यह देखें कि एक आदमी सच्चे जी से मुसल-मानो का भला चाहता है और ऊंचे-से-ऊंचे मुसलमान से कही ऊचे दरजे का इस्लाम धर्म पालन कर रहा है, एक खुदा को मानता है, शराब नही पीता, न चाहता है कि कोई शराब पिये, सूद नही लेता, न चाहता है कि सूद लेने का काम बना रहे, जात-पाँत नही मानता, सब ही तो वह काम करता है जो एक मुसलमान करता है और कहता यह है कि हिन्दू है, इसलिए समझदार मुसलमान गाधीजी को दावत दे बैठे कि वह मुसलमान हो जाय। गाधीजी जवाब में हंस दिये। अगर गाधीजी की जगह कोई दूसरा होता और हिन्दुस्तान की उस समय की राजकाजी हालत उसका मुसलमान होना ठीक समझती और वह मुसलमान हो गया होता तो क्या वह रत्ती भर

भी बदलना ? जिस तरह गांधीजी ने लिए वैष्णव पथ ने अपने को बदला वैसे ही इस्लाम धर्म को अपनी खातिर बदलना पड़ता। हमारी राय में गांधीजी मुसलमानों के कहने से मुसलमान हो गये होते तो इस्लाम धर्म से वह रूप ले लिया होता जो हिन्दू धर्म ने स्वामी दयानन्द की मदद से लिया।

अगर धर्म नाम है सचाई का, ईमानदारी का, प्रेम का, शील का और संतोष का, तब तो न इस्लाम धर्म बदल सकता है, न हिन्दू धर्म, न ईसाई धर्म, न दुनिया का और कोई धर्म या पथ। अगर धर्म नाम है, मंदिर, मस्जिद, गिरजे का, पुरोहित, मुल्ला, पादरी का, चोटी, दाढ़ी, खून का या और रस्म-रिवाजों का तो वह बदला है, बदलता रहा है, बदल रहा है, बदलेगा और बदलता रहेगा। तभी नामधारी धर्म जीवित रहेंगे, नहीं तो अजायबघर की चीज बने रहेंगे।

गांधीजी उस बात को समझते थे, पर वह समझे काफी बड़े हो कर। बेशक यह अचरज की बात है कि उस ऊंचे दरजे की बात पर उनका अमल था उस वक्त जब वह नासमझ बच्चे थे। यह अचरज की बात है, पर चमत्कार की नहीं। जिस तरह छोटा बच्चा 'घोड़ा आया' कहेगा, 'घोड़ा आई' कभी नहीं कहेगा, न औरों को कहने देगा, पर यह बात तो वह बड़ा होकर ही जानता है कि 'घोड़ा' पुल्लिंग है, इसलिए उसके साथ 'आया' शब्द लगता है। ठीक इसी तरह, ऊंचे-से-ऊंचे तर्क-शास्त्र से, धर्म शास्त्र से, दर्शन-शास्त्र से, बच्चे, चाहे वाकफियत न रखें, पर उस पर अमल जरूर करते हैं, समझते बड़े होकर ही हैं।

सत्य-अहिंसा गुण वाले धर्म को, गांधीजी अपने कंधों पर बिठाये हुए थे, यानी उसकी सवारी बने हुए थे। उनके मन की लगाम सत्य और अहिंसा के हाथ में थी। वह सत्य और अहिंसा उन्हें जिधर चाहे ले जा सकते थे। दुनिया का ऐसा कौन-सा मैदान है जिसमें आदमी नहीं जा सकता, इसलिए गांधीजी हर मैदान में कूदे। वे राज-दरबार में गये, मंदिर में भी गये, वेश्या के घर गये, कसाईखाने में गये, ब्याह-बरात में गये, मुर्दनी में गये, पर गये सत्य-अहिंसा की लगाम के इशारे पर। इसलिए हर जगह वह काम किया जिसको आज तक छोटे लोगों ने नहीं सुना।

रीति रिवाज वाले धर्म पर गांधीजी खुद सवार थे और खूब कस कर उसकी लगाम अपने हाथ में ले रखी थी। रीति-रिवाजों को उस तरफ जाना पड़ता था जिस तरफ वह ले जाना चाहते थे। वह डबल रोटी खायंगे, पर न छुरी की जरूरत पड़ेगी, न कांटे की; न मेज की जरूरत होगी, न कुर्सी की, न टोस्ट बनाकर सेंके जायंगे। वह रोटी की तरह तोड़ी जायगी और दाल-साग से खाई जायगी, या खाने के कटोरे में बकरी के दूध में भिगो कर खाई जायगी। रिवाजी वैष्णव धर्म अगर प्याज छू ले तो हाथ धोये, मेहतर को छू ले तो नहाये, पर गांधीजी का वैष्णव धर्म मेहतरानी का पकाया प्याज उड़ा जाय और पूरा पाक बना रहे। रिवाजी वैष्णव धर्म मुसलमान के पास बैठने से थर-थर कांपे, पर गांधीजी का *वैष्णव धर्म मुसलमान के साथ बैठ कर खाना खाये* और पूरा पाक रहे। रिवाज गांधीजी की सवारी में जो ठहरा, वह उनकी पीठ पर सवार नहीं। वहां जगह कहां ? वहां सवार हैं सत्य और अहिंसा!

यह किसे नहीं मालूम कि एक डाकू ने यह सिद्ध कर दिया था कि उसमें और सिकन्दर बादशाह में कोई अंतर नहीं, अगर कोई अन्तर है तो बस छोटे-बड़े का। क्या इस तरह आज हर चोर और हर डाकू यह नहीं कह सकता कि उसमें और मिनिस्टर में कोई अन्तर नहीं; अगर अन्तर है तो छोटे-बड़े का और क्या आज हरएक दूल्हा यह नहीं कह सकता कि उसमें और राष्ट्रपति में कोई अन्तर नहीं, राष्ट्रपति बग्घी में बैठ कर सोने की छतरी लगा कर निकलते हैं तो उस पर भी सोने की छतरी लगाई जाती है, अन्तर है तो इतना कि उस पर शायद उमर में एक बार छतरी लग पाती है और राष्ट्रपति पर साल में एक से ज्यादा बार। दूल्हे को कहते भी तो 'नौशाह' हैं यानी 'नया राजा'। यह चोरी, डाके और दूल्हे की बात हमने इसलिए कही कि गांधीजी इन मैदानों में भी दाखिल हुए, पर गये सत्य अहिंसा की लगाम के इशारे पर।

अगर सरकार को किसी जरिये यह खबर मिले कि

एक आदमी या कई आदमी उसकी चीजें जबरदस्ती उठाने आ रहे हैं और सरकार उनको रोकने के लिए अपनी पुलिस और अपने फौजी दस्ते भेजे, तो क्या यह नही कहा जायगा कि जो इस तरह चीजें लेने आ रहे हैं वे या तो चोर है, या डाकू। अगर छुपे-छुपे आ रहे है तो चोर है। अगर कहकर खुल्लमखुल्ला दिन में आ रहे हैं तो डाकू। अब बताइये, गाधीजी की सरदारी मे किया हुआ डांडी कूच और धरसाना से उठाया हुआ नमक एक डाकू का कूच क्यों न माना जाय और नमक उठाना लूट क्यों न समझा जाय ? अब सत्याग्रह डाके के सिवाय और क्या रह जाता है ? मगर नही, डाका गुनाह है, सत्याग्रह धर्म ! गाधीजी के लिए ही धर्म नही, बच्चे-बच्चे के लिए धर्म ! गाधीजी नमक लूटने नही गये, नमक लूटने गये थे सत्य और अहिंसा। सत्य और अहिंसा न चोरी कर सकते हैं, न गैरईमानी। और तभी तो सत्याग्रह रूपी डाके को रोकने के लिए खडे पुलिस के सिपाही और फौज का दस्ता तमाशे की चीजें बने रहे। अजब नही, अगर टोकरों में भर कर सत्याग्रही लुटेरे अपने सरो पर वह नमक रखने लगते, तो शायद पुलिस और फौज बढ कर टोकरी उठवाने में हाथ लगाते और अगर जुल्म, अंधा हो कर, उन सच्चे डाकुओ पर गोली चलाने का हुक्म दे देता तो सवारी मरती, सवार अछूता रहता और वह सवार (सत्य, अहिंसा) झट किसी-न-किसी और कन्धे पर जा सवार होता और काम जारी रहता।

गाधीजी की जीवनी का यही वह हिस्सा है जिसे चाहे कोई चाहे जब अपना सकता है। रही उसकी जरूरत, वह हर वक्त, हर जगह मौजूद है। घर-घर में प्रह्लाद और मीरा की हर घडी जरूरत है, हाट-बाजार, कोट-कचहरी, सरकार-दरबार, सब जगह ऐसी है, जहा कदम-कदम पर, मिनट-मिनट में सत्याग्रह की जरूरत रहती है, पर सत्याग्रह करे कौन ? जिसकी पीठ पर रिवाजो का बोझा लदा हुआ है अगर वह सत्याग्रह कर बैठे तो चारो खाने चित्त गिरे। हा, जिसने रिवाजो पर सवारी गाठ रखी है और सत्य के इशारे पर चलता है उसे सत्याग्रह की सुझायगा भी कौन ? वह तो विनोबा की तरह अकेला ही पदल निकल पडेगा और कुछ-न-कुछ कर ही डालेगा।

गाधीजी ने कृष्ण, महावीर, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, सबसे यही सीखा कि न कृष्ण बनना, न महावीर बनना, न बुद्ध, न ईसा, न मुहम्मद। बनना तो गाधी बनना। अब जिसके जी में आये गाधी से यह सीख ले कि मुझे बनना तो वह बनना, जो मैं हू और नही बनना तो गाधी नही बनना।

गाधी को निगल कर डकार तक न लेने मे ही नफा है, क्योकि डकार आने पर उगलते ही बनेगा और फिर और भी ज्यादा टोटे में रहना पडेगा।

G

मैं रोशनी देखने की कोशिश करता हू और उसकी तलाश करता रहता हूं। कभी-कभी ठोकर खाकर गिर भी पड़ता हू, पर फिर उठकर आगे बढ़ता हू। मैं तलाश करता रहता हूं कि मेरे अन्दर क्या खामिया हैं और यह जानने की कोशिश करता हूं कि मेरी जनता और मेरा देश मुझसे क्या चाहता है।

मुमकिन है कि हम आज इतिहास के एक मोड़ पर पहुच गए हैं। इतिहास अब अलग-अलग मुल्कों का जुदा-जुदा इतिहास नही रह गया है। अब तो सारे मानव-समाज का एक इतिहास है। हम सब एक-दूसरे से बंधे हुए हैं।

हिन्दुस्तान में, और मुल्कों की तरह, रोशनी तेजी से चमकी थी। हमारे महान् देश ने न सिर्फ खुद तेज़ रोशनी देखी, बल्कि उसे दूसरे देशों मे वहा के अंधेरे को दूर करने के लिए भेजा। बुद्ध ने जो सदेश ढाई हजार साल पहले दिया वह महज इस मुल्क के लिए या एशिया महाद्वीप के लिए ही नहीं, बल्कि सारे संसार के लिए प्रकाश था। —जवाहरलाल नेहरू

"ग्राम-राज्य है राम-राज्य"

गुरुदयाल मल्लिक

राम-राज्य ग्राम-राज्य है। क्यों ? क्योंकि ग्राम में राम बसता है ? और शहर में ? दाम ! और क्योंकि राम और दाम एक साथ नहीं रह सकते, ग्राम और शहर भी एक-दूसरे से दूर रहते हैं। और इस दूर रहने में ही इन दोनों का, शायद, सच्चा कल्याण है।

मगर लोग तो कहते हैं कि राम हर जगह बसता है ? वह ठीक है, परन्तु ग्राम उसे बहुत प्यारा है। क्यों ? क्योंकि ग्राम के लोगों के जीवन में सबसे पहला स्थान राम का है, जैसे कि शहर के लोगों के जीवन में पहला स्थान पैसा-परमेश्वर का है। अगर पैसा न होता तो ग्राम के लोगों का जीवन-संगीत इस प्रकार का न होता

राम भरोसा, राम करोसा।
फिर किसका डर है ?
इस नगरी में सभी मुसाफिर।
यह किसका घर है ?

ग्राम के लोगों को उनकी जीवन-साधना ने यह सत्य सिखलाया है कि 'ग्राम' का अर्थ है 'रूप राम'। क्यों ? क्योंकि उन्हें सारे दिन ऐसी वस्तुएं दिखाई देती हैं जो उन की चेतना में यह विचार ठसा ही देती हैं कि उनकी अपनी कोई भी वस्तु नहीं है, सबकुछ राम का है,—आकाश, पृथ्वी, सूर्य, तारे, चांद, हवा, पानी, बीज, कुटुम्ब-कबीला, मित्र-मंडल, आदि। इसलिए न जानते हुए भी उनका प्रत्येक श्वास उन्हें कान में कहता है

मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा।
तेरा तुझको सौंपते, क्या लागे है मेरा ?

अगर ग्राम के लोगों की चेतना में इस प्रकार का सत्य अश्रु और अग्नि से अंकित न हुआ होता तो उनमें शारीरिक कष्ट, मानसिक अशांति आदि सहन करने की शक्ति इस हद तक न पाई जाती, जिस हद तक उनमें पाई जाती है।

हां, यह सब बातें उन्हें मालूम नहीं हैं। मगर इन सब बातों का असर उनके जीवन पर गुप्त रूप में पड़ता है, इससे तो कोई इन्कार नहीं कर सकता। ग्राम के लोग तो बच्चों की तरह हैं। वे चलते हैं, उन्हें कौन चलाता है, और किस तरह, इसका ज्ञान उन्हें नहीं होता।

शायद यही कारण होगा कि अंग्रेजी कवि ने कहा है, "प्रभु ने ही ग्राम बनाया है, और शहर मनुष्य ने।"

तो राम-राज्य ग्राम-राज्य है, इसमें क्या किसी किस्म की अतिशयोक्ति है ?

तो फिर गांधीजी का दिया हुआ मानव-कल्याण-मंत्र, "ग्राम-राज्य है राम राज्य", ठीक ही हुआ।

(मगर हमारी सरकार ने तो हमारे देश के विधान से राम को ही निकाल दिया है। तब हमारे देश में राम-राज्य कैसे स्थापित हो सकता है ?)

●

मैंने बन्धनहीन मन्द-मन्द पवनों से पूछा कि समस्त दिनों में से कितना समय मेरा हो सकता है। खेलती और मचलती हुई पवनों ने उत्तर दिया—"तुम भी पवनों और पुष्प के समान प्रसन्न-चित्त हो जाओ।"

मैंने महान और अथाह सागर से पूछा कि जीवन का शक्तिशाली उद्देश्य क्या हो सकता है ? प्रचण्ड आवाज करते हुए सागर ने उत्तर दिया—"तुम मेरे सदृश कण्ठ तक भरेपूरे बनो।"

फिर मैंने सूर्य के अनंत प्रकाश से पूछा कि प्रभात के सूर्य के प्रकाश के साथ कैसे चमका जाय ? सूर्य के प्रकाश ने कोई उत्तर न दिया। पर अंतरंग ने एक हलकी-सी आवाज सुनी—"उज्ज्वल और प्रकाश-पूर्ण रूप से जलो।"

—ऑमरेलिन बालमोन्ट

सौंदर्य-दीक्षा

काका कालेलकर

1

जन्माष्टमी के दिन दोपहर को मैंने बेलगाम छोड़ा। बेलगाम जेल से मेरा तबादला साबरमती जेल में हुआ था। बहुत दिनों से जो किताब मिल नहीं रही थी वह हाथ आ जाने से गेटे के यौवनकाल से परिचय प्राप्त करने में मैं लीन हो गया। स्टेशन पर कोई परिचित व्यक्ति न मिला। लेकिन इससे मुझे तनिक भी आश्चर्य नहीं हुआ। एक तो मैं अचानक निकला था और दूसरे यह कि सभी परिचित लोग ज्यादातर जेल में ही थे। मैं 'तरुण वेर्टर के दुःखों' के साथ समभाव पैदा करने की कोशिश कर रहा था और ट्रेन अपना रोना रोती और हांफती हुई उत्तर की ओर बढ़ रही थी। बेलगाम के आसपास की भूमि के प्रति भक्तिभाव होते हुए भी बहुत दिनों बाद उसके महंगे और कुछ अधूरे दर्शन हो रहे थे, फिर भी जर्मनी के किसी अज्ञात प्रदेश का प्राचीन वर्णन पढ़ने में ही मुझे अधिक दिलचस्पी हो रही थी।

इतने में पश्चिम की ओर सहज दृष्टि गई। वहां संध्या समय के बादलों का एक अजब दृश्य मैंने देखा। जिसने सागर की यात्रा की है, हिमालय के बड़े विस्तार को पदाक्रांत किया है, सूर्यकिरणों को चकरानेवाले घने जंगलों में विचरण किया है और सैकड़ों बरसों से प्रकाश-वेग से आनेवाले तारका-सौंदर्य का पान किया है, वह इन बादलों के विस्तारमात्र से कभी चकित होने वाला नहीं था। फिर भी उस दिन का दृश्य सचमुच कल्पना-शक्ति को चकित करने वाला ही था।

आरंभ-प्राकट्य दिव्य है, पार्थिव नहीं, इस बात को मानो स्पष्ट करने के लिए ही क्षितिज से थोड़ी ऊंचाई तक आकाश को खुला छोड़कर बादलों ने अपना वितान एक छोर से दूसरे छोर तक तान लिया था। बीच-बीच में इस छत के नीचे छोटे-छोटे बादल जमा हो गये थे। मानो प्राचीन मंदिरों में कुरेदे हुए विमान-वाहक यक्ष! नीचे का भाग ऊपर के सौंदर्य के परिमाण में नीरस या विवर्ण न समझा जाय, इसलिए सक्षम कलाकृत सूर्यनारायण ने बादलों के पीछे से लाल रंग की झड़ी छोड़ी थी। फिर भी यह तो ऊपर के अद्भुत रस की केवल नींव ही थी। ऊपर बादलों में पहाड़ के शिखरों की कतारें एक के बाद एक बढ़ती जायें, इस तरह सात स्तर दिखाई देते थे। लम्बाइयां और ऊंचाइयां इकट्ठी हो जाय तो भव्यता तो प्रतीत होती ही है, लेकिन जब उसमें गहराई मिलाई जाती है तब तो वह भव्यता विराट् का स्वरूप धारण करती है। फिर जब उसके साथ रसस्नान होकर हम एकता का अनुभव करने लगते हैं तब आनन्द से इतने दब जाते हैं, मानो भव्यता के सागर में शिरोस्नान करनेवाली लहरें छाती में टकरा रही हों।

सचमुच, कुछ बादल बिलकुल ऐसे लगते थे मानो तेज की लहरें हों। खग्रास सूर्यग्रहण के समय सूर्य के किनारे पर जो हजारों और लाखों मील की ज्वाला उछलती दिखाई देती है उसकी तस्वीर आजकल के ज्योतिषी खींचते हैं। कुदरत को लगा होगा कि जन्माष्टमी के आनन्द में हम भी ऐसी तस्वीर खींचें। कितने बड़े-बड़े शिखर और उन सारे शिखरों को चाट जाने की कोशिश करनेवाली ये बादलों की ज्वाला जैसी जीभें!

शास्त्र कहते हैं कि मिष्टान्न अकेले-अकेले नहीं खाना चाहिए। शास्त्रों ने ऐसी आज्ञा न की होती तो भी हृदय-धर्म उसकी सूचना किये बिना न रहता। मेरे साथ समान-धर्मी कोई भी न था। साथ में मेरी निगरानी के लिए आये हुए दो पुलिस वाले थे। वे तो अपनी ही बातों में मशगूल थे। हमें जो आनन्द होता है उसे औरों के साथ बांट लेने में वह दुगुना होता है और छाती पर का दबाव कुछ हलका हो जाता है, लेकिन ऐसा परिवार या ऐसे परिजन मैं यहां कहां से लाऊं? दिल में आया, यहां इतने सारे मुसाफिर गाड़ी में बैठे हैं, क्यों किसी का ध्यान इस अद्भुत दृश्य की ओर नहीं जाता? बादलों की ऐसी रचना हर रोज देखने को नहीं मिलती। हमारे लोग जीवन कलह में और सामाजिक कलह में इतने व्यस्त हैं कि जीवन की

सारी रसिकता निचुड़कर नष्ट हो गई है। मन-ही-मन इस तरह की शिकायत कर रहा था कि इतने में भेड़ों का व्यापार करने निकला हुआ एक मुसलमान मुसाफिर बात करते-करते बीच में ही बोल उठा, "अहा हा! इस आसमान की तरफ जरा देखो तो सही। नाटक के परदे की तरह कैसा समा बंध गया है।" साहित्य-संस्कार विहीन उस अनपढ़ मुसाफिर का यह वाक्य सुनकर मुझे अतिशय सन्तोष हुआ। आखिर एक तो मानव मिल गया, जिसने प्रकृति के इस कला-विलास की कद्र की।

नाटक के परदे के प्रति मेरे मन में जो नफरत एक बार पैदा हो गई है वह अबतक नहीं गई है। उसका चित्रण अधिकतर चकमकदार और भड़कीला होता है। मगर मैंने तुरन्त सोचा, इन बेचारों से हम कभी नहीं मिलते, इनके साथ विचार-विनिमय नहीं करते, इन्हें मन्दिरों या बागों में ले जाकर इनके लिए नई सम्यकरिता का निर्माण नहीं करते। नय ढंग से रामलीला नहीं मनाते। मनुष्य-जीवन में हमने इनका दर्जा नीचा ही रखा है। इनके चितादग्ध जीवन में अगर कभी काव्यरूप रस प्रवेश करता है तो वह शाम को उनके दरवाजे पर सुनाई देनेवाली गजलों द्वारा या कारन्थ आने स्वयं करके दगे जानेवाले नाटकों द्वारा। अन भेड़ के जितने ही सम्भारी उन भेड़ों के व्यापारी के आनन्दोद्गार में जो स्वाभाविकता और मौलिकता थी उसके कारण उसके शब्द मेरे लिए सत्यसुन्दर और जीवनगभीर बन गये। मेरे आनन्द के उस प्राकृत साक्षी को सुनकर और बाद में देखकर मैं कृतार्थ हो गया। ट्रेन दौड़ती जा रही थी, बादल घड़ी-घड़ी नये-नये पहलू नई-नई माया के साथ दिखा रहे थे। इतने में बारिश के कारण बने हुए छिछले किन्तु बड़े बड़े दिखाई दिये। उनमें निर्मल जीवन कहां से होगा? उनमें गहराई भी नहीं थी। लेकिन जीवन के धर्म को समझ कर उन्होंने अपना चेहरा कवि के मानस की तरह सरल एवं ग्रहणशील रखा था। अतः आकाश की अनन्तता, बादलों की भव्यता, तथा सध्या की सुवर्णता का हू-ब-हू चित्रण वे कर के बता सके। उसने समय के लिए तो उन तीनों की महत्ता भी वे धारण कर सके। ऊपर आकाश में और धरती पर पानी में वह अद्भुत रस सीधा और औंधा चित्रित देखकर मैं फिर से उत्तेजित हो उठा। वह उत्तेजना बड़ी देर तक रही। लेकिन उत्तेजना से मनुष्य अन्त में थक जाता है। इसलिए उस थकावट को दूर करने के लिए शाम की प्रार्थना में डूब जाना मैंने पसन्द किया।

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति ॥

सचमुच कला की भव्यता में मनुष्य को निष्काम, निर्मम और निरहङ्कार बनाकर जीवन्मुक्त की तरह बिना लोभ के विहार कराने की शक्ति रहती है।

अनु०—श्रीपाद जोशी

●

ईश्वरेर हास्यमुख देखिबारे पाइ,
जे आलोते भाइ के देखिते पाय भाइ।
ईश्वर प्रणामे तबे हाथ जोड़ हय,
जखन भाइयेर प्रेमे मिलाइ हृदय।

जिस उजेले में भाई भाई को देख सकता है, उसी में ईश्वर का मुख हंसता दिखाई पड़ सकता है। जब भाई के प्रेम में दिल पसीज जाता है तभी ईश्वर को प्रणाम करने के लिए जाते हुए हाथ जुड़ जाते हैं।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

महाभारत की राजनैतिक कहानी

अरविन्द

महाभारत का युद्ध छोटे-मोटे सामन्तों का कोई तुच्छ झगड़ा या किसी अधिक विशाल संग्राम की कोई छोटी सी घटना अथवा किसी अपहृत या भूली भटकी सुन्दरी की रक्षा के लिए औपन्यासिक और वीरतायुक्त साहसिक कार्य नहीं था। यह एक ऐसी महान राजनैतिक दुर्घटना थी जिसमें सैकड़ों राष्ट्रों का संघर्ष था और जिसके बहुत गहरे और सुदूरवर्ती राजनीतिक परिणाम हुए। हिंदू सदा से इस युद्ध को अपनी सभ्यता के इतिहास में एक परिवर्तन बिन्दु और नवीन युग का प्रारंभ मानते हैं। बहुत समय तक यह एक ऐसे ऐतिहासिक सुनिश्चित बिन्दु और तिथि के रूप में प्रयोग में लाया जाता रहा है, जिससे कि काल की गणना की जाया करती थी। ऐसी घटना के अवश्य ही अत्यन्त महान राजनीतिक कारण होने चाहिए और वह अत्यन्त शक्तिशाली व्यक्तियों और अत्यन्त महत्वपूर्ण स्वार्थों के संघर्ष से उत्पन्न होनी चाहिए। यदि हमें महाभारत महाकाव्य में इनका कोई अभिलेख या उल्लेख न मिले तो हमें विवश हो कर यह मानना पड़ेगा कि उस का कवि इस घटना के बहुत पीछे हुआ और उसने इस युद्ध को एक ऐसी पौराणिक कथा या प्रचलित आख्यायिका के रूप में ग्रहण किया जो कि काव्य के लिए बहुत उत्तम विषय बन सकती है और फिर उसने उस पर यह महाकाव्य लिखा। परन्तु यदि हमें इसमें युद्ध से पूर्व की राजनीतिक अवस्थाओं का और जिन मनुष्यों ने यह युद्ध किया उनका और उनके उद्देश्यों का बिना किसी बनावट या रागरंग के सीधा सादा वर्णन मिल जाता है, भले ही वह सुसंबद्ध और क्रमबद्ध न हों, तो हम सुरक्षित रूप में, सुनिश्चित भाव से यह कह सकते हैं कि यह भी महाकाव्य का एक अत्यावश्यक अंग है। होमर लिखित 'इलियड' महाकाव्य ट्राय नगर या यूनानियों द्वारा घेरा डालने का वर्णन करता है। यह एक पौराणिक कथा है, यह दस वर्ष तक होते रहने वाले संघर्ष में केवल कुछ ही दिनों की घटना है, और इसका विषय ट्राय का युद्ध नहीं वरन् एचिलिज का क्रोध है। इसलिये होमर के लिए युद्ध के कारणों की विवेचना करना अनिवार्य नहीं था, चाहे वह उन्हें जानते ही क्यों न हो। परन्तु महाभारत का आधार इससे सर्वथा भिन्न है। इसमें युद्ध का वर्णन आदि से ले कर अन्त तक, क्रमबद्ध और अविच्छिन्न रूप में है। परन्तु फिर भी इसमें युद्ध को केवल युद्ध के लिए कहीं भी महत्व नहीं दिया गया है। इसमें युद्ध का महत्व निर्भर करता है उन कारणों पर जिनसे वह हुआ, उन महापुरुषों की जीवनी पर जिन्होंने उसे किया और उन स्वार्थों पर जो इसके भीतर निहित थे। इसलिए इस महाकाव्य के लिए पूर्ववर्ती घटनाएं अत्यावश्यक महत्व रखती हैं। युद्ध के बिना इस महाकाव्य में वर्णित महाभारत सच्चा नहीं है, परन्तु उतनी ही ठीक यह बात भी है कि युद्ध के कारणों के बिना कोई युद्ध सच्चा युद्ध भी नहीं है। और यह ध्यान रहे कि यूनानियों की भांति किसी कहानी को मध्य से आरम्भ करने की कलात्मक वृत्ति हिन्दू कवियों में नहीं थी। इसके विपरीत आदि से प्रारंभ करना वे सदा पसन्द करते थे।

इसलिए स्वभावतः हम युद्ध से पहले की अवस्थाओं और युद्ध के तात्कालिक कारणों का वर्णन महाकाव्य के प्रारंभिक भाग में पाने की आशा करते हैं और ठीक यही चीज हमें मिलती भी है। प्राचीन भारत, जैसा कि हम जानते हैं, अनेक महान और सभ्य राष्ट्रों का बना हुआ एक प्रकार का महादेश था। वे राष्ट्र आधुनिक यूरोप के राष्ट्रों की तरह धर्म और संस्कृति के आधारभूत सादृश्य के द्वारा बहुत अधिक संयुक्त थे और अपनी विशिष्ट जातिगत विशेषताओं से परे और ऊपर उठे हुए थे। यूरोप के राष्ट्रों के समान ही वे सदा एक दूसरे के साथ युद्ध किया करते थे। इसके अतिरिक्त वे एशिया की अन्य जातियों के साथ भी, जिन्हें वे आर्य सभ्यता की सीमा के बाहर अनार्य, असभ्य, जंगली जातियां मानते थे, कभी-कभी युद्ध किया करते थे और परस्पर में क्रिया-प्रतिक्रिया हुआ करती थी। यूरोप के महादेश के समान, भारत के प्राचीन महादेश में दो

विरोधी शक्तियां कार्य करती थी। प्रथम केन्द्राभिमुखी जो कि सदा सार्वभौम साम्राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया करती थी, दूसरी केन्द्र-पराङमुखी—जो कि एक बार बनाये गये साम्राज्य को फिर उसके अगों में खड खड करने का सदा प्रयत्न किया करती थी। परन्तु ये दोनो शक्तियां काम करने में यूरोप की शक्तियों की अपेक्षा बहुत अधिक क्षमवती थीं। आर्य राष्ट्र तीन पृथक्-पृथक् समूहों में विभक्त किये जा सकते हैं। प्रथम—पूर्वी समूह जिसमें कौशल, मगध, चेदी, विदेह, और हैहय मुख्य थे। दूसरा—मध्यवर्ती जिसमें कौरव, पांचाल, और भारत अत्यन्त प्रभावशाली थे। तीसरा—पश्चिमी और दक्षिणी जिसमें अनेक छोटे और गवार परन्तु रणवीर और प्रसिद्ध मनुष्य थे। इनमें कोई भी ऐसे नही हुए जिन्होंने कभी भी प्रथम श्रेणी का महत्व प्राप्त किया हो। राष्ट्रों के इन बडे समूहों को स्पष्टतया पांच बार साम्राज्य के रूप में संयुक्त कर दिया गया था। दो बार युवनाश्व के पुत्र मांधाता और राजा मरत के आधिपत्य में इक्ष्वाकुओं ने किया। इसके बाद हैहयवंशी कार्त्तवीर्य अर्जुन ने किया। इसके अनन्तर इक्ष्वाकुवंशीय भगीरथ ने किया अन्त में कुरुवंशीय भरत ने किया। पहला कुरु साम्राज्य इन सबके अन्त में हुआ है, यह बात केवल इस चीज से प्रमाणित नहीं होती कि कौरव अपने समय के सबसे अधिक बलशाली राष्ट्र थे वरन् इस महत्वपूर्ण तथ्य से भी कि इस समय कौशल पूरी तरह क्षीण और नगण्य हो चुके थे और अब उनमें ऊपर उठने की सामर्थ्य नही रही थी। हैहयों के शासन के कारण भारत के पूर्वीय खंड की प्राचीन हिंदू-सभ्यता के लिए भीषण उत्पात हुआ। इस खंड के निवासियों की वृत्ति आपद्धर्म का शब्दशः पालन करने से अलग रहने की थी। हैहयों ने अभिमान और हिंसा का अवलम्बन लेकर ब्राह्मणों के साथ संघर्ष किया जिसमें गृह युद्ध हुआ। इस युद्ध में जमदग्नि के पुत्र परशुराम ने इनके साम्राज्य को सदा के लिए नष्ट कर दिया और भारत की क्षत्रिय जाति का उस समय विनाश कर दिया। हैहयों के पतन के अनन्तर भारत में दो प्रधान शक्तियां रह गईं। इक्ष्वाकुवंशीय और भरतवंशीय या कुरुवंशीय। उस समय इक्ष्वाकुवंशियों का स्वर्णयुग आया जान पड़ता है जब कि भगीरथ से लेकर उनकी सन्तान परम्परा में, कम-से-कम राम तक, मुख्य साम्राज्य रहा। इसके अनन्तर जब कि कौशलों का प्रतापसूर्य अपने मध्यान्ह शिखर पर पहुंच गया तो उसका अस्ताचल की ओर प्रयाण अनिवार्य था। उनके पूर्ण यौवन के अनन्तर वृद्धावस्था की उस क्षीणता का आना अनिवार्य था जो कि जब एक बार किसी राष्ट्र पर अधिकार जमा लेती है तो असाध्य हो कर घातक होती है। इनके अनन्तर भरतवंशियों का साम्राज्य आया। शांतनु, विचित्रवीर्य, और पाडु के समय तक यह साम्राज्य आर्य राजनीति की केन्द्र-पराङमुखी शक्ति से खड-खड हो चुका था परन्तु फिर भी कौरवगण राष्ट्रों में प्रथम स्थान रखते थे और कुरुवंशीय भरत राजागण सभ्यता के शिखर माने जाते थे। परन्तु धृतराष्ट्र के समय में केन्द्राभिमुखी शक्ति फिर प्रबल होने लगी थी और दूसरे महासाम्राज्य का विचार सभी मनुष्यों की कल्पनाओं का प्रधान विषय बना हुआ था। अनेक राष्ट्रों ने महत्तम सैनिक प्रतिष्ठा और राजनीतिक शक्ति को प्राप्त कर लिया था—पांचालों ने द्रुपद और उसके पुत्रों के नेतृत्व में, कौरवों ने भीष्म और उसके भाई अर्थात् के नेतृत्व में जो कि सैनिक कुशलता और साहस में परशुराम के समान माना जाता था, चेदियों ने वीर और महारथी शिशुपाल के नेतृत्व में। बृहद्रथ ने मगधों का एक बलशाली राष्ट्र बनाया था। यहां तक कि सुदूरवर्ती बंगाल पौंड्रवंशी वासुदेव के आधिपत्य में और मेधव वृद्धक्षत्र और उसके पुत्र जयद्रथ के आधिपत्य में शक्तियों की पंक्ति में कुछ-कुछ अपनी गिनती कराने लगे थे। यादव-राष्ट्र अपनी प्रचंड वीरता और विलक्षण प्रतिभा के कारण राजनीतिक संतुलन में एक बडी सैनिक शक्ति माने जाते थे, परन्तु उनमें इतना पर्याप्त मेल और ऐक्य नहीं था कि वे अपने लिए स्वतन्त्र साम्राज्य की आशा कर सकें। ये संपूर्ण राष्ट्र यद्यपि बलशाली थे, तथापि इनमें कोई भी कौरवों को प्राप्त होने वाले साम्राज्य का विरोध करने की सामर्थ्य नहीं रखता था। पीछे से जरासंध के आधिपत्य में बार्हद्रथ मागधों ने क्षण भर के लिए राजनीतिक सन्तुलन को बिगाड़ दिया। मागधों की साम्राज्य की पहली महान् आशा और उसके अन्त का इतिहास—जिसका पुनर्जन्म कौरवों के अंतिम पतन

तक नहीं हुआ—महाभारत के सभापर्व में सक्षेप में कहा गया है। जरासंध के हट जाने से फिर पहलेवाली राजनीतिक स्थिति हो गई और अब इसमें कोई सन्देह नही रह गया कि भावी साम्राज्य कौरवो को ही प्राप्त होगा। परन्तु इस समय भरत वंश की ज्येष्ठ और कनिष्ठ शाखाओं मे प्रतिद्वन्दिता उत्पन्न हो गई। अन्त मे इस प्रश्न के व्यक्तिगत विवाद में सीमित होने पर यह अनिवार्य हो गया कि यह सामान्यत व्यक्तिगत संघर्ष और कलह के इतिहास का रूप धारण कर ले। कौरव-बन्धुओं के इस कलह में दूसरे बड़े विषय भी थे। परन्तु चाहे जैसे भी स्वार्थ, मन और स्वभाव के विरोध और मतभेद भाइयो को विभक्त कर दे,वे उस समय तक भ्रातृ घातक युद्ध नही कर सकते जबतक कि वे लम्बे समय तक होते रहनेवाले संघर्ष और ईर्ष्या मे, निरन्तर गहरी होती हुई व्यक्तिगत घृणा मे और निकृष्टतम व्यक्तिगत आघातों से उस ओर न प्रवृत्त किये गये हो। इसलिए हम देखते है कि महाकाव्य के लिए जरासंध का वध और राजसूय-यज्ञ जैसे पहले झगडे ही आवश्यक नही है अपितु महाद्यूत और द्रौपदी के साथ दुर्व्यवहार भी आवश्यक है। भिन्न-भिन्न राष्ट्रों ने जो दुर्योधन या युधिष्ठिर का पक्ष ग्रहण किया वह केवल वैयक्तिक कारणो से नही हो सकता। वैयक्तिक संबंध, जैसे कि धृतराष्ट्र परिवार के सैन्धवों और गाधारो के साथ और पाण्डवो के मत्स्य, पाचाल और यादवो के साथ के वैवाहिक संबध नि:सदेह काफी प्रभाव रखते है परन्तु पक्षों के चुनाव के लिए इससे कुछ अधिक होना चाहिए। वैयक्तिक शत्रुताओं का प्रभाव इस प्रकार हुआ जैसे कि त्रिगर्त्त अर्जुन के प्रति रखते थे। माद्री ने दुर्योधन का पक्ष ग्रहण करते समय वैवाहिक संबध का परित्याग कर दिया। मागधो और चेदियो ने वैयक्तिक अपकार की स्मृति का परित्याग कर युधिष्ठिर का पक्ष ग्रहण किया। मेरा विश्वास है कि महाभारत मे आये हुए सकेतों से जो हमें इस सबका कारण मिलता है वह यह है कि उस समय राष्ट्रो के तीन विभाग थे। प्रथम वे जो स्वायत्तता चाहते थे, दूसरे वे जो कौरवो की शक्ति को भग्न करना और अपनी प्रधानता चाहते थे, तीसरे वे जो पुराने साम्राज्यवादी भावो से अनुप्राणित होने के कारण संयुक्त और अखड भारत चाहते थे। पहले राष्ट्रों ने दुर्योधन का साथ दिया, कारण वे जानते थे कि दुर्योधन का साम्राज्य एक दिन से अधिक नही टिक सकता परन्तु युधिष्ठिर के साम्राज्य के चिरस्थायी होने की बहुत अधिक सम्भावना है। यहा तक कि दुर्योधन की अपनी माता महारानी गाधारी अपने पुत्र की महत्वाकाक्षा की इस दुर्बलता को पहचानती थी। निस्सन्देह राजसूय-यज्ञ ने भी लोगो के मनो में उस समय की साम्राज्यवादी भावनाओं और युधिष्ठिर से एकात्म्य-सा भाव उत्पन्न कर दिया था। उद्योगपर्व मे इस विषय में कुछ महत्वपूर्ण सकेत मिलते है। जिस समय विदुरजी श्रीकृष्ण से हस्तिनापुर आने के लिए अनुरोध करते है तो श्रीकृष्ण उनसे कहते है—यह नगर ऐसे राजाओ से भरा हुआ है जो मेरे प्रति शत्रुता मे जल रहे है, क्योकि इनकी महत्ता के अपहरण का कारण मैं ही हूँ। ये राजा मेरे भय से दुर्योधन की शरण मे आये हुए है और पाडवो के साथ युद्ध करने के लिए लालायित हो रहे है। इस बात को जानते हुए मेरे लिए हस्तिनापुर में आना बहुत अधिक अदूरदर्शिता का कार्य होगा। इसमें राजसूय-यज्ञ के सिवाय और किसी ओर निर्देश नही समझा जा सकता। यद्यपि उस समय युधिष्ठिर की सेनाओ ने भारत में विजययात्रा के रूप में भ्रमण किया था परन्तु श्रीकृष्ण के विषय में प्रायः सर्वत्र यह मान्यता थी कि ये अत्यन्त प्रतिभाशाली, तीक्ष्ण-बुद्धि, चतुर राजनीतिज्ञ हैं। पाडवो की विजय के पीछे इनका ही क्रियात्मक मस्तिष्क कार्य करता है, पाडव केवल उनके हाथ में यंत्र है और उनके बिना पाडवो की कुछ भी हस्ती नही। उनके व्यक्तित्व की जो छाप दूसरो पर पड़ी इससे कुछ उनके प्रति श्रद्धा भक्ति रखते थे और कुछ उनसे घृणा करते थे। अनेक मनुष्य उन्हें आचार, राजनीति और धर्म के क्षेत्र में धूर्त्त और अविचारी क्रान्तिवादी मान कर उनसे घृणा करते थे—यह हमें बहुत स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इस विषय में हमें न केवल शिशुपाल के उत्तेजनात्मक कटुवचन मिलते है अपितु वाल्हीक भूरिश्रवा के लगाये गये कलक भी है। भूरिश्रवा की बहुत ऊंची प्रतिष्ठा थी और उसका सर्वत्र मान था। स्वयं

श्रीकृष्ण इस बात को पूरी तरह जानते थे। वे विदुर से कहते हैं कि मुझे शांति के लिए दो कारणों से प्रयत्न करना चाहिए, *अपने आत्मा के उद्धार के लिए (आनृण्य)* और दूसरे मनुष्यों की दृष्टि में अपने-आप को न्याय सिद्ध करने के लिए। श्रीकृष्ण की नीति और राजनीतिक दूरदर्शिता युधिष्ठिर की महत्ता के पीछे वास्तविक कार्यकारी प्रभावशाली शक्ति थी, यह विश्वास सम्पूर्ण महाकाव्य में व्याप्त है। परन्तु ये कौन राष्ट्र थे जो कि अपने ऊपर युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण के साम्राज्य को लादने के प्रयत्नों के प्रति इतने बल के साथ क्षुब्ध होते थे। यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि दक्षिणी और पश्चिमी जातियों ने, प्राय सभी ने एक साथ होकर इस युद्ध में दुर्योधन का पक्ष ग्रहण किया। माद्र, दाक्षिणात्य, आवन्तिक, सैन्धव, सौवीर,गांधार ये सब दक्षिणी मैसूर से लेकर उत्तरी कंधार तक एक लंबी रेखा में दुर्योधन के साथी हुए। गंगा की नीची तराई के अभी तक अर्धसभ्य प्रदेशों के आर्य उपनिवेशों ने भी इसी पक्ष को ग्रहण किया। दूसरी ओर इसी प्रकार पूर्वीय राष्ट्र जिन्होंने उत्तराधिकार में इक्ष्वाकुवंशीय साम्राज्य के भार को प्राप्त किया था एक साथ *युधिष्ठिर के पक्ष में गये। मध्यवर्ती जातियां,* जिन्होंने महती कुरु-पांचाल परम्परा को प्राप्त किया था और यादव जो कि वास्तव में मध्यवर्ती राष्ट्र थे यद्यपि वे पश्चिम की ओर खिसक गये थे, विभक्त हो गये थे। यह विभाग ठीक वही है जिसकी हमें आशा करनी चाहिए। जो राष्ट्र किसी साम्राज्य प्रणाली में प्रविष्ट होने के अत्यन्त विरोधी होते हैं और अपनी स्वतन्त्र सत्ता बनाये रखना चाहते हैं, वे, वे होते हैं जो कि सभ्यता के केन्द्र से बाहर होते हैं, साहसी, बलिष्ठ, लड़ाकू होते हैं और केवल आंशिक रूप में ही संस्कृत होते हैं और यदि वे किसी साम्राज्य के अस्थायी रूप से भी न हुए हों या केवल थोड़े समय के लिए ही हुए हों तो उनका विरोध और भी अधिक प्रबल होता है। फिलिप द्वितीय से लेकर नेपोलियन *तक महाद्वीपीय साम्राज्य की समस्त योजनाओं* का इग्लैंड जो विरोध करता रहा उसके अदम्य प्रतिरोध का यही सच्चा रहस्य है। रूस से जो उसे भय था उसका भी यही रहस्य है। इग्लैंड अनेक शताब्दियों तक अपनी महती राष्ट्रीय सत्ता रखने के बाद जो केवल अभी अपने ही आप साम्राज्यीय विचार वाला हुआ है—इस *अनोखे तथ्य का भी यही कारण है।* डच (हालैंड-निवासी), स्विस (स्वीटजरलैंड निवासी), बोअरों (अफ्रीका में जाकर बसे हुए डचों) जैसे छोटे-छोटे राष्ट्रों की अपनी स्वाधीनता के प्रति जो पशु सुलभ आसक्ति थी उसका भी कारण इसीमें मिलता है। स्पेन के बड़े भाग ने नैपोलियन का भीषण प्रतिरोध किया। यह विरोध एक ऐसे राष्ट्र का था जो पहले एक बार साम्राजिक और केन्द्रीय हो कर सभ्यता की मुख्य धारा से बाहर गिर पड़ा है। और इसलिए प्रादेशिक हो गया है और अपनी पृथकता से आसक्त है। इसलिए यदि पूर्व और दक्षिण के राष्ट्रों ने और बंगाल में आर्यों के उपनिवेशों ने श्रीकृष्ण की साम्राज्यीय नीति का विरोध किया और अपने भाग्य को दुर्योधन के साथ मिला दिया तो यह बात वैसी ही है जिसकी हम आशा कर सकते हैं। दूसरी ओर, जो राष्ट्र सभ्यता के केन्द्र में होते हैं, जो किसी-न-किसी समय साम्राज्य के प्रधान अंग बन चुके होते हैं वे सरलता से साम्राज्यिक योजनाओं को स्वीकार कर लेते हैं, *परन्तु वैयक्तिक प्रतिद्वन्द्विता, प्रत्येक की* अपने आप को साम्राज्य का केन्द्र बनाने की कामना उन्हें विभक्त कर देती है और एक दूसरे का शत्रु बना देती है, यहां राजनीतिक विचारधारा का कोई भेद नहीं, कारण राष्ट्रों की अपने अतीत महायुगों की स्मृति बहुत दृढ़ होती है और वे सदा उन महायुगों को लाने का बार-बार प्रयत्न किया करते हैं। पूर्वीय मनुष्यों में साम्राज्यवादी भाव बहुत प्रबल था और वे जरासन्ध के आधिपत्य में स्वयं अपने नवीन साम्राज्य के निर्माण में असफल हो गये थे, उन्हें केवल युधिष्ठिर ही ऐसा व्यक्ति दिखलाई दिया. चो. उनके पार्श्व. केरे. प्राच. कर. मत्स्य. स्य., द्रवि-लिए उन सबने एक मत होकर युधिष्ठिर का पक्ष ग्रहण किया ऐसा जान पड़ता है। राजसूय-यज्ञ के अवसर पर *शिशुपाल का एक वचन इस विषय में बहुत महत्वपूर्ण है।*

वयं तु न भयादस्य कौन्तेयस्य महात्मनः
प्रयच्छाम करान् सर्वे न लोभान्न च सान्त्वनात् ॥

अस्य धर्मवृत्तस्य पार्थिवत्वं चिकीर्षतः
करानस्मै प्रयच्छामः सोऽयमस्मान्न मन्यते ॥
सभापर्व ३७।१९,२०

हमें स्मरण है कि वह एक प्राच्य कवि था जिसने बलशाली श्लोकों में साम्राज्यीय शासन के और आर्य एकत्व के आदर्शीकरण का गान किया है और जिसने कोशल साम्राज्य के वैभव को अपने अमर श्लोकों में सुप्रतिष्ठित किया है और सम्भवतः उसने यह कार्य बहुत अधिक शताब्दियों पहले नहीं किया। पूर्वीय राष्ट्रों की दृष्टि में आर्य एकत्व की स्थापना एक धार्मिक और पवित्र कार्य थी। इस दृष्टिकोण से इस पवित्र कार्य में सहयोग देने के लिए सार्वभौम प्रमुख स्थापित करने की अभीप्सा, वैयक्तिक भावनाओं और पक्षपातों को दूर हटाने में पर्याप्त कारण थी। शिशुपाल अपने समय के अत्यधिक स्वेच्छाचारी और उग्र स्वभाव वाले राजाओं में से था। मागध साम्राज्य की स्थापना के लिए जरासन्ध जो प्रयत्न कर रहा था उसमें शिशुपाल उसके अत्यन्त उत्साही और बहुत बड़े सहायकों में से था। मध्यवर्ती राष्ट्रों का विभाग भी इसी प्रकार समझी जाने वाली दिशा में हुआ। महाभारत में सर्वत्र हम देखते हैं कि कौरवों की भारी दुर्बलता उनके परामर्शदाताओं के विभाग में थी। उनमें एक शान्तिदल था जिसमें भीष्म, द्रोण और विदुर प्रधान थे जो कि विवेकशील तथा अनुभवी राजनीतिज्ञ थे और जो न्याय और युधिष्ठिर के साथ मेल चाहते थे। दूसरा गरम रक्तवाले नवयुवकों का युद्ध दल था इस दल में कर्ण, दुःशासन और स्वयं दुर्योधन प्रधान थे जो कि शस्त्रों के द्वारा युद्ध में विश्व को जीतने की अपने में शक्ति मानते थे। धृतराष्ट्र राजा छिपे-छिपे स्वयं अपनी अभिरुचियों और नवयुवकों की महत्त्वाकांक्षाओं का अनुसरण करते थे। इसलिए उन के लिए अपने ज्येष्ठ पुरुषों की सम्मतियों को स्वीकार करना कठिन था। ये ऐसे तथ्य हैं जो कि महाभारत में स्पष्ट रूप में दिखलाई देते हैं परन्तु यह कैसी विचित्र बात है कि इस महाकाव्य में कहीं भी इस विषय पर पर्याप्त रूप में विचार नहीं किया गया कि भीष्म और द्रोण जैसे उच्च चरित्र वाले मनुष्यों ने इस पक्ष में होकर युद्ध किया जिसको वे, अन्याय अधर्म कहते हुए, बार-बार निन्दा किया करते थे, और इस प्रकार उन्होंने अपनी धर्म-न्याय की भावना के विरुद्ध कार्य किया। यदि भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा और विकर्ण साफ-साफ दुर्योधन से यह कह देते कि हम युधिष्ठिर के पक्ष में होकर युद्ध करेंगे या युद्ध में भाग नहीं लेंगे तो यह स्पष्ट है कि युद्ध हुआ ही न होता। और मैं यह सोचे बिना नहीं रह सकता कि यदि यह प्रश्न केवल कौरवों और पाण्डवों के बीच में ही होता तो वे निश्चित रूप में इसी मार्ग का अवलम्बन करते। परन्तु भीष्म और द्रोण ने यह देखा होगा कि पांडवों के पीछे पाञ्चाल और मत्स्य भी हैं। उन्हें यह सन्देह हुआ होगा कि ये राष्ट्र युधिष्ठिर का समर्थन शुद्ध निःस्वार्थ भाव से नहीं कर रहे हैं अपितु कुछ विशेष सुनिश्चित राजनीतिक उद्देश्यों से कर रहे हैं। गत शताब्दि में जैसे सिंधिया और होल्कर को सम्राट् नहीं माना जा सकता था, उसी प्रकार उस समय में भारतवर्ष द्रुपद और विराट् को भी सम्राट् नहीं मान सकता था। परन्तु साम्राज्य परम्परा वाले भरत कुल के एक राजा के, भरतवंशी अजमीढ की सन्तान के न्याय्य अधिकार को सामने रख कर, जिससे कि उनका वैवाहिक सम्बंध था, वे इस कठिनाई को दूर कर सकते थे और साथ ही कौरवों की शक्ति को नष्ट करके उसके स्थान पर नवीन साम्राज्य में मुख्य भागीदार बन सकते थे। उनमें जो युद्ध के लिए तीव्र व्यग्रता और कठिनाई को उचित रूप में और शान्तिपूर्वक सुलझाने के लिए कोई भी सच्चा पग उठाने की अनिच्छा दिखाई देती है इससे उनका वैयक्तिक स्वार्थ स्पष्ट प्रकट होता है। श्रीकृष्ण की राजनीतिक कुशलतायुक्त नरम परन्तु दृढ़ नीति की तुलना में उनका कार्य विचित्र रूप में भिन्न है। यह कल्पना करना बहुत कठिन है कि भीष्म और उनके दल के कौरव राजनीतिज्ञ स्वाधीनतावादी थे। कौरव साम्राज्य के लिए वे भी उतने ही उत्सुक होंगे जितना कि स्वयं दुर्योधन था।

जो कुछ भी हो, उन्होंने श्रीकृष्ण के राजनीतिक निपुणतायुक्त तर्क का उत्साह के साथ स्वागत किया जब कि उन्होंने धृतराष्ट्र के सामने यह प्रस्ताव रखा कि कौरवों और पाडवों की शक्तियों को संयुक्त करके एक

(शेष पृष्ठ २२ पर)

सूरज का पर्दा

रावी

धरती जब सूर्य के सामने घूमते-घूमते सात नील दिन और उतनी ही रातो की यात्रा कर चुकी तब उसके कुछ पुर्जे ढीले हो गये और उसमे कुछ मरम्मत की आवश्यकता हुई।

धरती के शिल्पी देवताओ ने हिसाब लगा कर बताया कि इस मरम्मत के लिए पृथ्वी को तीन दिन और तीन रातो के बराबर समय तक के लिए अपनी यात्रा रोकनी पडेगी, और इसका यह अर्थ होगा कि पृथ्वी के एक गोलार्द्ध पर नियमित से छ गुना दिन–और दूसरे गोलार्द्ध पर छ गुनी रात होगी।

सौर मडल के अधिष्ठाता विवस्वान् देव ने अन्तरिक्ष के एक केन्द्रीय नक्षत्र में देवताओ की सभा की। समस्या यह थी कि आवश्यक मरम्मत के लिए धरती तीन दिन तक ठहरा दी जाय, इसमें तो कोई हानि नही, लेकिन इससे उसके एक गोलार्द्ध पर छ गुना दिन और दूसरे पर छ गुनी रात हो जायगी। उससे धरती के प्राणियो–विशेषकर मानव जनो पर जो आतक छा जायगा और प्रकृति की नियमितता पर उन्हे जो अविश्वास हो जायगा उसका परिणाम बहुत ही घातक होगा। आवश्यकता इस बात की थी कि धरती के जीवो को धरती के इस स्तम्भन का पता न लग पाय और काम भी पूरा हो जाय।

बडे-बडे प्रकाश-पुज नक्षत्रो के अधिष्ठाता देवताओ ने अपनी-अपनी सेवाए प्रस्तुत करते हुए अपना सपूर्ण बुद्धि-बल लगा देखा, पर वे इस समस्या का हल नही निकाल सके। उनमें से अनेक यह तो कर सकते थे कि अपने नक्षत्र का एक बडा प्रतिबिम्ब धरती के समीप लाकर उसके निम्नार्द्ध–सूर्य से विमुख–भाग के सामने एक कृत्रिम सूर्य के रूप में सूर्य-की सी गति से चालित करें और उस गोलार्द्ध के निवासियो को उस दीर्घ रात्रि का पता न लगने दें, पर सूर्य के सामने वाले गोलार्द्ध के निवासियो के लिए कुछ करने का साधन उनके हाथ में कोई नही था।

अन्त में, जब सभी अगली पक्तियो के देवता अपनी असमर्थता प्रकट कर चुके तब सबसे अन्तिम पक्ति में बैठा हुआ एक बहुत ही छोटा, ज्योतिहीन, वरुण नाम का मेघो का देवता उठा और उसने इस परिस्थिति को साध लेने के लिए अपनी सेवाए प्रस्तुत की।

बडे देवताओ को वरुण के इस साहस पर आश्चर्य हुआ और उन्होने उसके प्रस्ताव को एक धृष्टतापूर्ण दुस्साहस समझा। किंतु वरुण ने विवस्वान् देव से विश्वास-पूर्ण शब्दो में निवेदन किया कि वह धरती के शिल्पी देवताओ को अपना कार्य प्रारभ करने की आज्ञा दें और उन्हे आश्वासन दिया कि शेष अव्यवस्था को वह सहज ही सम्हाल लेगा।

विवस्वान् देव की आज्ञा लेकर वरुण ने पृथ्वी के दोनो गोलार्द्धों के आकाश को घने मेघो से पाट दिया और और तबतक उन्हे वही रोके रखा जबतक शिल्पी देवो ने धरती की मरम्मत का अपना काम पूरा न कर लिया। इतने दीर्घकाल तक मेघाच्छन्न-आकाश पृथ्वी के निवासियो के लिए एक अदृष्ट-पूर्व घटना थी, पर इसमें उनके लिए कोई अकल्पित-पूर्ण या आतकित करनेवाली बात नही थी। वरुण के इस कौशल से उन्हें दिन और रात के स्तम्भन का कोई पता नही लग पाया और वे अपने कृत्रिम दीप प्रकाश में स्वाभाविक दिन रात की भाति काम करते रहे।

लघु का काम गुरु से और अन्धकार का काम प्रकाश से यदि होने लगे तो प्रकृति की व्यवस्था में लघु और अन्धकार का स्थान ही कहा रह जाये ?

को
रोष का ...
उसका भी मह... रहस्य है।

अच्छे विचार हमारे सर्वोत्तम साथी हैं।

युवक से

देवराज 'दिनेश'

दुनिया नव-निर्माण करे, तू मुर्दे गड़े उखाड़ रहा है।
नहीं समझता पागल ! अपनी जीती बाजी हार रहा है ॥

१

तू भविष्य के सुघड़, सुनहले स्वप्न देखता ही जायेगा
वर्तमान को क्या अपने अनुकूल न कभी बना पायेगा
जब दुनिया मंजिल दर मंजिल, आगे ही बढ़ती जाती है—
ज्ञात नहीं, तेरे बढ़ने का समय अरे, फिर कब आयेगा !
व्यर्थ प्रतीक्षा में क्यों अपना सुन्दर समय गुजार रहा है।
नहीं समझता पागल ! अपनी जीती बाजी हार रहा है ॥

२

प्रेयसि की मादक चितवन में, डूब चुकी हैं तेरी चाहें,
बल खाती, इठलाती अलकें बांध चुकी हैं तेरी बाहें,
दुनिया भी सबकुछ करती है किन्तु नहीं कर्तव्य भुलाती—
तेरी तरह नहीं देती है, राष्ट्र, प्रेम, जीवन को धोखा !
अपने तो बह घाव रहे, कर औरों का उपचार रहा है।
नहीं समझता पागल ! अपनी जीती बाजी हार रहा है ॥

३

कबतक मुझे विवशता अपनी की गाथा समझायेगा तू
कबतक गीत निराशा के अपने स्वर से लहरायेगा तू
तू जवान, तेरी आँखों के आँसू मुझे नहीं भाते हैं—
उन्नत भाल झुका कर अपना प्रिय, कबतक सहलायेगा तू
तू उसका ही अनुयायी, जो कर तेरा संहार रहा है ।
नहीं समझता पागल ! अपनी जीती बाजी हार रहा है ॥

४

क्या तेरी मानवता ने, तुझको क्रन्दन करना सिखलाया ?
क्या तेरी शिक्षा ने तुझको कायरता का पाठ पढ़ाया ?
इस शिक्षा, मानवता से तो अच्छा है असभ्य कहलाना—
जो असभ्यता सिखलाती है, अपने गौरव पर मर जाना ॥
व्यर्थ जवानी ! जिसे जवानी कह कर तू ललकार रहा है।
नहीं समझता पागल ! अपनी जीती बाजी हार रहा है ॥

५

करना तो कुछ नहीं, लगाने केवल ऊँचे स्वर से नारे
हाथ घुमाने ऐसे, जैसे अभी तोड़ लायेगा तारे
तू केवल भाषण के बल पर जीने की इच्छा रखता है—
सच बतला ! क्या तेरे अन्तर में भी दहक रहे अंगारे।
सखे ! जमाना कौतूहल से तेरी ओर निहार रहा है।
दुनिया नव निर्माण करे तू मुर्दे गड़े उखाड़ रहा है ॥

हमारे बुनकर और सरकार

सुरेश रामभाई

हमारा देश सदा से खेतिहर देश रहा है, जहां लगभग तीन-चौथाई आबादी खेती के काम के सहारे जीती है। खाने के बाद दूसरी बुनियादी जरूरत की चीज है कपड़ा। इसलिए खेती के काम के बाद हमारे देश में दूसरा नम्बर बुनकरों का है, जो हाथ के करघे (हैंडलूम) पर सूत बुनकर कपड़ा तैयार करते हैं। अंग्रेजों के आने के पहले यह सूत अपने देश की कपास का ही, हाथ से कता रहता था। लेकिन लगभग २०० बरस के अपने राज में अंग्रेजों ने हाथ-कताई को खतम-सा कर दिया और हमारे ज्यादातर बुनकर मिल का कता सूत बुनने लगे। मिल के सूत से कपड़ा तैयार कर के बरसों से हमारे बुनकर भाई अपनी गुजर करते रहे थे। हालांकि विदेश की और देश की मिलों का बुना हुआ कपड़ा बाजार में कसरत से आता था, पर बुनकरों ने किसी तरह अपना काम जारी रखा और करघे भी चलते गये। लेकिन इधर पिछले दो बरस से हमारे बुनकर भाइयों पर ऐसी आपत्ति आई है—जिसे अगर क्या जनता और क्या सरकार, दोनों ने दूर नहीं किया—तो वह उनके पेशे को ही खतम कर देगी। इस लेख में हम बुनकरों की मुसीबतों और उनके इलाज पर कुछ रोशनी डालने की कोशिश करेंगे।

हमारे देश में करीब ३० लाख करघे हैं, यानी लगभग डेढ़ करोड़ प्राणियों को इससे आजीविका मिलती है। अगर हम उन लोगों को भी शामिल करें, जो हैंडलूम या सूत लेन-देन का व्यापार करते हैं या बढ़ई आदि दूसरे पेशेवालों या जिनका सहारा बुनकर का धंधा ही है तो यह कहा जा सकता है कि हैंडलूम के धंधे से लगभग तीन करोड़ आदमियों का सीधे या ना-सीधे वास्ता है। इन तीस लाख करघों में आठ लाख के लगभग अकेले मद्रास प्रांत में हैं और तीन लाख उत्तर प्रदेश में।

हमारे बुनकर भाई अपने करघे पर रेशमी, सूती, बढ़िया, मोटा, सभी तरह का कपड़ा तैयार किया करते हैं। इस काम में सबसे चोटी का काम है बनारसी सिल्क साड़ी का जो अपनी खूबसूरती, मजबूती और कमाल में सारी दुनिया में मशहूर है। हैंडलूम का तैयार किया हुआ रेशमी सूती माल कुछ तो अपने देश में खर्च होता था और कुछ बाहर जाता था। विदेश में जहां यह ज्यादा जाता था वह देश हैं—बर्मा, इंडोनेशिया, लंका, अफ्रीका, और यूरोप व अमरीका के कुछ हिस्से। जिसे आजकल पाकिस्तान कहा जाता है, यानी पूर्वी बंगाल, पश्चिमी पंजाब और सिंध में भी हैंडलूम का माल बहुत खपता था। पर आज इस माल की खपत देश के अन्दर भी कम हो रही है और विदेश में भी वह कम जा रहा है। १९४९ में जहां ५ करोड़ गज हैंडलूम कपड़ा विदेश गया, १९५१ में ३ करोड़ गज गया और अब एक करोड़ तक के लाले पड़ रहे हैं। इस कारण से करोड़ों रुपये का तैयार माल बुनकरों के पास पड़ा है और बिक्री न होने के कारण उनके करघे बन्द हो गये हैं, जो चल रहे हैं वह भी बन्द होने वाले हैं और हालत दिन पर दिन खराब होती जा रही है।

विदेश में हैंडलूम का माल नहीं जाने के कई कारण हैं, जिनमें खास यह हैं—

(१) देश के अन्दर माल ढोने और रेलवे की दिक्कत।

(२) बाहर भेजने पर तरह-तरह की पाबन्दियां।

(३) अमरीका, जापान और इंग्लैंड के सस्ते माल का बाजारों में पहुंचना।

(४) बर्मा, इंडोनेशिया और लंका में देश हित के विचार से ऊंची ड्यूटी लग जाना।

(५) पाकिस्तान की हैंडलूम लेने पर मुकम्मल पाबन्दी। वह लगभग ७२ करोड़ गज मिल का कपड़ा मंगाता है पर हैंडलूम एक गज भी नहीं घुसने देता।

देश के अन्दर हैंडलूम का माल नहीं चलने के विशेष कारण यह हैं—

(१) विदेश और देश की मिलों पर तैयार होने वाला माल हैंडलूम के मुकाबले में सस्ता पड़ता है।

(२) जुये की चाल की तरह सेल टैक्स या बिक्री-कर का कदम-कदम पर लगाये जाना जिससे हैंडलूम का माल काफी मंहगा पड़ जाता है।

(३) हैंडलूम के कपड़े के भेजने में मोटर-रेल आदि साधनो की दिक्कत।

और हैंडलूम का माल महगा क्यो पडता है, इसके कुछ कारण यह हैं —

(१) पिछले डेढ दो बरस में मिल के कारण हैंडलूम के दाम तो ४०-५० प्रतिशत गिरे है, पर सूत का भाव वही चल रहा है।

(२) बुनाई मिलो को जिस भाव पर सूत पडता या मिलता है बुनकरो को उससे कई गुने ऊचे दाम पर मिलता है।

(३) कपास का भाव तो सरकार हर माह तय करती है पर सूत का साल मे चार बार। इसलिए कपास सस्ती होने पर भी सूत महगा रहता है।

(४) बुनकर को बिक्री टैक्स, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के जिला टैक्स, म्युनिसिपैलिटियो की तरह-तरह की चुगिया आदि चुकाना।

(५) बुनकर को दलाल व महाजन का तग करना, उसके माल का दाम नकद न दे कर और अकसर दाम के एवज में सूत, रग वगैरह ऊचे भाव पर देना।

(६) देहात के अन्दर बुनकरो का पुलिसवालो, जिला बोर्डवालो और दूसरे सरकारी हुक्कामो द्वारा तंग होना और रिश्वत देना।

ऊपर की बात हम केवल अखबारी रिपोर्ट या किन्ही झूठी-सच्ची खबरो के आधार पर नही कह रहे हैं, बल्कि उत्तरप्रदेश के आजमगढ, बनारस और फैजाबाद जिलो में घूमकर जो हालत देखी उसके आधार पर कह रहे हैं। हमें वहां सब जगह ऐसा महसूस हुआ कि हमारे देश का यह धन्धा बडे कष्ट में हैं। विशेष कर मऊ, बनारस शहर और टाडे की हालत का *अध्ययन* खास तौर से किया। ये हमारे सूबे की तीन सबमे बडी मडिया हैं। इन जगहो पर घूमने के बाद हमारा विचार पक्का हो गया कि अगर बुनकरो को इस तबाही से कोई एक चीज सचमुच बचा सकती है तो वह है *राजाजी की माग—कि धोती और* साडी की बुनाई हैंडलूम के लिए रिजर्व कर दी जाय और मिल पर वह तैयार ही न हो। राजाजी ने यह मांग पिछले जून के महीने मे की थी, पर अभी तक केन्द्रीय सरकार ने उस पर अमल नही किया है। अमल करना तो दूर, केन्द्रीय कामर्स व इडस्ट्री मिनिस्टर ने तो उसका तगडा विरोध किया है और 'अव्यवहारिक' बताया है। बम्बई और अहमदाबाद के मिल-मालिकों और देश के दूसरे व्यापारियो ने भी राजाजी की इस माग को 'हसाऊ और बेतुकी' कहा है।

अक्तूबर महीने की २५ तारीख को केन्द्रीय सरकार ने इस उद्योग को सभालने के लिए दो बातो का ऐलान किया —

(१) अखिल भारतीय हैंडलूम बोर्ड कायम होना जिसके सभापति हिंद सरकार के टैक्सटाईल कमिश्नर होगे।

(२) एक हैंडलूम फड खोला जाना जिसके लिए मिल के कपडे पर एक पैसा फी गज टैक्स लगाया जायेगा और क्योकि मिलो मे ४०० करोड गज कपड़ा बनता है, यह फड छ करोड रुपये के लगभग का होगा।

देश के जुदा-जुदा हिस्सो के बुनकरो या उनके संगठनो ने सरकार के इस कदम को असन्तोषजनक और अलाभदायी कहा है। जो हालत हमने देहातो मे देखी और जिस तरह सरकार की मशीनरी काम करती है उसकी बिना पर हम भी केन्द्रीय सरकार के इस काम को अनीतिकर और हानिकारक कहेंगे। विस्तार में न जाकर हम इसका कारण यह कहेंगे कि आम बुनकरो के आगे जो सबसे बडे सवाल है— (१) उनका माल देश मे खपे, और (२) सूत उन्हें सस्ता मिले, इन दोनो के ही हल करने मे इस सरकारी कदम से उन्हें मदद नहीं मिलती। कौन नही जानता कि टैक्सटाइल कमिश्नर मिल उद्योग का हमदर्द ही नही, बल्कि अक्सर वह मिल मालिको की कठपुतली ही की तरह नाचा करता है और हैंडलूम जिन्दा रहे या बरबाद हो उस को बला से? फिर मिल के कपड़े पर टैक्स लगा कर हैंडलूम को सहायता देना यानी देश के आर्थिक बनाव में मिल को बुनियादी (*जब देश की बुनाई मिलो मे सिर्फ साठ*

हजार लोग काम करते हैं और हमारे करघे हैं तीस लाख) जगह देना। इसके अलावा यह हेंडलूम-फंड कुछ सरकारी नौकरों की तनख्वाह, भत्ते, कुछ बुनाई स्कूल खुलने की इमारतों और ऐसे ही फुटकर ऊपर के कामों में बह जायगा। जहां तक ठेठ देहात में रहनेवाले बुनकरों का सवाल है, उसके लिए यह फंड हुआ न हुआ बराबर है। उल्टा इसके कारण जो अनीति फैलेगी उसका असर उन तक भी पड़े बिना नहीं रहेगा।

इसलिए हमें ऐसा महसूस होता है कि हेंडलूम-बोर्ड और फंड बना कर सरकार ने सवाल को टाला ही नहीं, कुछ बुनकरों का मुंह बन्द कर दिया है और उनमें अनीति फैलाने का ही काम किया। यही कारण है कि राजाजी जैसे सरकारी अधिकारी को भी इस बोर्ड व केन्द्र से सन्तोष नहीं हुआ और मद्रास असेम्बली के जाड़े का इजलास शुरू होने वाले दिन—सोमवार, ३ नवम्बर को उनके इंडस्ट्री मिनिस्टर ने उनकी मांग को उठाता हुआ मद्रास सरकार की तरफ से एक प्रस्ताव पेश किया—

"हेंडलूम के धंधे में अकेले इस मद्रास प्रदेश में ही पैंतालीस लाख मर्द-औरत जीते हैं और यह हमारे यहाँ का एक महत्वपूर्ण व व्यापक ग्रामोद्योग है। इसलिए इस उद्योग के स्थायी तौर पर बाजार तैयार करने के लिए यह असेम्बली मद्रास सरकार के इस विचार का जोरदार समर्थन करती है कि किनारीदार धोती और रंगीन साड़ियों की बुनाई हेंडलूम धंधे के लिए रिजर्व कर दी जाय और ऐसी धोतियां और साड़ियां पावरलूम पर न बुनने दी जाय। इस सभा की यह भी राय है कि केन्द्रीय सरकार हेंडलूम के लिए जैसे-जैसे सूत की जरूरत पड़ती है उसका बन्दोबस्त करे और साथ-ही-साथ यह भी चाहती है कि ४० नम्बर या उससे नीचे नम्बर का जो सूत मिले वह देशी कपास का होना चाहिए ताकि विदेशी महंगी कपास का बोझ हेंडलूम पर न पड़े।"

मद्रास सरकार का यह प्रस्ताव किसी भी राष्ट्रीय सरकार का पहला प्रस्ताव है जो ग्रामोद्योग के सच्चे हित में सहायक हो। हम जानते हैं कि सवाल का असली और आखिरी हल है सूत का मिल की जगह हाथ का होना—पर वह कदम बाद का है और इसलिए उस पर हम इस वक्त जोर नहीं दे रहे हैं।

आखिर में हम इतना कहेंगे—जैसा आजमगढ़, बनारस और फैजाबाद के बुनकरों व दूसरे भाइयों से भी हमने कहा—कि बुनकर समस्या पूरे तौर पर तभी हल हो सकती है जब क्या बुनकर और क्या दूसरे भाई, निजी इस्तेमाल में मिल का कपड़ा छोड़ कर हेंडलूम का कपड़ा काम में लायें, या आगे बढ़े तो हेंडलूम को छोड़ कर हाथ के सूत से हाथ का बुना यानी खादी का कपड़ा काम में लाय। जब हम इस तरह बढ़ेंगे तो सरकार भी मजबूर होगी और उसे आज नहीं तो कल बुनकरों की आवाज पर ध्यान देना होगा। इसके साथ साथ, हम यह भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि आज हेंडलूम हमारे देश का केन्द्रीय ग्रामोद्योग है। अगर वह खत्म होता है तो हमारे देश की ग्रामीण अर्थ रचना का ताना-बाना चूर चूर हुए बिना नहीं रह सकता।

१६ नवम्बर, १९५२]

एक किसान रात के वक्त अपनी खेती की रखवाली के लिए जंगल की अपनी झोपड़ी में लेटा था। आधी रात को उसकी आँखें खुली तो उसे तमाखू पीने की इच्छा हुई। बगल के खेत में उसका दोस्त सो रहा था। किसान ने उसके निकट जाकर, "भाई, भाई!" पुकार कर जगाया। वह पुकार सुनकर जाग पड़ा और बाहर आकर पूछा, "क्या बात है?"

किसान ने कहा, "भाई, जरा अपनी दियासलाई देना। तमाखू पीने की बड़ी इच्छा है।"

"अरे, पगले! हाथ में तो लालटेन लिये आये हो। उसे भूलकर आधी रात के इस अवसर पर दियासलाई माँगते हुए मेरे पास कैसे आये? अपनी ही लालटेन से तुम अपना तमाखू जला ले सकते थे! इस समय मेरे पास आने की क्या जरूरत थी?"—सोते से जगे किसान ने कहा।

"ओह! तुमने भी खूब याद दिलाया! मैं भूल ही गया था कि मेरे हाथ में जलती लालटेन है। हां, हाथ में लालटेन के रहते हुए मैं तुम्हारे पास आया ही क्यों?"—पहले किसान ने विस्मय से कहा।

डा० श्रीधर व्यंकटेश केतकर

प्रभाकर माचवे

महाराष्ट्र केवल शिवाजी और रामदास, तिलक, गोखले, महर्षि कर्वे और विनोबाभावे जैसे राष्ट्र सेवकों और समाज-सेवकों की ही जन्मभूमि नहीं रहा है। साहित्य और कला के क्षेत्र में भी उसमें बहुत से रत्न निर्माण हुए हैं। कला के क्षेत्र में संगीत और चित्रकला, शिल्प और नृत्य के क्षेत्र में अभी भी कई नाम भारत के घर-घर में पहुंचे हुए मिलेंगे। जैसे हीराबाई बडोदकर, विष्णु दिगम्बर पलुस्कर, नारायण राव व्यास, विनायकराव पटवर्धन आदि संगीतकार, एन एस. बेंद्रे या आचरेकर जैसे चित्रकार, करमरकर जैसे शिल्पकार और रोहिणी भाटे जैसी नृत्यकार को अपने-अपने क्षेत्र में कौन नहीं जानता? परन्तु साहित्य के क्षेत्र में ज्ञानेश्वर से आज तक कई ऐसे मौलिक कवि, नाटककार, उपन्यासकार, कहानीकार, निबन्धकार और समीक्षक आदि हुए हैं जिनकी रचनाओं के अनुवाद करके हिन्दी साहित्य समृद्ध होगा। आवश्यकता केवल इस दिशा में योजनाबद्ध कार्य करने की है।

आधुनिक साहित्यकारों में जिन्हें सच्चे अर्थ में प्रकांड पंडित कहा जा सकता है, वे थे डाक्टर श्रीधर व्यंकटेश केतकर।* उनके साथ मराठी साहित्य में एक 'कोशयुग' का आरम्भ हुआ। जीवन के बारह वर्ष लगाकर तेईस खंडों में (प्रत्येक खंड बड़े आकार के प्राय: ५०० पृष्ठों का है) महाराष्ट्र ज्ञानकोष का संपादन-लेखन-प्रकाशन-वितरण अकेले केतकरजी ने किया। इस महाग्रंथ में केवल दो उनके प्रमुख सहकारी थे: एक थे य० रा० दाते (जिन्होंने मराठी शब्दकोष का बड़ा कार्य आगे किया) और दूसरे श्री चिं. ग० कर्वे। इस ग्रंथ में करीब चार लाख रुपये खर्च लगा, जो कि महाराष्ट्र के मध्यवित्त वर्ग ने ही दिया, क्योंकि इस काम को केतकर ने लिमिटेड कम्पनी की भांति किया था, किसी सरकारी या रियासती सहायता के राजाश्रय पर नहीं। केतकर के इस विशाल कार्य से पहले 'चिपलूणकर आणि मंडली' ने महाभारत के समग्र अनुवाद का प्रकाशन-कार्य हाथ में लिया था, जिसमें आठ वर्ष लगे और पौन लाख रुपया खर्च हुआ। परन्तु भारत भाषांतर को सरकारी मदद भी बहुत मिली। केतकर का सारा काम स्वावलम्बन पर आश्रित था। और केतकर का यह ज्ञानकोष कोई अनुवाद-मात्र नहीं था। 'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका' का यह मराठी तरजुमा नहीं था। इसमें भारतीय और महाराष्ट्रीय दृष्टि उनकी सर्वथा मौलिक सूझ थी।

महामहोपाध्याय दत्तो वामन पोतदार ने 'लोक शिक्षण', के डा० केतकर विशेषांक में उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए लिखा था—"केतकर केवल संयोजक या संग्राहक ही नहीं थे। वे विचार-प्रवर्तक भी थे। राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, ऐतिहासिक सब विषयों की मीमांसा समाजशास्त्री को करनी पड़ती है। इससे केतकर की दृष्टि में एक प्रकार की भव्य और विशाल व्यापकता आई थी। केतकर से पहले रानडे, तिलक और राजवाडे जैसे प्रचंड प्रज्ञ पुरुष महाराष्ट्र में हो गये। रानडे का बहुविषयज्ञान, दूरदृष्टि और धारणा, तिलक की असाधारण बुद्धिमत्ता, देशभक्ति और साहस तथा राजवाडे की सन्यासी वृत्ति, प्रतिभा और शोधपरायणता

---

*डा० केतकर का सम्पूर्ण प्रकाशित साहित्य—(अंग्रेजी में) हिस्टरी आफ कास्ट इन इंडिया (दो भाग); एन एसे आन इंडियन इकानामिक्स, हिंदू ला (ए हिस्टारिकल स्टडी), सावरेंटी एंड इंडिपेंडेंस आफ इंडिया, (मराठी में) संकीर्ण लेख, उत्तर अमेरिकेतील वसंतकाल (काव्य), महाराष्ट्रीय वाङ्मयसूची (मूल्य १५ रुपये), महाराष्ट्रीय ज्ञानकोष भाग १ से २३ (अब अप्राप्य, पहले मूल्य १४०), प्राचीन महाराष्ट्र ४ भाग, महायुद्धोत्तर जग (ज्ञानकोश का परिशिष्ट भाग २४।२५), ज्ञानकोश मंडनाचा इतिहास, महाराष्ट्रीयांचे काव्य परीक्षण, निःशास्त्राचें राजकरण, भारतीय समाजशास्त्र, और निम्न सात उपन्यास, गोंडवनातील प्रियंवदा, परागंदा, आशावादी, गावसासू, ब्राह्मणकन्या, विचक्षणा और भटक्या।

के कारण उनके नाम महाराष्ट्र के इतिहास में अजरामर हो गये हैं। केतकर इसी परम्परा के महापुरुष थे। केतकर और कर्तृत्व पर्यायवाची शब्द थे।"

डा. केतकर के जीवन की प्रमुख घटनाओं का एक रेखाचित्र यहां प्रस्तुत करना अप्रासंगिक न होगा। यह जीवन-वृत्त प्रो. पारसनीस के लेख पर आधारित है। डा. केतकर ने अपने जीवन का परिचय एक वाक्य में दिया था—'मेरा पेशा ज्ञानसंशोधन और ज्ञानसंवर्धन है।' डा. केतकर के जीवन में किसी राजनैतिक नेता के जीवन की भांति बहुत से आंदोलन और रोमांचकारी घटनाएं नहीं थीं। डा. श्रीधर व्यंकटेश केतकर का जन्म मध्य प्रदेश के रायपुर शहर में २ फरवरी १८८४ को हुआ। उनके दादा कोंकण में अजनवेली में थे और पोथियां हाथ से लिखने का काम करते थे। परन्तु पिता विदर्भ में आकर जम गये थे। रायपुर में वे पोस्टमास्टर थे। पिता की मृत्यु बहुत बचपन में हो गयी और श्रीधर अपने चाचा नारायणराव के पास अमरावती में रहने लगा। १९०० में, यानी उम्र के सोलहवें वर्ष में उन्होंने प्रवेशपरीक्षा (मैट्रिक) पास की। मैट्रिक में पढ़ते समय उनकी असामान्य बुद्धिमत्ता के कारण उनके शिक्षक श्री पसे ने उन्हें 'एन्साइक्लोपीडिया' उपनाम दिया था। बम्बई के विल्सन कालेज में १९०० से १९०६ तक वे पढ़ते रहे और वहां कोई उपाधि प्राप्त न करके वे अमरीका गये। स्वर्गीय डाक्टर पा. दा. गुणे और प्रो. पा. वा. काणे उनके साथ तब कालेज में पढ़ते थे।

१९०६ में केतकर अमरीका गये और कार्नेल विश्वविद्यालय में समाज विज्ञान का अध्ययन किया। अपने विषय के अतिरिक्त अन्य विषयों के अध्ययन करने की भी सुविधा थी। इसी अवसर पर उन्होंने भूस्तर-शास्त्र, जीव-शास्त्र इतिहास संशोधन शास्त्र, पुराणवस्तु शास्त्र, ग्रंथ-संदर्भ शास्त्र इत्यादि विभिन्न विज्ञानों का अध्ययन किया। बाद में हारवर्ड विश्वविद्यालय में अध्ययन किया और १९११ में कार्नेल की पी-एच. डी. की श्रेष्ठ उपाधि प्राप्त की। इस समय उन्हें बड़ौदा के श्रीमंत सयाजीराव गायकवाड़ से शिष्यवृत्ति मिलती रही। पी-एच. डी. का उनका विषय था—'हिंदुस्तान में जाति संस्था का इतिहास'। इस ग्रंथ का प्रथम भाग अमरीका में और दूसरा इंग्लैंड में छपा। १९११ में वे स्वदेश लौट आये। पांच बरस तक अमरीका में रहना उनके जीवन-विकास में एक महत्वपूर्ण घटना थी। इंग्लैंड में भी वे एक साल रहे। तब 'अॅथीनियम' पत्र में वे पुस्तकों की समालोचना करने का काम करते थे। वहीं स्टॅटिस्टिकल असोसिएशन, रायल एशियाटिक सोसायटी आदि संस्थाओं में वे उपस्थित रहते थे। वहां अनेक विद्वानों से उनका परिचय हुआ।

भारत लौटने पर वे एक वर्ष तक कलकत्ता विश्वविद्यालय में एम. ए. की कक्षाओं को अर्थ शास्त्र, शासन-शास्त्र और सार्वराष्ट्रीय कानून पढ़ाने का कार्य करते रहे। परन्तु विश्वविद्यालयों में तबतक विदेशी प्राध्यापकों का महत्व अधिक था। उससे उनके स्वाभिमान को ठेस पहुंची और उन्होंने वह कार्य छोड़ दिया। १९१४ की मद्रास कांग्रेस में वे गये। वहां डा. अय्यन्त लक्ष्मीपति आदि आंध्र नेताओं से उनका परिचय हुआ। वहीं से वे लंका, कोचीन आदि देशों में घूम कर मद्रास की साइंस कांग्रेस में भाग लेने आये। वहां उनका परिचय श्री के. वी. लक्ष्मणराव से हुआ। उन्होंने तेलगू ज्ञानकोष का कार्य पहले ही शुरू किया था। इसी समय 'राष्ट्र धर्म-प्रचारक-संघ' नाम से एक नया कार्य केतकर ने शुरू किया। तब डा. पट्टाभिसीतारमय्या उनके कार्य में सहकारी थे। १९१५ में बम्बई कांग्रेस में वे उपस्थित रहे और १९१६ की जनवरी में वे लोकमान्य तिलक से मिले। उन्होंने उनकी ज्ञानकोष की कल्पना की पूरी मदद की। पहले नागपुर में और बाद में पूना में अपने ज्ञानकोष का कार्यालय स्थापित किया। १९१८ से १२ वर्ष तक वे ज्ञानकोष के सब खंड लिखते रहे। बीच-बीच में 'विद्या-सेवक' नामक पत्रिका भी चलाते रहे जो अधिक दिन नहीं चल सकी। 'पुणे-समाचार' नाम का एक दैनिक भी वे संपादित करते रहे, पर वह भी न चल सका। १९२९ में पूना के महाराष्ट्र शारदोपासक मंडल के और १९३१ में हैदराबाद के महाराष्ट्र साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष हुए और ज्ञानकोष बेचने का कार्य भी उन्हें खुद करना पड़ा।

मधुमेह (डाइबिटीज) ने बडे-बडे विद्वानों की और महापुरुषों की बलि ली है। इसी रोग से १० अप्रैल १९३७ को रात के १० बजे केतकर का देहांत हो गया।

उनके इस विशाल कार्य में छाया की भांति उनकी जिस संगिनी ने साथ दिया वे थी मिस एडिथ पी कोहेन जो विवाह के पश्चात श्रीमती शीलवतीबाई हुई। इग्लैंड में रहते हुए केतकर का परिचय मिस कोहेन से हुआ था। 'दि नो वांडोज क्लब' नाम की संस्था के केतकर वहां मंत्री थे। उसीमें जर्मन जानने वाली इस भद्र महिला से उनका प्रेम हुआ। शीलवतीबाई ने 'तुलनात्मक धर्मशास्त्र' पर विशेष अध्ययन किया था और लन्दन के 'स्कूल आफ ओरिएंटल स्टडीज' से मराठी का डिप्लोमा भी लिया था। १९१९ में उनका विवाह केतकर से हुआ। डा. केतकर ने 'व्रात्यस्तोम' (बाप्तिस्मा) नामक वैदिक विधि से मिस कोहेन को हिंदू बनाया और वैदिक विवाह किया। इस विवाह से डा केतकर के कोई संतान नही हुई। परन्तु वीरा और दामोदर नाम के दो अनाथ बच्चो को उन्होंने दत्तक लिया और उनकी संभाल की।

इस प्रकार से डाक्टर केतकर का व्यक्तिगत जीवन बडा ही सरल और सहज था। पारिवारिक जीवन भी एक मंद, प्रवहमान नदी की भांति ऋजु-प्रसन्न था। उनके जीवन का मूल उद्देश्य था ज्ञान-पिपासा और ज्ञान-संग्रह की अदम्य लालसा। उनके सबसे संस्मरणीय कार्य 'ज्ञान कोष' का प्रथम भाग 'हिंदुस्तान और संसार' है। आगे दूसरे और तीसरे खंडों में 'वेद विद्या' और 'बुद्ध-पूर्व जग' में डाक्टर केतकर ने बहुत अमूल्य सामग्री एकत्र की है। डाक्टर केतकर के 'वैदिक संशोधन' पर डाक्टर प ल वैद्य ने लिखा है—"जब डाक्टर केतकर ने 'वेद विद्या' खंड लिखा तब प्रो लुई रेनू की 'बिब्लिओग्राफी वेदिक' नामक फ्रेंच ग्रंथसूची प्रकाशित नही हुई थी। फिर भी इस खंड के दूसरे से नौवें अध्याय तक 'वेद-प्रवेश' नाम से ऐसा चित्रण-कार्य केतकर ने किया। 'वेद प्रवेश' में १६५ पृष्ठ है। इनमें वैदिक ऋचाओ का सारांश और साथ ही वैदिक समाज-स्थिति का निरीक्षण है। उदाहरणार्थ, संस्कार सूक्तों में डा. केतकर बताते है कि 'और्ध्वदेहिक संस्कारो में वेदकाल में शवों को गाडने और जलाने दोनो तरह की विधियां थी। गाडनेकी पद्धति इन्डो-जर्मन लोगो में सबसे अबतक प्रचलित है। 'वेद प्रवेश' मे एक प्रकरण 'हजामत बनाने' पर भी है। 'गृह्यसूत्रों के समालोचन' में प्राचीन भारतीय संस्कारों के साथ-साथ ग्रीक, रोमन लोगो के संस्कारों की तुलना है। 'वेद विद्या' का दूसरा महत्व का विषय है 'वेदकालीन इतिहास।' इस पर केतकर ने २०० पृष्ठ लिखे हैं। इसमें यज्ञ संस्था की विस्तृत जानकारी दी है। यज्ञो में महिलीकरण का इतिहास केतकरने खोज निकाला है। 'वैदिक दैवतेतिहास' नाम का एक और बडा अध्याय है। इसमें प्रो मकडॉनेल का अंग्रेजी और प्रो. हिलेब्राण्ट के जर्मन ग्रंथों का परामर्श केतकर ने लिया है। 'वेद विद्या' के १४वें अध्याय में डा केतकर ने अतीद्रिय स्थिति की कल्पना पर प्रकाश डाला है। ज्ञान-कोष के तीसरे खड 'बुद्ध-पूर्व जग' के तीन चौथाई भाग में केतकर ने वैदिक साहित्य में मानववंश के इतिहास पर पुनरवलोकन किया है। इसमें प्रमुख वैदिक शब्दो की सूची दी है। 'वेदकालीन शब्द-सृष्टि' पर ३०० से अधिक पृष्ठ डा. केतकर ने लिखे है। बाद में 'ब्राह्मण्य का इतिहास' विस्तार से दिया है। ऋग्वेद के संवादसूक्तों पर और अन्य आख्यानसूक्तो के आधार पर केतकर ने तत्कालीन लोकस्थिति निर्देशक अनुमान बडे साहस से निकाले है। उनमें यास्क के समय जो भारवाही वेदपाठक थे, उन पर जैसा व्यग यास्क ने यह कह कर किया था—'स्थाणुरयं भारवाह: किलाभूदधीत्य वेद न विजानाति योऽर्थम्'—उसी तरह से डा केतकर को आधुनिक विद्वानो का भारवाही अर्थ मान्य नही है। उन्होने मानव वंश शास्त्र की दृष्टि से वेद-विद्या को फिर से आलोडित किया।"

डा केतकर के समाजविज्ञान विषयक कार्य पर डा प्रो. इरावती कर्वे ने एक विस्तृत लेख लिखा है। उसमें डा केतकर ने हिंदू समाज में जो गुण और दोष है उनका सारांश दिया है। केतकर के अनुसार "हिंदू समाज में पर-मत सहिष्णुता और परधर्म के देवताओ का आत्मीकरण, ये दो विशेष गुण है। यह उदारवृत्ति अन्य धर्मों में नही मिलती। हिंदुओ का सबसे बडा दोष 'हठीकरण की अल्पता' है। हिंदू समाज में परस्पर से विभक्त तीन हजार से अधिक जातियां और उप-जातियां है। इसके कारण

हिंदू समाज के टुकडे हो गये हो सो बात नही, परन्तु महान बलिष्ठ राष्ट्र निर्माण करने का विचार ही यहा नही पनप पाया। (ज्ञानकोष हिंदुस्थान आणि जग पृ ३७८)

फिर भी डाक्टर केतकर के सब समाज-शास्त्र विषयक विचार प्रगतिशील नही थे। उनमें प्रतिक्रियावादी जाति उच्चता (रेस-सुपीरियारिटी), रक्त की विशुद्धता आदि भावनाओ का मिश्रण मिलता है। एक ओर उन्होंने वैज्ञानिक मानववंश शास्त्रीय दृष्टि से हिंदू-समाज संघटना का पूरा दोषाविष्करण किया, निर्मम आलोचना की दूसरी ओर ब्राह्मण्य के महत्व का भी समर्थन किया। इसी कारण से राजनैतिक विचारो में उन्होंने तिलक का तो आदरपूर्वक उल्लेख किया परन्तु जवाहरलाल या केसरकर के विषय में उन्होंने पूर्वग्रहदूषित बातें कही।

डा केतकर रूक्ष शास्त्र जड पडित ही नही थे। उन्होंने उपन्यास भी लिखे जिनमे उनकी मृत्यु के पश्चात प्रकाशित भटक्या (भटकनेवाला, या यायावर) उपन्यास मे उनकी मानवीय सहानुभूति का बहुत सुन्दर चित्र मिलता है। उनके उपन्यासो पर वामन मल्हार जोशी ने समीक्षा करते हुए लिखा—उनके उपन्यासो की प्रधान विशेषता यह है कि (१) उनके पहले के उपन्यास बहुत सकीर्ण, पूना के सदाशिव पेठ मुहल्ले के वातावरण को लेकर ही लिखे हुए थे, उनका क्षेत्र उन्होंने विस्तृत बनाया। (२) उनके उपन्यासो में, मानव स्वभाव और बर्ताव पर आसपास की परिस्थितियो का और समाज-रचना का सूक्ष्म परन्तु प्रबल प्रभाव पडता है यह तत्व विदित हुआ है, यानी स्त्री-पुरुष पात्रो के हृदय के भीतर भावनाओ का जो उत्थान-पतन घटित होता है, उस पर प्रकाश डाला है। (३) उनके उपन्यास केवल मनोविनोद के लिए नहीं है। परन्तु वे विचार प्रवर्तक और सद्भावनापोषक भी है।

डा केतकर के 'भारतीय-समाजशास्त्र' पुस्तक की एक प्रति रूसी सवाद-सस्था 'तास' के पहले भारतीय प्रतिनिधि स्त्यादिशेव मुझसे माग कर रूस ले गये थे। उनके उस ग्रथ का और साथ ही ज्ञानकोष के बहुत से खडो का अनुवाद हिंदी में उपलब्ध कराना चाहिए। भारत की अन्य भाषाओ में केवल तेलगु और बगला में ऐसा कार्य हुआ है। उस्मानिया यूनिवर्सिटी से उर्दू में ज्ञानकोष का अधूरा कार्य हुआ। बगला विश्वकोष का हिंदी अनुवाद अब बहुत पुराना और अप्राप्य हो चुका है। ऐसी दशा में हिंदी मे ज्ञानकोष या विश्वकोश के साहसपूर्ण कार्य को कौन उठाता है, यह देखना है। परन्तु यह समय है कि ऐसा कार्य एक सुनियोजित समिति द्वारा शीघ्रातिशीघ्र हिंदी में होना चाहिए। जो काम डाक्टर केतकर* जैसे महानुभाव, अकेले, निरन्तर आर्थिक कष्टो से जूझते हुए मराठी में साध्य कर सके, वह क्या राष्ट्रभाषा की इतनी प्रकाशन सस्थाएँ और इतने धुरन्धर विद्वान मिल कर नही कर सकेंगे ?

(पृष्ठ १३ का शेष)

एक कुरु साम्राज्य का निर्माण किया जाय जिसका सार्वभौम अप्रतिहत प्रभुत्व हो। श्रीकृष्ण कहते है, 'हे धृतराष्ट्र आज शाति या युद्ध का और जगत् के भाग्य का निर्णय आपके और मेरे अधीन है। अपने पुत्रो को शात करके आप अपना कर्तव्य पालन करे, मैं पाडवो को शात करूगा।

परन्तु मत्स्य और पाचालो के शस्त्रो से या शस्त्रो के भय से पाया गया युधिष्ठिर का साम्राज्य भीष्म और द्रुप के लिए कुरु-साम्राज्य से सर्वथा भिन्न चीज था। उन्हें ऐसा ज्ञान पडा होगा कि इसका अर्थ है कौरवो की पराजय और उनका मान-भग और भरत-राजकुमार के अधीन पाचालो का आधिपत्य। इसका सम्बन्ध उनकी देशभक्ति से, उनके क्षात्र अभिमान की भावना से और उनकी रगो में रक्त है तबतक प्रतिरोध करके अपना कर्तव्यपालन करने की भावना से था। अपने कार्य को न्याय्य ठहराने में असमर्थ होने के कारण उन्हें दुःख अवश्य था, परन्तु इससे उनका स्पष्ट कर्तव्य बदला नहीं जा सकता था। मेरी समझ में यही महाभारत की स्पष्ट राजनीतिक कहानी है।

भारत माता से] अनु०—श्री केशवदेव आचार्य

राजनैतिक बुजुर्गों से

भगवानदास केला

सन् १९१५ में भारतीय शासन और राजनैतिक-आर्थिक समस्याओं की बात करते हुए अब सैंतीस वर्ष बाद अपनी जीवन-सध्या की बेला में मुझे कुछ प्रकाश मिला है। अब हकूमत की बागडोर सभालने वालो मे—श्री राजेंद्रप्रसाद से, श्री नेहरू से, श्री आजाद से, श्री राजगोपालाचारी से, श्री पन्त से और अन्य विविध राजनैतिक बुजुर्गों से कुछ साफ-साफ निवेदन करना जरूरी है।

मान्यवर ! आपने देश को विदेशी सरकार के जाल से आजाद करने में जिस त्याग, साहस और कष्ट-सहन का परिचय दिया उसके लिए आपको चिर-काल तक आदर-मान और प्रतिष्ठा मिलेगी। परन्तु पीछे जाकर आपने जाने या अनजाने कई भूल या गल्तिया की, यदि समय रहते उनका सुधार न किया गया तो उनके लिए इतिहास आपको क्षमा भी नही करेगा।

आपने शासन के उस शाही, केन्द्रित और खर्चीले ढाचे को अपनाया जो अग्रेजो ने यहा जनता का शोषण करने और वैभव तथा विलासिता का जीवन बिताने के लिए तैयार किया था,और जिसकी आपने समय-समय पर काफी जोशीली और कटु आलोचना की थी।

भारत के नये सविधान के निर्माण की बहुत-कुछ जिम्मेदारी आप पर है। आपने ऊचे पदाधिकारियो के लिए इतने ऊचे वेतन और भत्ते निर्धारित किये कि उन गद्दियों पर बैठनेवाले आदमी गरीब जनता के सेवक न बन कर मालिक ही बन गये। जितने हजार रुपये मासिक उन्हे देने की व्यवस्था की गई, उतने सौ, अर्थात् दसवा हिस्सा भी यहा के साधारण नागरिक को सुलभ नही है—उस नागरिक को जो भारतीय गणतत्र का बराबर का भागीदार कहा जाता है और माना जाता है।

आप इगलैड अमरीका आदि की छाप के तथाकथित 'लोकतत्र' और 'पार्लिमेंटरी पद्धति' के मोह-जाल में फसे रहे, जिसमें होने वाली घातक दलबन्दी, अनीतिपूर्ण निर्वाचन, और आदि से ले कर अन्त तक के विविध भ्रष्टाचारो से आप अपरिचित नही हैं।

क्या आप नही जानते कि केन्द्रित शासन-पद्धति मे स्वदेशी राज्य भले ही हो, स्वराज्य असम्भव है ? स्वदेशी राष्ट्रपति, स्वदेशी प्रधानमन्त्री, स्वदेशी राज्यपाल और मत्री और स्वदेशियो की बनी ससद या विधानसभाओ के सदस्य—इन थोडे से व्यक्तियो से, चाहे इनकी सख्या हजारों तक हो—स्वराज्य नही होता। स्वराज्य का अर्थ है, भारत के छत्तीस करोड आदमियो का राज्य।

आप बालिग मताधिकार और प्रतिनिधि-शासन की बात कह कर हमें भुलावे में नही डाल सकते। कहा भारत की भूखी-नगी जनता, और कहा हजारो रुपये मासिक वेतन और भत्ता पानेवाले, शाही बगलो में रहनेवाले, बिजली के पखो और खस की टट्टियो का आनन्द लेनेवाले ये 'प्रतिनिधि' !

आपने भारत के नवनिर्माण के लिए विचित्र ढग अपनाया है ! पूजीवाद और केन्द्रीकरण अधिकाधिक बढाया जा रहा है। ग्रामोद्योगों को सरक्षण देकर उनके लिए कोई ऐसा क्षेत्र सुरक्षित नही किया जा रहा है, जिसमें उन्हे यत्रोद्योगो से घातक टक्कर न लेनी पड़े।

आप अरबो रुपये का अन्न विदेशों से मगाने और करोडों रुपये 'अधिक अन्न उपजाओ'—आदोलन में खर्च करने को तैयार रहते है, परन्तु यह नही सोचते कि जिन बेकारो के पास खरीदने की शक्ति का अभाव है, वे देश मे अन्न होते हुए भी भूखे मर सकते है और मरते है। इसलिए जरूरी है कि जिन ग्रामोद्योगो मे लाखों करोडो आदमियो को रोजगार मिले, उन्हे यात्रिक न बनने दिया जाय, उनका ह्रास रोका जाय, और उन्हे यथेष्ट प्रोत्साहन दिया जाय।

अफसोस ! आपके जमाने मे, और आपकी मेहरबानी से अमरीका चुपचाप इस देश पर हावी होता जा रहा है। आप यहा अमरीकी पूजीवाद और अमरीकी विशेषज्ञो को खला निमन्त्रण देते जा रहे है। भारत की अगली

पीढ़ी के लिए यह कैसी विनाशकारी विरासत है !

रूसगोरके विशेषज्ञ, जिन्हें अपने यहां की शहरी अर्थ-व्यवस्था का अनुभव है, वे हमारी ग्रामीण-व्यवस्था का क्या उद्धार करेंगे। वे मशीनों के आदी हैं और हम जन-शक्ति के धनी हैं। हमारा उनका मेल नहीं बैठता। वे हमारी प्रगति में रोड़े ही अटकाने वाले हैं। अपने शाही वेतन, भत्तों और विशेषाधिकारों या सुविधाओं के कारण वे हमारे गरीब देश के लिए सफेद हाथी हैं, यह बात रही अलग।

हमें अपनी योजनाएं अपने बल-बूते पर अमल में लानी चाहिए। हमें दूसरों की आर्थिक दासता का शिकार नहीं बनना चाहिए। अमरीका की नकल और अन्ध भक्ति करके आप हमें अमरीका की आर्थिक गुलामी में फंसा रहे हैं।

हमें भारत के उज्ज्वल भविष्य में आस्था है। इस देश ने अंगरेजों के साम्राज्यवाद से मुक्ति पाई है तो यह अमरीका की इस प्रभुता को भी मिटा कर रहेगा। इसके लिए एक महान् क्रान्ति होगी, वह क्रांति आ रही है, देखनेवालों को वह आती दिखाई दे रही है। अब भी समय है, आप समय रहते चेत जाय तो अच्छा है।

क्या आप मानसिक दृष्टि से इतने बूढ़े हो गए हैं कि विदेशी पूंजीवाद, आर्थिक साम्राज्यवाद, पार्लिमेंटरी पद्धति और वर्तमान ढंग के लोकतन्त्र के दोषों को जानते हुए भी आप इन्हें बदलने और विकेन्द्रित शासन जारी करने लिए कुछ जोरदार कदम नहीं उठा सकते। अगर ऐसा है तो नये नेता आयगे, नया दृष्टिकोण अपनाएंगे और सच्चा स्वराज्य, सर्वोदय राज स्थापित करेंगे। आप उन्हें आशीर्वाद दीजिए, उनके लिए शुभ कामना प्रकट कीजिए।

इन थोड़ी सी बातों की ओर, मैं अपनी नई पुस्तक में आपका ध्यान दिला रहा हूं। आपको स्मरण दिलाने के लिए राष्ट्रपिता के कुछ चुने हुए आदेश भी आपको भेंट है। हमारे राष्ट्रपति, हमारे राज्यपाल, हमारे मंत्री, और अन्य 'लोकसेवक' उनकी आशा और भावना के कुछ तो नजदीक आने की कोशिश करें।[1]

१. लेखक की नई पुस्तक 'सर्वोदय राज, क्यों और कैसे ?' से।

सर्वोदयी या अहिंसक खेती

रजन

जिन दिनों जमीन-तलाशी के चक्कर में एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त की धूल छान रहा था उन्हीं दिनों मेरे एक मित्र का पत्र मेरे पास आया जिसमें 'सर्वोदयी-खेती' के स्पष्टीकरण की बात पूछी थी। उस समय खेती के व्यवहार-पक्ष पर अपना मत देना, समुद्र के किनारे खड़े होकर तल की गहराई नापने के समान था। फिर भी अहिंसक खेती के विषय में मैं जितना सोच सकता था सोचा था पर आज जब स्वयं कभी हल पर हाथ रख कर खेत का जानता हूं और कभी-कभी शुद्ध व्यवस्था की दृष्टि से केवल दूसरे मजदूरों से काम लेता हूं तो विचारों में अधिक व्यवहार स्पष्टता और सफाई आती जाती है। और अब तो यह कहना अनुचित नहीं होगा कि तटस्थ रूप में एक बात पर विचार करना एक चीज है और उसका अंग होकर विचार करना सर्वदा भिन्न चीज है। फिर भी विचार तो मुझे भी करना ही है और मेरे मित्रों एवं साथियों को भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि देश की आर्थिक समृद्धि एवं निर्माण में खेती का सर्वोत्तम स्थान है। अपने इस नव निर्माण की कल्पना बिना सुन्दर और अहिंसक खेती के पूरी नहीं उतर सकती। इसीलिए पंचवर्षीय-योजना एवं अन्य सरकारी और गैर सरकारी कामों में खेती का प्रथम स्थान दिया गया है। बड़ी-बड़ी बांध और विद्युत्-योजनाएं इस कृषि कार्य की ही पूरक हैं। पर आज यह स्थान केवल कागजी योजनाओं तक ही सीमित है। सच्चे अर्थ में देश में अहिंसक

खेती की बुनियाद आज भी नहीं पड सकी है। इस नवयुगी खेती की सफलता का रहस्य दो बातो में है —योजना-बद्ध भूमि की अहिंसक पुनर्व्यवस्था, (२) खेती का आधुनिक एवं वैज्ञानिक स्वरूप। इन दोनो बातो का प्रधान प्रेरणा-केन्द्र है भूमि के साथ किसान की आत्मीयता, ममत्व, कानूनी शब्दों में स्वामित्व। बिना इस स्वामित्व के खेती में न तो प्रेरणा का संचार हो सकता है और न उसे अहिंसक खेती माना ही जा सकता है। इसीलिए किसान और खेत के नये सबन्ध के विषय में पूज्य विनोबाजी ने जो आन्दोलन 'भूमिदान' के नाम से चलाया है वह वास्तव में अहिंसक खेती की एक भूमिका मात्र है। आज यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि भूमि जोता की ही हो। 'जो जोते सो पाये', इसके भीतर मध्यस्थ के लाभ के लिए बिल्कुल गुजाइश नहीं है। प्रत्येक प्रकार के कृषि विकास की यह पहिली शर्त है कि जमीन पर किसान का स्वामित्व हो पर व्याख्याए तो घुमाई जाती हैं—और तब जमीन के स्वामित्व की बात आज भी दूसरी शक्ल ले कर हमारे सामने मौजूद है। इस प्रथम शर्त के साथ खेती का प्रकार और रूप क्या हो? सामूहिक, सहयोगी, व्यक्तिगत, विस्तृत या गहन? एक भेद और उठ सकता है—यत्रयुक्त कृषि और यत्र शून्य कृषि। इस विषय पर तो एक स्वतन्त्र लेख लिखा जा सकता है। पर इस लेख का मूल विषय है खेती में हिंसा और अहिंसा। अत. इसी पर विचार करना लेखक का उद्देश्य है। वर्तमान समाज व्यवस्था मे जहां तक शोषण-रहित खेती का प्रश्न है वह दो ही अवस्थाओं में सम्भव हैं। एक बात और स्पष्ट कर दूं कि अहिंसक खेती से मतलब यहा शुद्ध शोषण-शून्य खेती मे है। कीडे-मकोडो के मरने-जीने से नही। अहिंसक खेती का प्रथम रूप है। (१) अपने हाथ से व्यक्तिगत खेती करना (२) ऐसी सामूहिक खेती जिसके सभी सदस्य सक्रिय सदस्य हो और जहा किराये के मजदूरो से खेती का कोई काम न लिया जाता हो। इन दोनों तरीकों में यत्र की बिलकुल उपेक्षा भी की जा सकती है। यानी सारे काम स्वय जमीन के स्वामी अपने हाथ से करे। पर यंत्रयुक्त खेती की भी एक ऐसी अवस्था है जिसमे जमीन का स्वामी स्वय अपने हाथ से ही यत्रो का चालन करे। खेती के प्रत्येक छोटे-बडे काम में वह मशीन का इस्तेमाल करे और मशीन के चलाने के ये काम वह और उसके सहयोगी किसान करे। मशीन के सहयोग से वे अतिरिक्त कार्य के लिए मजदूरी पर बुलाए जाने वाले मजदूरो की आवश्यकता को खतम कर सकते हैं परन्तु खेती मे व्यवहृत इस प्रकार की अहिंसा प्रथम श्रेणी की अहिंसा नही है। प्रथम श्रेणी की अहिंसक खेती तो व्यक्तिगत सीमित खेती में या विस्तृत सामूहिक खेती के अमल में लाई जा सकती है जिस का प्रत्येक श्रमिक स्वय भूमि का स्वामी हो।

खेती की साधना को लेकर जबसे इस जगल में आया हू; जबसे यहा सामूहिक खेती के दायित्व को अपने पर लिया है तबसे यह प्रश्न समय-समय पर दिमाग मे उठा है कि किराये या भाडे के श्रमिको के सहारे की गई खेती को शोषण-शून्य खेती तो नही कहा जा सकता है। कई बार मजदूरों से खेत का काम लेते हुए यह प्रश्न मन में जोर से उठा है कि आखिर इनके श्रम का मूल्य इन्हें दिये गये पैसो से तो अधिक है ही। दोनो मूल्यो का यह अतर ही तो बाबू, किसानो या फार्मों को लाभ लाता है। इस प्रकार की खेती में और कल-कारखाने के मुनाफे में गुणात्मक भेद बिलकुल नही है—मात्रा का भले हो। यहा की जमीन का स्वामी अन्य व्यक्तियो के अतिरिक्त श्रम का लाभ उठाता है और कारखाने में भी। और इस लाभ का कारण बिलकुल वही है जो मिल के लाभ का। दोनो स्थानो पर एक श्रमिक अपनी मजदूरी के पैसो से अधिक काम मालिक को करके देता है और यह अधिक काम ही लाभ की शक्ल धारण कर लेता है। अत. यह निर्विवाद है कि यदि कोई नवयुवक किसी आदर्श से प्रभावित होकर सच्चे अर्थ में शोषण-शून्य अहिंसक खेती करना चाहता है तो उसे इस प्रश्न के सब पहलुओ पर अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिए। उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्र में चालू बड़े-बड़े नामधारी कोआपरेटिव फार्म एक प्रकार से सैकडो श्रमिको के श्रम का लाभ कमाना चाहते हैं। वे फार्म न कर्म से कोआपरेटिव हैं, न धर्म से और न आदर्श से। वे खेती की मिलें हैं जिन्हें बड़े-बडे धनपति अपने गौरव की लडाई में सैकेन्ड मोर्चे (Second front) के रूप में खड़ा कर रहे हैं क्योंकि

ऐसे फार्मों में एक या दो मैनेजर सैकडो मजदूरो से वास्तविक भागीदारो की अनुपस्थिति में खेती का काम कराते है। अत इस प्रकार के फार्म या खेती न तो आगे चलकर समाजवादी समाज रचना में फिट बैठेंगे और न कोई अन्य प्रगतिशील सरकार इन्हें प्रोत्साहन दे सकती है। ऐसी खेती किसी प्रकार की सतुलित आर्थिक रचना के उपयुक्त न होगी—चाहे वह गाधीवादी समाज रचना हो, चाहे समाजवादी या साम्यवादी। इससे लोक-शोषण की चक्की बदस्तूर चालू रहेगी।

अपने देश के भावी निर्माण में खेती और खेतिहर का जो स्थान होने वाला है उसकी पूर्णता के लिए शोषण शून्य सात्विक खेती की कुछ सीमाए निश्चित होना चाहिए। यदि उन मर्यादाओ की रक्षा नही होगी तो यह कहना चाहिए कि देश में औद्योगिक पूजीवाद एक नया चोला धारण कर अवतरित हो रहा है। और यह भूमि-पूजीवाद निश्चय ही जमीदारी प्रथा से अधिक भयकर साबित होगा। इन मर्यादाओ की पहली शर्त यह है कि *खेत पर पैसे पर आये मजदूरो का नितान्त अभाव* हो। दूसरे शब्दो में यह कहा जा सकता है कि उतनी ही खेती करना जितनी कि खेत का स्वामी और उसका परिवार सभाल सके। शायद इसीलिए पूज्य विनोबाजी ने पौनार आश्रम में अधिकतम खेती की सीमा ५ एकड रखी थी। (आज उन्होंने ३० एकड के अधिकतम सिद्धात को स्वीकार कर लिया है।) पर यह तो कहना ही चाहिए कि यदि यत्रो का उपयोग नही किया जाता तो ३० एकड जमीन की खेती में मजदूर तो रखना ही पडेगा जो कृषि का अहिंसक रूप नही हो सकता। एक व्यक्ति ईमानदारी के साथ १० एकड से अधिक सिंचाई की और २०-२५ एकड से अधिक सूखी जमीन नही सभाल सकता। जापान में जहा कि लोगो के पास बहुत थोडी जमीन होती है—५-६ एकड से अधिक *नही—वहा उतनी ही जमीन में लोग ४-५ हजार रुपये कमाते* हैं। यह सत्य है कि साधारण अवस्था में यत्र की सहायता के बिना प्रत्येक व्यक्ति २० एकड से अधिक जमीन नही सभाल सकता है (खेती के प्रकार और प्रात पर यह बात निर्भर करती है।) अपनी खेती पर किसी बाहरी श्रमिक को खेती के काम के लिए न रखना—अहिंसक या सात्विक खेती की पहली शर्त है।

अहिंसक खेती की सीमा में आनेवाली वह सामूहिक खेती भी है जिसका प्रत्येक सदस्य सक्रिय किसान हो, जिसका प्रत्येक श्रमिक उस जमीन का भागीदार हो। अर्थात् जमीन के स्वामी या फार्म के हिस्सेदारो को खेत पर रहकर हाथ से काम करना अनिवार्य हो—अनुपस्थित भागीदार न रखे जाय। ऐसे फार्मों का क्षेत्रफल सदस्य सख्या के विचार से कम और अधिक रह सकता है। यहा सहयोगी खेती में जमीन का क्षेत्रफल महत्वपूर्ण चीज नही है—महत्वपूर्ण बात है बाहर के श्रमिको का सर्वथा अभाव। 'मजदूरी पर मजदूर नही रहेंगे' यही तो अहिंसक खेती की प्रथम शर्त है। और उसका निर्वाह सामूहिक खेती के लम्बे-चौडे फार्मों में भी हो सकता है पर अपने देश में इस प्रकार के फार्म नही के बराबर है। मशीन की मदद से खेती का रकबा बढाया जा सकता है। एक व्यक्ति तब अधिक जमीन सभाल सकता है। परन्तु व्यवहार में यहा भी प्रत्येक व्यक्ति का हिस्सा औसत ३० एकड से *अधिक न होना चाहिए। अमरीका में यत्र के सहारे से* पारिवारिक खेती का रकबा बहुत काफी होता है पर अपने देश के व्यक्तिगत किसान को आज वे साधन उपलब्ध नही हैं। अत निजी खेती की एक कानूनी सीमा अपने देश में तो तय होनी ही चाहिए। इस प्रकार की खेती की मनोवृत्ति पैदा करने के लिए शिक्षा की बडी उपयोगिता है। हम क्या कर रहे हैं? क्यो कर रहे है? यह ज्ञान आवश्यक है। कार्य के महत्व का बोध साधना में दृढता पैदा करता है। अत अहिंसक खेती के व्यवहार में सम्यक शिक्षा दूसरी शर्त है। दुर्भाग्य से इस देश में श्रम की इज्जत आज भी नही है। आज भी हाथ से काम न छूने वाले की समाज में अधिक इज्जत होती है। श्रम के प्रति यह दृष्टिकोण बिना शिक्षा के नहीं बदला जा सकता है। श्रम के प्रति मन का आदर भाव *खेती के शुष्क और कठोर कर्म में एक सरसता पैदा करता है* जिससे अहिंसक किसान कठिनाइयो के बीच भी प्रेरणा लिया करता है। आज मालिक खेतो पर काम करने वाले मजदूरो का 'सुपरविजन' देखरेख करता है—स्वय फावडा या गेंती लेकर उनके बीच में खडा नही होता। यह अवस्था बडी सोचनीय है। इससे सामाजिक विषमता का नाश नहीं

होगा। परिणाम यह होगा कि मजदूरों के अभाव में या मजदूरी के चढ़ाव में ऐसे फार्म ठप्प पड़ जायेंगे। खेत बजर होंगे और फार्मों वाले बाबू पुन शहरों की ओर भागने लगेंगे। उत्तरप्रदेश के लखीमपुर, बहराइच, नैनीताल आदि जिलों में, मध्यभारत के शिवपुरी, भिंड जिले में ऐसे बाबू किसानों द्वारा सचालित बहुत से फार्म मिलेंगे। कहने के लिए फार्मों की बड़ी जमीनों की रक्षा की दृष्टि से इनके पीछे-आगे कोआपरेटिव शब्द जुड़ा है पर है उन पर एकाधिकार किसी एक व्यक्ति या कारखानेदार का और सामूहिक खेती के पट्टों पर नाम दर्ज हैं पत्नी के, भाई के, भतीजे के, मामा के। व्यवहार में ये फार्म सबसे कम सहयोगी हैं क्योंकि १५-२० सदस्यों की सूची में से केवल एक या दो खेती पर रहते हैं शेष या तो बहुधन्धी हैं जिन्होंने खेती को एक अतिरिक्त पेशे के रूप में अपनाया है या कोई पूजीपति जिसने मिल के हिस्से के समान यहा की कुछ पूजी लगा रखी है जो वक्त जरूरत पर राष्ट्रीयकरण के बाद उन्हें और उनकी तिजोरी को कायम रखे। देश में अधिकाश फार्म इसी कोटि में आते हैं, सच्चे अर्थ में श्रमिकों या किसानों द्वारा सचालित फार्म अगुलियों पर गिने जाने योग्य हैं। आज खेती के पक्ष में जो हवा तेजी से चल रही है, विश्लेषण करने पर पता चलेगा कि ये वर्तमान पद्धतिया अधिकाश शोषण पर ही निर्भर करती हैं एव कोई भी लोकप्रिय प्रगतिशील सरकार ऐसे फार्मों को अधिक दिनों तक सहन नही कर सकती। कहीं-कहीं तो फर्जी या व्यर्थ के नामों पर पट्टे लेकर भविष्य में सरकार के सभावित अधिकार से अपनी खेती को सुरक्षित रखा गया है। पर कड़ाई के साथ यदि जाच की जाय तो उत्तर भारत, मध्य-भारत एव राजस्थान के अधिकाश फार्म पूर्णतया एकाधिकारी फार्म हैं। श्री कुमारप्पा द्वारा चालित सेन्दू फार्म भी आज आदर्शरूप धारण नही कर सका है। जिन लोगों से कुमारप्पाजी ने आशा की थी कि वे खेती के छोटे-बड़े सारे कामों को अपने हाथ से करेंगे—सो हुआ नहीं है। रोटी और मक्खन से निश्चिन्त होकर वहा के अधिकाश कर्मी खेती के कामों से दूर रहते हैं या जितना उसमें जुटना चाहिए नही जुटते। नतीजा यह हुआ है कि वहां भी अधिकाश काम मजदूरी देकर बाहर के मजदूरों से कराये जाते हैं—यह अलग बात है कि मजदूरों के प्रति उनकी शर्तें अधिक उदार हों। हा, यह ठीक है कि उन्होंने यत्र का प्रयोग न करने का इस फार्म में निश्चय किया है पर यंत्रवाद से दूर होते हुए भी इस फार्म पद्धति को पूर्णतया अहिंसक या गाधीवादी-पद्धति नही कहा जा सकता है। पर कुमारप्पाजी का यह प्रयोग है। हमें विश्वास है कि आगे चलकर वे इसे अपने आदर्श के अनुरूप बना सकेंगे। अहिंसक खेती के विचार से विनोबाजी का पौनार-प्रयोग पूर्ण सफल माना जा सकता है। यह रही बिना यत्र की सहायता के व्यक्तिगत खेती की बात। सामूहिक खेती का एक ही उदाहरण मेरी दृष्टि में है—श्री अण्णाजी (अध्यक्ष चर्खा सघ) द्वारा सचालित धूना का कृषि फार्म। इस फार्म पर काम करनेवाले अधिकाश भागीदार स्वय किसान हैं। पर इस फार्म में कुछ ऐसे भी हिस्से हैं जो वहा पर उपस्थित नही रहते। यहा काम करने वाले प्रत्येक श्रमिक को लाभाश या बोनस मिलता है।

खेती और समाज-व्यवस्था के एक नये युग में हम प्रवेश कर रहे हैं। ऐसी अवस्था में यह बात हमारी समझ में बिल्कुल स्पष्ट हो जानी चाहिए कि केवल 'खेती' नाम से सबोधित प्रत्येक कार्य न तो अहिंसक ही होता है और न शोषण-मुक्त ही। लोकतत्र के चौखटे में भी हमारे देश की कृषि-व्यवस्था अभी ठीक नही उतरती। जमीदारी खत्म होने के बाद भी स्वस्थ-कृषि-व्यवस्था राष्ट्र में स्थापित नही हो सकी है। अलग-अलग प्रान्त भिन्न-भिन्न योजनाओं और सीमाओं को लेकर चल रहे हैं। कहीं-कहीं तो जमींदारी की कब्र पर एक नई जमींदारी खड़ी हो रही है। विचारक कृषक के सामने आज एक प्रश्न है कि अपने आदर्श और नव-निर्माण की रक्षा के हेतु उसे खेती का कौन-सा मार्ग अपनाना चाहिए ? ऐसा मार्ग जिस पर चलकर स्वयं उसे शोषक न बनना पड़े। जहा वह शारीरिक और मानसिक श्रम के समन्वय से एक नवयुगीन स्वस्थ कृषि-व्यवस्था की नींव डाल सके जिससे कि आने वाले शिक्षित कृषक उत्साह और प्रेरणा ग्रहण कर सकें।

o

उस राष्ट्र पर तरस खाओ

खलील जिब्रान

मेरे मित्रो और मेरे साथी बटोहियो !

उस राष्ट्र पर तरस खाओ, जो विश्वासों से तो भरा हुआ है, पर धर्मविहीन है।

उस राष्ट्र पर तरस खाओ, जो उस कपड़े को पहनता है, जिसे वह स्वयं नहीं बुनता। उस अन्न को खाता है, जिसे उत्पन्न नहीं करता और उस मदिरा को पीता है, जो उसके अपने कारखानों से नहीं आती है।

उस राष्ट्र पर तरस खाओ, जो एक अत्याचारी की एक वीर के रूप में झूठी प्रशंसा करता है और एक शान-शौकत वाले विजेता को उदार-दानी समझता है।

उस राष्ट्र पर तरस खाओ, जो अपनी स्वप्नावस्था में तो एक विचार को घृणा की दृष्टि से देखता है, पर अपनी जाग्रत अवस्था में उसको नमस्कार करता है।

उस राष्ट्र पर तरस खाओ, जो अपनी आवाज सिवा उस समय के नहीं उठाता, जब कि वह एक मुरदे के साथ चलता है, सिवाय खंडहरों के कभी शेखी नहीं मारता और उस समय के सिवाय कभी विद्रोह नहीं करता, जब तक कि उसकी गरदन तलवार के नीचे न हो।

उस राष्ट्र पर तरस खाओ, जिसके राज नेता मक्कार लोमड़ी हैं, जिसके दार्शनिक मदारी हैं और जिस की कलाएं पैबंदों और नकल की कलाएं हैं।

उस राष्ट्र पर तरस खाओ, जो अपने नये शासक का बाजों के साथ स्वागत करता है और उसे धिक्कारपूर्ण शब्दों के साथ विदा करता है जिससे वह दूसरे आने वाले शासक का फिर बाजों के साथ स्वागत कर सके।

उस राष्ट्र पर तरस खाओ, जिसके महात्मा वृद्धावस्था के कारण गूंगे बन गये हैं और जिसके शक्तिशाली पुरुष अभी झूलनों में हैं।

उस राष्ट्र पर तरस खाओ, जो खण्डों में बंटा हुआ है, और जिनमें से हर एक खण्ड अपने आप को पूर्ण राष्ट्र समझता है।

अनु०—मार्ईदयाल जैन

●

तुमने मानवता के सपनों को साकार किया

श्यामसुन्दर 'जगात'

तुमने पल भर में मानव के मन को मोह लिया

अपकार मिट गया धरा पर
ज्योति नई मुस्काई,
निखर उठी था स्नेह तुम्हारा
जीवन की अमराई,
तुम्हें देख कर बल उठता है बुझता हुआ दिया

फैल रही है सबके ऊपर
आज तुम्हारी बाँह,
सब की रक्षा करती रहती
करुणा की यह छाँह,
तुमने मानवता के सपनों को साकार किया

●

उन्हें हम भूल न जाएँ !

महाकवि खलील जिब्रान

[जन्म ६ जनवरी १८८३]

संसार के महाकवियो की नामावलि में महाकवि खलील जिब्रान का नाम एक ताजा वृद्धि है। यद्यपि ये विश्वविख्यात और अन्तर्राष्ट्रीय कवि थे, तो भी चूंकि इन्होने एशिया के लबनान देश को अपने जन्म से पवित्र किया था, इस नाते हम भारतवासी भी इनपर उचित रूप से गर्व कर सकते हैं। इनका जन्म ६ जनवरी १८८३ ई० को लबनान के बशरा नगर में एक सम्पन्न और नामी ईसाई घर में हुआ था।

बारह वर्ष की छोटी आयु में ही इन्हे अपने माता पिता के साथ बेल्जियम, फ्रास और सयुक्तराज्य अमरीका आदि देशो में भ्रमण करना पडा, जिससे इनका ज्ञान और अनुभव बहुत बढ गया। ये अरबी, अंगरेजी और फ्रासीसी भाषा के बडे विद्वान थे और पहली दो भाषाओ पर तो इनको इतना अधिकार प्राप्त था कि इनकी समस्त रचनायें इन्ही भाषाओ में है। ये प्रसिद्ध कवि, दार्शनिक और चित्रकार थे। अपनी रचनाओं और उग्र आलोचनाओ के कारण इनको अपने देश के पादरियों, जागीरदारों और अधिकारी वर्ग का कोपभाजन बनना पडा, जिन्होंने इनको न केवल जाति से ही बहिष्कृत किया, बल्कि देश से भी निकाल दिया। इससे ये १९१२ ई० से संयुक्तराज्य अमरीका के नगर न्यूयार्क में स्थायी रूप से रहने लगे।

खलील जिब्रान अद्भुत कल्पना शक्ति रखते थे और वे भारत के विश्व विख्यात महाकवि रवीन्द्र नाथ टैगोर की तुलना के थे। इन्होने बारह वर्ष की अल्प आयु में ही अरबी में लिखना आरम्भ कर दिया था। इन्होंने लगभग पच्चीस पुस्तके लिखी, जो इनके अपने ही बनाये हुए चित्रो से सुसज्जित है। इनका ससार की बीस बाईस प्रसिद्ध भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। इसके प्रशसको और पाठको की सख्या का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। भारतवर्ष में ही हिंदी, गुजराती, मराठी और उर्दू मे उनकी बहुत-सी पुस्तको का अनुवाद हो चुका है। यहा यह बात उल्लेखनीय है, कि उर्दू में खलील जिब्रान की रचनाओ के सबसे अधिक अनुवाद प्रकाशित हुए है और हिन्दी मे केवल पाच पुस्तको के। पर यह बात सतोष की है, कि हिंदी-जगत् में भी खलील जिब्रान दिन प्रति दिन प्रिय बनते जा रहे हैं।

खलील जिब्रान एक महान चित्रकार भी थे और उनके चित्रो की सयुक्त राज्य अमरीका, इग्लंड, और फ्रास में कई प्रदर्शिनियां हुई, जिन मे प्रदर्शित चित्रो की नामी चित्र आलोचको ने मुक्तकठ से प्रशसा की थी।

ये ईसाई धर्म के अनुयाई थे, पर उनके पादरियो और अंधविश्वासो के सदा कट्टर विरोधी रहे। ये महान देशभक्त थे और अपने देशवासियो मे इतने सताये जाने पर भी अपने देश के लिये सदा कुछ न कुछ लिखते रहे। अड़तालीस वर्ष की आयु में एक मोटर दुर्घटना में ये सख्त घायल हो गये और १० अप्रैल सन् १९३१ में न्यूयार्क में इनका देहान्त हो गया। दो दिन तक इनके शव के अंतिम दर्शनो के लिये सहस्रो आदमियो के झुड के झुड आते रहे। जुलाई के महीने में इनका शव इनकी अपनी जन्मभूमि को वापिस लाया गया और बडी शान और राजसी सम्मान के साथ इनके अपने नगर के एक गिरजा घर में दफन किया गया। भारत मे यह शायद पहला अवसर है, जब कि खलील जिब्रान को उनके जन्म दिन पर सार्वजनिक रूप मे श्रद्धाजलि भेंट की जा रही है।

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस

[जन्म २३ जनवरी १८९७ ई०]

क्या आप कल्पना कर सकते हैं, कि जनवरी सन् २०५३ या उसके भी दो तीन सौ वर्ष बाद गांधी-युग के किन किन नेताओं के नाम देश की जनता याद रख सकेगी ? यदि आप ऐसे पांच भी महान नेताओं के नाम ले सकेंगे, तो भारत के लाडले नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का नाम निस्सन्देह उनमें से एक होगा। इनकी देश-भक्ति, राष्ट्र सेवाय, त्याग और बलिदान की बातें आज इतनी सर्वविदित हैं, कि उनको गिनना या वर्णन करना व्यर्थ-सा होगा। फिर भी कुछ बातों का संक्षेप में उल्लेख कर देना अनुचित न होगा। पहली बात यह है कि जब वे इंग्लैंड से आई सी एस की परीक्षा में उत्तीर्ण तथा नियुक्त होकर भारत लौटे, तब आते ही उसे छोड कर और भावी समस्त सुखों को ठुकरा कर महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन में शामिल होकर देश-सेवा के संग्राम में कूद पड़े। दूसरी बात यह, कि वह लडकपन से ही चुपके से घर से निकल जाने के आदी थे। एक बार वे १७–१८ वर्ष की आयु में आध्यात्मिक गुरु की खोज में घर से निकल कर हिमालय पर्वत की घाटियों में पहुंच गये। और इसी प्रकार अंतिमबार द्वितीय महायुद्ध के बीच में विदेशों से भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये सहायता प्राप्त करने को भारत सरकार की आंखों में धूलि डाल कर निकल खडे हुए। तीसरी बात वे स्वभाव से विद्रोही थे। *कालेज के अध्ययन काल में उन्होंने एक अंग्रेज प्रोफेसर* की दुर्गति इसलिये बनाई, कि उसने कालेज की हडताल के समय विद्यार्थियों से दुर्व्यवहार किया था। अंग्रेज सरकार के विद्रोही तो वे असहयोग आन्दोलन के समय से अपने स्वर्गवास तक रहे। पर जब गांधीजी से भी उनका मतभेद हुआ, तो उनसे भी खम ठोक कर विद्रोह किया यद्यपि यह विद्रोह उन्हें महंगा पडा और वे तीन वर्ष के लिये कांग्रेस में कोई पद ग्रहण न कर सके। पर वे इतने बडे अच्छे व्यवस्थापक थे, कि शीघ्र ही देश में फारवर्ड ब्लाक स्थापित कर दिया और फिर देश से बाहर पूर्वी एशिया में आजाद हिन्द-सेना की व्यवस्था की। उनकी अंतिम उल्लेखनीय बात यह है, कि वे एक राजनीतिज्ञ और लड़ाके देश भक्त थे और राजनीति और युद्ध में वे *एक नीति पर जमे रहने के कायल न थे। इसीलिये जब* उन्होंने समझा कि देश की स्वतन्त्रता के लिये अहिंसा की नीति छोड कर हथियार उठाना आवश्यक है, तब उन्होंने स्वनिर्मित आजाद-हिन्द-सेना के द्वारा वह काम किया, कि द्वितीय महायुद्ध और भारत की आजादी की लडाई के इतिहासों में उनका और इस सेना का नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखा जायगा। जिस भारतीय सेना की राज-*भक्ति पर अंगरेजों को घमंड था, उसके ही हिन्दु, सिख* और मुसलमान सिपाहियों और अफसरों को बागी बना कर अंगरेजों से लडा देना सुभाषचन्द्र बोस का ही काम था। इस आजाद-हिन्द सेना के कारनामों और वीरता की कहानियां भारत के लोक साहित्य में अमर कहानियों का स्थान पायगी। अंगरेजों के भारत छोडने के अनेक कारणों में से एक कारण यह भी था, कि उन्हें *भारतीय सेना पर विश्वास नहीं रहा था।*

सुभाषचन्द्र बोस की देश-सेवायें देश में और देश के बाहर इतनी महान हैं कि उनका नाम भारत के इतिहास में अमर रहेगा। खेद इसी बात का है, जिस देश की स्वतन्त्रता के लिये वे सर्वस्व त्याग कर लडे, उसे देखने के लिये वे कुछ वर्ष भी जीवित न रह सके। पर इससे भी अधिक खेद की बात यह है, कि उनकी मृत्यु के बाद भी उनको लेकर भारत की राजनीति में दलबन्दी का अन्त नहीं हुआ है बल्कि दिन पर दिन बढ़ता ही जा रहा है। उनकी सेना के सैनिकों की समस्या भी नहीं सुलझ पाई है। क्या अब भी हम अपने कर्त्तव्य को पूरा करने की बात न सोचेंगे ?

पर कुछ भी हो, वे रहते तो स्वतन्त्र भारत के लिये वे महान शक्ति होते।

'जय हिन्द' के अमर अभिवादन को देने वाले अमर नेताजी सुभाषचन्द्र बोस को उनके जन्म दिन पर सहस्रों श्रद्धांजलियां।

—माईदयाल जैन

कसौटी पर

संस्मरण : ले०—पं० बनारसीदास चतुर्वेदी प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, पृष्ठ २६० मूल्य ३)

धार्मिक प्रवृत्ति के मनुष्यों के लिये जो मूल्य और महत्त्व तीर्थों का है वही इस पुस्तक का साहित्यिकों के लिये है। इस में २१ व्यक्तियों के संस्मरण हैं और उन में सर्वश्री द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर, दीनबन्धु ऐन्ड्रूज, महावीरप्रसाद द्विवेदी, प्रेमचन्द, गणेशशंकर विद्यार्थी जैसे प्रसिद्ध व्यक्ति हैं तो प्रायः अपरिचित से बुंदेलखंड के शहीद श्री खरे, एक पुस्तक छपवाने की साध मन में लिये अभाव में तिल तिल कर घुट मरने वाले कवि देवीदयाल गुप्त, प्रमाणिक श्रम से अर्जित अन्न पा सकने में असमर्थ आत्महत्या करने वाले कवि पीन तथा 'बम्ब' गाने की साध मन में लिये प्रसिद्ध क्रांतिकारी शहीद आजाद की दृष्टि-विहीन उपेक्षिता माँ भी है। प्रत्येक संस्मरण में मानो उस व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन उभर आया है। शैली इतनी सरस और प्राणवान है कि एक बार पुस्तक हाथ में लेने पर फिर छोड़ने को जी नहीं करता। प्रत्येक व्यक्ति के अन्तर को चतुर्वेदी ने जैसे खोल कर रख दिया है और इस खूबी से खोला है कि मन में आनन्द का उद्रेक ही नहीं होता मानवता की ज्योति भी जागती है। बार-बार प्रश्न चिह्न आँख के आगे अड़कर रह जाते हैं। पुस्तक हर घर में रहने और हर साक्षर के पढ़ने योग्य है। ऐसी पुस्तकें किसी भी साहित्य का गौरव हो सकती हैं। छपाई, सफाई, मूल्य सब ठीक हैं परन्तु यदि हर संस्मरण के साथ उसके लिखने की तिथि भी दे दी गई होती तो सुभीता रहता। लेख के बीच में जब-जब तिथि की चर्चा आती है गड़बड़ हो जाती है।

आकाश के तारे और धरती के फूल : ले० कन्हैयालाल मिश्र, प्रभाकर : प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ काशी, पृष्ठ १२०, मूल्य २) ।

बन्धुवर कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' की लेखनी मात्र चटपटा खाद्य ही नहीं देती जीवन को झझोड़ने वाले चित्र भी प्रस्तुत करती है। वस्तुतः अधिकतर वह यही करती है। ये ७० लघु कथायें, यद्यपि इनमें कुछ शिथिल भी पड़ गई हैं, कला और दर्शन का अद्भुत समन्वय उपस्थित करती हैं। ये कहानी हैं या स्केच यह विवाद शास्त्रियों के लिये हो सकता है पर पाठक के लिये तो वे उक्ति-वैचित्र्य, मार्मिकता, सूक्ष्मता और चरित्र-निर्माणकारी कला से ओत प्रोत हैं। सचमुच वे जीवन के चित्र हैं। यूं कला की दृष्टि से भी यह नया प्रयोग श्लाघनीय है। इसका भविष्य उज्ज्वल है। हम इस पुस्तक का अभिनन्दन करते हैं। काश कि प्रकाशक कीमत कम कर पाते।

शरत-पत्रावली : अनुवादक, डा० महादेव साहा : प्रकाशक—हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, पृष्ठ १६२ : मूल्य १॥) ।

प्रस्तुत पुस्तक शरत-साहित्य का २५वां पुष्प है। श्री नाथूराम 'प्रेमी' ने बंगला के सुप्रसिद्ध लेखक शरतचन्द्र चटर्जी के समस्त साहित्य को हिन्दी भाषा-भाषी जनता के लिये सुलभ बना कर उसे अपना चिर ऋणी बना लिया है। उन्होंने अनेक विपत्तियां उठा कर इतने सस्ते में यह साहित्य प्रस्तुत किया है कि कभी-कभी तो अचरज होता है। शरतबाबू भारत के किसी भाषाभाषी के लिये अपरिचित नहीं हैं। हिन्दी के तो जैसे वे अपने रहे हैं। कथाकार के रूप में अनेक लोग उन्हें भारत का सर्वश्रेष्ठ लेखक मानते हैं। 'हृदय ही मनुष्य है' उनका यह सन्देश भारत के कोने-कोने में गूंज रहा है। यहां बुद्धि और हृदय के समन्वय का प्रश्न उठा कर हम विवाद खड़ा करना नहीं चाहते, पर यह स्पष्ट है कि शरत ने मनुष्य के हृदय को जिस उदात्त रूप में चित्रित किया वह युग-युग तक उन्हें अमर रखेगा। उसी अमर कलाकार के पत्रों का यह संग्रह हमारे सामने है। पत्र संस्मरण का ही अंग है, बल्कि एक दृष्टि में वे और भी महत्त्वपूर्ण हैं। पत्र लिखते समय प्रकाशन की बात साधारणतया दिमाग में नहीं रहती, इसीलिए उनमें मनुष्य के वास्तविक रूप के दर्शन होते

है। इन पत्रों में भी शरत के उस रूप में दर्शन होते हैं जो उनके साहित्य में भी नहीं है। मानव शरत कितना ऊंचा था, कितना विशाल था उसका हृदय, कितनी सूक्ष्म थी उसकी दृष्टि ! यह सभी इन पत्रों में जाना जा सकता है। अपनी पुस्तकों के बारे में उनकी स्वयं क्या राय थी, उनके प्रकाशन के लिए वे कैसे जूझे, उन्हें अपने अमर पात्र कैसे और कहा से मिले,यह सब अब कल्पना का विषय नहीं है। ये पत्र अनेक व्यक्तियों को लिखे गये हैं। प्रसिद्ध लेखक, प्रकाशक और नये लेखक सभी को शरतबाबू ने समान रूप से लिखा है।

शरत को जीने की कभी अधिक चाह नहीं रही। जैसे कोई निराशा उनके अन्तर में घुनी रहती थी। आलोचकों ने उन्हें कम कष्ट नहीं दिये। बड़ों के प्रति क्यों वे सकोचशील थे ! रविबाबू से उनके मतभेद, फिर आदर, इन सबकी कहानी इन पत्रों में है। कांग्रेस के प्रति वे अन्त तक निष्ठावान रहे, यह जान कर कुछ को अचरज हो सकता है। नये लेखकों के लिए इन पत्रों में काफी सामग्री है। दूसरो के प्रति वे कितने सदय थे, यह बात हर पत्र से जानी जा सकती है।

'शरत-पत्रावली' में घटनाओं से रहित शरत का जीवन है, उनकी आत्मा का चित्र है। कितने सच्चे हैं उनके ये वाक्य 'दुख की आग में जल कर जिनकी अनुभूति शुद्ध और सत् नहीं हो पाई उन्हीं पर आजकल साहित्य सृजन का भार आ पड़ा है, इसीलिए साहित्य आजकल इस तरह *नीचे की ओर जा रहा है।*"

दिलीपकुमार राय को जो पत्र लिखे गये है, वे विशेष रूप से शरत को समझने की सामग्री देते है। प्रस्तुत पुस्तक सचमुच साहित्य का गौरव है। प्रत्येक साहित्य-सेवी को उसे पढ़ना चाहिए। —सुशील

गांधी और साम्यवाद : लेखक श्री किशोरलाल मशरूवाला, प्रकाशक—नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, पृष्ठ १३२, मूल्य सवा रुपया।

स्व. किशोरलालभाई ने गांधीजी की विचारधारा का तो सूक्ष्म अध्ययन किया ही था, साथ ही कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों का भी परिशीलन किया था। प्रस्तुत पुस्तक में उन्होंने इन दोनों महापुरुषों और उनके अनुयायियों की बुनियादी दृष्टियों की सही जानकारी देने का प्रयास किया है। गांधीजी के जीवन-सिद्धांत के विषय में अनेक भ्रांत धारणाओं को दूर करते हुए उन्होंने बताया है कि 'गांधीवाद एक निश्चित आदर्श की ओर बढ़ने का विशेष तरीका है।' उसमें और साम्यवाद में मौलिक अन्तर यह है कि गांधीजी नीति, धर्म, ईश्वर आदि को प्रधानता देते है,पर साम्यवादी इन्हें 'पाखंडी शास्त्र' मानते है। गांधीजी साध्य की भांति साधनों की शुद्धि पर भी जोर देते थे, जबकि साम्यवादी साधनों की शुद्धि को गौण मानते हैं। इस बुनियादी भेद का परिणाम यह हुआ है कि दोनों विचारधाराएं एक-दूसरी से अलग पड़ गई हैं। आज की विषम परिस्थिति की ओर लक्ष्य करके विद्वान् लेखक ने मानो भविष्यवाणी करते हुए लिखा है, "जो आज की व्यवस्था में धन या जाति आदि के रूप में विशेष अधिकारों की स्थिति का सुख भोग रहे है, वे यदि उसका त्याग नहीं कर देते, अपनी सम्पत्ति के ईमानदार ट्रस्टी नहीं बन जाते, ऊंच-नीच का भेद-भाव छोड़कर जनता में घुल-मिल नहीं जाते, देश की गरीबी के अनुसार अपनी शानशौकत कम नहीं कर लेते तो गांधीजी के समान् महान अहिंसामार्गी नेता के अभाव में साम्यवाद और उसके साथ चलने वाली हिंसा जरूर आवेगी।" ..और इस हिंसक सघर्ष से बचने का उन्होंने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में उपाय भी बता दिया है—"हम अपनी इच्छा से एक क्रम के अनुसार आज का जीवन बदलते जायें। दर्जा, जाति, छुआछूत आदि को मिटा देना चाहिए। बेकारी और भूख मिटा देनी चाहिए। प्रान्तीयता और सम्प्रदायवाद को क्षीण कर देना चाहिए। राष्ट्रीयता में खुदगरजी, लड़ने की हवस, *साम्राज्य बढ़ाने की लालसा आदि* का लेश भी नहीं होना चाहिए। रहन-सहन के ऊंचे-से-ऊंचे और नीचे-से-नीचे स्तरों का भेद बहुत बड़ी हद तक कम हो जाना चाहिए। सरकार के न्याय और शासनतन्त्र में जल्दी काफी नैतिक सुधार दीखना चाहिए और लोकतन्त्र के मौजूदा दिखावे की जगह सच्चा लोकतन्त्र स्थापित होना चाहिए। लोगों तथा सरकारी कर्मचारियों में आज के गैर जिम्मेदारी-भरे बरताव की जगह शुद्ध कर्तव्यनिष्ठा की

भावना आनी चाहिए। ये सब परिवर्तन भी एकदम गाधीजी के आदर्श तक नही पहुचा देगे, लेकिन वे वहा पहुचने की सीढिया तो है। यदि हम सीढियो द्वारा भी आगे बढने के लिए उत्सुक नही है तो साम्यवाद की बाढ नही रुकेगी।"

एक वैज्ञानिक की भाति दोनो विचारधाराओ का विश्लेषण करते हुए किशोरलालभाई ने बडे ही सुलझे हुए ढग से बताया है कि उनमे भेद क्या है और साम्यवाद किन दृष्टियो से हमारे देश की धरती के लिए अनुकूल नही है। लेकिन उन्होने चेतावनी देते हुए साफ-साफ कह दिया है कि यदि आज की विषमताओ को दूर न किया गया तो साम्यवाद के प्रवाह को रोका नही जा सकेगा।

किशोरलालभाई की दृष्टि अत्यन्त उदार थी। इस पुस्तक में कही भी उन्होने गाधीजी के सिद्धातो के विषय में कोई अनुचित दावा नही किया और न साम्यवाद को जानबूझ कर हेय ठहराने का प्रयत्न किया है। इस दृष्टि से यह पुस्तक सभी विचार धाराओ के पाठको के लिए लाभदायक है। पुस्तक के प्रारम्भ में ३० पृष्ठों की विनोबाजी की बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका है। उसमे उन्होने दो मूलतत्र दिये है ? १. काचन-मोह-मुक्ति और २. शरीर-परिश्रम। पहले का अर्थ है पैसे को आज जो प्रतिष्ठा मिली हुई है, उसे कम करना और दूसरे का अर्थ है शरीर-श्रम के प्रति हीनता की भावना को दूर करना। पुस्तक मननीय है।

—सव्यसाची

हमारे सहयोगी

किर्लोस्कर (दीवाली अंक) : संपादकः शं. वा किर्लोस्कर (अक्टूबर १९५२) पृ- २३६; मूल्य १)

इस सुचित्रित दीवाली विशेषाक में 'महाराष्ट्र का भविष्य' नामक विषय पर काका साहब गाडगिल, महर्षि कर्वे, ना. म. जोशी, भाई गोरे, वि स खाडेकर, प्र. के अत्रे, सावरकर इत्यादि प्रसिद्ध विचारक, पत्रकार, लेखक और सामाजिक कार्यकर्ताओ के मत सयुक्त महाराष्ट्र की आवश्यकता, कोयना नदी का बाध, शराब-बन्दी और अनिवार्य हिंदी-भाषा-बिल जैसे तीन-चार प्रश्नो पर इकट्ठे किये गये है। सबने शराब बन्दी छोड़कर अन्य तीनो बातो के बारे मे एक राय प्रकट की है। हिंदी की अनिवार्यता उन्होने नही मानी है। सावरकर एक जमाने मे इसी मासिक 'किर्लोस्कर' में हिंदी के विषय में इतने जोर से समर्थन पर लिख चुके है कि अब उनका मत-परिवर्तन आश्चर्यजनक लगता है। इस विशेष लेख के अलावा पु र दोणगावकर का रूस-यात्रा पर लेख 'फौलादी पर्दे के पीछे' और मेजर जनरल थोरात का परिचय भी विशेष रचनाएँ है। इनके अलावा प्रो फडके, चि वि जोशी, वि स खाडेकर, भागवत आदि की कहानिया और यशवत, कुसुमाग्रज, 'काव्यविहारी' आदि की कविताए है। कुल मिला कर अपने ३३ वर्ष की परपरा को कायम रखते हुए 'किर्लोस्कर' ने बडा शानदार विशेषाक निकाला है। ऐसे ही विशेषाक 'स्त्री' और 'मनोहर' ने भी प्रकाशित किये हैं।

—प्रभाकर माचवे

आलोचना (इतिहास-विशेषांक), सम्पादक—शिवदानसिंह चौहान, प्रकाशक, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली। पृष्ठ २४७, मूल्य इस विशेषांक का ५)

'आलोचना' हिन्दी की त्रैमासिक पत्रिका है और पिछले एक वर्ष से निकल रही है। इस थोडे से समय में ही उसने साहित्य-जगत में अच्छा स्थान बना लिया है। दूसरे वर्ष के प्रारम्भ में उसने यह विशेषाक निकाला है। इसके नाम को देखकर कुछ ऐसा भ्रम होता है कि इसका सम्बन्ध इतिहास से है; लेकिन सामग्री देखकर पता चलता है कि इसमें साहित्य का इतिहास है। इसकी सामग्री यद्यपि पूर्ण नही है, तथापि उसकी रचनाओ को पढकर उपन्यास, कहानी, नाटक, काव्य आदि के विकास की अच्छी जानकारी मिल जाती है। हिन्दी-साहित्य के प्रारम्भिक काल की धाराओ पर भी समुचित प्रकाश डाला गया है। अक सग्रहणीय है। छपाई शुद्ध और साफ है; पर मूल्य इसका बहुत अधिक है।

जनपद—(हिन्दी जनपदीय परिषद् का त्रैमासिक मुखपत्र), सम्पादकमण्डल—सर्वश्री बनारसीदास चतुर्वेदी, वासुदेवशरण अग्रवाल, उदयनारायण तिवारी,

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', हजारीप्रसाद द्विवेदी, बैजनाथसिंह 'विनोद' (कार्यनिर्वाहक सम्पादक) कुलपति-निवास, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस द्वारा *प्रकाशित, वार्षिक मूल्य ६), एक प्रति का ॥)।*

पिछले दिनों हाथरस में जनपद-कार्यकर्ताओं का सम्मेलन हुआ था। हमारे राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादजी भी उसमें सम्मिलित हुए थे। इस सम्मेलन में एक जनपदीय परिषद् की स्थापना की गई थी। उसीके तत्वावधान में अक्तूबर १९५२ से यह त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित हुई है। जैसाकि नाम से स्पष्ट है, इसमें विभिन्न जनपदों की साहित्यिक और सांस्कृतिक धाराओं एवं लोकजीवन पर प्रकाश डाला गया है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि हम अपने जनपदीय साहित्य की उपेक्षा करेंगे तो हमारा हिन्दी साहित्य समृद्ध नहीं हो सकेगा। जनपदों में, विशेषकर वहां के लोकजीवन में अमूल्य सामग्री छिपी पड़ी है और पारखी लोगों के अभाव में बहुत कुछ लुप्त होती जा रही है। सर्वश्री वासुदेवशरण अग्रवाल, बनारसीदास चतुर्वेदी, कृष्णानन्द गुप्त तथा अन्य व्यक्ति इस ओर हिन्दी के पाठकों का ध्यान कई वर्षों से आकर्षित कर रहे हैं लेकिन यह कार्य अभी तक विधिवत् रूप से प्रारम्भ नहीं हो सका है। जनपद का हम हार्दिक अभिनंदन करते हैं। उसकी सामग्री उसके ध्येय के अनुकूल है और जितने साहित्यिक महारथियों का लेखक और सम्पादक के रूप में उसे सहयोग मिला है, उसे देखते उसका भविष्य बड़ा उज्ज्वल जान पड़ता है। पत्र की हम उन्नति चाहते हैं और हमें विश्वास है कि आगे चलकर उसका रूप और निखरेगा।

—मध्यमार्गी

झाडू : सम्पादक—गोपालकृष्ण मल्लिक और नवरंगप्रसाद जायसवाल, मिलने का पता, विद्यापति भवन, खजांची रोड, पटना। वार्षिक मूल्य ५), एक *प्रति आठ आना।*

बिहार से समय-समय पर अनेक साहित्यिक पत्र निकलते रहे हैं, लेकिन सर्वोदय की विचारधारा को लेकर अबतक वहां से कोई भी महत्वपूर्ण मासिक पत्र प्रकाशित नहीं हुआ था। हमें हर्ष है कि 'झाड़' ने इस कमी को पूरा किया है। इसके दो विशेषांक हमारे सामने हैं। एक है १ सितम्बर १९५२ का—'भू-यज्ञ-जयन्ती अंक' और दूसरा अक्तूबर-नवम्बर १९५२ का 'मशरूवाला स्मृति-अंक।' दोनों अंक यद्यपि आकार में बड़े नहीं हैं तथापि *उनकी सामग्री बहुत ही महत्वपूर्ण और उपयोगी* है। भू-यज्ञ विशेषांक में श्री गुरुदयाल मल्लिक, दादा धर्माधिकारी, श्री धीरेन्द्र मजूमदार की रचनाएं विशेष उल्लेखयोग्य हैं। श्री किशोरलालभाई का लेख भी इस विषय पर अच्छा प्रकाश डालता है।

दूसरा विशेषांक स्वर्गीय किशोरलालभाई की पावन-स्मृति में निकाला गया है। इसकी लगभग सभी रचनाएं बहुत अच्छी हैं। यद्यपि इसकी पर्याप्त सामग्री अन्य पत्रों से लेकर दी गई है तथापि वह उच्च कोटि की है और इसलिए पाठकों को शिकायत का अवसर नहीं रह जाता। अंक की कई रचनाएं अत्यन्त मार्मिक और हृदयस्पर्शी हैं, उन्हें पढ़कर किशोरलालभाई की अन्तर्बाह्य झांकी पाठकों को मिल जाती है।

इन दोनों अंकों के लिए हम सम्पादक-द्वय को बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि भविष्य में भी वे इसी प्रकार की सुपाठ्य और उपयोगी सामग्री पाठकों को देते रहेंगे।

—मध्यमार्गी

●

हिन्दी राष्ट्रभाषा है। राष्ट्र-सेवा का अर्थ है राष्ट्रभाषा की सेवा। राष्ट्रभाषा की सेवा है राष्ट्र-भाषा के ग्रंथों का अध्ययन। क्या आप हिन्दी की पुस्तकें खरीद कर पढ़ते हैं?

●

'क्या व कैसे ?

राजघाट की समाधि का आह्वान

राजघाट की समाधि ३० जनवरी की एक दुखद यादगार है। आज से लगभग ५ वर्ष पूर्व इसी विधि-निर्मित तिथि को एक महापुरुष की भौतिक जीवन-यात्रा का आकस्मिक अंत हो गया था। यह समाधि एक लम्बे युग का प्रतीक भी है।

गांधीजी ने भारत के लिए क्या किया और मानवता को क्या दिया, यह बताने की आवश्यकता नहीं है। लगभग अर्द्धशताब्दी तक वह सेवा के विविध क्षेत्रों में जुटे रहे और अपने अद्भुत कार्यों द्वारा उन्होंने मृतप्राय भारत के शरीर में नवीन प्राण और नवीन स्फूर्ति का संचार किया। दुनिया की निगाह में देश को ऊंचा उठाया और उसे ऐसा गौरवशाली स्थान प्राप्त कराया कि सारा संसार उसकी ओर आशाभरी दृष्टि से देखने लगा। डेढ़ सौ वर्ष पुरानी दासता की शृंखला टूट गई और आज हमारा देश राजनैतिक स्वतन्त्रता का उपभोग कर रहा है। अपने भाग्य का निर्णय करना स्वयं उसके हाथ है।

जिस महापुरुष ने इस गिरे हुए देश को उठाकर इतना ऊंचा किया, उसे हम लोगों ने अपने आप खो दिया। आजादी मिलते ही लोगों ने समझा कि वे अंतिम लक्ष्य पर पहुंच गए, पर ऐसा सोचना उनकी भूल थी। राजघाट की समाधि आज भी पुकार-पुकार कर कह रही है कि १५ अगस्त को भारत ने जो स्वतन्त्रता पाई, वह हमारी लम्बी यात्रा का एक पड़ाव-मात्र था। असली यात्रा तो उसके बाद ही प्रारम्भ होती है। एक सरकार को हटाकर उसके स्थान पर दूसरी को बिठा देने से सच्ची आजादी नहीं मिल जाती। जबतक देश में एक भी व्यक्ति भूखा है, नंगा है, बेघरबार है, अशिक्षित है और पर्याप्त स्वास्थ्य-साधनों के अभाव में अकालमृत्यु को प्राप्त हो जाता है, तबतक कैसे माना जा सकता है कि हम आजाद हो गए हैं? जबतक उन्नति और विकास के लिए सबको समान साधन नहीं मिलते, जबतक लोगों की जाति, पद अथवा सम्पन्नता की बुनियाद पर प्रतिष्ठा है तबतक, भले ही शासन अपने हाथ में हो, गांधीजी के भारत को स्वतंत्र नहीं कहा जा सकता।

३० जनवरी प्रति वर्ष आती है और सन् '४८ के बाद से हम लोग उस दिन गांधीजी को याद किया करते हैं। हममें से बहुतेरे उनकी समाधि पर फूल भी चढ़ाने जाते हैं, लेकिन पैंतीस करोड़ देशवासियों में से कितने हैं, जो यह सोचते हैं कि गांधीजी का सच्चा स्मरण उनके नाम को यन्त्रवत् रटना या आंख मूंदकर उनके प्रति श्रद्धा प्रकट करना नहीं है, बल्कि उनके सिद्धान्तों को विवेकपूर्वक समझकर अपने जीवन में उतारना है, उनके बताये मार्ग पर चलना है?

दुर्भाग्य से आज की स्थिति बड़ी विषम है। अपनी सरकार के भरसक प्रयत्न करने के बावजूद देश बहुत आगे नहीं बढ़ सका है और देश की जड़ आज भी कमजोर बनी हुई है। चारों ओर भ्रष्टाचार फैला है और जीवन के झूठे मानदण्डों को प्रतिष्ठा मिल रही है। जिन रचनात्मक कार्यों का जाल गांधीजी ने देशभर में फैला दिया था, आज ढीले पड़ गए हैं और सरकार की बड़ी-बड़ी योजनाओं के होते हुए भी अन्न की दृष्टि से देश पर-मुखापेक्षी बना हुआ है और आगे भी कई वर्ष तक बने रहने की संभावना है।

राजघाट की समाधि उन सेवाभावी व्यक्तियों का आह्वान कर रही है, जो पद-प्रतिष्ठा अथवा वैयक्तिक स्वार्थ के वशीभूत न होकर राष्ट्र-हित को सर्वोपरि मानें और अदोप शक्ति तथा अदम्य उत्साह के साथ आज की बाढ़ की विपरीत दिशा में तैरें। ऐसे व्यक्तियों की संख्या चाहे थोड़ी ही हो; लेकिन वे ही देश को आगे बढ़ायंगे।

आगामी ३० जनवरी को क्या हम इस दृष्टि से सोचेंगे और कुछ नया संकल्प करेंगे?

विनोबाजी दीर्घजीवी हो

विनोबाजी की अस्वस्थता के समाचार से देश के कोने-कोने में शोक की लहर फैल गई है। भूदान-यज्ञ के सिलसिले में वह उत्तर प्रदेश की यात्रा समाप्त कर बिहार में घूम रहे थे कि अचानक चाडिल नामक स्थान पर अस्वस्थ हो गये और उनकी अवस्था चिंताजनक हो गई। बडे सतोष की बात है कि बिहार के मुख्य मत्री तथा अन्य राष्ट्रीय नेताओ के विशेष अनुरोध पर विनोबा-जी ने औषधि लेना स्वीकार कर लिया है और अब उनका स्वास्थ्य सुधर रहा है। चिकित्सको के मतानुसार अब वह खतरे से बाहर हो गए है और यदि यही प्रगति रही तो वह शीघ्र ही पूर्णतया नीरोग हो जायगे।

विनोबाजी देश की एक महान् विभूति है और उन्होने वर्तमान समाज में अहिंसक क्राति उत्पन्न करने के लिए जो कदम उठाया है, उसका निश्चय ही दूरगामी प्रभाव होगा। अबतक वह हजारो मील की पैदल यात्रा कर चुके है और लगभग साढे चार लाख एकड भूमि उन्हे प्राप्त हो चुकी है। यह कोई छोटी बात नही है, क्योकि बिना किसी दबाव के स्वेच्छा से भूमि की ममता को छोड देना आसान नही है।

देश के लिए विनोबाजी का जीवन अत्यन्त मूल्यवान है। आइये हम सब एक स्वर से प्रभु से कामना करे कि विनोबाजी दीर्घजीवी हो, जिससे उनका लोकहितकारी अनुष्ठान आगे बढे और जिस महान् ध्येय को लेकर वे गाव-गाव, घर-घर अलख जगाते फिर रहे है वह पूर्ण हो।

आध्र की आहुति

आध्र का पृथक् प्रात बनाने का आदोलन बहुत वर्षों से चल रहा है। कभी वह तेजी पकड लेता था तो कभी धीमा पड जाता था। पिछली बार स्वामी सीता-रामजी के उपवास से यह आन्दोलन तीव्र हो उठा था, लेकिन नेताओ के आश्वासन पर उन्होने उपवास छोड दिया था। तब से यह मामला बराबर आगे बढ रहा था। अभी हाल में इसी सिलसिले में ५८ दिन का उपवास करके आंध्र के राष्ट्रनेता श्री श्रीरामूलू ने अपने प्राणो की आहुति दे दी। उनके इस कदम से मतभेद होते हुए भी हमे उनके निधन से काफी दुख पहुचा है। उनका उद्देश्य ऊचा था और उनका बलिदान व्यर्थ नही गया। जो मामला इतने दिनो से हिलगा हुआ था, वह हल होता दिखाई दे रहा है। केन्द्रीय सरकार ने आध्र के निर्माण की घोषणा कर दी है। आशा है, निकट भविष्य में ही आध्र का अलग प्रात बन जायगा। यदि सरकार ने यह कदम पहले ही उठा लिया होता तो क्यो एक व्यक्ति के प्राण जाते और क्यो लाखो रुपयो का नुकसान होता।

स्व श्रीरामूलू के प्रति अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए हम एक विनम्र निवेदन कर देना चाहते हैं और वह यह कि उपवास के पवित्र अस्त्र का उपयोग यथासभव न किया जाना ही श्रेयस्कर है। यह ठीक है कि गाधीजी ने अपने जीवन-काल में इसका प्रयोग एकाधिक अवसर पर किया था, लेकिन इसका अर्थ यह नही कि किसी भी काम के लिए और कभी भी इसका इस्तेमाल किया जा सकता है। इस कदम को यथासभव हतोत्साहित ही किया जाना चाहिए।

आध्र का प्रान्त बन जायगा, पर हम आशा करेगे कि इससे प्रेरित होकर अन्य भाषा-भाषीलोग अपनी माग उपस्थित नही करेगे। देश आज बडी नाजुक स्थिति से गुजर रहा है और देश की सगठित शक्ति को विच्छिन्न करने के लिए उठाया गया छोटा-बडा कोई भी कदम राष्ट्र की जड को खोखला करेगा। भाषाओ के आधार पर प्रातो का नव निर्माण करने का सिद्धान्त जब स्वीकार कर लिया गया है तब उपयुक्त समय आने पर यह काम करने की जिम्मेदारी सरकार पर ही छोड देनी चाहिए।

काश्मीर का मामला

काश्मीर के मामले को सुलझाने के लिए जितने प्रयत्न हो सकते थे, किये जा चुके है, और करोडो रुपये फुक जाने पर भी वह समस्या अभी तक ज्यो-की-त्यो बनी हुई है। पाकिस्तान काश्मीर का बहुत-सा भाग दबाये बैठा है और भारत पर दबाव डाल रहा है कि वह अपनी फौजें वहा से हटा ले। लेकिन आजाद काश्मीर सेना के ३०,००० सशस्त्र सैनिकों को, जो पाकिस्तान द्वारा ट्रेनिंग पा कर तैयार हुए है, हटाने को तैयार नहीं

है। अमरीका और ब्रिटेन का हाल ही में सुरक्षा परिषद् द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव भी इस बात पर जोर देता है कि पाकिस्तान ३००० से ६००० तक और भारत १२,००० से १८,००० तक सैनिक रख सकता है; लेकिन आजाद सेना के बारे में वह भी मौन है। भारत की प्रतिनिधि श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित ने सुरक्षा परिषद् मे उक्त प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए भी आश्वासन दिया है कि भारत इस मामले को शान्तिपूर्वक सुलझाने में हर प्रकार की वैध सहायता देने को उद्यत है।

हमारी शुरू मे ही मान्यता रही है कि इस मामले को सुरक्षा परिषद् में ले जाकर भारत ने भारी भूल की। धन की अपार क्षति के साथ-साथ उसकी शक्ति का कितना अपव्यय हुआ है, इसकी कल्पना भी नही की जा सकती। और कौन कह सकता है कि अभी कितना धन और कितनी शक्ति और खर्च नही होगी।

जैसा कि सुरक्षा परिषद् की पिछली तथा हाल की कार्रवाई से विदित होता है, इस समस्या को लेकर विभिन्न देशो मे मतभेद है। रूस एक ओर है, अमरीका-ब्रिटेन दूसरी ओर, और चक्की के दो पाटों के बीच भारत पिस रहा है। आगे क्या होगा, इस सम्बन्ध मे कोई भविष्यवाणी करना सरल नही है, पर हमें ऐसा प्रतीत होता है कि यह मामला सुरक्षा परिषद् के बूते का नही है और यदि आपस में ही मिलजुल कर कोई मार्ग निकाला जा सके तो दोनों देशों के लिए वह अधिक हितकर होगा।

भूदान–यज्ञ बिल

उत्तर प्रदेश की विधान-सभा ने २४ दिसम्बर को भूदानयज्ञ बिल पास कर के एक अभिनंदनीय कार्य किया है। विनोबाजी भूदान यज्ञ द्वारा जो भूमि इकट्ठी कर रहे हैं, उसका पुनर्वितरण भी होता जा रहा है। विनोबाजी नही चाहते कि जिन्हें भूमि दी जाती है, वे उसकी रजिस्ट्री आदि के चक्कर में पडे और पैसा खर्च करें। अत. वह लोगों को उस भूमि के अधिकार-पत्र पर अपने हस्ताक्षर करके दे देते है। इन अधिकारों को कानूनी मान्यता देने के लिए सबसे पहला कदम हैदराबाद की सरकार ने उठाया था। उत्तर प्रदेश की सरकार भी अब पीछे नही रही।

हमें विश्वास है कि जिन-जिन प्रदेशों में भूमि के संग्रह और वितरण का यह कार्य हो रहा है, वहा की सरकारे इस प्रकार के कानून पास करके इस लोकहितकारी काम को आगे बढाने मे योग देंगी।

'जीवन साहित्य' का नया वर्ष

पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इस अंक से 'जीवन-साहित्य' चौदहवें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। इस अवसर पर हम अपने समस्त हितैषी लेखकों, पाठकों और ग्राहकों के प्रति आभार प्रकट करते है। हमारी निश्चित धारणा है कि लेखकों,पाठकों और ग्राहकों के सहयोग के बिना कोई भी अच्छा पत्र चल नही सकता। हां, उन पत्रो की बात अलग है, जो मुख्यत विज्ञापनों के सहारे चलते हैं और मुट्ठीभर ग्राहक होते हुए भी उन्हें आर्थिक दृष्टि से कोई घाटा नहीं होता, उल्टे आमदनी होती है। 'जीवन-साहित्य' को विज्ञापनों का सहारा नही है। वह उसके लिए आकाक्षी भी नही है। वह तो चाहता है कि उसका काम ग्राहकों की मदद से ही चलता रहे। पिछले वर्षों मे थोडा-बहुत घाटा वह बराबर देता है, फिर भी वह अपने अंगीकृत मार्ग से विचलित नही हुआ।

हमारी इच्छा है कि पत्र और अधिक उन्नत हो और उसके पृष्ठ भी बढा दिये जाय, लेकिन यह तो तभी संभव हो सकता है, जबकि हमारे पाठक और ग्राहक हमारी मदद करे। जैसा कि हमने पिछले अंक मे निवेदन किया था, यदि हमारे पाठक और ग्राहक एक-एक भी ग्राहक बना दे तो हमारा काम चल जायगा।

पाठकों की शिकायत थी कि 'जीवन-साहित्य' की सामग्री एकांगी हो जाती है और उसमे वैचित्र्य अधिक नही रहता। पाठकों ने देखा होगा कि पिछले कई अंकों से इस विषय में विशेष रूप से ध्यान रखा जा रहा है और अब पत्र काफी सजीव और वैचित्र्यपूर्ण हो गया है। इस अंक से आठ पृष्ठ हमने और बढा दिये है। फिर भी मूल्य उसका वही रखा गया है। एकाध नये स्तंभ भी खोले गये है और हमें आशा है कि जैसे-जैसे पृष्ठ बढते जायगे, उपयोगी स्तंभ खुलते जायगे।

हम अपने पाठकों और ग्राहकों से पुन. अनुरोध करेंगे कि वे इस पत्र को और अधिक समुन्नत बनाने में योग दे और कम-से-कम एक-एक ग्राहक तो तत्काल बना ही दें। —य०

'मण्डल' की ओर से

सहायक सदस्य योजना

'मण्डल' की सहायक-सदस्य-योजना ने अब शिक्षा-संस्थाओं का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है और यह हर्ष की बात है कि कई स्कूल तथा पुस्तकालय सदस्य बन गये हैं। जिन सदस्यों का रुपया हमें प्राप्त हो चुका है उनकी क्रमिक नामावली हम नीचे दे रहे हैं —

८२ लक्ष्मी रतन कॉटन मिल्स (कानपुर)
८३ सर शादीलाल शुगर एण्ड जनरल मिल (मनसूरपुर मुजफ्फरनगर)
८४ गवर्नमेंट सिन्धी हाई स्कूल (नई दिल्ली)
८५ डी ए वी हाईस्कूल (नई दिल्ली)
८६ सलवान हायर सेकण्डरी स्कूल ,,
८७ माडर्न स्कूल ,,
८८ गयाप्रसाद लाइब्रेरी एण्ड रीडिंग रूम (कानपुर)
८९ कर्माशियल हायर सेकण्डरी स्कूल (दिल्ली)
९० श्री लक्ष्मी आयरन एण्ड स्टील मैन्यूफैक्चरिंग कम्पनी (दिल्ली)
९१ श्री छोटेलाल जैन (कलकत्ता)
९२ श्री गुरु तेगबहादुर खालसा हायर सेकण्डरी स्कूल (दिल्ली)
९३ राम जी गल्र्स हायर सेकण्डरी स्कूल (नई दिल्ली)
९४ जैन हायर सेकण्डरी स्कूल (दरियागंज दिल्ली)
९५ लाल इमली ऊलन मिल (कानपुर)
९६ दिल्ली प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति (नई दिल्ली)

इनके अतिरिक्त जिन महानुभावों ने सदस्य बनना स्वीकार कर लिया है उनकी रकमें आ रही हैं। नये सदस्य भी बन रहे हैं। दिल्ली, कानपुर और कलकत्ता में प्रयत्न चल रहा है। शीघ्र ही बम्बई में भी इस काम का प्रारम्भ कर देने का विचार है।

दिल्ली के शिक्षा विभाग की भांति उत्तर प्रदेश की सरकार ने भी एक गश्तीपत्र निकाल कर अपने राज्य की समस्त शिक्षा-संस्थाओं का ध्यान इस 'अत्यन्त उपयोगी' योजना की ओर खींचा है और सिफारिश की है कि वे सदस्य अवश्य बनें।

हमारा सकल्प हजार-हजार रुपये के कम-से-कम पांच सौ सदस्य बनाने का है और इसे पूरा करने में हम प्रत्येक साहित्य-प्रेमी के सहयोग का आह्वान करते हैं।

नये प्रकाशनों की योजना

इन दिनों हम लोगों का ध्यान मुख्यत उक्त योजना को कार्यान्वित करने पर लग रहा है, लेकिन अब हम साथ-ही-साथ नये प्रकाशन करने पर भी ध्यान दे रहे हैं। कई स्थानों से मांग की गई है कि समाज शिक्षा की दृष्टि से 'मण्डल' कुछ उपयोगी पुस्तकें निकालें। अबतक कई स्थानों से ऐसा कुछ साहित्य प्रकाशित हुआ भी है, लेकिन वह बहुत पूर्ण नहीं है और प्राय वैज्ञानिक ढंग से नहीं निकला है। भाषा, शैली तथा छपाई आदि के दोष भी उसमें साफ दिखाई देते हैं। अत हमने शीघ्र ही एक दर्जन पुस्तकें निकालने की योजना बनाई है। आगे चलकर इस योजना में और भी पुस्तकें निकलेंगी।

हम लोग कुछ ऐसा साहित्य भी निकालने का प्रयत्न कर रहे हैं, जो पाठकों के विचारों में क्रांति उत्पन्न करे और आज जो चारों ओर एक प्रकार की जड़ता-सी दीख पड़ती है, उसे भंग करके लोगों को आगे बढ़ने की प्रेरणा दे।

इन योजनाओं को हम शीघ्र ही मूर्तरूप देने के आकांक्षी हैं और हमें विश्वास है कि जैसे-जैसे 'मण्डल' के साधन बढ़ते जायगे, हमारी प्रगति भी तेज होती जायगी।

'जीवन-साहित्य'

इस अंक से 'जीवन साहित्य' का नया वर्ष प्रारम्भ होता है। पाठक देखेंगे कि हमने इसमें आठ पृष्ठ और बढ़ा दिये हैं और मूल्य वही रहने दिया है, यानी एक अंक का ।=) और वार्षिक ४)

हमारे पाठकों और ग्राहकों की इस पत्र के प्रति निरंतर ममता रही है और उसी के बल पर हम अबतक चल सके हैं।

हम आशा करते कि हमारे पाठक और ग्राहक उत्साहपूर्वक कुछ और ग्राहक बनाकर पत्र को स्वावलम्बी बनाने में सहयोग देंगे। —मंत्री

महाप्रयाण (श्रद्धांजलियां) ५१)
गांधीजी के जीवन प्रसंग ६)
गांधी गौरव (खण्ड काव्य) १)
महात्मा (अंग्रेजी में) ≡ भाग
प्रत्येक भाग २५)
गांधी विचार दोहन (मशरुवाला) १॥)

निबंध-साहित्य

अशोक के फूल (द्विवेदी) ३)
पृथ्वीपुत्र (वासुदेवशरण) ३)
जीवन-साहित्य (कालेलकर) २)
लोक जीवन („) ३॥)
पचदशी (स वियोगी हरि) १॥)
नेहरू अभिनंदन ग्रंथ (हिन्दी) ३०)

राजनीति, अर्थशास्त्र एवं इतिहास-साहित्य

जगत् सेठ (पारसनाथसिंह) ६॥)
स्वाधीनता की चुनौती (वर्मा) ७॥)
कांग्रेस का इतिहास (डा पट्टाभि)
१८८५-१९३५— १०)
१९३६ से ४७— २०)
भारतीय सिक्के ४)
प्राचीन भारतीय शासन पद्धति ४)
भारतीय मजदूर ३॥।)
शिवाजीकी योग्यता (तामस्कर) १)
हमारी स्वाधीनता-संग्राम (विष्णु) १॥)
महान् चुनौती (लूई फिशर) ७॥)
४२ का विद्रोह (गोविंदसहाय) ६॥)
रियासतों का सवाल (महादय) २)
कपड़ा उद्योग और मुनाफा ।≈)
काश्मीर पर हमला (कृष्णा मेहता) २॥)
भारतीय वेश भूषा (डा मोतीचन्द) १२)
गृह विधान १०)

जीवनी, कथा-साहित्य

जातक-कथा (भदन्त आनन्द) ३)
महाभारत के पात्र (४ भाग)
(नानाभाई भट्ट) ७)
प्राचीन भारत की आख्यायिकायें
(नानाभाई भट्ट) १॥)
उपनिषदों की कथायें (देव) १)
विजय किसकी? (हितोपदेश) ॥।)
विराट (ज्विग) १)
रहमान का बेटा (वि. प्रभाकर) २॥)
भारत के स्त्री रत्न (३ भाग) ७॥)
अस्थि पिंजर (य. वैष्णव) २॥)
नवजीवन (रामचन्द तिवारी) ३॥)
मानव धर्म की आख्यायिकायें
(नानाभाई) १॥)
सप्तदशी (स विष्णु प्रभाकर) २)
अमिट रेखायें (स सत्यवती मल्लिक) ३)
रीढ की हड्डी (स. विष्णु-प्रभाकर) १॥)
एक आदर्श महिला
(विनायक तिवारी) १)
मैं मरूंगा नहीं (यशपाल जैन) २॥)
अशोक वन (प गोकुलचन्द शर्मा) १॥)
मेरी गाथाएं (भरतसिंह उपा.) १॥)
प्रवासी की आत्मकथा (सन्यासी) ८)
कोई शिकायत नहीं (कृष्णा) ४)
आचार्य कृपलानी १)
बुद्ध और बौद्ध साधक १॥)
नेताजी—जियाउद्दीन के रूप में—(उर्दू) १॥)

दर्शन-साहित्य

तामिलवेद तिरुकुरल (राहुल) १॥)
आत्मरहस्य (रतनलाल जैन) ३)
गीतामृत (पालीवाल) ३॥)
उत्तरी भारत की सन्त परम्परा १२)
हिन्दुओं के व्रत और त्योहार २॥)

गांव, सफाई, आरोग्य, गोपालन आदि विविध

सफाई (गणेशदत्त) १)
गांवों की कहानी (रा. गौड़) १॥)
पशुओं का इलाज (प प्रसाद) ॥)
भारत में गाय (स दास गुप्त) १३)
आदर्श आहार (स दास) १)
उपवास से लाभ (वि मोदी) १॥)
साग-भाजी की खेती (व्यास) ३॥)
ग्राम-सुधार (ओमप्रकाश त्रिखा) १॥)
चारा-दाना (परमेश्वरीप्रसाद) ।)
चारा-दाना चार्ट („) ।≈)
प्राकृतिक जीवन की ओर ३)
मैं तन्दुरुस्त हू या बीमार ? १)
सर्दी, जुकाम और खांसी ॥।)
प्राकृतिक चिकित्सा ३)
अभिनव प्राकृतिक चिकित्सा ४)
रोगों की सरल चिकित्सा ३)
हमारा भोजन ।≈)
प्राकृतिक चिकित्सा अंक २।)

युवकोपयोगी

दिव्य जीवन (स्वेट मार्डेन) १॥)
आगे बढो „ १)
संकल्प (जेम्स एलेन) ॥।)
आदर्श बालक (चतुरसेन) १।)
पुत्रियां कैसी हो ? („) १॥)
आत्मोपदेश (एपिक्टेटस) १)
व्यावहारिक सभ्यता १॥)
उठो (स्वामी कृष्णानन्द) १।)
जीने की कला (विट्ठलदास मोदी) १॥)

बालोपयोगी

सबके बापू ॥)
जनता के जवाहर ॥।)
हमारे सरदार ॥)
राष्ट्रपति राजेन्द्र ॥)
सन्त विनोबा ॥।)
जीवनपराग १)
विजय किसकी ? ॥।)
मा का बेटा ॥।)
गांधी शिक्षा (३ भाग) १≈)
रामतीर्थ सन्देश (३ भाग) ॥।≈)
सीख की कहानियां ।≈)
एवरेस्ट की कहानी ॥)
देश-प्रेम की कहानियां ।≈)
चिड़िया की नसीहत ।)
मेरा घर ॥)
भले रहो ! चंगे रहो ! ।≈)
सावनमल का इंसाफ ।≈)
बीरबल की कहानियां ।≈)
हरिश्चन्द्र ।)
देश-वार्ता ॥।)
बालकों की रीति नीति ।≈)
बालकों के आचार ।≈)
बड़ों का बचपन ॥)
कौआ चला हंस की चाल ।≈)

Regd No D 228

पर

अपने पास अवश्य रखिये

१ आत्मकथा (गांधीजी))
२ पन्द्रह अगस्त के बाद)
३ दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह)
४ मेरे समकालीन ४)
५ ग्राम-सेवा)
६ मेरी कहानी (जवाहरलाल नेहरू) ८)
७ राष्ट्रपिता) १)
८ विश्व इतिहास की झलक ९)
९ हिन्दुस्तान की कहानी १०)
१० बापू की कारावास कहानी (सुशीला नैयर) १०)
११ कांग्रेस का इतिहास (पट्टाभि सीतारामैया) भाग प्रत्येक का १०) एक साथ तीनों भाग लेने पर ०)
१२ ... के पत्र (घनश्यामदास बिड़ला) १)
१३ बापू ... (ब्र० ...) ॥)
१४ ... (...० धावन) ३)
१५ सत्याग्रह मीमांसा (र० दिवाकर) ॥)
१६ स्वतन्त्रता की ओर (ह० उपाध्याय) ६॥)
१७ श्रद्धांजलि जमनालालजी ॥)
१८ स्वाधीनता-संग्राम (विष्णु प्रभाकर) १॥)

यदि आप ८) भेजकर मण्डल के मासिक पत्र

के

ग्राहक बन जायेंगे तो इन तथा मण्डल की अन्य पुस्तकों पर आपको तीन आना रुपया कमीशन मिल जायगा।

के लिए,

मण्डल का बड़ा सूचीपत्र एक कार्ड लिखकर मंगा लीजिए

नई दिल्ली

मार्तण्ड उपाध्याय मंत्री सस्ता साहित्य मंडल नई दिल्ली द्वारा नवजीवन प्रिंटिंग प्रेस दिल्ली में छपाकर प्रकाशित।

फरवरी १९५३



'वह मुझमें समा गई'

२२ फरवरी, १९४४] —बापू

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय
यशपाल जैन

जीवन साहित्य

लेख-सूची

उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश तथा बिहार प्रादेशिक सरकारों द्वारा स्कूलों, कालेजों व
लाइब्रेरियों तथा उत्तरप्रदेश की ग्राम-पंचायतों के लिए स्वीकृत

जीवन-साहित्य

अहिंसक नवरचना का मासिक

वर्ष १४] फरवरी १९५३ [अंक २

युवकों से

विनोबा

एक बार भगवान् बुद्ध का एक प्रचारक घूम रहा था। उसे एक भिखारी मिला। वह प्रचारक उसे धर्म का उपदेश देने लगा। उस भिखारी ने उसकी तरफ ध्यान नहीं दिया। उसमें उसका मन ही नहीं लगता था। प्रचारक नाराज़ हुआ। बुद्ध के पास जाकर बोला, "वहां एक भिखारी बैठा है। मैं उसे इतने अच्छे-अच्छे सिखावन दे रहा था, तो भी वह सुनता ही नहीं।" बुद्ध ने कहा, "उसे मेरे पास लाओ।" वह प्रचारक उसे बुद्ध के पास ले गया। भगवान् बुद्ध ने उसकी दशा देखी। उन्होंने ताड़ लिया कि वह भिखारी तीन-चार दिन से भूखा है। उन्होंने उसे भरपेट खिलाया और कहा, "अब जाओ।" प्रचारक ने कहा, "आपने उसे खिला तो दिया, लेकिन उपदेश कुछ भी नहीं दिया।" भगवान् बुद्ध ने कहा, "आज उसके लिए अन्न ही उपदेश था। आज उसे अन्न की ही सबसे ज्यादा जरूरत थी। वह उसे पहले देना चाहिए। अगर वह जीयेगा तो कल सुनेगा।"

हमारे राष्ट्र की आज यही दशा है। आज राष्ट्र में अन्न ही नहीं है। रामदास के जमाने में अन्न भरपूर था। आज की तरह उस समय हिन्दुस्तान की सम्पत्ति का सोता सूखा नहीं था। इसलिए उन्होंने प्राण का, बल का, उपासना का, उपदेश दिया।

जब राष्ट्र में अन्न की उपज और गोसेवा होगी, तभी राष्ट्र का संवर्धन होगा। बलवान तरुणों को राष्ट्र में अन्न और दूध की अभिवृद्धि करनी चाहिए। हिन्दुस्तान को फिर से 'गोकुल' बनाना है। यह जब बनाओगे तब बनाओगे, परन्तु आज तो खादी की पतलून पहनकर और मरे हुए—मारे हुए नहीं—जानवर के चमड़े का पट्टा पहनकर अन्नदान और गोपालन में हाथ बंटाओ।

खाकी पोशाक करो। लेकिन वह पोशाक करके गरीबों का पेट मत मारो। तुम गरीबों के संरक्षण के लिए कवायद करोगे, लेकिन गरीब जब जीयेंगे तभी तो उनकी रक्षा करोगे न ? तुम खाकी परिधान करके देश के बाहर पैसे भेजोगे और इधर गरीब मरेंगे। फिर संरक्षण किसका करोगे ? तुम पैसे तो विदेश भेजोगे और दूध-रोटी माँगोगे देहातियों से ? वे तुम्हें कहां से देंगे ? इसलिए खाकी ही पहननी हो तो खाकी खादी पहनो।

आर्जव, वीर्य-संग्रह तथा अहिंसा

यदुनाथ थत्ते

भगवद्-भक्ति के कारण सर्वत्र जिनका नाम फैल चुका है व एकनाथ महाराज एक बार रास्ते से गुजर रहे थे कि एक नासमझ मुसलमान ने उन पर थूका। १०१बार तक वह थूकता रहा और एकनाथ महाराज हरबार गंगाजी में नहा कर, साफ बन कर आते रहे, लेकिन उनका चित्त जरा भी विचलित न हुआ। तब वह आदमी बहुत शरमाया। नाथजी की सहनशीलता के आगे उसकी उद्धतता हार मान गई। जब १०२ वीं बार उसने न थूका तब नाथजी ने कहा

मसजिद में अल्लाह है खडा,
और जगह क्या है खाली पडा ?
चार समय हैं नमाजों के
और समय क्या है चोरों के ?

"अरे भैया, तेरा अल्लाह अगर सर्वत्र फैला है तो वह मुझमें भी होगा कोई जगह उससे खाली नहीं हो सकती। चार बार नमाज पढ़ने हो यह तो ठीक है, लेकिन जीवन का एक-एक पाठ उसी का है, यह समझ लो।" नाथजी के उस उपदेश का उस पर क्या असर हुआ पता नहीं। लेकिन इसमें भारतीय जीवन-दृष्टि व्यक्त हुई है, ऐसा मुझे लगता है। गीता ने या हमारे दूसरे किसी भी ग्रंथ ने जीवन के टुकडे करके उसका विचार करना हमें नहीं सिखाया। जीवन की एकता को हरदम मद्देनजर रखने की शिक्षा हमें दी गई है, लेकिन हमारी ताकत कम होने से हम इस दृष्टि को जीवन में उतार न सके। सत्तरहवें अध्याय में गीता ने तपश्चर्या करने का आदेश दिया है, वह भी जीवन भर का तप है। तपादि का आचरण बारह साल तक करने का रिवाज हमारे यहां पहले से चला आ रहा है। यह रिवाज ऐसा पक्का हो गया है कि तप शब्द ही बारह साल का द्योतक बन गया है। बारह साल की मियाद इसलिए नहीं रखी गयी कि बारह साल के बाद उसका त्याग करना है, बल्कि इस आशा से कि बारह साल में वह बात अंगभूत-सी बन जाय,हमारी सहज प्रवृत्ति बन जाय। वैद्यक-शास्त्र भी मानता है कि इस काल में हमारे शरीर का जर्रा-जर्रा बदल जाता है, नव संस्थापित शरीर हमारे प्रयत्न करने पर हमें प्राप्त हो सकता है। तो गीता का शारीरिक तप कोई कुछ दिन करके छोड़ देने की बात नहीं है। वह एक नई जीवन-दृष्टि है। शारीरिक तप में 'देवद्विज' गुरु-प्राज्ञ की पूजा तथा 'शौच-स्वच्छता' का क्या स्थान है इसका हमने अब तक विचार किया (देखो—जी सा जुलाई १९५२)। अब उसके और अंगों पर विचार यहां करेंगे।

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते।

गीता ने शारीरिक तप में तीसरा स्थान दिया है आर्जव अर्थात् सरलता को। सरलता अर्थात् छल कपट-रहितता, टेढ़ा-मेढा रास्ता न पकडकर सीधे रास्ते चलना। सूरज की किरणें सीधे रास्ते आती हैं इसीसे उनकी पहुंच सब कहीं है। अगर सूरज की किरणें टेढी-मेढी होतीं तो किसी भी वस्तु का यथार्थ ज्ञान हमें न हो पाता। यथार्थ ज्ञान के लिए सरलता की परम आवश्यकता होती है। छोटा बच्चा सरल होता है, इसलिए तो उसको सबका प्यार मिल जाता है। वह देखते ही आदमी को पहचानता है। सरलता से हम सीधे हृदय में प्रवेश कर जाते हैं। सरलता के कारण हमारा जीवन व्यापक बन जाता है। तार को अगर हम टेढा-मेढा करेंगे तो मीलों लंबा तार भी हमारी बांहों में समा जायगा लेकिन वह अगर सीधा रहा तो उसकी बांहों में खेत भी आ जायगा। सरलता के कारण व्यापकता इस तरह बढती है। लेकिन गीता ने शारीरिक तप में सरलता को स्थान क्यों दिया ? सरलता तो एक तरह से मन का गुण है। लेकिन मन भी तो शरीर पर ही अवलंबित रहता है। वह कोई शरीर से अलग चीज नहीं है। गीता ने ही कहा है कि शरीर या इन्द्रियों का असर आगे मन पर होता है और मन अगर बहका तो हमारी जिंदगी बिगड जाती है। इसीलिए हमारे प्राचीन ग्रंथों में

आसनादि का जिक्र आता है। रीढ को सीधा रख कर हमें बैठना-उठना चाहिए। एक बार विनोबाजी के साथ एक स्कूल मे मैं गया। लडके सूत कात रहे थे, लेकिन बैठे थे झुककर। विनोबाजी ने बच्चो के पास जा-जाकर रीढ को सीधा रखकर बैठने को कहा। खडे रहो तो भी सीधे खड़े रहना चाहिए और सोना हो तो भी सीधे। इसका अर्थ यह होता है कि जिस कार्य को हमने हाथो में लिया है उसको हम अपनी पूरी ताकत लगाकर कर रहे हैं। जब कुत्ता या और कोई प्राणी किसी को आहट पाता है तो चौकन्ना हो जाता है। और उसकी निशानी हैं उसके सीधे खडे हुए कान। विनोबाजी पौनार में भूदान-यात्रा के लिए निकलने के पहले खडे होकर प्रार्थना करते थे। उसमें सावधानता के भाव रहते हैं। हमारी शारीरिक सरलता हमारी तैयारी के भाव व्यक्त करती है। सीधा बैठना-उठना एकाग्रता की दृष्टि से भी उपयोगी साबित होता है। शारीरिक शक्ति में उससे बढावा मिलता है, शरीर का तेज बढता है। गाधीजी भी इसके बारे में बहुत दक्ष थे। यूरोपादि देशो मे सुतारी का, लुहारी का और यहा तक कि रसोई का भी काम खडे-खड़े करते है, क्योंकि बैठकर काम करने में रीढ झुक जाती है। रीढ के सीधा रखने को आरोग्य-शास्त्र में भी बडा महत्व दिया है। जिनको परिपूर्णता से जीवन का आनन्द उठाना है, उन्हे हरेक काम तहेदिल से और पूरी ताकत लगाकर करना चाहिए, दक्षता से करना चाहिए और उसके लिए शारीरिक ऋजुता को इतना महत्व गीता में दिया गया है।

इसके बाद गीता आवाहन करती है ब्रह्मचर्य का। वीर्य-संग्रह का अर्थ है अपनी सारी शक्तियो को समेट कर रखना। अगर दृष्टि के सामने महान् ध्येय हो तो उसके लिए आदमी अपनी सारी शक्तिया इकट्ठा करता है। गीता ने यहा ब्रह्मचर्य शब्द का प्रयोग किया है लेकिन विनोबाजी ने गीता का मराठी अनुवाद 'गीताई' नाम से किया तब उसमें ब्रह्मचर्य की जगह वीर्य-सग्रह शब्द का प्रयोग किया है। यह ब्रह्मचर्य से अधिक व्यापक है, ऐसा मुझे लगता है। वीर्य अर्थात् शक्ति। हमारी हरएक इद्रिय में कुछ शक्ति निहित होती है। कानो में सुनने की, आखो में देखने की, जीभ मे बोलने की, हाथ पैरों में काम करने की। ये सब शक्तिया सग्रहीत करनी हैं। अगर इन शारीरिक या इद्रियो की शक्तियो को समेटकर ही रखना है तो वे हमें दी ही क्यो गई हैं? तो इन्हे समेटना इसलिए है कि अच्छे कामों में हम उन्हें लगा सके। जिस तरह धन इकट्ठा करते हैं। आगे काम में आये इसीलिए करते हैं। उसी तरह अच्छे काम में लगाने के लिए शक्ति का सचय करना है। तो क्या शक्ति खर्च न करने से बढती है? व्यवहार मे जिस तरह पूजी लगाने से पूजी बढती है, उसी तरह समझ-बूझ कर शक्ति काम मे लाने से वह भी बढती है। व्यायाम का उद्देश्य भी तो यही है। नमस्कार आसनादि में शक्ति तो खर्च हो ही जाती है लेकिन वह पूजी लगाने जैसी बात है क्योंकि उसीमें से और शक्ति भी हमें प्राप्त होती है। तो वीर्य-संग्रह का अर्थ हुआ अच्छे काम के लिए शक्ति जुटाना।

इस वीर्य-सग्रह की दृष्टि से अपने जीवित कार्य का दर्शन होना बहुत जरूरी है। अगर जीवित कार्य का हमें दर्शन न हुआ हो तो हमारी शक्तिया उस काम मे नही लग सकेगी। लेकिन हम इद्रियो के अधीन सहज में हो जाते हैं। विनोबाजी ने एक जगह लिखा है, "चक्कू का उपयोग करना एक बात है, चक्कू के अधीन होना दूसरी। जो चक्कू पर काबू पाता है वह उसका पेन्सिल बनाने के लिए या और कामो में अपनी इच्छानुसार उपयोग कर लेता है। लेकिन जो चक्कू के अधीन हो जाता है, अपनी उगलियों पर चक्कू के जख्म होने पर भी वह उसे रोक नही पाता है।" तो ब्रह्मचर्य का अर्थ सिर्फ जननेंद्रिय पर ही नही, अपनी सब इद्रियो पर काबू पाना और उनको अच्छे काम में इस ढंग से लगाना कि जिससे उनकी ताकत बढती रहे। शक्ति अगर ठीक ढग से लगाई जावे तो वह बढती है अगर ग लत तरह से लगाई जावे तो उस-को हम खो बैठते हैं। वृक्ष का बीज अगर ठीक तरह से बोया और उसकी हिफाजत की तो वह अपने ढग के अनेक वृक्ष पैदा करता है, लेकिन अगर यह न हुआ तो हम बीज भी खो बैठते हैं। विकारो का पहला हमला हमारी इद्रियो पर याने शरीर पर ही होता है। इस बात को गीताकार ने अच्छी तरह समझाया है।

अगर शरीर को अच्छे काम का साधन बनाना है तो उस पर काबू पाना चाहिए और उसके लिए ब्रह्मचर्य की अर्थात् सब इंद्रियों की शक्तियों पर काबू पाने की बहुत जरूरत है। साइकिल-मोटर के पहियों में जो रबड़ की ट्यूब होती है वह जिस तरह एक और अखंड होती है वैसा ही हमारा जीवन वास्तव में होता है। उस ट्यूब में अगर कहीं भी एक छोटा-सा सूराख बन जाता है तो सारी ट्यूब से हवा निकल जाती है। यह नहीं होता कि सिर्फ सूराख के पास ही की हवा ट्यूब से निकल जाती हो। उसी तरह हमारे शरीर के एक भाग में अगर कुछ गड़बड़ी हो तो उसका असर सारे शरीर पर हुए बगैर नहीं रहता। हमारे शरीर के एक अंग से अगर शक्ति बाहर चली जाती है तो वह सारे शरीर की चली जाती है। इसका सबूत हम जरा गहरी निगाह से जीवन का अवलोकन करने पर मिल जाता है। जो बहरा होता है उसकी आंखें बड़ी तेज होती हैं। जिस चीज को हम सहज में नहीं देख सकते, उसको वह सहज में देख पाता है। हाथ के इशारे से वह भाव समझने लगता है। अंधे की श्रवण शक्ति तीव्र होती है। आवाज पर से वह अलग-अलग आदमियों को, उनके असर को समझ लेता है। गूंगे की दृष्टि भी तीव्र होती है। मानो जिस दूसरी इंद्रिय की शक्ति उसने खोई है वह किसी अन्य रूप में परिवर्तित होकर मिली है। इसीलिए अगर हमें शरीर बलवान बनाना है तो इस तरह अपनी इंद्रिय-शक्तियों का उपयोग करना होगा। महाराष्ट्र के संत ने गाया है, "मेरे कान भगवान का नाम सुनें, जबान उसको रटती रहे, आंखों के सामने उसकी मूर्ति हो और हाथ-पैर उसी का काम करने में लगे रहें। इस तरह का जब ध्येय का ध्यान लग जाता है तब सारी शक्तियां एकाग्र होती हैं और उनके विनियोग से और शक्ति मिलती जाती है।

वीर्य-संग्रह में व्यायाम से शरीर को परिपुष्ट बनाना भी आ ही जाता है। हृदय में अच्छे भाव निर्माण हुए, लेकिन वे प्रकट हमारे कर्मों से ही होते हैं। अगर हमारे पास शारीरिक बल न हो तो हमारे विचार सिर्फ दिमागी खयाली बन जायंगे। हमारे शास्त्रों ने कहा है, "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो, नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो।" सिर्फ प्रवचनों से या बलहीनता से आत्मा को परमतत्व की प्राप्ति हो ही नहीं सकती। "शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्" इसी दृष्टि से कहा गया है। शरीर को बलवान बनाये बगैर धर्मसाधना हो नहीं सकती और वीर्यरक्षा और वीर्य-वर्धन के बगैर शरीर की ताकत बढ़ नहीं पाती। लेकिन यह क्या बात है कि गीता ने शरीरतप में वीर्य-संग्रह के बाद अहिंसा को जोड़ दिया है? वीर्य-संग्रह के कारण जो शक्ति संग्रहीत होती है उसको व्यय करने की दृष्टि देने के लिए शरीर तप में अहिंसा को जोड़ दिया है। '*Last but not the least*' ऐसी एक अंग्रेजी कहावत है। उसी तरह यद्यपि अहिंसा को अंत में रख दिया है फिर भी उसका महत्व बहुत ज्यादा है। रेलगाड़ी में गार्ड का डिब्बा भले ही आखिर में हो, लेकिन गाड़ी की रक्षा का भार तो उसी पर रहता है। ठीक इसी ढंग से पहली चार बातों से जो शक्ति पैदा होती है उस शक्ति को काबू में रखने का इलाज है अहिंसा। वीर्य-संग्रह से जब आदमी का सामर्थ्य बढ़ता है तब वह प्रकट होने को उत्सुक-सा रहता है। अगर उसे ठीक और अच्छा रास्ता न मिला तो शक्ति का स्फोट होकर वह प्रकट होता है। वाष्प में इसी तरह की शक्ति होती है। अगर उसको हमने बंधन में रखा और प्रकट होने का कोई अवसर ही न दिया तो वह वाष्प-शक्ति विस्फोटक सिद्ध होगी। जिस शक्ति की मदद से लोकोपयोगी कार्य हो सकता है वह शक्ति-स्रोत को ही फोड़ डालेगी। इसलिए शक्तियों का संगठित करना जिस तरह जरूरी होता है उसी तरह उनको ठीक रास्ते प्रकट करना भी बड़ा महत्व का काम है। इसी दृष्टि से शारीरिक तप में अहिंसा का समावेश किया गया है।

जो शक्ति-संग्रह हुआ है उसे समाज-कल्याण के काम में प्रकट करना है। अहिंसा का अर्थ 'किसी को न दुखाना,' किया जाता है। वह तो शब्द पर ही से साफ प्रकट हो जाता है। यह निषेधक व्याख्या हुई। विधायक व्याख्या है सब पर प्रेम करना। यह कोई दिलबहलाव की या बातों की चीज नहीं है कि मंच पर खड़े होकर सबै ललकारने "मेरे परम प्रिय भाइयो तथा देवियो" यह भाव

(शेष पृष्ठ ५२ पर)

कनाडा का एक शान्तिवादी पंथ : डुखोबार

अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार

दूसरे महायुद्ध के समय अकेले अमरीका में पचासहजार व्यक्तियों ने अपने को युद्ध-विरोधी एवं शान्ति-वादी रजिस्टर्ड कराया था और इसके कारण स्थान-बद्धता स्वीकार की थी। युद्धमात्र का निषेध करनेवालों की संख्या नगण्य नहीं है, किन्तु वे सगठित नहीं हैं। इसी कारण शस्त्रों की झकार, विमानों की गडगडाहट, तोपों की गर्जना और बमों के धुएं के बीच उनकी आवाज सुनाई नहीं पडती।

कनाडा में पिछले ५०-५५ वर्ष से 'डुखोबार' पंथ के लोग शान्तिवाद का प्रचार कर रहे हैं। इसके कारण आने वाले कष्टों को इन्होंने धीरज और प्रसन्नता के साथ सहा है। परन्तु अपने विश्वास का इन्होंने कभी त्याग नहीं किया, न इनकी श्रद्धा में कोई अन्तर आया और न इन्होंने विपत्तियों से घबडाकर अपने पथ का परित्याग किया।

'डुखोबार' लोगों का इतिहास सन् १८९५ से ही ज्ञात है। मूलत ये रूस के रहनेवाले थे। ईसाई धर्म के नीति-तत्वों को टाल्स्टाय ने जैसा समझा था, वैसा ही ये लोग मानते थे, और उनके अनुसार आचरण करते थे और अपना जीवन-यापन करते थे। ज़ार की सरकार को यह पसन्द नहीं था। इस समय 'डुखोबार' लोगों का नेता पीटर वेरो--जिन था। इसके आदेश से 'डुखोबार' लोगों ने फौज में नौकरी करने से इन्कार कर दिया। कज्जाक सैनिकों ने इन पर हमला कर इनको कोडों से पशुतुल्य पीटा। किन्तु इन शान्तिवीरों ने भी अपना कदम पीछे नहीं हटाया। एक 'डुखोबार' पशु के समान मार दिया गया, अनेकों को रूस के बाहर दूरी जगहों में देश-निर्वासित कर दिया गया। वहां खाने को अच्छा अन्न न मिलने और कठोर शीत न सहने के कारण अनेकों मर गए। इस घटना ने टाल्स्टाय के कोमल हृदय को बडी चोट पहुचाई। इनकी सहायता के लिए टाल्स्टाय ने इस समय कई लेख लिखे।

ईसा के सच्चे अनुयायी 'डुखोबार' लोगों के लिए जब रूस में रहना सम्भव नहीं रहा तब उन्होंने देशत्याग करने का निश्चय किया। टाल्स्टाय के प्रयत्न से उनको इसके लिए आवश्यक अनुमति मिल गई।

देश छोड़ कर एक अज्ञात देश में बस्ती बसाने के लिए उनको एक योग्य और अनुभवी नेता की आवश्यकता थी। वह उनको खिलकोव में मिल गया। जब इसको देश-निर्वासन के दिनों काकेशस में रखा गया था तब यह 'डुखोबार' किसानों के सम्पर्क में आया था। वह उनके किसानी जीवन से परिचित था। वह होशियार और दूर-दर्शी नेता था।

टाल्स्टाय के परामर्श से खिलकोव और एलमरमोंड अक्तूबर १८९८ में कनाडा गए। उनके साथ 'डुखोबार' दो परिवार भी भेजे गए। बस्ती बसाने की नींव डालने का महत्वपूर्ण काम इनके सुपुर्द था। वे लोग भी इस भावना के साथ कनाडा गए—हम एक पवित्र भ्रातृत्व की स्थापना का कार्य करने जा रहे हैं। इस भावना के साथ उन्होंने कनाडा में नई बस्ती की नींव डाली।

'डुखोबार' लोगों ने कनाडा में बसने के साथ कनाडा सरकार के साथ ये शर्त करली थी कि वे किसी भी अवस्था में सैनिक सेवा न करेंगे और यदि इसका सरकार ने पालन किया तो उनके कारण सरकार को किसी प्रकार की असुविधा न होगी और वे शान्ति से जीवन व्यतीत करेंगे। फलत ७३६३ 'डुखोबार' लोग कनाडा में आ कर बस गए।

'डुखोबार' प्राचीन काल से धार्मिक स्वतत्रता और शान्तिवाद के पुरस्कर्ता रहे हैं। उनकी यह मान्यता रही है कि सैनिक नौकरी शान्तिवाद के विरुद्ध है। उनके लिए यह अन्तरात्मा का प्रश्न है। कनाडा सरकार ने उनकी यह बात मान ली और उनको बसने के लिए मुफ्त जमीन दी और प्रति व्यक्ति १ पौं दिया।

कनाडा में बस जाने के बाद भी उनके मन में यह शंका बनी रही कि समय आने पर कनाडियन सरकार

अपने बच्चों को भूलकर उनको सेना में भरती होने के लिए बाध्य करेगी। चेटकोव ने उनकी इस शंका को और अधिक पुष्ट किया। उसका कहना था

'सरकार का अर्थ ही यह है कि जो हिंसा पर अधिष्ठित हो। कानून, अदालत, जेल, पुलिस और सेना ये सरकार के आधारस्तम्भ हैं। हिंसा के बिना उसका कार्य चल नहीं सकता। कमजोरों को छलना और अपनी स्थिरता के लिए यथेच्छ रक्तपात करना उसकी निश्चित नीति है। कनाडा-सरकार भी इसीलिए तुम्हारी इच्छानुसार तुमको चलने न देगी।'

चटकोव का यह मत कितना ठीक है और कितना नहीं इसका साक्षी इतिहास है। 'डुखोबार' लोगों का सन् १९३५ में एक वार्षिक अधिवेशन हुआ था। यह 'टारिम' गाँव में हुआ था। इस अवसर पर 'डुखोबार' लोगों के सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला गया था। वक्ता ने अपने सिद्धान्तों के कारण जेल में भी कुछ वर्ष काटे थे। उसने कहा था—

"जेल में रहने से हमें कोई हानि नहीं पहुंची, बल्कि इससे अपने मनों को दृढ़ करने में हमें सहायता ही मिली है। हम 'डुखोबार' लोगों ने विश्व शान्ति की स्थापना के लिए पर्याप्त प्रयत्न किया है। *मानव-एकता में हमारा दृढ़ विश्वास है।* हम समस्त विश्व को एक कुटुम्ब मानते हैं। सत्य इस समय शूली पर चढ़ा हुआ है और असत्य सिंहासन पर बैठा हुआ है। परन्तु इसके कारण हम अपने ध्येय से विचलित न होंगे। १८९५ का दिन हमारे अन्तःकरण पर हमारे पिता के रक्त से लिखा हुआ है। उस दिन इस ध्येय का नया युग शुरू हुआ। इसको आज ४० वर्ष हो गए। *हिंसा विश्व की अधोगति का कारण है,* इस विश्वास के ही कारण हमने अपने सब हथियारों का परित्याग कर दिया है। *आत्मरक्षा के लिए हम एकमात्र परमेश्वर पर* भरोसा करते हैं। प्रशान्त के किनारे हम 'डुखोबार' लोगों का जीवन बड़े जल के जीवन के समान है।

हम इस स्थिति का स्वीकार करने को उद्यत नहीं कि संसार के अधिकांश लोग कष्ट का जीवन बितावें और कुछ लोग सुख भोगें। प्रकृति पर मानव को जो विजय मिली है उससे यह साध्य नहीं। प्रकृति की विपुलता का सन्मार्ग से उपयोग किया जाय, इतना उसका मन सुसंस्कृत नहीं हुआ है। मानव ने आज भी अपने पशुत्व पर विजय नहीं पाई। जबतक यह विजय उसको नहीं मिलती तब-तक प्रकृति द्वारा उसके हाथ में आई विपुलता उसका विनाश किए बिना न रहेगी। सम्पन्नों और सत्ताधीशों का समर्थन करने और उनके कृत्यों पर पवित्रता व न्याय्यता का मुलम्मा चढ़ाने के लिए नाना प्रकार का तत्वज्ञान फैलाया जाता है।

विश्व के सत्ताप्रिय नेता या हुकमशाह परमेश्वर को यह चुनौती देते हुए मालूम होते हैं—*इस पृथ्वी के इन्तजाम में सत्प्रवृत्ति के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं।* विश्व अन्यत्र तेरे लिए बहुत स्थान है। उधर तू ध्यान दे। हम अपने हित की ओर स्वतः ध्यान दे लेंगे।

विज्ञान में मिली सफलता से मानव इतना मदान्ध हो गया है कि उसके लिए जीवन का कोई मूल्य नहीं रहा। मानव को आज न्याय के बदले बल और सदभिरुचि की जगह नाटकीय शिष्टाचार पसन्द है। हमारी कोई स्तुति करे या निंदा करे। हम एक परमात्मा में विश्वास करते हुए कदम बढ़ा रहे हैं। हम आज जिस विश्व नागरिकता एवं भ्रातृत्व की स्थापना के लिए पवित्र संकल्प कर रहे हैं *उसमें हम एकाकी हैं, किन्तु हमारी साक्षी के सामने शहीदों* की परम्परा है। पूर्व के क्षितिज पर कन्फ्यूशिअस और बुद्ध, ये तारे हमको दिखाई देते हैं। उन्होंने नीतितत्वों की नींव डाली। उस नींव को पैथागोरस, सुकरात और ईसा ने अपने रक्त से पुष्ट किया। उस ज्योति को बेप्टिस्ट जान, एपास्टल पाल, सेंट फासिस, बाद में मध्ययुग के अन्दर और आधुनिक समय में सेवो, हस, ब्रूनो, जार्ज फाक्स और हमारे वीरिजन ने अपने प्राणों की परवाह न करके प्रदीप्त रखा।

'डुखोबार' लोगों और सच्चे ईसाइयों का असत् प्रवृत्ति से विरोध पुराना है। इसका आरम्भ आदम व ईव के समय से होता है। केन के अमानुषिक वर्ताव और उसकी नीति ने पहले पहले सहनुक विरोध का जन्म दिया। सारी जमीन और समस्त पशु केन को चाहिए थे। उसकी इस अन्यायपूर्ण इच्छा का उसके छोटे भाई एबेल ने विरोध किया। केन ने इस पर अपने छोटे भाई एबेल का खून कर दिया। वह दिन हमारे झगड़े का प्रारम्भिक

दिन समझना चाहिए। कहने का अर्थ यही है कि मानव प्राचीन काल से आध्यात्मिक शक्ति का त्याग कर भौतिक व ऐहिक सामर्थ्य की शरण जाता रहा है।

आज शुद्धीकरण जोरों पर है। इसका अर्थ यह है कि हुक्मशाहों को ध्येयनिष्ठों का निर्मूलन करना इष्ट है। इसीसे प्रकट है कि 'डुखोबार'–मानव जाति पर सच्चा प्रेम करनेवालों के मार्ग में 'गोलगोथा' (ईसाइयों की सूली) खड़ा है। और उसपर लटकने से हमारा अन्त होना है। शुद्धीकरण की बन्दूक की छाप जर्मनी में हिटलर ने, इटली में मुसोलिनी या कनाडा में किसी एकाध हुक्मशाह ने छोड़ी, तो इसका एक ही अर्थ है कि हमको अग्नि-परीक्षा के लिए तैयार रहना चाहिए और भविष्य काल की उज्ज्वल आशा को अपने अन्तःकरण में स्थान देना चाहिए। हमारी यही आशा है। हम आशावादी हैं।

तत्काल हमारे करने योग्य कार्य यह है कि हम अपनी पिछली भूलों के लिए पश्चात्ताप करें। सब अनिष्ट घटनाओं का मूल हमारे अन्दर है। हुक्मशाह के निन्दनीय कृत्यों एवं युद्धपिपासु सरकारों के कार्यों का कर देकर हम समर्थन करते हैं। ये और अन्य सब भूलों का हमें परिमार्जन करना चाहिए। भूल से ही हमें अपने जन्म का इलाज करना चाहिए।"

'डुखोबार' लोगों के आजकल एक नेता हैं पीटर मेलाफ। इनके पिता ८२ वर्ष के हैं और आज भी जीवित हैं। इनका पुत्र २६ वर्ष का है। ये तीनों शाकाहारी और अहिंसावादी हैं। ये लोग रूस से कनाडा में आए हैं। सेना में भरती न होने के कारण इनको अनेक बार रूस और कनाडा में जेल जाना पड़ा है। मेलाफ परिवार ही नहीं, 'डुखोबार' पंथ के और अनेक कुटुम्ब भी मानव-समाज की सुख-शांति के लिए निर्वंश होने को तैयार हैं।

साधारणतः बीस वर्ष बाद महायुद्ध होता है। किन्तु इसके बीच के शांतिकाल में भी शांतिवादियों की कल्पना मूर्तरूप धारण नहीं करती, क्योंकि विश्व का लोकमत उस सीमा तक तैयार नहीं होता। युद्धों का अन्त करने की कल्पना मूर्त रूप में आने से पहले ही दूसरा युद्ध शुरू हो जाता है। इस समय शांतिवादियों की आवाज अरण्यरोदन के समान होती है। इसलिए शांतिकाल का लाभ लेकर युद्ध-विरोधी जनता को संगठित होना चाहिए। इसलिए हिंसा-विरोधी प्रचण्ड आन्दोलन उठना चाहिए।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के व्याज से कनाडा सारे संसार को शस्त्रास्त्र दे रहा है। 'डुखोबार' लोगों की दृष्टि में यह पाप है। इसके विरोध में अनेक 'डुखोबार' परिवारों ने जेल-यातना सही है। इनका विश्वास है कि सत्य और असत्य ही बंध और मोक्ष के कारण हैं? जिस परिमाण में हम सत्य का अनुसरण करते हैं और उसको मानते हैं उतने में हम मुक्त होते हैं। जिस परिमाण में हम सत्य से दूर रहते हैं उसी परिमाण में हम बंधे हुए हैं। पिछले तीस वर्ष में सत्य-प्रेम के कारण 'डुखोबार' लोग दो बार अपनी सम्पत्ति से वंचित किए गए हैं। अहिंसा और सत्य का मार्ग कण्टकाकीर्ण है। इस पर भी इन लोगों ने इस पथ को छोड़ा नहीं। उनका कहना है—सूर्य आज भी प्रकाशमान है और सुन्दर विश्व-निर्माण करने के लिये आवश्यक भरपूर शक्ति अभी शेष है। 'डुखोबार' परिवार का विश्वास अजेय और आशावाद अदम्य है।

१९४६ में 'डुखोबार' लोगों की बिलियेट (कनाडा) में पुनः एक कान्फ्रेंस हुई। इसमें ध्येय निश्चित किया गया। इसको पाने के उपायों का भी निश्चय किया गया। इस कान्फ्रेंस के निश्चयों का सार इस प्रकार है

ध्येय—ईसा की शिक्षा के अनुसार प्रेम, बंधुता और समानता प्राप्त करना।

तत्त्व—(१) परमेश्वर का अधिष्ठान, (२) पड़ोसियों से प्रेम, (३) हिंसा का त्याग, (४) मादक द्रव्यों का परित्याग, और शाकाहार का अवलम्बन।

एकता स्थापित करने के साधन—पारस्परिक पहले के अपराधों की क्षमा, (२) पहले की भूलों की पुनरावृत्ति न होने देना, (३) सिद्धान्तों का दृढ़ता से पालन, (४) दूसरों की स्वतन्त्रता में बाधा न देते हुए अपनी स्वतन्त्रता का उपभोग, (५) जहां एक मन हो वहां सहयोग और सहायता, (६) बच्चों को आध्यात्मिक शिक्षा देने की दृष्टि से माता-पिता का आदर्श जीवन व्यतीत करने का उत्तरदायित्व, (७) विश्व के शांतिवादियों के साथ सम्पर्क स्थापित करना, (८) किसी भी कारण से

और किसी भी परिस्थिति में हिंसा को स्थान न देना, (९) अमर्याद-विषमता की नापसन्दगी, (१०) ईसा एक महान नेता हैं, इस भाव की मान्यता।

शान्तिवादी 'दुखोबार' लोगों का विश्व-शांति स्थापित करने का प्रयत्न 'जनवादी शान्ति' सम्मेलनों के प्रयत्नों से भिन्न है। दोनों का उद्देश्य एक होने पर भी दोनों के उपायों और दोनों की कार्य-पद्धति में अन्तर है। एक वैयक्तिक परिवार की विशुद्धि और उसके निर्माण को विशेष रूप से महत्त्व देता है। दूसरा तलवार के जोर से सामूहिक चेतना को जगा कर विश्व-शांति की स्थापना करने का प्रयत्न करना चाहता है। प्रश्न यह है कि क्या तलवार के सहारे विश्व-शांति स्थापित हो सकती है? यदि नहीं तो फिर कुछ 'दुखोबार' लोगों का पथ सब क्यों स्वीकार नहीं करते? क्या मानें कि मानवता ने अभी अपने अन्दर में विद्यमान पशुता पर विजय नहीं पाई? इस विजय पाने तक क्या मानव सत्य को प्राप्त कर सकेगा? ऋषि ने कहा है 'सत्येन उत्तभिता भूमिः'। फिर क्या यह मान लें कि मानव के भाग्य में विनाश ही लिखा है?

●

तरंग का गीत

खलील जिब्रान

यह समुद्र मेरा प्रेमी है और मैं उसकी प्रमिका। हम दोनों प्रेम से मिले हुए हैं, पर चन्द्रमा मुझे उससे अलग करता है। मैं उसके पास शीघ्रता से जाती हूँ और उससे अनिच्छापूर्वक विदा लेती हूँ।

मैं नीले क्षितिज के पीछे से चांदी जैसे फेनों को उसके स्वर्ण सदृश चमकते हुए रेत पर डालने के लिए चोरी से आती हूँ। इससे हम दोनों लहर मारती हुई चमक में मिलते हैं।

मैं उसके हृदय को जलनिमग्न करके उसकी प्यास को बुझाती हूँ। और वह मेरी आवाज को नर्म और क्रोध को शान्त करता है। प्रभात-काल में मैं प्रेमरस से भरे हुए मधुर गीतों से अपने प्रेमी को जगाती हूँ और वह मुझे तीव्र अभिलाषा से अपनी छाती से लगा लेता है। सायंकाल मैं इसे आशापूर्ण गीत सुना कर प्रेम करती हूँ। इस समय मेरा हृदय धड़कता है और मैं भयातुर होती हूँ। पर वह चतुर धैर्यवान और विचारशील है, इसलिए वह उस समय मुझे अपने विशाल वक्षस्थल से लगाकर मेरी बेचैनी को शांत करता है।

जब समुद्र में चढ़ाव आता है हम एक-दूसरे का आलिंगन करते हैं, पर उतार के समय मैं वन्दना करती हुई उसके चरणों में अपना मस्तक रख देती हूँ।

अपने जीवन में कई बार मैं समुद्र की गहराइयों से उठती हुई और अपनी शिलाओं पर बैठकर तारों को निहारती हुई मत्स्यांगनाओं के इर्दगिर्द नाची हूँ। और बहुत बार जब मैंने निराश प्रेमियों को विलाप और शिकायत करते सुना है तो मैंने ठण्डी आहें भरने में उनका साथ दिया है।

कई बार मैंने बड़ी-बड़ी चट्टानों को चिढ़ाया, पर वे टस-से-मस-न हुईं और कई बार मैंने मुस्कराकर उनका आलिंगन किया, पर उनके अधरों पर कभी मुस्कराहट तक न देखी। कई बार मैं समुद्र के भंवर में डूबते हुए मनुष्य को उठाकर अपने प्रिय समुद्र-तट तक बड़ी कोमलता से ले गई। उसने उन्हें उसी प्रकार शक्ति प्रदान की, जिस प्रकार वह मेरी शक्ति ग्रहण करता है।

कई बार मैंने समुद्र की गहराइयों से मोती चुराकर अपने प्रेमी तट को भेंट किये, वह चुपके से उन्हें स्वीकार कर लेता है। फिर भी मैं यह भेंट पेश करती रहती हूँ, क्योंकि वह सदा मेरा स्वागत करता है।

रात की निस्तब्धता में, जब कि समस्त सृष्टि निद्रा-देवी की गोद में मस्ती से गहरी नींद के खुर्राटे लेती होती है, मैं जागती हुई कभी गीत गाती हूँ और कभी ठण्डी आहें भरती हूँ। पर निगोड़ी नींद मुझे कभी आती ही नहीं।

खेद है, अनिद्रा ने मुझे निर्बल बना दिया है। पर याद रखो, मैं एक प्रेमी हूँ और प्रेम बलवान होता है।

मैं थकी हुई हूँ, पर मैं मरूंगी कभी नहीं।

—अनु० माईदयाल जैन

कच्छ में व्रज-भाषा की शिक्षा का प्राचीन प्रयत्न

अगरचन्द नाहटा

हिंदी भाषा जो आज भारतकी राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित हुई है, उसके उस पद के योग्य बनने में पिछली कई शताब्दियों का प्रयत्न प्रधान कारण रहा है। मूलतः हिंदी भाषा भारत के मध्य एवं पूर्वी भाग की प्रान्तीय भाषा थी। भाषा की स्वाभाविक प्रकृति के अनुसार थोड़ी-थोड़ी दूरी पर उसके स्वरूप में भिन्नता पाई जाती है। इसमे हिंदी भाषा की व्रज, अवधी, मैथिली, बिहारी और खड़ी बोली आदि शाखाएं अपना-अपना स्वतंत्र विकास करती चली आ रही हैं। मुसलमान-साम्राज्य के समय हिंदी को बहुत प्रधानता मिली, क्योंकि इनका शासन दिल्ली रहा। उन्होंने कुछ सम्मिश्रण के साथ वहा की बोली को अपनाया और ज्यों-ज्यों मुसलमानी साम्राज्य फैलता व जमता गया, हिंदी का प्रभाव भी बढ़ता गया। सुदूर दक्षिण में भी इसका इतना अधिक प्रचार हो सका, इसका यही प्रधान कारण है। इधर कुछ वर्षो मे दक्षिणी हिंदी के महत्वपूर्ण गद्यपद्यात्मक साहित्य का ठीक-ठीक पता चला है जिससे हिंदी की परपरा व उसके विकास में एक नई कड़ी मिल गई है। दक्षिणी हिंदी के पद्य के साथ गद्य भी १६वी शती तक का प्राप्त हो चुका है। इससे पहले की परपरा दिल्ली नरेन्द्र के मुसलमान कवि मीर खुसरो के साथ जुड़ जाती है। वर्तमान हिन्दी का निकट सम्बध खड़ी बोली से है और खड़ी बोली के विकास में सबसे प्रधान हाथ मुसलमानों का रहा है। उनके प्रेम काव्यों की परम्परा ने लोगों का ध्यान आकर्षित किया।

हिन्दी के व्यापक प्रचार में मुसलमान-साम्राज्य व मुसलमान कवियों के साथ-साथ सतो का भी महत्वपूर्ण हाथ रहा है। हिन्दी की प्राचीन परपरा में हम सिद्धों एवं नाथपथियों के साहित्य को (हिंदी के विकास की शृखला) जोड़ते है। वास्तव में हिंदी का विकास अपभ्रंश से हुआ है। अतः प्राथमिक विकास के सूत्र उन्हींसे सबधित होते है। जैन कवियों का अपभ्रंश साहित्य तो अत्यत विशाल एवं समृद्ध है। कबीर से सत सप्रदायों का बहुत व्यापक प्रचार हुआ। इधर राम और कृष्ण की भक्ति ने जोर पकड़ा और उधर निर्गुण योग आदि के सम्प्रदाय ने। हिन्दी भाषा में कृष्ण-भक्ति प्रचार में वल्लभ-सप्रदाय का प्रधान हाथ रहा है। सूरदास आदि अष्टछाप के कवियों और गोकुलनाथ आदि की 'वैष्णवन की वार्त्ताओं' में व्रजसाहित्य खूब फला-फूला। उधर तुलसीदासजी से रामभक्ति को बड़ा वेग मिला। सिद्धों एवं नाथपथियों से सबधित होते हुए कबीर के व्यापक प्रभाव से अनेकों सत-सम्प्रदायों का विकास हुआ। भक्ति और योग के प्रचारक सत-भक्त के प्रचारकों ने हिंदी भाषा को विशेष रूप से अपनाया। फलत इसका प्रचार दूर-दूर तक फैला। तत्कालीन हिंदी के व्यापक प्रभाव के कारण राजस्थान एवं जैन श्वेताम्बर कवियों ने भी हिंदी भाषा को अपना लिया। दिगबर सम्प्रदाय की रचनाएं १७वी शताब्दी से हिंदी में अधिक होने लगी। श्वेताम्बर कवियों ने उस समय तक राजस्थानी एवं गुजराती को ही अधिक अपना रखा था, क्योंकि इसका प्रचार इन दोनों प्रान्तों में ही अधिक रहा है।

राजस्थानी और गुजराती भाषा की परपरा हिंदी के समान ही प्राचीन है। मूलत ये दोनों भाषाएं एक ही थी। १६वी शताब्दी से इनमे पृथक्त्व अधिक स्पष्ट होने लगा। हिन्दी से राजस्थानी का गुजराती की अपेक्षा पृथक्त्व अधिक है। १७वी शताब्दी में राजस्थान के राजाओं का अकबर आदि से सबध अधिक बढ़ा। फलत १८वी शताब्दी में राजस्थान मे प्रान्तीय भाषा राजस्थानी के साथ-साथ व्रज भाषा में भी साहित्य निर्माण होने लगा। व्रज प्रदेश राजस्थान के एक भाग से मिलाजुला है। कृष्ण-भक्ति का प्रचार भी राजस्थान में इस समय से बढ़ने लगा। फलत व्रज भाषा का प्रभाव बढ़ना भी स्वाभाविक था।

१८वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कच्छ मे व्रजभाषा के प्रचार का हम एक आश्चर्यजनक प्रयत्न हुआ पाते हैं।

इसके मूल में क्या प्रेरणा रही होगी, यह तो अभी स्पष्ट नहीं हो सका है, पर भुज (कच्छ की राजधानी) के राजा लखपत और जैनयति कनककुशल, इन दोनों का अद्भुत सहयोग हम इस प्रयत्न के मूल में पाते हैं। कनक-कुशल तपागच्छ के विद्वान् यति थे। विशेष समय उनका प्रायः विहार राजस्थान में होता रहा। फिर तीर्थयात्रादि के प्रसंग से गुजरात, काठियावाड़ और कच्छ में पधारे और वहां कच्छपति राउल देसल के पुत्र राजकुमार लखपत ने इनको गुरु रूप में स्वीकार किया, इनसे स्वयं व्रजभाषा का अभ्यास किया और उन्हें गांव आदि देकर वहीं स्थायी रूप से रहने को बाध्य कर दिया। व्रजभाषा व छंद एवं काव्य की शिक्षा के लिए उन्होंने तत्त्वावधान में राउल लखपत ने एक विद्यालय स्थापित किया। इस में पढ़नेवाले विद्यार्थियों के लिए राज्य की ओर से खाने-पीने व रहने आदि का प्रबंध भी किया गया। राजस्थान के चारण आदि लखपत की सभा में पहले से थे ही। उनके वंशजों और जाति वालों ने इस विद्यालय से बहुत लाभ उठाया। खाने-पीने और रहने आदि की सुविधा होने से चारण और भाट चारणों के लड़के राजस्थान से विगल, छंद काव्य आदि की शिक्षा के लिए वहां पहुंचने लगे। कुछ वर्ष पहले तक भी यह परम्परा चालू थी। भुज के इस विद्यालय में पढ़कर आये हुए कई चारण विद्वान् मेरे सम्पर्क में आये हैं। सं० १९३२ में आत्माराम केशवजी द्विवेदी लिखित कच्छ के इतिहास से पता चलता है कि उस समय तक कनककुशलजी की शिष्य-परम्परा के भट्टारक जीवन-कुशलजी की अध्यक्षता में यह विद्यालय चल रहा था। 'कच्छ कलाधर' नामक ग्रंथ के लेखक दुलेराम एल काराणी ने भी इस विद्यालय को व्रजभाषा की शिक्षा के लिए हिन्दी भर में एक अजोड़ और उत्तम संस्था बतलाया है। देशी राज्यों के विलीनीकरण के पश्चात् का तो पता नहीं, पर चार वर्ष पूर्व यह विद्यालय चालू था। 'चारण बंधु' नामक पत्र के सं० २००८ के कार्तिक अंक में एक विज्ञप्ति निकली है। उसमें चारण प्रगति मंडल के द्वारा संचालित श्री लखपत चारण छात्रालय के लिए धन-संग्रह एवं विद्यार्थियों को पढ़ने के लिए भेजने की अपील उसके मंत्री माधवसिंह गढ़वी के नाम से प्रकाशित हुई है। इससे इस विद्यालय की कुछ गिरती हुई दशा का आभास होता है। यतिजी द्वारा संचालित विद्यालय एवं प्रस्तुत चारण छात्रावास सम्बन्धित मालूम होते हैं। सम्भव है यतिजी की परंपरा में अब कोई न रहा हो और अब उसका प्रबन्ध आदि चारण प्रगति मंडल के हाथ में आ गया हो। यह भी विदित हुआ है कि यहां से 'भाषाभूषण' आदि ग्रंथ पाठ्यक्रम के लिए प्रकाशित हुए थे। व्रजभाषा एवं काव्य निर्माण की शिक्षा का ऐसा सुन्दर प्रयत्न अन्यत्र कहीं भी जानने में नहीं आया। हिन्दी व्रज-भाषा के क्षेत्र में भी ऐसी सुविधा शायद ही कहीं हो।

तेरह वर्ष पूर्व की बात है कि बीकानेर के बृहत् जैन-ज्ञान-भंडार में लखपत गुण पिंगल नामक छंदग्रंथ की प्रति मिली थी और उसका विवरण अपने संपादित 'राजस्थानी' नामक पत्र के भा० ३ अं० ४ में प्रकाशित किया था। यह राजस्थानी भाषा का छंद ग्रंथ है और भुज के महाराजकुमार लखपत के आश्रित कवि चारण हमीर ने सं० १७९६ में इसकी रचना की है। अपने विषय का यह बहुत अच्छा ग्रंथ है। सर्व प्रथम राउल लखपत के विद्यानुराग का परिचय मुझे इसी ग्रंथ से मिला था। फिर भी इसी कवि का राजस्थानी (नाममाला) कोष भी प्राप्त हुआ। तदन्तर चुरु के यति ऋद्धकरणजी के संग्रह में उपर्युक्त कनक-कुशलजी के शिष्य कुंवर-कुशल रचित—'लखपत जस सिन्धु' नामक अलंकार विषयक हिंदी ग्रंथ देखने में आया, जिसका विवरण मैंने अपने 'राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज' भा० २ के पृ० ३४ में प्रकाशित किया था। मिश्रबन्धु विनोद के पृ० ६६७ पर भी इस ग्रंथ का परिचय प्रकाशित है। पर उसमें कुंवर-कुशल और कनक-कुशल दोनों भ्राता थे और जोधपुर के रहने वाले थे, लिखा है, जो सही नहीं है। वास्तव में कुंवर-कुशल, कनक-कुशल के शिष्य थे। ये भुज में ही अधिक रहे प्रतीत होते हैं।

अभी-अभी जयपुर आने पर राजस्थान पुरातत्त्व मंदिर के लिए संग्रहीत (उसके डाइरेक्टर मुनि जिनविजयजी से) हस्तलिखित प्रतियों को देखा तो उसमें कनक-कुशल-जी की शिष्य परम्परा का ग्रन्थ संग्रह भी कहीं से आ गया

(शेष पृष्ठ ५७ पर)

ओट का मूल्य

रावी

किसी नगर में एक उद्योगपति का चमड़े का एक बड़ा कारखाना था। कारखाने के कर्मचारियों ने एक बार मालिक से असन्तुष्ट होकर वेतन में पच्चीस प्रतिशत वृद्धि की मांग की, और जब उसने इतना वेतन बढ़ाने में अपनी असमर्थता प्रकट की तो उन्होंने मिलकर हड़ताल कर दी। हड़ताल का निपटारा होते-होते पचास कर्मचारियों ने उस कारखाने की नौकरी छोड़ दी।

इन पचास जगहों की पूर्ति करके काम को कुछ और बढ़ाने के विचार से उद्योगपति ने नगर के समाचार-पत्रों में विज्ञापन छपवाया कि उसे कारखाने के लिए एक सौ नये आदमियों की आवश्यकता है। इनका वेतन उसने पिछले आदमियों से तीस प्रतिशत अधिक विज्ञापित किया। इस पर पांच हजार के लगभग अर्जियां उसके पास आ गईं।

उद्योगपति ने इन सभी प्रार्थियों को एक निश्चित दिन बुलवाया और उनसे कहा कि वे अपने प्रार्थना-पत्रों के साथ मनुष्यों के किसी सुयोग्य पारखी व्यक्ति से प्राप्त कर अपनी भलमनसाहत का प्रमाण-पत्र भी प्रस्तुत करें।

स्वभावतया सभी प्रार्थियों के मन में यह प्रश्न उठा कि नगर में ऐसा कौनसा व्यक्ति है जो मनुष्यों का सुयोग्य पारखी है और उन्हें भलमनसाहत का प्रमाण-पत्र दे सकता है। उनमें से कुछ ने यह प्रश्न उद्योगपति से पूछ भी लिया।

उद्योगपति ने कहा कि अमुक हाट के भीतर अमुक गली के बगल में जूतों की मरम्मत करने वाला जो मोची बैठता है उसका प्रमाण-पत्र उसे मान्य होगा।

उस मोची को उनमें से अधिकांश प्रार्थियों ने गली के किनारे बैठे राहगीरों के जूते गांठते देखा था। उनका उससे कोई व्यक्तिगत परिचय नहीं था। यह कैसे उनकी भलमनसाहत की परख करेगा और क्योंकर उन्हें उसका प्रमाण-पत्र देगा, इस संदेह को लिये हुए भी वे सभी लोग अगले दिन उसके पास पहुंचे।

मोची ने बिना कुछ कहे-सुने उन सभी को कागज के एक-एक टुकड़े पर उनके नाम के आगे एक-एक शब्द लिख कर दे दिया। इन परचों पर निम्नलिखित चार शब्दों में से कोई-न-कोई एक लिखा हुआ था :

(१) भला (२) बहुत भला (३) साधारण, (४) संदिग्ध।

प्रार्थियों में से जिनको 'संदिग्ध' के प्रमाणपत्र मिले थे उनमें से बहुत कम और शेष में से अधिकांश उद्योगपति के पास इन प्रमाण-पत्रों को लेकर फिर पहुंचे।

प्रथम कोटि का—'बहुत भला'—प्रमाण-पत्र पाने वालों की संख्या लगभग एक सहस्र थी। इन्हींमें से सौ को छांट कर उद्योगपति ने नौकर रख लिया।

मनुष्यों के इस महान् पारखी मोची की सारे नगर में चर्चा फैल गई और जिन्हें उसने प्रथम कोटि का प्रमाण-पत्र दिया था वे तो उसके प्रशंसक और जिन सौ को नौकरी मिल गई थी वे उसके भक्त ही हो गये।

कुछ ही दिनों बाद उस उद्योगपति ने घोषित किया कि उसने उस मोची को अपना परामर्श-मंत्री नियुक्त कर लिया है और कार्यकर्ताओं की नियुक्ति, वेतन-वृद्धि और उन्हें पृथक् करने के काम आगे उसीके आदेश से होंगे।

लेकिन लोगों ने देखा कि इस नियुक्ति के बाद भी यह मोची सारे दिन उसी जगह उसी काम में लगा रहता है।

उद्योगपति के बहुत से कर्मचारी अब उस मोची के पास जाते, उसकी कुछ प्रशंसा और सेवा-पूजा करना चाहते, उससे कुछ लाभ-प्राप्ति की चर्चा उठाना चाहते, पर यह उनका कोई भी सत्कार स्वीकार न करता और उन्हें कोई वचन न देकर उनके प्रति केवल अपनी मंगल-कामना प्रकट करके उन्हें बिदा कर देता। इस मोची के प्रति, स्वभावतया, उनके हृदयों में श्रद्धा बढ़ती गई।

अगले वर्ष उद्योगपति ने घोषित किया कि वह अपने परामर्श-मंत्री के आदेश से नये नियुक्त सौ कर्मचारियों के

प्रत्यावर्तन की प्रणाली

राजेन्द्र

युवामताधिकार और सर्व-प्रभुत्व-सम्पन्न लोक राज के सिद्धान्तों पर आधारित भारतीय गणतन्त्र आधुनिक युग में प्रजातंत्रीय व्यवस्था का एक सबसे बड़ा परीक्षण माना जाता है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि एक अभूतपूर्व साम्राज्य के समस्त पशुबल के सफलतापूर्वक प्रतिरोध के परिणामस्वरूप भारत द्वारा स्वतन्त्रता-प्राप्ति की गणना विश्व इतिहास की निर्णायक घटनाओं में हो सकती है। शताब्दियों से शोषित, उपेक्षित तथा प्रपीड़ित ३५ करोड़ भारतीयों के लिए नए संविधान द्वारा वह मानवोचित अधिकार प्राप्त हो गए जिनके लिए अन्य देशों में कई बार रक्तपात हुआ।

इस पृष्ठभूमि में यह स्पष्ट है कि वर्तमान पीढ़ी के भारतवासियों पर इस संविधान को सफल बनाने का महान उत्तरदायित्व है। किसी भी संविधान में न्यूनता अथवा अभाव रह जाते हैं जिनका पता तब लगता है जब उनका सक्रिय पालन किया जाता है। इस प्रकार कई वर्षों के प्रयोगों से कई एक रूढ़ियां अथवा रीतियां स्थापित हो जाती हैं जो इन अभावों की पूर्ति करती हैं। भारतीय संविधान के निर्माताओं के सामने भी यही समस्या है कि क्या अभी से सार्वजनिक एवं राजनैतिक जीवन में उन रीतियों या रूढ़ियों की नींव रखी जाय जो कि बाद में संविधान की अपूर्णताओं को पूरा कर सकें और संविधान में तदनुरूप संशोधन पास करवाने के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार कर सकें।

हमारे संविधान की प्रमुख विशेषताएं प्रायः ब्रिटेन के वैधानिक सिद्धान्तों, इतिहास एवं अनुभवों पर आधारित हैं। किन्तु स्पष्ट है कि किसी देश का संविधान उसकी राजनैतिक आवश्यकताओं को व्यक्त करता है। इसलिए संविधान में तो परिस्थितियों के अनुसार फेर-बदल किया जा सकता है; किन्तु यह असम्भव है कि किसी दूसरे देश के संविधान को अक्षरशः किसी अन्य देश पर लागू किया जाय अथवा लागू करने के लिए ही राजनैतिक जीवन को मनोवांछित रूप दे दिया जाय। इसलिए यह आवश्यक है कि हमारे राजनैतिक जीवन की एक बड़ी मांग को पूरा करने के लिए संविधान में या तो संशोधन हो या उपयुक्त परम्पराओं को वैधानिक स्थिति मिल जाय।

हमारी वैधानिक व्यवस्था और हमारे राजनैतिक जीवन में कई एक महान् असंगतियां मौजूद हैं। ब्रिटेन के ढंग पर निर्मित किसी पार्लमेंटरी विधान की सफलता के लिए पार्टी-सिस्टम की दृढ़ता और सुसंगठित विरोधी दल का अस्तित्व अनिवार्य है, किंतु भारत के वर्तमान राजनैतिक स्तर में राजनैतिक पार्टियों की स्थापना अथवा उनका संचालन किसी सुस्पष्ट सिद्धान्तों की अपेक्षा कुछ महत्वाकांक्षी व्यक्तियों या वर्गों की स्वार्थ-सिद्धि को लक्ष्य मानकर सम्पन्न होता है। ब्रिटेन के पार्लमेंटरी विधान में विरोधी दल वैधानिक ढांचे का एक दूसरा मूलभूत स्तम्भ है; किन्तु हमारे देश में बहुत-सी पार्टियों के बावजूद कोई भी ऐसा सुसंगठित एवं सुव्यवस्थित दल जनता के समक्ष नहीं आया जो कि एक अधिकारपूर्ण विरोधी दल का स्थान ले सके। एक सुदृढ़ पार्टी-सिस्टम और सुसंगठित विरोधी दल राजनैतिक अवसरवादियों की महत्वाकांक्षाओं पर उचित अंकुश रखने के लिए परमावश्यक है। उनकी अनुपस्थिति में व्यक्तिगत हित-सिद्धि के लिए सिद्धान्तों से खिलवाड़ और जनता के प्रति दिये गए वचनों से विश्वासघात अपवाद नहीं, बल्कि साधारण-सी बात हो जाती है।

इस परिस्थिति में यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि देश के पार्लमेंटरी जीवन को समुन्नत बनाने के लिए, अथवा राजनैतिक दलों एवं नेताओं की उच्छृंखलता को रोकने के लिए वे कौनसे साधन हैं, जो आधुनिक राजनीति-विज्ञान प्रस्तुत करता है। ब्रिटेन के पार्लमेंटरी सिस्टम में तो यही एक उपाय है कि अगले आम चुनावों में जनता शासकों के प्रति अपना रोष प्रकट करने के लिए उनके

विरोधियों को मतदान द्वारा पदासीन कर दे। किन्तु एक आम चुनाव से लेकर दूसरे आम चुनाव तक चार या पांच साल की अवधि में जनता के पास अवांछित शासकों को पदच्युत करने का कोई साधन नहीं। यह ठीक है कि भाषण और प्रकाशन की स्वतन्त्रता के उपयोग से अगले चुनावों तक सरकार को मतदान द्वारा बदलने की तैयारियों में विभिन्न विरोधी दल लगे रहते हैं। लेकिन कई बार स्थिति इतनी बिगड़ जाती है कि अगले साधारण चुनाव के आने तक जनता अपने असन्तोष को व्यक्त करने के लिए ऐसी दिशाएं चुन लेती है जो संविधान की मूल धारणाओं के सर्वथा प्रतिकूल होती हैं और जिसका परिणाम प्रायः अधिनायकवादी शासन प्रणाली की स्थापना होती है।

ऐसी अवस्था में आवश्यक है कि जनता को यह अधिकार प्राप्त हो कि जब संसद या विधान मंडल के किसी सदस्य की गतिविधियां निर्वाचन-कर्ताओं के स्पष्ट मत के प्रतिकूल हों तो एक व्यवस्थित रीति के अनुसार उसे अपने पद से अलग कर दिया जाय। अंग्रेजी में इस पद्धति को (Recall) प्रत्यावर्तन कहते हैं। ब्रिटेन के संविधान में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। इसी प्रकार भारतीय संविधान में किसी धारासभाई को धारासभा की नियत अवधि से पूर्व अविश्वास के आधार पर पद-च्युत करने की कोई अनुमति नहीं।

इस पद्धति की आधारभूत धारणा यह है कि निर्वाचित प्रतिनिधि जनसाधारण की ओर से नियुक्त किये गए एजेंट हैं, जिनपर निर्वाचकों का अंकुश सदा ही रहना चाहिए और अविश्वास की स्थिति में अवधि का कोई भी प्रतिबन्ध निर्वाचकों को अवांछित प्रतिनिधि के विरुद्ध सक्रिय होने से नहीं रोक सकेगा। प्रायः ऐसा होता है कि निर्वाचकों में से २५ प्रतिशत किसी प्रतिनिधि के प्रत्यावर्तन के लिए प्रार्थना-पत्र दे सकते हैं जिसकी स्वीकृति की सूरत में सम्बन्धित प्रतिनिधि को परिस्थिति के अनुसार दूसरी बार चुनाव लड़ना पड़ता है।

'प्रत्यावर्तन' एक विवादास्पद विषय है। इसके समर्थक इसे लोकतन्त्र प्रणाली का एक तार्किक परिणाम मानते हैं। जब जनता ही राजनैतिक शक्ति का चरम स्रोत है तो किसी पद की अवधि जनसाधारण को किसी भी वांछित दिशा में कार्रवाई से नहीं रोक सकती। इसके अतिरिक्त सम्बन्धित पदाधिकारी भी अपने आपको निहित हितों के अनुचित हस्तक्षेप से सुरक्षित करनेके लिए निर्वाचकों के विश्वास को पुनः प्राप्त कर सकता है और अपनी नीति का दृढ़तापूर्वक पालन कर सकता है। प्रत्यावर्तन का एक स्वस्थ प्रभाव जनसाधारण पर यह होता है कि वे भी अपने उत्तरदायित्व को पूर्णरूपेण अनुभव करते हैं। कई बार यह भी देखा गया है कि किसी धारासभाई के विरुद्ध लगाए गए भ्रष्टाचार अथवा अपने पद के अनुचित प्रयोग के आरोपों का प्रमाण दुष्प्राप्य है, किन्तु जनसाधारण में उसकी इतनी कुख्याति हो चुकी है कि सम्बन्धित धारासभा की मान-प्रतिष्ठा को बट्टा लगने का भय है। ऐसी अवस्था में प्रत्यावर्तन ही ऐसी कुंजी है जो इस गुत्थी को सुलझा सके। यह पद्धति जनसाधारण को बाध्य करती है कि वे सार्वजनिक समस्याओं में अपनी दिलचस्पी बनाये रखें और किसी भी दशा में किसी भी अनियमितता से समझौता न करें।

प्रत्यावर्तन के विरोध में यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि इस पद्धति से शासन-विधान में सदा ही अनिश्चित अवस्था रहेगी, किंतु यह विचारणीय बात है कि प्रत्यावर्तन का प्रयोग इतना ज्यादा नहीं किया जाता जितना कि साधारण समीक्षक समझते हैं। इसके विपरीत प्रत्यावर्तन का अधिकार राजनैतिक जीवन में उचित सतुलन प्रदान करता है। इसलिए प्रत्यावर्तन का महत्व इस अधिकार के प्रयोग में नहीं, किन्तु इसके स्वस्थ प्रभाव एवं परिणाम में है।

प्रत्यावर्तन का अधिकार सोवियत यूनियन के विधान की एक उल्लेखनीय विशेषता है। सोवियत संघ के समस्त अंगभूत राज्यों के संविधानों में स्वीकृत है। इसके अनुसार किसी भी निर्वाचन क्षेत्र की ओर से कोई भी प्रतिनिधि वापस बुलाया जा सकता है।

आजकल के वातावरण में प्रत्यावर्तन के अधिकार की मांग विवाद का विषय बन सकती है। राजनैतिक चेतना के इस युग में किसी वाद विवाद से जी चुराने से काम नहीं चलेगा। यह सर्वथा उचित है कि जनता प्रत्यावर्तन के गुण-दोषों पर तटस्थ भाव से विचार करके अपनी धारणा को सुदृढ़ एवं सुस्पष्ट करे।

शान्तिनिकेतन के उत्सव

कुमारिलस्वामी

मैं १९४४ के जुलाई माह में शान्तिनिकेतन पहुंचा था। १०-१२ दिन तक तो मुझे अच्छा नहीं लगा, पर फिर शीघ्र ही वहां के लोगों के साथ घुलमिल गया। सबसे पहले मैं गुरुजनों के पास जाकर वहां के बारे में प्रश्न पूछा करता था, क्योंकि नई-नई बातों को जानने की जिज्ञासा होती थी। कालेज, गुरुकुल और आश्रमों को देख ही चुका था, पर शान्तिनिकेतन में इनके अलावा क्या विशेषताएं हैं इसीको समझने में मेरा अधिक समय जाता था।

गुरुदेव ने जिस उद्देश्य से इसकी स्थापना की उसमें वे निस्सदेह सफल हुए। इसको बनाने के लिए बड़े-बड़े कलाकार और विद्वान् उन्होंने इकट्ठे किये थे। उन सब साथियों को साथ लेकर उन्होंने जीवन के निर्माण और उपयोग का नया मार्ग खोजा। मेरे विचार में शान्तिनिकेतन को गन्धर्वलोक कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं, क्योंकि उन्होंने इसी ढंग से उसे बसाया। अगर बाहर का कोई मनुष्य वहां जाकर चुपचाप एक कोने में बैठा रहे तो वह बहुत कुछ सीख सकता है। यह शान्तिनिकेतन का एक विशेष गुण समझा जाना चाहिए। गुरुदेव ने सारे ससार का भ्रमण करके जहां जो-जो वस्तु अच्छी मिली वह शान्तिनिकेतन में लाकर सजा दी और साथ ही हमारे देश की संस्कृति को पुनर्जाग्रत किया। शान्तिनिकेतन में जब कक्षाएं लगती हैं तबका दृश्य तो देखते ही बनता है। कोई कक्षा शाल के वृक्षों के तले तो कोई आम के पेड़ों के नीचे लगती है। कभी-कभी तो पेड़ों के ऊपर तक पढ़ते होते हैं। कला-भवन और संगीत-भवन को छोड सभी क्लासें बाहर ही होती हैं। शान्तिनिकेतन में मुख्य विभाग कला-भवन, संगीत-भवन, शिक्षा-भवन (कलिज), पाठ-भवन (स्कूल), विद्या-भवन (पुस्तकालय तथा रिसर्च) हिन्दी भवन, चीन भवन, आदि हैं। इन सब भवनों को चलाने के लिए अच्छे-अच्छे विद्वान् वहां बैठे हुए हैं। वहां ऊधम मचाने वाले लड़के कॉलेज के ही होते हैं, क्योंकि कॉलेज की शिक्षा-प्रणाली का प्रभाव जो है।

जुलाई में वर्षा-ऋतु आरम्भ हो जाती है। हमने कभी भी किसी कॉलेज व स्कूल के विद्यार्थियों को लेकर वर्षा में घूमने जाने का तरीका नहीं देखा। मगर शान्तिनिकेतन में यह मामूली-सी बातें हैं। एक दिन मैं अपने कमरे के सामने बरामदे में बैठा मूसलाधार वर्षा को देख कर आनन्दित हो रहा था। इतने में एक साहब मेरे पास आए और कहा, "कुमारिलजी, आओ वर्षा में घूमने चलें।" मैंने बड़े आश्चर्य के साथ उससे कहा, 'तुम पागल तो नहीं हो, कहीं यह वर्षा में घूमने का समय है! ऐसा करने पर तो बुखार, सर्दी, जुकाम और पता नहीं क्या-क्या बीमारियां आ घेरती हैं। इसलिए भाई, मैं नहीं जाऊंगा।" मेरी बात समाप्त होते ही एक प्रोफेसरसाहब आ पहुंचे और कहने लगे, "इन सब बातों की जिम्मेवारी हम लेते हैं। तुम चलो।" इतने में कुछ लड़के-लड़कियों ने आकर मुझे घेर लिया। दो-तीन ने मेरा हाथ पकड़ा और जबरदस्ती अपने साथ घसीट ले गए। शुरू-शुरू में गुस्सा तो आया, पर फिर शान्त हो गया। मैंने उस दिन जिस आनन्द का अनुभव किया शायद ही आनेवाले जीवन में कभी ऐसा आनंद मिले। उस दिन हम एक छोटी-सी नदी में लुढकते-लुढकते तीन-चार मील चले गए थे। ऐसी कितनी ही टोलियां अपने-अपने विभाग से निकलती हैं। इन सबको देखते-देखते अलौकिक आनन्द की प्राप्ति होती है।

मैंने सुना है कि गुरुदेव तो कभी-कभी ऐसा करते थे कि बच्चों की क्लास चल रहा है और उस समय मानो वर्षा होने वाली है तो वे चुपके से वहां पहुंच कर किसी की आड़ में खड़े होकर बच्चों को इशारा कर देते थे। बस तब क्या था, एक-एक कर सब वहां से नम्रत हो जाते थे। सारी क्लास खाली हो जाती थी। बेचारा मास्टर मन में कुढ़कर रह जाता। कोई-कोई मास्टर तो गुरुदेव के ऊपर दांत भी पीसते थे, पर वे बच्चों को लेकर जंगल में जाते, वहां उन्हें प्राकृतिक सौन्दर्य के

बारे में बताते, कभी गाना सुनाते, कभी गाना सुनते। इस प्रकार खलते-कूदते जीवन बिताते थे।

वर्षाऋतु के बाद वृक्षारोपण का उत्सव मनाते हैं। पेड़ लगाने के स्थान पहले ही निश्चित रहते हैं। एक सुन्दर डोली को फूलों से सुसज्जित कर चार लड़कों को सुन्दर कपड़े पहनाते हैं। ये लड़के डोली को उठाकर चलनेवाले होते हैं। उनके सामने दो लड़कियां होती हैं जो कि कुछ आवश्यक सामान लिए हुए रहती हैं। उनके आगे गान-मण्डली और नृत्य करनेवाली लड़कियां होती हैं। नृत्य करते हुए एक छोटा-सा जुलूस बना कर निश्चित स्थान पर जाते हैं। वहां पर मन्त्रोच्चारण के साथ-साथ वृक्षारोपण होता है। यह उत्सव बड़ा ही अच्छा और देखने लायक होता है। इसके बाद हल-कर्षण (हल जोतने का उत्सव) मनाया जाता है। एक जगह को अल्पना से बड़ा सुन्दर सजाया जाता है। बैलों को भी अलंकृत किया जाता है। किसान भी अच्छे सजधज कर आते हैं। आस-पास के संथालों गांव के लड़के-लड़कियां, युवक-युवतियां सजकर आते हैं। उत्सव आरम्भ होने के बाद सन्थालियों का छोटा-सा नृत्य भी होता है। यह उत्सव भी सस्कृत के श्लोकों के साथ ही आरंभ होता है। और साग-सब्जी की छोटी-सी प्रदर्शनी हो जाती है। यह उत्सव देहात वालों के लिए बड़ा ही अच्छा है।

इसके बाद वर्षा मंगल उत्सव या कहिए इन्द्रदेव को प्रसन्न करने का उत्सव होता है। यह शाम को मनाया जाता है। उस दिन नृत्यमय नाटक खेला जाता है। वह भी गुरुदेव का रचा हुआ होता है। उस समय ऐसा मालूम होता है कि उत्सव के दर्शनार्थ दूर-दूर से काले मेघ उमड़ते-घुमड़ते आते हुए हमारी ताल में अपनी ताल मिलाते हों। कभी-कभी तो जोश में आकर बरस भी पड़ते हैं। बरसने से हमारा मजा किरकिरा हो जाता है।

इस बीच में एक बच्चा का मेला होता है। मेले में बच्चे अपनी अपनी टोली बनाकर अपनी रुचि के अनुकूल दूकानें लगाते हैं। यह मेला आश्रमवासियों के ही लिए है, बाहर से कोई नहीं आ सकता। जो चीजें लड़के बनाते हैं उन सभी को निकेतन के ही लोग खाते हैं।

इसके बाद पहला वैशाख मनाते हैं। उस दिन मन्दिर होता है। मन्दिर के बाद सब आश्रमवासियों को आम्र-कुंज के अन्दर फलाहार खाने को मिलता है। उसके बाद छात्रगण अपने गुरुजनों के चरणस्पर्श कर भक्तिभाव प्रकट करते हैं।

तदुपरान्त पौष-उत्सव आता है। यह उत्सव सर्वोत्कृष्ट व बाहर वालों के लिए दर्शनीय होता है। इसमें उत्तीर्ण छात्रों को उपाधियां मिलती हैं। यह लगातार चार दिन तक चलता रहता है। उपाधि प्रदान करने के समय अपने प्राचीन काल का स्मरण हो आता है। इसके अतिरिक्त आसपास के गांव व दूर-दूर के लोग आकर एक बड़े मेले का आयोजन करते हैं। इस उत्सव में रात के मेले में भाग लेने के लिए संथाली युवक, युवतियां, बच्चे बूढ़े, सभी आते हैं। इनका नृत्य होता है। संथाली-नृत्य के साथ छात्रगण भी भाग लेते रहते हैं। इसके प्रबन्ध के लिए विद्यार्थी ही चुने जाते हैं। वालंटियर का काम यानी सफाई करना आदि सभी काम विद्यार्थी ही करते हैं। इस अवसर पर बाहर के अतिथि भी भोजनालय में सामूहिक भोजन करते हैं। इसकी व्यवस्था भी छात्र व अध्यापकवर्ग ही करता है। इन ड्यूटियों को सभी बड़ी तत्परता से करते हैं। उस अवसर पर इनका कार्य प्रशंसनीय होता है। चौथे दिन शाम को सभी अपने-अपने विभाग की टोलियां बनाकर घूमने के लिए रवाना होते हैं। पहले से ही इनके लिए रेलवे की तरफ से डब्बे तैयार रहते हैं। वे आकर अपने-अपने डब्बे में बैठ जाते हैं। इतने में रेलगाड़ी आकर उन डब्बों को अपने-अपने स्थान के लिए लेकर कूच कर जाती है। कूच के समय डब्बों में से गाने की ऐसी आवाज निकलती है कि इंजन का भी हृदय मचल उठता है।

कलाभवन का घुमक्कड़दल अधिकतर राजगीर, बनारस, खड़गपुर ऐसे ही सुन्दर स्थानों पर जाया करता है। इस यात्रा में खाना-पीना विद्यार्थी ही बनाया करते हैं और रात को कैम्पफायर होता है। उसके साथ नाच, गाना, आदि कुछ-न-कुछ होता ही रहता है। जब नन्दबाबू छात्रों को ले कर किसी सुन्दर स्थान का दर्शन कराने के लिए जाते हैं तो ऐसा लगता है मानो प्राचीनकाल का कोई ऋषि हो।

शान्तिनिकेतन मे करीब-करीब हर महीने पिकनिक के लिए जाते हैं, हर विभाग अलग-अलग ऐसा करता है। कभी-कभी चादनी रात में भी पिकनिक पर जाते है। और इसके अतिरिक्त सारे आश्रम का एक पिकनिक होता है। इससे एक फायदा यह होता है कि सारे आश्रम-वासियो को आपस मे मेलजोल बढाने का अवसर मिलता है।

तदुपरान्त वसन्त-उत्सव आता है। उसकी तैयारी कम-से-कम एक माह पहले से आरम्भ हो जाती है। वसन्तोत्सव के दिन सवेरे सात बजे के करीब कलाभवन के सामने कुछ लड़के-लडकिया एकत्रित हो जाते है। लडकिया वसन्ती रग की साडिया पहनकर, जूडे मे फूल गूथकर, सज-धज के साथ खडी होती है। इधर लडके वसन्ती रग की चादर ओढ कर खडे होते हैं। ये लडकिया कुछ नृत्य करने वाली होती है। ये सब एक जुलूस के रूप में खडे होते हैं। प्रत्येक के हाथ में गुलाल से भरी थालिया होती है। गान मडली के साथ नृत्य करते हुए आम्र-कुज में करीब घटे भर में पहुच जाते हैं। आम्र-कुज को पहले से ही सभा मडप के योग्य सजाया जाता है। सब आश्रमवासी विद्यार्थियो सहित उपस्थित होते है। पहली पक्ति मे लडके-लडकिया होते हैं। वसन्त ऋतु के सस्कृत के श्लोक व गुरुदेव के गाने सभा में सुनाये जाते है। उसके समाप्त होते-होते ही छोटे लडके-लडकिया, जो पहले से ही इस ताक मे बैठते है कि कब सभा का कार्यक्रम समाप्त होने जा रहा है थोड़े से इशारे से गुलालो की थाली पर इस प्रकार झपटते है जैसे बिल्ली चूहों पर। इसके साथ ही बडे आदमी भी रग खेलते है। यह उत्सव भी दर्शनीय होता है।

यहा साहित्यिक रुचि बढाने के लिए तीन साहित्यिक सभाएं है। सीनियर स्टूडेंट्स, स्कूल और शिशु-विभाग। शिशु-विभाग का कार्यक्रम सबसे रोचक होता है। ये लोग कभी-कभी छोटे-छोटे नाटक और कहानिया आदि सुनाया करते हैं। कविता भी सुनाया करते हैं। इसके अलावा अपने-अपने विभाग की ओर से कोई नाटक आदि कुछ न कुछ रोज होता ही रहता है। इससे विद्यार्थियों का अच्छा मनोरजन होता है।

यहा प्रार्थना करने का तरीका भी बडा अच्छा है। रोज क्लास आरम्भ होने से पहले सामूहिक प्रार्थना होती है। इसमें कुछ सस्कृत के श्लोक और गुरुदेव का गाना होता है। मजे की बात यह है कि इसमें भाग लेनेवाले सब विभागो के गाने की बारी एक-एक सप्ताह मे एक बार आती है। इससे हर विभाग के विद्यार्थी यह सोचते रहते हैं कि हम दूसरे से अच्छा गाए। इससे एक फायदा यह है कि सभी को संगीत सीखने का मौका मिल जाता है। बुधवार को साप्ताहिक छुट्टी होती है। उस दिन सवेरे मन्दिर होता है। मन्दिर में सब जाते है। वहा श्री क्षिति बाबू की आध्यात्मिक विषय पर अमृतवाणी सुनकर शाति से अपने-अपने घरो को वापस आते है।

इस प्रकार शातिनिकेतन हसता-खेलता, भावी नागरिक को नवजीवन का पाठ पढाता हुआ अपने पथ पर बढ रहा है। यह नवीन प्रयोग नवभारत की आशा है।

(पृष्ठ ५० का शेष)

है, उसे देख कर मुझे बडी ही प्रसन्नता हुई। रावल लखपत का स्वयं रचित व्रजभाषा का सदा शिव विवाह नामक एक ग्रथ भी उसमें मिला है और उनके गुरु कनककुशलजी के रचित लखपतमजरी नामक और कुंवरकुशलजी के रचित तीन-चार नये ग्रंथ प्राप्त हुए हैं। चारण हमीर का भी यदुवश वशावली नामक कच्छके राजाओ की वशावली सम्बन्धित राज-ग्रथ मिला है। कुवर कुशलजी की परम्परा के लक्ष्मीकुशलजी आदि के भी व्रजभाषा के ग्रथ मिले हैं। अद्यावधि ये सभी ग्रथ साहित्य-ससार मे सर्वथा अज्ञात थे। कच्छ जैसे गुजराती प्रधान देश में व्रजभाषा की शिक्षा एव उन्नति के लिए लगभग २२५ वर्षों से जो महत्त्वपूर्ण प्रयत्न चल रहा है उसका हम हिंदी भाषा-भाषियों को तनिक भी पता नही, यह बडे खेद व आश्चर्य की बात है। अगले अको में इन ग्रथो का परिचय देने का प्रयत्न करूंगा। इससे कच्छ के इतिहास की भी कुछ जानकारी पाठको को मिलेगी। वहा की साहित्य सेवा का परिचय तो मिलेगा ही। हिन्दी के क्षेत्र में यह सर्वथा नवीन शोध होगी।

अनंत पथ का यात्री—'मनुष्य'

रामनारायण उपाध्याय

अनादि काल से अनत पथ पर मनुष्य की साहसपूर्ण जीवनयात्रा चली आ रही है।

'मृत्यु' ने हर बार उसे निगल जाने का प्रयत्न किया, लेकिन जिन्दगी हर बार एक नया स्वरूप लेकर मुस्कराती हुई पाई गई है।

और यों मृत्यु जैसे अनिवार्य सत्य से, सत्य जैसा अनिवार्य जीवन आज तक पराजित नही हुआ है।

जिस तरह दिन भर के श्रम के बाद, मनुष्य रात्रि मे विश्राम पाता आया है ताकि वह नये दिन, नये उत्साह से काम कर सके, उसी तरह जीवन भर के श्रम के बाद, मनुष्य मृत्यु म विश्राम पाता आया है ताकि वह नये जीवन में नये ढग से काम कर सके।

और जिस तरह मनुष्य एक दिन के कार्य को दूसरे दिन आगे बढाता आया है, उसी तरह मनुष्य एक जीवन के कार्य को, दूसरे जीवन में आगे बढाता आया है, और यो उसका जीवन एव कार्य दोनो गतिशील रहे हैं।

मनुष्य जब इस धरती पर आता है तो अपने साथ, जन्म-जन्मान्तर के अनुभव, ज्ञान और कार्य करने की क्षमता लिये रहता है।

यही वजह है कि वह किन्ही अनदेखी वस्तुओ को देखकर ही क्षण भर में इस कदर पहचान लेता है मानो यह सब तो उसकी न जाने कब से देखी भाली वस्तुए रही हो।

चकमक से आग पैदा करनेवाले आदि युग से लगा, बटन से घर भर में प्रकाश भर लेने वाले बिजली के आविष्कार को देखकर, उसने यह कभी नही कहा कि यह मनुष्य के सामर्थ्य से परे कोई नवीन कार्य है। और न जमीन पर रेंगने वाले आदमी को हवा में उडते देखकर उसने कोई आश्चर्य ही प्रकट किया।

अनेका विभिन्न व्यक्तियो से मिलकर भी वह उनमें से कुछ से इस कदर आत्मसात् हो उठता है मानो वह तो उन्हे युगो से जानता रहा हो।

जीवन में एकबार भी न देखे, हिमालय और गगा उसकी आखो में इस कदर छाये हैं कि वह हूबहू चित्र खीच सकता है।

और जिन महापुरुषो के उसने कभी दर्शन तक नही किये, उनके क्षण-क्षण की उसे इतनी जानकारी है जितनी की उन्हे देख समझकर उन पर सस्मरण लिखने वाले भी उन्हे समझ नही पाये थे।

जब वह रामकृष्ण पर चर्चा करता है, तो इतनी सूक्ष्मता और आत्मीयता से मानो वह आज के युग मे रहकर भी उस युग में उनके साथ विचरा हो।

बुद्ध और अशोक ने कब क्या कहा इसका उसे ज्ञान ही नही, भान भी रहा है। और उनके विषय में किसी के भी गलत बोल जाने पर वह उन्हे सुधारने की क्षमता रखता है।

मुश्किल से चन्द वर्षों की उम्र लिए होने पर भी, मनुष्य अपने जीवन में इतने अधिक काम कर जाता है और अपने आसपास एक ऐसे स्नेहिल वातावरण का निर्माण कर जाता है कि पीढियो तक उसकी याद भुलाये नही भूलती।

जिस तरह सूर्य पश्चिम में विलय होने के बाद भी प्रतिदिन अपने प्रखर प्रचड प्रकाश के सहारे, पुन पूर्व मे उदय होता आया है उसी तरह मनुष्य मृत्यु में विलय होने के बाद भी हरबार अपने कार्यों के साथ नये जीवन में अवतीर्ण होता आया है।

और यो अपने जीवन एव कार्यों को आगे बढाते हुए,—अनादि काल से अनत पथ पर—मनुष्य की जीवन-यात्रा बढी जा रही है। आगे और आगे की ओर।

हेमप्रभादेवी दास गुप्ता

शम्भूनाथ सक्सेना

बात बारह वर्ष पूर्व की है। इन पक्तियों का लेखक उन दिनों गृह-उद्योगों की शिक्षा प्राप्त करने के लिए 'सोदपुर आश्रम' गया हुआ था। उस समय विविध प्रान्तो तथा तत्कालीन रियासतो की ओर स चुने हुए विद्यार्थियो को गृह-उद्योगो की शिक्षा ग्रहण करने के लिए खादी प्रतिष्ठान, सोदपुर (बगाल) भेजा जाता था, जहा वे रचनात्मक कार्यक्रम, कुटीर-उद्योगों तथा ग्राम-सुधार की विधिवत् शिक्षा ग्रहण कर सकें और उसके उपरान्त अपने क्षेत्रो मे आकर कार्य आरम्भ कर सकें। मुझे मिला कर अन्य प्रान्तो से आये हुए कुल विद्यार्थियों की सख्या लगभग २५ के थी। विद्यार्थी मैसूर, उत्तर-प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, रामपुर, इन्दौर, ग्वालियर, जयपुर आदि स्थानों के निवासी थे। इन विद्यार्थियों मे अधिकाश ऐसे थे जिनका भोजन गेहू था। लेकिन आश्रम की प्रथा के अनुसार चावल खाने पडते थे, जो उन्हें रुचिकर नही थे। रुचि के अनुकूल भोजन न मिलने के कारण भोजन की ओर से अरुचि उत्पन्न होना स्वाभाविक था। लेकिन आश्रम के अनुशासन के भय से विरोध प्रकट करने का किसी को साहस नही होता था। अत. जो कुछ सात्विक भोजन के नाम पर मिलता था, उसपर सन्तोष कर लेना पडता था। धीरे-धीरे वह भोजन मेरे लिए अग्राह्य और अभक्ष्य हो गया। मैंने अन्य साथियो से कहा कि सतीशदा, जो कि आश्रम के अधिष्ठाता हैं, के सामने अपनी कठिनाई रखी जाय और भोजन मे चावल के स्थान पर गेहू की रोटियो की माग की जाय। कुछ ने सतीशदा के सामने जाने से स्पष्ट मना कर दिया, कुछ ने इधर-उधर की दलीलें देकर बात को वही समाप्त कर देने की सलाह दी और कुछ ने कहा—'तुम आगे चलो, हमारी हार्दिक सहानुभूति तुम्हारे साथ है।' उस परिस्थिति मे मैं बिल्कुल अकेला पड गया। मुझे किसी का सक्रिय सहयोग प्राप्त न हुआ। इतना ही नहीं, बल्कि हममें से ही किसी ने जा कर सतीशदा से कह दिया कि मैं अन्य विद्यार्थियो को भडका कर आश्रम का अनुशासन भग करना चाहता हूं। बडी परेशानी में फस गया। दूसरे दिन प्रात कालीन प्रार्थना के पश्चात् सतीशदा ने मुझे अपने कमरे में बुलाया। बातचीत हुई। सतीशदा अपनी बात पर अडे रहे। उनका कहना था कि जो आश्रमवासियों को खाने के लिए मिलता है, वही हमें खाना उचित है। इस विषय मे कोई विभेद उचित नहीं है। इस सकट से निर्वाण दिलवाया मा हेमप्रभादेवी ने। उन्होंने कहा—"यदि तुम लोगों की इच्छा रोटी खाने की है तो उसकी व्यवस्था कर दी जायगी। हो सकता है कि इच्छा के विरुद्ध चावल का उपयोग करने के कारण तुम लोग बीमार पड जाओ। कल से तुम लोगो को रान्नघर (रसोईघर) में रोटी ही मिलेगी।"

इस घटना से मैं मा हेमप्रभादेवी से बहुत अधिक प्रभावित हुआ। मैंने अनुभव किया कि हेमप्रभादेवी दास गुप्ता में मातृत्व-भावना प्रबल है। आश्रम के किस व्यक्ति को, किस वस्तु से सुविधा मिलती है, और कौन-सी वस्तु हानिकर है, इस ओर वे सचेत हैं। दूसरे दिन से हमें नियमित रूप से भोजन के साथ रोटिया मिलने लगी। जो लोग हेमप्रभादेवी से परिचित हैं, वे जानते हैं कि मा स्वभाव से कितनी विनम्र, मृदुभाषिणी, कर्तव्यपरायण और सहृदय हैं। नारी के सर्वोपरि गुणों का उनके अन्दर समन्वय है। वे एक आदर्श पतिपरायण विदुषी हैं। आदरणीय सतीशदा की वे सच्चे मानो में जीवन-सहचरी हैं। उन्होंने सदैव सतीशदा को उस मार्ग पर बढने की प्रेरणा तथा सहायता दी है, जिसे एकबार उन्होंने अपने जीवन में चुन लिया। कस्तूरबा की तरह उनका जीवन सादगी को अपनाये हुए है। आडम्बर से कोसों दूर, प्रदर्शन की भावना से रहित, एक विशुद्ध देश-सेविका, जिसके हृदय में अपने राष्ट्र के प्रति, अपने प्रान्त के प्रति, अपने प्रान्त के ग्रामो के प्रति अगाध ममता है, परदु:ख को अनुभव करने की अनुभूति है, सेवा की लगन है और मुल्क को समुन्नत करने की

नमता है।

उन्होंने बगाल के ग्रामों में प्रसारित गरीबी को, हीनता को और दुर्दैव के प्रकोप से प्रपीड़ित मानव को, उसकी समस्या तथा विषम परिस्थितियों को बहुत निकट से देखा है। उन अनुभवों को उन्होंने खादी प्रतिष्ठान सोदपुर की प्रमुख साप्ताहिक पत्रिका 'राष्ट्रवाणी' में प्रकाशित किया है। उन (यात्रा-पत्रों) को पढ़कर ग्रामों में बसे हुए बगालियों की दुरवस्था का यथार्थ चित्र सामने आ जाता है। मा हेमप्रभादेवी, आज की समाज-सेविकाओं और देश सेविकाओं की तरह न तो कल्पना-लोक में विचरण करती है और न बाह्य प्रदर्शन की भावना में आवृत है। बड़ी-बड़ी योजनाएं बनाना, मेज और कुर्सियों पर बैठकर समस्याओं पर विचार-विनिमय करना और लम्बे-चौड़े वक्तव्य देना उनका काम नहीं है। वे एक सरल, खादी और महात्मा गांधी के रचनात्मक कार्यक्रम में अडिग विश्वास रखनेवाली ग्राम-सेविका है। उनका कार्य-क्षेत्र नगर नहीं है, उनका भाषण देने का स्थान कलकत्ता नहीं है, बल्कि नगरों से दूर बसे हुए ग्राम है, जहां राजनीतिज्ञों की नजर नहीं पहुंचती, जहां नगरों के क्लबों, गोष्ठी-भवनों में बनाई गई योजनाएं, अपना दिवाला निकाल बैठती है, जहां केवल रचनात्मक भावना और श्रम का ही मान है।

मा हेमप्रभादेवी के नाटे कद, दुर्बल शरीर और सादी वेश भूषा में परिवेष्टित प्रभावशाली आकृति को देख कर इस बात का अनुमान लगाना कठिन है कि उनमें बगाल के गन्दे, बाढ और अकाल से उजड़े हुए ग्रामों में जाकर कार्य करने की अदम्य क्षमता है। उनमें कठिन-से-कठिन परिस्थितियों में मार्ग अन्वेषण करने और जीवन में व्याप्त कुरूपताओं से सघर्ष करने का बल है। अविभाजित भारत के नोआखाली जिले के ग्रामों में उन्होंने पैदल जाकर वहां के ग्रामवासियों की जो सहायता की है, उनमें शिक्षा, कुटीर-उद्योगों, खादी के प्रति जो स्नेहभाव उत्पन्न किया है, वह कार्य आज के 'कर्म' की भावना से विहीन परिस्थितियों में निःसन्देह स्मरणीय है। बगाल में जो खादी को प्रोत्साहन मिला है और आज भी खादी के प्रति प्रेम-भाव है, उसका बहुत कुछ श्रेय हेमप्रभादेवी को है। उन्होंने बगाल की आत्मा—उन ग्रामों की समस्याओं को अच्छी तरह समझा है, जिनके उन्मूलन न होने के कारण ग्रामश्री विनष्ट होती जा रही है।

खादी-प्रतिष्ठान सोदपुर आश्रम में जहां आश्रमवासी सतीशदा के पास जाने से घबराते और भय खाते हैं वहां वे अपनी समस्याओं को लेकर निःसकोच भाव से 'मां' के पास चले जाते हैं, वैसे ही जैसे गाय के बछड़े ऊधम करने के पश्चात भी निर्भय अपनी मां के पास चले जाते हैं। 'मां' में ममत्व की भावना प्रबल है। आश्रम के एक भाई ने इन पंक्तियों के लेखक को बतलाया था कि एक बार उनसे एक बड़ी गलती हो गई, जिसके कारण आश्रम के अनुशासन और मर्यादा को हानि पहुंचती थी। यह निश्चित था कि वे सतीशदा द्वारा अवश्य आश्रम से निकाल दिये जाते। उन्होंने मां को सारी परिस्थितियों से तथा उस घटना के सत्य से परिचित करा दिया। भविष्य में वैसी भूल न करने की शिक्षा के साथ उन्हें क्षमा-दान मिल गया। यह वस्तुतः सत्य है कि वे सतीशदा की 'पूर्ति' है। उनकी अपनी कोई व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा नहीं है। उन्होंने अपना अस्तित्व सतीशदा में विलीन कर दिया है। आज जो सोदपुर आश्रम उत्तरोत्तर प्रगति पथ पर अग्रसर है, उसका बहुत कुछ श्रेय हेमप्रभादेवी दास गुप्ता की रचनात्मक प्रकृति, कर्मठता, और स्वार्थरहित जागरूक भावना को ही है।

मा का अध्ययन विस्तृत और मनन गम्भीर है। उन्होंने साहित्य और राजनीति, ग्रामीण अर्थशास्त्र और गांधी-साहित्य का अध्ययन किया है। गांधीजी उनकी रचनात्मक भावना से बहुत अधिक प्रभावित थे। मा हेमप्रभा, गांधीजी की कल्पना की ग्रामसेविका है और इस कारण वे उनको बहुत प्रिय थीं। गांधीजी के बगाल के दौरे पर वे अक्सर उनके साथ रहती थी और गांधीजी उनके स्थायी मेहमान थे। मा, हमारे राष्ट्र की उन विदुषी, कर्तव्य-परायणा और रचनात्मक कार्य-कर्त्रियों में से है, जिनके कार्यों पर देश की आजादी का इतिहास लिखा जायगा।

अब भी खादी !

विष्णुशरण

चरखा जयंती अब भी मनाई जाती है। खादी-उद्योग को जीवित रखने के प्रयत्न सरकार अब भी करती है। पर ऐसा प्रतीत होता है मानो चर्खे का श्राद्ध किया जा रहा हो, खादी को एक अतीत की वस्तु के रूप में जीवित रखने का प्रयास हो रहा हो। खादी के प्रति पहली जैसी निष्ठा अब नहीं है। इसका एक जबरदस्त कारण है। वह है खादी के उपयोग के पीछे रहनेवाली विचार-धारा में आधारभूत मौलिक भूल।

महात्मा गांधी ने भले ही अर्थशास्त्र के सिद्धांतों का सूक्ष्मरूप से अध्ययन न किया हो, भले ही उन्होंने एडम स्मिथ और रिकार्डो, मारशल और रौबिन्स के नाम न सुने हों, परन्तु वे एक पूर्ण व्यावहारिक अर्थशास्त्री थे। वे भारतवर्ष के आर्थिक रोगों की जड में पहुंच गए थे और तब उन्होंने भारतवर्ष की आर्थिक समस्याओं का हल निकाला था। पर उनकी विचारधारा के आधार भी उनके सत्य, अहिंसा ही थे, जिनका शुद्धतम प्रतीक चर्खा है। भारतवर्ष की आर्थिक विषमता और परतंत्रता से लडने के लिए उनका मुख्य अस्त्र चर्खा ही था। "चर्खे के अंदर जीवन का दर्शन दिया हुआ है। अहिंसा का वह जीवित प्रतीक है। इसका लक्ष्य सब प्रकार के शोषण से पूर्णरूपेण मुक्त अहिंसात्मक समाज की रचना है।"

गांधीजी मानते थे कि मिलों की स्थापना से भी सर्वसाधारण को कपडा मिल सकता है और यदि सरकारी नियंत्रण भली प्रकार काम करे तो वह काफी कम कीमत पर भी सुलभ हो सकता है। इससे जनता भी शोषण से बचेगी और मजदूरों को भी अच्छा खासा वेतन मिल जावेगा। परन्तु खादी को ही सर्वप्रथम स्थान देने का कारण यह था कि यह ग्रामीण जनता के आलस्य, भय और जडता को दूर करने का अमोघ अस्त्र है, इसी कारण खादी ही नहीं, उनका कहना था कि जहां तक हो सके उद्योग ग्रामों में ही रहें। ग्राम आत्मनिर्भर बन जाय। इस प्रकार वे व्यापारिक प्रतिस्पर्धा व यातायात-व्यय से भी बच सकें।

उनका यह भी कथन था कि हस्त-कला-कौशल के प्रत्येक कार्य में सुधार की जरूरत है। पर अगर हम शीघ्रता के प्रलोभन में पड जाय तो ग्रामोद्योग के सुधार की आवश्यकता ही प्रतीत न होगी और वे पिछड जायंगे। हस्तकला के काम में यांत्रिक सहायता लेने से वह नष्ट हो जायगी और उसमें जडता आ जायगी। हस्तोद्योग की एक भारी विशेषता यह है कि वह शरीर में स्फूर्ति पैदा करता है। यंत्र परावलम्बी बनाते हैं और चर्खा स्वावलम्बी बनाकर मनुष्य का पुरुषार्थ प्रकट करता है।

गांधीजी का दृढ विश्वास था कि शहरों अथवा मिलों से भारतवर्ष के करोडों निवासियों के लिए सम्पन्नता नहीं आ सकती। इससे केवल बेकार व्यक्तियों की और भी अधिक गरीबी तथा भूख से उत्पन्न होने वाले सब रोग और दुर्गुण आवेंगे और यदि शहर के रहने वाले ऐसी परिस्थिति को चुपचाप सहन कर सकते हैं तो भारतवर्ष में हिंसा का साम्राज्य होगा। इसीलिए उन्होंने कहा कि "मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि यांत्रिक उद्योग न तो भारतवर्ष को स्वतंत्रता ही देंगे और न शान्ति और समानता ही। ऐसे भारतवर्ष में ४० करोड व्यक्ति कभी खुश नहीं रह सकते। थोडों के हित के लिए बहुतों का शोषण होगा। वह स्वराज्य जो कि भारतवर्ष की पीडित मानवता को शक्ति प्रदान करेगा और कल्याण करेगा वह चर्खे के द्वारा आने वाला मेरे स्वप्नों का अहिंसात्मक स्वराज्य है।"

सौर-परिवार में जो स्थिति सूर्य की है, गांधीजी के अनुसार कुटीर-उद्योग में वही स्थिति खादी-उद्योग की है। जिस प्रकार सूर्य एक है और अन्य ग्रह उसके चारों ओर घूमते हैं उसी प्रकार खादी-उद्योग भी एक ही है, अन्य कुटीर-उद्योग उसके चारों ओर घूमते हैं।

आज सब चिल्लाते हैं कि भारतवर्ष में स्वराज तो आया, पर सुराज नहीं। महात्मा गांधी का बल भी सुराज पर ही था। वह स्वराज निकम्मा है जिसमें सुराज नहीं। पर

गांधीजी का चर्खा स्वराज प्राप्ति का ही साधन नहीं, सुराज प्राप्ति का भी साधन है। "चाहे यह एक साध्य हो अथवा साधन, स्वराज इसके बिना एक निर्जीव नाम है और यदि स्वदेशी स्वराज की आत्मा है तो खादी स्वदेशी का सार है।

पर अब सुराज तो न हीं, पर स्वराज्य आते ही निष्ठा वान कार्यकर्मियों की निष्ठा भी खादी में डावाडोल हो गई है। उनके मन में प्रश्न उठता है कि क्या अब भी खादी ही पहनें, क्या अब भी यह आवश्यक है—इसी प्रकार के एक प्रश्न का उत्तर देते हुए १३-१०-१९४७ को गांधीजी ने 'अब भी कातें' शीर्षक के अन्तर्गत लिखा था—

'एक भाई ने मुझे लिखा है—

'मैं और मेरे घर के लोग बराबर चर्खा कातते रहे हैं और खादी पहनते रहे हैं। अब आजादी मिल जाने के बाद भी क्या आप इस पर जोर देते हैं कि हम चरखा कातते रहें और खादी पहनते रहें?

"यह एक अजीब सवाल है, पर बहुत से लोगों की यही हालत है। इससे साफ जाहिर होता है कि इस तरह के लोगों ने चरखा कातना और खादी पहनना इसलिए शुरू किया था कि उनके ख्याल में यह आजादी हासिल करने का एक जरिया था। उनका दिल चर्खे या खादी में नहीं था। यह भाई भूल जाते हैं कि आजादी का मतलब सिर्फ विदेशियों के बोझ का हमारे कंधों पर से हट जाना ही नहीं था। यह और बात है कि आजादी के लिए सबसे पहले इस बोझ का हटना जरूरी था। खादी का मतलब है ऐसा रहन सहन जिसकी नींव अहिंसा पर हो। यही मतलब खादी का आजादी के पहले था यही आज भी है। ठीक हो या गलत, मेरी यही राय है कि खादी और अहिंसा के करीब-करीब लोप हो जाने से यह साबित होता है कि इन तमाम बरसों में हम खादी के असली और सबसे बड़े मतलब को कभी नहीं समझ पाये। इसलिए आज हमें जगह-जगह अराजकता और भाई भाई की लड़ाई देखनी पड़ रही है। मुझे इसमें जरा भी शक नहीं कि अगर हमें वह आजादी हासिल करनी है, जिसे हिंदुस्तान के करोड़ों गांववाले अपने आप समझने और महसूस करने लगें तो चरखा कातना और खादी पहनना आज पहले से भी ज्यादा जरूरी है, वही इस धरती पर ईश्वर का राज्य या रामराज्य कहा जायगा। खादी के जरिये हम यह कोशिश कर रहे थे कि बिजली या भाप से चलनेवाली मशीन के आदमी पर चढ़ बैठने की बजाय, आदमी मशीन के ऊपर रहे। खादी के जरिये हम कोशिश कर रहे थे कि आज आदमी आदमी के बीच जो गरीब अमीर और छोटे बड़े का जबरदस्त फर्क दिखाई दे रहा है, उसकी जगह आदमी आदमी में और सब मर्दों व औरतों में बराबरी कायम हो। हम यह कोशिश कर रहे थे कि बजाय इसके कि पूंजीपति मजदूरों पर हावी होकर रहें और उनपर बेजा शान जमावें, मजदूर पूंजीपतियों पर हावी बनकर रहें। इसलिए पिछले तीस वर्षों में हमने हिन्दुस्तान में जो कुछ किया वह अगर उल्टी चाल नहीं थी तो हमें पहले से भी ज्यादा जोरों से और कहीं ज्यादा समझ के साथ चरखे की कताई और उसके साथ के सब कामों को जारी रखना चाहिए।"

खादी को महात्मा गांधी भारतवर्ष के जर्जर रोगी शरीर के लिए महौषध मानते थे। इसी कारण उन्होंने उसे अनेक आर्थिक तथा मानवीय विशेषताओं व गुणों से विभूषित किया था। पर ये केवल थोथी अर्चना के पुष्प ही नहीं थे वरन् सारपूर्ण सुदृढ़ तथ्य थे जिन पर पुनर्विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है।

खादी में मानवता की झलक है—

"खादी की भावना का अर्थ है, भूतल पर प्रत्येक प्राणी के प्रति सहोदर भावना। इसका अर्थ है ऐसी प्रत्येक वस्तु का पूर्ण त्याग जिससे हमारे साथी प्राणियों को कष्ट पहुंचने की सम्भावना हो।'

"खादी मानवीय गुणों का प्रतिनिधित्व करती है—मिल का कपड़ा केवल धातुओं के मूल्य का प्रतिनिधित्व करता है।"

"यन्त्रीकरण अच्छा है जहां कि इच्छित काम को पूर्ण करने के लिए व्यक्ति थोड़े हों। यह एक बुराई है जहां कि काम की आवश्यकता की अपेक्षा व्यक्ति अधिक हों, जैसा कि भारतवर्ष में है। हमारी समस्या यह नहीं है कि गांवों में रहनेवाले लाखों व्यक्तियों के लिए अवकाश किस प्रकार प्राप्त किया जाय। समस्या यह है कि उनके खाली समय का किस प्रकार उपयोग किया जाय—जो कि साल में ६

महीने के काम के करने के दिनो के बराबर होता है।'

"जो किसी रोजगार की तलाश मे है खद्दर उन्हे सम्मानीय धधा देता है। यह राष्ट्र के खाली घटो का उपयोग करता है।" खादी से वितरण मे समानता आनी है–

"वितरण को समान किया जा सकता है जबकि उत्पत्ति का स्थानीयकरण कर दिया जाय–दूसरे शब्दो में जब कि वितरण भी उत्पत्ति के साथ-साथ हो।"

ग्रामो को तन्द्रा और आलस्य का निवारण करने और उनमें स्फूर्ति और नवजागरण पैदा करने की क्षमता भी चर्खे में ही है—

"यह धन का प्रवाह नही है जो इतना महत्व रखता है जितनी की निर्धनता, यह निर्धनता भी नही है जो इतना महत्व रखती है जितनी कि सुस्ती जोकि लादी गई है और अब आदत बन गई है, जिसका कि महत्व है। प्रवाह रोका जा सकता है और निर्धनता केवल एक चिन्ह है, लेकिन सुस्ती ही एक महान कारण है, सब बुराइयो की जड है और यदि वह जड नष्ट की जा सकती है तो बिना किसी आगे के प्रयत्न के बुराइयो का इलाज हो सकता है। एक राष्ट्र जो भूखा मर रहा है, उसमे तनिक भी आशा या उत्साह नहीं रह जाता। वह गदगी या रोग के लिए उदासीन हो जाता है। सब सुधारो के लिए वह कहता है-'किस काम का।' निराशा का यह जीन आशा की धूप में लाखो के लिए परिवर्तित किया जा सकता है—केवल जीवनदायी चक्र चर्खे के द्वारा।"

कताई से होने वाले गुणों की व्याख्या करते हुए उन्होंने लिखा था—"कताई के लिए जिन बातो का दावा किया जा सकता है वे ये है—

१. यह उनको तत्कालीन रोजगार देता है जिनके पास खाली समय है और जिन्हे कुछ धन की आवश्यकता है।

२ हजारो इसे जानते है।

३. यह आसानी से सीखा जा सकता है।

४. इसमें किसी पूजी की आवश्यकता नही है।

५. चर्खा आसानी से कम खर्च मे बनाया जा सकता है। हममें से बहुत से अभी यह भी नही जानते कि कताई एक तकुए और लकडी की पट्टी से ही हो सकती है।

६. यह आदमियो को ठेस पहुचाने वाला नही है।

७ अकाल और अभाव के दिनो मे यह तात्कालिक सहायता देता है।

८. केवल यही विदेशो को धन के प्रवाह को रोक सकता है जो कि विदेशी कपडा खरीदने मे भारतवर्ष के बाहर जाता है।

९ इस प्रकार यह स्वत ही योग्य गरीबों के बीच मे लाखो का वितरण कर देता है और जो इस प्रकार बाहर जाने मे बच जाते है।

१० छोटी-से-छोटी सफलता का भी अर्थ मनुष्यों के लिए भागे तात्कालिक लाभ है।

११. मनुष्यो मे सहकारिता लाने मे यह सबसे अधिक शक्तिशाली साधन है।"

यही नही, चर्खा मानसिक उद्वेगो को भी शात रखता है और इसका प्रयोग ब्रह्मचर्यधारण करने मे सहायक होता है। गाधीजी ने इस पर बार-बार प्रकाश डाला है। उन्होने चर्खे को भारतवर्ष के लिए कामधेनु माना, पर बहुत से व्यक्ति विदेशी कपडो के प्रति अपने प्रेम को अतर्राष्ट्रीयता, विश्वप्रेम, अखिल मानवता की भावना का जामा पहना कर प्रयोग मे लाते है–स्वदेश निर्मित खादी को ही प्रयोग में लाना सकुचित राष्ट्रीयता है–ऐसी थोथी दलील वे देते है। ऐसो को उत्तर देते हुए गाधीजी ने लिखा था–

"स्वदेशी की मेरी परिभाषा विख्यात है। निकटतम पडौसी के मूल्य पर दूरस्थ पडौसी की सेवा नही करनी चाहिए। किसी भी अर्थ मे यह सकुचित नही है, क्योंकि जो मेरे विकास के लिए आवश्यक है उसे मै ससार के प्रत्येक भाग से खरीदता हू। किसी से भी कुछ भी चीज खरीदने से इन्कार करता हू चाहे वह कितनी भी बढिया या सुन्दर क्यो न हो, यदि वह मेरे विकास मे बाधा डालती है अथवा उनको हानि पहुचाती है, जिन्हे कि प्रकृति ने मेरे पोषण का सर्वप्रथम विषय बनाया है। मै ससार के प्रत्येक भाग से उपयोगी स्वस्थ साहित्य खरीदता हू। मै इग्लैंड से शल्य-चिकित्सा के औजार, आस्ट्रिया से पिन और पेंसिल और स्विटजरलैंड से घडिया खरीदता हू। लेकिन मै इग्लैंड या जापान से अथवा ससार के किसी अन्य भाग से एक इच भर भी सूती कपडा नही खरीदूगा, क्योंकि इसमें भारत के लाखो निवासियों को नुकसान

पहुचता है और अधिकाधिक नुकसान पहुच रहा है। हिंदुस्तान के लाखो जरूरतमद और दुखियो के द्वारा काते गए और बुने गए कपडे को खरीदने से इकार करने और विदेशी कपडे को खरीदने को मै पाप समझता हू चाहे वह हाथ से बने हिन्दुस्तानी कपडे की अपेक्षा किस्म मे ऊचा हो ही मै भारतवर्ष का उत्थान चाहता हू ताकि सारे ससार को लाभ पहुचे।'

जो व्यक्ति कहते है कि खादी खुरदरी है, मोटी है, ज्यादा कीमती है, कम टिकाऊ है उनके लिए गाधीजी का कहना था—

यह सस्ता है कि हम अपने बुड्ढ माता पिता को मार डाले जो कुछ काम नही कर सकते और जो हमारे सीमित साधनो पर भारस्वरूप है। अपने बच्चो को मार डालना और भी ज्यादा सस्ता है जिनका कि बदले में बिना कुछ पाए हम भरण-पोषण करना पडता है। लेकिन हम न तो अपने मा-बाप को और न अपने बच्चो को ही मार डालते है बल्कि उनका भरण-पोषण करना हम अपना अधिकार समझते है, उनके भरण-पोषण मे चाहे कुछ भी खर्चा पडता हो।

चर्खे के बारे मे तो गाधीजी ने और भी बहुत कहा है, पर अब हम यह भी देखे कि बाहर वाले क्या कहते है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री श्री जी डी एंच कोल ने कहा है, "घरो मे बनने वाले कपडे के उद्योग खद्दर के विकास के लिए गाधीजी का कार्यक्रम किसी भावना की सनक नही है जो भूत का पुनरुज्जीवित करना चाहता हो, परतु भारतीय ग्रामीण के स्तर को उनत करने और निर्धनता के निवारण करने का व्यावहारिक प्रयास है।

'छोटे पैमाने अथवा कुटीर के आधार पर सगठित कपडे के उद्योग की महत्ता पर जोर देने की आवश्यकता ही नही है। इस प्रकार का कथन एशियाई तथा सुदूर-पूर्वीय आर्थिक कमीशन की उद्योग तथा वाणिज्य समिति की कुटीर व छोटे उद्योगो की वर्किग पार्टी की रिपोर्ट का है। इनके अतिरिक्त एशियन रिलेशन्स कान्फ्रेंस, इन्टरनेशनल लेबर औरगेनाइजेशन जैसे अन्तर्राष्ट्रीय सगठनो ने भी इस औद्योगीकरण के युग मे इनकी अनिवार्यता की पुष्टि की है।

खादी की गिरती हुई स्थिति को देखकर स्व श्री किशोरलालभाई ने लिखा था कि जो देश मे मिलो की बात करते है वे देश की स्थिति को नही जानते। अब तो कुछ ऐसा लगता है मानो वर्तमान पीढी के बाद खादी में मनुष्यो की आस्था का बिलकुल लोप हो जायगा और वह मात्र प्रदर्शनियो में रखने योग्य वस्तु रह जायगी। इधर खादी उद्योग के प्रति उपेक्षा व उसके पतन के विरुद्ध राजाजी ने भी बडी कडी, गम्भीर व सामयिक चेतावनी दी है—

'आजादी और राजनैतिक अधिकार धधो के सतुलन पर खडे होने चाहिए। अगर हम राष्ट्रीय जीवन की बुनियाद की उपेक्षा करेगे तो राजनैतिक आजादी हमारे हाथ से जरूर चली जावेगी।"

इसके बाद बुनकरो की गिरती हुई अवस्था को देखकर राजाजी ने केन्द्रीय सरकार के समक्ष सुझाव रखा कि खादी बुनकरो के लिए धोती व साडियो के उत्पादन का क्षेत्र सुरक्षित कर दिया जाय, लेकिन केन्द्रीय उद्योग मत्री ने इसे एकदम से अस्वीकार कर दिया। भारत सरकार के प्लानिग कमीशन ने कुटीर उद्योगों के विकास के लिए क्या कहा है यह भी जानने योग्य है। इनके देखने से मालूम होगा कि राजाजी का सुझाव कमीशन के सुझावो से बिलकुल भिन्न नही। इस बात को भली भाति समझाते हुए कि यदि बेरोजगारी की समस्या ठीक करनी है और कृषि का सुधार करना है तो कुटीर उद्योगो को यथासम्भव प्रोत्साहन मिलना ही चाहिए, कमीशन कहता है—"प्रारम्भिक दशाओ में जबतक कि कुटीर उद्योग पूरी तरह पनप नही पाते कुछ अशों तक यह भी आवश्यक हो जाता है कि कुटीर उद्योगो की उपज की बिक्री पर राज्य की ओर से सहायता दी जाय। यह दायित्व स्वीकार किए बिना कुटीर उद्योगो के विकास तथा उनके द्वारा उत्पादन की वृद्धि का कोई बडा कार्यक्रम सफल होना सम्भव प्रतीत नही होता।"

'यदि कारीगर लोग अपने आवश्यक सगठन बनालें तो सरकार उन्हे अधिकतम सहायता दे सकती है और यदि इस कार्य से कुछ समय तक साधारण खरीददार को कुछ कष्ट भी पहुँचे तो भी उसमें अनौचित्य नही होगा।

कस्तूरबा गांधी

यशपाल जैन

भारत की भूमि ने जिस प्रकार अनेक महापुरुषों को जन्म दिया है, उसी प्रकार बहुत-सी महान् नारियों को भी पैदा किया है। अपने प्राचीन इतिहास में हम सीता, सावित्री, दमयन्ती आदि का नाम पढ़ते हैं और बड़े आदर के साथ उनका स्मरण करते हैं। आधुनिक युग में भी ऐसी अनेक नारियां हुई हैं, जिनकी सेवाओं के लिए हमारा समाज और राष्ट्र चिरकाल तक ऋणी रहेगा। कस्तूरबा गांधी इन्हीं स्वनामधन्य महिलाओं में से एक थीं। वह पढ़ी लिखी अधिक नहीं थीं और प्रारंभिक अवस्था में ठीक वैसी ही थीं, जैसी कि अन्य स्त्रियां होती हैं, लेकिन धीरे धीरे उन्होंने सेवा का ऐसा राजमार्ग ग्रहण किया और ऐसी सेवा की कि इतिहास में उनका नाम अमर रहेगा। सात साल की उम्र में उनकी बापू के साथ सगाई हुई थी और तेरह साल की उम्र में विवाह। तबसे लेकर अन्त समय तक, लगभग बासठ वर्ष तक, छाया की भांति वह बापू के साथ रहीं।

बा सन् १८६९ के अप्रैल महीने में काठियावाड़ के पोरबन्दर नामक नगर में पैदा हुई थीं। उनके पिता का नाम गोकुलदास मकनजी था और मां का नाम व्रजकुंवर। बा के तीन भाई और दो बहनें थीं, जिनमें से एक भाई और एक बहन बचपन में ही चल बसे थे। बड़े भाई की जवानी में मृत्यु हो गई। इस प्रकार बा और उनके एक छोटे भाई माधवदास, दो ही रह गये।

बा के पिताजी पोरबन्दर के एक व्यापारी थे। साधारण स्थिति थी, लेकिन वहां के राज्य की दीवान-गीरी करनेवाले गांधी-परिवार के साथ उनकी बड़ी घनिष्टता थी। इसलिए बापू के साथ उनका विवाह हो गया। बापू से वह लगभग छ महीने बड़ी थीं। उम्र में बड़ी होने के साथ-साथ देखने में भी बड़ी लगती थीं। तभी तो बापू से एक बार एक आदमी ने पूछा था कि आपकी माताजी कहां हैं और कैसे हैं? इस पर बापू हंस पड़े थे और उन्होंने उत्तर दिया था कि बा सचमुच मेरी मां बन गई हैं।

बा जिस जमाने में पैदा हुई थीं, उसमें लड़कियों को पढ़ाने लिखाने का रिवाज नहीं था। बहुत पढ़ाया तो अक्षर ज्ञान करा दिया। बा बचपन में निरक्षर थीं। स्कूल में तो जातीं कैसे, घर पर पढ़ी नहीं; लेकिन घर के काम-काज में वह बहुत चतुर थीं। धार्मिक परिवार की होने के कारण धर्म में भी उनकी रुचि थी और वैसे ही उनके संस्कार थे। संकल्प और संयम; ये दो गुण उनमें शुरू से ही विद्यमान थे।

बापू के पास आईं तब वह बहुत छोटी थीं। उस समय बापू और उनके बीच बड़े झगड़े हुए। झगड़े का मूल कारण मुख्यतः यह था कि बापू उन्हें बन्धन में रखना चाहते थे और बालिका कस्तूरबाई अनुचित बन्धन को कैसे स्वीकार कर सकती थीं? वह निरक्षर भले ही थीं, लेकिन स्वतन्त्र स्वभाव की थीं। अन्त में बापू ने अपनी भूल समझी और बा भी बापू के अनुकूल होती गईं। आगे चलकर तो वह बापू के साथ इतनी एकाकार हो गईं कि उनका अपना कुछ भी न रहा। इसीलिए बापू ने एक बार बा की याद करते हुए कहा था कि बा तो मुझमें समा गई थीं। पति के प्रति इतना समर्पण बहुत कम स्त्रियों में मिलता है, विशेषकर बापू जैसे व्यक्ति के प्रति समर्पण करना तो बहुत ही कठिन काम था। वह नित्य प्रति नये-नये प्रयोग करते रहते थे और बड़े-से-बड़ा खतरा मोल लेने में भी नहीं हिचकिचाते थे, लेकिन बा ने एक बार अपने को उनके हाथ सौंपा कि फिर अपने लिए कुछ भी बचा नहीं रक्खा। बड़ी ही तन्मयता, लगन और प्रेम से बापू की सेवा में जुटी रहीं और कठिन-से-कठिन परिस्थिति में भी छाया की भांति बापू के साथ रहीं।

वह हमेशा ४ बजे उठती थीं। तब से लेकर रात तक बराबर काम में जुटी रहतीं। बापू के सब काम समय पर करना, आश्रम की व्यवस्था में चूक न होने देना, रोगियों की परिचर्या करना, महमानों का आदर-सत्कार, ये सब कार्य बा ने स्वेच्छा से अपने हाथ में ले लिये थे और उनके

पालन में वह बड़ी तत्परता से लगी रहती थी।

शुरू में वह खादी नहीं पहनती थी, लेकिन खादी को अपनाया तो ऐसा कि अन्त काल तक उसे नहीं छोड़ा। एक बार बा के पैर की उंगली में खून निकल आया। बा खादी की पट्टी बांधने लगीं तो एक बहन ने बारीक कपड़े की पट्टी ला दी और कहा कि महीन कपड़े से रगड़ नहीं लगेगी और पट्टी अच्छी तरह बंध जायगी। बा ने दृढ़ता के साथ कहा, "नहीं, मुझे तो खादी की ही पट्टी चाहिए। वह खुरदरी होगी तो भी चुभेगी नहीं।"

वह नियमित रूप से चर्खा चलाती थीं। आगाखां महल में जब बापू ने उपवास प्रारम्भ किया तो सेवाग्राम आश्रम की एक बहन मिलने आईं। बा ने सेवाग्राम में अपने पड़े हुए कपड़े लोगों को बांट देने को उनसे कहा। फिर बोलीं, "बापूजी के अपने हाथ की कती और मेरे लिए खास तौर पर तैयार की गई साड़ी तो मुझे जेल में ही भेज देना। मरने के बाद मेरी देह पर वही साड़ी लपेटनी है।"

बा की यह इच्छा पूर्ण हुई। जब उन्होंने अंतिम यात्रा की तो उनके शरीर पर बापू के हाथ के कते सूत की ही साड़ी थी।

सबसे पहले जेल वह अफ्रीका में गई थीं। सन् १८६६ के अन्त में जब बापू ने दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह किया तो अन्य बहनों के साथ बा भी जेल गईं। बापू को डर था कि कहीं बा जेल की मुसीबतों से घबरा न जाय, लेकिन बा ने बड़ी हिम्मत के साथ सारी यातनाएं सहन कीं।

सन् १८८८ में बापू के विलायत जाने से पहले बा के एक बालक उत्पन्न हुआ था, जो दो-चार दिन में ही मर गया। बाद में हरिलालभाई का जन्म हुआ। उस समय बा की उम्र १६ साल की थी। बाद में जब जोहान्सबर्ग में उन्होंने अपना घर बनाया तो उनके तीन बच्चे और थे—मणिलाल, रामदास और देवदास। १६०६ में बापू और बा ने पारस्परिक सहमति से ब्रह्मचर्य का व्रत ले लिया था। हरिलालभाई की पिछले दिनों मृत्यु हो गई। लेकिन जिस प्रकार बापू का परिवार बड़ा व्यापक था, उसी प्रकार बा का भी। उसमें सगे-संबंधी या जाति-पांति का भेद तो हो ही कैसे सकता था। मानवता के नाते सब लोग रहते थे। लेकिन एक बात में बा को बड़ी कठिनाई हुई। वह थी हरिजनों के साथ रहन-सहन और खान-पान। बा के धार्मिक संस्कार थे। बापू ने जब आश्रम में हरिजनों का प्रवेश किया तो बा एक साथ उनसे सहमत न हो सकीं। उन्होंने विद्रोह किया। लेकिन चट्टान सरीखे दृढ़ बापू के आगे किसी की क्या चल सकती थी! हारकर बा को भी उनकी बात मान लेनी पड़ी। एक बार तो एक बहुत ही मजेदार घटना हुई। मध्यप्रान्त के मंत्रिमंडल में हरिजन मंत्री न बनाने के कारण नागपुर के कुछ हरिजनों ने बापू के खिलाफ सत्याग्रह करने की घोषणा की। उन्होंने निश्चय किया कि पांच-पांच हरिजनों की टोली सेवाग्राम जाय और चौबीस घंटे का उपवास करे। बापू ने बड़े प्रेम के साथ उन हरिजनों का स्वागत किया और उनके लिए आश्रम में बैठने व रहने की सहूलियत कर दी। स्थान का चुनाव हरिजनों पर छोड़ा। उन्होंने बा की कोठरी पसंद की। बा की कुटिया में दो कोठरियां थीं—एक बड़ी, एक छोटी। बड़ी में वह रहती थीं। छोटी नहाने और कपड़े बदलने के लिए थी। अपने ही विरुद्ध उपवास करने के लिए आये हुए हरिजन भाइयों को इस प्रकार सुविधा देना बा को अच्छा न लगा। उन्होंने बापू से कहा, "आपने इनको अपना पुत्र मानकर टिकाया है तो अपनी ही झोंपड़ी में इन्हें बिठाइये न।"

बापू ने हंस कर उत्तर दिया, "हां, ये मेरे लड़के तुम्हारे भी तो लड़के हुए न!" बापू की इस बात से बा चुप हो गईं और उन्होंने हरिजन बन्धुओं के लिए अपनी बड़ी कोठरी दे दी। इतना ही नहीं, उनके लिए पानी आदि की भी व्यवस्था कर दी।

बापू के पास वह निरन्तर पढ़ने का प्रयत्न करती थीं। कभी गीता पढ़तीं तो कभी रामायण। धार्मिक ग्रन्थों के पढ़ने में उन्हें विशेष रुचि थी। बापू से वह गीता के श्लोकों का अर्थ पूछतीं, रामायण की चौपाइयों की व्याख्या करातीं। इस तरह अपने ज्ञान में वृद्धि करने का प्रयास करतीं। टूटी-फूटी अंग्रेजी भी उन्हें आ गई थी। बल्कि यों कहें कि जैसे-तैसे थोड़ी-बहुत अंग्रेजी बोल लेती थीं। एक बार दक्षिण अफ्रीका में बापू के साथी पोलक बापू से नाराज हो गये। वह घर में बेचैन-से रहते थे और किसी से बोलते न थे। इस पर बा ने श्रीमती पोलक से अंग्रेजी में

पूछा, 'What the matter Mr. Polak? What for he cross?" उनके कहने का मतलब यह था कि पालक को क्या हुआ है? वे इतने नाराज क्या दीखते है? अब उन्हे मालूम हुआ कि बापू पर गुस्सा हो गय है तो बा न फिर पूछा, "What for he cross Bapu? What Bapu done?" यानी बापू पर क्या गुस्सा हुए है? बापू न क्या किया है?

इस तरह की अग्रेजी बोल कर वह अपना काम चला लेती थीं। अफ्रीका से लौटन के बाद भी वह जब-कभी अग्रजी बोलती थी। आश्रम में आनेवाले गोरे महमानों का स्वागत करना, उनके कुशल-समाचार पूछना, उन की आवश्यकताए मालूम करना, यह सब बा मजे में कर लेती थी। सन् १९३० में जब वह जेल गई तो उन्होने अग्रजी लिखने का भी अभ्यास शुरू किया, लेकिन उसमें वह बहुत प्रगति नही कर सकी। उस समय उनकी अवस्था ६० वर्ष की थी। लेकिन फिर भी उनकी लगन देखिये! ए-बी-सी-डी पर लगातार कई दिन तक मेहनत करके भी वह कभी परेशान नही हुई और एक नाम को २०–२५ बार लिखन म भी वह कभी नही उकताई।

देश के प्रति बा के हृदय में बडा प्रेम था और वह चाहती थी कि भारत जल्दी ही स्वतन्त्र हो जाय। अग्रेजी सरकार के अन्याय और अत्याचार को देखकर उन्हे बडी वेदना होती थी। उन्हे प्राय डर लगा रहता था कि कही बापू को किसी दिन कुछ न हो जाय। इसलिए वह प्रार्थना करती रहती थी कि बापू को कुछ न हो, भले ही भगवान् उन्हे उठा ले। इतिहास में हम बाबर और हुमायू का हृदयस्पर्शी प्रसग पढते है तो हमारी आखे गीली हो जाती है। ठीक वैसा ही एक जीता-जागता मार्मिक प्रसग हमें यहा मिलता है। बा ने मौत का स्वय वरण किया कि बापू जीते रहे और देश को स्वतन्त्र करे। बापू के प्रति अगाध प्रेम, राष्ट्र के प्रति गहरी भावना, देश की गुलामी दूर करने की उत्कट अभिलाषा, आश्रम की व्यवस्था में अथक योग, बापू के प्रयोगो में साथ और बडी-से-बडी यातना का सहन कर लेना, य बा के गुण थे। वह एक महापुरुष की पत्नी थी, यह ठीक है, लेकिन उनकी महानता उनके अपने गुणो के भी कारण थी।

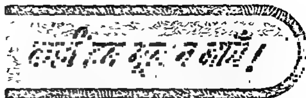
जब गाधीजी दुनिया भर के 'बापू' बन गये तो कस्तूरबाई 'बा' कैसे न बनती? वह आश्रम की ही नही, सारे राष्ट्र की बा यानी मा बन गई थी। बापू से मिलने छोटे-से-छोटे और बडे-से-बडे लोग आते थे। बा प्रेम से उनका स्वागत करती थी और उनकी देखभाल करती थी।

२२ फरवरी १९४४ को बा की मृत्यु हो गई। सन् १९४२ के 'भारत छोडो' आन्दोलन में बापू को गिरफ्तार करके आगाखा महल में इक्कीस महीने तक नजरबन्द रक्खा गया था। बा भी उनके साथ थी। आगाखा महल में दो आहुतिया हुई। पहली १५ अगस्त को महादेवभाई की। दूसरी बा की। महादेवभाई को बा अपना पुत्र मानती थी। अत यह स्वाभाविक था कि पुत्र के मरने का उनके बिगडे स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पडे। फिर बापू ने २१ दिन का उपवास किया। इसके अतिरिक्त आगाखा महल का जीवन उनके अनुकूल न था और वह सेवाग्राम की अपनी कुटिया में जाने को निरतर लालायित रहती थी। इन सब कारणो से उनका स्वास्थ्य दिन-पर दिन गिरता गया और अन्त में कारावास की कठोर दीवारो को तोड कर उनके प्राण उन्मुक्त हो गये। ६२ वर्ष की अपनी साथिन के भौतिक शरीर को बापू ने स्वय अपने हाथो अग्नि को समर्पित कर दिया। वज्र से भी कठोर बापू को चादर से अपनी आखें पोछनी पडी। उस दिन सारा राष्ट्र रोया और बा को खोकर उसे लगा कि रामदास या देवदास की नही, राष्ट्र के चालीस करोड बेटो की मा चली गई।

बा की भक्ति और प्रेम असीम था। इतने महान् युग-पुरुष की पत्नी होने के कारण उनमें अपनी महत्वाकाक्षा पनप आती तो कोई आश्चर्य नही था, बल्कि वह स्वाभाविक ही होता। लेकिन नही, वह बा का मार्ग नही था। बा ने सेवा का मार्ग अपनाया और उसी पर दृढ रही। बापू के निर्माण में निश्चय ही बा का बडा हाथ था।

बा की अतिम इच्छा उनके जीवन-काल में पूरी न हो सकी, इसका मलाल उन्हे अवश्य रहा होगा, लेकिन अतिम समय की उनकी अभिलाषा पूर्ण न होती, यह कैसे सम्भव था। लगभग तीन वर्ष के बाद ही उनका आशीर्वाद फलीभूत हुआ और देश स्वतन्त्र हो गया।

(आल इण्डिया रेडियो, नई दिल्ली के सौजन्य से)



रामकृष्ण परमहंस

[जन्मतिथि—२७ फरवरी]

एक ब्राह्मण ने एक बाग लगाया। वह दिन-रात उसी की निगरानी में रहता था। एक दिन एक बैल आकर उस बाग की एक बेल को खाने लगा। ब्राह्मण को यह देख कर बड़ा क्रोध हुआ और उसने लाठी उठा जोर से बैल के दे मारी। बैल मर गया। लोगों ने ब्राह्मण को गो-हत्या का दोषी बतलाया। परन्तु ब्राह्मण ने अपने को दोषी न माना। वह कहने लगा, "मेरा क्या दोष है? बैल को तो हाथ ने मारा है और हाथ का राजा इन्द्र है। इसलिए सारा दोष इन्द्र को लगेगा।" इन्द्र बड़ी विपत्ति में पड़े अतः वह ब्राह्मण को उसका दोष समझाने के लिए एक ब्राह्मण का रूप धारण कर उसी बाग में पहुंचे और उससे बोले—"महाराज, यह बगीचा किसका है?" ब्राह्मण बोला, "मेरा है।" इन्द्र ने कहा—"अच्छा बगीचा है, आप का माली बहुत अच्छा है, कैसे सजाकर उसने वृक्षों को लगाया है।" ब्राह्मण बोला—"नहीं महाशय! ये सब पेड़ मैंने निज के लगाये हुए हैं।" इन्द्र ने कहा—"बाग के रास्ते भी बहुत सुन्दर हैं। ये किसने बनाये हुए हैं?" ब्राह्मण बोला, "सब मेरे अपने बनाये हुए है।" तब इन्द्र ने कहा, "ऐसी बात है? यह सब तो आपके बनाये हुए हैं, केवल बैल को मारने के लिए इन्द्र आ गये थे!"

इस प्रकार बहुतेरे मनुष्य कर्म स्वयं करते हैं और दोष भगवान के ऊपर मढ़ते हैं कि वह सब करा रहे हैं।

—रामकृष्ण परमहंस

जमनालालजी बजाज

[पुण्यतिथि ११ फरवरी]

ज्योंही कल में एक सभा में बोलने के लिए आया और मंच पर चढ़ा, मैंने जमनालाल बजाज की मृत्यु की खबर सुनी। मुझे सहसा उस पर विश्वास नहीं हुआ। मैंने सोचा, अभी कुछ ही दिन पहले मैं उनसे मिला और मैंने उन्हें जीवन और शक्ति से पूर्ण देखा था और जिस व्यक्ति के दिमाग में जनता की कई समस्याएं थीं, जिनके लिए उन्होंने जीवन समर्पित कर दिया था वह कैसे मर सकते हैं? फिर भी मेरा यह विचार अधिक देर तक नहीं टिक सका, क्योंकि अन्यान्य सूत्रों से भी यही समाचार आने लगा। इस आकस्मिक आघात से मुझे बड़ी चोट लगी और मैं बड़ी कठिनाई से अपना भाषण उस बड़े समुदाय के सामने दे सका। जब मैं दूसरे विषयों पर बोल रहा था तब मेरा दिमाग उन्हीं में ही था, जोकि उनके साथ अबाधित रूप से जुड़ा हुआ है। गत २२ वर्षों में मेरा उनके साथ सार्वजनिक कार्यों में, मित्रता में तथा घरेलू मामलों में भी बड़ा सम्बन्ध रहा है। कार्य समिति में शायद वे ही सबसे अधिक लम्बे समय तक रहनेवाले सदस्य थे। सार्वजनिक और व्यक्तिगत दोनों ही प्रकार के मामलों में उनकी सलाह और मार्ग-दर्शन प्राप्त करता रहता था। आज यह अनुभव करके मुझे दुख होता है कि भविष्य में मुझे अपने एक प्रिय मित्र की सलाह नहीं मिल सकेगी। यद्यपि आज कई ऐसे राजनीतिज्ञ और लोकप्रिय व्यक्ति हैं, जिन्होंने बहुत-सा सार्वजनिक सेवा का कार्य किया है, तथापि जमनालालजी उनमें लगभग बेजोड़ थे और ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो उनका स्थान ग्रहण कर सके। इस कठिन समय में उनका देहावसान एक जबर्दस्त आघात है।

—जवाहरलाल नेहरू

समर्थ रामदास

[पुण्यतिथि १९ फरवरी]

'शुभ मंगल सावधान!' महाराष्ट्र-प्रथा के अनुसार रामदासजी के विवाह के समय ब्राह्मणों ने जैसे ही 'सावधान' कहा, सचमुच रामदास सावधान हो गये। वे विवाह-मंडप से उस बारह वर्ष की अवस्था में ही भाग पड़े और बारह वर्ष तीर्थ-यात्रा करके समर्थ गोदावरी परि-

क्रमा को निकले। लोगों से माता के कष्ट के वर्णन सुनकर वे घर गये। पूरे चौबीस वर्ष के बाद माता-पुत्र का मिलन हुआ। माता को कपिलगीता का उपदेश करके उनकी आज्ञा से वे गोदावरी की परिक्रमा करने गये। यह तीर्थ-यात्रा समाप्त करके वे माहूली में रहने लगे। यहा उनसे मिलने अनेक सन्त आते थे। यहीं तुकाराम भी मिलने आये थ।

श्री समर्थ ने रामनवमी महोत्सव का प्रारम्भ मसूर स किया। उन्हीं दिनों चाफल के पास शिवाजी महाराज ने उनके दर्शन किये। शिवाजी महाराज ने श्री समर्थ का गुरु रूप से वरण किया और जब श्री समर्थ परली (सज्जनगढ) में रहने लगे तब शिवाजी बार-बार उनके दर्शनों को आया करते थे। एक दिन करजगाव मे श्री समर्थ पैदल सतारे के राजद्वार पर पहुचे। उन्होने पुकारा, "जय जय श्री रघुवीर समर्थ।"

"आज तक मैंने जो कुछ अर्जित किया सब स्वामी के चरणो मे अर्पित है।"

महाराज शिवाजी ने एक पत्र पर लिखकर गुरुदेव की झोली में डाल दिया। सचमुच वे दूसरे दिन झोली लटका कर समर्थ के पीछे भिक्षा मागने चल पड़े।

"शिवा साधु! इस कागज का क्या करेगा! तू शासन करने, पीड़ितों की रक्षा करने आया है या भीख मांगने? राज्य मेरा हो गया, परन्तु तू मेरी ओर से इसका सचालन कर।" शिवाजीने गुरुदेव की आज्ञा स्वीकार की। महाराष्ट्र का राष्ट्रध्वज गैरिक माना गया। राज्यमुद्रा पर गुरुदेव का प्रतीक अंकित हुआ।

सवत् १७३८ माघ कृष्णनवमी को समस्त परिचित अनुगत मडली को समझाकर समर्थ ने राममूर्ति के सम्मुख आसन लगाया और इक्कीस बार 'हर' का उच्चार करके जैसे ही उन्होंने 'राम' कहा, एक ज्योति उनके मुख से निकलकर भगवान के श्री विग्रह में लीन होगई। —राश्री

कमला नेहरू

[पुण्यतिथि २८ फरवरी]

वैवाहिक जीवन के अठारह बरस बाद भी उनके मुख पर मुग्धा कुमारी का भाव अभी तक वैसा ही बना हुआ था, प्रौढ़ता का कोई चिन्ह न था। प्रथम दिन नववधू बनकर वह जैसी हमारे घर आई थी, अब भी बिलकुल वैसी ही मालूम होती थी। लेकिन मैं बहुत बदल गया था, और हालांकि अपनी उम्र के मुताबिक मैं काफी योग्य, चपल और क्रियाशील था—और कुछ लोगों का कहना था कि अब भी मुझमें लडकपन की कई निशानें मौजूद हैं—फिर भी मेरे चेहरेसे मेरी अधिक उम्र मालूम पड़ती थी। मेरे सिर के आधे बाल उड़ गए थे और जो बाकी थे वे पक गये थे, पेशानी पर सलवटें, चेहरे पर झुर्रियां और आखों के चारों तरफ काली झाई पड़ गई थी। पिछले चार वर्षों की मुसीबतें और परेशानियां मुझपर अपने बहुत से निशान छोड़ गई थीं। इन पिछले बरसों में मैं और कमला जब कभी किसी नई जगह जाते तो मैं यह जानकर हैरान हो जाता था कि अक्सर कमला को मेरी लड़की समझ लिया जाता। वह और इन्दिरा सगी बहनें सी दिखाई देती थी।

वैवाहिक जीवन के अठारह बरस! लेकिन इनमें से कितने साल मैंने जेल की कोठरियों में, और कमला ने अस्पतालों और सेनेटोरियम में बिताये? और फिर इस समय भी मैं जेल की सजा भुगतता हुआ कुछ ही दिनों के लिए बाहर आ गया था और वह बीमार पड़ी हुई जीवन के लिए सघर्ष कर रही थी। अपनी तन्दुरुस्ती के बारे में उसकी लापरवाही पर कुछ झुंझलाहट-सी आई। लेकिन फिर भी मैं उसे दोष किस तरह दे सकता था, क्योंकि राष्ट्रीय युद्ध में पूरा हिस्सा लेने में अशक्त होनेके कारण उसकी तेजस्वी आत्मा छटपटाती रहती थी। शरीर से समर्थ न होने के कारण न तो वह ठीक तरह से काम ही कर सकती थी, न ठीक तौर पर अपना इलाज ही करा सकती थी। नतीजा यह हुआ कि अन्दर-ही-अन्दर सुलगती रहने वाली आग ने उसके शरीर को खा डाला।

सचमुच ही इस समय, जबकि मुझे उसकी सबसे अधिक आवश्यकता है, वह मुझे छोड़ तो न जायगी? अरे, अभी-अभी तो हम दोनों ने एक-दूसरे को ठीक तरह से पहचानना और समझना शुरू किया है! हम दोनों को एक-दूसरे पर कितना भरोसा था, हम दोनों को एक साथ रह कर अभी कितना काम करना था!

प्रति दिन और प्रति घंटे उसकी हालत देख-देखकर मेरे दिल में इस तरह के विचार उठते रहते थे।

—जवाहरलाल नेहरू

मोतीलाल नेहरू

[पुण्यतिथि २ फरवरी]

मेरे पिताजी गाधीजी से कितने भिन्न थे ! उनमें भी व्यक्तित्व का बल था और बादशाहियत की मात्रा थी । स्विनबर्न की वे पक्तिया उनके लिए भी लागू होती हैं। जिस किसी समाज मे वह जा बैठते उसके केन्द्र वही बन जाते। जैसा कि अंग्रेज जज ने पीछे कहा था, वह जहां कही भी जाकर बैठते वही मुखिया बन जाते। वह न तो नम्र ही थे, न मुलायम ही और गाधीजी के उलटे वह उन लोगो की खबर लिए बिना नही रहते थे जिनकी राय उनके खिलाफ होती थी । उन्हे इस बात का भान रहता था कि उनका मिजाज शाही है । उनके प्रति या तो आकर्षण होता था या तिरस्कार। उनसे कोई शख्स उदासीन या तटस्थ नही रह सकता था । हरेक को या तो उन्हे पसन्द करना पडता या नापसन्द । चौडा ललाट, चुस्त होठ और सुनिश्चित ठोडी । इटली के अजायबघरो में रोमन सम्राटो की जो अर्द्ध-मूर्तिया है उनसे उनकी शक्ल बहुत काफी मिलती थी । इटली में बहुत-से मित्रो ने जो उनकी तस्वीर देखी तो उन्होने भी इस साम्य का जिक्र किया था । खास तौर पर उनकी जिन्दगी के पिछले सालों में जबकि उनका सिर सफेद बालों से भर गया था, उनमें एक खास किस्म की शालीनता और भव्यता आ गई थी, जो इस दुनिया में आजकल बहुत कम दिखाई देती है । मेरे सिर पर तो बाल नही रहे, पर उनके सिर के बाल अखीर तक बने रहे। मै समझता हू कि शायद मैं उनके साथ पक्षपात कर रहा हूं; लेकिन इस सकीर्णता और कमजोरी से भरी हुई इस दुनिया मे उनकी शरीफाना हस्ती की रह-रहकर याद आती है। मै अपने चारो तरफ उनकी-सी अजीब ताकत और उनकी-सी शानशौकत को खोजता हू: लेकिन बेकार !

गोपालकृष्ण गोखले

[पुण्यतिथि १९ फरवरी]

जब गोखले बाकीपुर से लौट रहे थे तब एक खास घटना हो गई। वह उन दिनो पब्लिक सर्विस कमीशन के सदस्य थे । उस हैसियत से उन्हे अपने लिए एक फर्स्ट क्लास का डिब्बा रिजर्व कराने का हक था। उनकी तबीयत ठीक न थी और लोगो की भीड से तथा बेमेल साथियो से उनके आराम में खलल पडता था। इसलिए वे चाहते थे कि उन्हे एकान्त मे चुपचाप पडा रहने दिया जाय और कांग्रेस के अधिवेशन के बाद वह चाहते थे कि सफर में उन्हे शान्ति मिले। उन्हे उनका डिब्बा मिल गया; लेकिन बाकी गाडी कलकत्ते लौटनेवाले प्रतिनिधियों से ठसाठस भरी हुई थी। कुछ समय के बाद, भूपेन्द्रसिंह बसु, जो बाद में जाकर इडिया कौसिल के मेम्बर हुए, गोखले के पास गये और यो ही उनसे पूछने लगे कि क्या मैं आपके डिब्बे मे सफर कर सकता हू ? यह सुन कर पहले तो गोखले कुछ चौंके, क्योंकि बसु महाशय बडे बातूनी थे, लेकिन फिर स्वभाव-वश वह राजी हो गये। चन्द मिनट बाद श्री बसु फिर गोखले के पास आये और उनसे कहने लगे कि अगर मेरे एक और दोस्त आपके साथ इस डिब्बे में चले चले तो आपको तकलीफ तो न होगी। गोखले ने फिर चुपचाप 'हां' कर दिया। ट्रेन छूटने से कुछ समय पहले बसु-साहब ने फिर उसी ढग से कहा कि मुझे और मेरे साथी को ऊपर की बर्थों पर सोने में बहुत तकलीफ होगी, इसलिए अगर आपको तकलीफ न हो तो आप ऊपर की बर्थ पर सो जाय। मेरा ख्याल है कि अन्त में यही हुआ। बेचारे गोखले को ऊपरी बर्थ पर चढकर जैसे-तैसे रात बितानी पडी! —जवाहरलाल नेहरू

सरोजनी नायडू

[पुण्यतिथि १३ फरवरी]

सरोजनीदेवीका नाम उनके काव्योसे पश्चिममें प्रसिद्ध है। उनमें चतुराई भी वैसी ही है। उन्हे यह भलीभाति मालूम है कि कहा, क्या और कितना कहना चाहिए। किसीको दु:ख पहुचाये बिना खरी-खरी सुना देनेकी कला उन्होने साधी है। जहा कहीं वे जाती हैं, उनकी बात सुने बिना लोगोका काम चलता ही नहीं है। दक्षिण अफ्रीकामे अपनी शक्तिका सपूर्ण उपयोग करके उन्होंने वहाके अग्रेजोका मनहरण किया था और सुदर विजय प्राप्त करके सर हबीबुल्ला-प्रतिनिधि-मडल का रास्ता साफ किया था। वहा का काम कठिन था। किंतु वहा पर उन्होंने अपनी मर्यादा निश्चित करके कानून के जाल-पेंचो में न पडते हुए, मुख्य बात में लगे रहकर अपना काम भलीभाति किया था और हिंदुस्तान का नाम चमकाया था। उनका साहस भी उनकी दूसरी शक्तियोंके ही समान है। परदेश जाने में न तो उन्हे किसी की सहायता की आवश्यकता रहती है और न किसी मंत्री की ही। जहा कही जाना हो वे अकेले निर्भयतासे विचर सकती हैं। उनकी ऐसी निर्भयता स्त्रियो के लिए तो अनुकरणीय है ही, पुरुषो को भी लजाने वाली है।

—मो० क० गाधी

कसौटी पर

हर्षचरित—बाणभट्टकृत संस्कृत ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद, पूर्वार्ध उच्छ्वास १-४, उत्तरार्ध उच्छ्वास ५-८। अनुवादक श्री सूर्यनारायण चौधरी। प्रकाशक—संस्कृत भवन कठौतिया, पो. काझा, जिला पूर्णिया, (बिहार) मूल्य प्रति भाग २॥), पृष्ठ संख्या दोनों भाग ६३०

विद्वानों ने हर्षचरित को सातवीं शती का देश वृत्तान्त (गजटियर) कहा है। यह सचमुच भारतीय सभ्यता का विश्वकोश है। इसमें बाण ने हर्षवर्धन के जीवनवृत्त का वर्णन करने के प्रसंग में समकालीन संस्थाओं का पूरा चित्र ही खींच दिया है। बाण की यह कृति वैसी ही है जैसे अजन्ता के कलामंडप। बाण ने शब्दों के द्वारा अपने समय के अनमोल चित्र खींचे हैं। भारतीय इतिहास और संस्कृति के परिज्ञान के लिए हर्षचरित एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। अंग्रेजी में कावेल और टामस ने १८९७ में, इसका अत्यन्त ललित अनुवाद प्रकाशित किया था। १८१८ में श्री कणे ने बहुत सी टिप्पणियों से युक्त हर्षचरित का एक सम्करण प्रकाशित किया और लगभग उसी समय १९१९ में श्री गजेन्द्र गडकर ने पूना से मूल सटिप्पण प्रकाशित किया। हिन्दी में इस मूल्यवान् ग्रन्थ का अभी तक कोई अनुवाद नहीं हुआ था। हर्ष की बात है कि श्री सूर्यनारायण चौधरी एम. ए. ने यह पहला हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया है। हम उन्हें इसके लिये बहुत बधाई देते हैं। श्री चौधरी अपने ढंग से अकेले अपने ही साधनों से प्राचीन दुर्लभ ग्रंथों को हिन्दी में सुलभ बना रहे हैं। अश्वघोषकृत बुद्ध-चरित्र और सौन्दरनन्द मूल और हिन्दी अनुवाद के साथ सस्ते मूल्य में वे प्रकाशित कर चुके हैं। उसके बाद हर्षचरित का यह अनुवाद और अभी हाल में आर्यशूरकृत जातकमाला को सानुवाद प्रकाशित किया है।

हर्षचरित अत्यन्त ही गूढ ग्रन्थ है। सातवीं शती के भारतवर्ष की अनेक संस्थाओं के उसमें आंखों देखे वर्णन हैं। उनके कितने ही पारिभाषिक शब्द अब धुंधले पड़ चुके हैं और उनका ठीक अर्थ खोया गया है। संस्कृत में भी केवल इसकी एक टीका मिलती है—शंकरकृत संकेत—और वह भी बहुत ब्यौरेवार नहीं है। और किसी धुरंधर ने इस क्लिष्ट ग्रंथ को बारह सौ वर्ष तक छूकर नहीं देखा। ऐसी स्थिति में सत्य तो यह है कि कावेल-टामस, कणे, और गजेन्द्रगडकर आदि के प्रयत्न स्तुत्य होते हुए भी किसी एक सीमा पर रुक गए थे और बाण के सैकड़ों स्थल अस्पष्ट पड़े थे। श्री चौधरी का अनुवाद उतना ही श्रेष्ठ है जितना उनके पूर्ववर्ती लेखकों का बन पड़ा था। हिन्दी-भाषा-भाषियों के लिए तो वह बहुत ही उपादेय है। उन्होंने हर्षचरित के हिन्दी में अध्ययन का मार्ग प्रशस्त किया है। किन्तु हर्षचरित के अनुवाद की समस्या उस ग्रन्थ के सांस्कृतिक अध्ययन से ही सुलझ सकती है। उसमें जो सैकड़ों पारिभाषिक शब्द हैं उनका तुलनात्मक सांस्कृतिक स्पष्टीकरण जबतक न होगा तबतक वे अनबूझ पहेलियां बनी रहेंगी। उदाहरण के लिये सजवन, प्रग्रीवक, चतुःशाल, पक्षद्वार, वीथी, गृहावग्रहणी, आस्थानमंडप आदि वास्तुशास्त्र सम्बन्धी शब्दों का अर्थ कोई भी टीकाकार स्पष्ट नहीं कर सकता जबतक प्राचीन भारतीय राजप्रासादों की रचना वास्तुशास्त्र की सहायता से न समझ ली जाय। इसी प्रकार बाण ने राजाओं की वेशभूषा का वर्णन करते हुए स्वस्थान (तंग मोहरी का पाजामा) पिंगा (चौड़ी मोहरी की सलवार) और सतुला (घुटने तक का आधा पाजामा) इन तीन तरह के पाजामों का और कंचुक, चीनचोलक, वारबाण तथा कूर्पासक, इन चार प्रकार के कोटों का उल्लेख किया है। किन्तु एक भी टीकाकार, अनुवादक या टिप्पणीकार ने इनके अर्थों को स्पष्ट करने पर ध्यान नहीं दिया। सम्भवतः इस प्रकार का सांस्कृतिक स्पष्टीकरण उनके क्षेत्र से बाहर था। किन्तु यह मानना पड़ेगा कि हर्षचरित के अर्थों को स्पष्ट समझने के लिये वह आवश्यक है।

बाण की संस्कृत शब्दावली का भी स्तर अपरिमित था। उस ओर भी प्रत्येक अनुवादक को ध्यान देना

आवश्यक है। उदाहरण के लिये विन्ध्याचल के जंगली गाव में घरों का वर्णन करते हुए बाण ने 'कुसुम्भ कुम्भ गडकुमूलैः' पद दिया है। कावेल का अर्थ है—Pots of safflower in excellent cupboards कणे का अर्थ है—The granaries of which were filled to the mouth with pots of safflower दोनों ही बाण का अर्थ नहीं समझे। कारण यह हुआ कि 'कुसुम्भ' शब्द का अर्थ कुसुम (रंग) और कमण्डल भी है जो अप्रचलित है। उसकी ओर ध्यान न जाने से उलझन पैदा हुई। बाण का तात्पर्य यह है कि उन देहाती घरों में छोटे करवे या हंडिया, घड़े और कुठले, ये तीन तरह के पात्र थे। हर्ष की बात है *कि चौधरीजी ने हिन्दी अनुवाद में कुसुम्भ के अर्थ को ठीक* समझा है—'कमण्डल, घडे, पिटक और (अन्न रखने के) कोठे मौजूद थे।' गंड कुमूल भी पारिभाषिक शब्द है जिसका अर्थ वही है जिसे अंग्रेजी में 'रिंग-वैल्स' कहते हैं और जो खुदाई में अनेक प्राचीन स्थानों में मिले हैं। राज्य श्री के विवाह की वेदी को सजाने के लिये चौड़े मुह के घडों में बोए गए जवारों (यवाकुरों) का वर्णन करते हुए बाण ने 'अमित्रमुखैः पचास्यैः कलशैः' लिखा है। यह शब्द टीकाकारों के लिये घुंडी बन गया। कावेल ने शब्दों का घोटाला खड़ा करके गोलिया दिया। कणे की भी दाल नहीं गली। चौधरीजी ने सच्चाई से स्वीकार कर लिया है कि अमित्र शब्द का ठीक अर्थ यहा नहीं जान पडता (पृ १६५)। पचास्य का अर्थ किसी ने पाच और किसी ने शेर किया, ठीक अर्थ है चौड़े मुह का। शेर भी इसीलिए पचास्य कहलाता है। अमित्रमुख का प्रधान अर्थ शत्रुमुखी नहीं है, वरन् मित्र या सूर्य की धूप जिन्हे नहीं मिली। बात यह है कि यवाकुर बोने के लिये चौड़े मुह के घड़े लिये जाते हैं और उन घडो को अंधेरी जगह में रखते हैं, उन्हे मित्रमुख (सूर्य का मुख) नहीं दिखाते, नौ-दस-दिन में जवारे बढ जाते हैं, तब उन्हें निकालते हैं। प्रतिवर्ष दशहरे पर इस प्रकार के जवारे अपने देश में बोए जाते हैं। इन परिमित शब्दों के साथ हम चौधरीजी के अनुवाद का स्वागत करते हैं।

—वासुदेवशरण अग्रवाल

दूब के आँसू—ले. पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'
प्रकाशक—सहयोगी प्रकाशन गोकुलपुरा आगरा। पृष्ठ संख्या ४४, सजिल्द मूल्य २)

प्रस्तुत पुस्तक कमलेशजी की ३१ कविताओं का संग्रह है। भाषा स्वच्छ और सुगम है इसलिए इन गीतों में भाव कई जगह बहुत अच्छे उभरे हैं। भाषा के बोझ से दबे नहीं हैं। कवि के पथ में आनेवाली आशा और निराशा की अनुभूतियां इनमें झलक रही हैं।

आज हंसूं या रोऊं बोलो
जिस दिन तुमने प्यार दिया था
अपना तन मन वार दिया था
उसकी सुधि कर शून्य निशा में —
जागूं या मैं सोऊं बोलो !
बेसुध सा अपने में जग है
मेरे आगे दुर्गम मग है
विष की प्याली पीलूं या फिर—
जीवन दीप सजोऊं बोलो ।

आशा और निराशा की आंख-मिचौनी तो जीवन के साथ होती ही रहती है, इस पर भी कवि सजग है और है अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर:

निष्क्रियता ही घोर मरण है ।
सजग पथिक की आंखों को कब
अच्छी लगती भला खुमारी ।
साथी मंजिल दूर हमारी ॥

पीछे के गीतों में कवि को अपने संघर्षशील जीवन से प्यार हो चला है और आशा का उदय ! जीवन मे अब उसे ऊब नहीं, संतोष है ! दुनिया के द्वारा मिलने वाले पाप, संताप, अभिशाप की उसे कोई परवाह नहीं !

लिखा होता कहीं यदि भाग्य में कम पुण्य का संचय
न होता यदि मुझे दुष्कर्म के फल भोगने का भय
बहुत सम्भावना थी छोड़ देता मनुजता को मैं—
बहुत अच्छा किया तुमने दिए जो पाप ही मुझको॥

एक बात बहुत अखरती है, वह यह कि पुस्तक के कलेवर को देखते हुए मूल्य अधिक है ! —'दिनेश'

हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, बम्बई की दो पुस्तकें

प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद के लेखक डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी हैं। आप हिन्दी के पण्डित होने के साथ-साथ सस्कृत के आचार्य भी हैं। प्राचीनकाल में,

देव-दानवो ने जैसे समुद्र मन्थन करके नवरत्न प्राप्त किये थ आजकल उसी प्रकार सस्कृत-साहित्य का मन्थन करके द्विवेदीजी तात्कालिक समाज को सामाजिक और सास्कृतिक मान्यताओ, कला प्रवृत्तियो और सच तो यह है उसके मानस का पूरा चित्र हमारे सामने प्रस्तुत करने में लगे है। प्रस्तुत पुस्तक उसी मन्थन का परिणाम है। वैसे यह पुस्तक उनकी 'प्राचीन भारत का कला विकास' नामक पुस्तक का सशोधित और परिवर्धित रूप है पर रूप इतना पलट गया है कि नया नामकरण करने की आवश्यकता पडी। पुस्तक इतिहास और मानस शास्त्र के विद्यार्थी के लिए अनिवार्य है। वर्णन इतने रोचक, विस्तृत और ज्ञानवर्धक है कि पढने पढते पाठक उनको जीना जान पडता है। उन युगो का जन-मानस जैसे हमारी दृष्टि म मुखर हो उठता है। लगभग १६४ पृष्ठो में सहस्त्रो वर्षों का जीवन इतनी खूबी से उभरा है कि और कुछ जानने को नही रह जाता। भाषा विषय के अनुरूप क्लिष्ट है, सरल बनाना शायद विषय को और भी क्लिष्ट करता होता। मूल्य ३) है। छपाई सफाई उत्तम है। चित्रो के कारण मूल्य के साथ-साथ उपयोगिता भी बढी है।

शरत साहित्य के २६वें भाग मे शरत बाबू की तीन असमाप्त रचनाए तथा एक पूरी कथा **अरक्षणीया** सग्रहीत है। हृदय को मनुष्य की कसौटी माननेवाले इस महान् कलाकार ने आज से ३५ वर्ष पूर्व घोषणा की थी--'प्रजा की मन स्थिति मे भारी परिवर्तन आगया है। अब यह चाहे शिक्षा का परिणाम हो चाहे युग धर्म का हो और चाहे जमीदारी अत्याचारो का ही नतीजा हो। जनता अब जमीदारी प्रथा का नाश चाहती है। दो रोज पहले हो या दो रोज बाद जमीदारी मिटेगी 'जरूर।' इसी की कथा अधूरे उपन्यास 'जागरण' मे हैं। यह कथा कैसे समाप्त होनी कहना जरा कठिन है पर प्रतिमा-सम्पन्न कलाकार आसुओ की कथा के सहारे ही यश का भागी नही हुआ था इसका यथेष्ठ आभास हमें मिल जाता है। अरक्षणीया' पूरी कथा है और वह एक ऐसी नारी की कथा है जिसे समाज और विधाता दोनो ने कगाल बनाने में होड बाधी थी पर कलाकार तो दोनो से ऊपर है क्योंकि वह सबका विधाता है। उसने 'अरक्षणीया' का जो मार्मिक चित्र खीचा है, समाज के अत्याचार और उत्पीडन के सामने उसे जिस तरह शान्त भाव से जूझने दिखाया है वह क्या पत्थर हृदय को नही पिघला सकता! न पिघला सके तो मनुष्य की मनुष्यता कहा शरण ले और कलाकार की शक्ति की सार्थकता कहा प्रकट हो। 'अरक्षणीया' कही भी अमानवी नही है। बार-बार तिरस्कृत होकर वर के सामने अपने को दिखाने जाते समय वह जिस तरह शृगार करके उपहास की पात्री बनती है वह स्थल मानवता को चुनौती देता है। यह सब पढ कर समझने की वस्तु है। शरत की भाषा और शैली सदा की तरह मानवता की ज्योति को प्रखर करनेवाली है। छपाई-सफाई सब हिन्दी ग्रथ रत्नाकर के अनुरूप है। --'सुशील'

'बाल-भारती'--(खेल-कूद अंक) सम्पादक--मन्मथनाथ गुप्त, प्रकाशक--पब्लिकेशन्स डिवीजन, दिल्ली।

प्रस्तुत अक की योजना एक सूझ-भरा काम है। उसमें देशी विदेशी अनेक खेलो की जानकारी दी गई है। कुश्ती, *कबड्डी, आखमिचौनी, किलीदड, बागबानी, तैराकी,* गुल्लीडडा, आदि देशी खेलो और व्यायामो के साथ-साथ फुटबाल, वालीबाल, टेनिस, बास्केट बाल, आदि विदेशी खेलो को भी स्थान दिया गया है। विदेशी खेलो की जन्म-भूमि कही भी क्यो न हो, लेकिन उनमें से अधिकाश का बीज हमारी भूमि मे जम गया है और अब ऐसा नही लगता कि वे हमारे नही है। इस अक मे विभिन्न प्रचलित खेलो के विषय मे अनेक ज्ञानप्रद बाते मालूम हो जाती है *और न खेलनेवालो को भी खेलने की प्रेरणा मिलती है।* अक की सामग्री उपादेय है। चित्र भी अच्छे हैं। लेकिन अधिकाश रचनाओ मे खेलो के इतिहास का उल्लेख किया गया है, खेलो को रोचक ढग से देने का प्रयत्न नही किया गया। यदि कहानी के रूप मे अथवा अन्य किसी रोचक ढग से खेलो का वर्णन किया जाता तो अक की उपयोगिता कही अधिक हो जाती। फिर भी कुल-मिलाकर अक अच्छा है। वर्त्तमान पीढी का स्वास्थ्य अनेक कारणों से गिरता जारहा है। ऐसी स्थिति में खेलो के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करने और उनकी जानकारी पाठको को देने का यह प्रयास शुभ है। --सव्यसाची

'क्या व कैसे ?

कांग्रेस की सार्थकता : कब और कैसे ?

कांग्रेस का ५८वां अधिवेशन १६ जनवरी से गोलकुण्डा के निकट नानलनगर में प्रारंभ होकर १८ जनवरी को समाप्त हो गया। इस अधिवेशन में गत वर्ष की राजनैतिक घटनाओं और प्रवृत्तियों का सिंहावलोकन करते हुए अनेक निर्णय किये गए। एक प्रस्ताव द्वारा पंचवर्षीय योजना और सरकार की विदेशी नीति का समर्थन किया गया। दूसरे प्रस्ताव द्वारा साम्प्रदायिकता की निन्दा करते हुए घोषित किया गया कि उसके साथ किसी प्रकार का भी समझौता नहीं किया जायगा। एक अन्य प्रस्ताव द्वारा निश्चय किया गया कि भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन के संबंध में सावधानी बरती जायगी और आंध्र को छोड़ कर अन्य किसी भी भाग से इस प्रश्न को तब-तक नहीं उठने दिया जायगा जबतक कि पंचवर्षीय योजना सफलतापूर्वक कार्यान्वित नहीं हो जाती। एक प्रस्ताव द्वारा विनोबाजी के भूदानयज्ञ की सराहना की गई। एक दूसरे प्रस्ताव द्वारा दक्षिण अफ्रीका में अपने मूलभूत अधिकारों के लिए अहिंसात्मक सत्याग्रह करने वालों की प्रशंसा की गई। एक प्रस्ताव में स्वाधीनता संग्राम के वीर सेनानी खान अब्दुल गफ्फार खां के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित की गई और उनके संबंध में बरती गई पाकिस्तान की सरकार की अनुचित नीति की तीव्र निन्दा की गई।

इन तथा अन्य प्रस्तावों में देश की अनेक महत्वपूर्ण समस्याएं आ जाती हैं। उन पर सम्यक् दृष्टि से विचार करना और उनके संबंध में कांग्रेस और सरकार का रुख साफ होना आवश्यक था; लेकिन प्रश्न यह है कि क्या उतने से कांग्रेस के ध्येय की पूर्ति हो गई? आज की स्थिति यह है कि कांग्रेस और कांग्रेसी शासक हर तरफ आलोचना के पात्र बने हुए हैं और देश की जन-शक्ति बिखरी हुई है और पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष और पदलोलुपता के कारण खींचतान हो रही है। ऐसी दशा में कतिपय प्रस्ताव पास कर देने मात्र से कांग्रेस-संगठन मजबूत होगा, इसकी सम्भावना नहीं है। कांग्रेस का उद्देश्य भारत को विदेशी शासन से मुक्त करना था। वह उद्देश्य भले ही पूरा हो गया; लेकिन कांग्रेस का कार्य यहीं समाप्त नहीं हो जाता। उसे देश को इस योग्य बनाना है कि भारी तपस्या के बाद जो फल प्राप्त हुआ है, उसका उपभोग समूचा देश कर सके, देश की शक्ति संगठित हो और सब मिल कर राष्ट्र की इमारत को पुष्ट करें। यह काम किसी पद पर बैठ कर नहीं, विधायक कार्यक्रम के द्वारा ही हो सकेगा। सत्ता का लोभ फूट पैदा करता है और सेवाकार्य लोगों को जोड़ता है। आज की सबसे बड़ी आवश्यकता देश को ऐसा विधायक कार्य देना है, जिसमें पद-प्रतिष्ठा के लिए लालायित होकर भटकने की गुंजाइश न हो। हमारी निश्चित राय है कि यदि कांग्रेस को आज की परिस्थिति में उपयोगी बनाना है तो समस्त रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं की सहायता से उसे ऐसा कार्यक्रम बनाकर देश को देना चाहिए जो लोगों का ध्यान नगरों की अपेक्षा ग्रामों पर केन्द्रित करके ग्रामों को अपना कार्यक्षेत्र बनावे। सरकार अपने ढंग पर चलती है और चलने में उसकी अपनी मर्यादाएं हैं। लेकिन कांग्रेस के सामने ऐसी कोई विवशता नहीं है, न होनी चाहिए।

कांग्रेस की परम्पराएं बड़ी शानदार हैं। एक समय था जब कि कांग्रेस का अर्थ था चालीस कोटि व्यक्तियों का स्वर। आज दुर्भाग्य से वह स्थिति नहीं रही है।

पदों पर आसीन होकर वह स्थिति प्राप्त भी नहीं हो सकती। उसके लिए वैसी ही कठोर तपस्या की जरूरत है, जैसी आज़ादी पाने के लिए करनी पड़ी थी। हमें आश्चर्य होता है कि हमारे कांग्रेसी नेता इस ओर गंभीरतापूर्वक क्यों नहीं सोचते! आज हमारे आपसी झगड़े हमारी जड़ कमजोर कर रहे हैं और राष्ट्र की भूमि को विदेशी प्रचार का बड़ा ही उपयुक्त क्षेत्र बना रहे हैं।

कांग्रेस आंख मूंदकर सरकार की नीति का अनुसरण करके अपनी सार्थकता सिद्ध नहीं कर सकेगी। इसके लिए

तो उस पूरे देश में रचनात्मक कार्यक्रम को अपनाना और सर्वव्यापी बनाना होगा। गांधीजी का अठारह-सूत्री कार्यक्रम आज भी हम लोगों के सामने है। बदली परिस्थिति की दृष्टि से यदि उसमें कुछ परिवर्तन आवश्यक हो तो किया जा सकता है। लेकिन इतना निश्चय है कि बिना उसे अपनाये और जारी रखे बगैर कांग्रेस सच्चे अर्थों में जिन्दा नहीं रह सकती।

कांग्रेस के अधिवेशन पर हजारों-लाखों रुपये व्यय होते हैं। देश के कोने-कोने से चोटी के नेता तथा कांग्रेसी कार्यकर्त्ता एकत्र होते हैं। यदि कांग्रेस के मंच से सरकारी नीति का ही पृष्टपोषण करना है और सरकार से स्वतन्त्र अपना कोई कार्यक्रम नहीं देना है तो अधिवेशन को सरकारी अधिवेशन कहना अधिक उपयुक्त होगा, कांग्रेस का अधिवेशन नहीं।

इस अधिवेशन में विनोबा के भूदानयज्ञ की सराहना की गई है लेकिन उतना ही पर्याप्त नहीं है। यदि कांग्रेस वास्तव में इस कदम को उपयोगी मानती है तो उसे अपने प्रत्येक सदस्य को इसमें जुट जाने की प्रेरणा या आदेश देना चाहिए।

हमारा आकांक्षा है कि देश की यह महान संस्था अपने प्राचीन गौरव को बट्टा न लगावे और देश के सामने सेवा और त्याग का ऊँचा आदर्श उपस्थित करे।

गांधी-दर्शन-गोष्ठी

दिल्ली भारत की राजधानी ही नहीं, समस्त विश्व के आकर्षण की केन्द्र बन रही है। आए दिन बड़े-बड़े समारोह यहां होते रहते हैं। लेकिन पिछले दिनों ५ जनवरी से १८ जनवरी तक यहां जो गांधी-दर्शन-गोष्ठी हुई उसे हम एक बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य मानते हैं। इस गोष्ठी में चीन और रूस को छोड़कर अनेक देशों के शांतिवादी प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। उन सबने एक स्वर से गांधीजी के सिद्धान्तों और शिक्षाओं पर आस्था प्रकट की और आश्वासन दिया कि वे अपने अपने देश में उन आदर्शों और शिक्षाओं का प्रचार करेंगे। उन्होंने यह भी घोषणा की कि गांधीजी के सिद्धान्तों से ही मानव-जाति संकटमुक्त हो सकती है और भीषण हिंसक संहार से बच सकती है।

यह गोष्ठी केन्द्रीय सरकार के शिक्षा विभाग की ओर से बुलाई गई थी।

गोष्ठी के अध्यक्ष लार्ड बॉयड ओर ने स्पष्ट कहा कि हम लोगों की राय है कि प्रत्येक बालक बालिका को ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए कि जिससे उनके उत्तम गुण प्रकट हों, वे अपनी आत्मा के मालिक बन सकें और उनकी आत्मा घृणा और भय से मुक्त हो सके।

गोष्ठी ने एक प्रस्ताव पास करके विश्व से सिफारिश की है कि राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय तनातनी गांधीजी के सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों से ही दूर होगी।

गोष्ठी के प्रथम दिन भाषण देते हुए केन्द्रीय सरकार के शिक्षा मंत्री मौलाना अबुलकलाम आजाद ने बताया कि वैर से वैर शांत नहीं होता और यदि विश्व में शांति स्थापित करनी है तो वह गांधीजी के सिद्धान्तों को अपनाकर ही की जा सकती है। गोष्ठी का उद्घाटन करते हुए भारत के प्रधान मंत्री नेहरूजी ने भी इसी बात पर जोर दिया। गोष्ठी के अंतिम दिन राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने आशा प्रकट की कि विभिन्न देशों से आये हुए प्रतिनिधि गांधीजी के सिद्धान्तों की ज्योति को विश्व के कोने-कोने में ले जायंगे और गांधीजी की शिक्षाओं को संसार के सामने पेश करेंगे।

गोष्ठी में जिन जिन प्रतिनिधियों ने भाग लिया वे अपने-अपने देश में अहिंसा, सत्य और प्रेम के क्षेत्र में कुछ-न-कुछ काम कर चुके हैं और अब भी कर रहे हैं और अपने देशों से इतनी दूर उनका आना इस बात का द्योतक है कि विश्व को अहिंसक तरीके पर संकट से बचाने के लिए वे बहुत ही आतुर हैं।

गोष्ठी की बैठकें कई दिन तक चलीं और बड़े ही प्रेम-भाव से उन्होंने आज की अनेक समस्याओं पर विचार-विनिमय किया।

यह निश्चय ही भारत के लिए बड़े गौरव की बात है कि उसने एक ऐसे महापुरुष को जन्म दिया, जिसके सिद्धान्तों के प्रति आकर्षित होकर दूर-दूर से लोग यहां खिंचे आते हैं। लेकिन भारत के लिए सच्चे गौरव की बात तो तब होगी जब कि गांधीजी के सिद्धान्तों को इस देश में अमली जामा पहना कर तब उन्हें विश्व के समक्ष पेश किया जायगा। हमें स्मरण है कि शांतिनिकेतन और सेवा-

ग्राम में जब विश्वशांति परिषद हुई थी तो हमने हार्वर्ड विश्वविद्यालय के चांसलर डा जॉन्सन से पूछा था कि वह भारत किस आशा से आए हैं। उन्होंने उत्तर दिया था कि "*हमने गांधीजी की अहिंसा के विषय में बहुत-कुछ पढ़ा और सुना है। हम उसके क्रियात्मक रूप को देखने यहां आये हैं।*" उनकी बात को सुन कर हम कुछ देर तक सोच में पड़ गये थे।

शांति के लिए यों जो भी प्रयत्न किये जाय, अभिनंदनीय हैं, लेकिन उन प्रयत्नों का स्थायी महत्व तब होगा जब कि शांति स्थापित करने के आधारभूत सिद्धान्तों को वैयक्तिक, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन में उतारा जायगा, उन पर निष्ठापूर्वक अमल किया जायगा।

क्या हम आशा करें कि गोष्ठी के प्रतिनिधि इसी निष्ठा को लेकर अपने-अपने देश को लौटे हैं और भारतीय प्रतिनिधियों ने अपने भारी दायित्व का अनुभव किया है? इस प्रश्न का उत्तर समय देगा।

चर्खा संघ के महत्वपूर्ण निर्णय

पिछले दिनों अखिल भारतीय चर्खा संघ के ट्रस्टी मंडल की इकहत्तरवीं सभा हुई थी, जिसमें उन्होंने निर्णय किया है कि "गांधी-विचार-धारा की वे सब पुस्तकें संघ के भण्डारों में रक्खी जाय, जिनको रखने का चर्खा-संघ निर्णय करे। *भण्डारों में रक्खी जानेवाली पुस्तकों की सूची बनाने का काम श्री अण्णासाहब, श्री धोत्रेजी और श्री गुरुस्वामी को सौंपा जाय। प्रमाणित संस्थाएं अपनी शक्ति भर साहित्य बिक्री का कार्य भण्डारों के मार्फत करें।*"

चर्खा-संघ के ट्रस्टी मण्डल के इस शुभ निर्णय का हम स्वागत करते हैं। वस्तुतः इस प्रकार का निर्णय बहुत पहले ही हो जाना चाहिए था; लेकिन अच्छा काम अब भी हो जाय, ठीक है।

आज वामपक्षी साहित्य की बाजार में बाढ़-सी आ गई है। वह सब-का-सब साहित्य प्रचारात्मक है और उसके पीछे विदेशी सरकारों का हाथ होने के कारण वह इतना सस्ता है कि देख कर आश्चर्य होता है। अधिकांश शिक्षित व्यक्ति उसके सस्तेपन के कारण उसे खरीद कर ले जाते हैं और इस प्रकार वह साहित्य सहज ही शिक्षित घरों में प्रवेश पा रहा है। बिना सरकारी सहायता के और पाठकों की बहुत बड़ी संख्या में मांग के कोई भी उतना सस्ता साहित्य प्रकाशित नहीं कर सकता; लेकिन इतना तो हम अवश्य कर सकते हैं कि स्वस्थ और उच्च-कोटि के *साहित्य को पाठकों की निगाहों के आगे ला दें और उसे खरीदने के लिए उन्हें प्रेरणा दें।* गांधीजी की मृत्यु को पांच वर्ष हो चुके हैं, लेकिन उनके साहित्य को घर-घर पहुंचाने का कोई भी संगठित प्रयत्न हुआ हो, इसका हमें स्मरण नहीं है। प्रत्येक खादी भण्डार बापू की पुस्तकों की बिक्री का केन्द्र बन जाना चाहिए। बिना गांधीजी की विचार-धारा और उनके सिद्धान्तों को समझे आखिर खादी भी टिकेगी तो कैसे! बल्कि हम तो यों कहेंगे कि हरेक रचनात्मक कार्यकर्त्ता गांधी-साहित्य का प्रचारक और प्रसारक बन जाना चाहिए।

आज जो रद्दिल और रूपहले साहित्य की बाढ़ आ रही है, उसे बहुत कुछ अंशों में रोकने के लिए सुसंगठित और विस्तृत प्रयत्न की आवश्यकता है।

जयप्रकाशबाबू का नया संकल्प

सुप्रसिद्ध समाजवादी नेता श्री जयप्रकाशजी ने निश्चय किया है कि वह अब अपनी शक्ति विनोबाजी के भूदानयज्ञ को सफल बनाने पर केन्द्रित करेंगे। उनके इस निश्चय से भूदानयज्ञ में संलग्न व्यक्तियों को निश्चय ही बहुत बल मिला होगा। जयप्रकाशबाबू में लगन है, और शक्ति है। *वह जिस काम को उठाते हैं, पूरी निष्ठा के साथ उठाते हैं। हमें विश्वास है कि ऐसे लगनशील व्यक्ति के निष्ठापूर्ण सहयोग को पाकर भूदानयज्ञ का कार्य तेजी से आगे बढ़ेगा।*

हर्ष की बात है कि जयप्रकाशजी ने इस दिशा में कार्य भी प्रारंभ कर दिया है। हाल ही में वह कुछ दिन गया जिले में इस सिलसिले में यात्रा भी कर चुके हैं।

हम *आशा करते हैं* कि जयप्रकाशबाबू का संकल्प अन्य कर्मठ नेताओं का ध्यान इस ओर आकर्षित करेगा और भूदानयज्ञ में सक्रिय सहयोग देने की उन्हें प्रेरणा देगा।

भगवान की कृपा से विनोबाजी अब शरीर से स्वस्थ होते जा रहे हैं, लेकिन उन्हें असली स्वास्थ्य तो तब प्राप्त होगा जब उनका भूदानयज्ञ जोरों से आगे बढ़ेगा।

—य०

'मण्डल' की ओर से

सहायक सदस्य योजना

'मण्डल' की सहायक सदस्य-योजना के संबंध में इधर दिल्ली पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। परिणामस्वरूप कई स्कूल सदस्य बन गये हैं, कुछ बनने जा रहे हैं। योजना उन्हें बड़ी ही उपादेय और महत्वपूर्ण लगी है। अनेक व्यापारी संस्थाएं भी, जिनमें लाइब्रेरियां हैं, इस योजना का लाभ ले रही हैं। दस वर्ष में सारे रुपये मिल जाते हैं, साथ ही घर बैठे लगभग आठ सौ रुपये की पुस्तकें। रुपये देते ही लगभग २५०) की पुस्तकों का सेट तत्काल मिल जाता है। और पुस्तकें भी कैसी? गांधीजी की, विनोबाजी की, जवाहरलालजी की, राजगोपालाचार्य की, पश्चिमी विचारकों की, हिन्दी के विद्वानों की—जिन्हें सब पढ़ सकते हैं, छोटे-बड़े, स्त्री-बच्चे सब। उन्हें पढ़कर ज्ञानवर्द्धन तो होता ही है, दृष्टि भी विशाल होती है। ऐसी योजना का सदस्य कौन न बनेगा!

हमारे कुछ हितैषी मित्रों ने पूछा है कि इस योजना से 'मण्डल' का कुछ आर्थिक लाभ भी होगा या नहीं? उन्होंने यह भी आशंका प्रकट की है कि आखिर 'मण्डल' इतने मूल्य की पुस्तकें कैसे दे सकेगा? मित्रों की इस भावना के लिए हम उनके आभारी हैं। हम लोगों ने सभी प्रकार सोच-समझ कर ही यह योजना तैयार की है। इसमें हमें आर्थिक लाभ नहीं है। आर्थिक लाभ करना 'मण्डल' का ध्येय है ही नहीं। इस योजना का सबसे बड़ा लाभ हम यह समझते हैं कि इसके द्वारा हम 'मण्डल' के सत्साहित्य को ऐसे घरों में प्रवेश करा देंगे, जिनमें हिन्दी की सुपाठ्य पुस्तकों का प्रवेश अब तक कम हुआ है। यह लाभ अपने आपमें कम नहीं है।

पुस्तकों का एक बड़ा और दो छोटे, इस प्रकार तीन सेट सदस्यों को भेजे जा चुके हैं।

पिछले अंक में जैसी कि हमने सूचना दी थी, समाज-विकास तथा विचार-क्रांति माला के लिए कुछ बहुत ही उपयोगी पुस्तकें तैयार कराई जा रही हैं। तैयार होते ही सदस्यों की सेवा में पहुंचेंगी।

'जीवन-साहित्य' के पाठकों से

'जीवन-साहित्य' के पिछले अंक में हमने पत्र की आर्थिक स्थिति अपने पाठकों के समक्ष उपस्थित कर दी थी, लेकिन हमें खेद है कि पाठकों की ओर से अभी तक कोई सक्रिय सहयोग प्राप्त नहीं हुआ। 'मण्डल' मुनाफा कमाने वाली संस्था नहीं है। ऐसी दशा में बहुत अधिक घाटा उठा कर 'जीवन-साहित्य' को उन्नत करना और उसके पृष्ठों में वृद्धि करते जाना उसके लिए कैसे शक्य हो सकता है? विज्ञापन हम लेते नहीं। तब उसे पाठकों का ही सहारा रह जाता है।

पत्र का नया वर्ष जनवरी मास से प्रारम्भ होता है। हम अपने कृपालु पाठकों से अनुरोध करेंगे कि उनमें से प्रत्येक कम-से-कम एक-एक ग्राहक तो बना ही दें, यद्यपि हमारी अपेक्षा तो यह है कि वे और अधिक बनायें। कुछ ऐसे लोगों और संस्थाओं के पते भी वे भेज सकते हैं, जो पत्र-व्यवहार करने पर ग्राहक बन सकें। चालू वर्ष, अर्थात् सन् १९५३ में जो बंधु सबसे अधिक, पर कम-से-कम २५ ग्राहक बनावेंगे, उनके सहयोग के सम्मान-स्वरूप हम उन्हें 'कांग्रेस का इतिहास' की १५०० पृष्ठों की तीन जिल्दों का एक सेट, जिसका मूल्य ३०) है, और सन् १९५४ की बड़े आकार की 'गांधी-डायरी' की एक प्रति सामार भेंट करेंगे। ग्राहक जनवरी और जुलाई से बनाये जाते हैं।

सत्साहित्य के प्रसार की नई योजना

'मण्डल' ने अपने यहाँ के सत्साहित्य के प्रसार के लिए पाठकों की दृष्टि से एक बहुत ही उपयोगी योजना बनाई है, जो अन्यत्र दी जा रही है। इस योजना के अनुसार पाठकों को अच्छी-अच्छी पुस्तकें सुविधा के के साथ और सस्ते मूल्य में प्राप्त हो जायगी। एक कार्ड लिखकर विस्तृत योजना मंगा लीजिये, साथ ही 'मंडल' का नया सूची-पत्र भी। —मंत्री

सत्साहित्य-प्रसार की योजना

उद्देश्य

योजना का मुख्य उद्देश्य लागत मात्र मूल्य मे प्रत्येक व्यक्ति के घर सत्साहित्य का छोटा-सा पुस्तकालय स्थापित करना और समय-समय पर अच्छी-अच्छी पुस्तकों द्वारा उसे समृद्ध बनाना है।

नियम

१ प्रत्येक व्यक्ति या संस्था सदस्यता शुल्क के १०) देकर इस योजना के सदस्य बन सकेंगे। ये रुपये मडल में जमा रहेंगे और सदस्यता समाप्त होने पर वापस कर दिये जायगे या हिसाब मे कर लिये जायगे।

२. सदस्यो का एक अलग रजिस्टर रखा जायगा जिसमे उनका पूरा विवरण रहेगा।

३. प्रत्येक सदस्य को सदस्य बनने पर 'मडल' तथा उसके सह-प्रकाशको द्वारा प्रकाशित उपलब्ध पुस्तको का लगभग ४५०) का सेट दो-तिहाई मूल्य मे अर्थात् ३००) मे मिलेगा। उसे भेजने का खर्च 'मडल' देगा। **प्रत्येक सदस्य को यह पूरा सेट लेना अनिवार्य होगा।**

४. आगे हमारे जितने प्रकाशन होंगे उन सबकी विधिवत् सूचना सदस्यों को विवरण सहित दी जाया करेगी।

५. प्रत्येक सदस्य के लिए वर्ष में कम-से-कम ३०) की पुस्तके मगाना आवश्यक होगा। सदस्यो को इन पर २५% कमीशन दिया जायगा। पुस्तके भेजने का डाक खर्च सदस्य के जिम्मे होगा जो वी० पी० से वसूल कर लिया जायगा।

६. यह योजना केवल मंडल के **जयंती-वर्ष अर्थात् सन् १९५३ के** वर्ष के लिए होगी। इस के बाद इस योजना के अतर्गत सदस्य नहीं बनाये जायेंगे।

इस योजना

में

मिलनेवाली पुस्तकों तथा अन्य जानकारी के लिए लिखिये :

सस्ता साहित्य मण्डल

नई दिल्ली

Regd. No. D. 228

जीवन सादा बनाइये,
विचार ऊंचे कीजिये।

हमें अपने राष्ट्र को बनाना है।

●

हम अपने को ऊंचा करेंगे
तो
राष्ट्र अपने आप ऊंचा हो जायगा।

●

सुधार कीजिये—
लेकिन, भली प्रकार समझकर

आलोचना कीजिये—
लेकिन, विवेकपूर्वक और रचनात्मक

काम कीजिये—
लेकिन, देश का हित ध्यान में रखकर

इस दिशा में 'मण्डल' का साहित्य आपकी विशेष सहायता कर सकेगा

सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

मार्तण्ड उपाध्याय मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल नई दिल्ली द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली में छापकर प्रकाशित।



अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी

पुण्यतिथि २५ मार्च, १९५३]

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय
यशपाल जैन

जीवन साहित्य

लेख-सूची

उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश तथा बिहार प्रादेशिक सरकारों द्वारा स्कूलों, कालेजों व
लाइब्रेरियों तथा उत्तरप्रदेश की ग्राम-पंचायतों के लिए स्वीकृत

जीवन-साहित्य

अहिंसक नवरचना का मासिक

वर्ष १४] मार्च १९५३ [अंक ३

तालीम का सही रूप

जवाहरलाल नेहरू

मेरे दिमाग में कोई शक नहीं है कि इस बुनियादी तालीम के ही रास्ते पर हमें चलना है। शुरू में तो चलना ही है। फिर यह सोचना है कि इसमें दूसरी टैक्नीकल तालीम कैसे खपेगी। यह एक अलग सवाल है। गौरतलब है। हर एक आदमी उसे नहीं सीखेगा—इस समय भी नहीं सीखता। हमें यह याद रखना है कि एक आम तालीम हर एक के लिए, करोड़ों बच्चों के लिए रखनी है। इसके अलावा एक खास तालीम, वह इसके खिलाफ नहीं, वरन् टैक्नीकल वगैरह रखनी है। वह इसमें जुड़ सकती है, बढ़ सकती है, खास लोगों के लिए। इसमें मुझे कोई शक नहीं है कि इस ढंग से हमें चलना है खासकर स्कूलों में तो इसे कर ही देना चाहिए। अगर स्कूलों में नहीं करेंगे तो बाद में क्या करेंगे? तीसरी बात यह है कि अभी जो नये स्कूलों के नक्शे बनें, उनमें ऐसा न हो कि ऊपर की बातों में ही पैसा ज्यादा खर्च हो। अलावा पैसों की कमी के, मैं समझता हूं, उसूलन भी यह सही नहीं है, क्योंकि इससे हमारे दिमाग दूसरी तरफ झुक जाते हैं। नई दिल्ली को ही देखें। यहां पुराने काल से काम करने के खास ढंग हो गये हैं। वैसे कोई बुरे दिमाग नहीं हैं लेकिन एक तरफ झुके हैं। उससे हमारे काम पर काफी असर पड़ता है, और उन्हें दूसरी तरफ झुकाना मुश्किल हो जाता है। कोशिश की जाती है; शायद हल्के-हल्के हों।

अच्छा हो कि हम अपनी तालीम को उस तरफ न झुकने दें, जो हमारे मुल्क की हालत से ताल्लुक न रखती हो। आजकल विद्यार्थी विदेशों में जाते हैं। यह हर तरह से अच्छा है; नई जगहों में जायं, नई बातें सीखें, नई हवा खायं, उनका दिमाग खुले, जिससे तंगख्याली उनमें न रहे। लेकिन वहां से जो विद्यार्थी सीख कर आते हैं, उनके दिमाग में उन्हीं मुल्कों के ढंग होते हैं। वे यहां भी उसी ढंग से काम करना चाहते हैं। वहां की जमीन दूसरी, हालात दूसरे, साधन दूसरे, लोग दूसरे, चुनांचे वह बात चलती नहीं और चलती है तो बहुत छोटे पैमाने पर। इससे वे भी परेशान होते हैं कि कुछ कर नहीं सकते। एक आदमी की निशानी यह है कि वह अपनी शक्ति से क्या कर सकता है, न कि उसे हमेशा दस तरह के औजार चाहिये तब वह कुछ कर सकता है; नहीं तो वह बेकार है। इसलिए हमें अपनी हैसियत के मुताबिक काम करना चाहिये।

की अनिवार्यता को स्वीकार करते हुए भी जनता की क्षमता, स्थिति एवं वातावरण को प्रधानता दी थी। भूदान-यज्ञ के विषय में भी यही बात लागू होती है। आज स्वराज्य की प्रभात-वेला में, इस वातावरण में तलवार या रक्त-क्रान्ति के बजाय प्रेम और शान्ति का संदेश ही जनता अधिक सुविधा से स्वीकार कर सकती है। फिर भूमि-यज्ञ का दूसरा पक्ष यानी भू-स्वामी अच्छी तरह समझने लगा है कि उसकी यह वर्तमान स्थिति अधिक दिन ठहरने वाली नहीं है। जमींदारी और जागीरदारी का अन्त वह अपनी आंखों देख चुका है। ऐसी परिस्थिति में वह सब कुछ देकर जनता की सद्भावना और प्रेम को पा सके तो अधिक घाटा नहीं। देश की वर्तमान आर्थिक दशा उसके विपक्ष में है, वातावरण उसके विरुद्ध है, सरकार उसको इन विशेष सुविधाओं को रहने देने वाली नहीं है—तब वह किस प्रकार अपने को बदलने में अपना हित देखेगा—प्रेम या बल? इन सब बातों को देखते हुए यह कहना अनुचित नहीं है कि 'भूदान-यज्ञ' एक सामयिक आन्दोलन है और देश के सांस्कृतिक वातावरण में इसी प्रकार के आन्दोलन अधिक तीव्रता और स्थायित्व से जनता के दिल और दिमाग पर असर डालते हैं।

इसके अतिरिक्त कुछ और बातें भी विचारणीय हैं। मतभेद के लिए गुंजायश रखते हुये भी यह मानना पड़ेगा कि स्वराज्य के बाद देश में एक राजनैतिक उदासीनता छा गई है। सुधार और व्यवस्था की आशा सरकार से क्षीण-सी हो चुकी है। नेता ऊंचे उठ गये हैं या कहें 'सरकार' हो गये हैं। इन सब बातों का प्रभाव जनता पर पड़ा है। उसने व्यक्ति के 'स्वेद-श्रम' पर विश्वास करना ही छोड़ दिया है। किसी देश के विकास में जनता की यह मनोवृत्ति बड़ी घातक होती है। उसमें देश का जन-बल क्षीण और निष्क्रिय हो जाता है। सामूहिक राजनैतिक चेतना का मृतप्राय-सी हो जाना, लोगों के मन में राजनीति और नेताओं के प्रति श्रद्धा का न रहना—इसका परिणाम जनतंत्र के लिये बड़ा भयंकर होता है। एक बार देश के जन-समुद्र में चेतना और उत्साह की लहर पैदा कर देना उसे मृत्यु से बचाने के लिये बड़ा आवश्यक है। वह लहर कैसी हो? किसकी हो? किसके द्वारा हो; यह अलग सवाल है। पर इतना सत्य है कि यदि किसीने इस समय एक स्वस्थ आन्दोलन का श्रीगणेश न किया होता तो राष्ट्र का स्वस्थ चैतन्य और सामूहिक शक्ति मर-सी गई होती। विनोबाजी के इस आन्दोलन ने वर्षों से ठंडे पड़े ग्राम और रास्तों को एक नई क्रान्ति के उद्बोधक गीतों से भर दिया है। गांवों की जनता ने विनोबाजी से विश्वास और प्रेम के साथ-साथ एक नई रोशनी और एक 'करने योग्य' काम पाया है। आज उसके सामने कुछ उद्देश्य है। स्वराज्य के बाद की शून्यता खत्म हो चुकी है। भूदान के तरानों के साथ वह अपने को बंधा हुआ पाता है और इस तरह एक नई क्रान्ति ने देशव्यापी हलचल उत्पन्न करके देश को राजनैतिक क्षोभ और निराशा के गर्त में गिरने से बचा लिया है। निःसंदेह यह श्रेय 'भूदान' आंदोलन को है।

एक विशेष बात यह है कि इस आन्दोलन का अंकुर विनोबाजी की कल्पना में "तेलगाना-यात्रा" में उत्पन्न हुआ। सभी को भली-भांति विदित है कि आज से दो वर्ष पूर्व तेलगाना एक भीषण आग में जल रहा था। एक ओर कम्युनिस्ट धनिक वर्ग, भूपतियों एवं कांग्रेसी लोगों की निर्मम हत्या कर रहे थे, दूसरी ओर आतंक से विद्रोह को वश में करने वाली सरकार प्रतिहिंसा और प्रतिआतंक का सहारा ले कर निरीह किसान और उत्साही युवकों को गोली के घाट उतार रही थी। तेलगाना की इस रक्त-क्रान्ति के पीछे भूमिहीनों की 'भूमि की मांग' थी। एक ओर हजारों एकड़ जमीन थी और दूसरी ओर हल जोतने को खेत नहीं। विनोबाजी ने मांग के औचित्य को समझा। उसे अधिक दिन तक टाला नहीं जा सकता बल्कि यह मांग एक सार्वदेशीय मांग है और यदि इस मांग को पूरा न किया गया तो देश में सैकड़ों 'तेलगानों' के बीज पड़ेंगे। स्थिति बड़ी सत्य और बड़ी गम्भीर थी। किसानों को, भूमिहीनों को भूमि चाहिये ही, इस कठोर सत्य से कौन इन्कार कर सकता था, पर उसे प्राप्त करने का क्या मार्ग हो—हिंसा या प्रेम! विनोबाजी की तेलगाना-यात्रा के इस विचार-मंथन से इस नवीन 'भूमि-यज्ञ' आन्दोलन का जन्म हुआ। जिस विशेष परिस्थिति में इस कल्पना

को आकार मिला, वह भूमि की समस्या थी। अतः इसे लेकर आगे बढ़ने के स्पष्ट अर्थ थे सचाई से मुख न मोड़ते हुए भी एक क्रान्ति को नये ढंग से सम्पन्न करना। विनोबाजी की यह भूमि क्रान्ति कम्युनिस्टों की भूमि-क्रान्ति से सर्वदा भिन्न है हालांकि किसानों की राहत इसमें अधिक स्थाई और दृढ़ है। क्योंकि यदि विनोबाजी तत्काल इस प्रश्न को अपने हाथ में न लेते तो खून, कत्ल, अभाव और आतंक से देश का कोना-कोना व्याप्त हो जाता। उन पीड़ित किसानों के उसी नारे को उन्होंने एक नया रूप दिया—ऐसा रूप जिसकी किरणों की छटा आज सब जगह पहुंच चुकी है। तेलंगाना के गांवों में इस आन्दोलन के इतने व्यापक रूप की कल्पना स्वयं विनोबाजी ने भी नहीं की थी। इस नई रोशनी के प्रकाश में जनता और सरकार दोनों को एक नई रोशनी मिली। अंधकार दूर हो गया। देश में आज कर्म की एक सुखद लहर लहरा रही है जो एक मंगल-प्रभात की प्रतीक मानी जा सकती है।

अब प्रश्न है आन्दोलन की पूर्णता या उपादेयता का? जहां तक पूर्णता का प्रश्न है हमें यह मानने झिझक नहीं होनी चाहिये कि यह 'आन्दोलन' प्रतीकात्मक है। प्रतीक स्वयं कभी पूर्ण नहीं होता फिर भी उसके महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। भूमि वितरण की समस्या का यह एक सुझाव है जो छोटा होते हुए भी अपने में आशातीत भविष्य को छिपाये है। इतना तो विरोधियों को भी मानना ही होगा। इस आन्दोलन ने देहात में एक नई 'प्रेरणा' पैदा की है। अहिंसक क्रान्ति के लिये एक भूमिका तैयार की है। जीवन और समाज में 'प्रेरणात्मक' महत्व का बड़ा स्थान है। यही प्रेरणा निर्माण, विकास और प्रगति की पहली सीढ़ी है। भूदान-यज्ञ की नये समाज के निर्माण में 'प्रेरणात्मक' उपयोगिता है ही—इससे भी कौन इन्कार कर सकता है? इससे समाज के विचार को एक धक्का लगा है। आज सब मिलकर इस दिशा में सोचने लगे हैं और आगे चल कर यदि स्वयं सरकार इस तरह का भूमि वितरण कानून बनाती है तो हिन्दू-कोड बिल का भाग्य उसे देखना नहीं पड़ेगा। मन की इस क्रान्ति की शक्ति बाहिरी क्रान्ति से अधिक होती है।

हां, यह अवश्य स्वीकार करना चाहिये कि केवल इतने से ही सदियों की यह सड़ी-गली समाज-व्यवस्था एक नया रूप नहीं ले सकती। अन्त में विधान का आश्रय तो लेना ही होगा; पर यह वैधानिक आश्रय ऐसा होगा जिसको अमल में लाने के लिये कोटि-कोटि जनता के स्वर और हाथ होंगे। यह तो खेती से पहले जमीन की सफाई का प्रश्न है। भूदान-यज्ञ एक सामाजिक नवीन चेतना को जन्म देता है। यह अरुणोदय से पूर्व उषा का प्रतीक है। अतः प्रत्येक तटस्थ और निष्पक्ष विचारक भी इतना तो स्वीकार किये बिना नहीं रहेगा कि अपनी अपूर्णता के बावजूद इस भूदान-यज्ञ का एक प्रतीकात्मक और प्रेरणात्मक मूल्य है जो स्वयं में एक बहुत महान् और ठोस चीज है।

●

शान्तिनिकेतन के उत्सव

दो अक्तूबर 'गांधी डे' के नाम से प्रसिद्ध है। उस दिन आश्रम के सारे नौकरों की छुट्टी होती है। अध्यापक और विद्यार्थी कार्यक्रम के अनुसार ड्यूटियां बांध लेते हैं। जो जिस काम को चाहता है उसी के लिये अपना नाम दे देता है। बहुत से लड़के-लड़कियां खाना बनाना पसन्द करते हैं। उस दिन कुछ लड़के और अध्यापक टट्टी-सफाई में लग जाते हैं। सारे दिन इतना काम किया जाता है कि दूसरे दिन भी छुट्टी देने की नौबत आ जाती है। शाम को मन्दिर होता है। मंदिर के बाद उस दिन का कार्यक्रम समाप्त हो जाता है। यह दिन बड़ा ही मनोरंजक और दिलचस्प तो होता है ही अपने ढंग का अनोखा भी होता है।

[फरवरी अंक में प्रकाशित इसी शीर्षक के लेख का शेषांश]

●

देव-दुर्लभ

हरिभाऊ उपाध्याय

आपाधापी के इस युग में गणेशजी जैसे पुरुष दुर्लभ हैं। आज बेतहाशा उनकी याद आ रही है। भारत के आजाद होने के बाद सेवा और त्याग भाव की जगह जैसी आपाधापी जोर पकड़ रही है उसे देखते हुए गणेशजी जैसे सेवा, त्याग और साहस की मूर्ति का बारबार स्मरण हो आना स्वाभाविक है। साम्प्रदायिक विद्वेष की आग में स्वतः कूदकर अपनी आहुति देनेवाले वे पहले ही बलिवीर हिन्दुस्तान के इतिहास मे हुए। खतरो में, दूसरों को सकट मे पडा देख बिना झिझक कूद पडना उनका स्वभाव था। कोई दु.खी, गरजमन्द शायद ही उनके दरवाजे जाकर खाली लौटा हो। दुबला पतला शरीर, मुट्ठी भर हड्डियां, जिनमे गजब का आत्मतेज भरा हुआ था। अपने पत्र का नाम उन्होंने 'प्रताप' चुना वह तो शायद महाराणा प्रताप के जीवन को लक्ष्य करके ही रखा था, परन्तु खुद गणेशजी का जीवन भी कम प्रतापशाली नही रहा। उन्होंने 'प्रताप' को बनाया और 'प्रताप' ने उन्हे, यह कह सकते है। जिन दिनो देशी राज्यो में होनेवाले अत्याचारो के खिलाफ आवाज उठाने की किसी की हिम्मत नही होती थी, उन दिनों हिन्दी में 'प्रताप' ही एक ऐसा पत्र था जो देशी राज्यो की निरीह, पीड़ित प्रजा की आवाज को निर्भीकता से बुलन्द करता था। मेवाड के बिजौलिया सत्याग्रह और आन्दोलन को उन्होंने जितना बल दिया उतना किसी ओर ने नही दिया। वे निर्भीक और स्वतन्त्र कलम के धनी थे। सामने चाहे राजा हो, चाहे जमीदार हो, चाहे कोई धनीमानी हों, चाहे लाट गवर्नर हो, वे बिना दबे, बिना झिझके, उनके बारे में अपनी कलम चलाते थे। बेधड़क होते हुए भी वे सचाई,समय और विवेक के पुजारी थे। जवाहरलालजी जैसे उनके जमाने मे युक्तप्रान्त के नेता श्रेणी में आ गये थे, परन्तु वहां के नवयुवकों, विद्यार्थियो, किसानो और मजदूरो के हृदय पर गणेशजी का ही अधिकार था। 'प्रताप 'कार्यालय कोरा एक साप्ताहिक पत्र का कार्यालय नही था, बल्कि एक जीवित-जाग्रत ज्योति और स्फूर्ति का केन्द्र हो गया था, केवल युक्त प्रान्त के लिए ही नही, जहा प्रताप पहुंचता था, वहा-वहा के लिए भी। जब गाधीजी दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह की लड़ाई लड रहे थे, उस समय के प्रताप के लेख पढने जैसे हैं। वे सीधे तीर की तरह हृदय में पहुच जाते थे ओर वहा के संघर्ष का एक सजीव चित्र सामने उपस्थित कर देते थे। गाधीजी को वह बहुत मानते थे, मगर उनके आलोचक भी थे। अपने को गाधीवादियो में नही गिनाते थे, फिर भी हिन्दू-मुसलमान दगो मे गाधीजी के आदर्श के अनुसार अपने प्राणों की बाजी लगानेवाले वह अकेले ही थे।

जीवन बहुत सीधा-सादा गरीबो का-सा जैसा अक्सर साधारण मध्यम दर्जे के हिन्दुस्तानी का होता है। स्वभाव सरल, कही भी टेढापन नही, मगर तेजस्वी जो किसी भी अनुचित बात के आगे झुकना नही जानता था, बल्कि उसका मुकाबला करने मे सदा उत्साहित रहता था। हृदय उच्च और विशाल, क्षुद्रता का नामोनिशान नही। जिन्दादिल और विनोदशील ऐसे कि जहा भी बैठे हो मुर्दा दिल भी खिले और हसे बिना नही रहते। फुर्तीले तेजतर्रार, अपने काम में चौकस और निपुण। मेरा उनसे दो तीन वर्ष लगातार सम्पर्क रहा। फिर बरसो दूर रहते हुए घर का-सा सम्बन्ध रहा। मित्र के नाते भी उनसे सम्पर्क रहा, उनके सहायक के रूप मे भी काम किया, भाईचारा भी उनसे रहा, उनके पास से हटकर गाधीजी जैसे महापुरुष की गोद में चला गया तब भी गणेशजी की याद नही भूलती थी। राजस्थान मे आकर नेता पद भी मिल गया, फिर भी कई बार इच्छा होती थी कि गणेशजी की मातहती में फिर काम करने का अवसर मिले तो अच्छा। जब-जब खयाल आता है घरेलू, सार्वजनिक, साहित्यिक, राजनैतिक कई तरह की बातें उनकी याद दिलाती रहती है और उनकी स्मृति को ताजा करती रहती है। ऐसे कुछ सस्मरण समय-समय पर मैनें लिखे

भी है और वे पत्रों में प्रकाशित हो भी चुके है।

एक घटना तो ऐसी है जिसने मेरे जीवन पर गहरा असर डाला, कुछ अंश तक मेरी प्रकृति को बदल दिया। वह यहा दिये बिना नहीं रह सकता, हालाकि पहले किसी सस्मरण मे दी जा चुकी है। मेरा छोटा भाई मार्तण्ड जुही (कानपुर) मे एकाएक बहुत बीमार हो गया और मरणासन्न हो गया। मैं उन दिनों 'सरस्वती' का सहायक सम्पादक था और स्व० पूज्य प० महावीरप्रसाद द्विवेदी सम्पादक थे। वे स्वय एक पिता की तत्परता से उसकी चिकित्सा करा रहे थे। एक दिन मार्तण्ड की हालत बहुत खराब हो गई और ऐसा लगने लगा कि शायद अत समय आ पहुचा है। मैं चिन्ता के अथाह सागर में डूब रहा था। गणेशजी कानपुर से दूसरे-तीसरे दिन आ जाया करते और हाल पूछ लिया करते थे। कानपुर से तीन-चार मील पैदल आते थे और पैदल जाते थे। उस रोज उनके आते ही मेरी आखो मे आसू छलछला आये और मैं बोल न सका। उन्हे जरूरी काम से जल्दी ही वापस लौटना था, लेकिन ठहर गये और बडी देर तक मुझे समझाते और दिलासा देते रहे। कहने लगे, तुमको जो आज इतना रज हो रहा है वह इसलिए कि तुमने मार्तण्ड से बहुत ही आशाए लगा रखी है, मगर यह गलत है। इन्सान को कभी किसी से ज्यादा आशा नही रखनी चाहिए। उन्होंने अंग्रेजी में कहा था "Don't expect too much" उनके उपदेश से मानो मेरे हृदय-कपाट खुल गये और मेरे मन में ज्ञान का उदय हुआ, उससे मुझे बडी शान्ति मिली और आगे हमेशा जिन्दगी भर के लिए "Don't expect too much."—यह मेरे जीवन का एक मार्ग-दर्शक शब्द बन गया। इस अवसर पर तो मैं उनका स्मरण करके इतना ही कहना बस समझता हू कि गणेश-जी जैसे पुरुष इस युग में 'दुर्लभ मानुषम् जन्म भारते, तत्र दुर्लभ' के अनुसार और भी दुर्लभ हैं और भगवान् की कृपा के बिना प्राप्त नही होते।

[पृष्ठ ८६ का शेषांश]

बादशाह ने जजिया कर छोडा था। इनके पट्ट पर लक्ष्मी-कुशल, देवकुशल, धीरकुशल, क्रमश हुए। इनके पट्ट पर शील-सत्य धारक और तपस्वी गुणकुशल हुए। फिर प्रताप कुशलजी बडे प्रतापी हुए, जिनका शाही दरबार में सम्मान था। ये चमत्कारी वचन-सिद्धिधारी थे। एक बार औरगजेब को कोई सिद्धि की बात बतलाई जिससे उसने पालकी और फौज को भेज कर फरमान सहित बुलाया और मिलकर बडा खुश हुआ। ये हिन्दी और फारसी भाषा भी पढे। बादशाह के प्रश्नो के उत्तर समीचीन दिये तथा मन की बाते इष्ट के बल से बतलाई। बादशाह ने दस-पाच गाव दिये पर इन निर्लोभी गुरु के अस्वीकार करने पर पालकी देकर उन्हें विदा किया। इनके पट्ट पर कवि-राज 'कनककुशल' हुए, जिन्हे महा बलवान महाराज अज-पाल व अजमेर का सूबेदार और राजा लोग मानते थे। नवाब "खानजहा" बहादुर तथा जूनागढ के सूबेदार बाबी बली शेरखान ने भी इनका बडा सम्मान किया। एक बार सारे यति एक ओर तथा ये एक ओर हो गए तो भी तपो के ६५ वें पाट पर इनके मनोनीत पट्टधर स्थापित किये गये। इन्हे राउल देसल के पुत्र कच्छपति लखा कुमार ने गाव दे कर अपना गुरु माना। इनका बहुत से विद्वान शिष्यो का परिवार था जिनमें "कुंअरेश" कवि को नृपति लखपति बहुत मानते थे। कच्छ-नरेश के आग्रह से कवि कुअरेश ने यह "लखपत मंजरी" ग्रन्थ बनाया।

●

क्या आप जानते है कि हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी है? क्या आप हिन्दी के ग्रन्थ खरीद कर पढते है।

●

लखपत-मंजरी

अगरचन्द नाहटा

जीवन साहित्य के गतांक में कच्छ के भुजनगर में व्रज भाषा के अध्ययन की सवा दो सौ वर्ष पूर्व की गई व्यवस्था, वहां के महाराजा लखपत और उनके जैन गुरु कनककुशल और कुंवरकुशल की व्रजभाषा की सेवा की कुछ चर्चा की गई है। जैसाकि उस लेख में निर्देश किया गया था अब भुज में रचित व्रजभाषा के ग्रन्थों का परिचय देना प्रारम्भ किया जारहा है।

महाराजा लखपत और उनके गुरु कनककुशल और कुंवरकुशल आदि के रचित ग्रन्थों का परिचय देने से पूर्व इनके सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करा देना आवश्यक प्रतीत होता है। मुझे महाराजा लखपत के वंश के परिचय-सम्बन्धी उनके समय में रचित दो ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं। जिनमें से पहला चारण कवि हम्मीर का **गुणजस वंश वंशावली** नामक ग्रन्थ मिला है जो सं० १७८० के आखा तीज को बनाना प्रारम्भ किया गया था। उस समय भुज के राजा देशल थे। लखपत उस समय कुंवर पद पर थे। इस ग्रन्थ में राजवंश का परिचय कुछ विस्तार से है, पर ऐतिहासिक बातें कुछ कम हैं। चारण कवियों का उद्देश्य राजाओं का गुणवर्णन अधिक रहा है। गुणवर्णन में तो उन्होंने अतिशयोक्ति और आलंकारिक शैली को खूब अपनाया है; पर विशुद्ध इतिहास की ओर लक्ष्य कम रहा है। राजवंश के वर्णन-सम्बन्धी दूसरा ग्रन्थ जैन-कवि कुंवरकुशल का है जिसका नाम **लखपत-मंजरी** है। जैन-कवि चापलूसी-पूर्ण अतिशयोक्ति और आलंकारिक वर्णन में अधिक नहीं गये। उन्होंने वास्तविकता की ओर ही अधिक ध्यान रखा है, यद्यपि राज्याश्रय में अधिक सुख-सुविधा मिलने के कारण राजाओं के दोषों की ओर कुछ आंख-मिचौनी की है, फिर भी यश-वर्णन करते हुए सीमा का उल्लंघन न होने दिया। इस **लखपत-मंजरी** ग्रन्थ के प्रारम्भ में नारायण से लगा कर लखपत तक का राजवंश वर्णन किया गया मिलता है। यह ग्रन्थ भी सं० १७९४ में बनाना प्रारम्भ किया जाने से लखपत के कुंवर पद के समय में ही बनाया गया है। राजवंश-वर्णन के पश्चात् कवि ने अपनी गुरु परम्परा का परिचय भी कविवंश-वर्णन के रूप में दिया है। इस ग्रन्थ की जो प्रति मुझे प्राप्त हुई है उसमें पद्यों की संख्या १४९ है। प्रति लिखते हुए छोड़ दी गई है। १४७ पद्य तक राजवंश और कविवंश का परिचय समाप्त कर महाराजा लखपत के कहने से नाममाला के रूप में यह लखपत मंजरी प्रारम्भ की जा रही है, ऐसा अन्त के दो पद्यों में निर्देश किया है। पद्य इस प्रकार हैं

करो लखपति तासौं कृपा कह्यौ सरस यह काम
मंजुल लखपति मंजरी करहु नाम की दाम ॥४८॥
तब सविता कौ ध्यान धरि उदित कर्यौ आरंभ
बाल बुद्धि की वृद्धि कौ यह उपकार असंभ ॥४९॥

इन पद्यों से स्पष्ट है कि मूल नाममाला ग्रन्थ का प्रारम्भ भी अब होता है। इस प्रति में यहीं तक के पद्य लिख कर आगे लिखा नहीं गया। इसलिये मूल ग्रन्थ कितना बड़ा था, कुछ कहा नहीं जा सकता। इसकी पूरी प्रति की प्राप्ति अत्यन्त आवश्यक है। मैंने भुज, अहमदाबाद, मोटेरा, सोनगढ़ को पत्र दिये, पर कहीं से कुछ पता न चल सका। अतः प्राप्त अंश का ऐतिहासिक सार ही इस लेख में दिया जा रहा है।

राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिर, जयपुर में मुझे जो कच्छ में रचित ग्रन्थों का संग्रह मिलता है उनमें **लखपत-मंजरी** नाममाला नामक एक और ग्रन्थ है। नाम-साम्य के कारण पहले मैंने दोनों को एक ही समझा था। सम्भव है इसी कारण मैं इस ग्रन्थ की एक ही प्रति साथ लाता, पर संयोग की बात समझिये, लाते समय मेरे मन में कुछ ऐसी बात जच गई कि दोनों प्रतियां ले चलें, कुछ पाठ-भेद आदि होगा तो पाठ-निर्णय एवं पाठान्तरों के नोट करने की सुविधा रहेगी। बीकानेर लाकर जब मैंने दोनों ग्रन्थों को ध्यान से पढ़ा तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि एक ही नाम और एक ही विषय होने पर भी दोनों ग्रन्थ एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। दोनों ग्रन्थ महाराजा लखपत के लिये ही बनाये

गये हैं। पहला ग्रन्थ महाराजा के काव्यगुरु सुकवि भट्टारक कनककुशलजी ने बनाया है। उसकी पद्य-संख्या २०२ है। इस ग्रंथ के प्रारंभ में भी भुज नगर और महाराजा का वर्णन १०२ पद्यों तक किया मिलता है। उसके बाद नाममाला का प्रारम्भ होता है जो २०० पद्यों तक चलती है, अन्तिम दो पद्य प्रशस्ति के रूप में है। दूसरी नाममाला जिसका परिचय इस लेख में दिया जा रहा है प्रथम नाममाला के कर्त्ता कनककुशल के शिष्य कुंवरकुशल की है। मालूम होता है कि पहली नाममाला बहुत संक्षिप्त थी इसलिये सुयोग्य गुरु के शिष्य सुकवि ने उसी नाम से विस्तृत नाममाला बना दी। पहली नाममाला में भुज नगर का वर्णन बहुत सुन्दर है। उसके बाद उसके तत्कालीन शासक राऊल देशल और उनके कुंवर लखपति का ही यश-वर्णन है जबकि दूसरी नाममाला में राजवंश की उत्पत्ति से लगा कर विस्तृत वंशावली दी गई है।

महाराजा लखपत के लिये राजस्थानी नाममाला चारण कवि हम्मीर ने सं० १७७६ में सर्व प्रथम बनाई थी, जिसमें ३०५ पद्य हैं। इसका नाम हरिजस नाममाला रखा गया है। वेलिये नाम छंद में रचे जाने से यह नाममाला वेलियें गीत में नाम से भी प्रसिद्ध है। हम्मीर कवि ने राजस्थानी छन्दों पर भी लखपत-पिंगल के नाम से ग्रन्थ बनाया है। जिसका परिचय मैं बहुत वर्ष पूर्व राजस्थानी बाल भारती में प्रकाशित कर चुका हूं। महाराजा लखपत के लिए ही कुंवरकुशल ने पारसात नाममाला और बनाई है जिसका परिचय इसी लेखमाला में फिर कभी दिया जायगा।

जिस लखपत-मंजरी नाममाला का सार नीचे दे रहा हूं उसकी प्रतिलिपि और इस सार का लेखन मेरे भ्रातृपुत्र भंवरलाल ने किया है

'लखपत-मंजरी' कच्छ देश में बना हुआ ब्रजभाषा का काव्य है। अठारहवीं शती में ब्रजभाषा ने अच्छा आदर प्राप्त कर लिया था, फलतः राजस्थान और गुजरात-काठियावाड़, कच्छ, मालवा आदि के दरबारों में भी इस भाषा के कवि आश्रय पाते थे और विभिन्न विषय के ग्रन्थों का निर्माण हुआ करता था। प्रस्तुत ग्रन्थ कच्छाधिप लखपति कुमार के वंश-वर्णन को उद्देश्य कर कवि 'कुंअरेश' ने निर्माण किया है। इसके सम्पूर्ण १५० पद्य हैं जिनमें ३ छप्पय और शेष सब दोहे हैं। प्रारम्भ के ८ छंद जिनमें ३ छप्पय और ५ दोहे हैं, मंगलाचरण और भूमिका के हैं। ९वें दोहे से राजवंश-वर्णन शुरु होता है। अन्त के २८ दोहों में कवि ने स्ववंश का वर्णन किया है। १०० तक के दोहों के ऊपर और आसपास शब्दार्थ—पर्याय व स्पष्टीकरण के लिये कतिपय टिप्पणियां भी लिखी गई हैं। इसके ७वें दोहे से मालूम होता है कि सं० १७३४ मिती माघ कृष्णा ११ के दिन इस ग्रन्थ का निर्माण प्रारम्भ किया गया था। नृपवंश-वर्णन में प्रथम पौराणिक नामों का निम्नोक्त क्रम लिखा है

—महीपाल— खगार— समा— मेना—नौनिघार—अभड़ा—जरादीन—राहू—औडर—अब्बड़ा—नोतियार—लाखा घूरारा (११५) बड़े शूरवीर राजा हुए।

इनके पुत्र ऊनड जाम सिन्धु देश के सुलतान थे जिन्हों ने ३॥ कोटि द्रव्य दानसत्र में व्यय किया। इनके जाम-समा हुए, जिन्होंने 'मामुनी' नगर बसाया। फिर करनाबो-रायद्धन जाम—पल्ली जाम (१२०) हुए। लाखा फूलानी केले गाव के इनके भाई-बन्दों में थे। दोनों के पास सुभटों का जोर था, अत. अपने जमाने मे खूद लड़ाई लड़े। बहुत से राजा लोग इनकी सेवा करते थे। पल्ली जाम के पट्ट पर माघ और उनके पाट पर जाडा हुए। टिप्पणी में लिखा है कि कई लोग कहते हैं माघ जाम के पाट वंग्मी हुए और फिर उनके पुत्र जाडा हुए। *जाडा के लाखा हुए जो अपने* पिता के नाम से जाडेजा कहलाए। इसके बाद राजा रामधन (१२४)—ओठा, वेहन, गाहू, वेहन, मूलुवा काहिया, आयर, भीम, हमीर, (१३३) हुए। इनकी गादी पर राउखगार बैठे जो बड़े प्रतापी थे। ये चार भाई थ, बड़े अजैया छोटे राहिब और माहिब जो बड़े शूरवीर थे, राउखगार के सहायक सरदार थे। राउखगार ने २३ सवारों के साथ हालों के ७०० सवार मारे। तभी से हाला ठाकुर हलार भाग गये। *आसापुरी की मिथ्या सौंह करके* हमीर राव को मारा। हालों ने भागते हुए बहुत से गाव चारन *लोगों* को दे डाले। परन्तु *महान् राउखगार ने सब* का प्रतिपालन किया, किसीका भी शासन-ताम्रशासन जब्त नहीं किया। इनके पट्ट पर भारमल्ल हुए जिन्होंने दिल्लीपति के समक्ष शेर को मारा और राउ पदवी प्राप्त की। उसी दिन से इन्होंने अपना 'कोरी' नामक सिक्का प्रचलित किया। एक तो मोरबी का परगना और दूसरा अपनी शान के धनी होने से बादशाह इनपर प्रसन्न था। भारमल्ल राउ के बाद भोजराज हुए। इस चन्द्रवंशी भोजराजा के जेहो, राइधन और मेघ नामक तीन भ्राता थे। यह बड़ा दानी था। इसने किशोर अवस्था में ही कवियो को बत्तीस हजार घोड़े बख्शीस किये थे। इसके उत्तराधिकारी हरिखगार हुए जो भोज के भतीजे और मेघ के पुत्र थे। फिर इनके भ्राता तमाची राउ हुए जिनके अधिकार में पहले सभरा शहर था। ये बड़े नीति-निपुण थे।

इनके उत्तराधिकारी राउ रायधन हुए जो भुयरी गाव के अधिपति थे। इनके हाजा और हरधीर दो छोटे भाई थे।

राउ रायधन बड़े श्रद्धालु और दानी थे। इन्होंने अठारह पुराण श्रवण किये थे। ये प्रतिदिन एक हजार कोरी का दान देकर पीछे दुग्धपान किया करते थे। तीन वर्ष तक इस वीर ने युद्ध करके देदा को हरा कर "कंत कोटदलो" पर कब्जा किया और ३२ वर्ष तक राज भोगा। इनके उत्तराधिकारी राउ प्रागु थे जो प्रतिदिन लड़कों को ५०० कोरी दान करने के बाद दूध-मिश्री पिया करते थे। इनके नवघन, रवा, भूजा, गोपाल, जूनौ, आमौ, लखौ, अजौ ये आठ भ्राता थे। नवघन के हाला और देवा, सना *(नरा गाव का), माहिब और साहौ (कोंकनिया वाला)* थे। नवघन के एक भाई रवाजी थे जिनके पुत्र वाइयाजी हुए। मोरबी का राज्य प्रागजी के वश में था। भूजा का पुत्र मुवरा, गोपाल के पुत्र वेरा और राउब थे। इनका नहर दुराही था। जूनाजी के दो पुत्र थे। नाथा केलै गाव का अधिपति हुआ। आमा के पुत्र मोजा आदि विदड़े गाव रहते थे। लाखाजी के पुत्र गरड़ा में सुड्डी गाव में बसते थे। छोटे भ्राता अजा के कोई पुत्र नहीं था। इस प्रकार "जाडेजा" वश का बहुत विस्तार है।

राउ प्रागजी (मोरबी नरेश) के तख्त पर राउ गौड़ बैठे। इनके तेजपाल, नारायन वगैरह भ्राता कुहडी, गूदरै आदि मे रहते थे। गौड राउ के पाट पर राजधानी रक्षक राउ 'देसल' हुआ। इनके भ्राता राइब जीवन की हाजा और अमरा की खाखर, रतारिया आदि में ठकुराइत थी। कच्छाधिपति देसल राउ के कुमार महाराज लखपति बड़े प्रतापी हुए। इनकी समृद्धि बहुत विस्तृत थी। राजप्रासादो में सुख का साम्राज्य था। *भुज नगर के स्वामी होने के कारण इनको किसी बात की* कमी नहीं थी। सोना-चादी-जवाहरात के भडार भरे थे। प्रतिवर्ष सात लाख की आमदनी थी। इस प्रकार राजा लखपति सुख-पूर्वक राज करते थे।

अन्तिम तीर्थंकर श्रीमहावीर प्रभु के पचपनवें पट्ट पर श्री हेम विमल सूरि हुए। ये गुरु बड़े उपकारी और अबू सैद सुलतान को प्रतिबोध देने वाले थे। इनके पट्ट पर कुशलमाणिक्य, फिर सहजकुशल हुए जिनके वचन से

अखिल भारतीय खादी ग्रामोद्योग बोर्ड

सिद्धराज ढड्ढा

भारत सरकार ने इसी महीने एक अखिल भारतीय खादी और ग्रामोद्योग बोर्ड की स्थापना की है। इसका उद्घाटन २ फरवरी को नई दिल्ली में प्रधान मंत्री प० जवाहरलाल नेहरू द्वारा हुआ। देश के समाचार पत्रों ने इस बात को प्रमुखता दी है कि इस बोर्ड के अधिकांश सदस्य भारत के ऐसे मुख्य कार्यकर्त्ता है जो वर्षों से रचनात्मक प्रवृत्तियो में लगे हुए है। यह सही भी है। बल्कि यह कहा जाय तो गलत नही होगा कि इस बोर्ड की स्थापना में अखिल भारतीय चर्खा सघ का हाथ तथा उसका पूरा सहयोग रहा है।

किसी भी काम के लिये भारत सरकार की ओर से किसी बोर्ड या समिति आदि की स्थापना कोई असाधारण बात नही है। अभी कुछ दिन पहले ही हाथ-करघा उद्योग के लिये एक अलग बोर्ड की स्थापना हो चुकी है। इसी प्रकार हस्त-कलाओ से सम्बन्धित उद्योगो के लिये एक हैंडी क्राफ्ट बोर्ड की स्थापना भी कुछ दिन पहले हुई थी। राष्ट्रीय जीवन से सम्बन्धित दूसरे बहुत से कामो के लिये समय-समय पर *बोर्ड या समितियो का निर्माण होता आया है।* पर शुरु में बताई गई बातो के कारण खादी तथा ग्रामोद्योग बोर्ड की स्थापना को ले कर देश में एक उत्सुकता का वातावरण पैदा हुआ है। बात यह है कि खादी और ग्रामोद्योग को गाधीजी के कारण एक नया स्वरूप मिला है। जबकि सारा ससार यन्त्रीकरण के द्वारा बडे पैमाने पर उत्पादन करने की पद्धति को उत्तरोत्तर अधिक अपनाता जा रहा है तब ऐसे युग में खादी और ग्रामोद्योग अर्थात् विकेद्रित उत्पादन-पद्धति को शोषणहीन समाज रचना के लिये आवश्यक बतला कर, गाधीजी ने उसे ससार मे होने वाली नई क्रांति का वाहन और प्रतीक बना दिया है। अत जो लोग वर्षों से सीधे गाधीजी के मार्गदर्शन में इन रचनात्मक कामो में लगे रहे और जिन्होंने इस प्रकार के कामो को आर्थिक और सामाजिक क्रांति की दृष्टि से अपना रखा है ऐसे लोगो द्वारा बोर्ड की सदस्यता स्वीकार करना कुछ विशेष मतलब रखता है। यह अनुमान लगाना गलत नही है। स्वय प्रधान मत्री ने बोर्ड का उद्घाटन किया—यह बात भी बोर्ड की विशेषता को सूचित करती है। उद्घाटन के तुरत बाद केन्द्रीय मत्री-मडल के एक प्रमुख सदस्य ने इस घटना को 'एक नये युग की शुरुआत' बताया।

भारत सरकार ने कुछ प्रमुख रचनात्मक कार्यकर्त्ताओ को, बोर्ड की सदस्यता स्वीकार करके उसका काम चलाने के लिये राजी कर लिया और कुछ करोड रुपये उनकी अपनी बनाई हुई योजनाओ के अनुसार खर्च करने की स्वीकृति बोर्ड को दे दी। इतने मात्र से अगर समूचे देश में नई चेतना लाना और मौजूदा आर्थिक और सामाजिक ढाचे मे थोडा बहुत भी प्रभावकारी परिवर्तन किया जाना सम्भव होता तो सचमुच आजादी के बाद, इतने दिन तक ऐसा न किया जाना एक ताज्जुब की ही बात थी। आर्थिक विषमता और शोषण हिन्दुस्तान के लिये ही नही, सारी दुनिया के लिये अभिशाप बने हुए है। इस अभिशाप को दूर करने का उपाय केवल कुछ करोड रुपये देकर, थोडे से *कार्यकुशल व्यक्तियो को खादी और ग्रामोद्योग के काम* मे लगा देने मात्र से हो जाता तो इससे आसान दूसरी चीज और क्या हो सकती थी।

पर बात ऐसी नही है। अगर खादी और ग्रामोद्योग के जरिये हमें नई समाज-रचना जैसी बडी बात सिद्ध करनी है तो केवल खादी बोर्ड बना देने से या कुछ करोड रुपया उसकी मर्जी पर छोड देने मात्र से यह काम होने वाला नही है। जाहिर है कि उपरोक्त परिणाम लाने के लिये हमें राष्ट्र की समूची आर्थिक और सामाजिक नीति को बदलना पडेगा और देश भर में उस आदर्श के अनुकूल एक वातावरण निर्माण करना पडेगा। सन् १९४६ में जब राजनैतिक आजादी बहुत निकट दिखाई दे रही थी उसी समय चरखा सघ ने खुद गाधीजी के बनाये हुए मसविदे के अनुसार ९ अक्तूबर को ट्रस्टी-मडल की सभा में एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकार किया था जिसमे इस बात

को बताया गया था कि स्वराज्य मिल जाने की हालत में देश में खादी के काम की नीति क्या हो। उस प्रस्ताव में खादी के काम को बढाने में सीधा सम्बन्ध रखने वाली कुछ बातों के अलावा–जैसे खादी के काम के लिये सहकारी समितियां की स्थापना, खादी-शास्त्र के विशेषज्ञ तैयार करना, कपास की खेती बढाना, कताई-बुनाई के लिये आवश्यक सरंजाम की व्यवस्था करना–प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सरकारों के सामने राष्ट्रीय आर्थिक नीति से संबंधित नीचे लिखे कुछ महत्व के मुद्दे भी रखे गये थे :

१. सब प्राथमिक तथा मिडिल तक की पाठशालाओं में और नार्मल स्कूलों में कताई सिखाई जाय तथा एक महत्व की प्रवृत्ति के तौर पर चलाई जाय और हर एक पाठशाला के साथ हाथ-सूत बुनने का कम-से-कम एक करघा भी जरूर चले।

२. पाठशालाओं में बुनियादी तालीम जल्दी-से जल्दी और अधिक-से-अधिक पैमाने पर शुरू की जाए।

३. सरकार के सहकारी विभाग, शिक्षा विभाग कृषि विभाग तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, लोकल बोर्ड, ग्राम पंचायत आदि के सब कर्मचारियों को संघ की 'खादी प्रवेश' परीक्षा पास करनी चाहिये। इस परीक्षा के पास किये बिना किसीको इन विभागों में नये सिरे से नौकरी में नहीं लेना चाहिये।

४. सरकार टेक्सटाइल विभागों में तथा बुनाई शालाओं में केवल हाथ-सूत को ही स्थान मिले। जेलों में हाथ-कताई व हाथ-सूत की बुनाई चलनी चाहिये।

इन सब बातों के अलावा चरखा संघ ने बुनियादी आर्थिक नीति के तौर पर उस प्रस्ताव में यह भी मांग की थी कि "चरखा संघ से मशविरा हो कर सरकार और मिलों द्वारा ऐसा प्रबन्ध हो कि जिस प्रदेश में हाथ-कताई हाथ-बुनाई, (अर्थात् खादी) से कपड़े की जरूरत पूरी हो सके, वहां मिल का कपड़ा व सूत न भेजा जाय। इसके अलावा नई मिलें न बनाई जायें तथा पुरानी मिलों में कताई-बुनाई के नये सांचे न लगाये जायें। मिलों का कारोबार सरकार और चरखा संघ की सलाह के अनुसार चलाया जाय। देश में किसी प्रकार का परदेशी सूत और कपड़ा कतई न आने पावे। इस काम के लिये सरकार जरूरी कानून पास करे और उसपर अमल करे।

पाठक देखेंगे कि सन् १९४६ में ही गांधीजी ने एक तरह से मौजूदा वस्त्र उद्योग के सम्पूर्ण राष्ट्रीयकरण और कानून द्वारा खादी को संरक्षण देने की बात राष्ट्रीय नीति के रूप में स्वीकार करने और कार्यान्वित करने के लिये देश के सामने रखी थी। दुर्भाग्य से आजादी के तुरत बाद, जबकि हम उसकी प्रारम्भिक स्टेज से भी नहीं गुजरे थे, गांधीजी हमारे बीच से चले गये। फिर तो दो-तीन वर्ष देश प्रारम्भिक अनिश्चित अवस्थाओं में से गुजरता रहा और कोई राष्ट्र-निर्माण का बुनियादी काम आगे नहीं बढ पाया। इस बीच प्लानिंग कमीशन देश के लिये योजना बनाने के काम में लगा रहा और इस सिलसिले में चरखा संघ ने भी खादी के काम के लिये एक पंचवर्षीय योजना का ढांचा तैयार किया। इस योजना में भी चरखा संघ ने १९४६ के अपने बुनियादी प्रस्ताव में निर्देशित की गई नीति की बातों के साथ-साथ उनके स्पष्टीकरण के रूप में नीचे लिखे सुझाव भी प्लानिंग कमीशन और सरकार के सामने रखे :

१. सरकार को चाहिये कि वह जिस स्वावलंबन को 'स्टेट पालिसी' के तौर पर चालू करे अर्थात गांवों में जो कच्चा माल उपलब्ध है उसका पक्का माल जिसकी गांव में जरूरत है गांव में ही बनाया जाय। इस दृष्टि से गांव का कपड़ा गांव में चर्खे के जरिये पूरा करना चाहिये। उसके लिये जैसे सब लोगों को साक्षर बनाना सरकार अपना कर्तव्य समझती है वैसे सब लोगों को कताई सिखाना सरकार अपना कर्त्तव्य समझे।

२. सरकार अपने सभी विभागों में खादी का ही कपड़ा इस्तेमाल करे। (फौज और पुलिस की पोशाक के लिये फिलहाल अपवाद हो सकता है।) ऐसा कपड़ा अधिकांश चपरासियों आदि की वर्दियों में काम आयेगा। पर चपरासी खादी पहिनें और जिनके मातहत उन्हें काम करना है उन अफसरों के अंग पर खादी न हो तो खादी की प्रतिष्ठा बढने के बजाय घटेगी। इसे ध्यान में रखते हुए तथा खादी का वातावरण पैदा करने के लिये भी यह आवश्यक है कि खादी के लिबास को ही देश की सभ्य

पोशाक के तौर पर मान्य करके सरकारी अधिकारियों और कर्मचारियों के लिये कम-से-कम जब वे काम पर रहें, खादी ही पहिनना लाजमी किया जाय।

३ हर एक गांव को अधिकार दिया जाय कि वहां की ग्राम-पंचायत चाहे तो अपने गांव के उद्योगों के संरक्षण के लिये बाहर से आने वाले कपडे, तेल, शक्कर आदि सामान पर रोक लगा सके या कर 'सेस' लगा कर उसका विनियोग ग्रामोद्योगों के संरक्षण के लिये कर सके।

४ मिल के कपडे पर कर 'सेस' बैठा कर उसकी आय में से खादी के काम को बढाने की योजना की जाय।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट हो जायगा कि अगर हमें खादी तथा ग्रामोद्योग को बढाना है तो सम्बन्धित मिल उद्योगों पर नियन्त्रण किये बिना तथा ग्रामोद्योगों को संरक्षण दिये बिना यह सम्भव नहीं हो सकता। एक ओर से देहातों में चरखे और ग्रामोद्योग के जरिये मदद पहुंचाना और दूसरी ओर से मिल का सस्ता कपड़ा व दूसरा सामान भेजकर वहां के उद्योगों को मारना और देहात की संपत्ति शहरों में ले जाना—ऐसी दोतरफा नीति से देश की शक्ति और संपत्ति का ह्रास ही होगा, लेकिन स्वराज्य-सरकार की अबतक की नीति और सर्वोदय की उपरोक्त दृष्टि में अबतक बुनियादी अंतर रहा है। अब भी यह अंतर मिट गया हो सो बात नहीं है। पर सरकारी योजना-कमीशन ने इतनी बात तो मंजूर की है कि देश में उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही बेकारी के लिये कम-से-कम मौजूदा स्थिति में, कताई के धंधे के अलावा और कोई इलाज नहीं है। योजना कमीशन ने, चाहे दबी जबान में ही सही, यह भी मंजूर किया है कि बड़े पैमाने पर चलने वाले उद्योगों के कारण देहात में बेकारी बढ़ी है और अन्न खर्चों के धंधे पर भार बढ़ा है। इस भार को कम करने के लिये ग्रामोद्योगों की उपयोगिता कमीशन ने स्वीकार की है। अतः दृष्टिकोण में बुनियादी अंतर होते हुए भी, सरकारी क्षेत्रों में खादी तथा ग्रामोद्योग के महत्व को, सीमित रूप में ही सही, स्वीकार किया गया, इसे देखते हुए तथा सरकार जनता की है इस खयाल से इस काम में सरकार को मदद पहुंचाना रचनात्मक कार्यकर्ताओं ने उपयुक्त समझा।

चरखा संघ की ओर से सन् १९४६ के प्रस्ताव में तथा बाद में राष्ट्रीय अर्थ-नीति सम्बन्धी जो मुद्दे पेश किये गये हैं वे सब सरकार को मान्य न हों और उनके अनुसार काम करने की उसकी तैयारी न हो, तब भी हमें यह साफ समझ लेना चाहिये कि खादी तथा ग्रामोद्योग के काम को किसी भी मात्रा में कायम रखने या आगे बढ़ाने के लिये कम-से कम एक बात जरूरी है और वह यह कि खादी तथा दूसरे ग्रामोद्योगी सामान का जो उत्पादन हो उसकी खपत की पूरी व्यवस्था होनी चाहिये। जब हमारे अपने हाथ में कानून की सत्ता नहीं थी ऐसे वक्त में भी गांधीजी तथा देश के दूसरे नेताओं ने खुद खादी का इस्तेमाल अपने लिये अनिवार्य करके देश में एक ऐसा वायुमण्डल पैदा किया जिससे खादी के लिये अपने आप बाजार सुरक्षित हो गया, क्योंकि लाखों लोगों ने नेताओं का अनुसरण करके खादी को अपनाया। आज जब देश की सत्ता हमारे उन्हीं नेताओं के हाथ में है तब खुद खादी पहिनने के अलावा जो आसान-से-आसान बात खादी को आगे बढ़ाने के लिये शासन सत्ता के अधिकार से वे कर सकते हैं, वह भी अगर वे न करें तो रुपये—आने—पाई के हिसाब में सस्ते दिखने वाले मिल के कपडे और अन्य सामान को छोड कर, खादी तथा ग्रामोद्योगी वस्तुएं इस्तेमाल करने की आशा जनता से रखना व्यर्थ है। अतः यह अनिवार्य हो जाता है कि अगर सरकार खादी तथा ग्रामोद्योग को—चाहे तात्कालिक बेकारी-निवारण की दृष्टि से ही सही बढ़ावा देना चाहती है तो उसे कम-से-कम अपने सब विभागों की जरूरत इन चीजों से ही पूरी करनी चाहिये। यह एक सीधी-सी बात है, पर ताज्जुब है कि प्रधान मंत्री ने अपने उद्घाटन भाषण में यह जाहिर किया कि ऐसा करना सरकार के लिये इसलिये सम्भव नहीं है कि ये चीजें महंगी होती हैं और उसके बजट में ज्यादा खर्च करने की गुंजाइश नहीं है। यह तर्क सचमुच हैरत में डालने वाला है। देश की सरकार, जिसके जिम्मे सारे देश की व्यवस्था का भार है और अगर देश में कोई भूखा मरता है तो उसे बचाना जिसका कर्तव्य है तथा किसी भी व्यक्ति की अपेक्षा जिसके आय के साधन अपरिमित हैं, उसकी ओर से ऐसी दलील दी जाय यह समझ में नहीं आता। आज भी

हम देखते हैं कि देश में जगह-जगह अकाल-निवारण आदि के लिये सरकार करोड़ों रुपये खर्च कर रही है। सरकार खुद इस बात को मंजूर करती है कि पिछले वर्षों में अकाल की स्थिति बढ़ने का एक मुख्य कारण देहाती जनता की बेकारी है। सरकार यह भी जानती है कि इस व्यापक बेकारी को दूर करने के लिये कम से-कम आगामी कितने ही वर्षों तक खादी और ग्रामोद्योग के अलावा दूसरा कोई चारा नहीं। ऐसी स्थिति में सरकारी विभागों के उपयोग के लिये खादी ही काम में लेने के मार्ग में केवल में कुछ लाख रुपये अधिक खर्च करने की मजबूरी जाहिर करना बहुत पुख्ता दलील नहीं मालूम होती।

अपने विभागों की खरीद के जरिये खादी की खपत में सीधी मदद पहुचाने के अलावा सरकार को देश में खादी का वातावरण बनाने के काम में भी मदद करनी चाहिये जिससे जनता में भी खादी की खपत बढ़े। अत प्राइमरी व मिडिल स्कूलों में कताई के विषय को तथा उसकी परीक्षा को अनिवार्य रूप से दाखिल करना जरूरी है। इसमें गाव गाव में कताई का शिक्षण फैलने में मदद मिलेगी। सरकारी विभागों में चपरासियों की वर्दी के लिये खादी का उपयोग करने के अलावा सरकारी अफसरों को भी खादी पहिनने के लिये प्रोत्साहित करना चाहिये, यह सुझाव ऊपर बताया जा चुका है। इससे खादी की खपत बढ़ने के साथ-साथ उसकी प्रतिष्ठा बढ़ने और देश में खादी का वातावरण बनने में भी मदद मिलेगी।

सरकार तथा प्लानिंग कमीशन ने बेकारी-निवारण की दृष्टि से कताई के धधे की आवश्यकता स्वीकार की है। अत यह जरूरी है कि बेकारी-निवारण का मकसद पूरा करने के लिये सरकार इस बात की भी घोषणा करे कि जो भी कताई करेगा उसके सूत की खपत की जिम्मेदारी सरकार लेने को तैयार है। इतनी जिम्मेदारी कातने वाले की भी हो कि वह खुद अपने कपड़े की जरूरत के लिये भी उत्तरोत्तर खादी ही इस्तेमाल करे। पर इस प्रकार के स्वावलबन के बाद जो अतिरिक्त सूत तैयार हो उसको खपत का भरोसा दिये बिना सरकार खादी के जरिये जो बेकारी-निवारण का मसला हल करना चाहती है वह सम्भव नहीं होगा।

अगर खादी तथा ग्रामोद्योग के काम को ठीक करके आगे बढ़ाना है तो सिर्फ पैसा मुहैय्या करने के अलावा सरकार के लिये ऊपर लिखी दो-तीन बुनियादी बातें करना अनिवार्य है। अगर सरकार इतना भी नहीं कर सकती तो सिर्फ पैसा दे कर खादी के काम को आगे बढ़ाने की आशा रखना व्यर्थ है। यह मानी हुई बात है कि यंत्रोद्योग के सामने हाथ का उद्योग या बड़े पैमाने के उद्योग के सामने छोटे पैमाने का उद्योग, अगर हम केवल रुपये-आने-पाई की भाषा में सोचें तो, कभी नहीं टिक सकता। आज हिन्दुस्तान के कई बड़े पैमाने पर चलने वाले उद्योगों को भी जैसे कपड़ा, चीनी, लोहा आदि, विदेशों के उनसे भी बड़े और अधिक संगठित उद्योगों से बचाने के लिये सरकार सरक्षण दे रही है प्रधान मंत्री नेहरूजी ने प्लानिंग कमीशन की रिपोर्ट पार्लियामेंट में पेश करते वक्त खुद इस बात पर जोर दिया था कि आर्थिक क्षेत्र 'जो चाहो सो करो' अर्थात् (Laissez-faire) की नीति को कोई स्थान नहीं है। ताज्जुब है कि वही व्यक्ति ग्रामोद्योगों के बारे में यह कहे कि उन्हें अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिये और आर्थिक दृष्टि से अपना अस्तित्व सिद्ध करना चाहिये। यह समझ में आ सकता है कि सरकार यंत्रोद्योगों के मुकाबिले में खादी और ग्रामोद्योग का कोई स्थान स्वीकार न करे, तब ऐसी सरकार से हम खादी और ग्रामोद्योग के संरक्षण की माग नहीं करेंगे। पर जो सरकार उनकी उपयोगिता और आवश्यकता को, चाहे सीमित क्षेत्र में ही सही, स्वीकार करती है वह कम-से-कम उस हद तक उन्हें सरक्षण और प्रोत्साहन देने की जिम्मेदारी से अपने आप को अलग नहीं कर सकती।

अत. हमें आशा है कि जब भारत सरकार ने अखिल भारतीय खादी और ग्रामोद्योग बोर्ड की स्थापना करके तथा उसे आवश्यक धन-राशि मुहैय्या करने का आश्वासन दे कर राष्ट्र की आर्थिक रचना में खादी तथा ग्रामोद्योग के स्थान को स्वीकार किया है तब उन्हें जिन्दा रखने और ठीक-ठीक आगे बढ़ाने के लिये जो उपरोक्त दो-चार अनिवार्य बातें हैं उन्हें पूरा करने में भी वह नहीं झिझकेगी।

काम और खेल

मार्क ट्वेन

शनिवार का दिन था। सुबह होगई थी। गर्मी का मौसम होने के कारण चारों ओर बड़ी चमक और ताजगी थी। हर चीज में जीवन दिखता था। हर प्राणी के हृदय में संगीत हिलोरें ले रहा था और युवकों के हृदय का संगीत तो होंठों के बाहर ही निकल पड़ता था। हरेक चेहरे पर उल्लास और हरेक कदम में वासन्ती मादकता थी। लोकस्ट वृक्ष फूलों से लदे थे और उनसे वायुमण्डल सुवासित हो रहा था।

टॉम सफेदी पोतने की बाल्टी और लम्बी कूची लेकर सड़क पर निकला। उसने दीवार की लम्बाई-चौड़ाई का अन्दाज लगाया तो उसकी सारी खुशी छूमन्तर हो गई और गहरे विषाद ने उसे आ घेरा। दीवार ३० गज लम्बी और ६ फीट ऊंची थी। उसे जिन्दगी नीरस और भार-स्वरूप लगने लगी। एक लम्बी सांस छोड़ते हुए उसने कूची डुबोई और उसे सबसे ऊपर के तख्ते पर फेरा। उस ने इस क्रिया को दुबारा किया और तिबारा किया, फिर उस सफेदी पुती हुई थोड़ी-सी जगह की बिना पुती लम्बी-चौड़ी दीवार से तुलना की और फिर हताश होकर लकड़ी के बक्स पर बैठ गया। जिम टीन की बाल्टी लिए उछलता-कूदता और कुछ गीत-सा गुनगुनाता हुआ दरवाजे पर आ निकला। टॉम सार्वजनिक पम्प से पानी भरने को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखता था, पर अब उसे इस कार्य में घृणा की कोई बात नहीं लगी। उसे याद आया कि पम्प पर तरह-तरह के लोग आपस में मिलते हैं। गोरे, अधगोरे और नीग्रो लड़की-लड़के बारी बारी से पानी लेने के लिए जमा हो जाते हैं और आपस में खेल की चीजों का लेन-देन करते हैं, लड़ते-झगड़ते हैं और खेलते-कूदते हैं। उसे याद आ गया कि पम्प के सिर्फ १५० गज दूर होने पर भी जिम वहां से पानी की बाल्टी लेकर कभी एक घंटे से पहले लौट कर नहीं आता और किसीको भेज कर ही बुलाना पड़ता है। टॉम ने जिम से कहा कि यदि तू थोड़ी दीवार पोत दे तो मैं बाल्टी भर कर ला सकता हूं। जब जिम राजी न हुआ तो उसने सफेद संगमर्मर का टुकड़ा देने और उसके पैर की चोट को अच्छा कर देने का प्रलोभन दिया।

आखिर जिम इन्सान था। यह प्रलोभन उसके लिये बहुत अधिक था। उसने अपनी बाल्टी नीचे रख दी और सफेदी का डोल ले लिया। उसके पैर की पट्टी खोली जाने लगी तो वह आंख गड़ा कर उसे बड़े ध्यान से देखने लगा। किन्तु दूसरे ही क्षण वह अपनी पीठ पर बाल्टी खड़खड़ाता हुआ सड़क पर भागा चला जा रहा था और टॉम बड़े जोश के साथ दीवार पर सफेदी पोतने में जुटा हुआ दिखाई दे रहा था। पोली चाची अपने हाथ में स्लीपर उठाये और आंखों को तरेरती हुई मैदान की ओर से निकली चली गईं।

किंतु टॉम के हाथों ने ज्यादा देर तक साथ नहीं दिया। उसके दिमाग में शरारत की वह सारी स्कीम घूम गई जो उसने आज के लिये सोची थी। उसका दिल फिर भारी हो गया। थोड़ी ही देर में बहुत से बच्चे तरह-तरह के मनोरंजक कारनामे करते हुये उधर से होकर निकलेंगे और काम में जुटे रहने पर वे उसकी खूब खिल्ली उड़ायेंगे। इस विचार मात्र से उसके आग लग गई। उसने अपना सारा खजाना निकाल कर देखा, जिसमें खिलौनों, खड़ियों और दूसरी ऊटपटांग चीजों के टुकड़े थे। ये चीजें किसी से अपना काम बदलने के लिये तो काफी थीं, पर इतनी नहीं थीं कि उनसे आध घंटे की भी आजादी हासिल की जा सके। निराशा के इस गहरे अंधेरे में उसके दिमाग में एक नई तरकीब भिड़ाने की बात सूझी। यह छोटी-मोटी सूझ नहीं थी।

उसने अपनी कूची उठाई और शान्ति से अपने काम में लग गया। उस समय बेन रोजर्स नाम का लड़का वहीं मटरगश्त कर रहा था। यह, यही लड़का था जिसके खिल्ली उड़ाने से टॉम सबसे अधिक घबराता था। वह एक सेब खा रहा था और थोड़ी-थोड़ी देर बाद रास्

स्वर में चीख उठता था और उसके बाद मोटी आवाज मे डिंग-डोंग-डोंग, डिंग-डोंग-डोंग की ताल देकर एक स्टीमबोट की नकल करता था।

टॉम सफेदी पोतता रहा और उसने स्टीमबोट के चलने पर कोई ध्यान नही दिया। कुछ देर बाद बेन से न रहा गया और बोला "अरे, ओ, तुम पूरे ठूठ-के-ठूठ हो न ?"

कोई जवाब नही मिला। टॉम ने अपनी कूची फेरी हुई जगह पर ऐसी बारीकी से देखा, जैसे कोई कलाकार देखता है। फिर उसने यही दूसरी बार कूची फेरी और उसपर फिर उसी प्रकार नजर डाली। बेन उसके पास से निकल गया। सेब को देख कर टॉम के मुह मे पानी भर आया, पर वह अपने काम मे लगा रहा। बेन बोला "अरे बुड्ढ़! बैल की तरह काम मे जुटा है . .हा हा ?"

टॉम ने एकदम मुह फेरा और बोला—"अरे तुम हो बेन ! मैंने देखा नही था"।

उसने लड़के के बारे मे कुछ सोचा और फिर कहा "तुम काम किसे कहते हो ?"

"क्यों क्या यह काम नही है ?"—वह बोला।

टॉम ने सफेदी पोतना जारी रखा और बडी लापरवाही से जवाब दिया—"हो सकता है कि यह हो, और शायद न भी हो। मै तो सिर्फ इतना ही जानता हू कि यह टॉम सौयर के अनुकूल है।"

"ओह, अब समझा कि तुम इसे छोड़ना नही चाहते, क्योंकि यह तुम्हें पसन्द है।"

कूची चलती रही।

"पसन्द करता हू ? अच्छा, तो फिर ? मै तो इसमे भी कोई अनौचित्य नही देखता कि मैं उसे पसन्द क्यो न करू। क्या किसी लड़के को रोज दीवार पर सफेदी पोतने का मौका मिलता है ?"

इससे इस विषय का रुख ही बदल गया। बेन ने सेब कुतरना बन्द कर दिया। टॉम ने अपनी कूची को बडी होशियारी से इधर-उधर तक फेरा और फिर पीछे को मुड कर उसकी सफाई पर दृष्टि डाली। कही-कही फिर कूची फेर दी, फिर उसके रग के उभार पर नजर डाली। बेन उसकी एक-एक हरकत को बडी बारीकी से देख रहा था और उसमे उसकी दिलचस्पी बढती जा रही थी। फिर उसने कहा—

"अच्छा, टॉम, मुझे भी थोडी-सी दीवार पर सफेदी पोत लेने दो।"

टॉम ने इस पर विचार किया। वह रजामन्दी जाहिर करने वाला था कि रुक गया और बोला—"नही, नही। तुम जानते हो कि पौली चाची इस दीवार की खूबसूरती के बारे मे बडी सतर्क हैं। यह सडक के सामने जो पडती है। यदि यह पिछली दीवार होती तो मुझे या चाची को कोई एतराज न होता। मै समझता हू कि हजार या दो हजार मे मुश्किल से एकाध ऐसा लडका निकलेगा जो इसे ठीक तरह से पोत सके"

"नही, मैं यह बात नही मानता। क्या सचमुच ऐसा है? फिर भी मुझे तो देख लेने दो। सिर्फ थोडी देर, टॉम। यदि तुम्हारी जगह मैं होता तो मैं तुम्हे जरूर कूची चला लेने देता।"

"बेन, मै भी ऐसा ही करता, पर पौली चाची और हा, जिम भी सफेदी पोतना चाहता था, पर चाची की वजह से ही वह भी नही कर सका। क्या तुम नही समझते कि मुझपर कैसी जिम्मेदारी है ? यदि तुम्हे इस दीवार का काम सौंपा गया होता और उसमें कोई गलती रह जाती तो .

"छिः, मै पूरी सावधानी रखूगा। अब मुझे भी करके देख लेने दो। मै तुम्हे अपने सेब की फाके भी दूगा।"

"अच्छा, अच्छा पर नही बेन, अब नही। मुझे डर है कि . "

टॉम ने खुशी को दिल में छिपाकर अपने चेहरे पर अनिच्छा का भाव दिखाते हुए अपनी कूची पटक दी। स्टीमबोट की नकल करने वाला वह लडका धूप मे काम करने के कारण पसीने से तर हो रहा था और उधर कलाकार महोदय पास ही छाया में लकडी के बक्स पर बैठ कर अपनी टागो को हिला-जुला रहे थे, सेब को चपर-चपर करके खा रहे थे और इसी तरह कई और भलेमानसो को फासने के मन्सूबे बाध रहे थे।

जाल बिछाने के लिए सामान की कमी नही थी, थोडी-थोडी देर बाद वहा से लड़के गुजरते थे। वे आये तो चिढाने

[शेष पृष्ठ १०० पर]

गांधी और साहित्य

गोपालकृष्ण कौल

गांधी के महान् व्यक्तित्व की कहानी भारत के राष्ट्रीय जागरण की कहानी है। उनकी उदात्त मानववादी विचारधारा ने राष्ट्र की सीमाएं पार करके दुनिया के दूसरे देशों के लोगों को भी उद्वेलित और प्रेरित किया है। इसलिए जब हम ऐतिहासिक दृष्टि से भारत के राष्ट्रीय-आन्दोलन का मूल्यांकन करते हैं तो उस समय की सामाजिक परिस्थितियों में उभरने वाली निर्माणकारी सम्भावनाओं को प्रतिबिम्बित करने वाले साहित्य की मूलप्रेरणा के निर्धारण में, गांधी की उदात्त मानववादी विचारधारा का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से बहुत कुछ योग पाते हैं। साहित्य पर गांधी का प्रभाव दो रूपों में अभिव्यक्त हुआ है—एक व्यक्तित्व का प्रभाव दूसरा विचारधारा का प्रभाव (गांधीवाद का प्रभाव)। यद्यपि गांधी का व्यक्तित्व उनकी विचारधारा (गांधीवाद) से अलग अस्तित्व नहीं रखता, क्योंकि वह अपने सिद्धांतों को प्रयोग के द्वारा ही सिद्ध करते थे, किंतु फिर भी वह अपने चिन्तन में अपने प्रयोग (क्रिया) से आगे थे और अपने प्रयोग से सीख कर अपने चिन्तन को और अधिक व्यापक बनाते थ। इसलिए उनकी विचारधारा (गांधीवाद) उनके क्रियाशील व्यक्तित्व का साध्य बनती जाती थी, और क्रियाशीलता या साधनरत नैतिक प्रयोगशीलता उनका व्यक्तित्व। वह किसी वैज्ञानिक दर्शन का शास्त्रीय निर्माण करने की बौद्धिक खोज में नहीं थे, इसलिए अनेक बुद्धिवादी तर्कावलम्बियों को उनका भावनामूलक मानववाद चाहे अपील न करे, किन्तु गांधी का असाधारण व्यक्तित्व उन्हें अवश्य अपील करता है। साहित्य और कला के क्षेत्र में भी इसी प्रकार गांधी के द्विविध प्रभाव दिखाई देते हैं। इस द्विविध प्रभाव को दूसरे ढंग से या स्पष्ट किया जा सकता है कि एक ओर अपने युग के लोकनायक रूप में गांधी साहित्य और कला के आलम्बन थे तो दूसरी ओर वह अपनी विचारधारा के रूप में, साहित्य को मानववादी आदर्श की ओर उन्मुख करने वाली नैतिक और प्रयोजनमूलक प्रेरणा थे।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने व्यक्तित्व के प्रभाव से गांधी महाराज कविता लिखी थी, जिसमें गांधी राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रतीक-रूप में प्रस्तुत किये गए हैं। उसकी अन्तिम पंक्तियां हैं

"चिर कालेर हातकड़ि जे
धूलाय खसे पड़ल निजे
लागल भाले गांधी राजेर छाप।"

अर्थात् "जो चिरकाल की हथकड़ी थी वह अपने आप ही खुलकर धूल में गिर पड़ी और ललाट पर गांधी-राज की छाप लग गई।"

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने ही १९१५ में सर्वप्रथम गांधी को 'महात्मा' शब्द से सम्बोधित करके उनके व्यक्तित्व के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की थी और उसके बाद गांधी 'महात्मा गांधी' हो गए।

हिन्दी में भी सभी गण्यमान कवियों ने गांधी के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर कविताएं लिखीं और दूसरी भाषाओं के साहित्य में भी ऐसी रचनाएं रची गईं, किन्तु इस प्रकार की प्रशस्तिमूलक रचनाएं गांधी के व्यक्तित्व की विराटता की सूचक तो हैं किन्तु साहित्य की गांधीवादी भावोत्कृष्टता की श्रेष्ठता को नहीं प्रमाणित करतीं, क्योंकि आज भी देश विदेश में यह अनुभव किया जाता है कि जिस गांधी ने भारत के राष्ट्रीय जागरण का प्रभावशाली नेतृत्व किया उसके जीवन और चिन्तन को लेकर उत्कृष्ट रचनात्मक कलापूर्ण साहित्य की सृष्टि अभी तक नहीं की गई है। फिर भी गांधीवाद ने भारतीय साहित्य को एक राष्ट्रीय और नैतिक चेतना का स्वर प्रदान किया है और गांधीवादी दृष्टिकोण की रचना वाले कई लेखकों ने उत्कृष्ट कृतियों की रचना की है। कुछ कृतियों में तो गांधीवाद कृतिकारों की संस्कृत चेतना के रूप में कलात्मक माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है। मराठी और हिन्दी के दो उपन्यासकार खांडेकर

और जैनेन्द्र इस अर्थ में विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। वैसे हिन्दी-उर्दू के प्रसिद्ध कथाकार स्वर्गीय प्रेमचन्द भी राष्ट्रीय आन्दोलन के समय जन-जागरण के माध्यम से गांधी के विचारों से बहुत प्रभावित हुए थे। प्रेमचन्द ने अपनी बीस वर्ष की पुरानी सरकारी नौकरी को गांधी का भाषण सुन कर ही त्याग दिया था। प्रेमचन्द की कहानी और उपन्यास में उनके समय के विदेशी वस्त्र-बहिष्कार, सत्याग्रह हरिजनोद्धार, आदि गांधीवादी आन्दोलनों की झांकी अवश्य मिलती है; किन्तु वह पूरी तरह से गांधीवादी नहीं थे।

गांधीवाद सर्वोदय के समन्वयमूलक सिद्धान्त पर आधारित है और इस सिद्धान्त के आधार हैं अहिंसा और सत्य। सत्य गांधीजी का साध्य था और अहिंसा उनका साधन। इसलिए वह साध्य की पवित्रता के साथ-साथ साधन की पवित्रता पर सदा जोर देते थे। इस बौद्धिक युग में साधनों की नैतिकता पर बल देकर उन्होंने व्यवहार-जगत में एक नैतिक राजनीति को जन्म दिया। उनका कहना था :—

"साधन बीज है और साध्य वृक्ष, इसलिए जो सम्बंध बीज और वृक्ष में है, वही साधन और साध्य में है। शैतान की उपासना करके मैं ईश्वर-भजन का फल नहीं पा सकता।"

"स्वराज्य-प्राप्ति के लिए किया गया प्रयत्न स्वयं स्वराज्य ही है।"

इस साधन की नैतिकता के अनुसन्धान में ही गांधी-जी ने, अहिंसा के व्यावहारिक और दार्शनिक—दोनों पक्षों पर गम्भीर चिन्तन किया था। यद्यपि गांधीजी ईश्वर को ही सर्वोच्च सत्य मानते थे, किन्तु स्वराज्य भी उनके लिए सत्य ही था, जिसकी उपलब्धि और अभिव्यक्ति के लिए वह सदा प्रयत्नशील रहे। रिचर्ड ग्रेग ने गांधीजी के सम्बन्ध में इस विषय में लिखा है :

"वह सामाजिक सत्य के क्षेत्र में महान् वैज्ञानिक हैं। उनके महान् वैज्ञानिक होने के कारण हैं, समस्याओं का उनका चुनाव, उनको हल करने की उनकी पद्धति, उनके अन्वेषण की प्रबलता और व्यापकता और मनुष्य-स्वभाव का उनका गम्भीर ज्ञान।"

वह समाज को वर्गहीन बनाने के लिये व्यक्ति की नैतिकता को अधिक उन्नत बनाना चाहते थे। इसीलिये वह सादगी, ग्रामीण संस्कृति और स्वतन्त्रता की भावना का विकास व्यक्ति की नैतिक चेतना में प्रतिष्ठित करना चाहते थे। उनका विश्वास था कि अहिंसक वर्गहीन समाज की रचना के लिए हिंसक साधनों का प्रयोग करना उसकी उपलब्धि में सिद्धान्ततः बाधक है इसलिये वह वर्ग-संघर्ष का विरोध करते थे। साथ ही वह कायरता से हिंसा को ज्यादा अच्छा समझते थे। गांधीजी के वर्ग-समन्वय का उदय सिद्धान्ततः हमारे राष्ट्रीय-आन्दोलन की ऐतिहासिक परिस्थितियों के अन्तर्विरोधपूर्ण मध्यमार्ग से हुआ है और वैज्ञानिक बौद्धिकता को अभी अपना पक्षधर बनाने में वह समर्थ नहीं हो पाया है। फिर भी गांधी का समन्वयमूलक अहिंसा-दर्शन भारत की ही नहीं, विश्व की मानववादी परम्परा का एक ऐतिहासिक विकास है। साम्राज्यवाद, सामन्तवाद, व्यक्ति द्वारा व्यक्ति के शोषण और युद्ध के विरुद्ध स्वाधीनता, आत्मबल, शांति और समाज-रचना की उदात्त मानवीय भावना का नैतिक स्वर ही गांधीवाद की ऐतिहासिक देन है, जिसने अपने समकालीन साहित्य और साहित्यकारों को किसी-न-किसी रूप में प्रभावित किया है।

गांधी ने गुलाम भारत के अन्धकार में भारत की प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा के आदर्शों को जनवादी ढंग से प्रकाश-स्तम्भ बनाया। वह बौद्ध, जैन, ईसाई, इस्लाम, आदि धर्मों के 'विकासशील मानववादी तत्वों' का समन्वय करना चाहते थे। वह रस्किन से भी प्रभावित थे और टाल-स्टाय से भी। किन्तु उनकी सब मान्यताएं उन्हें स्वीकार नहीं थीं। किन्तु सबके मूल में एक उदात्त मानववाद था, जो समष्टि की नव-रचना के लिये व्यष्टि के संस्कार का हामी था। इस तरह व्यक्तिवाद के समर्थक होते हुए भी जन-आंदोलनकर्ता के रूप में वह जनवादी भी थे। इसीलिये उनके नेतृत्व में हुए राष्ट्रीय-आन्दोलन में उनसे मतभेद रखने वाले भी उनके अनुयायी थे, बल्कि गांधी उस विराट सांस्कृतिक वटवृक्ष की तरह थे, जिसकी छाया में सभी प्रकार के स्वाधीनता-पथ के पथिक, आश्वस्त होकर एक जगह बैठते थे। इस उदात्त मानववाद से प्रभावित हो

कर रोम्या रोलां ने लिखा था :

"हम बुद्धिमान, विज्ञानवेत्ता, विद्वान कलाकार जो अपनी नगण्य शक्तियों की सीमा के अन्दर अपने मन में वह "मानव-समाज का नगर, जिसमें ईश्वरीय शांति का राज है" निर्माण करने का प्रयत्न करते हैं। हम जो (गिरजे की भाषा में) तीसरी कोटि के हैं और जो मानवता पर आधारित विश्व-बन्धुत्व को मानते हैं, अपने इस गुरु और बन्धु गांधी को, जो भावी मानवता के आदर्शों को हृदय में प्रतिष्ठित किये हुए, उसे आचरण में प्रत्यक्ष करके दिखा रहा है, अपने प्रेम और आदर का हार्दिक अर्घ्य अर्पण करते हैं।'

इसी बात को मराठी के उपन्यासकार वि० स० खाण्डेकर ने इस प्रकार व्यक्त किया है :

'यह सच है कि गांधीवाद की स्थापना बुद्धि की अपेक्षा भावना पर अधिक है किन्तु, केवल इसलिये, मानवधर्म की एक महत्वपूर्ण आधुनिक तत्त्वप्रणाली की दृष्टि से उसकी कीमत तिल भर भी कम नहीं होती। गांधीवाद की भावना-शीलता कोई ऐसी बात नहीं है जो भूत-प्रेत में विश्वास अथवा हस्तसामुद्रिक में श्रद्धा के समान अगम्य हो। कौन कह सकता है कि दरिद्रनारायण का जो दुःख लेनिन समझ सका वह गांधीजी नहीं समझ सकते? किन्तु लेनिन की क्रान्ति समाज रचना की क्रान्ति थी, गांधी मानवीमन की ही क्रान्ति करना चाहते हैं। यदि हम समाज हमेशा के लिये बदलना चाहते हैं तो हमें पहले मनुष्य बदलना चाहिये। यदि हम अधिक सुखी संसार का निर्माण करना चाहते हैं तो एक अधिक त्यागी नये मनुष्य की आवश्यकता है।'

साहित्यकार का काम ही मानवता की समष्टि में से नये मनुष्य की व्यष्टि खोजना है, जो समष्टि की अपर्याप्तता, आकांक्षा और अतृप्ति के, सही निदान का उद्घाटन करता हुआ, ऐतिहासिक परिस्थितियों के गर्भ से नव रचना की सम्भावनाओं का घोषित करता है। साहित्य का यथार्थ मानव-संतति में से ऐसे नये मनुष्य को खोजने की कला है। गांधी का विचार-दर्शन, व्यक्ति को अपने में डूब कर शासन का दर्शन है, वह कर्तव्य का दर्शन है, अधिकारों का नहीं। अधिकार तो इस कर्तव्य से ही स्वयं उपजते हैं। इसी लिये वह न केवल वर्गहीन समाज की रचना का स्वप्न देखते थे, बल्कि राज्यहीन समाज की अहिंसक रचना का स्वप्न भी देखते थे। आज के वर्ग-समाज के तनाव-पूर्ण वातावरण में व्यक्ति को वे सब सामाजिक सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं, जिनमें वह केवल कर्तव्य की नैतिकता की उन्नति के द्वारा वर्ग-द्वेष को भूल कर अपना हृदय-परिवर्तन कर सके, क्योंकि वर्ग-स्वार्थजन्य परिस्थितियों ने वर्ग-समन्वय के सभी द्वार बन्द कर दिये हैं। जब तक सभी वर्ग, विशेषतः जो दूसरों के श्रम के उपजीवी हैं, कर्तव्य की नैतिकता को उन्नत करने के लिये त्याग और प्रेम का वातावरण नहीं प्रस्तुत करते तबतक व्यक्ति की नैतिकता की इतनी उन्नति कैसे होगी कि वह वर्ग-समन्वय से वर्गहीन समाज की रचना कर सके? अपनी इस प्रश्न-सूचक अपर्याप्तता के साथ भी गांधी का विचार-दर्शन नये मनुष्य की ओर संकेत करता है, जो किसी भी श्रेष्ठ साहित्य का लक्ष्य बनता है। अहिंसक प्रतिरोध करने वाले चरित्रों का मानसिक संघर्ष खाण्डेकर ने अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया, विशेषतः उनके "क्रौंच वध" में गांधीवाद की मानववादी परम्परा को नये अर्थों में कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त किया गया है।

हिन्दी में जैनेन्द्र ने गांधी के विचार-दर्शन को एक कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है। यह नहीं कि जैनेन्द्र सर्वांशतः गांधीवाद से सहमत हैं क्योंकि वह किसी 'वाद' को चिन्तन का नियामक नहीं मानते, किन्तु गांधी का चिंतन जैनेन्द्र की कला के विचार-संस्कार में समाहित है। 'जैनेन्द्र के विचार' पुस्तक की भूमिका में प्रभाकर माचवे ने लिखा है :

'जैनेन्द्र के विचार-स्रोत पर वदनीय गांधीजी के सिद्धान्तों का गहरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। अहिंसा, सत्य और अपरिग्रह को सिद्धान्तत्रयी को जैनेन्द्र ने भी जैसे आधार के तौर पर पूरी तरह अपना लिया है।"

यही नहीं कि जैनेन्द्र के विचारपूर्ण लेखों में गांधी-दर्शन काफी उभर कर सामने आता है, बल्कि उनके उपन्यासों के पात्र भी एक गांधीवादी की भांति सत्य के नाम पर अहिंसक प्रतिरोध में ही विश्वास करते हैं और यह ही उनके चरित्रों का मानसिक संघर्ष बनकर उनकी सामा-

जिक यथार्थता को अभिव्यक्त करता है। जैनेन्द्र की रचना गाधी के उदात्त मानववाद से अनुप्राणित है।

गाधी के विचारों से अनुप्रेरित दृष्टिकोण वाले साहित्यकारों की दृष्टि साहित्य और कला के सम्बन्ध म गाधीजी से भिन्न हो सकती है क्योंकि गाधी ने साहित्य और कला पर अधिक विवेचन नही किया है। जो कुछ मिलता है वह उनके स्फुट विचारो में मिलता है। वैसे गाधी-जी गुजराती साहित्य-सम्मेलन और हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के सभापति भी चुने गए थे, और अपने अध्यक्षीय भाषणो में जो-कुछ उन्होने इस विषय में व्यक्त किया है वह साहित्य के प्रति उनके दृष्टिकोण को सकेत-रूप मे प्रकट करता है। साथ ही जीवन के प्रति गाधीजी का जो दार्शनिक दृष्टिकोण था, उसे मिला कर ही उनके साहित्य के प्रति बने दृष्टिकोण को ठीक से समझा जा सकता है, क्योंकि कोई विचारक या मनीषी साहित्य और जीवन के प्रति मूलत दो भिन्न दृष्टिकोण नही रख सकता। गुजराती साहित्य-सम्मेलन के बारहवें अधिवेशन में अध्यक्ष-पद से गाधी ने कहा था :

"जब मैं सेवाग्राम का और वहा के अस्थि-पजर लोगो का ख्याल करता हूं तो मुझे आपका साहित्य निरर्थक-सा मालूम होता है।

"जिसका दिमाग ताजगी से भरा है वह यदि मेरे पास आए तो मैं उसे दिखा दूगा कि मौलिकता के लिये शहर का क्षेत्र अच्छा नही, वह तो उसे गाव में ही मिलेगी।

"मैं अपने अनुभव से कहता हू कि जिस ढग से आज आप स्त्री का वर्णन अपने साहित्य में कर रहे है उसमे न स्त्री की पूजा है न उसका सम्मान है।

"साहित्य के लिये आप जब लेखनी उठायें तो यही सोच कर उठाइए कि स्त्री मेरी माता है, इस विचार से जब आप लिखेंगे तो आपकी लेखनी से स्त्री के बारे में जो कुछ निकलेगा वह उतना ही सुन्दर और फलप्रद होगा, जितने कि सुहावने आकाश से बरसने वाले बादल जो पृथ्वी-रूपी स्त्री को उपजाऊ बनाते है।"

इस प्रकार गाधीजी साहित्य के शिव और सत्य पक्ष पर ही अधिक जोर देते थे। वह मानते थे जो सत्य है, वही शिव है और जो सत्य और शिव है वही सुन्दर है। इसीलिये वह साहित्यकारो की दृष्टि गावो की ओर मोड़ना चाहते थे और जनता को नई नैतिक चेतना प्रदान करने वाले साहित्य को श्रेष्ठ समझते थे। उन्होने अश्लीलता और स्त्री के कामुक वर्णन की निन्दा की है। सन् १९३५ में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अध्यक्षपद से उन्होंने अपने भाषण मे कहा था :

"हिन्दी भाषा मे, आज कल गन्दे साहित्य का काफी प्रचार हो रहा है। पत्र-पत्रिकाओ के संचालक इस बारे में असावधान रहते हैं अथवा गन्दगी को पुष्टि देते हैं।"

गाधीजी अधिक शृगारिक साहित्य को भी श्रेष्ठ नही समझते थे जबकि रसवादियो ने रसो में शृगार को ही सर्वश्रेष्ठ माना है। उनकी यह दृष्टि उनकी उस नैतिक चेतना का ही परिणाम है जो राजनीति को भी नैतिक बनाने का प्रयत्न करती थी। उन्हे साहित्य के तात्विक-विवेचन की गहराई मे जाने का अवकाश ही नही मिला किन्तु श्रेष्ठ साहित्य की उनकी एक अभिरुचि थी जो उनके इस उपयोगितावादी नैतिक दृष्टिकोण के साथ मिलकर साहित्य के प्रति गाधी के मूल्याकन का एक रूप प्रस्तुत करती है! उनकी दृष्टि में श्रेष्ठ साहित्य क्या था—इसका पता इस बात से भी चलता है कि वे किस साहित्य को अधिक पसन्द करते थे। वह नैतिक चेतना वाले श्रद्धा और भक्ति-मूलक साहित्य के भक्त थे। वह अपनी प्रार्थना में भक्त और सन्त कवियों के पद गाया करते थे। दूसरी ओर मानववादी भाव भूमि पर आधारित उदात्त राष्ट्रीय साहित्य को वह श्रेष्ठ समझते थे, जैसे आधुनिक साहित्यकारो में उन्हे रवीन्द्रनाथ और टाल्सटाय प्रिय थे। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के मंच से उन्होंने कहा भी था :

"इस मौके पर अपने दु ख की भी कुछ कहानी कह दू। हिन्दी भाषा राष्ट्रभाषा बने या न बने, मैं उसे छोड़ नही सकता। तुलसीदास का पुजारी होने के कारण मेरा उसपर मोह रहेगा ही। लेकिन हिन्दी बोलने वालों में रवीन्द्रनाथ कहा हैं? प्रफुल्लचन्द राय कहां हैं? जगदीश बोस कहां हैं? ऐसे और भी नाम मैं बता सकता हूं। मैं जानता हू कि मेरी अथवा मेरे जैसे हजारो की इच्छा मात्र से ऐसे व्यक्ति थोड़े ही पैदा होने वाले हैं। लेकिन जिस भाषा को राष्ट्र भाषा बनना है उसमे ऐसे महान् व्यक्तियो के होने की

आशा रखी ही जायगी ।"

इस वक्तव्य से स्पष्ट है कि गांधीजी तुलसी और रवीन्द्र की कोटि के साहित्य को श्रेष्ठ मानते थे। इस बात पर निरालाजी ने आपत्ति की थी और उनसे समय मांगा था कि वह उन्हें बता सके हिन्दी में रवीन्द्र कौन है, किन्तु समयाभाव से ऐसा अवसर नहीं आया। इन सब मान्यताओं में एक बात अवश्य ध्वनित होती है कि गांधीजी राष्ट्रीय जागरण के साथ-साथ एक राष्ट्रीय साहित्य के उदय का भी स्वप्न देखते थे। उनका यह दृष्टिकोण नए लेखकों के सामने प्रश्न चिन्ह-सा खड़ा है, क्योंकि राष्ट्रीय साहित्य की रचना की जो प्रेरणा गांधी ने अपने जीवन-दर्शन के माध्यम और राष्ट्रीय आन्दोलन के नेतृत्व द्वारा प्रदान की थी, आज भी उसको एतिहासिक दृष्टि से, नई परिस्थितियों में विकसित करना है। गांधीजी का मन्तव्य था :

'जिस भाषा को हम राष्ट्र-भाषा बनाना चाहते हैं उसका साहित्य स्वच्छ,तेजस्वी और उच्चगामी होना चाहिये।"

आज भी परिस्थितियां इतनी नहीं बदली हैं कि इस मांग को न दुहराया जा सके। आज की ऐतिहासिक परिस्थितियों में सामाजिक जीवन के यथार्थ को प्रतिबिम्बित करने वाले राष्ट्रीय साहित्य के विकास की आवश्यकता पहले से भी अधिक है क्योंकि आज का युग नव-मानव के जन्म से पूर्व विश्व-जननी की प्रसव-व्यथा का युग है। नव-मानव की रचना में राष्ट्रीय साहित्य का उतना ही योग होना है जितना नव-समाज की रचना में मानव क्रांति का। साहित्यकार भी इसी माने में क्रांतिकारी है कि वह अपने साहित्य से नये जीवन की रचना करता है। गांधी की यह उक्ति—"यज्ञमय जीवन कला की पराकाष्टा है।" साहित्य को महान् जीवन रचना के यज्ञ में अपनी आहुति देने की ओर ही संकेत करता है।

[पृष्ठ ९५ का शेषांश]

थे, पर स्वयं सफेदी पोतने को खड़े हो गये।

जब बेन थक गया तो टॉम ने एक पतंग के बदले बिली फिशर को उसकी जगह देना मंजूर कर लिया, और जब वह थक गया तो जॉनी मिलर एक मरे चूहे और उससे साथ बंधी रस्सी के बदले उसकी जगह आ गया। और यह क्रम घण्टों ही चलता रहा। टॉम जब सुबह काम पर आया था तो उसके पास कुछ भी नहीं था, पर दोपहर होते-होते वह खासा मालदार हो गया। ऊपर बताई चीजों के अलावा उसके पास १२ खड़िया की बत्ती, एक यहूदी की टूटी हुई बीन, एक नीली बोतल का टुकड़ा—जो देखने के शीशे का काम दे सके खाली रील, चाबी—जिससे कोई भी ताला न खुल सके खड़िया का चूरा, शराब की सुन्दर बोतल की शीशे की डाट टीन का एक सिपाही, मेंढक के बच्चे, ६ पटाखे एक कानी बिल्ली का बच्चा, पीतल की चटकनी, कुत्ते का पट्टा—पर कुत्ता नहीं, चाकू की मूठ, नारंगी के छिलके, एक खिड़की का पुराना टूटा-फूटा चौखटा आदि चीजें थी।

टॉम ने मन में सोचा कि यह दुनिया इतनी बुरी नहीं है। उसने बिना समझे ही मानवी स्वभाव का एक बड़ा नियम जान लिया था, अर्थात् किसी-किसी लड़के या आदमी को किसी चीज के लिये लालायित और आतुर बनाने का तरीका यही है कि वह उसके लिये दुर्लभ बना दी जाये। यदि टॉम लेखक की तरह एक महान् और विख्यात दार्शनिक होता तो वह यही निष्कर्ष निकालता कि काम वह है जो शरीर को अनिवार्यतः करना पड़े और खेल वह है जो करना अनिवार्य न हो। इससे शायद यह समझ में आ जायगा कि कृत्रिम फूल बनाना और पैर की चक्की चलाना काम है, जबकि मचड्डी या मौन्टब्लांक पर चढ़ना मनोरंजन और खेल है . .

टॉम ने अपनी दशा के भौतिक परिवर्तनों पर थोड़ी देर तक विचार किया और फिर अपने सदर-मुकाम में उसकी सूचना देने के लिये चल पड़ा। ('उत्थान' से साभार)

गीता की पृष्ठभूमि

ब्रजकृष्ण चांदीवाला

आज से ५००० वर्ष पूर्व मथुरा नगरी में एक महान विभूति का प्रादुर्भाव हुआ था जो भगवान कृष्ण के नाम से प्रसिद्ध है। उन्हे जगद्गुरु की पदवी मिली। वे अपने समय के आदर्श पुरुष, युग-प्रवर्तक थे। ऐसे आदर्श पुरुषों का प्रादुर्भाव तब-तब हुआ करता है जब-जब धर्म की ग्लानि और अधर्म का अभ्युत्थान होने लगता है। साधु पुरुषों की रक्षा, दुष्टता का विनाश, धर्म की संस्थापना अर्थात पुनरुद्धार करना, समाज को अधोगति से निकाल कर ऊर्ध्व गति के मार्ग पर चलाना, यह होता है ऐसी दिव्य विभूतियों के अवतार लेने का उद्देश्य।

हरएक युग में जब-जब समाज की व्यवस्था बिगड़ने लगती है, अनीति और अनाचार बढ़ जाता है मनुष्य अपने कर्तव्यपथ से विचलित हो जाता है, समाज को अधम अज्ञान,जड़ता और असत्य घेर लेता है, लोग स्वेच्छाचारी और दुर्व्यसनी बन जाते हैं, तब-तब किसी-न-किसी ऐसी दिव्य मूर्ति का प्रादुर्भाव होता है जो अपने जीवन से समाज पर प्रभाव डाल सके और उसकी व्यवस्था को फिर से सगठित कर सके। समाज का यह ह्रास और विकास,यह पतन और उत्थान ऐसा ही चलता आया है और चलता रहेगा। हर कदम जो आगे पड़ता है वह दूसरे कदम के आगे जाने पर पीछे रह जाता है। इसलिये हर कदम मे ऊर्ध्वगति भी है और अधोगति भी। ऊर्ध्वगति का नाम ही धर्म है, और अधोगति का नाम अधर्म। ऊर्ध्वगति हमे आगे ले जाती है, अधर्म से धर्म की ओर : अधोगति नीचे गिराती है धर्म से अधर्म की ओर। ऊर्ध्वगति के मार्ग पर चलने में प्रयत्न करना पड़ता है, पुरुषार्थ की जरूरत है, अधोगति मे प्रयास की जरूरत नही, वह एक बार प्रारम्भ हुई कि उसकी गति स्वत ही बढ़ती जाती है। पहाड़ पर चढ़ने के लिये बड़े परिश्रम की जरूरत पड़ती है; उतरने मे कोई प्रयत्न नही करना पड़ता। एक बार नीचे की ओर चले तो गति बढ़ती ही जाती है और यदि सभला न जाये तो इतने वेग से पतन होता है कि कही पता ही न लगे। नीचे की ओर खींचने की शक्ति अधिक है। हर वस्तु नीचे की ओर खिचती जा रही है। ऊपर की ओर जाना साहस का काम है, उसमे शक्ति चाहिये, बुद्धि चाहिये, परिश्रम चाहिये। क्या समाज और क्या व्यक्ति उसके आगे बढ़ने मे बहुत समय लगता है, मगर गिरने मे देर नही लगती। बच्चे के बनने मे दस मास लग जाते है, मरने मे क्षण भर भी नही लगता।

कहने का आशय यह है कि धर्म को, ज्ञान को, विवेक को, सत्य को समझना और तदनुसार आचरण करना बड़ा कठिन है, किन्तु इसमे उल्टा करने मे कोई विशेष परिश्रम करने की आवश्यकता नही होती। इसीलिये हर युग मे कोई-न-कोई विशेष व्यक्ति आता है। वह समाज की रचना बड़े परिश्रम के बाद सुधारता है। समाज को उसका आशय और उसका आदर्श समझने मे बड़ी कठिनाई पड़ती है और तदनुसार बरतने मे और भी अधिक। समाज का एक बहुत छोटा भाग भली-भाति विकसित हो पाता है; बड़ा भाग तो व्यक्ति-विशेष के प्रभाव मे आकर, उसपर श्रद्धा रख कर केवल उसकी चन्द बाते ग्रहण कर पाता है। और थोड़े समय बाद उन्हे भी भुला देता है। केवल व्यक्ति-विशेष की ऐतिहासिक याद बनी रह जाती है। उसके जीवन का उद्देश्य क्या था यह लोग भूल जाते है। इसीको धर्म की ग्लानि और अधर्म का उत्थान कहा जाता है। जब अधर्म का यह उत्थान इस हद तक पहुच जाता है कि समाज के नष्ट हो जाने की सभावना दीखने लगती है, कर्तव्यपरायण पुरुषों को त्रास पहुचने लगता है और झूठे-लम्पट-पाखण्डी फलने-फूलने लगते है, साधु पुरुषों को तरह तरह से सताया जाने लगता है और दुष्टजन उन्हे आक्रान्त कर लेते है, असत्य और अधकार छा जाता है, स्त्रियो, बच्चो और बूढो पर अत्याचार होने लगते है, न्याय की दुर्दशा होने लगती है तब प्रभु का सिंहासन हिल उठता है और इस बात की जरूरत आ पड़ती है कि धर्म की फिर से भली प्रकार स्थापना की जाय और समाज को सगठित करके उसे कर्तव्यपरायण बनाया जाय।

भगवान कृष्ण का जन्म इसी महान हेतु की सिद्धि के लिये हुआ था। उन्होंने जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत एक ही उद्देश्य को अपने सामने रखा—'धर्म स्थापना' और अपने जन्म का हेतु बताते हुए कहा कि इस तरह जो मेरे दिव्य जन्म और कर्म का रहस्य जानता है वह हे अर्जुन, शरीर का त्याग कर पुनर्जन्म नहीं पाता, पर मुझे पाता है। अर्थात मेरी तरह कर्तव्यनिष्ठ रहकर जो सत्य-धर्मानुसार अपना जीवन व्यतीत करता है उसे अपने लिये जन्म लेना नहीं पड़ता। भगवान के सम्पूर्ण दिव्य जीवन और कर्म के विवरण को जानने के लिये हमें श्रीमद्भागवत और महाभारत का अध्ययन करना होगा। मगर यदि हम उनके जीवन और कर्म के सार को समझना चाहें तो हमें श्रीमद्भगवत गीता और उद्धव-कृष्ण-संवाद की शरण लेनी होगी। यह उनके दो प्रख्यात प्रवचन हैं। पहला है कृष्णार्जुन संवाद के रूप में जिसे उन्होंने कुरुक्षेत्र की रण-भूमि पर, भारतयुद्ध के समय, अर्जुन का मोह दूर करने और उसे कर्तव्यपरायण बनाने के लिये दिया। दूसरा है उनका अन्तिम उपदेश जिसे प्रभास-क्षेत्र में अपने महान प्रयाण के समय उन्होंने अपने प्रिय सखा उद्धव को दिया।

गीता हिन्दुओं का सर्वश्रेष्ठ धार्मिक ग्रंथ माना जाता है। यह उपनिषदों का साररूप कहा जाता है और प्रस्थान-त्रयी में से एक है। यह ग्रंथ विशेषकर भारतवर्ष की तो सभी, साथ ही संसार की भी बड़ी-बड़ी भाषाओं में प्रकाशित हो चुका है। भारत में भगवान कृष्ण के बाद जितने धर्माचार्य, संत, महात्मा और विद्वान हुए हैं प्रायः उन सभी ने गीता पर भाष्य, वृत्तियां, टीकाएं या व्याख्याएं लिखी हैं और यह सिलसिला आज भी जारी है। महाभारत के भीष्मपर्व के अन्तर्गत १८ अध्यायों में जो ७०० श्लोक लिखे गये हैं वही भगवद्गीता के नाम से प्रख्यात हैं। इन ७०० श्लोकों में १ श्लोक धृत-राष्ट्र का, ६४ संजय के, ८० अर्जुन के और ५७५ कृष्ण भगवान के मुख से निकले हैं।

उद्धव-कृष्ण संवाद भागवत पुराण के एकादश स्कंध में छठे अध्याय से २८ वें अध्याय तक आता है। यह भगवान कृष्ण का अन्तिम उपदेश है जिसमें उन्होंने अपने जीवन का निष्कर्ष समाज के सामने रख दिया है। इस प्रवचन को गीता की पूर्ति कहा जा सकता है क्योंकि इसका अध्ययन करने से पता चलता है कि जो विषय गीता में संक्षेप में कहे गये हैं उनका इस संवाद में विस्तार के साथ वर्णन किया है और कुछ बातें ऐसी भी हैं जिन्हें गीता में शायद छोड़ दिया है। इसलिये गीता के साथ साथ यदि इस संवाद का भी अध्ययन कर लें तो भगवान के कथित सिद्धान्तों का पूरा निरूपण हमारे सामने आ जाता है।

सदियां बीत चुकीं जब गीता का यह उपदेश कुरुक्षेत्र की धर्मभूमि पर सुना गया था। जैसे-जैसे समय बीतता जाता है उस दिव्य वाणी की मधुर ध्वनि, काल के तारों पर चढ़कर, अपने गम्भीर और हृदयस्पर्शी नाद से सोये हुओं को बेदार करते, दुखियों को सान्त्वना देकर, गिरते हुओं को ऊपर उठाकर, भटके हुओं को मार्ग दिखाकर, हताशों को आशा बंधाकर आगे और आगे बढ़ाए लिए चले जा रही है, उस धाम की ओर जहां सूर्य का, चन्द्र का या अग्नि का प्रकाश पहुंच नहीं सकता, जहां जाने वाले को फिर जन्मना नहीं पड़ता, जो उसका परम धाम है—असत से सत की ओर, तमस से ज्योति की ओर, मृत्यु में से अमृत की ओर, चिर जीवन की ओर।

कृष्ण भगवान ने अपना प्रवचन करते हुए, उस गुह्य ज्ञान को प्रस्तुत करते हुए यह दावा नहीं किया कि वह संसार के सामने कोई नई बात रख रहे हैं या अन्तिम ज्ञान सुना रहे हैं। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि वह जो कुछ कह रहे हैं वह परम्परा से चला आ रहा है। काल के फेर में वह लुप्त हो जाता है और समय आने पर उसको फिर से प्रकट कर दिया जाता है। मूल रूप में वह एक रस है। क्योंकि सत शाश्वत है मगर उसकी खूबी यह है कि हर एक को पूरी स्वतन्त्रता है कि उसे जिस प्रकार चाहे ग्रहण करे। वहां बलात्कार का काम नहीं है। जहां सत के साथ बलात्कार रहता है वहां सत्य अपमानित, क्षीण और निस्तेज होता है, धर्मांधता आजाती है। वास्तविक धर्म वही है जिसे धारण करने में बुद्धि को पूरी स्वतन्त्रता हो। जिस धर्म को जोर-जबरदस्ती करके मनवाया जाता है उसमें विकास की गुंजायश नहीं रहती और वह धर्म सर्वकाल के लिये नहीं टिक सकता। कृष्ण भगवान के उपदेश की सबसे बड़ी खूबी यही है कि वह मनुष्य को

किसी बात के लिये बाध्य नही करता। जो अंकुश दग दृष्टि से लगाया जाता है कि उसे जब चाहे तोडने की स्वतन्त्रता हो, वह अंकुश बिना बोझ के निभ जाता है क्योकि यह बुद्धिपूर्वक लगा होता है और जो अंकुश धर्म-भीरुता से लगता है वह बोझ है, टिक नही पाता।

भगवान कृष्ण गीता मे अपने अनुभव से, अपने ज्ञान से सब को, धर्म को उपस्थित करते है, कर्तव्य का बोध कराते है, उसके ऊंच और नीच को समझाते है मगर सब कुछ कह कर अन्त में यह भी कहते है कि 'यथेच्छसि तथा कुरु' तू जैसा करना चाहे वैसा कर। जो धर्म-प्रवर्तक इस विशेषता को भूल जाते है और अपने बनाए हुए मार्ग पर चलने के लिये मनुष्य को बाध्य करते है उनके अनुयायियो में कट्टरता, द्वेष और हिंसा प्रवेश कर जाती है। सत्य उन की दृष्टि से ओझल हो जाता है और वह मार्ग धर्म का न रह कर अधर्म का, असत्य का बन जाता है। मगर कृष्ण भगवान ने वेद के इस वाक्य को सार्थक किया—'एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति।' सत्य एक है, विद्वान उसका अनेक प्रकार से वर्णन और निरूपण करते है।

भगवान कृष्ण के जीवन के उद्देश्य को समझने के लिये और उनकी शिक्षा का सार-तत्त्व ग्रहण करने के लिये जो दो उक्त प्रवचनो में निहित है, हमें उस समय की समाज-रचना पर तथा धर्म-प्रणाली पर एक दृष्टि डालनी होगी और यह देखना होगा कि श्रीकृष्ण ने अपने अमली जीवन से उस समाज मे किस प्रकार परिवर्तन किया तथा किस प्रकार उन्होंने धर्म की भावना के रूप को जडमूल से बदल दिया।

कृष्ण भगवान जिस काल मे आविर्भूत हुए उस समय भारतवर्ष में समाज चार वर्णो और चार आश्रमो में विभाजित था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, यह चार वर्ण तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास यह चार आश्रम थे। उस समय राजसत्ता क्षत्रियो के हाथो में थी और धर्म-सत्ता ब्राह्मणो के हाथो मे। वैश्य, शूद्र और स्त्रिया धर्म शिक्षण से प्राय वंचित कर दिये गये थे, यद्यपि वैश्य द्विजो मे से ही एक माने जाते थे। क्षत्रियो को ब्राह्मणो ने अपने हाथ का खिलौना बना लिया था। क्षत्रिय दिनोदिन अधोगति को प्राप्त हो रहे थे और ब्राह्मण भी अपने ब्रह्मत्वसे हटते जा रहे थे। राजाओ मे जो प्राय: क्षत्रिय थे, आसुरी भावो का आधिक्य था। उस वक्त राजा कस जो कृष्ण भगवान के मामा होते थे, अपने पिता को कैद मे डालकर राज-सिंहासन पर विराजमान थे। वह अपने राज्य को चिरस्थायी बनाये रखने के लिए अपनी बहन के सात बालको का हनन कर चुके थे। क्योकि उन्हे बताया गया था कि उनकी बहन की सन्तान उन्हे राज्य से च्युत करेगी। कस की पीठ पर उसका श्वसुर मगधराज जरासध था। जिसने साम्राज्य स्थापित करने के लिये सैकडो राजाओ की सत्ता छीन कर उन्हे बन्दीगृह मे डाल दिया था। देश की प्रजा इन दो महान शक्तिशाली राजाओं के नीचे कुचली जा रही थी।

उस समय धर्म-वेत्ताओ के, जो अधिकतर ब्राह्मण थे, दो मार्ग थे। एक तो पूर्व-मीमासक थे, जिन्हे कर्मकाडी कहा जाता था, दूसरों की साख्ययोगी या सन्यासी सज्ञा थी। पूर्व-मीमासक जो भी कर्म करते थे, फल को उद्देश्य रख कर करते थे। सन्यासी इनके विपरीत कर्ममात्र का ही त्याग करने को कहते थे। मगर जोर उस समय मीमासको का ही अधिक था, क्योकि राजा लोगो को, और प्रजा को भी उन लोगो की बातों म रस आता था। इनका मार्ग इस ससार मे ऐश्वर्य, धन, सम्पत्ति, विभव, सन्तान आदि को बढाने का और सब प्रकार के सुख-भोग करने का था तथा मरने के बाद स्वर्ग-प्राप्ति का पूरा विश्वास दिलाया जाता था। स्वर्ग-प्राप्ति की कल्पना का चित्र कुछ ऐसे काव्यमय शब्दो मे खीचा जाता था कि बडे-से-बडे सयमी का जी भी वहा जाने के लिये ललचाए बिना न रहता था। इस कल्पित स्वर्ग-प्राप्ति के लिये लोग सब प्रकार के कष्ट उठाने को तैयार रहते थे। इससे आगे उनकी दृष्टि नही जाती थी। यह मीमासक वेदो के आध्यात्मिक विषयो को, ब्रह्म-विषय को भुला कर ही कर्मकाड पर अधिक जोर देते थे और यज्ञ-याग में ही व्यस्त रहते थे। राजाओ के मनोरथ साधने के लिये अनुष्ठान करवाये जाते थे। स्वर्ग में स्थान प्राप्त हो जाय या कम-से-कम सुरक्षित रहे, इसके लिये अनेक प्रकार के प्रयत्न होते थे। देवताओ को भी इन लोगो से भय लगा रहता था कि कही उनकी पदवी न छिन जाय। एक ओर यह स्वर्ग-प्राप्ति की

कल्पना थी तो दूसरी ओर नरक-प्राप्ति का भय दिखाया जा रहा था कि जिसकी कल्पना से मनुष्य के रोंगटे खड़े हो जाय। नरक की यह कल्पना मनुष्य की पशुता का बीभत्स चित्रण है और ऐसा बताता है कि मनुष्य की मनोवृत्ति किस-किस पाप और उनके दंड की कल्पना कर सकती है। इस स्वर्ग और नरक की कल्पना ने समाज को जितनी हानि पहुंचाई है और उसके विकास को जितना रोका है, शायद धर्म के नाम पर और किसी अन्य कल्पना ने ऐसा न किया हो। और आश्चर्य यह है कि वेदों में नरक जैसी कोई वस्तु ही नहीं है। परवर्ती समय पर सन्तों ने भी इस कल्पना को सदा हास्यास्पद और अविश्वसनीय माना है। तुलसीदास ने कहा ही है "को जाने को जैहै सुरपुर को जैहै नरकधाम को।" यह कल्पना सहज सभ्यता की गिरावट की पराकाष्ठा है। मीमांसकों के सब यज्ञ-याग, यह स्वर्ग और नरक के झगड़े धर्म के नाम पर होते थे, इसी पाप-पुण्य की भावना को धर्म माना जाता था और उसके प्रचार के लिए अनेक श्रुति-स्मृतियों को प्रमाण बना कर मोह और आसक्ति का जाल फैलाया हुआ था। इन यज्ञों में धर्म के नाम पर बड़े जोरों के साथ जीव-हिंसा भी की जाती थी। पशुओं का वध तो होता ही था, साथ ही राजसूय जैसे यज्ञों के लिये लड़ाइयाँ भी लड़नी पड़ती थीं जिनमें कितने ही राजाओं को अपनी स्वतन्त्रता खोनी पड़ती थी। परिणामस्वरूप आपसी विद्वेष और ईर्षा फैलती थी।

धर्म के नाम पर जब इन मीमांसकों का बहुत भाव बढ़ गया तो जनता में उसके प्रति विरक्ति पैदा होने लगी और जो इस प्रकार के कर्मकाण्ड को अधर्म का मार्ग समझने लगे उनको धर्म मात्र से ही घृणा हो गई। उन्होंने विरक्त हो कर संसार का त्याग करना शुरू कर दिया तथा साथ ही कर्ममात्र का त्याग करने का प्रचार भी करने लगे। यह ज्ञानमार्गी या संन्यासी कहलाये। मगर जैसे कर्मकांडी एक छोर पर पहुंच कर हद करने लगे थे, वैसे ही यह भी दूसरे छोर पर पहुंच कर हद करने लगे।

इस प्रकार धर्म के दो मार्ग प्रचलित थे। जब कृष्ण भगवान् का जन्म हुआ उस वक्त न तो वर्ण-व्यवस्था ही सच्चे अर्थों में रह गई थी और न आश्रम-व्यवस्था ही। धर्म की गिरावट हो चुकी थी और राजसत्ता से प्रजा बुरी तरह से त्रस्त थी। इसी गिरी हुई स्थिति से निकाल कर समाज की पुनर्रचना के लिये वह आए थे।

नैतिकता की समस्याएं

लक्ष्मीनारायण भारतीय

व्यक्ति और समाज के दैनंदिन जीवन में नैतिकता की जो व्यापक प्रतिष्ठा और जरूरत है, वह विवाद से परे है। नैतिकता की व्याख्या के विषय में मत-भेद हो सकते हैं, परन्तु उसकी सत्ता को कोई चुनौती नहीं दे सकता, क्योंकि मानव-जीवन को संस्कृति के प्रकाश में उचित पथ पर ले जाने का महान् कार्य नीति-तत्वों के जरिये ही हो सकता है। संस्कृति एक विचार है, नीति उसीका आचार है। संस्कृति ध्येय है तो नीति मार्ग है

सामाजिक और वैयक्तिक जीवन में परस्पर-कल्याणकारी बनने के लिए जिन नीति-नियमों की आवश्यकता होती है, वे धर्म-विचार के द्वारा, समाज के परपरागत सस्कारों द्वारा और पारस्परिक हित-चिंतन के द्वारा विकसित होते जाते है। नीति और सदाचार के पर्यायवाची शब्द बनने का कारण भी यही है कि नैतिकता की अक्षुण्ण प्रतिष्ठा समाज और व्यक्ति ने स्वीकार कर ली है, भले ही उसकी अवहेलना कभी वह खुद ही कर लेता हो। परन्तु हमारा दैनंदिन जीवन ही जहा नीति-तत्वो पर आधारित है, वहा उनको ठुकराना मनुष्य के लिए आत्मघात के समान है। जिस दिन मनुष्य ने सामाजिकता का पाठ सीखा, उसी दिन से नैतिक मूल्यों की व्यापक प्रतिष्ठा उसने कर ली। नैतिक आचरण की भित्ति पर ही मानव-जीवन समाज के लिये अनुकूल और उपादेय बनता है, तो समाज भी व्यक्ति-जीवन को नियन्त्रित एव पल्लवित करके अपना विकास कर सकता है।

मानव-समाज ज्यो-ज्यों बनता गया, नैतिक मूल्यों की प्रस्थापना होती गई और उनकी आवश्यकता बढ़ती गई। और जब उन मूल्यो की प्रतिष्ठा गिरी, समाज की शृंखला भी साथ-ही-साथ टूटी। युद्धो और सामाजिक सघर्षो के बीच ऐसी परिस्थितिया आयी जब नैतिकता नीचे की सतह तक पहुच गयी, लेकिन फिर अनीति, दुराचार, विशृंखलता और नाश का ही परिणाम हाथ आया।

सच तो यह है कि केवल युद्धो की परिस्थितियो मे ही नही, किंतु हरेक सामाजिक सास्कृतिक परिवर्तनो के बीच भी नैतिक मूल्यों को कसौटी में से गुजरना होता है, क्योंकि उनके अभाव में जब व्यक्ति और समाज के बीच सघर्ष होता है तो दोनों का पतन साथ-साथ होता जाता है। नैतिकता और सामाजिकता आज परम्परावलम्बी हो गयी है, अत व्यक्ति और समाज के परस्पर-विरोध को टालने के लिये नैतिकता के मूल्यो को बनाये रखना अनिवार्य हो गया है। और यही आज की नैतिकता की समस्याएं है।

लेकिन समाज की गतानुगतिकता के कारण कभी-कभी ऐसी स्थिति खडी हो जाती है कि अपने व्यक्तित्व के अस्तित्व के लिये मनुष्य को उसके खिलाफ बगावत करनी पड़ती है। समाज को उसीने मान्य किया, परन्तु समाज ही जब व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर आक्रमण करने लगता है, तब सदाचार की वैयक्तिक जिम्मेवारी कम हो जाती है और नैतिकता के बंधन शिथिल होने लग जाते है। व्यक्ति को स्वेच्छाचारी बनने न देने का पहला कर्तव्य धर्म का, और बाद में समाज का है, परंतु समाज ही जब परपरावाद के वशीभूत होकर अपने लिये व्यक्तित्व का बलिदान चाहता है, तब परिणामस्वरूप दोनों के संबधों को स्थिर रखने वाले नैतिक मूल्यो की प्रतिष्ठा गिरने लगती है। समाज के हर नियंत्रण का विरोध करने की भावना तब व्यक्ति के दिल में उत्पन्न होती है और वह अनैतिक उपायों का भी सहारा लेने लग जाता है। आज के युग में जो उच्छृंखलता और अनैतिकता उत्पन्न हुई है, उसके मूल मे यह एक बहुत बडा कारण है।

परन्तु ये नैतिक मूल्य आखिर है क्या? क्या वे निरपेक्ष और सनातन है, या देश-काल-वर्तमान के अनुसार उनमें परिवर्तन होते है? बात ऐसी है कि नैतिक मूल्यो के शाश्वत होते हुए भी सदाचार के नैतिक नियम

शाश्वत नहीं होते, यद्यपि उनमें इतने धीरे-धीरे और अबोध रूप से परिवर्तन होता है कि उसका भान संक्रमण-काल में नहीं होता। सत्य-अहिंसादि शाश्वत नैतिक मूल्यों का नाम धर्म है,और धर्म कभी नहीं बदलता; परन्तु नीति-आचार बदलते रहते हैं, क्योंकि युग-युग की आवश्यकताएं उनको बदलने के लिए बाध्य करती हैं।

मिसाल के लिए बहुपत्नि प्रथा को ही लीजीए। किसी जमाने में बहुपत्नित्व अनैतिक नहीं माना जाता था, परन्तु आज उसको कोई मंजूर कर सकता है? इस प्रथा के अवशेष वैसे आज भी किन्नर प्रदेश और तिब्बत में हैं, जहां एक ही परिवार में ४-४, ६-६ भाइयों के बीच एक-एक ही पत्नी होती है। परन्तु ऐसे अपवादात्मक स्थान छोड दें तो क्या आज उसको नैतिक प्रतिष्ठा मिल सकती है? इस तरह युग के बदलने के साथ साथ सामाजिक प्रथाएं और नैतिक संकेत भी बदलते जाते हैं। आज का नैतिक आचार कल गलत सिद्ध हो सकता है और भूतकाल की नीति आज आश्चर्य की वस्तु बन सकती है। वस्तुतः सामाजिक परिवर्तन ही इसके मूल में होते हैं।

परन्तु एक खास बात यह देखी गई है कि ये आचार भले ही बदलते जाय, नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा अक्षुण्ण रहती है। अनैतिकता का समर्थन किसी भी समय नहीं हुआ है।

लेकिन अनेक व्याख्याओं और अनेक रूपों के होते हुए भी अगर नैतिकता की प्रतिष्ठा किसी भी समय गिरी नहीं तो फिर आज हम सर्वत्र नीति के प्रति अनास्था और उपेक्षा का वातावरण क्यों देख रहे हैं? सब तरफ एक ही आवाज कि आज तो नीति रही ही नहीं, क्यों सुनायी देती है? विभिन्न धर्मों के अनेक बंधनों व शिक्षाओं के बावजूद आज नैतिक बंधन शिथिल ही होते देखे जा रहे हैं। एक ओर तो नैतिकता की प्रतिष्ठा, परन्तु दूसरी ओर उसकी ऐसी अवहेलना का क्या कारण है? वास्तव में तो इसका कारण अनैतिकता के प्रति आकर्षण नहीं, सामाजिक बंधनो के खिलाफ प्रतिक्रिया और परिस्थिति की लाचारियां ही हैं। जब समाज ऐसी परिस्थिति खड़ी कर देता है कि मनुष्य के लिए अपने व्यक्तित्व को समाधानकर जीवन-यापन करना दुष्कर हो जाता है तब वह उसमें से चोर-रास्ते खोज लेता है। समाज और परिस्थितियों के सामने व्यक्ति लाचार बन कर नीति-नियमों को ताक पर रखने लग जाता है। ऐसा होते-होते नये नीति नियमों की प्रस्थापना भी उन व्यक्ति-समूहों द्वारा, जो स्वयं इस प्रतिक्रिया के शिकार होते हैं, धीरे-धीरे होती जाती है। इसकी सबसे सुंदर मिसाल आधुनिक युग की विवाह-परंपरा है। आज व्यक्ति की भावना, उसके विचार, उसकी वृत्तियां बदल गयी हैं। वह उसमें बंधा नहीं रहना चाहता, पर समाज आज हर क्षण उसपर अनावश्यक अंकुश रखना चाहता है। परिणामस्वरूप समाज के खिलाफ बगावत शुरू हो गयी है। विवाह प्रथा के बंधनों के विरुद्ध व्यक्ति-विशेषों ने जो कदम उठाये, वे आज समूह-मान्य भी होने लगे, कल समाज-मान्य भी होने लग जायेंगे। यही संक्रमणावस्था है, जहां नैतिकता की आधारभूत प्रतिष्ठाएं मिट कर दूसरी स्थापित होती हैं। परन्तु ठीक इसी समय एक और खतरा भी दिखाई देने लगा है, विवाह-बंधनों तक को आज अमान्य किया जा रहा है। "विवाह-प्रथा" के खिलाफ विद्रोह तो ठीक था, पर "वैवाहिक मर्यादाओं" के विरुद्ध बगावत समाज के स्थैर्य को ही चुनौती है, लेकिन इसका प्रतिकार सामाजिक बंधनों द्वारा नहीं, नैतिक प्रेरणाओं द्वारा ही हो सकता है। अतः ठीक इसी समय नैतिक मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा अनिवार्य हो जाती है। इस वक्त भिन्न-भिन्न धर्म, पंथ संप्रदायों के उपदेश काम में नहीं आ सकते, सामाजिक परिवर्तन ही इसके लिए सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

केवल इसी मामले में नहीं, जीवन के विभिन्न पहलुओं में आज एक प्रकार की कृत्रिम बंधन-परंपरा और आवरण बढ़ता जा रहा है। फलतः व्यक्ति का दम घुटने लगा है। वह नीति-आचार छोड़ कर पापाचार की ओर प्रवृत्त हो रहा है, भले ही उसमें उसकी भी कुछ स्वेच्छाचारिता कारणीभूत हो। समाजधुरीण अगर इस समय सावधानी बरतते हुए अपने-अपने जीर्ण और साम्प्रदायिक नीतिवादों का परित्याग करके व्यक्ति की स्वतंत्रता का अपहरण बचा लेते हैं तो आज का सामाजिक विद्रोह विधायक रूप धारण कर सकता है, और नैतिकता की अवहेलना रुक सकती है, क्योंकि नैतिकता के बंधन हमारे दैनंदिन व्यवहार में सतत रूप से उतने न टिक सकें तो भी

नैतिकता की जरूरत आज समाज में उतनी ही विद्यमान है। उसका मान भी कम नहीं हुआ है। उदाहरण-स्वरूप व्यभिचार की ही बात ले लीजिए। समाज में वह चलता आया है और भौतिक-सुख-संपन्नता के इस युग में उसकी मात्रा बढ़ी भी है, परंतु क्या आज कोई अनीतिमान व्यक्ति भी छाती पर हाथ रख कर व्यभिचार को नैतिक करार दे सकता है ? उल्टे हम गिरते तो जाते हैं, मगर उसकी शिकायत भी करते जाते हैं। हमारी सदसद्-विवेक-बुद्धि भीतर से उसको हर क्षण नामंजूर ही करती है। समाज-जीवन के अन्य प्रसंगों में भी यह बात सहज देखी जा सकती है। नैतिकता गिरी-गिरी यह कह शिकायत करने वालों की संख्या बहुत ज्यादा है, बनिस्बत गिरने वालों के। यद्यपि शिकायत करने वाला भी गिरता नहीं, ऐसी बात नहीं है, परन्तु उसके मन में प्रतिष्ठा अनैतिकता की नहीं है। वह अपने कृत्यों का समर्थन नहीं करता, बल्कि उसपर आवरण डालना चाहता है कि यह नैतिकता ही है। समाज की मनःस्थिति का आप सूक्ष्म अध्ययन कीजिए। सब तरफ सुनाई देगा कि नीतिमत्ता अब रही ही नहीं। जीवन के हर क्षेत्र में अनैतिकता का बोलबाला हो गया है, आदि आदि। अब इस शिकायत के भीतर आप प्रवेश करके देखिये। शिकायत करने वाला तो है समाज, और शिकायत के पात्र हैं चंद व्यक्ति, यानी सारे-का-सारा समुदाय तो गिरा हुआ नहीं है, यह अपने आप सिद्ध हो जाता है।

कुछ लोग पतित हो भी गये हों तो उन पतितों के विरुद्ध आक्रोश करने वालों की संख्या इतनी ज्यादा है कि तुलना में पतितों की संख्या नगण्य ही मानी जायगी।

एक जमाने में अनेक पत्नियां और उपपत्नियां रखने का रिवाज समाज-मान्य था, जो आज भी कई जातियों में है। परंतु क्या कोई कह सकता है कि अनेक पत्नियां-उपपत्नियां रखना आज प्रतिष्ठा की चीज है ? सदाचार गिर जाने की गहरी शिकायत है। तो क्या चोरी, व्यभिचार आदि को आज समाज की मान्यता मिल गयी है ? अगर वास्तव में समाज अनीतिमान हो गया होता तो कानून, न्यायालय, सजाएं आदि का स्वरूप ही कबका बदला जा चुका होता। पर सही परिस्थिति ऐसी नहीं है। पतन की आवाज आज चाहे जितनी बड़ी हो गयी हो, समाज उतना पतित नहीं हुआ है। दर्शन बड़ा होने से स्वरूप बड़ा नहीं होता है। समाज का हृदय आज भी स्वस्थ है। टीकाकारों के अंतस्तल में ही इस तथ्य का दर्शन आपको हो जायेगा।

तो फिर प्रश्न उठता है कि आज सर्वत्र अनैतिकता की जो वृद्धि दीख रही है, उसका क्या कारण है ? राज-नीतिक क्षेत्र छोटा ही क्यों न हो, उसमें अनैतिकता का जो इतना बोलबाला है, उसकी क्या वजह है? बात दरअसल यह है कि इन सबकी जड़ में है, हमारी केवल 'स्वार्थ-वृत्ति'। और इसकी वृद्धि के मूल में है, भौतिकता की ओर हमारी बेतहाशा दौड़। हम अपने भीतर के देवता से इतने दूर-दूर भागे जा रहे हैं कि बाहर का उसमें कोई लगाव ही नहीं रह पाता है। इसके अलावा, हमारी समाज-रचना भी इसके लिये काफी हद तक जिम्मेदार है, जिसके कारण चोरी-फरेबी-व्य-भिचार-लूट आदि के जाल में व्यक्तियों को फंसना पड़ता है। हमारी समाज-रचना आज दूषित हो गयी है। आचार्य विनोबा ने इस सिलसिले में एक बड़े पते की बात बतायी है, कि "पैसे के आधार पर हमने अपने समाज को टिकाया, उसीका यह परिणाम है।" हमारे दैनंदिन जीवन में दीख भी यही पड़ता है। पैसे की प्रतिष्ठा का जो ख्याल आज हमारे दिल में घुसा हुआ है, उससे कोई भी बरी नहीं है और इसीके कारण माता-पिता, भाई-बहन, पड़ौसी सबमें संघर्ष होता रहता है। पैसे ने आज इतनी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है कि मानव के सद्गुण भी उसके सामने छिप-से गये हैं। लेकिन एक बात आज भी देखी जा सकती है कि पैसे की इतनी व्यापक प्रतिष्ठा के बावजूद नैतिकता समाज में अब भी मिटी नहीं है, भले ही उसपर काई चढ़ गयी हो। परंतु प्रश्न यह है कि आज की इस विपरीत अवस्था में नैतिकता के मूल्यों की रक्षा कैसे की जा सकती है। क्या नीति विचार के क्लासेस खोल कर ? या धर्मगुरुओं की फौज बढ़ा कर ? अथवा उपदेशों के मंत्र चला कर ? लेकिन यह सब तो शाखाग्राही पांडित्य हो जाने वाला है, मूलग्राही उपाय-योजना नहीं। किसीको सतत भूखा रहने को आप मजबूर करें और फिर भी कहें कि चोरी न करो तो वह हवा में लाठी मारने की-सी बात होगी। नैतिकता की प्रतिष्ठा

का सामना यों नहीं जुटाया जा सकता। उसके लिए समाज-रचना ही बदलनी होगी है। भौतिक सुख की ओर एक तरफ तो इतनी तेज दौड़, पर दूसरी तरफ अनिवार्य भौतिक आवश्यकताओं से भी बहुसंख्या को वंचित रखा जाता है। मनुष्य की मामूली भौतिक आवश्यकताएं भी, समाज-दोष के कारण, पूरी नहीं हो सकती तो नैतिकता की आचरण-वृद्धि का आग्रह भी समाज नहीं रख सकता। मनुष्य का जीवन धर्म विचार पर टिका है, परंतु मनुष्य का शरीर तो भौतिक आवश्यकताओं पर आधारित है। परिमित मात्रा में भी यदि आप उनकी पूर्ति नहीं करेंगे तो उसका ऐसा परिणाम होने ही वाला है। अत आज आवश्यकता इस बात की है कि समाज में हर स्तर पर जो शोषण चल रहा है, उसे बंद करना होगा और उस शोषण को बंद करने के लिए समाज रचना बदलनी होगी। उसके लिए, एक के सुख में दूसरे का अकल्याण अनिवार्य है, इस विचार भ्रम को ही छोड़ना होगा। वस्तुतः एक के सुख में दूसरे को दुःख हो ही नहीं सकता, क्योंकि फिर वह सच्चा सुख नहीं माना जा सकेगा। अमृत-कलश में से आप अमृत भी उड़ेलें और विष भी, यह कैसे मुमकिन हो सकता है? एक ही वस्तु की परस्पर-विरोधी भूमिकाएं नहीं हो सकतीं। अत व्रात तो हमें सबके सुख की ही सोचनी होगी। समाज का मूलाधार व्यक्ति है, और व्यक्ति का मूलाधार उसका जीवन। ऐसे परस्पर-सग्रथित अवयवों में ही जब घातक संघर्ष शुरू होता है, तभी अनैतिकता का प्रसार होता है। नैतिकता की रक्षा के लिए इसी संघर्ष को हमें टालना है, और उसके लिए अधिक-से-अधिक का नहीं बल्कि सभी के सुख का वास्तविक स्वरूप, सर्वहित याने सर्वोदय हमारी बुनियाद होगी, तभी नैतिकता को पनपने का अवसर मिलेगा। एक तरफ नैतिकता की प्रतिष्ठा तो कायम रहे, पर दूसरी तरफ नैतिकता गिरती भी जाय, यह उचित नहीं है। नैतिकता की प्रतिष्ठा और उसकी जरूरतें अगर अनर्थकारी स्थित्यंतरों के बावजूद समाज और व्यक्ति के हितार्थ आवश्यक हैं तो नैतिकता व्यापक प्रमाण पर नष्ट हो नहीं सकती। और जबतक नैतिक व्यवहारों के पीछे धर्म-विचार का पीठबल कायम है, तबतक नैतिकता गिर नहीं सकती। एक ओर धर्म-विचार का शाश्वत आधार और दूसरी ओर शोषण-रहित समाज के द्वारा जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं की सहज पूर्ति, ये दोनों मिल कर ही सर्वसाधारण के बीच नैतिकता की अभिवृद्धि कर सकते हैं और आज आवश्यकता सर्वसाधारण के बीच नैतिकता के मूल्यों को तेजस्वी बनाये रखने की ही है।

—[ऑल इंडिया रेडियो, नागपुर के सौजन्य से]

●

रवीन्द्रनाथ से जब किसी ने पूछा कि आपने कोई महाकाव्य तो लिखा नहीं, फिर आप महाकवि कैसे हुए? तो उन्होंने जिस छन्दोबद्ध भाषा में इस प्रश्न का उत्तर दिया, उसका भावार्थ यह है—'मैं चाहता था कि महाकाव्य लिखूं; पर जब मैंने इसकी चेष्टा की तो मेरा वह महाकाव्य देवी सरस्वती के नूपुरों से टकरा कर चूर-चूर हो गया और वही शत-शत गीतों के रूप में बिखर गया।'

—आरसीप्रसाद सिंह

●

दार्जिलिंग-यात्रा का एक संस्मरण

कन्हैयालाल मिडा

प्राकृतिक सौन्दर्य और शुद्ध तथा स्वास्थ्यकर जलवायु के लिहाज से दार्जिलिंग प्रसिद्ध स्थान है। दार्जिलिंग के मनोहर प्राकृतिक दृश्यों की विशेषता का गुणगान संसार के नामी-नामी स्थानों की स्तुत्यावली में है। हिमाच्छादित निर्झरों की प्रियता और प्रकृति-नटी के सुन्दर रंगमंच की कहानी का वर्णन लिखने को जी तो करता है, परन्तु जैसे स्वाद का वर्णन लेखनी से परे की चीज है वैसे ही प्राकृतिक छटा का चित्रण भी वर्णनातीत है।

सिलिगुडी से कुछ ही मील परे गोलाकार घूमती हुई सड़क का विचित्र दृश्य नवागन्तुकों के लिए कौतूहल का विषय बन जाता है। वृक्षों की सिलसिलेवार कतार, पुष्पों का स्वागत-नृत्य और कल-कल के मधुर नाद से निनादित मदमाते जल-प्रपातों का मस्त गान सुनकर मन-मयूर नाच उठता है। प्रकृति के हरियाले दामन पर आच्छादित श्वेत मोतियों की मणिमाला के आह्लाद से हृत्तन्त्री झंकृत हो उठती है और स्वागत का हार लिए मीठी मुस्कान के साथ प्रेम-हस्त बढ़ाये खड़ी मौन लतिकाओं से मन स्वत: बातें करने लगता है।

उस दिन ऊंची-नीची, टेढ़ी-मेढ़ी सर्पाकार सड़क पर मोटर का भ्रमण नया उल्लास पैदा कर रहा था कि इधर-उधर देखते-देखते दृष्टि ऊपर की ओर गई। देखा, समूचे वृक्ष नई ताजी, एकसी पोशाक पहने वीर सैनिकों की भांति तने-तनाये खड़े हैं। मैंने मानो उनसे पूछा—'आज इतनी तैयारी की क्या बात है?' जैसे उत्तर मिला—'वसंत ऋतु है न! हम सब पार्वतियों के हरे रंग की पोशाक-धारण की बेला है।' तब जगह-जगह पर चमकते पुष्पों की झलक ऐसी लगती थी, मानो चन्द्रमा के इर्द-गिर्द तारे खिले हुए हों। लेकिन जब मोटर दुर्गम पर्वतों पर से गुजरती थी तो पास में खड़े भारी-भारी नगाधिराज की काया देखकर कलेजा डर-सा जाता था। सहसा मन में विचार उठता कि यदि ये दीनबंधु कहीं जरा से बिगड़ जाय तो सारी सैर को अपने अतुलित वेग के नीचे धर दबायगे। यह सोच ही रहा था कि अंदर से आवाज आई—ऐसी अनिष्ट कल्पना न करो, विश्वास रखो। यह देवता आज के नये नहीं, कभी से प्रकृति-नटी के सैनिक बन कर सेवा कर रहे हैं। इन से खिलवाड़ न करो। अपने प्रश्न का उत्तर न चाहो अन्यथा यदि 'हां' या 'ना' के प्रदर्शनार्थ ही कहीं सिर हिला दिया तो जान पर आ बनेगी। मैं मौन रहा। मोटर आगे बढ़ी। जल-प्रपातों में बराबरी की होड़ लगी हुई थी। एक से दूसरा सुन्दरता में आगे बढ़ कर बाजी मारना चाहता था। तीव्र-गति से बहते हुए सुन्दर स्रोतों का स्वच्छ-उज्ज्वल नीर दृष्टिगोचर न होकर ऐसा प्रतीत होता था मानो मोतियों का झरना बह रहा है। कई जल-प्रपातों का दृश्य देखकर तो ऐसा जी करता था कि यहीं बैठा रहूं और जीवन के शेषांश को प्रकृति-नटी के इन सहचरों की सुखद वीथियों में ही बिताऊं। प्रकृति के चमत्कार विचित्र होते हैं। इन दृश्यों का दर्शन कराते हुए मोटर आगे बढ़ रही थी कि यकायक एक ओर से कुहरा उमड़ पड़ा और समूची हरियाली को सफेद मखमली चद्दर से ढक दिया। रास्ता भी नजर नहीं आता था। मोटर ड्राइवर बड़ी सावधानी से आगे बढ़ रहा था। मन में पछतावा-सा हुआ मानो किसी ने कुछ देकर छीन लिया हो। मैंने कहा—'कुहरा देव, कृपा करो। इतनी क्रूर दृष्टि क्यों डाल रहे हो? जरा सोचो, कितनी दूर से आया हूं। मुझे भी कुछ देख लेने दो।' पास के कोने में खड़े पुष्प-बन्धु मुस्करा उठे। बोले, 'यही तो दार्जिलिंग है—छिन में धूप, छिन में पानी, छिन में कुहरा और छिन में घनघोर घटा। क्या यह प्राकृतिक दृश्यों की विचित्रता के दृश्य नहीं हैं? जरा आगे जाकर देखोगे तो कोहरे का दर्शन न पाओगे और इसको देखने को तरसोगे।' वास्तव में कुछ ही क्षण के बाद देखा तो अंधेरी-सी रात समाप्त हो गई थी और चांदनी छिटक गई थी। दूर परे एक स्वर्णिम लालिमा लिये चमकता-सा श्वेत टीला नजर आया। यही है हिमालय की हिमाच्छादित उत्तुंग-शृंखला। इसके विचित्र दृश्य वस

देखते ही बनते हैं। प्रातःकाल भगवान भास्कर के उदय होने के पूर्व प्राथमिक रश्मियों के प्रतिक्षण परिवर्तित रंग बिरंगे प्रतिबिम्ब ऐसा कमाल दिखाते हैं, मानो विभिन्न रंगों से आभूषित प्रकृति नटी अपनी सुंदरतम कला का अनुपम नृत्य कर रही हो। ऐसा लगा जैसे भगवान गिरिराज हिमालय की हिमाच्छादित शिखाओं को कभी स्वर्णिम, कभी विविध रंगों में रंजित कर सौंदर्य-श्री का उद्घाटन समारोह कर रहे हैं। दार्जिलिंग के ऊंचे शिखरों पर जाकर रात्रि के समय देखने से कम आनन्द आ जाता है और उन मोहिनी दृश्यों को देख देख कर आगे चलने को जी नहीं चाहता। 'ओब्ज़र्वेटरी हिल' जा कर देखने से ऐसा प्रतीत होता है मानो व्योम-देवता चन्द्र भगवान् अपने तारागणों के समूह को लेकर भूमण्डल पर विश्राम करने आये हुए हैं। वह चमचमाता प्रकाश-समूह बिजली-बत्तियों का नजारा है जिसे आप आकाश के तारों का आगमन समझे हुए हैं। दार्जिलिंग का प्राकृतिक सौंदर्य क्या है, यह तो दार्जिलिंग आ कर ही अनुभव किया जा सकता है परन्तु यहां के प्राकृतिक प्रदर्शन को लक्षित कर इतना तो माना ही जा सकता है कि दार्जिलिंग वास्तव में भारतीय पर्वतों की रानी है।

●

गद्य-गीत

म० जा० पुरवार

नाथ! तुमने मुझे यह चिर-विरह का कठोर शासन क्यों दिया!

माधवी पुष्पों का मधुर मकरंद तथा मतवाला परिमल अपने पापी हाथों से मैंने कभी नहीं लूटा, और न कभी मधुमक्खियों के मधुधन का अपहरण किया।

न कभी लांछित चंद्रमा की हंसी उड़ाई और न कभी अबोध बालकों की मधुर तथा तुतलाती वाणी का उपहास किया।

कांटे और फूल, सुख और दुख—इन तुम्हारे उपहारों को प्रसन्नता से सदैव स्वीकार करता आ रहा हूं मैं।

तब भी हे राजाओं के राजन्! तुमने मुझे यह चिर विरह का कड़े-से-कड़ा दण्ड क्यों दे रखा है!

सृष्टि की सुन्दरता अपने उष्ण निःश्वास से और वासंतिक यौवन अपनी वेदना भरी कराह से मैंने न कभी झुलसाया।

आनंद सागर में अपने खारे आंसू मिलाकर मैंने उसे क्षारयुक्त और अरुचिकर नहीं किया।

निशीथिनी के उर के जलते तारक गण अपनी विषाक्त फूंक से मैंने कभी उकसाये नहीं।

रमणीय उषा के रंगीन झरोखे से झांकने वाले बाल-अरुण पर दुःखघन का आवरण डाल, उसको विश्व की आतुर दृष्टि से मैंने कभी ओझल नहीं किया।

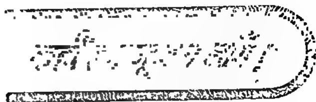
तब हे राजाधिराज! तुमने यह चिर विरह का अतिकठोर शासन क्यों दिया!

मेरी जीवन बांसुरी को मधुर बनाने की अतुल चेतन शक्ति तुम्हारी फूंक में है। तुम्हारे नेत्रों के उज्ज्वल प्रकाश में, मेरी तनुलता तेजोमय करने की दिव्य शक्ति विराजमान है।

तुम्हारे तरुण स्वर्गीय करों में अगणित वरदान मचल रहे हैं, किन्तु तुम्हारी चरण धूलि के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु की याचना मैंने तुमसे नहीं की।

तब हे महा दयाघन! तुमने मुझे यह चिर-विरह का अति कठोर शासन क्यों दिया!

●



श्री गणेशशंकर विद्यार्थी

[पुण्यतिथि—२५ मार्च]

२५ मार्च, सन् १९५३ ई०, को श्री गणेशशंकर विद्यार्थी की निधन-तिथि मनायी जा रही है। सन् १९३४ ई० की इसी तारीख को हिन्दू-मुस्लिम दंग में बीच-बचाव करते हुए श्री गणेशशंकर विद्यार्थी ने कानपुर में अपनी जान दे दी थी।

श्री विद्यार्थी आर्यसमाजी थे, और "प्रताप", कानपुर, के संस्थापक-व्यवस्थापक-सम्पादक थे।

वर्षी मनाने का महत्व यह है कि श्री विद्यार्थी आर्य-समाजी होते हुए हिन्दू ही नहीं थे, पक्के राष्ट्रीय विचार के थे। लेकिन कानपुर के दंगाइयों ने उनकी जान ले ली। गाधीजी को शांति-अहिंसा का विश्व-उपासक जानते हुए भी लोगों ने गोली मार दी। स्वामी श्रद्धानंद को भी किसीने अकारण ही गोली मार दी थी। वर्षी का महत्व जीवित व्यक्तियों के लिए यही है कि यद्यपि समाज बर्बर है, फिर भी बर्बरता को कम करने वाले, सहने वाले भी ईसा-मसीह और गौतम बुद्ध की तरह अनेकों हैं। और हर काल में इस देश में होते रहे हैं। हम लोग आज गाधीजी की हत्या करके भी सत्य-अहिंसा की रट लगा रहे हैं। उससे अधिक आवश्यकता है, सत्य-अहिंसा का महत्व मनुष्य-समाज के लिये कितना है इसको समझना। जहा कोई व्यक्ति अधिक सहनशील और शान्तिप्रिय हुआ नहीं कि समाज में लोग उसे मार डालने के लिये सोचने लगते हैं। और फिर शोक इस तरह मनाते हैं कि यह तो एक आदमी ने हत्या की, हम बाकी सभी सभ्य हैं। सभ्य होने का आदर्श अपने दैनिक कार्य द्वारा प्रकट करना चाहिये, न कि वहम के द्वारा। गाधीजी इसी बात पर जोर देते थे कि सत्य-अहिंसा सोचने और कल्पना जगत की ही चीज नहीं है, यह दैनिक सभ्य जीवन की आवश्यकता है। सत्य और अहिंसा के बिना मनुष्य बर्बर है।

हम जहा युद्ध के कारणों को रोकने के लिये अंत-र्राष्ट्रीय स्थलों में भाषण देते हैं, और राष्ट्र की ओर से कार्रवाई करते हैं, वहा अधिक आवश्यकता है कि हम अपने राष्ट्र के भीतर ही युद्ध दूर करने का उपाय करें। आर्यसमाज ने सबको आर्य बनाने का संकल्प किया, ताकि भारत में सब आर्य हो जायें, लेकिन "हरिजन" और "स्वजन" का भेद हिन्दू-समाज से गया नहीं है। फिर अफ्रीका या लका को जाती-भेद करने का दोषी ठहराने का अर्थ है वहम करना, और सत्य को छिपाना। दान करना लोग अपने ही से सीखते हैं। आप दान न करें तो दूसरे को क्यों दान करने के लिये कहें। श्री विद्यार्थी इस सामाजिक जीवन की एकता को ही सर्वोच्च महत्व देते थे और इसी के लिये उन्होंने अपनी जान गवायी। 'प्रताप' कार्यालय में सबसे कठोर परिश्रम करने वाले श्री विद्यार्थी ही थे, और सबसे अधिक सहनशील और विनम्र भी वे ही थे। इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने घर में स्वयं युद्ध के कारणों को रोकें, फिर दुनिया की पचायत करें।

२५ मार्च की तारीख प्रति वर्ष यह याद दिलाने आती है कि स्वामी श्रद्धानंद, श्री विद्यार्थी और गाधीजी ने जिन नैतिक कुरीतियों को दूर करने के लिये प्राण दिये, उन्हें हम आज भी दूर करने के लिये तैयार क्यों नहीं हो रहे हैं, और कैसे फिर भी सभ्य कहला रहे हैं। हमें उन्हीं दोषों को दूर करने के लिये स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी की निधन-तिथि पर शपथ लेनी चाहिये। —विश्वनाथ झा

पुस्तक बहुत ही हृदयग्राही, रोचक और प्राणवान चित्रों की मंजूषा है। हम लेखक का अभिनन्दन करते हैं।

अच्छी हिन्दी : लेखक–किशोरीदास वाजपेयी : प्रकाशक–हिमालय एजेंसी, कनखल, पृष्ठ लगभग १८०, मूल्य २॥)

वाजपेयीजी यद्यपि ऊपर से कुछ रूखे जान पड़ते हैं पर वे धुन के पक्के और ठोस व्यक्ति हैं। उन्होंने हिन्दी भाषा को सही-सही रूप-रेखा देने में अनथक प्रयत्न किये हैं। और समझदारी के साथ किये हैं। हिन्दी–निरुक्त, राष्ट्रभाषा का प्रथम व्याकरण, ब्रजभाषा का व्याकरण, अच्छी हिन्दी का नमूना आदि कुछ पुस्तकें विद्वानों में समादरणीय हैं और नवागन्तुकों के लिये पथ-निर्देशक। प्रस्तुत पुस्तक इस दृष्टि से बहुत उपयोगी है। या यह गहरे व्यंग से आरम्भ होती है। हम वे मुख से यह सुन कर कि मानसरोवर में घोंघे नहीं होते बगले ही ही ही कर के हँस पड़ते हैं पर वाजपेयीजी विश्वास रख हम इस पुस्तक पर नहीं हँस सकते। हम तो इसे पथ-प्रदर्शिका के रूप में मानते हैं। 'अच्छी भाषा कैसी होती है' 'हिन्दी का स्वरूप-गठन' तो सुन्दर परिच्छेद हैं ही, तीसरा अध्याय बहुत ही महत्व पूर्ण है। चौथा अध्याय प्रत्येक साहित्यिक के लिये अध्ययन की वस्तु है।

पुस्तक बहुत ही ज्ञान-वर्धक, उपयोगी और महत्वपूर्ण है। हिन्दी में ऐसी पुस्तकों का अभाव है। इसका जितना प्रचार हो थोड़ा।

एशिया का आधुनिक इतिहास (प्रथम भाग) लेखक–डा० सत्यकेतु विद्यालंकार, प्रकाशक–सरस्वती सदन, मसूरी। पृष्ठ ५९२, मूल्य ९॥)

जीवन-साहित्य के पाठकों को याद होगा कि इन्हीं पृष्ठों में हम दो वर्ष पूर्व डाक्टर साहब के 'यूरोप के आधुनिक इतिहास' की चर्चा कर चुके हैं। एशिया का यह इतिहास लिख कर उन्होंने एक बड़ी कमी को पूरा किया है। एशिया का आधुनिक इतिहास पीड़ित मानवता का, अन्धविश्वास का, गुलामी का और फिर संघर्षशील स्वतन्त्रता का इतिहास है। इन पृष्ठों में इस मर्मान्तक और उत्साहवर्धक कथा का विद्वान लेखक ने बड़ी कुशलता से वर्णन किया है। वह कुशलता उनके परिश्रम, अध्ययन और पैनी दृष्टि का काफी परिचय देती है।

पुस्तक में भारत, लंका, ईरान, अरब देश और अफगानिस्तान आदि की चर्चा नहीं है। चीन, जापान, कोरिया, फिलीपीन, इंडोचायना, इंडोनेशिया, थाईलैंड, मलाया, बर्मा, तिब्बत, मंगोलिया, सिंकियांग ही इसमें आ पाये हैं। उनमें भी चीन, जापान ने अधिक स्थान ले लिया है जो स्वाभाविक ही है।

लेखक का दृष्टिकोण विशुद्ध ऐतिहासिक रहा है। शासकों की सूचि देना और प्रशस्ति करना उसे प्रिय नहीं है। राजनीति के अलावा धर्म और कला आदि को भी लेखक ने पूरा स्थान दिया है। फिर एशिया में उगते हुए अणुवाद को उसने सराहा ही नहीं है, उसका विश्लेषण करके उसे प्रोत्साहन भी दिया है। तटस्थ विश्लेषण, निष्पक्ष दृष्टिकोण और उदारता को लेखक ने कहीं भी भुलाने की चेष्टा नहीं की फिर भी कहीं-कहीं उसने जो सत्याग्रह लिया है और जोर से किया है, वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विरुद्ध पड़ता है। लेखक स्वयं एशियावासी है यह भी जाने-अनजाने वह नहीं भूला है। भाषा में कुछ विस्तार जान पड़ता है, पर एक तो घटनाओं की बहुलता दूसरे दुरूहता से बचने की चेष्टा के कारण ऐसा होना स्वाभाविक था। तथ्य-सम्बन्धी कुछ कमियां हैं। शब्दों में भी भूलें हैं पर सबसे बड़ी कमी नक्शों की है। इतनी बड़ी पुस्तक में अन्त में दो नक्शे दे देना उपहासास्पद लगता है। न जाने ऐसा कैसे हो सका।

इस बात को छोड़ कर पुस्तक बहुत ही उपयोगी, सुन्दर और ज्ञानप्रद है। इसे पढ़ने वाले भारतीय छात्र अपने पड़ोसियों को समझ कर अपना दृष्टिकोण उदार बनायेंगे, ऐसी सामग्री से यह इतिहास ओतप्रोत है।

कवि आरसी की काव्य साधना : लेखक–प्रताप साहित्यालंकार : प्रकाशक–तारा मंडल, ४७ जकरिया स्ट्रीट, कलकत्ता : पृष्ठ संख्या १५२ : मूल्य २॥)

प्रस्तुत पुस्तक कवि आरसी के काव्य साहित्य पर आलोचनात्मक ग्रन्थ है। यह निश्चित है कि लेखक ने प्रयाप्त अध्ययन के उपरान्त इस पुस्तक पर अपनी लेखनी उठाई दीखती है। वास्तव में ही यह एक सराहनीय प्रयत्न

है। हमें अपने साहित्यकारों को जनता के सम्मुख लाना चाहिए। आलोचक का कार्य बड़ा दुरूह है। निष्पक्ष आलोचना साहित्य की आत्मा है और प्रताप साहित्यालंकार ने अपनी लघु भूमिका में इसे निभाने के लिए कहा है।

लेखक कवि की इतर कवियों से तुलना करता हुआ अपने लक्ष्य तक पहुंचा है। भाषा सुसस्कृत और प्रवाहमयी है। कवि के जीवन और काव्य पर इस पुस्तक के द्वारा काफी प्रकाश पड़ा है। कवि के पूरे काव्य-साहित्य का अध्ययन न कर सकने वाले इस पुस्तक को पढ़ कर उसके काव्य की चुनी हुई पंक्तियों का आनन्द उठा सकते है। पुस्तक का गैट अप व छपाई सुन्दर है।

'अज्ञातयात्री'

सहयोगियों के विशेषांक

मासिक सम्पदा ने अपना नववर्षांक 'योजना-अंक' के रूप में निकाला है। पृष्ठ १०० के लगभग हैं और मूल्य केवल १) है। इसके सम्पादक श्री कृष्णचन्द्र विद्यालंकार हैं। प्राप्ति स्थान है—अशोक-प्रकाशन-मन्दिर, दिल्ली।

प्रस्तुत विशेषांक का आज बहुत महत्व है। देश के सामने आज जो महत्वपूर्ण प्रश्न हैं उनमें भावी विकास योजनाओं का प्रश्न हमारे जीवन-मरण का प्रश्न है। वर्तमान सरकार अपनी पंचवर्षीय योजना के द्वारा देश की भावी समृद्धि का विश्वास दिलाना चाहती है। आज जहां भी देखो उसी की चर्चा है। उसी पर आज देश का भविष्य निर्भर है। उसी योजना की विशद चर्चा इस विशेषांक में है। जिस संयम, निष्पक्षता और गम्भीरता से सम्पादक ने इस अंक की सामग्री हमारे सामने प्रस्तुत की है वह सचमुच प्रशंसनीय है। वस्तुतः इस योजना का अध्ययन पार्टी बाजी से उठ कर ही होना चाहिए क्योंकि पार्टी का प्रश्न दृष्टिको धुंधला कर देता है। विद्वान सम्पादक ने योजना के विकास और उसकी क्षमता पर अधिकारी व्यक्तियों के लेख इसमें दिये हैं। जो विरोधी हैं उनका दृष्टिकोण भी उसी निष्पक्षता से उपस्थित किया है। पूंजीपति, साम्यवादी, गांधीवादी, समाजवादी, सरकारी लोग, अर्थशास्त्री सभी की बात पाठक इसमें पढ़ सकता है और अपनी राय बना सकता है। यह अंक पंचवर्षीय योजना को समझने की कुंजी है। योजना का निर्माण करने वालों के लेख तो इसमें हैं ही प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डा० वी० के० आर० वी० राव, जनसंघी नेता डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी तथा पूंजीपति श्री पदमपत सिंहानिया के लेख भी दिये गए हैं।

इसके अतिरिक्त जो ज्ञातव्य सामग्री इसमें है वह बहुत उपादेय है।

'सुशील'

(पृष्ठ ११७ का शेष)

सरकार को मदद करनी ही होगी। सरकार से तो सहायता ले लेनी चाहिए पर उसीके भरोसे बैठ रहने से काम नहीं चलेगा। जनता का सहयोग भी अपेक्षित होना चाहिए। हिन्दी के कुछ गण्यमान्य साहित्यकार झोली लेकर निकल पड़े तो कोई कारण नहीं कि अच्छी राशि इकट्ठी न की जा सके। इस प्रकार सरकार और जनता, दोनों के सहयोग से यह कार्य किया जायगा और उसके पीछे व्यक्ति विशेष की महत्वकांक्षा अथवा उखाड़-पछाड़ की राजनीति न रहेगी तो यह संस्था आज की एक बहुत बड़ी आवश्यकता की पूर्ति करेगी।

य०

क्या व कैसे ?

सर्वोदय-सम्मेलन का अधिवेशन

सर्वोदय सम्मेलन का पाचवाँ वार्षिक अधिवेशन बिहार के चाडिल नामक स्थान पर मार्च की ७, ८, ९ तारीखो में होने जा रहा है। पाठको को ज्ञात ही है कि १४ सितम्बर १९५२ से भूदान-यज्ञ के प्रवर्तक आचार्य विनोबा बिहार मे अपने अनुष्ठान के सिलसिले में पैदल भ्रमण कर रहे है। अकस्मात् चाडिल में वह बीमार पड गये थे और अब बीमारी से मुक्त होकर वही विश्राम कर रहे है। सम्मेलन के लिये इस स्थान का चुनाव बहुत कुछ विनोबाजी की सुविधा के कारण किया गया है।

विनोबाजी की बीमारी ने बहुत से लोगो का ध्यान चाडिल की ओर आकर्षित कर दिया है और उनमे से बहुतो में सक्रिय कर्तव्य-निष्ठा उत्पन्न कर दी है। अब इस समाचार से कि राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद भी सम्मेलन में सम्मिलित होने जा रहे है, चाडिल का आकर्षण और अधिक बढ गया है। मालूम हुआ है कि स्वागत-समिति दस हजार व्यक्तियों के ठहरने की व्यवस्था कर रही है। काग्रेस के अधिवेशनो की भाति सर्वोदय सम्मेलन में भी देश के प्रत्येक कोने से लोग आते है। इस वर्ष लोगो के अधिक संख्या में आने की आशा है।

'सर्वोदय–समाज' एक 'विदेह' सस्था है। उसका न कोई लम्बा-चौडा विधान है, न उसके भारी-भरकम नियम-उपनियम। न वह कोई बडी जिम्मेदारी के प्रस्ताव ही पास करती है। गाधीजी के भाईचारे में विश्वास रखने वाला प्रत्येक वयस्क व्यक्ति उसका 'सेवक' बन सकता है। वस्तुत समाज का उद्देश्य एक प्रकार की 'हवा' पैदा करना है। फिर भी जब इतने व्यक्ति पैसा और शक्ति खर्च करके वहा एकत्र होते है तो सर्वोदय-समाज के अधिकारियों के लिए आवश्यक हो जाता है कि वे उस सगठित शक्ति का उपयोग करे। हमारी दृष्टि से वह उपयोग निम्न प्रकार किया जा सकता है —

१ इस समय देश के सामने सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न भूदान-यज्ञ का है, जिसके लिए विनोबाजी ने प्राणो की बाजी लगा रक्खी है। सर्वोदय-समाज के प्रत्येक सेवक को प्रेरणा दी जाय कि वह प्रतिदिन का कुछ-न-कुछ हिस्सा इस यज्ञ को सफल बनाने में दे। जिनके पास भूमि है, वे भूमि दे। जिनके पास भूमि नहीं है, वे इस प्रकार विचार को वाणी अथवा लेखनी द्वारा प्रसारित करे और तत्सबंधी साहित्य का प्रचार करे।

२. गाधीजी के सिद्धान्तो और उनके साहित्य को आज उपेक्षा की दृष्टि से देखा जा रहा है। प्रत्येक सेवक को आदेश मिलना चाहिए कि वह गाधीजी, विनोबाजी आदि चितको के साहित्य का न केवल स्वय ही अध्ययन करें, अपितु दूसरे लोगो को भी अध्ययन के लिए प्रेरित करें। प्रत्येक मास में कुछ-न-कुछ मूल्य की पुस्तके बेचना उनके लिए अनिवार्य होना चाहिए।

३. गाधीजी के १८ सूत्री कार्यक्रम की उपयोगिता आज भी बनी हुई है और यह निश्चय है कि बिना उसको बल प्रदान किये देश मजबूत नही हो सकता। प्रत्येक सेवक के लिए आवश्यक हो कि किसी-न-किसी रचनात्मक कार्यक्रम में, अपनी सामर्थ्य और शक्ति के अनुसार योग दें।

४. राष्ट्र को कमजोर करने वाली अनेक शक्तिया आज देश में, दुर्भाग्य से, अपना काम कर रही है। सर्वोदय–समाज के सेवको में वैसी शक्तियों से दृढतापूर्वक बचने की भावना का उदय करना चाहिए।

५. प्रत्येक सदस्य को आदेश मिलना चाहिए कि वह समाज-सेवा का थोडा बहुत काम प्रतिदिन करे और अपने कार्य का सक्षिप्त विवरण सर्वोदय-सम्मेलन के कार्यालय को भेजे।

ऐसे और बहुत से कार्यक्रम सोचे जा सकते है और उनके लिए सेवको को तैयार किया जा सकता है।

सर्वोदय-समाज के कर्णधारों से हम आशा करेंगे कि वे सम्मेलन को तीन दिन का 'मेला' न बना कर, वहां एकत्र होने वाली जन-शक्ति के उपयोग के लिए अच्छी तरह से सोच विचार कर कोई-न-कोई व्यावहारिक कार्यक्रम निश्चित करें। राष्ट्र जैसी हालत से गुजर रहा है, उसमें मेलों की जरूरत नहीं है। कुछ ठोस कदम उठना चाहिए। सर्वोदय सम्मेलन से लोगों को बड़ी-बड़ी आशाएं हैं और यदि वह अपने सेवकों की संगठित शक्ति के द्वारा लोक-हित का कोई ठोस काम न कर सका तो लोग उसमें भी वैसे ही निराश और उदासीन हो जायेंगे, जैसे कि कांग्रेस से।

खादी के प्रोत्साहन के लिए महत्वपूर्ण कदम

अभी हाल में दिल्ली में खादी बोर्ड की मीटिंग हुई थी, जिसमें निश्चय हुआ है कि खादी के खरीदारों को खादी पर तीन आना प्रति रुपया कमीशन सरकार की ओर से दिया जायगा। चूंकि ३१ मार्च को सरकारी वर्ष समाप्त हो जाता है, इसलिए चालू बजट में से पच्चीस लाख रुपये इस काम के लिए अलग निकाल दिये गए हैं। कमीशन की यह रियायत ३१ मार्च तक रक्खी गई है। मालूम हुआ है कि अगले बजट में सरकार खादी के लिए और अधिक गुंजाइश निकालने जा रही है।

सरकार के इस निर्णय का हम स्वागत करते हैं। वस्तुतः यह निर्णय बहुत पहले हो जाना चाहिए था। आज खादी के विभिन्न केन्द्रों में लगभग पचहत्तर लाख रुपये की खादी का इकट्ठा हो जाना इस बात का सूचक है कि लोगों के साथ सरकार भी उस ओर से उदासीन रही है। अपनी सरकार के होते हुए भी ऐसा धंधा, जो लाखों व्यक्तियों को रोजी दे रहा है, ठप हो जाय या आर्थिक कठिनाई के कारण उसकी प्रगति रुक जाय तो उसका अर्थ सिवाय इसके और क्या हो सकता है कि साधन होते हुए भी सरकार उस धंधे को प्रोत्साहन नहीं देना चाहती? समय रहते सरकार ने अपनी जिम्मेदारी को अनुभव करके इस दिशा में कदम उठाया, इससे न केवल खादी का काम करने वाले कार्यकर्त्ताओं को प्रेरणा मिलेगी, अपितु खादी के प्रचार और प्रसार में भी सहायता मिलेगी।

खादी के प्रति लोगों का विश्वास उस समय दृढ़ होगा, जब वे उसके अर्थशास्त्र तथा उसमें निहित भावना को समझेंगे और यह कार्य खादी के जन्मदाता और उन्नायकों के साहित्य को घर-घर पहुंचा कर ही किया जा सकता है। हमारा ख्याल है कि सरकार का अगला कदम अब ऐसे साहित्य को प्रोत्साहन देने का होना चाहिए। खादी-बोर्ड की भांति वह 'गांधी-साहित्य बोर्ड' या अन्य संगठन बना कर ऐसे साहित्य का चुनाव करा ले जिसका व्यापक प्रसार लोकहित की दृष्टि से आवश्यक है। फिर वैसे साहित्य को सहायता देकर इतना सस्ता करा दे कि उसकी लाखों प्रतियां आसानी से बिक जायें।

क्या हम आशा करें कि सरकार इस ओर ध्यान देगी?

साहित्य का उपेक्षित अंग

हमारे साहित्य में सबसे अधिक उपेक्षा रंगमंच की हुई है। बचपन में हमने एल्फ्रेड तथा दो एक अन्य कंपनियों के नाटक देखे थे, लेकिन ज्यों ज्यों सिनेमा का प्रचार बढ़ता गया, रंगमंच की उत्तरोत्तर उपेक्षा होती गई। परिणाम-स्वरूप आज हमारे यहां रंगमंच का एक प्रकार से अभाव-सा है। बंगला, मराठी आदि भाषाओं में उस दिशा में कुछ प्रयत्न होता रहा है,पर उसे नगण्य ही कहना चाहिए।

इससे भारतीय भाषाओं, विशेषकर हिन्दी की प्रगति को बड़ा धक्का लगा है। हमें लज्जापूर्वक स्वीकार करना पड़ता है कि फिल्मों ने हिन्दी के मानदण्ड को ऊपर उठाने के बजाय नीचे गिराया है। सौ में से एक भी फिल्म ऐसी नहीं मिलेगी, जिससे साहित्य या लोकरुचि की वृद्धि में सहायता मिलती हो। फिल्मों की कहानियां, भाषा, संगीत, अभिनय, सब जन साधारण के स्तर को गिराने वाले हैं। हिन्दी में मुश्किल से आधी दर्जन भी ऐसी फिल्में नहीं है, जिन्हें लेकर यह कहा जा सके कि उनसे हिन्दी का नाम और मान ऊंचा हुआ है। फिल्म-व्यवसाय कमाई का धंधा बन गया है।

हाल में इस दिशा में हमने एक अभिनव प्रयास देखा तो हमें बड़ी प्रसन्नता हुई। कलकत्ते के 'तरुण संघ' के तत्त्वावधान में श्री जयशंकर 'प्रसाद' की लोकप्रिय पुस्तक 'कामायनी' का भाव-नृत्य दिखाया गया। प्रदर्शन करने वाले सभी

पात्र सुशिक्षित थे और उनके अभिनय को देखकर हमें लगा कि सचमुच उससे हिन्दी का गौरव बढा। मनु और श्रद्धा के अभिनय तो कमाल के थे। दर्शकों में हिन्दी के अतिरिक्त बंगला, पजाबी, सिंधी आदि अनेक भाषाओं के सम्मानित स्त्री-पुरुष थे और उन्होंने अनुभव किया कि हिन्दी में भी उच्चकोटि की सामग्री उपलब्ध है। कलकत्ता विश्वविद्यालय के वाइस-चासलर ने अपने उपसहारात्मक भाषण में ऐसी भावना व्यक्त भी की।

हम चाहते हैं कि हमारे साहित्य में मच की विधिवत् व्यवस्था हो। हम जानते हैं कि लोकरुचि को गिराने वाले सस्ते सिनेमा जबतक मौजूद हैं, रग मच बनाना सरल नहीं है, फिर भी उस दिशा में हमें चुप होकर नहीं बैठ जाना चाहिए। हिंदी तथा अन्य भाषाओं के साहित्य में से चुनी हुई रचनाओं को इस ढग से रंग मच पर लाना चाहिए कि जिससे लोगों में साहित्य के लिए अभिरुचि उत्पन्न हो। उससे दो लाभ होंगे एक तो लोगो की यह भ्रामक धारणा दूर हो जायगी कि हिन्दी-साहित्य में कुछ नहीं है, दूसरे उससे भ्रष्ट फिल्मों के विरुद्ध वातावरण तैयार होगा।

दिल्ली में हिन्दी-भवन की आवश्यकता

दिल्ली भारत की राजधानी है। राजनैतिक और सास्कृतिक दृष्टि से वह भारत ही की नहीं, एशिया के देशों का भी महत्वपूर्ण केन्द्र बन गई है। एशियाई देशों के अतिरिक्त इग्लैंड, अमरीका आदि देशों के विशिष्ट लोग भी आए-दिन यहा आते रहते हैं। इतना महत्वपूर्ण केन्द्र होते हुए भी हिन्दी की अभिवृद्धि के लिए वहा कोई भी ऐसी केन्द्रीय संस्था नहीं है, जो हिन्दी का हितचिंतन कर के बिखरी शक्तियों को एक सूत्र में पिरो सके। प्रयाग के हिन्दी साहित्य सम्मेलन से वैसी आशा थी, लेकिन वह सत्तात्मक राजनीति के चक्कर में पड़ कर लोगो का विश्वास खो बैठा। उसके अलावा नागरी प्रचारिणी सभा, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा आदि कुछ सस्थाए हैं, जो उपयोगी कार्य कर रही हैं; लेकिन उनके क्षेत्र सीमित हैं। आवश्यकता एक ऐसी सस्था की है, जो साहित्य के क्षेत्र में समूचे देश का प्रतिनिधित्व कर सके और वैसी सस्था दिल्ली में ही हो सकती है। वहा समय-समय पर देश के विभिन्न भागो से ही नहीं, विदेशों से भी उच्चकोटि के राजनेता, साहित्यकार, अर्थशास्त्री, दर्शन-शास्त्री आदि-आदि आते रहते हैं और उनकी उपस्थिति का लाभ वहा की किसी भी सस्था को सहज ही मिल सकता है।

दिल्ली में 'हिन्दी-भवन' बनाने का प. बनारसीदास जी चतुर्वेदी का पुराना स्वप्न है। उन्होंने अनेक बार इस सबंध में लिखा भी है। पिछले दिनों डा धीरेन्द्र वर्मा, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, श्री जैनेन्द्रकुमार आदि की उपस्थिति में इस विषय पर चर्चा भी हुई थी और सबने एकमत से 'हिन्दी-भवन' की आवश्यकता को स्वीकार किया था।

हम मानते हैं कि हिन्दी की अभिवृद्धि के लिए यह कार्य शीघ्रातिशीघ्र हो जाना चाहिए। किसी उपयुक्त स्थान पर एक भवन का निर्माण किया जाय, जिसमें बाहर से आने वाले साहित्यकारों के ठहरने की व्यवस्था भी हो। भवन में एक विशाल पुस्तकालय का भी होना जरूरी है। यह सस्था समय-समय पर विद्वानों को इकट्ठा करके साहित्य-जगत् की समस्याओं पर विचार कर सकती है और उसकी वृद्धि के नये-नये मार्ग खोज सकती है। करोड़ो अहिन्दी-भाषियो को हिन्दी सिखाने का कार्य भी कम महत्व का नहीं है। राष्ट्र भाषा के प्रचार के लिए विद्वानो के भाषणो की व्यवस्था की जा सकती है। इतना ही नहीं, वह यह भी देख सकती है कि हिन्दी में किस प्रकार के साहित्य का अभाव है या साहित्य का कौन-सा अग क्षीण है और उसकी पूर्ति कराने का प्रयत्न कर सकती है। हिन्दी को राष्ट्रभाषा और राजभाषा होने का जो महान् गौरव प्राप्त हुआ है, उससे उसकी जिम्मेदारी काफी बढ गई है।

'हिन्दी-भवन' उपयोगी बने, इसके लिए आवश्यक है कि वह सत्तात्मक या दलगत राजनीति से दूर रहे। आज के युग में यह काम जरा मुश्किल है, लेकिन बिना उसके कोई भी सस्था मजबूत नहीं बन सकती।

हम चाहते हैं कि हिन्दी-भवन के निर्माण का कार्य शुरू होने में अब विलम्ब न हो। दुर्भाग्य से हिन्दी के प्रति केन्द्रीय शिक्षा-विभाग की नीति कुछ उपेक्षापूर्ण रही है; लेकिन हमें विश्वास है कि सगठित रूप से यदि माग की जायगी तो

(शेष पृष्ठ ११४ पर)

'मण्डल' की ओर से

'मण्डल' के कुछ नये प्रकाशन

मण्डल से शीघ्र ही कुछ नये प्रकाशन होने जा रहे हैं। उनमें सब से पहली पुस्तक है 'सन्त सुधासार'। लगभग १२०० पृष्ठ के इस ग्रंथ में हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक और सन्त-साहित्य के मर्मज्ञ श्री वियोगी हरि ने सन्तों की 'बानियों' का संग्रह किया है। 'बानियों' का चुनाव इस ढंग से किया गया है कि उनके द्वारा लेखक ने भक्ति और अध्यात्म की गंगा ही प्रवाहित कर दी है। कठिन शब्दों के अर्थ भी दे दिये हैं। अपने विषय का यह पहला ग्रंथ है और सामान्य पाठकों से लेकर विद्वानों तक, सबके लिए उपयोगी है। इसकी भूमिका सन्त विनोबा ने लिखी है, बड़ी सुन्दर और भावपूर्ण। ग्रंथ छप कर तैयार हो चुका है।

सान गुरुजी की चिर प्रतीक्षित पुस्तक 'भारतीय संस्कृति' के प्रकाशित होने में अब अधिक देर नहीं है। अधिकांश छप चुकी है। इस पुस्तक के द्वारा पाठकों को ज्ञान होगा कि असली भारतीय संस्कृति क्या है। बड़ी ही सरल-सुबोध भाषा में लेखक ने हमारी संस्कृति का प्रतिपादन किया है। सीधे-सादे दृष्टान्त दे-देकर उन्होंने अपनी बात समझाई है।

सुप्रसिद्ध अमरीकी पत्रकार लुई फिशर की लोकप्रिय पुस्तक 'दी लाइफ ऑव महात्मा गांधी' के काफी अंश का हिन्दी में अनुवाद हो चुका है और आशा की जाती है कि यह पुस्तक शीघ्र ही प्रेस में चली जायगी। इस पुस्तक में उन्होंने महात्मा गांधी के जीवन के क्रमिक विकास का तो बखान किया ही है, साथ ही यह भी बताया है कि विदेशियों की दृष्टि में उस महापुरुष का क्या मूल्य था। एक प्रकार से इस पुस्तक को गांधीजी की 'आत्मकथा' का पूरक कह सकते हैं। आत्मकथा सन् १९२२-२३ पर आकर रुक जाती है। यह पुस्तक उनके अंत समय तक के विवरण उपस्थित करती है। पुस्तक रोचक है, ज्ञानवर्द्धक है, भावना से परिपूर्ण है।

श्री महावीर प्रसाद पोद्दार की पुस्तक 'हिमालय की गोद में' पाठकों को शीघ्र ही घर बैठे गंगोत्री और यमुनोत्री की यात्रा करावेगी। इन दोनों तीर्थों की गणना भारत के महान् तीर्थों में की जाती है। पुस्तक में लेखक ने अनेक ज्ञातव्य बातें दी हैं, साथ ही रास्ते में मिलने वाले सुन्दर दृश्यों और व्यक्तियों के रहन-सहन आदि का भी आकर्षक वर्णन किया है। पुस्तक प्रेस में है।

इस वर्ष में अन्य कई पुस्तकें निकालने का विचार है, लेकिन उनमें से तीन पुस्तकें जल्दी ही प्रेस में दी जा रही हैं। पहली है डा. वासुदेवशरण अग्रवाल का निबन्ध-संग्रह 'कल्पवृक्ष' दूसरा है पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के साहित्यिक लेखों का संग्रह 'जीवन और साहित्य'। वासुदेवशरण जी की 'पृथ्वी पुत्र', पहले ही 'मण्डल' से निकल चुकी है और पाठकों ने उसे पसन्द किया है। 'कल्पवृक्ष' उससे भी बढ़कर होगी, ऐसी आशा है। वह भारत के उस अतीत के रूप को सामने उपस्थित करेगी, जिससे वर्तमान को गौरव प्राप्त हुआ है। चतुर्वेदीजी हिन्दी के प्राणवान लेखक हैं। उनके इन निबन्धों में जीवन बोलता है। साहित्य को देखने की एक दृष्टि प्राप्त होती है।

तीसरी पुस्तक 'तुकाराम-गाथा' पाठकों को भक्ति-रस से सराबोर कर देगी। इसमें सन्त तुकाराम के चुने हुए वचनों का संग्रह श्री नारायण प्रसाद जैन ने किया है। उसे पढ़ कर पता चलता है कि सच्चा आनंद, सच्ची उन्नति भौतिक उपलब्धियों में नहीं है, आत्मिक विकास में है।

उक्त पुस्तकों के अतिरिक्त आचार्य विनोबा के प्रवचनों और भूदान-यज्ञ के सिलसिले में की गई यात्राओं के रोचक वृत्त भी निकालने का विचार किया जा रहा है।

समाज-विकास-माला, विचार-क्रांति-माला तथा बाल-साहित्य में भी पाठकों को अनेक नई पुस्तकें मिलेंगी।

अपने नवीन प्रकाशनों के संबंध में हम पाठकों को समय-समय पर सूचना देने का प्रयत्न करते रहते हैं, लेकिन 'मण्डल' की पुस्तकों के पाठकों का क्षेत्र इतना व्यापक है कि प्रत्येक पाठक को सूचना देना हमारे लिए असम्भव है। ऐसी अवस्था में पाठकों से हमारा अनुरोध है कि वे जब-तब एक कार्ड लिख कर प्रकाशनों की गति-विधि से सम्पर्क बनाये रक्खें।

—मंत्री

सत्साहित्य-प्रसार की योजना

उद्देश्य

योजना का मुख्य उद्देश्य लागत मात्र मूल्य में प्रत्येक व्यक्ति के घर सत्साहित्य का छोटा-सा पुस्तकालय स्थापित करना और समय-समय पर अच्छी-अच्छी पुस्तकों द्वारा उसे समृद्ध बनाना है।

नियम

१. प्रत्येक व्यक्ति या संस्था सदस्यता शुल्क के १०) देकर इस योजना के सदस्य बन सकेंगे। ये रुपये मंडल में जमा रहेंगे और सदस्यता समाप्त होने पर वापस कर दिये जायगे या हिसाब में कर लिये जायगे।

२. सदस्यों का एक अलग रजिस्टर रखा जायगा जिसमें उनका पूरा विवरण रहेगा।

३. प्रत्येक सदस्य को सदस्य बनने पर 'मंडल' तथा उसके सह-प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित उपलब्ध पुस्तकों का लगभग ४५०) का सेट दो-तिहाई मूल्य में अर्थात् ३००) में मिलेगा। उसे भेजने का खर्च 'मंडल' देगा। **प्रत्येक सदस्य को यह पूरा सेट लेना अनिवार्य होगा।**

४. आगे हमारे जितने प्रकाशन होंगे उन सबकी विधिवत् सूचना सदस्यों को विवरण सहित दी जाया करेगी।

५. प्रत्येक सदस्य के लिए वर्ष में कम-से-कम ३०) की पुस्तकें मंगाना आवश्यक होगा। सदस्यों को इन पर २५% कमीशन दिया जायगा। पुस्तकें भेजने का डाक खर्च सदस्य के जिम्मे होगा जो वी० पी० से वसूल कर लिया जायगा।

६. यह योजना केवल मंडल के **जयंती-वर्ष अर्थात् सन् १९५३** के वर्ष के लिए होगी। इसके बाद इस योजना के अन्तर्गत सदस्य नहीं बनाये जायेंगे।

इस योजना

में

मिलनेवाली पुस्तकों तथा अन्य जानकारी के लिए लिखिये :

सस्ता साहित्य मण्डल

नई दिल्ली

Regd. No. D. 228

जीवन सादा बनाइये,
विचार ऊंचे कीजिये।

●

हम अपने को ऊंचा करेंगे
तो
राष्ट्र अपने आप ऊंचा हो जायगा।

●

लेकिन, भली प्रकार समझकर

लेकिन, विवेकपूर्वक और रचनात्मक

लेकिन, देश का हित ध्यान में रखकर

इस दिशा में 'मण्डल' का साहित्य आपकी विशेष सहायता कर सकेगा

नई दिल्ली

मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली में छपाकर प्रकाशित।

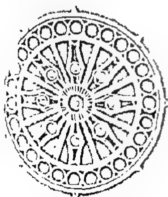
अप्रैल १९५३

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन



महाकवि सूरदास

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय
यशपाल जैन



जीवन साहित्य

आत्मिक जागरूकता का मासिक

'जीवन-साहित्य'

लेख-सूची

नियम

१ 'जीवन-साहित्य' प्रत्येक मास के पहले सप्ताह में प्रकाशित होता है। १० तारीख तक अंक न मिले तो अपने यहां के पोस्टमास्टर से मालूम करें। यदि अंक डाकखाने में न पहुंचा हो तो पोस्टमास्टर के पत्र के साथ हमारे कार्यालय को लिखें।

२ पत्र-व्यवहार में अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य दें। उससे कारवाई करने में सुगमता और शीघ्रता होती है।

३ ग्राहक पूरे वर्ष के लिये बनाये जाते हैं।

४ बहुत से लोग ग्राहक किसी नाम से होते हैं और आगे का चंदा किसी नाम से भेजते हैं। इसमें गड़बड़ी हो जाती है। इस सम्बन्ध में मनीआर्डर के कूपन पर स्पष्ट सूचना होनी चाहिए।

५. पत्र में प्रकाशनार्थ रचनाएं उसके उद्देश्य के अनुकूल भेजी जायं और कागज के एक ही ओर साफ-साफ अक्षरों में लिखी जायं।

६ अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए साथ में आवश्यक डाक टिकट आने चाहिए।

७ समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां भेजी जायं।

८ पत्र के ग्राहक जुलाई और जनवरी से बनाये जाते हैं। बीच में रुपया भेजनेवालों को सूचना दे देनी चाहिए कि उन्हें पिछले अंक भेज दिये जायं या आगे से ग्राहक बनाया जाय।

—व्यवस्थापक

उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश तथा बिहार प्रादेशिक सरकारों द्वारा स्कूलों, कालेजों व लाइब्रेरियों तथा उत्तरप्रदेश की ग्राम-पंचायतों के लिए स्वीकृत

जीवन-साहित्य

अहिंसक नवरचना का मासिक

वर्ष १४] अप्रैल १९५३ [अंक ४

संपत्ति-दान-यज्ञ मार्गदर्शन

विनोबा

१. संपत्ति हरेक को अपने पास ही रखनी है। जरूरत हो तो बैंक में भी रख सकते हैं।
२. जो हिस्सा देना है वह जीवन भर देना। इसलिए परिवार के जिम्मेदार लोगों की अनुमति से यह काम होना चाहिए।
३. कर्ज की इसमें गुन्जायश नहीं। कर्जदारी से मुक्त होना उसका पहला काम होगा।
४. संपत्ति का विनियोग मेरी सूचनानुसार करना है। इस सारी योजना का यह एक बहुत बड़ा संरक्षण है।
५. संपत्ति-दान-यज्ञ में प्राप्त होनेवाली उस वर्ष की रकम उसी वर्ष में व्यय होगी। बाकी रहने का कारण नहीं। देश में इतना विशाल काम करना है कि कितनी भी संपत्ति मिले वह सारी उसमें सहज खर्च होने वाली है।
६. संपत्ति का विनियोग फिलहाल मुख्यतया तीन मदों पर करने का विचार है:
   अ. जिन भूमिहीन किसानों को जमीन दी जायगी उनको बीज, बैल, कुआं आदि के रूप में मदद करना।
   आ. त्यागी सेवक-वर्ग को अल्पतम सेवा-धन देना।
   इ. सत्साहित्य का प्रचार करना।
७. संपत्ति दान यज्ञ में हिस्सा देने वाले के जीवन का परिचय मैं चाहता हूं। उसके लिए इस यज्ञ में सम्मिलित होने की इच्छा रखने वालों को अपनी कुछ जानकारी मुझे भेजनी चाहिए। इस सम्बन्ध में मैं समय-समय पर कुछ-न-कुछ लिखता ही रहूंगा।

✿

चांडिल-सर्वोदय-सम्मेलन : सिंहावलोकन

यशपाल जैन

सर्वोदय सम्मेलन का पांचवां वार्षिक अधिवेशन इस मास चांडिल में भली प्रकार सम्पन्न हो गया। उपस्थिति अच्छी थी। देश के प्रत्येक भाग से लगभग डेढ़ हजार रचनात्मक कार्यकर्त्ता और कार्यकर्त्रियां एकत्र हो गई थीं। अन्य वर्षों की अपेक्षा इस वर्ष महिलाओं की संख्या अधिक थी। सम्मेलन में शामिल होनेवाले विशिष्ट व्यक्तियों में डा० राजेन्द्रप्रसाद, सर्वश्री आर० आर० दिवाकर, काका सा० कालेलकर, श्रीकृष्णदास जाजू, जयप्रकाश नारायण, जे० सी० कुमारप्पा, शंकरराव देव, दादा धर्माधिकारी, नवकृष्ण चौधरी, आशादेवी आर्यनायकम आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

सम्मेलन ७ मार्च को अ० भा० सर्वसंघ के अध्यक्ष श्री धीरेन्द्रभाई मजूमदार की अध्यक्षता में प्रारम्भ हुआ। सबसे पहले स्वागताध्यक्ष श्री लक्ष्मीबाबू बोले। उनकी वाणी में विनम्रता थी, जो बिहार की भूमि की एक अपनी विशेषता है। उन्होंने कहा, "सर्वोदय समाज के मूल में एक परिवार भावना है। तब कौन किसका स्वागत करे।" उन्होंने सम्मेलन की कतिपय महत्वपूर्ण बातों की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने बताया कि इस अवसर पर एक प्रदर्शिनी का आयोजन किया गया है, जिसमें उस कार्य का दर्शन होता है, जो हम कर रहे हैं। जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं, भोजन और वस्त्र के बारे में हम कैसे स्वावलम्बी हो सकते हैं, इसका भी मार्ग बताया गया है।

प्रदर्शिनी का उद्घाटन करते हुए गोसबाबू ने ग्रामोद्योगों के महत्त्व पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा, "हमारी दो आंखें हैं ग्रामोद्योग और खेती। इन दोनों पर ध्यान केन्द्रित किये बिना देश की उन्नति असम्भव है।"

अपने संक्षिप्त भाषण में धीरेन्द्रभाई ने सम्मेलन का उद्देश्य बताते हुए कहा कि हम सब अपने कर्त्तव्य का निर्णय करने के लिए यहां एकत्र हुए हैं। एक ओर भारतीय मानव की आशा है, दूसरी ओर काल पुरुष का आवाहन। बीच का मार्ग नहीं है। मानव की आशा पूर्ण न हुई तो काल पुरुष हम सबको ग्रस लेगा। उन्होंने जोरदार शब्दों में कहा कि युग-समस्या का समाधान एक ही वस्तु में है और वह है भूमि। 'सर्व सेवा संघ' के मंत्री श्री शंकरराव देव ने 'संघ' के अप्रैल १९५२ से फरवरी १९५३ तक के कार्य की रिपोर्ट पेश की। उन्होंने बताया कि 'संघ' से सम्बद्ध भिन्न-भिन्न रचनात्मक संस्थाओं ने पिछले वर्ष में क्या-क्या काम किया है।

अनन्तर राजेन्द्रबाबू का भाषण हुआ। वह थोड़ा बोले; पर ऐसा लगा, जैसे बहुत समझ-बूझकर बोल रहे हों। उन्होंने गिने-चुने शब्दों में शासन की कठिनाइयां बताईं और इस बात पर हर्ष प्रकट किया कि सर्वोदय सम्मेलन उपयोगी कार्य कर रहा है। "जो उद्देश्य सर्वोदय का है, वही मनुष्य के लिए सर्वोत्तम है।" उन्होंने कर्त्तव्य और सिद्धान्तों पर दृढ़ रहने की प्रेरणा दी।

इसके बाद विनोबाजी का लगभग डेढ़ घंटे भाषण हुआ। उसमें उन्होंने वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डाला, सर्वोदय की कल्पना स्पष्ट की और बताया कि सर्वोदय के आधार पर हम अपने समाज और राष्ट्र का किस प्रकार नव-निर्माण कर सकते हैं। विनोबाजी के इस तथा अन्य दो भाषणों को हम 'जीवन-साहित्य' के अगले अंकों में प्रकाशित करेंगे। इन तीनों भाषणों में उन्होंने अपना हृदय खोलकर रख दिया। कहीं-कहीं तो ऐसा लगा, मानो बापू बोल रहे हैं। वही भाषा, वही भावना और वही प्रेम का संदेश।

बाद के भाषणों में श्री जयप्रकाशनारायण का भाषण बड़ा महत्वपूर्ण था। उन्होंने विनोबाजी के भूदान-यज्ञ का खुले दिल से समर्थन करते हुए कहा, "स्वराज्य के बाद जो निराशा हमारे दिलों में पैदा हुई थी, वह विनोबाजी के इस यज्ञ ने दूर कर दी है।... धरती सबकी माता है और उसमें सबका भाग होना चाहिए। जो धरती पर काम करता है, वह उसीकी होनी चाहिए।" अंत में

उन्होंने कहा कि हमें कंधे-से-कंधा मिलाकर इस यज्ञ को सफल करना है। "और सब काम छोड कर हमें कम-से-कम एक साल तक इसीमें लग जाना चाहिए।"

आठ तारीख को विभिन्न वक्ताओं ने, अपने भाषणो भूदान-यज्ञ का समर्थन किया। श्री सिद्धराज ढड्ढा, मुहम्मद शफी, काका सा० कालेलकर आदि के भाषण विशेष आकर्षक थे। काकासाहब ने कहा कि हम सबकी सेवा करते हुए आगे बढ़े। सर्वोदय की उपलब्धि हरिजन, भूमिजन और स्त्रीजन को उन्नति और सेवा करके ही हो सकती है।

अपराह्न में दो सभाएं उल्लेखयोग्य हुईं। एक तो थी महिलाओ की, दूसरी तरुण-सघ की। पहली में जानकीदेवी बजाज की प्रेरणा से एक नये दान का श्रीगणेश हुआ और वह दान था 'अलकार दान'। अनेक बहनो ने अपने आभूषण विनोबा की भूदान-यज्ञ की झोली मे डाल दिये। तरुणो की सभा में जयप्रकाशबाबू का भाषण मार्के का था। उन्होंने युवको को प्रेरित किया कि वे एक वर्ष के लिए स्कूल-कालेज छोड दें और अपनी पूरी शक्ति के साथ विनोबाजी के इस अनुष्ठान को सफल बनाने में योग दें।

शाम की सभा मे विनोबाजी का भाषण हुआ। पहले भाषण में वह सर्वोदय की कल्पना का स्पष्ट चित्र उपस्थित कर चुके थे। इस भाषण मे उन्होंने बताया कि भूदान-यज्ञ की व्यूह-रचना किस प्रकार की जाय। अंत मे उन्होंने जन-शक्ति को जाग्रत कर के उसका उपयोग करने पर जोर दिया।

अंतिम दिन की सभा में बिहार में भू-दान-यज्ञ का कार्य करनेवाले छोटे-बडे सभी कार्यकर्त्ताओ ने अपनी-अपनी रिपोर्टें पेश की। उससे पता चलता था कि कितने उत्साह, लगन और परिश्रम से इस कार्य को आगे बढाया जा रहा है। बिहार से विनोबाजी ने ३२ लाख एकड भूमि की माग की है, जिसकी पूर्ति में उनकी पार्टी तथा बिहार के सरकारी और गैर-सरकारी सभी लोग जुटे है।

सम्मेलन में 'सर्व सेवा सघ' ने तीन प्रस्ताव पास किये। पहले में भूदान के संबध में सेवापुरी के सकल्प को दोहराया गया था, दूसरे में शराबबंदी की माग की गई और उस के लिए अनुकूल वातावरण पैदा करने की जन-सेवकों से अपील की गई। तीसरे प्रस्ताव में लोकहित को हानि पहुचाने और स्वावलम्बन के मार्ग में बाधा डालनेवाले केन्द्रित उद्योगो के बहिष्कार का निर्णय किया गया। ये तीनों प्रस्ताव अन्यत्र दियें जा रहे हैं।

अंतिम दिन के अपने भाषण में विनोबाजी ने लोगों को अंत.परीक्षण करके अपनी कमियों और दोषों का दर्शन और उनका शोधन करने की प्रेरणा दी।

तीनों दिनों में खुले अधिवेशन के अतिरिक्त अलग-अलग प्रदेशो के कार्यकर्त्ताओ की सभाएं हुईं, जिनमे विनोबाजी को भूदान-यज्ञ की प्रगति बताई गई और उन का मार्गदर्शन प्राप्त किया गया।

तीनो दिन रात को सास्कृतिक कार्यक्रम भी रक्खा गया। पहले दिन आदिवासियो ने लोक नृत्य दिखाया, जिसे सब लोगो ने पसद किया। दूसरे दिन महिला विद्यालय वर्धा की बहनो ने भावपूर्ण तथा प्रेरणादायक कविताओ और सगीत से काफी समय तक लोगों को मन्त्र-मुग्ध बनाये रखा। तीसरी रात को फिर आदिवासियो का लोक नृत्य हुआ, जिसकी सबने मुक्त कठ से सराहना की।

इनके अतिरिक्त गाधी स्मारक निधि की ओर से कुछ फिल्मे दिखाई गईं, जिनमें बापू की फिल्म बड़ी हृदयस्पर्शी थी।

सम्मेलन के इस अधिवेशन में मुख्यत: भूदान की ही चर्चा हुई। विभिन्न प्रदेशो की रिपोर्टो से ज्ञात होता है कि यह अनुष्ठान अब देशव्यापी हो गया है और लोग समझने लगे है कि इसे अपना कर ही देश का हित किया जा सकता है। जो लोग इस काम में पहले ही से सलग्न हैं, उन्हें नवीन स्फूर्ति प्राप्त हुई और नये व्यक्तियो को इसमे सम्मिलित होने की प्रेरणा मिली। निस्सदेह आगे चल कर इस सम्मेलन का ऐतिहासिक महत्व होगा।

सम्मेलन में समाज-सुधार, पर्दा-निवारण, सर्वोदय साहित्य का प्रणयन और प्रसार, प्राकृतिक चिकित्सा आदि विषयो पर भी चर्चा हुई, लेकिन भूदान-यज्ञ के सामने यह सब गौण था।

(शेषाश १५६ पर)

'सर्व-सेवा-संघ' द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव

[सर्वोदय सम्मेलन के चांडिल-अधिवेशन में 'सर्व-सेवा संघ' ने जो प्रस्ताव स्वीकार किये, वे नीचे दिये जाते हैं। स्मरण रहे कि एक 'विदेह' संगठन होने के कारण 'सर्वोदय समाज' कोई भी प्रस्ताव पास नहीं करता। —सम्पा]

प्रस्ताव १ भूदान का नया संकल्प

पिछले साल सेवापुरी में 'सर्व-सेवा-संघ' ने दो वर्षों के अन्दर २५ लाख एकड़ भूमि भूदान-यज्ञ के लिए प्राप्त करने का संकल्प किया था। इस अवधि का करीब आधा भाग बीत चुका है। और अबतक हम केवल ७-८ लाख एकड़ ही प्राप्त कर सके हैं। फिर भी जब हम यह याद करते हैं कि मनुष्य में भूमि की ममता कितनी गहरी होती है और इस आन्दोलन के प्रारंभ में जनता में और अधिकांश कार्यकर्ताओं में भी इसके प्रति विश्वास की कैसी कमी थी तो मानना पड़ता है कि ७-८ लाख एकड़ जमीन का दान में प्राप्त होना एक चमत्कार ही है।

यह जाहिर करते हुए हमें बहुत आनन्द होता है कि भूमिदान करने वालों में जैसे बड़ी जमीन के मालिक हैं वैसे ही छोटी छोटी जमीन के मालिक गरीब किसान भी हैं और उनकी संख्या काफी मात्रा में है। इससे हमारी श्रद्धा बढ़ गई है। हम उन सभी भाई-बहनों को हृदय से बधाई और धन्यवाद देते हैं। इस यज्ञ में आहुति देकर वे स्वयं शुद्ध हुए हैं और वर्तमान समाज की शुद्धि और विकास के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार करने में सहायक हुए हैं।

सेवापुरी के संकल्प को पूरा करने में भिन्न भिन्न संस्थाओं ने, कार्यकर्ताओं ने और आम जनता में से कई सज्जनों ने कष्ट सहकर भी हमको सहयोग दिया है। उसके लिए सर्व-सेवा-संघ हृदय से उनका कृतज्ञ है।

आज हम अपने इस महान पवित्र संकल्प को फिर से दोहराते हैं। अगले १२ महीनों के भीतर हमें १७-१८ लाख एकड़ भूमि दान में प्राप्त करनी है। इसके लिए यह आवश्यक है कि अगले साल हम अधिक तत्परता और एकाग्रता से इस कार्य में लग जाय। हमें यह भी स्मरण रखना है कि मात्र २५ लाख एकड़ भूमि प्राप्त कर लेना ही भूदान-यज्ञ का उद्देश्य नहीं है। यह यज्ञ अहिंसक क्रान्ति की एक भूमिका और सर्वोदय-समाज-रचना को आधार-शिला है। इसलिए सर्वोदय विचार के माननेवालों पर और उनमें भी जो रचनात्मक कार्य करनेवाली संस्थाएं और कार्यकर्त्ता हैं उन पर विशेष जिम्मेदारी आती है क्योंकि सर्वोदय समाज की रचना उनका उद्देश्य है। इस उद्देश्य की पूर्ति तब तक नहीं होगी, जबतक वर्तमान समाज का शान्तिमय परिवर्तन करने की प्रक्रिया उनके कार्यक्रम के मूल में न हो। भूदान-यज्ञ यह एक ऐसी अहिंसक प्रक्रिया है जिसको आधार बना कर ही ये संस्थाएं अपने उद्देश्य की ओर अग्रसर हो सकती है। इसलिए हमें आशा है कि अपने कार्यक्रम में सर्वप्रथम स्थान भूदान-यज्ञ को ये संस्थाएं और कार्यकर्त्ता देंगे। और अगले बारह महीनों के अन्दर २५ लाख एकड़ भूमि प्राप्त करने में अपनी कार्यसिद्धि न मानकर सन् १९५७ के पहले ५ करोड़ एकड़ जमीन दान में प्राप्त कर शोषणरहित और समता-युक्त समाज की स्थापना की भूमिका का निर्माण करेंगे।

साथ ही हम सभी राजनैतिक और सामाजिक कर्मियों से अपील करते हैं कि वे अपने सभी प्रकार के भेदभावों को भूल कर इस महान यज्ञ में सहयोग दें।

हमारे नवयुवक आज क्रान्ति के लिए अधीर हैं। उन्हें समझना चाहिए कि क्रान्ति तो उनके बीच आ चुकी है। अब जरूरत इस बात की है कि वे इसे सफल बनाने के लिए आगे बढ़ें। अन्य सभी कामकाज छोड़ कर इस क्रान्ति को आगे बढ़ाने के लिए कम-से-कम एक साल के लिए अपना सारा समय सर्व-सेवा-संघ को समर्पित कर दें। इससे यह क्रान्ति ऐसी ठोस होकर रहेगी जिसकी जड़ें कभी हिल नहीं सकेंगी।

अंत में हम जमीन के मालिकों से, खास कर बड़ी जमीन के मालिकों से, अपील करते हैं कि यह यज्ञ सर्वोदय के लिए होने से उसमें उनका भी कल्याण ही होने वाला है। वे इसे सफल बनाने में हर तरह से सचेष्ट हों।

अबतक तो विनोबाजी और उनके साथी गांव-गांव और घर-घर घूम कर दान मांगते रहे है लेकिन अब समय आ गया है कि भू-स्वामी स्वयं स्फूर्ति से आगे आकर दान दें। क्योंकि इस यज्ञ से हृदय परिवर्तित होकर जो नया मानव जन्म लेगा वही नये समाज का निर्माण करेगा।

इस काम की पूर्ति के लिए कानून की अपेक्षा रखी जाती है। भूदान-यज्ञ कानून के मार्ग में रुकावट नही डालता बल्कि वह अनुकूलता ही पैदा करता है। तथापि यदि हम हृदय-परिवर्तन से यह काम सफल करते हैं तो उसमें से जो जनशक्ति पैदा होगी वही अहिंसक समाज का सच्चा आधार होगी।

हम आशा करते हैं कि जिनके पास भू-दान-यज्ञ का संदेश पहुंचा है और जिन्होने आज के युग धर्म को पहचाना है वे मागनेवालो की प्रतीक्षा न कर इस यज्ञ में अपनी आहुति देंगे और हमको हमारी संकल्प-सिद्धि में सहयोग देंगे।

प्रस्ताव २ : शराबबंदी

हमारे राष्ट्रीय आंदोलन का शराब-बंदी एक बहुत महत्व का अंग रहा है। गांधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस ने उसके लिए सतत आग्रह रक्खा था, यहा तक कि गांधी-इर्विन समझौते में भी जहा आंदोलन के दूसरे सारे अंग वापिस खीच लिये गये थे वहा शराब की दूकानो के शांतिमय निरोधन का अधिकार मान्य किया गया था। आशा की गई थी कि स्वराज्य प्राप्ति के बाद जल्दी-से-जल्दी हिंदुस्तान में से शराब का उच्चाटन किया जायगा। स्वतंत्र भारत के संविधान में भी सरकार का यह कर्त्तव्य माना गया है। इतना महत्व इस वस्तु को इसलिए दिया जाता है कि शराबखोरी में देश की नैतिक हानि और धर्म-हानि होने के साथ-साथ गरीबो के जीवन बरबाद होते हैं। आर्थिक दृष्टि से भी उनका सर्वनाश होता है। इस दृष्टि से मद्रास और बंबई राज्यो में कानून से शराबबंदी करने में जो हिम्मत और हिकमत दिखाई गई है उसके लिए सर्व-सेवा-संघ उनका अभिनंदन करता है।

लेकिन इन दिनो गरीबो के हितो का और देश की नीतिमत्ता का विचार सरकारी आमदनी के खयाल से नजरअंदाज किया जा रहा है। और "आहिस्ता-आहिस्ता बढ़ो" यह एक केंद्रीय सरकार का मंत्र-सा बन गया है। वैसी सूचनाएं राज्यो को दी जा रही हैं। यहां तक कि जिन राज्यों ने शराबबंदी की है उन्होंने मानो कुछ अदूरदर्शिता की है ऐसा सार्वजनिक तौर पर भी जाहिर करने की हिम्मत केंद्रीय सरकार के मंत्री कर रहे हैं। सर्व-सेवा-संघ इस वृत्ति का निषेध करता है, क्योंकि उसकी दृष्टि से इस मामले में "आहिस्ता बढ़ो" का अर्थ "शीघ्र गिरो" ही हो सकता है।

'सर्व सेवा संघ' की यह भी मान्यता है कि शराबबंदी का सारा भार केवल सरकार पर ही नही रहना चाहिए। बल्कि उसके लिए अनुकूल वातावरण तैयार करने की जिम्मेदारी जन-सेवको को भी उठानी चाहिए।

प्रस्ताव ३ : केन्द्रित उद्योगों का बहिष्कार

सर्वोदय समाज का निर्माण ग्राम-राज्य की स्थापना से ही हो सकता है, ऐसी हमारी श्रद्धा है। इसलिए हरेक गांव की ऐसी तैयारी होनी चाहिए कि जिससे कम-से-कम जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं के यानी अन्न, वस्त्र, निवास, आरोग्य और तालीम के बारे में वह स्वयं पूर्ण हो और उसमें वैसी स्वावलंबन की शक्ति पैदा हो जिससे उनको इन आवश्यकताओ को पूरा करने के लिये केंद्रित उत्पादन पर अवलंबित रहने की आवश्यकता न हो। ऐसा होने से ही गांव के लोग अपने भरोसे राजनैतिक तथा आर्थिक सत्ता का विकेंद्रीकरण कर के ग्राम-राज्य स्थापित करने में समर्थ होंगे। 'संघ' की राय में अगर सत्ता और संपत्ति का विकेंद्रीकरण न होगा तो हरेक मनुष्य को पूंजी के बजाय श्रम के आधार पर अपने सर्वांगीण विकास का मौका नही मिल सकेगा।

इसलिए सारे देश में विकेंद्रित उद्योग यानी ग्रामोद्योग का व्यापक प्रसार हो इस दृष्टि से 'सर्व-सेवा-संघ' ने सेवापुरी प्रस्ताव द्वारा देश से अपील की थी कि एक बुनियादी आरंभ के तौर पर अन्न और वस्त्र के स्वावलंबन में बाधक होने वाले केंद्रित उद्योगो का बहिष्कार किया जाय। उसकी याद देश को फिर से 'सर्व-सेवा-संघ' दिलाता है और आशा रखता है कि भू-दान-यज्ञ की पूर्ति के लिए लोग ग्रामोद्योगो के इस कार्यक्रम पर दृढ़ता से अमल करेंगे।

धर्म का आशय

व्रजकृष्ण चांदीवाला

धर्म धर्म के प्रश्न पर विचार करने के लिए हमें हिन्दू-समाज की रचना-व्यवस्था और उसके विकास पर एक दृष्टि डालनी होगी। हम देखते हैं कि सदा से हिन्दू-जीवन का आधार धर्म पर रहा है। हिन्दू के घर जब से बच्चा जन्म लेता है, जन्म ही नहीं लेता, बल्कि जबसे पिता द्वारा उसका बीजारोपण किया जाता है, और जब तक वह मरने के पश्चात् श्मशान-भूमि में ले जाया जा कर जला नहीं दिया जाता, उसका समस्त जीवन धर्म की जंजीरों से जकड़ा रहता है। धर्म का नाम लिये बिना वह सांस तक नहीं ले सकता। नित्य के और काम अलग रहे, मर कर भी उसका पीछा धर्म से नहीं छूटता। तीन पुश्त तक उसके उत्तराधिकारी धर्म के नाम पर उसे याद करते रहते हैं और उसके लिये तर्पण तथा पिण्डदान होता रहता है। तब सबसे पहले विचारना यह है कि यह धर्म क्या वस्तु है जिसने समाज पर अपना इतना प्रबल अधिकार जमाया हुआ है।

गीता रहस्य में तिलक महाराज ने धर्म-चर्चा करते हुए लिखा है 'धर्म शब्द धृ (धारण करना) धातु से बना है। धर्म से ही सब प्रजा बंधी हुई है। यह निश्चय किया गया है कि जिससे सब प्रजा का धारण होता है वही धर्म है। यदि यह धर्म छूट जाय तो समझ लेना चाहिये कि समाज के सारे बंधन ही टूट गये, और यदि समाज के बंधन टूटे तो आकर्षण-शक्ति के बिना आकाश में सूर्यादि ग्रह-मालाओं की जो दशा हो जाती है अथवा समुद्र में मल्लाह के बिना नाव की जो दशा होती है, ठीक वही दशा समाज की भी हो जाती है। इसलिये उक्त शोचनीय अवस्था में पड़कर समाज को नाश से बचाने के लिए व्यासजी ने कई स्थानों पर कहा है कि यदि अर्थ या द्रव्य पाने की इच्छा हो तो धर्म द्वारा अर्थात् समाज की रचना को न बिगाड़ते हुए प्राप्त करो और यदि काम आदि वासनाओं को तृप्त करना हो तो वह भी धर्म से ही करो।'

'इसलिए जो कर्म हमारे मोक्ष अथवा हमारी आध्यात्मिक उन्नति के अनुकूल हो वही पुण्य है, वही धर्म है और वही शुभ कर्म है, और जो कर्म उसके प्रतिकूल हो वही पाप, अधर्म अथवा अशुभ कर्म है। यही कारण है कि हम कर्तव्य-अकर्तव्य, कार्य-अकार्य, शब्दों के बदले धर्म और अधर्म शब्दों का ही अधिक प्रयोग करते हैं। हमारे शास्त्रकारों ने निश्चय किया है कि आत्मा का कल्याण अथवा आध्यात्मिक पूर्णावस्था ही प्रत्येक मनुष्य का पहला और परम उद्देश्य है। अन्य प्रकार के हितों की अपेक्षा इसी को प्रधान जानना चाहिये और इसीके अनुसार कर्म-अकर्म का विचार करना चाहिए।'

आगे चल कर वे लिखते हैं. 'नित्य व्यवहार में धर्म शब्द का उपयोग—केवल पारलौकिक सुख का मार्ग—इसी अर्थ में किया जाता है। जब हम किसीसे प्रश्न करते हैं कि तुम्हारा कौन सा धर्म है? तब उससे पूछने का हमारा यही हेतु होता है कि तुम अपने पारलौकिक कल्याण के लिये किस मार्ग—वैदिक, बौद्ध, जैन, ईसाई, मुहम्मदी या पारसी—से चलते हो। और वह हमारे प्रश्न के अनुसार ही उत्तर देता है, परन्तु धर्म शब्द का इतना ही संकुचित अर्थ नहीं है। राज धर्म, प्रजा धर्म, देश-धर्म, जाति-धर्म, कुल-धर्म इत्यादि सांसारिक नीति-बंधनों को भी धर्म कहते हैं। धर्म शब्द के इन दो अर्थों को यदि पृथक् करके दिखलाना हो तो पारलौकिक धर्म को 'मोक्ष-धर्म' अथवा 'मोक्ष', और व्यवहारिक धर्म अथवा केवल नीति को केवल 'धर्म' कहा करते हैं।'

'असभ्य तथा जंगली अवस्था में प्रत्येक मनुष्य का आचरण समय-समय पर उत्पन्न होने वाली मनोवृत्तियों की प्रबलता के अनुसार हुआ करता है, परन्तु धीरे-धीरे कुछ समय के बाद यह मालूम होने लगता है कि इस प्रकार का मनमाना बर्ताव श्रेयस्कर नहीं है और यह विश्वास होने लगता है कि इंद्रियों के स्वाभाविक व्यापारों की कुछ मर्यादा निश्चित करके उसके अनुसार बर्ताव करने ही में सब लोगों का कल्याण है, तब प्रत्येक ऐसी मर्यादाओं

का पालन क़ायदे के तौर पर करने लगता है, जो शिष्टाचार से अन्य रीति से सुदृढ़ हो जाया करती है। जब इस प्रकार की मर्यादाओं की संख्या बहुत बढ़ जाती है तब इन्हीं का एक शास्त्र बन जाता है। जो क़ायदे समाज को अध्यात्म की ओर ले जायं, मोक्ष का मार्ग दिखायं वे अध्यात्म-शास्त्र और जो क़ायदे संसार के व्यवहार को बतलायं वे नीति-शास्त्र कहलाते हैं। इन सबका समावेश धर्म शास्त्र में हो जाता है। पूर्व समय में विवाह-व्यवस्था का प्रचार नहीं था। पहले-पहल इसे श्वेतकेतु ने चलाया। शुक्राचार्य ने मदिरा-पान को निषिद्ध ठहराया। समाज-धारणा के लिये अर्थात् सब लोगों के सुख के लिये इन स्वाभाविक आचरण का उचित प्रबन्ध करना ही धर्म है। महाभारत में कहा है: 'आहार, निद्रा, भय और मैथुन; मनुष्यों और पशुओं में एक ही समान स्वाभाविक हैं। मनुष्यों और पशुओं में कुछ भेद है तो केवल धर्म का, अर्थात् इन स्वाभाविक वृत्तियों को मर्यादित करनेका, जिस मनुष्य में यह धर्म नहीं है वह पशु के समानही है।'

कहा जाता है कि मनुष्य-शरीर चौरासी लाख योनि पार करके प्राप्त होता है। मनुष्य-शरीर से उत्तम और कोई योनि भारतीय साहित्य में नहीं मानी गई, क्योंकि मनुष्य ही अपनी बुद्धि को विकसित करके ज्ञान प्राप्त कर सकता है और कर्म-बन्धन जो बार-बार जन्म लेने के कारण माने जाते हैं, उनसे छूटने की सामर्थ्य रखता है। मोक्ष प्राप्त कर सकता है, जो अन्तिम ध्येय है। इसलिये देवता भी मनुष्य-योनि में आने को लालायित रहते हैं, क्योंकि मनुष्य-योनि के अतिरिक्त और किसी को मोक्षप्राप्ति का अधिकार नहीं है।

समाज के विकास के साथ-साथ धर्म का विकास कैसे होता रहता है और समाज पर उसका प्रभाव कैसे पड़ता है; यदि इसको विचारपूर्वक अच्छी तरह देखें तो हमें मालूम पड़ेगा कि हम जो-कुछ धर्म के नाम से जानते हैं और जीवन भर उसपर अमल करते हैं वह हमारे उन पूर्वजों, धर्म-गुरुओं, आचार्यों, सन्तों और पैगम्बरों के जीवन भर के निजी अनुभवों का संग्रह होता है, जिनके हम अपने आपको अनुयायी पुकारते हैं। यह धर्म, यह आचार यह व्यवहार, यह मत उनका निजी होता है और चूंकि उनका जीवन सफल होता है, उनके सिद्धान्त सिद्ध हुए होते हैं, दूसरे भी उनका अनुकरण करने का प्रयत्न करते हैं। और चूंकि इन धर्माचार्यों के जीवन सफल माने जाते हैं, इसलिए उनके जीवन-सिद्धान्त, उनकी जीवन-प्रणाली, उनका मत संसार में प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकता, मगर इन धर्माचार्यों के अनुभव और सिद्धान्त कभी समान नहीं होते, उनमें अनेक प्रकार की विभिन्नता होती है। इसी कारण संसार में अनेक मत और अनेक धर्म रहते चले आए हैं और हर एक धर्म के अनुयायी यही प्रयत्न करते आए हैं कि वह संसार को अपने ही मत का बनाकर छोड़ें। इसीलिए आज भिन्न-भिन्न धर्मों में इतना संघर्ष और इतनी विषमता है। जिससे पूछो, वह अपने ही मत की ओर खींचता है। इस प्रकार धर्म-निर्णय करना महान् कठिन है। तब यह धर्म-निर्णय हो किस तरह? युधिष्ठिर से यक्ष ने यही प्रश्न किया था। युधिष्ठिर ने इसका उत्तर दिया था—

'यदि तर्क को देखें तो वह चंचल है, अर्थात् जिसकी बुद्धि जैसी तीव्र होती है वैसे ही अनेक प्रकार के अनेक अनुमान तर्क से निष्पन्न हो जाते हैं। श्रुति अर्थात् वेदाज्ञा देखी जाय तो वह भी भिन्न-भिन्न है और यदि स्मृति-शास्त्र को देखें तो ऐसा एक भी ऋषि नहीं है जिसका वचन अन्य महर्षियों की अपेक्षा अधिक प्रमाणीभूत समझा जाय। अच्छा, इस व्यावहारिक धर्म का मूल देखा जाय तो वह भी अन्धकार में छिप गया है अर्थात् वह साधारण मनुष्यों की समझ में नहीं आ सकता। इसलिये महाजन जिस मार्ग से गये हों वही धर्म का मार्ग है।'

तिलक महाराज कहते हैं: 'ठीक है; परन्तु महाजन किसको कहा जाय? क्योंकि जिन साधारण लोगों के मन में धर्म-अधर्म की शंका भी कभी उत्पन्न नहीं होती, उनके बतलाये मार्ग से जाना—अन्धेनैव नीयमाना यथान्धा:—जैसे अन्धे को अन्धा राह दिखाए वाली नीति ही को चरितार्थ करना है। अब यदि महाजन का अर्थ बड़े-बड़े सदाचारी पुरुष लिया जाय तो उन महाजनों के आचरण में भी एकता कहां है? निष्पाप श्री रामचन्द्र ने, अग्नि द्वारा शुद्ध हो जाने पर भी अपनी पत्नी का त्याग केवल लोकापवाद के भय से ही किया और सुग्रीव को अपने पक्ष

में मिलाने के लिए उससे 'तुल्यारिमित्र' जो तेरा शत्रु वही मेरा शत्रु और जो तेरा मित्र वही मेरा मित्र, इस प्रकार संधि करके बेचारे बालि का वध किया। परशुराम ने तो पिता की आज्ञा से प्रत्यक्ष अपनी माता का शिरच्छेद कर डाला। यदि पाडवो का आचरण देखें तो पाचों की एक ही स्त्री थी। स्वर्ग के देवताओ को देखें तो उनमें भी कोई अहिल्या का सतीत्व भ्रष्ट करने वाला है। तब यह कसौटी भी ठीक नहीं उतरती।'

इसलिये अब हमें यह देखना है कि कृष्ण भगवान ने धर्म की कसौटी क्या रखी है। किस प्रकार उन्होने धर्म की सस्थापना की और उन्होने कौन-सा राज मार्ग दिखाया कि जिससे मनुष्य धर्म-निर्णय करने में इस प्रकार की उलझनो में नफम कर सोधा निर्विघ्न आगे बढ़ता चला जाय। अगले अक में हम इसको चर्चा करेंगे।

फल और फूल

रामनारायण उपाध्याय

फल और फूल ये दोनो प्रकृति की सुन्दर देन हैं।
लेकिन न जाने क्यो मनुष्य फलाकाक्षी रहा है।
उसने फलो की जितनी सार-सम्हाल और हिफाजत की है, फूलो को उतनी ही बेरहमी से कुचला है।
एक ओर जहा वह—
कच्चे फलो का भी पकाकर उपयोग करता आया है, वही दूसरी ओर वह सुन्दर फूलो को भी—
अधखिली कच्ची कलियो की अवस्था में तोडने से नही झिझका है।
फल मनुष्य की शारीरिक क्षुधा-पूर्ति के साधन रहे हैं;
जब कि फूल मनुष्य को मानसिक तृप्ति देते आये है।
लेकिन मनुष्य इतना निष्ठुर है कि—
उसने 'फलाहार' करने के साथ-ही-साथ, "पुष्प-सहार" करने, फूलो की माला पहनने में गौरव अनुभव किया है।
फूल जीवन के प्रथम प्रयत्न है,
जबकि फल उसकी अतिम परिणति।
प्रकृति के आगन में भी कभी—
फूलो से पहले फल नही देखे गये।
लेकिन मनुष्य है कि वह—
प्रयत्न-रूपी फूलों से पूर्व, और कभी-कभी उससे भी पहले, फल की आशा करता है।
फल मनुष्य की भोग-वृत्ति के सूचक हैं, जब कि फूल सयम के।
फल उपयोग करने के बाद नष्ट हो जाते हैं,
जबकि फूल सुगन्ध देने के बाद भी जगत के सौन्दर्य में वृद्धि करते आये है।
फल के भोग की इच्छा ही फल के नाश करने की सूचना है—
जबकि निष्काम कर्मरूपी प्रयत्न के फूलो से, सुन्दर फलो की सृष्टि होती आई है।
और यों अपने प्रयत्न रूपी पुष्पो को—
प्रभु के चरणो अर्पित करने में ही जीवन का महान सुफल समाया हुआ है।

तिब्बत की लोक-कथाएँ

कन्हैयालाल मिण्डा

किसी भी देश की लोक-कथाएँ रोचक और मनोरंजक होती है। ऐसी ही कुछ कथाएं तिब्बत की हैं। तिब्बत की यह लोक-कथाएँ केवल मात्र काल्पनिक गल्प नहीं हैं। वहा के लोक-जीवन में इनकी गहरी मान्यता है। ये कथाएँ सामाजिक रीति-रिवाजों की पृष्ठभूमि है।

संक्षेप में कुछ कथाएँ इस प्रकार हैं :

एक बानर हिमालय को पार करके दूसरी ओर गया। वहा उसे एक सुन्दर भूतनी मिली। वह बानर को पसन्द आगई और उसने भूतनी से विवाह कर लिया। इस युगल दम्पति से कई सताने हुई। हिमालय की रम्य कन्दराओं के बीच मे स्थान के समीप ही शैनराजग नाम का एक देवता वास करता था। उस देवता ने बानर-दम्पति की सतान को शरण दी और अपनी सरक्षता में उनका पालन-पोषण किया। तपस्वी शैनराजग के दिव्य भोजन के प्रभाव से वानर-दम्पति के बच्चे दिनोंदिन पशुओ की अपेक्षा मनुष्यवत् बनते गये। उनकी पूछ लुप्त हो गई, कान छोटे बन गये, शरीर पर बाल नही रहे; वे मनुष्यो की भाति खड़े होने लगे और उनकी बोली बोलने लगे। तिब्बतवासी इस बानर-दम्पति को अपना मर्यादा मानव तथा आदिपुरुष मानते हैं तथा अपने धर्मगुरु और भूतपूर्व शासक दलाई-लामा को शैनराजग देवता का अवतार मानते हैं।

आदिपुरुष के दो शिष्य थे। एक का नाम था तेपा दूसरे का नाम था मेपा। दोनो मे विचार-विभिन्नता आ गई। दोनों लडने लगे। कई दिन तक युद्ध चलता रहा। गुरुदेव को सूचना मिली तो वह उनके पास आये और दोनो को अलग-अलग करके एक गोला फेंका। जहा पर वह गोला पडा मेपा वही रहने लगा। मेपा के सर पर चोटी नही थी अत वह मुसलमान कहलाने लगा। तिब्बत मे 'हु-हु' नाम का एक प्रान्त है जहा पर आज कल भी मुसलमान रहते हैं।

किसी समय भगवान बुद्ध अपने शिष्यो के साथ तिब्बत का भ्रमण कर रहे थे। चलते-चलते उन्हे भूख लग आई। जंगलो में खाने को कुछ नही मिला। शिष्यों ने एक श्वेत हाथी को देखा। उसको देखते ही शिष्यों के मन में उसे भक्षण करने के अकुर पैदा हुए और उन्होने गुरु से हस्ति-भक्षण करने की आज्ञा मागी। कहते हैं कि भगवान बुद्ध ने उन्हे आज्ञा दे दी। परिणामतः शिष्यों के मन में हस्ति-भक्षण का विचार पैदा होते ही हस्ति स्वयं ही मर गया और शिष्यो ने उसे भक्षण कर लिया। कहते हैं कि तभी से इस लोक-कथा के आधार पर तिब्बत में मांस-भक्षण की छूट है। तिब्बती लोग बौद्ध-धर्मावलम्बी होते हैं और उसके अनुसार जीव-हिंसा वर्जित है। अत इस कथा के अनुसार तिब्बती आहार के लिये जानवर को मारते समय उसका सास रोक लेते है और ऐसा मानते है कि इस विधि से जीवो का वध करने पर उन्हें पाप नहीं लगता।

विवाह पर गये हुए बारातियों को अधिक शराब पिला कर उन्हे पागल कर दिया जाता है और उनसे मनमाना परिहास किया जाता है। एक बार इसी तरह आई हुई बारात को लड़की वालो ने अत्यधिक शराब पिला कर पागल कर दिया और उनके जेवर, वस्त्र और बूट आदि सब छीन लिये। जब उन्हे होश आया तो बड़ी शर्म मालूम हुई। कन्या-पक्ष वालो ने पूछा—'क्या बात है जी? रात को यहा भूतों की बडी भारी लडाई हो रही थी? कहीं आप लोग तो उनकी लपेट मे नहीं आ गये?' बारातियां ने इसे अच्छा बहाना समझ कर कहा—'हाजी! हम तो लुट गये'। इसी कथा के आधार पर, यद्यपि तिब्बती लोग मद्यपान बहुत अधिक करते हैं परन्तु, शादी में कन्या-पक्ष वालो के बहुत आग्रह करने पर भी अधिक शराब नहीं पीते। कपडे आदि चुराये जाने के भय से वे बहाना बना कर कहते हैं—'शराब से बढकर संसार मे कोई विष नहीं है। यह वस्तु झगड़े की जड़ और ज्ञान की शत्रु है।'

काश कि यह महान सत्य उनके लिये बहाना न बन कर वास्तविकता बन सके।

वेश्या-वृत्ति : रोग और निदान

सुरेश रामभाई

हमारे शरीर को अक्सर ऐसे रोग लग जाते हैं जो दवा करने पर कम होने के बजाय बढ़ जाते हैं और उसी पर यह कहावत है 'मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की'। इसी तरह से हमारी सभ्यता को भी ऐसे रोग लग जाते हैं जो प्रगति और तरक्की के हर कदम पर बढ़ जाते हैं। इन्हीं भयानक रोगों में से एक है—वेश्यावृत्ति या स्त्रियों का व्यापार। सभ्यता का यह रोग सभ्यता के बराबर ही पुराना कहा जाता है और इसकी परिभाषा इस प्रकार की जाती है—'एक उच्च कोटि का पाप या ऐब जो दूर-दृष्टि से देखें तो पुण्य या गुण का सबसे बेहतरीन तरफदार है।' बहुत से विचारक, दार्शनिक और सभ्यता के अलमबरदार इसे एक 'सामाजिक जरूरत' बतलाते हैं। इसलिए सभ्यता के अधिकांश पुजारी इस रोग के फैलने को बहुत बुरा नहीं समझते और अगर उनसे कहा जाये कि आजाद भारत में यह रोग पहले के मुकाबले कहीं ज्यादा बढ़ गया है तो उनके कान पर जूं तक नहीं रेंगती। हमारे देश में पहले तो इस काम को हमारी लाचार और बेबस माताएं-बहनें मजबूरी से अपनाती थीं, लेकिन सुना है आजकल एक फैशन के तौर पर (ताकि घर की आमदनी बढ़े) हमारे आधुनिक और सभ्य समझे जानेवाले घरों में इस पेशे को अपनाया जाता है। बाहर से देखने में उन घरों को न कोई कह सकता कहेगा न उनमें और दूसरे घरों में कोई फर्क ही मालूम पड़ेगा। इस तरह हमारी माताओं और बहनों की इज्जत-आबरू एक व्यापार की चीज करार दे दी गई है और दी जा रही है। हमारा अपना खयाल है कि अगर यह चीज यूं ही चलती रही तो यह देश के अंदर न केवल मर्द-औरत के सम्बन्ध को बिगाड़ देगी, बल्कि कुटुम्ब के आदर्श को—जो मानवता की सबसे बड़ी ईजाद है—चूर-चूर कर देगी।

यह सही है कि आज जिस तेजी के साथ यह घातक रोग हमारे देश में बढ़ रहा है उसका कोई फौरी या सीधा-सादा इलाज नहीं है। यहां तो केवल वे रास्ते या उपाय सुझाये जा सकते हैं जिनसे इस बुराई पर काबू पाकर उसे मिटाया जा सकता है। 'मिटाना' शब्द हमने जानकर इस्तेमाल किया है, क्योंकि हम उनमें नहीं हैं जो यह समझते हों कि यह रोग मानव-जीवन के साथ हमेशा ही बना रहनेवाला है। यह रोग है, सच्चे मानों में एक रोग है जिससे जितनी जल्दी छुटकारा पाया जाये उतना ही अच्छा।

इस सदियों पुराने रोग के कारण एकदम और ठीक-ठीक बता सकना कोई आसान बात नहीं है। और न यह सवाल उतना हलका या मामूली है। फिर भी, बुनियादी तौर से इसके कारणों को हम तीन हिस्सों में बांट सकते हैं—समाजिक, आर्थिक और फौजी। इससे कोई भी इन्कार नहीं करेगा कि असमानता—चाहे वह समाजी दायरे में हो या आर्थिक में—इस बीमारी के लिये सबसे खास जिम्मेदार बनी रही है। लेकिन यह भी मानना पड़ेगा कि असमानता के अलावा, वेश्यावृत्ति को हमेशा से फौजों के लिये एक बरकत और जरूरत की चीज समझा गया है। हर देश में, हर काल में, फौजों का जोश और 'ईमान' कायम रखने के लिये वेश्यावृत्ति का होना लाजमी माना गया है। दूसरे शब्दों में, फौज-वृत्ति और वेश्यावृत्ति हमेशा साथ-साथ फूली-फली हैं, फूल-फल रही हैं और फूलें-फलेंगी। इसलिये जबतक फौज-वृत्ति या सेनायें बनी रहती हैं—चाहे राज-व्यवस्था कैसी ही क्यों न हो—तबतक वेश्यावृत्ति बनी रहेगी और यह उम्मीद करना कि फौजें तो रहें पर वेश्या न रहे वैसा ही होगा जैसे बबूल बो कर गुलाब पाने की उम्मीद रखना है। एक और चीज जिसने हालत को खराब कर दिया है, वह है इन्सान के ऊपर पैसे या मशीन का दिन दूने रात चौगुने हावी होना—यानी जीवन के समाजी और आर्थिक क्षेत्रों में केन्द्रीकरण का बढ़ जाना। यही वजह है कि विज्ञान की एक-से-एक आला खोज के बावजूद वेश्यावृत्ति नहीं रुकी, बल्कि उन खोजों या आविष्कारों ने उसे और शह दे दी है

और पूंजी या सत्ता के केन्द्रीकरण ने समाजी और आर्थिक असमानता को और भी दर्दनाक बना दिया है। सच यह है कि जितना ज्यादा केन्द्रीकरण होता है, उतनी ज्यादा असमानता बढती है और जितनी ज्यादा असमानता बढती है, उतना ज्यादा केन्द्रीकरण होता है । इसमे शस्त्रीकरण या फौजशाही भी उतनी ही बढती है, और वेश्यावृत्ति अधिकाधिक फैलती है !

इसलिये हम बिना किसी विवाद के यह कह सकते है कि स्त्रियो का व्यापार या वेश्यावृत्ति किसी देश मे तबतक नही, रुक सकती जबतक—

वहा सुरक्षा के लिए फौज या हथियार इस्तेमाल होते है ।

विकास के लिए मशीनें इस्तेमाल होती हैं।

शासन के लिये केन्द्रीकरण किया जाता है ।

"जिसकी लाठी उसकी भैंस" चलती है ।

इस रोग को मिटाने के लिए जो जरुरी शर्तें हैं ?वे इस प्रकार है :

देश अपनी सुरक्षा के लिए उत्तरोत्तर अहिंसात्मक असहयोग का साधन अपनाये ।

वहा की छोटी-से-छोटी इकाइया आर्थिक तौर से (कम-से-कम खाने, कपडे और मकान जैसी बुनियादी जरुरत के मामले में) स्वावलम्बी हो और मशीनो का सहारा कम-से-कम लिया जाय ।

शासन के पास केन्द्र में शुरू मे बहुत थोडी सत्ता हो और यह भी समय के साथ-साथ कम होती जाय और यह सत्ता या शक्ति नीचे की इकाई या टुकडी की तरफ से ऊपर वाली को सेवा के बल पर आप-से-आप मिल जाय ।

अधिकार कर्तव्य निभाने के फलस्वरूप प्राप्त हो।

ध्यान रहे, यह जरूरी शर्तें है । हमने इनको जरूरी और काफी दोनो नही बताया; क्योंकि न मालूम आगे चल कर इन्सान को क्या-क्या भुगतना पडे। लेकिन यह सही बात हैं कि ऊपर की शर्तों को पूरा किये बिना वेश्यावृत्ति रोकने की कोशिश करना आसमान के तारे तोड़ने-जैसी कोशिश करना है ।

अब जरा इन शर्तों की व्यवहारिकता पर विचार करें। कहने की जरुरत नही कि यह शर्तें या रास्ता उन रास्तों से बिलकुल अलग है जिनके द्वारा 'वैलफेयर स्टेट' बनाई जाती हैं। यह 'वैलफेयर स्टेट' तो शस्त्रीकरण, केन्द्रीकरण और औद्योगिकरण के तीन खम्भों पर टिका करता है, लेकिन उपर्युक्त शर्तें सर्वोदय-राज्य की तरफ इशारा करती हैं। यह वह कल्पना है जिसमे शोषण की कोई गुजायश ही नहीं रहेगी और अगर उसका कुछ अश बाकी रहा तो प्रगतिशील अहिंसात्मक असहयोग के अनोखे साधन से उसका काम तमाम कर दिया जायगा । यह वह कल्पना है जिसके द्वारा गाववालों का सच्चा लोकतन्त्र या जनराज स्थापित किया जा सकता है। जिसमे गाव वालों द्वारा राज होगा, गाव वालो का राज होगा और गांव वालों के वास्ते राज होगा। हम यहां यह भी कह दें कि 'वैलफेयर स्टेट' की तो कल्पना ही वेश्यावृत्ति पर टिकी है, क्योंकि इसे पाने का रास्ता पार्लियामेंट बताया गया है। वह पार्लियामेन्ट जिसकी सिरमौर या जननी ब्रिटिश पार्लियामेन्ट की मिसाल महात्मा गाधी ने "एक बाझ औरत और एक वेश्या" से दी है। जिसकी "गति बराबर न हो कर वेश्या की तरह भटकती है" और जिसके मिनिस्ट्रो के अन्दर "न सच्ची ईमानदारी रहती है और न जीता-जागता अन्त करण"। इसलिए अगर हम हिन्दुस्तान वाले अंग्रेजी, अमरीकी या रूसी नमूने की नकल करेगे तो हमारी नाव डूबे बिना नही रहेगी ।

पर आज हमारे देश में हालत यह हैं कि हमारी मदद और शिक्षा के लिये आये हुए हैं विदेशी विशेषज्ञ, विदेशी मशीनरी और विदेशी पूंजी । अंग्रेजो की लाई हुई या उनकी बनाई हुई आधुनिक सभ्यता के कोल्हू में तो हम पिस ही रहे थे; अब यह नयी मुसीबत और आ गई। बजाये इसके कि हम अंग्रेजो की लाई चीज को निकाल बाहर करे, हमारी सरकार ने उसे उल्टे और मजबूत करना शुरू कर दिया । इसीका नतीजा है कि आज आजाद भारत मे गरीब किसान और मामूली दस्तकार की जो तबाही है वह पहले कभी नही थी। 'पंचसाला योजना' के दो

(शेष पृष्ठ १३४ पर)

भारतवर्ष के नैतिक पुनरुत्थान के लिए

विष्णुशरण

सरकार का अस्तित्व जनता के कल्याण के लिये होता है। इसका उद्देश्य होता है देश में सुरक्षा तथा सुव्यवस्था स्थापित करना, विदेशी आक्रमणों से देश की प्रतिरक्षा करना और देश में से अभाव, क्षुधा, अज्ञान और आलस्य का निवारण करना। इसीलिए कहा जाता है कि आदर्श अवस्था की प्राप्ति पर, जब ये सब उद्देश्य पूर्ण हो जावेंगे तो राज्य का अस्तित्व ही समाप्त हो जायगा। उसकी कोई आवश्यकता ही नहीं रहेगी। परन्तु व्यक्तियों की सर्वांगीण उन्नति—शारीरिक, मानसिक, तथा नैतिक—करने के लिये सरकार को कुछ कार्य करने पड़ते हैं। जो कि जनता को चाहे कभी अरुचिकर भी प्रतीत हों, पर उसके हित की दृष्टि से किये ही जाते हैं। जनमत, शक्तिशाली हो कर भी उचित मार्ग का निर्देशन नहीं माना जा सकता और उस समय में उसकी उपेक्षा करनी पड़ती है। अथवा उसका परिवर्तित या सुशिक्षित करना पड़ता है। इसलिए कभी-कभी सार्वजनिक हित के लिए सरकार को ऐसे काम करने पड़ते हैं जो ऊपर से जनता की भावनाओं को ठेस पहुंचाने जान पड़ते हैं। भारतवर्ष में भी इस समय ऐसे अनेक क्षेत्र दिखाई पड़ते हैं जहां पर हस्तक्षेप करना सरकार का कर्तव्य है।

इन दिनों सिनेमा उद्योग पर सरकारी नियन्त्रण के बारे में बहुत कुछ सुना गया है, परन्तु सरकार की इन पवित्र योजनाओं तथा इच्छाओं को छोड़ कर कार्य-रूप में तो कुछ दिखाई दे नहीं रहा। सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि सिनेमा-उद्योग आशीर्वाद की अपेक्षा एक शाप के रूप में ही भारतवर्ष में आया है और वास्तव में वर्तमान अवस्था में तो सिनेमा-उद्योग की समाप्ति उसके अस्तित्व की अपेक्षा अधिक कल्याणकारी होगी। सिनेमा चित्रों के दिन प्रतिदिन के गिरते हुए स्तर को कोई आंखों से देख सकता है। अधिकाधिक संख्या में ऐसे चित्रों का निर्माण हुआ है जो रद्दी की टोकरी के योग्य ही हैं। लगभग सभी चित्रों का एक ही केन्द्र बिन्दु है जिसके चारों ओर कथानक घूमता है—एक लड़के और लड़की का मिलन होता है और प्रथम दृष्टि में प्रेम हो जाता है। परिस्थितियां उनको दूर धकेल देती हैं और फिर मिला देती हैं और कभी नहीं भी मिलातीं। चार-चार पैसे में बिकने वाली सिनेमा के गानों की किताबों में यह बात स्पष्ट रूप से लक्षित हो जाती है। यह देख कर कि ऐसे कथानकों से जनता कुछ ऊब उठी है अब फिल्म-निर्माताओं की प्रवृत्ति होती जा रही है कि उनमें कुछ पिस्तौल-बाजी और खून-खराबी के दृश्य जोड़कर चित्र को रोमांचक बना दिया जाय। सिनेमा-उद्योग की यह पिपासा मानो नैतिक आदर्शों की होली जला रही है। सिनेमा-उद्योग निश्चय ही भारतवर्ष के नैतिक ह्रास का एक जबरदस्त कारण है। कभी-कभी आश्चर्य होता है कि हमारी इन बहनों को क्या हो गया है; जो प्राचीन हिन्दू धार्मिक ग्रन्थों में देवियों के रूप में प्रतिष्ठित हैं, जिन्होंने भारतवर्ष की लाज रखी, आदर्शों को स्थापित किया, विद्वत्ता और वीरता में पुरुषों के भी दांत खट्टे कर दिए वे आज देश के नैतिक पतन में योग दे रही हैं? क्या उद्योगपतियों ने अपने चमचमाते स्वर्ण से उनकी आंखों पर पट्टी बांध दी है? धन के इन दस्युओं के हाथ में क्यों खेल रही हैं वे? क्या वे किन्हीं अन्य राष्ट्र-निर्माणकारी उपायों से अपनी आजीविका का उपार्जन नहीं कर सकतीं और कम-से-कम क्या वे संस्कृति तथा सुरुचिपूर्ण चित्रों के निर्माण तक ही अपना सहयोग सीमित नहीं रख सकतीं? वे अपनी प्राचीन पवित्रता व श्रेष्ठता को समझें। धन और ख्याति की इस भौतिक तृष्णा में न पड़ें।

सिनेमा-चित्रों के दूषित प्रभाव का क्षेत्र सिनेमा हाल तक ही सीमित नहीं बल्कि बहुत व्यापक है। बाजारों में सिनेतारिकाओं के चित्रों की बाढ़-सी आ गई है। समाचारपत्रों में, साप्ताहिक और मासिक पत्रों में, दूकानों

में, घरों में, कमरों में; सर्वत्र वे विद्यमान हैं। उन चित्रों में चन्दन की-सी शीतलता, चांदनी की-सी स्निग्धता, गंगा-सी पवित्रता अथवा महुए की-सी मादकता का अनुभव नहीं होता, बल्कि दग्ध करने वाली वासना की लपटें ही मिलती हैं। एक ओर से लाउडस्पीकरों के फँसे हुए मुखों से सिनेमा के गूंजते हुए गाने निकल जाते हैं और दूसरी ओर से टांगेवाले और रिक्शावाले, साइकिल-सवार और पैदल, बच्चे और बड़े सब गानों को गाते हुए या गुनगुनाते हुए अपनी मंजिल की थकान को दूर करने का प्रयास करते हैं। एक ऐसे राष्ट्र का भविष्य क्या होगा जिसके बालक और बालिकाएं—देश के कल के कर्णधार इस प्रकार बिगाड़े जा रहे हैं? ऐसे विषाक्त और दम घोटनेवाले वातावरण में रहते हैं और सांस लेते हैं और जिनके होठों पर सदा बालम और साजन ही थिरकते रहते हैं। सर्वत्र ही साधुओं, महात्माओं और नेताओं के चित्रों ने सिनेतारिकाओं के लिए स्थान खाली कर दिया है। कपड़े के थानों और साबुन के डिब्बों पर उनके चित्र लगते हैं। उनके नाम पर वस्तुओं की किस्मों के नाम रखे जाते हैं और कमरे की दीवारों पर लटकते हुए कैलेन्डरों से छोटे और बड़ों, सभी की आंखों के आगे से वे हरदम गुजरते हैं। बस, कमी इसी बात की रह गई है कि सिनेतारिकाओं के प्रति उचित सम्मान-प्रदर्शन के लिये नगर-पिता सड़कों और नगरों के नाम भी उन्हींके नामों के आधार पर रखने लगें। देश के भावी बौद्धिक और नैतिक विकास का अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है।

इनके साथ ही स्त्रियों के नग्न अथवा अर्धनग्न चित्र भी सार्वजनिक स्थानों पर टंगे हुए पाये जा सकते हैं। ये स्त्री-जाति के लिए तो अपमान हैं ही, देश के लिए भी घोर कलंक हैं।

जब हमारे बच्चे ऐसे चित्रों और गानों की अमिट छाप अपने दिमागों पर लिये फिरेंगे तो आगे जाकर वे कैसे शारीरिक और मानसिक कंकाल न बन जावेंगे। ऐसे चित्र उनके पिताओं के ड्राइंग रूमों को सजाते हैं और जहां से वे छोटी-से-छोटी चीज भी खरीदते हैं, उन दूकानों में भी ये चित्र लगे रहते हैं। पत्र-पत्रिकाएं जिन्हें वे पढ़ते हैं इन तसवीरों से भरी होती हैं और जहां कहीं वे घूमने जाते हैं आंखों के सामने सिने-चित्रों को पाते हैं।

चाय और बीड़ी पर व्यय के रूप में भी देश के धन और स्वास्थ्य की बड़ी जबरदस्त हानि हो रही है। यदि सरकार इतना न भी करे कि वह इन बढ़ते हुये रोगों को रोकने के लिये इनके विरुद्ध प्रचार करे अथवा इन उद्योगों पर कठोर नियंत्रण लगाये; पर वह इतना तो अवश्य ही कर सकती है और करना ही चाहिये कि इनके प्रचार को आगे बढ़ने से रोके। इसलिये इन चीजों की विज्ञापनबाजी कानून के विरुद्ध घोषित कर दे।

फिर एक ऐसा और क्षेत्र है जिसमें सरकार की उदासीनता दिल में बेहद खटकती है। स्वतंत्र निर्णय और चिंतन की शक्ति और बुद्धि की तीक्ष्णता किसी राष्ट्र की बहुमूल्य सम्पत्ति होती है। आर्थिक तथा राजनैतिक स्वतंत्रता मानसिक स्वतंत्रता पर ही आधारित होती है। मानसिक स्वतंत्रता के बिना वे टिक ही नहीं सकतीं। पर स्वतंत्र भारत में तो इन शक्तियों का गला घोटा जा रहा है। यह तो एक साधारण-सी बात है कि विद्यार्थी पाठ्यपुस्तकें खरीदना पसंद नहीं करते और न वे उनके पास बहुधा पाई ही जाती हैं; पर वे अधिकतर खरीदते हैं—कुंजियां, नोट्स पथ-प्रदर्शक, विजय-गैस-पेपर्स, श्योर सक्सेस आदि। इनके पढ़ने से नतीजा यह होता है कि विद्यार्थियों को अपना मस्तिष्क लगाना नहीं पड़ता और वे केवल इन्हें रट डालते हैं। परीक्षाओं में भी वे इन्हीं के सहारे उत्तीर्ण हो जाते हैं और उन्हें पाठ्य पुस्तकों के दर्शन करने तक की आवश्यकता नहीं पड़ती। ऐसी हालत में परीक्षा का उद्देश्य ही विफल हो जाता है और वे उम्मीदवारों को उत्तीर्ण घोषित करने के काम के उद्योग बन जाती हैं। यू.पी. बोर्ड में गणित एक अनिवार्य विषय नहीं रहा। मौखिक परीक्षाएं अवांछनीय समझी जाती हैं। जिनकी उपादेयता के बारे में दो मत हो ही नहीं सकते ऐसी रट्टूपीर बनाने वाली पुस्तकें लाखों की संख्या में छपती हैं। जहां एक ओर हिंदी का सर्वोत्तम साहित्य कागज के अभाव में अप्रकाशित पड़ा हुआ है वहां ऐसी पुस्तकों के लिये कागज की कोई कमी ही नहीं। उत्कृष्ट साहित्य के लिए प्रकाशकों के प्रकाशन-प्रोग्राम वर्षों तक के लिये बंद हैं, पर

सस्ते गाइडों और नोटबुकों के लिए हर समय द्वार खुला है। ऐसी पुस्तकों के प्रकाशक पंद्रह दिन में सफलता की गारन्टी देते हैं। एक ओर मनचाहे मूल्य बढ़ाकर दूसरी ओर पोस्टेज पैकिंग माफ, २५ प्रतिशत कमीशन आदि के प्रलोभनों का जाल फैलाते हैं। ऐसे प्रकाशकों का एक-मात्र उद्देश्य है—रुपया कमाना। उनकी बला से विद्यार्थियों के उगते हुए मस्तिष्क का नाश हो। जहां एक ओर इस बात की आवश्यकता है कि परीक्षा-प्रणाली में परिवर्तन हो वहां दूसरी ओर ऐसी पुस्तकों के प्रकाशन पर भी रोक लगानी चाहिए। इसी प्रकार अश्लील साहित्य भी खुले आम छपता है और निकलता है।

देश के अंदर पूंजी की बहुत कमी है, पर इन क्षेत्रों के लिए कोई कमी नहीं है। अगर यही रुपया देश की उन्नति और सामाजिक रूप से लाभदायक क्षेत्रों में व्यय किया जाता तो देश का नैतिक तथा भौतिक उपकार हुआ होता। ऐसा व्यय स्वयं तो अवांछनीय है ही, पर यह समाज के निम्नतम धरातल तक पहुंचकर उसे भी विषाक्त कर रहा है। इससे देश में अनैतिकता, अनुशासन-हीनता, निराशा, दुःख, दुर्गुण, आत्महत्या और मानसिक व शारीरिक भ्रष्टाचार फैल रहे हैं। राष्ट्र के इस कोढ़ को अविलम्ब ही निकाल फेंकना चाहिए। भारतवर्ष के ग्राम ही भारतीय-संस्कृति और सभ्यता के उद्गम हैं, और जब इन चीजों का दूषित प्रभाव ग्रामों को भी अपने आवरण में ढक लेगा तो निश्चय ही भारतीय आदर्श और परम्परा की पावन गंगा अपने उद्गम स्थान पर ही सूख जावेगी। भारतवर्ष की सांस्कृतिक और आत्मिक मृत्यु हो जावेगी। इससे ज्यादा दुःख और क्षोभ की क्या बात हो सकती है!

कुछ व्यक्ति सलाह देते हैं कि ये ऐसे क्षेत्र हैं जहां सरकार का हस्तक्षेप उचित नहीं। प्रबल जनमत से ही काम लेना चाहिये। तो क्या जाग्रत जनमत की प्रतीक्षा में ही इस बात को छोड़ दिया जावे? इसकी भी क्या खबर है कि इन बातों के आक्रमण से ही जनमत इतना अधिक निर्बल, दूषित और परास्त हो गया है कि इनके विरुद्ध अपनी आवाज उठाने का साहस ही उसमें नहीं रहा है।

(पृष्ठ १३१ का शेषांश)

वर्ष पूरे होने के बाद भी बेकारी और बेरोजगारी—पढ़े-लिखों में क्या बे-पढ़े लिखों में क्या—खूब बढ़ रही है, ग्राम उद्योग और खेती चौपट हो रहे हैं और इसलिये वेश्या-वृत्ति या स्त्री व्यापार भी जोरों पर है। यही नहीं, आज जगह-जगह—महाराष्ट्र, कर्नाटक, गुजरात, मध्यभारत, राजस्थान, पूर्वी उत्तर प्रदेश, सुन्दरवन, मैसूर और सुदूर दक्षिण में— अकाल पड़ रहे हैं या अकाल-जैसी हालत है। और फिर आधुनिकता के इन तरीकों के कारण ही राजपूताना का रेगिस्तान गंगा-जमुना की घाटी में बढ़ रहा है और हम बेबस देख रहे हैं। यह है धरती के साथ हमारी सभ्यता का बलात्कार। इन सबके अलावा दुनिया की राजनैतिक स्थिति यह रही है कि इंग्लैण्ड और अमरीका से हथियार ले-लेकर हम अपनी आजादी नहीं कायम रख सकते और हम अहिंसात्मक असहयोग—जिसके द्वारा आजादी हासिल की थी—का हथियार ही अपनाना पड़ेगा।

स्पष्ट है कि व्यावहारिक और सैद्धान्तिक, दोनों ही विचारों से हम सभ्यता के उस बहाव के खिलाफ काम करना और चलना है, जिसपर हम दो-सौ बरस से चल रहे थे। हमें खून-चूसने वाली 'वेलफेयर स्टेट' की कल्पना का परित्याग कर सदाबहार वाली 'सर्वोदय स्टेट' की कल्पना की तरफ बढ़ना है जिसमें सचमुच वर्ग-विहीन और जाति विहीन समाज बन सकेगा और अहिंसात्मक असहयोग ही एकमात्र अस्त्र हर किसी के हाथ में होगा। तभी हमारी माताओं-बहनों की इज्जत-आबरू बचेगी और तभी वे घर की देवियों के रूप में खिल और फल-फूल सकेंगी।

ग्राम और ग्रामोद्योग

रामकिशोर 'पाषाण'

यह तो मानी हुई बात है कि ग्राम-विकास के लिये ग्रामोद्योग एक बहुत जरूरी चीज है। ग्रामोद्योग हमारे खेती के काम में सहायक, फुरसत के समय किसान को काम देने और गांवों को स्वावलबी और सुखी बनाने के साधन हैं। गावों का जिस तरह शोषण आज शहरों द्वारा हो रहा है, उसे रोकने का एकमात्र प्रमुख उपाय है ग्रामोद्योग। ये सब बाते आज भारत के अर्थशास्त्री मानते है और कई संस्थाए और सरकारे भी इस प्रयत्न में है कि गावो में भिन्न-भिन्न प्रकार के ग्रामोद्योग चलायें जाय और उन्हे प्रोत्साहन दिया जाय।

लेकिन इस सिलसिले मे सबसे बडी समस्या यह है कि गावो में ग्रामोद्योग टिके कैसे ? बडे उत्साह से कुछ कार्यकर्त्ता या सस्थाएं गावो में करघे, बैल-चक्की और घानी लगाती हैं। उनमें अपना समय, धन और शक्ति खर्च करती है। लेकिन कुछ ही दिनो के बाद वे देखती है कि गाव की जनता उनमें कोई दिलचस्पी नही लेती है। समझाने-मनाने पर भी वह शहर से मिल का तेल, मिल का आटा और मिल का बना कपडा खरीदती हैं। बेचारा ग्रामोद्योगी कार्यकर्त्ता हैरान हो जाता है। वह नुकसान सहकर अपना ग्रामोद्योग चलाना चाहता है, लेकिन गाव की जनता मिल की सस्ती चीजों की ओर ही आकर्षित होती है।

प्रश्न उठता है कि आखिर गलती कहा है ? क्या बात है कि ग्रामोद्योग जनता को आकर्षित नही करते ? क्यों ग्रामीण जनता अपनी चीज समझ कर—भले ही वह कुछ महगी क्यो न हो—ग्रामोद्योगी चीजों को नही अपनाती? क्या ऐसा कोई उपाय नही है कि ग्रामोद्योगी चीजे मिल से महगी न हो, बल्कि मिल से भी अधिक सुलभ और सस्ती हो ?

हा, इसका उत्तर भी हमने सोचा है। ग्रामोद्योगी चीजे महगी क्यों होती है ? जनता उनकी ओर क्यो आकर्षित नहीं होती? इस सिलसिले में हम उपरोक्त तीन उद्योगों—हाथ करघे, बैल-चक्की और घानी—का उदाहरण ही लेकर देखेंगे कि हमारी प्रचलित कार्य-प्रणाली में दोष कहा है ? क्योंकि यह तीन उद्योग ही भोजन और वस्त्र की प्राथमिक आवश्यकताओं की दृष्टि से अत्यत महत्वपूर्ण हैं।

अभी प्रणाली क्या है ? हमारे कार्यकर्त्ता गाव में ग्रामोद्योग लेकर जाते हैं। अपने साथ बैल-चक्की, घानी, करघे और इनमें लगने वाले बैल और बुनकर लेकर जाते हैं। उन्हे उद्योग के द्वारा अपने बैलों को खिलाना पडता है, स्वय अपना और अपने बुनकरों का पेट पालना पड़ता है और यह आवश्यक भी है।

अब यह सरलता से समझा जा सकता है कि यह सब खर्च ग्रामोद्योग से निकलने वाली चीजों की कीमत से ही निकलेगा। जिसका अर्थ यह हुआ कि हमारे बैल, हमारे बुनकर और स्वय हम इन ग्रामोद्योगों पर एक बोझ बन कर बैठ जाते है और लोगो से कहते है कि ज्यादा कीमत देकर भी हमारे इन बोझों को संभाले।

इससे बचने के लिए कुछ साथियों ने एक योजना बनाई है। सक्षेप में वह इस तरह है कि हम ग्रामोद्योगो को गावो में अवश्य ले जाय। बैल-चक्की ले जाय, घानी ले जाय, करघे ले जाय लेकिन बैल न ले जाय, बैल हाकने वाले न ले जाय, कपड़ा बुनकर अपनी मजदूरी निकालने वाले बुनकर न ले जाय और स्वय भी इन ग्रामोद्योगों पर जीने वाले बनकर न जाय।

तो फिर हम क्या करे ? ये चक्किया, घानिया कैसे चले ? सरल तरीका है। सब मानते हैं कि गावो मे किसान और उसके बैल साल में कम-से-कम चार महीने खाली रहते है। तो क्यो न हम इन्हे कहे कि भाई ! हमने यह चक्की ला दी है, जिसे आटा चाहिए वह स्वय अपने बैल ले आये, गेहू या ज्वार ले आये और स्वय चलाकर अपना आटा पीस ले। अथवा तिलहन ले आये, बैल ले आये और अपने लिये तेल निकाल ले। अपना सूत ले आये और कपड़ा बुन ले।

हम मानते हैं कि शुरू शुरू में उन्हें कुछ बातों की ट्रेनिंग देनी होगी, मार्ग-दर्शन करना पड़ेगा, और हमारे ट्रेनिंग-प्राप्त ग्रामोद्योगी कार्यकर्त्ताओं को वहां अपना कुछ समय भी देना होगा। यह भी जरूरी है कि बैल का खर्च हटा देने पर भी कुछ खर्च (घिसावट आदि के लिये भी) हमें इन उद्योगों पर करना होगा। जहां तक हमारा स्वयं का प्रश्न है, हम खेती करें—आदर्श रूप से खेती करें, जिसमें कम मेहनत और कम खर्च में भी अच्छी फसल पैदा करके गांव के सामने आदर्श रखें। इस तरह हमारी और हमारे ग्रामोद्योगी कार्यकर्त्ताओं की जीविका खेती के सहारे चले। (यह जरूर है कि खेती के लिये हमें बैल रखने होंगे, किन्तु इनका बोझ ग्रामोद्योगों पर तो न होगा) और इन ग्रामोद्योगी साधनों की घिसावट का—निरीक्षण व्यय के रूप में—हम गांव वालों से नाम-मात्र को कुछ किराया (अनाज के रूप में हो तो अच्छा) ले लिया करें। यह किराया इतना कम होगा कि गांववाले खुशी से उसे दे सकेंगे। इस प्रकार गांव में ही उन्हें मिल से भी सस्ता तेल,कपड़ा और आटा मिल सकेगा। उदाहरण के लिये यदि शहर में आटा-पिसाई दस आने मन हो तो हम एक मन का किराया आधा सेर आटा (या दो-अढ़ाई आने) ही लें। इस किराये में से ही कुछ भाग जमा करके रखा जायगा, ताकि खराब हो जाने के बाद हम अपने साधनों को बदल सकें और नये खरीद सकें। हमारी कल्पना तो यह है कि इस योजना के लाभ को समझकर कुछ दिनों के बाद स्वयं गांव के लोग चाहेंगे कि थोड़ा-थोड़ा चन्दा करके वे ही सम्मिलित रूप से कुछ साधन खरीद लें।

इस योजना में सबसे बड़ा लाभ यह है कि किसान यह समझ लेंगे कि घानियां और चक्कियां सब अपनी ही हैं। जब भी उन्हें समय मिले, वे आकर इनसे लाभ उठा लेंगे और तब कोई भी इसके लिये शहरों में जाकर मिलों की शरण न लेगा। इस तरह शहर आज गांव का जो शोषण कर रहे हैं, वह बन्द हो जायेगा।

हमने ऊपर विशेष रूप से इन तीन ही उद्योगों के बारे में चर्चा की है। किन्तु यही सिद्धान्त दूसरे ग्रामोद्योगों के विषय में भी लागू हो सकता है। छोटे साधन, छोटी छोटी मशीनें (बैलों या हाथ से चलने वाली) हम गांव में ले जा कर रख दें और गांव वाले स्वयं ही उन्हें चला कर अपना काम चला लें। यही तरीका है, जो ग्रामोद्योगों को सफल ही नहीं, लोकप्रिय बना देगा। अवश्य कुछ ऐसे भी उद्योग हैं, जिनके लिए कार्यकर्त्ताओं को अपना पूरा समय उन्हीं में लगाना पड़ेगा और उसकी कुछ मजदूरी उन्हीं में से निकलेगी। किन्तु हमारा सुझाव यह है कि ग्रामोद्योगों पर कम-से-कम भार रहे। इन्हें सहायक उद्योगों के रूप में ही रखने का प्रयत्न किया जाय।

पैदावार परिश्रम तथा सहयोग से बढ़ेगी

कहते हैं छोटे टुकड़ों से पैदावार कम होगी। हम कहते हैं, पैदावार टुकड़ों पर नहीं, श्रम पर अवलंबित है। हाथ से काम करके, कृषि खेती करके भी पैदावार बढ़ानी होगी। जापान में तो न हल है, न बैल और न ट्रैक्टर। साढ़े सात एकड़ से ज्यादा जमीन, कानून से, किसी के पास वहां नहीं रह सकती। वहां जो साढ़े तीन एकड़ में पैदावार होती है, वह यहां तीस एकड़ वाला भी आज नहीं कर पाता। हाथ से परिश्रम करके पैदावार बढ़ाये बगैर देश का कल्याण होनेवाला नहीं है। छोटे टुकड़े हों तो किसान आपस में मिल कर सहयोग करें। सिंचाई के लिए, पानी के लिए सहयोगी प्रबन्ध करें, तो पैदावार पचास गुना बढ़ेगी। अपने-अपने खेतों में काम करते हुए भी सहयोगी खेती करने से पैदावार बढ़ेगी।

—जयप्रकाश नारायण

सर्वोदय-केन्द्र, शामलाजी

अमृतलाल मोदी

बम्बई राज्य ने रचनात्मक कार्यक्रम को वेग देने के लिए सर्वोदय-योजना बनाई है। इसके अनुसार हर एक जिले में एक एक केन्द्र है, जहां पर अच्छे रचनात्मक कार्यकर्ता को उस प्रदेश की उन्नति के लिए एक विशेष व्यवस्था सौंपी जाती है। ऐसा ही एक केन्द्र बम्बई के उत्तरभाग में बनासकाठा जिले के दाता तालुके में है। इसका प्रारंभ श्री अकबरभाई चावडा के सचालकत्व में जो आजकल लोकसभा के सदस्य हैं, हुआ था। इसके सबध में कुछ जानकारी मैं 'जीवन-साहित्य' के अप्रैल १९५२ के अंक में छपे अपने एक लेख द्वारा दे चुका हू। इसी तरह का एक अन्य केन्द्र साबरकाठा जिले में है।

साबरकाठा जिले में ईडर का पुराना राज्य शामिल है। उसमें काम करनेवाले श्री नरसीभाई पुराने रचनात्मक कार्यकर्त्ता होने के नाते इस केन्द्र के सचालक बनाये गये है। उनके सचालकत्व में लगभग चार वर्ष से यह केन्द्र चल रहा है।

साबरकाठा में भी भीलों की ही बस्ती है। इस प्रदेश के भील दाता तालुके के भीलों से कुछ ठीक हैं। इस अर्थ में कि प्रदेश के कार्यकर्त्ताओं को अपने सभी कार्यों में भीलो का सहयोग मिल जाता है। कारण कि इस प्रदेश में काफी अर्से से रचनात्मक कार्य होता रहा है। जब कि दाता में आजतक ऐसा कोई प्रयत्न नहीं हुआ था।

साबरकाठा का केन्द्र शामलाजी में है। शामलाजी हिन्दुओ का एक तीर्थ-स्थान है। इस स्थल को देखने से पता चलता है कि वह किसी पुराने समय में कोई बड़ी नगरी रही होगी। 'शामलिया लालजी' श्रीकृष्ण की एक लावण्यमय मूर्ति का एक प्राचीन मन्दिर है। आसपास कई बड़ी जीर्णशीर्ण अवस्था में छोटी-छोटी देहरियां हैं। इधर उधर जहा भी देखिये, पुरानी ईंटो का ढेर मिलेगा और कई एक जगह खण्डहर। कम-से-कम ८-१० छोटे-बड़े मंदिर अभी भी वर्तमान हैं। मेरा अनुमान है कि वहा पर लगभग ५०० से १००० वर्ष पूर्व कोई बड़ा नगर अवश्य रहा होगा।

अहमदाबाद से उत्तर की तरफ और दिल्लीवाली लाइन से पूर्व की ओर प्रांतिज रेलवे जाती है। अहमदाबाद से ३५ मील पर तलोद स्टेशन है। तलोद से ३० मील मोडासा का बडा कस्बा है। वहा से डूगरपुर लगभग ६० मील है। यह शामलाजी डूंगरपुर और मोडासा के लगभग बीच में आता है। वहा से राजस्थान थोडी ही दूर रह जाता है। आजकल इधर से रेलमार्ग निकाले जाने की बातचीत चल रही बताते है।

ऐसे भीतरी प्रदेश में यहा आसपास कई छोटे-छोटे गांव तथा भीलो की बस्ती है, शामलाजी का यह केन्द्र है। इस केन्द्र ने इन चार वर्षों में अच्छी प्रगति की है, यह कहा जा सकता है।

इस मुख्य केन्द्र में काम करनेवाले लगभग १३ कार्यकर्त्ता है। सचालक श्री नरसीभाई के अलावा श्री रतिभाई उपसचालक और धीरूभाई हिसाबनवीस है। इनके अतिरिक्त गृहपति, तीन शिक्षक, खेतीवाडी, दवाखाना, उद्योग, सस्कार आदि के लिए कार्यकर्ता है। इनके लगभग १३ उपकेन्द्र है। इन उपकेन्द्रो में सभी स्थानो पर शालाएं तो चलती ही हैं, भजनमंडलिया भी सभी स्थानो में है। केन्द्र के विस्तार में कुल ७४ गाव है, जिनमें २६ शालाए चलती है। कुछ शालाए सरकार द्वारा चलती हैं और कुछ सेवा-समिति नामक संस्था चलाती है।

उपरोक्त १३ उपकेन्द्रों में शाला और भजन-मंडली की प्रवृत्ति के अतिरिक्त सहकारी संस्थाएं भी चलती है। तीन सहकारी दुकानें चलती है। साथ ही तीन खादी-केन्द्र और तीन खेती-केन्द्र भी है।

मुख्य केन्द्र में बुनाई का अच्छा काम चलता है। मुख्य केन्द्र तथा उपकेन्द्रों के लगभग सभी कार्यकर्ता कातते है। सभी शालाओं के विद्यार्थी भी कातते हैं। फिर खादी-केन्द्रो द्वारा अन्य लोगों से चर्खे चलवाये जाते है। इस तरह से इस प्रदेश में स्वावलम्बी खादी का,

सूत का उत्पादन खूब होता है और वह करीब-करीब सारा ही यहा के बुनाई-केन्द्र में ही बुना जाता है।

कार्यकर्ताओ के कार्य तथा लोगों के सहकार का अदाज उपरोक्त विविध प्रवृत्तियो से लगता है। फिर इन थोडे वर्षों में दुष्काल से लडने के लिए कई नये कुएं खुदवाये गये है। लगभग ४०० कुए हाथ मजदूरी द्वारा व तकावी देकर केन्द्र द्वारा इस विस्तार में खुदवाये गये है। इस प्रकार के कार्य से जनता, प्रदेश और देश सभी का लाभ होता है।

अभी कुछ ही समय पहले दिसंबर १९५२ में इसी स्थल पर इस प्रदेश के निवासियो के लाभार्थ एक दत-नेत्र-यज्ञ किया गया था। गुजरात के लगभग बीस-तीस अच्छे-अच्छे डाक्टर आठ से दस दिन तक यहा ठहरे थे। उन्होंने सभी कार्य मुफ्त में प्रजा की सेवार्थ किया। इससे नरसीभाई की ख्याति में और भी वृद्धि हो गई। इस नेत्रयज्ञ में लगभग १२०० रोगी आये थे जिसमें से लगभग ५०० आंखो के रोगी थे तथा शेष दातो अथवा अन्य रोगों के। करीब २५० आपरेशन किये गए। ऐसे ही नेत्रयज्ञ दूसरे केन्द्रों में भी करने का प्रस्ताव है।

इसी क्षेत्र में कलोद से मोडासा जाते हुए बीच में धनसुरा आता है। उसके नजदीक अजीतरा ग्राम में भारत सरकार की योजनानुसार कम्यूनिटी प्रॉजेक्ट खोला गया है। इसमें सौ ग्राम हैं और उसके एक प्रॉजेक्ट आफिसर वहा रहते हैं।

इस प्रकार यह केन्द्र शामलाजी में भीलो के बीच में बहुत काम कर रहा है। यहा के भील भी लगभग सभी प्रकार से रीति-रिवाज, रहन-सहन, भाषा आदि में दाहा तालुके के भीलो से मिलते-जुलते हैं।

पिछडे हुए लोगों के बीच काम करके उनको सबके समान स्तर पर लाना और यह भी विधान के प्रारंभ से १० वर्ष के भीतर अर्थात् १९६० तक हम सबका कर्तव्य है। आशा है कुछ लोग इस प्रकार के रचनात्मक कार्यक्रमों में दिलचस्पी लेकर स्वय ऐसा काम करने लगेंगे जिससे भारत की उन्नति अधिक शीघ्रता से हो सके।

●

इतिहास की पुकार

हमारी सबसे बडी मुसीबत यह रही है कि लोग मजहब, जात-बिरादरी और सूबों के अलग-अलग खानो में बद रहे है। जब अंग्रेजी राज से हमारी जग चल रही थी तो गाधीजी ने सबसे बडा सबक हमें यह दिया था कि हम इन अलग-अलग खानो में ही न पडे रहें बल्कि मिलकर काम करें और सब अपने को उस बडे समाज के हिस्सेदार समझें जो राष्ट्र कहलाता है। कौमियत के माने भी यही है कि आप चाहे किसी भी मजहब या सूबे से सबंध रखते है और पेशा भी चाहे कोई करते है, मगर सब अपने को एक ही राष्ट्र का अग समझें।

हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक हिन्दुस्तान के कितने ही रूप और कितनी ही तस्वीरें हैं। अनेक भाषाए और अनेक रहन-सहन हैं मगर ये सब मिलकर भारत बनता है। बदनसीबी यह है कि हम एक कौम को, जो बढ़ती हुई आई है और जिसमें कितनी ही बाहर और अन्दर की सस्कृतिया खप गई हैं, पहचानने से इन्कार करते हैं। हिन्दुस्तान का इतिहास पुकार-पुकार कर कह रहा है कि जब-जब हमने धर्म और मजहब के नारे लगाए तभी हम कमजोर भी हुए। इसलिए अगर हमें मुल्क को ताकतवर बनाना है तो इस बात से सबक हासिल करना होगा और उसकी जड़ और बुनियाद मजबूती से एक कौमियत की भावना पर कायम रखनी होगी।

नई दिल्ली, ३१.१.५१ —जवाहरलाल नेहरू

●

जीवन-आधार घास

पी० एम० दबदघाव

प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सभी प्राणी अपना निर्वाह पौधों पर करते हैं। मांसाहारी किसी भी प्रकार से घास खाने में शाकाहारियों की अपेक्षा कम नहीं हैं। जो भोजन आपकी मेज पर अनेकों स्वादिष्ट पदार्थों के रूप में रखा हुआ होता है उसका स्रोत क्या है? संक्षेप में इसका उत्तर यह है कि यह भोजन और कुछ न होकर पौधों से उत्पन्न पदार्थ ही है जिनको पशुपक्षी चर कर निर्वाह करते हैं। हम दूध को पूर्ण आहार कहकर पुकारते हैं, यह कहां से आता है? यह भी सभी प्रकार की घासों का परिवर्तित रूप ही तो है, यदि घास नहीं होती तो कोई भी पशु नहीं होता और पशुओं के न होने पर दूध भी कहां से आता?

यदि इस वनस्पति जगत में कोई ऐसा पौधा है जो अनन्तकाल से मानव-जाति की लगातार सेवा करता आ रहा है और हमारा अस्तित्व तक जिसके आधार पर टिका हुआ है; और जिसके बारे में सबसे कम जानकारी है, तथा जिसे बहुत कम समझा गया है, यह पौधा बेचारा घास तथा उसका साथी 'लेजूम' (दलहन) है। दलहन मटर कुल जैसे क्लोवर आदि से सम्बन्ध रखने वाले पौधे हैं। इनमें जिस भूमि में यह उगाये जाते हैं उसकी मिट्टी को उपजाऊ बनाने का गुण होता है।

तनिक गंभीरतापूर्वक सोचने से ज्ञात होता है कि आज घासों का जो सजीव आवरण दिखाई देता है, उसने ही सबसे पहिले संसार की शुद्ध मिट्टियों को आच्छादित किया था और प्रकृति की अग्नि, वायु, जल आदि प्रचंड शक्तियों से उनकी रक्षा की थी। आइये हम प्रकृति के इस रहस्य की गहराई से जांच करने की कोशिश करें। यदि हम घासों की जड़ों का निकट से निरीक्षण करें तो हम देखेंगे कि वे बहुत फैली हुई होती हैं और धरती में गहराई तक चली जाती हैं। हजारों जड़ें, जो धरती में घुस जाती हैं; धरती को पोला बना देती हैं और सड़कर या गलकर नष्ट होने वाली जड़ों से मिट्टी को एक ऐसी अमूल्य सामग्री मिलती है जो स्पंज का काम देती है, तथा नमी को बहुत समय तक बनाये रखती है और मिट्टी के रंग को काला तथा उसको उपजाऊ बना देती है। प्रत्येक जड़ एक बहुत छोटे लेकिन शक्तिशाली बांध का काम करती है, और मिट्टी के कणों को घुलकर बह जाने से बचाती है। घास का ऊपरी भाग वर्षा की मिट्टीनाशक शक्ति को कम कर देता है और इस प्रकार धरातल की रक्षा करता है।

यही कारण है कि कृषि की दृष्टि से आगे बढ़े हुए देशों में घास लगाने के कार्य पर बहुत अधिक बल दिया जाता है। लेकिन ऐसा करते समय उन्होंने दाल-कुल के जंगली पौधों तथा तिनपतिया घासों को भी उगाया है जो प्रकृति में साधारण घासों के अभिन्न साथी हैं। जैसा पहले बताया जा चुका है कि दाल-कुल के पौधों में एक विशेष गुण होता है। वे वायु के नाइट्रोजन को, जो पौधों की वृद्धि के लिए अति आवश्यक है, प्राप्त करके उसे अपनी जड़ों पर बनी हुई विभिन्न आकार तथा रूप में छोटी-छोटी गांठों द्वारा मिट्टी तक पहुंचाते हैं। ये दाल-कुल के पौधे चारे के लिये भी अति उत्तम हैं, यहां तक कि साधारण घासों से भी अच्छे हैं। इसलिये दोनों प्रकार के पौधों को साथ-साथ उगाना अति लाभदायक पाया गया है। वास्तव में कोई भी व्यक्ति चरागाह का विचार करते समय एक के बगैर दूसरी घास का विचार नहीं कर सकता।

हमारे लिये कुछ ऐसी घासों तथा दालकुल के पौधों के नाम जानना अति रुचिकर मालूम होगा, जिन्होंने कृषि-व्यवसाय के क्षेत्र में एक क्रान्ति पैदा कर दी है। राई घास तथा तिमोथी तथा सफेद और लाल तिनपतिया की ओर ब्रिटेन तथा यूरोप महाद्वीप के अन्य देशों में उचित ध्यान दिया जा रहा है। अभी थोड़े समय से इटली में जहां पर चावल उगाने वाला साधारण किसान भारत में चावल उगाने वाले साधारण किसान की भांति ही गरीब था, राई, क्लोवर तथा लूसर्न घासों का चरागाहों में राई की फसल के साथ बारी-बारी से उगाने का प्रचार बढ़ गया है और इससे वहां के किसान का भाग्य भी सुधर गया है। आजकल

यह अपने फार्म पर पहले से अधिक पशु रख सकता है, अतिरिक्त दूध को बाजार में बेच लेता है और चावल की दूनी पैदावार प्राप्त करता है। दक्षिण अफ्रीका में हाथी-घास, रोड-घास तथा गिनी घास की अच्छी खेती होने लगी है। बरसीम के प्रचार से मिश्र में खेती की दशा सुधर गई है और अब मिश्र कपास के मामले में संसार में अपनी महत्वपूर्ण स्थिति को सुरक्षित रखने योग्य हो गया है। आस्ट्रेलिया में भूमि के नीचे पैदा होने वाले क्लोवर का पता लगाने से कृषि के एक सदा फलने-फूलने वाले नये युग का आरम्भ हुआ है और आज आस्ट्रेलिया गेहूं, ऊन तथा दूध के पदार्थों का निर्यात करने वाले सबसे बड़े देशों में से एक है। अभी बहुत थोड़े समय पहले तक संसार के आर्थिक मामलों में अर्जेन्टाइना का नाम भी नहीं लिया जाता था; लेकिन आज मांस का उद्योग अर्जेन्टाइना में बहुत अधिक बढ़ गया। इसका एकमात्र कारण वहां घास की खेती को बहुत अधिक महत्व देना है। संयुक्त-राज्य अमरीका में जब कभी बढ़ी हुई पैदावार पर वाद-विवाद होता है तो उस समय हमें अक्सर केन्टूकी की नीली घास, कलगीदार गेहूं-घास, डौलिस घास, कुडजू लता, लेसपेडेजा, वैच, तथा क्लोवरों के नाम सुनने को मिलते हैं।

ये अद्भुत उदाहरण हैं। भारत में आत्मनिर्भरता के आन्दोलन में इनसे हमें प्रोत्साहन मिल सकता है। इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि घासों के सबन्ध में हमें अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन करना होगा और मिट्टी, पशु तथा मनुष्य तीनों की आवश्यकताओं को एकसाथ पूरा करने में उनकी उपयोगिता को स्वीकार करना होगा। इस प्रकार ये घासें एक स्वस्थ तथा समृद्ध राष्ट्र के निर्माण में हमारी सहायता करती हैं।

इस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए भारतीय कृषि अनुसंधान संस्था, नई दिल्ली में १९४७ ई० से घासों तथा दलहनों के सम्बन्ध में गहन अध्ययन आरम्भ किया गया। देश के विभिन्न भागों से तथा विदेशों से अनेक प्रकार की घासें तथा दलहन एकत्र किये गए और ७३ प्रकार की घासों तथा ४६ प्रकार के दलहनों की एक आधुनिकतम नर्सरी तैयार की गई। इस विशाल सामग्री की छानबीन की गई और उनमें से कुछ अति विशेष अध्ययन के लिये चुन ली गईं। कृषि-क्षेत्र में किये जाने वाले वैज्ञानिक अनुसंधानों की गति स्वभावतः अति मंद होती है; लेकिन कुछ महत्वपूर्ण घासों तथा दलहनों के अध्ययन से वही रुचिकर बन जाते हैं। उनसे मालूम हो जायगा कि जैसे-जैसे हमें उनके कृषि-क्षेत्र में किये जाने वाले अभिनय का अधिक ज्ञान होता है रात-दिन हमारे सम्पर्क में आने वाले सामान्य पौधों का महत्व किस प्रकार बढ़ जाता है।

हमें एक अति सामान्य जाड़ों के पौधे, जिसे उत्तरी भारत में चटरी-मटरी के नाम से पुकारा जाता है और वनस्पति-विज्ञान की दृष्टि से जिसे Vicia hisuta के नाम से जाना जाता है, के सम्बन्ध में विचार करना चाहिये। अबतक इसको कितनी प्रसिद्धि मिल चुकी है? इसे तो खेती में बेकार घास समझा जाता है। गेहूं के खेतों में किसान इसकी उपस्थिति पसन्द नहीं करते। जब हमने किसानों द्वारा तिरस्कृत इस पौधे की छानबीन की तो उसमें असामान्य गुण पाये गये। हमें मालूम हुआ कि यह पौधा दलहन होने के कारण मिट्टी को सुधार सकता है। जब इसे पशुओं को खिलाया गया तो हमें मालूम हुआ कि यह अति स्वादिष्ट था। हमने इसका रासायनिक विश्लेषण किया और यह पाया कि उसमें पौष्टिक तत्वों की प्रचुरता है, और इस प्रकार इसे चारे के रूप में व्यवहार में लाया जा सकता है। वास्तव में हम इसके एक बेकार घासपात होने के गुण से ही सबसे अधिक प्रभावित हुए। एक बात, जो सारे घासपातों में सामान्य रूप से पाई जाती है, वह यह है कि उनके बीज प्रतिकूल ऋतुओं में सुषुप्त पड़े रहते हैं। और जैसे ही परिस्थितियां अनुकूल हो जाती हैं शीघ्रता से उग आते हैं और मनुष्य द्वारा न पाले जाने पर भी तेजी के साथ बढ़ जाते हैं। चटरी-मटरी के बीज अक्तूबर-नवम्बर के महीने में उगते हैं और मार्च के महीने तक बने रहते हैं। हमने यह सोचना आरम्भ किया कि ये सभी गुण किस प्रकार एक सदुद्देश्य के लिये काम में लाये जा सकते हैं। खरीफ की कुछ छोटी फसलों की कटाई के बाद खाली पड़े हुए खेतों का चित्र हमारे सामने आया। हमने इन खाली खेतों को इस लाभदायक पौधे के लिये सर्वोत्तम स्थान पाया; क्योंकि जाड़े की ऋतु में ये खेत काम में नहीं लाये जाते। इन पौधों का एक बार खेत में उगाने के पश्चात्

फिर ये अपने आप हर जाड़े की ऋतु में उगते रहते हैं और मार्च के महीने तक बिना सिंचाई के खेत में खड़े रहते हैं। इनके लिये प्रतिवर्ष बीज डालने की आवश्यकता नही होती। हमने भी विभिन्न स्थानो से इस प्रकार के तथा इससे मिलते-जुलते अनेको पौधे एकत्र करना आरम्भ किया। साइप्रस से प्राप्त हुई एक किस्म स्थानीय किस्म की अपेक्षा उगने में बहुत अच्छी थी और बहुत अविक समय तक हरी बनी रही तथा २०० मन से भी अधिक हरा चारा प्राप्त हुआ। अब इसकी परीक्षा खेतो में की जायगी। यहा पर सर्वसाधारण की जानकारी के लिये एक बात का उल्लेख कर देना आवश्यक है कि अमरीका में इस प्रकार के पौधो को जिनको वे 'वच' के नाम से पुकारते हैं, खेत में उगा कर बाद में उगाई जाने वाली असली फसलो की पैदावार बहुत अधिक हुई।

इसी प्रकार उत्तर भारत के लोग एक घासपात से भली-भाति परिचित है जो जाड़ो में उगती है और चिड़िया-बाजरा के नाम से जानी जाती है। वनस्पति-शास्त्र में इसे Phalaris minor के नाम से पुकारते है। जो कुछ भी हो, हमें तो यह एक लाभदायक घास ज्ञात हुई। हम यह भी जानते है कि उत्तर भारत में प्राकृतिक रूप से उगने वाली कोई भी घास नही है। चिड़िया-बाजरा घास बहुत लम्बी, बहुत पत्तोवाली, स्वादिष्ट तथा चारे की दृष्टि से अति उत्तम सिद्ध हुई। इससे प्रति एकड़ लगभग २०० मन चारा तथा बहुत-सा बीज प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त हमने यह भी पाया कि चिड़िया-बाजरा का चटरी-मटरी या सेजी के साथ बहुत अच्छा योग है। इसके लिये नम मिट्टी की आवश्यकता है। जिन किसानो के पास जाड़ो में ऐसी धरती की व्यवस्था हो, वे इस घास की खेती कर सकते है।

आपने सोयाबीन के बारे में बहुत कुछ सुना होगा। सोयाबीन दाल-कुल का एक पौधा है। ये पौधे चारे के लिये बहुत अच्छे है। इनसे जो अन्न प्राप्त होता है वह दालो में सबसे अधिक पौष्टिक समझा जाता है और चीन में अधिकता से उपयोग में लाया जाता है। भारत में सोयाबीन की खेती करने में दो कठिनाइया है। प्रथम इस दाल का स्वाद भारतीयो के अनुकूल नहीं है। दूसरे सोयाबीन की कोई ऐसी किस्म नही है जो जल्दी पक कर तैयार हो जाय, ताकि किसान सोयाबीन की फसल के अतिरिक्त और फसल भी पैदा कर सके। हमने सोयाबीन की कुछ किस्में अमरीका से मगाई। हमें यह जानकर प्रसन्नता हुई कि उनमें से कुछ किस्में केवल दो ही महीने में पक कर तैयार हो गई और उनसे प्रति एकड लगभग १० मन अन्न की पैदावार हुई। जो लोग सोयाबीन की खेती में रुचि रखते हैं उन्हें इन किस्मो की परीक्षा करनी चाहिये।

किसान सेजी के पौधों से भलीभांति परिचित है जो पंजाब में चारे के लिये उगायी जाती है। सेजी आमतौर से फरवरी के अन्त या मार्च के आरम्भ तक हरी रहती है और चारे के लिये काटी जाती है। जहा पर इसे उगाया जाता है वहा पर आमतौर पर पशुओ के लिये ग्रीष्म ऋतु में कोई भी चारा नही है। हमारे यहा इन्सटीटयूट के सग्रह में भी एक इसी प्रकार का पौधा है जो गुण में सेजी से कही बढकर है। इस पौधे का नाम ह्यूबम क्लोवर है। अमरीका में सूखी स्थितियो में एक अच्छे चरागाही पौधे तथा भूमि को सुधारने वाले एक अति उत्तम पौधे के रूप में इसकी बहुत प्रशंसा हुई है। इसके जिस गुण ने हमें सबसे अधिक प्रभावित किया है वह यह है कि यह मई के सारे महीने में हरा बना रहता है और इससे तीन कटाई करने के अतिरिक्त प्रति एकड़ लगभग ३०० मन चारा तथा बहुत-सा बीज प्राप्त हो जाता है। हमने सेजी तथा ह्यूबम क्लोवर को मिला कर उगाने की परीक्षा की और मालूम किया कि फरवरी के मध्य में सेजी की पूरी फसल काट लेने के पश्चात् ह्यूबम क्लोवर की कटाई की जा सकती है और इस प्रकार उसी खेत को तीन महीने और अधिक काम में लाया जा सकता है। किसान निश्चय ही इसकी बढवार से अति प्रभावित होगे। हमारी उनसे प्रार्थना है कि वे हमारे फार्म का निरीक्षण करें और पौधो को देखें, तथा अपने खेतो पर परीक्षा के लिये हमसे बीज ले जाये।

हमारी इन्स्टीट्यूट की नर्सरी में घासो तथा दलहनो का निरीक्षण करने वालों को जो वस्तु स्यात् सबसे अधिक विचित्र दिखाई देगी वह कुडजु लता है जो ग्रीष्म ऋतु के महीनो में भी बिना किसी प्रकार की सिंचाई के बड़ी सुन्दरता से हरी-भरी बनी रहती है। कुड्जु लता को

अमरीका में आश्चर्यजनक पौधे के नाम से ठीक ही पुकारा गया है, और यदि भारत के लोग इसे अपने यहां पर उगाना आरंभ कर दें तो यह वास्तव में यहां पर एक आश्चर्य बन जायगा। यह मिट्टी को बांधने वाला तथा मिट्टी का निर्माण करने वाला एक अति उत्तम पौधा है। मिट्टी के लिये एक अति उत्तम रक्षक आवरण का काम देता है और सबसे बढ़कर यह चारे का एक बहुत अच्छा पौधा है। जब १९४६ ई० में इसका केवल एक पौधा लगाया गया था तो उस समय किसीने यह सोचा भी न था कि यह इतनी अच्छी तरह बढ़ जायगा। प्रथम दो वर्षों तक यह पौधा अपनी स्थिति को दृढ़ बनाने का प्रयत्न करता रहा। तीसरे वर्ष के पश्चात इस पौधे की बहुत वृद्धि हुई और प्रति वर्ष यह बिना किसी प्रकार की सिंचाई के दिन दूना रात चौगुना बढ़ता गया। इस विशाल वृद्धि का कारण यह है कि इस पौधे में बहुत-सी शाखाएं फूटती हैं, जिनमें से प्रत्येक ५० फीट तक लम्बी होती है। इन शाखाओं की प्रत्येक गांठ से जड़ें फूट निकलती हैं और अगले वर्ष में एक गांठ अपनी जड़ों के साथ एक अलग पौधा बन जाती है। इस लता ने ठीक तीन वर्ष पूर्ण हो जाने पर बीज पैदा करना आरंभ कर दिया था, लेकिन बीज अधिक मात्रा में पैदा नहीं होते थे। इससे हमारे रास्ते में कोई बाधा पैदा नहीं होती, क्योंकि जड़ों के झाड़ों तथा जड़ों की गांठों से इसे सफलतापूर्वक पैदा किया जा सकता है। हमने उन लोगों को, जो इस लता को उगाने में रुचि रखते हैं, १ रु० ८ आ० प्रति पौधे के हिसाब से बेचने के लिये गमलों में अनेकों पौधे उगाये हैं।

जिन्होंने उत्तर भारत में चम्बल-यमुना के क्षेत्र का निरीक्षण किया है, उन्होंने इस क्षेत्र में फैले हुये उन विशाल बंजर क्षेत्रों को देखा है जो कृषि की दृष्टि से बिल्कुल उपयोगी नहीं हैं। इस क्षेत्र को तथा अन्य इस प्रकार के क्षेत्रों को ग्रीष्म ऋतु में भी हरियाली से लहलहाता जानकर कौन सुखी नहीं होगा। कुड्जु एक ऐसा पौधा है जो इस आशा को वास्तविक रूप दे सकता है।

ये केवल थोड़े से उदाहरण हैं जिनका हमने यहां पर उल्लेख किया है। भारत के अनेकों राज्यों में इस सम्बन्ध में और अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिये इन पौधों तथा अन्य अनेकों प्रकार के पौधों की परीक्षा की जा रही है। उस समय तक हम घासों तथा दलहनों के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की जानकारी के लिये प्रसन्नता से आपकी सेवा करने के लिये तैयार हैं। ('खेती' से साभार)

●

एक मुण्डा लोक-गीत

बीयुर तनाय दिशुम, बीयुर तनाय रे।
जन्ता लेका दिशुम बीयुर तनाय (बारसा)
सेनो तनाय समय सेनो तनाय रे
पण्डु सकम लेका समय सेनो तनाय॥

'दुनिया घूमती है, दुनिया घूमती है। चक्की जैसी दुनिया घूमती है। समय बीत जाता है, पके (पीले) पत्ते की तरह।' —महादेवलाल बरगाह

●

सूरदास

रामचन्द्र तिवारी

धरती के चारों ओर जिस प्रकार वायु का आवरण व्याप्त है उसी प्रकार जातियो के जीवन में एक ऐतिहासिक वातावरण होता है। एक परम्पराजन्य वातावरण होता है। एक भावनामय वातावरण होता है। जातियो का यह भावना-वातावरण प्रत्येक क्षण बदलता है। इस वातावरण को नित्य नवीन तत्व प्राप्त होते रहते हैं, और नित्य पुरातन तत्व उसमें निकल कर या तो नीचे बैठ जाते हैं अथवा उसके अन्य तत्वों मे ऐसे घुल-मिल जाते हैं कि उनके पृथक् अस्तित्व का आभास लुप्त हो जाता है। जाति के भावना आवरण के निर्मायक-तत्व आवरण को जाति के व्यक्तियों से प्राप्त होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति इस भावना आवरण के निर्माण में सहायता देता है। उसकी जीवन-साधना का वह सूक्ष्म व्यापक अंश जो उसके व्यक्तित्व से प्रसारित होकर अन्य व्यक्तियों में सहानुभूति और संवेदन पाता है, उसके शरीरांत के पश्चात् भी अन्य व्यक्तियो के जीवन को स्पन्दित करता रहता है। जिन व्यक्तियो की साधना हल्की होती है वे अपने आस-पास के कुछ जनो को प्रभावित करते हैं। उनका प्रभाव कुछ समय पश्चात् क्षीण होकर अन्य प्रभावो में विलुप्त हो जाता है। पर जो व्यक्ति जीवन-कला में गंभीर साधना करके उस कला के रत्न संयोजित कर जाते हैं, वे उस जातीय वातावरण को अपने उन रत्नो द्वारा दीर्घकाल तक जगमग करते रहते हैं। यह रत्न जातीय जीवन को स्पन्दन देते हैं, आनन्द देते हैं, सहज शक्ति और महाप्राण प्रदान करते हैं।

मनुष्य के जीवन की अभिव्यक्ति स्थूल में होती है। उसका व्यक्तित्व शरीर से ग्रथित है। वह जन्मता है, बढ़ता है और मृत्यु को प्राप्त होता है। वह जीविका-उपार्जन और उसका व्यय करता है। राग और द्वेष करता है। दुख-सुख लेता-देता है। संहार करता और संहारा जाता है। यह दोलने वाली सहज क्रियाएं जो सागर के समान गहरे उसके जीवन के ऊपर झाग की भांति तैरती हैं। इस झाग के नीचे उसके जीवन में जो असली है उसे ऊपर दिखने का अवसर इस घटना-जटिल संसार में अधिक नही प्राप्त होता। कुछ होते हैं जो झाग को झाग समझ पाते हैं और उसकी अवहेलना करने की इच्छा तथा शक्ति रखते है। वे जीवन के सूक्ष्म में गोता लगाते हैं। उसका सार एकत्र करते हैं,और उसे सघन मूर्ति देकर छोड़ जाते हैं। यही जीवन की साधना कला की साधना है। सूरदास इसी के साधक थे।

सूर ने मेरे जीवन को सर्वप्रथम रासलीला में गाये जाने वाले पदो के द्वारा छुआ। पर यह स्पर्श इतना हल्का था कि सूर के व्यक्तित्व के प्रति मेरी उत्सुकता को तरंगित न कर सका। सूर के अस्तित्व को मैंने जाना पाठ्य-पुस्तक द्वारा। जब चौथी कक्षा में कन्हैया ने अपनी छोटी बाह दिखा कर यशोदा के सामने माखन न खाने की वकालत की तो पता नही कैसे सूर का नाम मेरे अस्तित्व में इतने गहरे अंकित हो गया कि उसके मिटने की सम्भावना नहीं है। उसके पश्चात् सुना कि सूर सूर्य हैं, सांच-सांच कहने वाले हैं। उन्होने सवा लाख पद लिखे हैं। वे अष्टछाप के प्रधान कवि है। पुष्टिमार्ग के दीपक हैं। उनका वात्सल्य-वर्णन सर्वश्रेष्ठ है। शृंगार में कोई बात ऐसी नही जिसे वे कह न गये हो। इन्हे सुना ही नही कितनी ही बार विभिन्न कक्षाओं में, लेखों में उन्हे दुहराया भी। पर इस क्रिया में सूर मेरे अधिक निकट आ गये हों, ऐसा मुझे अनुभव नही हुआ। हां, जब मै कुछ वर्षो बाद 'नयनो के नीर यमुना उमड़ि चलने' का अनुभव कर पाया तो जान पड़ा कि सूर हैं और बड़ी तेजी मे हैं। थे नही, है। मुझसे बाहिर नही, मेरे भीतर हैं।

सूर सम्प्रदाय विशेष के हो सकते हैं; पर मुझे लगता है कि वे सम्प्रदाय के भीतर वालो से अधिक उनके हैं, जो सम्प्रदाय से बाहिर हैं। मैं समझता हूं कि संसार ने जो जीवन के महान कलाकार उत्पन्न किये हैं उनको कला का

(शेष पृष्ठ १२६ पर)

चांडिल के कुछ चित्र

सव्यसाची

लोगो की धारणा थी कि सर्वोदय सम्मेलन के लिए इस वर्ष स्थान का चुनाव विनोबाजी की सुविधा के कारण किया गया है, लेकिन जब वे चाडिल पहुचे तो वहा का सौंदर्य देखकर उनकी आखें खुल गई। प्राकृतिक दृष्टि से वह स्थान निराला है। चारो ओर हरी भरी ऊची पहाडिया, निकट में स्वर्ण रेखा नदी और वनमें पल्लवित पलाश, जैसे नये युग का आह्वान कर रहे हों। नगर की सुविधाए होते हुए भी वहा का वायुमण्डल ग्रामीण सादगी और शांति से परिपूर्ण था। निवास के लिए घास-फूस की झोपडिया और वैसे ही निराडम्बर पडाल ने वहा की सात्विकता में चार चाद लगा दिये थे। अधिकाश आगत व्यक्तियो का कहना था कि चाडिल का चुनाव निस्सदेह अत्यत उपयुक्त और दूरदर्शितापूर्ण था।

× × ×

दो दिन तक चाडिल में ऐसा प्रतीत हुआ, मानो पुलिस राज्य स्थापित हो गया हो। जिधर देखो, उधर ही वर्दीधारी सिपाही। प्रवेश-द्वार के पास तो पुलिस का एक पूरा दस्ता ही पडा था। कहने की आवश्यकता नही कि पुलिस की इस तैनाती से वहा का वातावरण कुछ उद्वलित हो उठा था।

यह सब राष्ट्रपति के लिए था और इसलिए नही कि वह आवश्यक था, बल्कि इसलिए कि राजकीय नियमो के अनुसार ऐसा होना ही चाहिए था। लोगो को यह अच्छा नही लगा। एक ने कहा कि जहा लोग प्रेम और आत्मीयता के आधार पर समाज के नवनिर्माण के प्रश्न को हल करने इकट्ठे हुए हों, वहा दण्डशक्ति की प्रतीक फौज या पुलिस की मौजूदगी खटकने वाली चीज है। दूसरे का कहना था कि तभी तो सबसे पहली सेवाग्राम में हुई कान्फ्रेंस में जे सी कुमारप्पा सम्मिलित नहीं हुए थे।

लेकिन तीसरे ने बडे पते की बात कही। वह यह कि कानून-कायदों का नियम व्यक्ति सुभीते के कारण करता है। लेकिन आगे चलकर वह स्वय उनकी कठपुतली बन जाता है।

चाडिल में भोजन की समुचित व्यवस्था करने में वहा के व्यवस्थापको ने कोई कसर नही उठा रखी थी, लेकिन फिर भी तीन चार हजार व्यक्तियो को सतुष्ट कर सकना आसान न था। दुर्भाग्य से चावलो में कुछ ककड रह गये। पहले दिन तो ककडो की इतनी भरमार थी कि खाना मुश्किल हो गया। मजे की बात यह थी कि उस दिन भोजन में चावल ही थे, रोटिया न थी। अत उन चावलों को खाने के अतिरिक्त और कोई चारा न था। लोग खाते जाते थे और एक-दूसरे के कान में शिकायत भी करते जाते थे। उसी समय एक विचारक ने अपने सहज विनोद से वहा के तनावभरे वातावरण को शिष्ट हास्य से परिपूरित कर दिया। उन्होंने कहा, "चावलो में ककड प्राय निकल आते है, लेकिन यहा तो ककडो के बीच चावल निकल रहे हैं।"

× × ×

विनोबाजी अभी तक पूर्ण स्वस्थ नही हुए है। चेहरे पर पीलापन है और खासी इतनी आती है कि जरा-जरा सी देर में उन्हे गला साफ करने के लिए थूकना पडता है। लोग कहते हैं कि जमशेदपुर से जब वह रवाना हुए थे तब उन्हे ज्वर था। आगे प्रवास में भी रहा, पर वह रुके नहीं। 'चरैवेति चरैवेति' के सिद्धान्त के अनुसार चलते ही गए, चलते ही गए। हमें याद आया कि दिल्ली से जब वह रवाना हुए थे, तब भी उन्हे १०१° ज्वर था। पर उन्होने उस अस्थायी 'अतिथि' की चिंता न की। पैर और कमर में चोट आ गई और पीडा इतनी बढ गई कि कोई सामान्य व्यक्ति होता तो डग भर भी न चल पाता, पर विनोबाजी का यज्ञ अखड रूप से चलता रहा। अपने ध्येय, उसकी प्रेरणा और उसके लिए शक्ति देने वाले प्रभु के साथ इतना तादात्म्य आज के युग में सचमुच दुर्लभ है।

और इसी से कई लोगो का कहना था कि विनोबा तो 'चलते-फिरते देवालय' (Moving Temple) है।

विनोबाजी ने अपना यज्ञ भू-दान से प्रारंभ किया था, लेकिन धीरे-धीरे उसमे अन्य अनेक बाते जुडती जा रही है। भूमि-दान के साथ हल-दान, बैल-दान, कूप-दान और श्रम-दान का गठबंधन हुआ सो उसके बाद सम्पत्ति-दान भी आ गया। चांडिल में उसमें एक दान और आ मिला और वह था 'अलकार-दान'। महिलाओ की एक सभा मे जब जानकीदेवी बजाज ने भू-दान यज्ञ में योग देने का अनुरोध किया तो कुछ बहनो ने अपने-अपने आभूषण देने प्रारंभ कर दिये। किसी ने अगूठी दी तो किसी ने कर्णफूल। एक बहन ने तो सुहाग का चिह्न अपना मगल-सूत्र ही उतार कर दे दिया। जब जानकीमैया ने उसे विनोबाजी के गले में पहना दिया तो हसी से सारा पण्डाल गूज उठा।

किसी ने ठीक कहा है कि महापुरुषो के काम नदी की भाति होते है, जो अपने उद्गम स्थल पर बहुत छोटी होती है; लेकिन बाद मे फैल कर विराट रूप धारण कर लेती है। विनोबा का अनुष्ठान भी उसी प्रकार उत्तरोत्तर व्यापक होता जा रहा है। आश्चर्य नही कि एक दिन जीवन के सभी पहलू उसमे समा जाय।

× × ×

सर्वोदय-सम्मेलन मे अनेक भाषण हुए, जिनमें एक भाषण सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री जे. सी. कुमारप्पा का था। अंग्रेजी में बोलते हुए उन्होंने कहा कि रूस सर्वोदय के सिद्धान्त के अधिक निकट है। वहा व्यक्ति व्यक्ति के बीच अतर नही है और वर्ग-भेद भी नही पाया जाता। आगे चलकर उन्होने कहा कि यह ठीक है कि ऐसी स्थिति लाने में उन्हे हिंसा का सहारा लेना पड़ा, पर उनका ध्येय शुभ था।

कुमारप्पाजी शायद यह भूल गये कि लगभग अर्द्धशताब्दी तक गाधीजी ने अपनी वाणी और कर्म से एक ही बात पर जोर दिया था कि साध्य की भाति साधन भी पवित्र होने चाहिए।

× × ×

सम्मेलन के व्यवस्थापकों को भय था कि वे शायद पानी की समुचित व्यवस्था नही कर पावेंगे, लेकिन वहा के ग्रामवासियो के सहयोग से वे नदी मे तीन-चार स्थानो पर काफी पानी इकट्ठा कर सके। कुछ नल भी लग गये; पर उनकी पतली धार से बहुत कम लोगो को सतोष हुआ। अधिकाश लोगो ने तो नदी मे सचित पानी का ही उपयोग किया। उसी मे हाथ-मुह धोया, कुल्ला किया, कपडे साफ किये और स्नान किया। शहर के स्त्री-पुरुषो को यह व्यवस्था कुछ विचित्र-सी अवश्य लगी होगी; लेकिन गाव के लिए वह कोई नई चीज न थी। बहुत से स्थानो पर लोग पोखरों के पानी से काम चलाते है।

एक भाई ने कहा कि पानी की व्यवस्था की यह अच्छी परम्परा चल पडी है। पिछले सम्मेलन के अवसर पर सेवापुरी में भी ऐसे ही एक पोखर बना दी गई थी। यह परम्परा आगे भी चलनी चाहिए। उन भाई का कहना ठीक था, पर यदि उस पर शहर के लोगो का मत लिया जाय तो शायद ९९.९ उसके विपक्ष मे होगे।

× × ×

सम्मेलन के अवसर पर एक सर्वोदय प्रदर्शिनी भी की गई थी। ग्रामोद्योग, खादी, पत्थर के बर्तन आदि के साथ-साथ उसमे एक मडप बनाया गया था, जिसके अंदर विनोबा और भू-दान-यज्ञ-सबधी बहुत उपयोगी सामग्री थी। मण्डप के बाहर गत्ते की पट्टियो पर विनोबाजी के चुने हुए वाक्य लिखे गये थे और अदर अनेक मान-चित्रो द्वारा बिहार मे भू-दान आदोलन की प्रगति के विवरण उपस्थित किये गए थे। सामग्री की दृष्टि से मण्डप एक सूझभरी कल्पना थी। उसकी सराहना करते हुए एक भाई ने कहा कि वैसे तो निरसन्देह बढिया आयोजन किया गया है, लेकिन उसे नजर न लग जाय, इसका ध्यान भी बराबर रक्खा गया है। बाहर जितनी पट्टिया लगी थी, उनमे से अधिकाश अशुद्ध हिन्दी मे लिखी हुई थी। यदि थोडी-सी भी सावधानी बरती गई होती तो यह आयोजना अपने ढग का एक ही होता।

× × ×

सम्मेलन में सभी प्रकार के लोग सम्मिलित हुए थे। देश के कोने-कोने से रचनात्मक कार्यकर्ता आए, धनिक आए, व्यवसायी आये, खादीधारी आये, खादी न पहनने वाले आये, अलग-अलग रुचियों और मतो के लोग आये; लेकिन लौटते समय सब के मुह पर एक ही चर्चा थी और वह यह कि यदि देश में अहिसक क्राति करनी है तो उसका एकमात्र रास्ता विनोबाजी का भू-दान-यज्ञ है।

तीसरा सुख : घर-संसार

शारदाबहन मेहता

गुजराती भाषा में कहावत है : "पहला सुख तन्दुरुस्ती, दूसरा सुख—घर में पुत्र-रत्न, तीसरा सुख—सुलक्षणी नारी, और चौथा सुख—कोठी में जुआर।" लेकिन यह कहावत आज समयानुकूल नहीं रही। हमारे रेडियो-संचालकों ने उसको बदल दिया और कहा, 'पहला सुख नौकर-चाकर, दूसरा सुख नौकरी, तीसरा सुख (सुखी) घर-संसार, और चौथा सुख छुट्टी-मजा। परंपरागत चलती आई बातें बदल गईं, लेकिन भाई यह तो ऐसा ही है जैसे नई गिल्ली, नया दाव।

जो बातें अशक्य हो गईं उनको दुहराने से क्या फायदा? 'तन्दुरुस्ती हजार नियामत' यह पुराने जमाने में वास्तविक था, लेकिन आज तो उत्कट इच्छा रखने पर भी आदमी नीरोग नहीं रह सकता है? हमारी खुराक बिगड़ी, हमने बिगाड़ी। सात्विक चीजें खाना छोड़ दिया। असली घी, असली दूध, असली अनाज—इन सब चीजों को पाना मुश्किल हो गया। फिर शरीर कैसे सुडौल और सुघड़ बनेगा? खुराक, कपड़े, घर, हवा सबकी कमी। इस तरह तन्दुरुस्ती बिगड़ गई और घूमने-फिरने के लिए परदेशी सुविधाएं मिलीं। फल-स्वरूप हड्डियां भी टूट गईं। नौकर हमारे हाथ-पैर हो गये। इसलिये नौकर-चाकर को पहला सुख गिना। अब वह भी मिलना मुश्किल है।

'घर में पुत्र हो' आज यह सुख नहीं रहा। संतान की बहुतायत आज बोझा हो गई है। लंगर को कहां रखें? झंझट ही तो है!

कुछ दिन हुए, बम्बई में मैं अपने एक पुराने मित्र से मिलने गई (बेचारे को सौ-डेढ़ सौ की तनख्वाह और रहने के लिए एक छोटी-सी कोठरी है। जाकर देखती हूँ कि जमीन पर बिछाई हुई शतरंजी पर पंक्तिबद्ध बटुकों की तरह छोटी-छोटी नौ लड़कियां और एक लड़का बैठा हुआ था। यह नजारा देखकर मैं तो आश्चर्यचकित रह गई। मुरझाई हुई माँ बेचारी अंचल समेटकर खड़ी थी। मित्र म्लानमुख बोले, "बहन, आप समाज-सेवा का काम करती हैं। मेहरबानी करके मुझे सलाह दीजिये कि इस सेना को सब तरह से सुखी करने के लिए मैं क्या करूं? मैं तो घबरा गया हूँ और संसार रस-हीन हो गया है!" मैंने जवाब दिया, "भाई, पहले से मेरे पास आना था? इतनी देर से क्यों आये? सेना खड़ी ही न होने देनी थी! अब तो पछतावा करके दिन पूरे कीजिये। बेचारे बच्चों का नसीब। भटक-भटक कर दुःखी होंगे; और क्या हो सकता है?"

कोई यह न मान ले कि संतान की बहुतायत सुख का साधन है!

कोठी में जुआर तो कहां से हो! कोठियां तो सब टूट-फूट भी गईं। जुआर है नहीं और अब भरने का संयोग भी नहीं है।

सुलक्षणा नारी हो, यह तो ठीक है, लेकिन साथ ही सुलक्षण नर भी होना चाहिए।

इस जमाने में सच्चा सुख किस में है यह समझाने के लिए नई कहावतें होनी ही चाहिये। खैर, आज तो हमें सुखी घर-संसार की बातें करनी हैं। Blessed is the man who has a happy family life अर्थात् सुखी कौटुंबिक जिन्दगी वाला मनुष्य सद्भागी है। फिर भी छाती पर हाथ रखकर सौगन्धपूर्वक कौन कहेगा कि हमारा घर-संसार संपूर्ण सुखी है? कवि तो कहता है

'संसार विषे धन्य जिसके घर सुघड़ है सती।'

अर्थात् जीवन धन्य करने के लिए लग्न जरूरी समझा गया है। अकेला-अटूला आदमी थोड़ा अधूरा-अधूरा तो है ही न? घर माने गृहिणी और उसको साथ रखकर व्यवहार चलाना संसार कहलाया। अब लग्न ही एक बड़ी भारी झंझट है न? लक्कड़ी के लड्डू जैसी बात है। खायगा वह पछतायगा और नहीं खायगा

वह भी पछतायगा। लेकिन कोई यह भी कहेगा कि एक नन्ना सौ दुःख हारी, शादी नहीं की है, बस बहुत-सी आफतों से तो बच गये ? फिर यह भी सच है कि कुँवारे का संसार सपूर्ण सुखी नहीं कहा जा सकता ? तब कहिये चार कोनों में कौन सुखी ? जुगल जोड़ा हो, शान्ति और स्वस्थता से रहता हो तो उसको सुखी कह सकते हैं। *बीसों उगलियों से प्रभु को पूजा हो तो ऐसे* युगल बनें। बाकी तो भाई, शादी तो पासा फेंकने जैसी बात है। लगा तो तीर, नहीं तो तुक्का! स्नेह-लग्न हो या पूर्व-रचित हो, घर में खाली बर्तन आवाज देते हो फिर भी तमाचा मारकर गाल लाल रखना ही पड़ता है, नहीं तो बेइज्जत होना पड़ता है। बाकी तो किसी में यह दोष, तो किसी में वह। गत सदी में भी नवलराम कवि ने गाया था :

'भाई तो भूगोल और खगोल में राँचना,
बाई का तो चित्त चूल्हे में।
पुरुष तो पढ़ा-लिखा है बहुत गुमान में।
खत भी पढ़ा न जाय उससे (बाई से)।
पुरुष धूर्त ढोंगी के घाट में घूमता,
औं घर पै बाई से पूजा जाता।
ठीक ही ऐसी चाल-ढाल मन अलग हैं जहाँ,
प्रीत कैसे हो वहाँ ?

यह आग आज भी जगह-जगह लगी हुई है। आँख खुली रखें तो दिखाई दे। सिद्धान्तिक मतभेद और कलह पढ़े-लिखों में भी कम नहीं रहता।

दलपतराम कवि ने भी 'खराब स्त्री' के अवगुण गाये हैं।

ठीक, यह तो एक-तरफा बात हुई। बेचारी बहनें, जिनके पति बदचलन, अनपढ़ या दीर्घसूत्री, जिद्दी और शौकीन हों, उनपर कोई रहम *क्यों नहीं करता ?* पसन्द न आने पर पुरुष जूते की तरह दूसरी औरत लाता है या फिर उपपत्नी रखता है और उल्टे हमारे साक्षर लोग आर्य सन्नारी के आर्यत्व को दुहरा-दुहरा कर और खुशामद करके कहते हैं कि, "धन्य है हमारी आर्य नारी को कि वह 'पल्ले पड़ा' निभा लेती है।"

इस तरह निभा लेने से ही हमारा समाज जैसे सोलहवीं सदी में था आज भी वैसे ही चल रहा है। आज बहू-बेटियाँ ससुराल में सकोच से ही रहती हैं। बेचारी हिरनी के समान नाचती-कूदती कन्या बहू बनकर ससुर-गृह में पैर रखते ही घबराई और सहमी-सी रहती है। उसके लिए तो गाव और घर दोनों अनजान हैं। एक कोने में मौन बैठे रहना और सर नीचा करके *सुबह से शाम तक घर का काम करते रहना।* इसपर थोड़ी-सी भूल हो गई तो सास-ससुर की डाट-डपट, ननदों की गालियाँ, और देवरानी-जेठानी के ताने सहन करना। मातृप्रेमी शौहर कहेगा कि 'शूद्र गवार, ढोल, पशु, नारी, ये सब ताडन के अधिकारी'। यह लेख पढ़नेवाली बहिनों को यह बात सच्ची नहीं लगेगी, लेकिन यह हकीकत है। बड़े शहरों में और तथाकथित सभ्य कुनबों में अलग तरह के कलह होते हैं। बहुएँ शेर होकर बैठती हैं। समाज के नेता बनकर घूमनेवाले और सज्जन गिने जानेवाले भाइयों के कुनबों में बनी हुई ऐसी सच्ची हकीकतों का मुझे प्रत्यक्ष अनुभव हुआ है। क्या आप आयेदिन कुए-होज में डूब मरने के या केरोसिन *छिड़ककर जल मरने के किस्से नहीं पढ़ते ? यह है हमारा* घर-संसार! पूछिये अपने किसी जान-पहचान के समाज-सेवक से कि हमारे समाज में औरतें कितनी सुखी हैं ? पढ़ी-लिखी लड़कियाँ भी फस जाती हैं! उलटा उनको *ज्यादा दुःख महसूस होगा और ज्यादा यातना भुगतनी* पड़ेगी। मन की और तन की। लड़कियाँ कहती हैं कि बीज-वर* के साथ शादी करके महासुख पायगी! लेकिन यह तो सब फिजूल की बातें हैं। बीज-वर हो या पथ-वर,† सब समान है। अंग्रेजी में कहावत है Feed the brute *well*—हम कहते हैं कि 'काम किया उसने जादू (वशीकरण) किया'। थोड़े दिन गाड़ी अच्छी *चलेगी सही लेकिन सत्ता और स्वामित्व का अभिमान* पुरुषों में क्या कम है ? औरतों के खुदकुशी के किस्से बनते हैं। इतना ही नहीं बल्कि बेकसूर ना-बालिग लड़कियों के अनेक कारणों से खून भी होते हैं। और बाद में अटपटे कानूनों की वजह से जो होना है वह सही है।

*दूसरी शादी करनेवाला पुरुष।
†पहली बार शादी करनेवाला पुरुष।

मुझे ताज्जुब होता है कि यह जमाना स्त्री-स्वातन्त्र्य का जमाना कहलाता है। मानव अधिकारों के लिये किताबें लिखी जाती हैं और लाखों रुपयों का धुआ करके सभाएं होती हैं। फिर भी समाज में तो देखा-न-देखा ही होता है। हमारे देश में अच्छी तादाद में ग्रेज्युएट बहनें और कालिज-कन्याएं हैं। फिर भी ये गुलामी की बेड़ियाँ तोड़ने के लिये और स्त्रियों के दुःख निवारण करने के लिये आंदोलन क्यों नहीं शुरू करती ? कोई कर्मयोगिनी भी आगे नहीं आती ! घर-संसार अकेले पुरुषों के सुख के लिये हैं। मुझे तो लगता है कि स्त्री-जाति में कुछ कमजोरी न बहुत जमाना है। उनको गुड़ियाँ ही बना रहना पसन्द है। और इसलिए सर ऊँचा करने की हिम्मत ही नहीं होती या इच्छा नहीं होती। मा-बाप गुड़ियों-सा पालन-पोषण करते हैं और स्त्री-पुरुष ज्यों-त्यों संसार की गाड़ी घसीटते हैं। गहरा विचार करना किसी को पसन्द नहीं। शायद इस दौड़-धूप के जमाने में गहरा आत्म-निरीक्षण करने का अवकाश ही न हो ! परिणामतः जीवन में निराशा और अंधेरा ही रहता है। दोष किसका ? एक मिसाल दूं ?

एक संस्कारी कुनबे की लड़की थी। अक्लमन्द; लेकिन कद में जरा नाटी। इसके इलावा उसके भाई के शरीर में कोढ़ था। लड़की के विवाह की बात सुनते ही सब लोग नाक-भौं सिकोड़ लेते थे। दूसरी ओर एक धनी-मानी कुनबे का लड़का था। अक्ल उससे कोसों दूर थी। उसे लड़की मिलनी मुश्किल थी। इस तरह भाई का कोई देना नहीं था, बाई को कोई लेना नहीं था। ऐसे वर-कन्या का जोग जोड़ा गया। छोटे कद के सिवा लड़की में और कोई कमी न थी। फिर भी वह ऐसे मूर्ख के पल्ले पड़ी। एक तो, लड़कियों की शादी करनी ही चाहिये। दूसरे अमुक उम्र में शादी हो जानी चाहिये। तीसरी बात यह कि जाति की संकुचित सीमा में ही शादी तय करनी चाहिये। इस त्रिविध बंधन का शिकार इस बेचारी लड़की को होना पड़ा। अगर मा-बाप ने उसको लिखा-पढ़ा कर अपने पैर पर खड़ा रहना सिखाया होता तो खासा आजाद जीवन गुजारती। शायद बड़ी होने पर उसके रूप से नहीं, बल्कि बुद्धि से आकर्षित होकर कोई लायक वर शादी करने के लिए तैयार हो जाता। लेकिन वह लड़की तो उस मूर्ख पति के साथ संसार निभाती है। धन भी नहीं रहा। बेचारी मानसिक कष्ट भुगत रही है ! क्या हो ? यह हमारा सुखी घर-संसार है ! आदमी को नौकरी मिली, अधिकार मिला, सरकार-दरबार में मान-मर्तबा मिला, नौकर-चाकर, घर-वाटिका सबकुछ मिला; संसार-गाड़ी चलाने वाली पत्नी भी है। चापलूस दोस्त भी है, लेकिन क्या हृदय में शान्ति है ? लग्न जीवन को जोड़ने वाली कड़ी संतान भी है। फिर भी शान्ति नहीं, उद्वेग है। क्यों ? जवाब मिलता है, बच्चे हैरान-परेशान कर देते हैं, मानते नहीं, मुंह पर जवाब देते हैं, तुनक-मिजाजी हो गए हैं, बन्दर-जैसी कुचेष्टाएं करते हैं, तोड़-फोड़ करते हैं, जरा भी नियमन नहीं, मेहमानों के साथ जंगली बर्ताव रखते हैं, हमेशा मा-बाप के मन में चिन्ता रहती है। बड़े होने पर कुनबे की इज्जत गवा देंगे इसका भय रहता है। इसका दुःख भी है लेकिन बच्चों को ऐसी प्रवृत्तियों से रोका नहीं जाता। उनको रोकना तो व्यक्ति-स्वातंत्र्य का भंग हुआ ऐसा कहा जायगा। मा-बाप को चाहिये कि वे मौन रहकर देखते रहें ! तथा-कथित नई पद्धति की शिक्षा ने, और अयोग्य शिक्षकों के द्वारा संचालित बाल-मंदिरों ने मध्यम-वर्ग में उद्वेग और अशान्ति फैलाई है। बाल-मानस-शास्त्र के गहरे अभ्यास के बिना एक पेशे की तरह यह बालमन्दिर चल रहे हैं। बालकों को व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का लाभ मिलना चाहिए; लेकिन उससे स्वच्छंदता को कैसे पोसा जाय ! शिष्टता और मार्गदर्शन के बिना बच्चे बड़े होने पर किस रास्ते पर चलेंगे ? इस पर मुंह खोलकर कुछ बोला नहीं जाता। आज कुनबों में वैमनस्य का यह एक बड़ा सवाल पैदा हुआ है। बच्चे किसको नहीं भाते ? उनका स्वागत सब कोई करते हैं। लेकिन उनकी परवरिश करते-करते उनमें संस्कारों का सिंचन न करना तो खाना-खराबी ही होगी !

सचमुच घर-संसार का सुख पाना दुर्लभ है। संतान पति-पत्नी के प्रेम को जोड़ने वाली कड़ी है। उनको बहका-बहका कर सिर पर चढ़ा देने से तो उल्टा बना-

बनाया खेल भी बिगड़ जाता है! तो क्या सदियों से आदमी जिन्दगी बसर करते आये हैं केवल दुःख, क्लेश और चिन्ता भुगतने के लिए? ऐसा तो नहीं है। सच बात तो यह है कि सुख-दुःख का कारण मानव का मन है। आपस में खुले दिल से समाधान की भावना मानो मेल-मिलाप से कुटुम्बी जनों में एकता स्थापित करने की भावना है। उच्च आदर्शमय जीवन गुजारने का पक्का फैसला किया हो तो सभी जगह सुख ही महसूस होगा। भगवान की दुनिया में तो आनन्द ही है। मानव प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द ले सके और मन की तन्दुरुस्ती पासके तो कठिन-से-कठिन परिस्थितियों में भी वह सुख पा सकता है। बेशक वह सुख बहुत ही कठिन साध्य है। इसीलिये सच्चा सुखी संसार में दुर्लभ माना जाता है और इसीलिए ही जिसको वह मिला, वह धन्य है।

—अनु० हंसमुख व्यास

[अहमदाबाद आकाशवाणी के सौजन्य से]



पवित्रीकरण

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

अभी सूर्योदय होने में देर है। गंगा के तट पर रामानन्द स्वामी शांत मुद्रा में पूर्व की ओर खड़े-खड़े अर्द्धोन्मीलित नेत्रों से देख रहे हैं।

प्रार्थना में तल्लीन हैं कि उनकी आंखों पर से आवरण हट जाये कि वे भगवान् का दिव्य दर्शन पा सकें।

दिन चढ़ आया। लोग उनके चारों ओर चलने-फिरने लगे, पर वे वैसे ही शांत ध्यान-मग्न खड़े थे।

एक शिष्य ने आकर पूछा, "महाराज! आज इतनी देरी क्यों? पूजा का समय बीता जा रहा है।"

"मेरा शरीर अब भी पवित्र नहीं हुआ; गंगाजी अब भी मुझसे बहुत दूर हैं।"

शिष्य बेचारा कुछ समझ नहीं सका।

स्वामी रामानन्द के मन में जल में खड़े-खड़े एक विचार उठा, और वे बाहर निकल कर, बिना ही पूजा किये, चल पड़े।

शिष्य ने आश्चर्य-चकित होकर पूछा, "स्वामीजी! आप जा कहां रहे हैं? उधर भद्रलोगों की वस्ती नहीं है।"

"मुझे अपने आप को पवित्र जो करना है," और वे आगे बढ़ गये।

चलते-चलते वे एक गली में पहुंचे, एक ऐसी जगह पर, जहां इमली के घने पेड़ थे और वह बस्ती नगर से बिल्कुल बाहर थी। रामानन्द स्वामी सीधे भजन नामक चमार के घर पर पहुंचे।

चीलें वहां सिर पर झपाटे मार-मार कर उड़ रही थीं, मृत मांस की दुर्गन्ध हवा में भरी हुई थी, और एक मरियल कुत्ता एक हड्डी को चिचोड़ रहा था।

शिष्य बस्ती के बाहर ही मन बिगाड़ कर वहीं ठहर गया; बस्ती के अन्दर नहीं गया।

रामानन्द स्वामी ने भजन चमार को छाती से लगा लिया, पर वह बेचारा परे हटता जा रहा था कि महात्मा उसके स्पर्श से कहीं अपवित्र न हो जायं।

रामानन्द ने कहा—"मैंने भगवान् को बहुत खोजा, पर उसे पाया नहीं, कारण कि मैं तुम्हारी बस्ती से दूर रहा, तुम्हारी छाया से भी बचता रहा। मैं सूर्य को नमस्कार करता था, पर उसमें मुझे ईश्वर की प्रत्यक्ष अनुभूति नहीं हुई।

अब आज मैंने तुम्हें हृदय से लगाया और उसका दर्शन मुझे तुम्हारी आंखों में हो गया। उसे मैं अपनी भी आंखों के अन्दर देख रहा हूं आज।

मुझे भगवान् का दर्शन हो गया, हो गया।"

हरिजन-सेवा] —अनु. प्रियरंजनसेन



कर्मयोग और सत्याग्रह

हरिभाऊ उपाध्याय

गीता हिन्दू धर्म की तो सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों में है ही, परन्तु यदि विश्वधर्म नामक कोई चीज है तो उसमें भी वह ऊंचा स्थान पाने योग्य है। क्योंकि यद्यपि वह एक तात्कालिक प्रसंग को लेकर लिखी गई है, फिर भी उसमें शाश्वत सिद्धान्तों व आदर्शों का इस प्रकार वर्णन हुआ है कि उनके आधार पर विश्वधर्म-स्थापना या संचालन अच्छी तरह हो सकता है।

गीता पर कई विद्वानों, विचारकों और ज्ञानियों ने टीका और ग्रंथ लिखे हैं। किसीने कौरव-पाण्डवों के युद्ध और अर्जुन के मोह के तात्कालिक प्रसंग को महत्व देकर उसका रहस्य समझाया है तो किसीने उसमें निहित शाश्वत और त्रिकालाबाधित तत्वों और सत्य को महत्व देकर उसका प्रतिपादन किया है, किसीने भौतिक विद्या तो, किसीने आध्यात्मिक विद्या पर जोर देकर उसका अर्थ किया है। जिसकी जैसी रुचि, प्रवृत्ति, परिस्थिति और अनुभव रहा है उसीके अनुसार उसने गीता को देखा, समझा और सार ग्रहण किया। "जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरत देखी तिन तैसी"। यह कहावत भगवान की तरह गीता पर भी चरितार्थ होती है।

इस पुस्तक (गीता, कर्मयोग और सत्याग्रह) में मुख्यतः तिलक और गांधी के गीता-संबंधी विचारों या तात्पर्यों का ऊहापोह किया गया है और तिलक महाराज के मत को 'कर्मयोग' और गांधीजी के मत को 'सत्याग्रह' के नाम से अभिहित किया गया है। कर्मयोग दोनों को मान्य है, परन्तु एक ने "शठ प्रति शाठ्यम्" इस न्याय पर जोर दिया है तो दूसरे ने 'शठ प्रत्यपि सत्यम्' का आग्रह रक्खा है। या यों कहें कि एक ने साधन-शुचिता पर कम जोर दिया है और दूसरे ने उसे अनिवार्य मानकर बहुत आग्रह रखा है। दोनों का अपनी रुचि और परिस्थिति के अनुसार एक ही कर्मयोग में से दो मार्ग सूझे। इस पुस्तक के विद्वान लेखकों ने दो में से कौन श्रेष्ठ और उच्चतर मार्ग है, इसकी चर्चा की है। और अधिकांश ने यह सही निर्णय निकाला है कि गांधीजी का सत्याग्रह इनमें वर्तमान समय के लिए ही नहीं, सर्वकाल के लिए निश्चित रूप से अधिक उपयोगी स्थायी और मैं तो कहूंगा कि व्यावहारिक भी है।

इनमें कुछ लेखकों ने इस बात की ओर ध्यान दिलाया है कि गीता की कुछ शिक्षाएं आधुनिक समय और आधुनिक समस्याओं को हल करने में समर्थ नहीं रही हैं। जिस काल में गीता कही गयी या लिखी गयी, उससे अब समय बहुत आगे बढ़ गया है, मनुष्य-जाति या मानव का बहुत विकसित हो गया है और कई पुरानी कल्पनाएं और धारणाएं बदल गई हैं। गीता में शस्त्र-युद्ध पर जो जोर दिया गया है वह वर्तमान समय के लिए उपयोगी नहीं है, बल्कि गांधीजी ने अहिंसात्मक सत्याग्रह का जिस रूप में आविष्कार किया है वह अधिक समीचीन है। मैं इस विचार से सहमत हूं।

भारत आज अपने भीतरी विकास में लगा हुआ है। नव-निर्माण का प्रश्न उसके सामने है। वह 'सर्वोदय' की तरफ बढ़े, या 'वर्गहीन समाज' के साम्यवादी आदर्श की तरफ? इनमें भी साधन-शुद्धि-संबंधी मतभेद ही ज्यादा ध्यान देने लायक है। भारत को यह निर्णय करना ही होगा कि वह किस मार्ग पर चले। इसमें यह पुस्तिका (गीता, कर्मयोग और सत्याग्रह) पथदर्शन कर सकती है। इसका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक बहुत धन्यवाद के पात्र हैं।

यह अनुवाद एक मराठी भाषी सज्जन ने किया है। महाराष्ट्रियों की यह खूबी है कि जिस काम को वे हाथ में लेते हैं परिश्रम व जिम्मेदारी से करते हैं। किसी बात को ग्रहण करने के पहले वे हजार बार सोचते हैं, परन्तु ग्रहण करने के बाद उसे बड़ी दृढ़ता से पकड़े रहते हैं और उसमें तत्पर रहते हैं। यह अनुवाद तथा इसका प्रकाशन भी इसी तत्परता से हुआ है। मुझे आशा है कि हिन्दी पाठक इस पुस्तक की पूरी कद्र करेंगे और इससे लाभ उठायेंगे।

कसौटी पर

सुखदा (उपन्यास) लेखक—जैनेन्द्रकुमार : प्रकाशक—पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ २२०, सजिल्द मूल्य ४)।

इस उपन्यास ने पुस्तक-रूप मे आने से पूर्व ही जब वह 'धर्मयुग' में धारावाहिक रूप मे प्रकाशित हो रहा था हिन्दी-जगत में काफी हलचल मचा दी थी। उसका एक विशेष कारण था। जैनेन्द्रजी लगभग दस वर्ष मौन रहने के बाद फिर इस क्षेत्र में आये थे। इसलिये पाठक के मन में स्वाभाविक उत्सुकता थी कि वे क्या लेकर आये हं। 'सुखदा' ने उन्हे निराश नही किया। यह ठीक हैं कि उनकी भाषा और शैली मे विशेष नवीनता नही है। उनका क्षेत्र भी एक विशेष वर्ग की नारी का मनोजगत है। उनका दृष्टिकोण भी पुराना है। फिर भी उनकी अपनी विशेषताए हैं।

उनकी शैली में आकर्षण है। वे विवरण में नही उलझते। शब्द-बाहुल्य उन्हें नही रुचता। कम-से-कम शब्दो से अधिक-से-अधिक अर्थ लेना वे जानते है। कार्टूनिस्ट की भाति कुछ रेखाओ में ही वे अपने पात्रो के व्यक्तिगत और सामाजिक अन्तर और बाह्य को चित्रित कर देते है। उन की शैली मे ऊपर से एक उलझन रहती है, पर उनके चित्र अस्पष्ट नही होते।

'सुखदा' की कथा पढने मे रुचिकर है, प्रभाव में मर्म को छेदने वाली है। वह मात्र हृदय को ही नही मस्तिष्क को भी झकोरती है। यू कथा के ढाचे पर आपत्ति हो सकती है। सन् १९५३ में वह पुरानी भी लग सकती है। एक नारी, पति और प्रेमी, क्रान्तिकारी आदर्श और यथार्थ का द्वन्द्व कुछ ऐसी ही बात 'सुनीता' में भी है, पर वे तो ऊपरी स्थूल की समानताए हैं। मूल मे वे दो बिलकुल भिन्न चीजें है। जहा तक समय की बात है कला उसके बन्धन को स्वीकार नही करती। सन् १९५३ में प्रकाशित सन् १९३० और सन् १९५३ की कथाएं, सन् १९६० के पाठक के लिये एक समान पुरानी हैं। वह उन्हे समय की कसौटी पर नही, कला की कसौटी पर कसेगा। वातावरण, दृष्टिकोण और पात्रो की समानता भी कला की दृष्टि से कोई विशेष महत्व नही रखती, भले ही वह कलाकार की कृपणता की घोषणा करती है।

'सुखदा' मे जैनेन्द्रजी ने जिस नारी को लिया है उसकी भाषा और उसकी बोलचाल का तरीका उसे विशिष्ट वर्ग में रखता है; पर यह दोष भी कलाकार का है उस नारी का नही। उसकी अन्तर-आत्मा तो जातिवाचक भारतीय नारी की अन्तर-आत्मा है। नारी क्या मात्र गृहिणी है। क्या पति से होकर ही समाज से उसका सम्बन्ध होता है—यही शाश्वत समस्या 'सुखदा' के सामने है। "पति द्वार है, उसीके द्वारा लोक-जीवन से हमारा सम्बन्ध हो सकता है। बिना जाने कुछ इस प्रकार का ज्ञान मेरा आधार था। इस बीच जाने किस एक संघर्ष अनिर्दिष्ट शक्ति से मैं पति से स्वाधीन होती चली गई।"

उपन्यास की आधार-भूमि यही है। इसी द्वन्द्व मे जाने अनजाने सुखदा टूटती है और अन्त में टी० बी० मे तिल-तिल घुलकर वह विसर्जित हो जाती है। क्रान्तिकारी हरिदा और लाल, मा और पति सब मात्र साधन मात्र है। सुखदा नारी है जो पति के प्रत्येक शब्द, प्रत्येक काम के अन्तर मे पैठती है और उन्हे नया कर देती है। शायद वह उन्हे पाना चाहती है; पर होता यह है कि वह उन्हे खोती चली जाती है। पास आने का हर प्रयत्न दूरी को बढाने में ही सफल होता है क्योकि पति पति न होकर देवता होते जान पडते है। ये नही जानते कि नारी पति में देवता को नही पुरुष को पाना चाहती है। क्रान्तिकारियो में (वे घर से बाहिर जाने मे उपलक्ष मात्र है) उसे ऐसा व्यक्ति लाल के रूप मे मिलता है पर वह पति नही है। इसी द्वन्द्व में सुखदा उलझती चली जाती है। वह उलझन कही-कही भाषा के कारण (जो लेखक का दोष है) अस्वाभाविक लगती है पर वह असत्य नही है।

क्रान्तिकारियो के नेता 'हरीदा' (लाल के शब्दो में) स्त्रियो का उपयोग मानते है, परामर्श नही मानते। वे

प्यार में ईश्वर और मोह में शैतान मानते हैं। वे सुखदा और लाल के खिंचाव को भी मोह मानते हैं—"तुम विवाहित हो सुखदा, पत्नी हो, गृहिणी हो, माता हो, जाननी हो यह होना क्या होता है। तव पर 'पुरुष का' स्पर्श ।

"पर लाल है जो उपयोग से अधिक सहयोग के कायल हैं—"हमारी गलती रही है कि पराक्रम पुरुषों का हक माना है तो शील स्त्रियों का भाग"। पति हैं जो प्रतिरोध नहीं करते। नहीं जानते कि "स्त्री को राह देना उसे न समझना है। पति वह उतनी नहीं चाहती जितनी स्वीकृति चाहती है। स्वीकृति में दूसरे का अपने पर स्वत्व शायद स्वामित्व भी चाहती है।"

पति यू बुद्धू मालूम देते हैं, पर वास्तव में इतना जानते हैं कि बार-बार सुखदा को भी चकित रह जाना पड़ता है, पर वह उनका आदर ही पाती है, उन्हें नहीं पाती। जानकर जो विष पीता है वह दुःख का त्राता नीलकण्ठ क्या किसी का शापी हो सकता है। वह तो देवाधिदेव है। उच्चतम हैं। उच्चतम को देखने में गरदन दर्द करने लगती है। पाना तो उसे अपने को खोना है। सुखदा में यों राजनीति भी है। कह सकते हैं गान्धी-नीति का उसपर प्रभाव भी है। लाल पश्चिम के हैं। आदर्श नहीं व्यवहार, आत्मा नहीं आदमी उन्हें प्रिय है। यह मार्मिक उक्ति उसी की है—"समग्र मनुष्य को हमें लेना होगा नैतिकता आधे को लेती है।' हरिदा क्रान्तिकारी आन्दोलन की विफलता को स्वीकार करते हैं, "हम कुछ भी करें उस मूलभूत विनय को छोड़ना नहीं चाहिये शायद हमारा काम हो चुका। हरेक अपने समय के लिये होना है। अपनी उपयोगिता को लाँघ कर किसीको जीना नहीं चाहिए।" गाधी के लिये मार्ग यहीं प्रशस्त होता है।

यही हरिदा अन्त में दल को भंग करके अपने को पकड़वा देते हैं। उनपर जो इनाम था उसको उन्हींकी स्वीकृति और प्रेरणा से सुखदा के पति पाते हैं।

इसी गान्धीवादी (?) यूटोपिया से प्रभावित मर्मान्तिक स्थल पर सुखदा की कथा विश्राम लेती है। (यू लाल की निष्ठा का भी हमें परिचय रहता है।) शब्दों में आगे की कथा उपलब्ध नहीं है, पर वहां से सैनेटोरियम जाने और फिर मरने में काफी समय बीता उसकी कथा की कल्पना पाठकों पर छोड़ दी गई है। पर वह कल्पना कठोर या परिश्रम-साध्य नहीं है। चन्द्रमा के प्रकाशित भाग के साथ-साथ कभी-कभी उसका अप्रकाशित आधा भाग भी छाया-रूप में हमें दिखाई देता रहता है।

सुखदा में कला का अपूर्व कौशल है, पेचीदा समस्या है, मर्मान्तिक पीड़ा है, जीवन के एकांगी दर्शन पर तीव्र प्रहार है। व्यापकता भले ही कम है, पर गहराई की थाह त्यागपत्र की भांति नहीं है। सुखदा निश्चय ही हिन्दी कथा-साहित्य की एक अमर कृति है। काश कि पति का चरित्र कुछ और खिल पाता?

चोली दामन : (उपन्यास) : ले० कर्तारसिंह दुग्गल : प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृष्ठ २१० सजिल्द मूल्य ३।)

कर्तारसिंह दुग्गल पंजाबी के प्रसिद्ध साहित्यकार हैं। उनकी कुछ कहानियां हिन्दी के क्षेत्र में भी आई और उन्होंने हिन्दी वालों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। चोली दामन उनका पहला उपन्यास है जो उन्होंने राष्ट्र-भाषा को भेंट किया है। मूलत पंजाबी में लिखा जाने के कारण इसकी भाषा और शैली पर उसी का प्रभाव है और प्रभाव भी गहरा है। शैली एकदम वर्णनात्मक और चित्रमय है मानो कोई कुशल फोटोग्राफर अपना कैमरा लेकर घूम रहा है और जो-कुछ कैमरे में भरने योग्य वह समझता है उसे ही वह अनेक कोणों से पूरे विवरण के साथ शीशे पर उतार लेता है। वस्तु का सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भौतिक भाग ही नहीं हृदय का सूक्ष्म-से-सूक्ष्म मनोभाव भी उसकी दृष्टि से नहीं बच पाता।

चोली दामन में बटवारे से ठीक पहले के पंजाब की दर्दभरी कहानी है। वह कहानी इतनी सजीव और इतनी मर्मान्तिक है और साथ ही इतनी सच्ची है कि अचरज होता है। घायल पंजाब का उन्होंने जैसे इतिहास लिखा है, पर इतिहासकार की शुद्ध इतिवृत्तात्मकता उसमें नहीं है उसमें एक सजग कथाकार का पूरा कौशल है। झगड़े कैसे आरम्भ हुए और कैसे बढ़ते गये इसका मनोवैज्ञानिक विवरण इस उपन्यास में है। कैसे देवता राक्षस बना

और राक्षस में देवत्व जागा : यह कथा के माध्यम से होकर पाठक के मन और मस्तिष्क को झकझोर देता है। लेखक ने सन्तुलन और संयम को, जो कथाकार के मूलभूत गुण हैं, कहीं भी नहीं खोया है। इस उपन्यास की कथावस्तु ऐसी है कि बड़े-बड़े कलाकार भी विचलित हो सकते हैं, पर दुग्गल ने पंजाबी होते हुए भी, पीड़ित होते हुए भी अपनी कथावस्तु के साथ कलाकार का न्याय किया है। वह बराबर एक खरा इन्सान बना रहा है। न उसने देवता बनने की कोशिश की, न वह राक्षस बना। इसलिये इस उपन्यास में सर्वत्र एक स्वाभाविकता है, एक यथार्थ है; वह यथार्थ जो हृदय को कचोटता है और आज तक मनुष्य की प्रगति के आगे एक बड़ा प्रश्न-चिन्ह लगा देता है। आनेवाली सन्तति शायद इसे पढ़कर विश्वास भी नहीं कर पायेगी कि बीसवीं सदी का मनुष्य इतना नीचे गिर गया था। वह गिरे न तो ऊंचाई का भान कैसे हो?

हिन्दी का पाठक इस वर्णनात्मक उपन्यास की शैली के कारण पढ़ते-पढ़ते ऊब सकता है; पर जब यह शैली हिन्दी में घुलमिल जायेगी तो शायद उसकी शक्ति ही बनेगी। वैसे ये वर्णन इतने हृदयग्राही है कि यह ऊब क्षणिक ही हो सकती है। दुग्गल उन प्रगतिशील कलाकारों में से हैं जो साहित्य को सबसे पहले साहित्य मानते हैं और यह भी मानते हैं कि संयम के अभाव में कला कुण्ठित हो जाती है। 'चोली दामन' इस मान्यता का सुन्दर उदाहरण है। यह उपन्यास भावी इतिहासकारों की सम्पत्ति है।

—सुशील

हिमांचला : लेखक—रामेश्वरलाल खंडेलवाल 'तरुण', प्रकाशक—परमात्माशरण अ० भा० राष्ट्रीय साहित्य प्रकाशन परिषद्, मेरठ। पृष्ठ संख्या १०४, मूल्य २॥)।

प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी के उदीयमान तरुणजी की कविताओं का संग्रह है। कवि ने स्वयं अपनी भूमिका में लिखा है—"मेरे हृदय की समस्त सत्ता की अभिव्यक्ति होने के कारण हिमांचला की रचना से मुझे बहुत संतोष है। विधाता की सृष्टि में जो कुछ त्रुटियां व अभाव हैं, उन्हें मैंने हिमांचला में पूरा कर देने का प्रयत्न किया है।"

किन्तु पुस्तक पढ़ने पर इस गर्वोक्ति में अधिक सार नहीं जान पड़ता। बेशक बहुत सी कविताएं सुन्दर हैं पर कुल मिलाकर पुस्तक में मौलिकता का अभाव है। कहीं-कहीं तो पंत और महादेवी की छाया अत्यधिक स्पष्ट हो गई है। इतर कवियों का प्रभाव भी है।

मूं इस बात के अलावा पुस्तक में जीवन के प्रति विश्वास है। प्रकृति-वर्णन सुन्दर बन पड़ा है। कवि का भविष्य आशाप्रद है। गेटअप और छपाई इत्यादि भी सुन्दर हैं।

—अश्वत्थामा

पाप नहीं दुर्बलता

पाप की बात क्यों? वह पाप नहीं, मनुष्य की दुर्बलता है। आत्मा सर्वदा शुद्ध है, चैत्य पुरुष भी शुद्ध हैं, साधना द्वारा अंतरता (आन्तर मन, प्राण और शरीर) भी शुद्ध हो सकती है, फिर भी बहिःसत्ता, बहिः प्रकृति में चरित्र की वे ही पुरानी दुर्बलताएं बहुत दिन तक लगी रह सकती हैं, संपूर्ण रूप से शुद्ध करना कठिन है। आवश्यकता है पूर्ण सच्चाई की, आवश्यकता है दृढ़ता और धैर्य की, सदा जाग्रत भाव की। चैत्य पुरुष यदि सामने रहे, सर्वदा जागा रहे, अपना प्रभाव फैलाता रहे तब भय की कोई बात नहीं किन्तु सब समय वैसा नहीं होता। राक्षसी माया उन पुराने स्थानों को पकड़ कर, मन को भुलावा देकर भीतर घुसने का रास्ता बना लेती है। प्रत्येक बार उसे भगा कर उसका पथ रोक रखना चाहिए।

—श्री अरविन्द

"क्या व कैसे ?"

चांडिल का संदेश

सर्वोदय सम्मेलन का पांचवां वार्षिक अधिवेशन चांडिल (बिहार) में ७, ८ और ९ मार्च को समाप्त हो गया। जैसी कि आशा थी, उसमें मुख्यतः भूदान-यज्ञ पर ही विचार किया गया। यह किसी से छिपा नहीं है कि अपने इस अनुष्ठान को सफल बनाने और उसके द्वारा देश के कोने-कोने में अहिंसक क्रांति का मन्त्र फूंक देने के लिए विनोबाजी ने अपने प्राणों की बाजी लगा रखी है और जिस प्रकार गांधीजी ने 'करो या मरो' के महामन्त्र से देश में एक अद्भुत चेतना उत्पन्न कर दी थी, उसी प्रकार विनोबाजी अपने 'धरती सबकी माता है' के क्रांतिकारी स्वर से देश को जगाने जा रहे हैं। उन्होंने संकल्प किया है कि बिहार में ३२ लाख एकड़ का अपना भाग पूरा करके ही उस प्रांत को छोड़ेंगे। वह देश की समस्त जन शक्ति का आह्वान कर रहे हैं कि वह अन्य सब कार्यों की अपेक्षा इस कार्य को प्रधानता दे। युवकों को वह प्रेरित कर रहे हैं कि वे आवें और इस यज्ञ में अपना योग-दान दें। स्त्रियों को भी इस काम में हाथ बटाने के लिए वह प्रोत्साहित कर रहे हैं। स्पष्ट है कि अब यह आंदोलन किसी एक व्यक्ति अथवा संस्था का आंदोलन नहीं रहा, वह देश भर का आंदोलन बन गया है और उसकी ओर देश के बड़े-से-बड़े नेताओं से लेकर छोटे-से-छोटे कार्यकर्त्ताओं तक का ध्यान आकर्षित हुआ है। हम कह सकते हैं कि तैलंगाना में यह यज्ञ प्रारंभ हुआ, सेवापुरी में उसे एक आंदोलन का रूप मिला और अब चांडिल में वह समूचे देश का स्वर बन गया।

इस आंदोलन के द्वारा भूमि की समस्या हल हो जायगी, ऐसा दावा विनोबाजी ने कभी नहीं किया। पर उनकी भावना है और सही भावना है कि इसके द्वारा वह एक ऐसी 'हवा पैदा कर देंगे, जिससे भूमि की समस्या के हल होने में मदद मिलने के साथ-साथ लोगों में एक नई स्फूर्ति पैदा होगी, जिसकी कि आज देश में बड़ी आवश्यकता है। यदि लोग लोक-हितकारी काम में लग जायगे तो आज की सैकड़ों बुराइयां, जिनमें पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष, निजी महत्त्वाकांक्षा, पद प्रतिष्ठा का मोह आदि मुख्य हैं, अपने आप दूर हो जायगी। खाली दिमाग शैतान का घर होता है और ऐसी हालत में जब कि सामने प्रलोभन हों वह शैतान अपने पूरे करतब दिखाता है। सरकार और कांग्रेस से मायूस लोगों को भूदान-यज्ञ द्वारा सेवा का एक महान कार्यक्रम देकर निस्संदेह विनोबाजी ने बड़ी दूरदर्शिता का परिचय दिया है।

विनोबाजी का शरीर कृश है, पर उनका संकल्प हिमालय की भांति दृढ़ और अचल है। यह निश्चय है कि अब वह अपने मार्ग से हटेंगे नहीं और यज्ञ को पूरा करके ही चैन की सांस लेंगे।

चांडिल ने उपस्थित भाई-बहनों को ही नहीं, बल्कि उनके द्वारा सारे देश को इस कार्य में जुट जाने का संदेश दिया है। देश के हित चिंतकों का कर्तव्य हो जाता है कि वे विनोबाजी के हाथ मजबूत करें और सन् १९५७ तक सारे देश में से ५ करोड़ भूमि एकत्र करने की उनकी मांग को समय से पहले ही पूरा करा दें।

सबसे बड़ा दान

अपने दो वर्ष के भ्रमण में विनोबाजी को जितनी भूमि मिली है, उसमें उत्तर प्रदेश के मगरौठ नामक ग्राम का दान विशेष उल्लेखयोग्य था। वहां के निवासियों ने सारा-का सारा गांव ही विनोबाजी को अर्पित कर दिया था। उस दान का अपना महत्व था। लेकिन इस बार चांडिल में सब से बड़ा दान प्राप्त हुआ एक लाख एकड़ भूमि का, रामगढ़ के महाराजा से। इस दान की पहली किस्त उन्होंने दे भी दी है। यह दान इस बात का द्योतक है कि विनोबाजी की पुकार अब बड़े भू-स्वामियों के दिलों में भी घर करती जा रही है और वे समझने लगे हैं कि इस संबंध में जितनी उदार दृष्टि से काम लेंगे, उतना ही अपना और देश का कल्याण करेंगे। हमें

विश्वास है कि रामगढ़ के महाराजा का यह दृष्टान्त अन्य भूपतियों को भी प्रेरणा देगा ।

नेहरू-नारायण वार्त्ता

पिछले दिनों दिल्ली में भारत के प्रधान मंत्री पं० नेहरू और प्रजा-सोशलिस्ट पार्टी के नेता श्री जयप्रकाश नारायण के बीच हुई बातचीत को हम राजनीति की एक महत्वपूर्ण घटना मानते हैं। उससे यह साफ हो गया है कि नेहरूजी और जयप्रकाशजी देश की जड़ को मजबूत बनाने के लिए चिंतित और साथ काम करने के लिए उत्सुक हैं। यह भी साफ हो गया है कि मूलभूत बातों में मतैक्य हो जाय तो सरकार, कांग्रेस और प्रजा-सोशलिस्ट पार्टी संगठित शक्ति के साथ काम कर सकती हैं। दुर्भाग्य से कुछ बातों में मतभेद होने के कारण इस समय बातचीत सफल नहीं हो सकी, फिर भी इससे निराश होने का कारण नहीं है। बातचीत का 'द्वार' अब भी खुला है और हो सकता है कि आगे चलकर साथ-साथ काम करने का कोई मार्ग निकल आवे। हम मानते हैं कि देश के नवनिर्माण का काम हँसी-खेल नहीं है और जल्दबाजी में कोई ऐसा कदम उठाना, जिससे बाद में पछताना पड़े बुद्धिमानी की बात नहीं होगी। जयप्रकाशनारायण जी ने जो १४ सूत्री कार्यक्रम नेहरूजी के विचारार्थ उपस्थित किया है, उससे ऐसा मालूम होता है कि वह एक रात में ही देश का नक्शा बदल देना चाहते हैं, जो आज की स्थिति में संभव नहीं है। दूसरी ओर नेहरूजी के रवैये को देखकर ऐसा लगता है कि वह जरूरत से ज्यादा सावधान होकर चल रहे हैं। सभवत उनकी सावधानी और धीमी गति का एक कारण यह भी हो कि जिस तंत्र को लेकर उन्हें काम करना पड़ रहा है, वह अधिक गतिशील न होकर फाइलनिष्ठ है, लाल-फीता-भक्त है। उनके लिए खानापूरी का महत्व अधिक है, ऐसे ही उस प्रक्रिया में देशहित गौण क्यों न हो उठे।

हम चाहते हैं कि जयप्रकाशजी और उनके साथी आगे और नेहरूजी तथा उनके सहयोगियों से मिल कर ऐसा कार्यक्रम देश के समक्ष रक्खें, जिसमें देश की जड़वत् सोई पड़ने वाली महान् जन-शक्ति का उपयोग हो सके। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि जबतक इस शक्ति का उपयोग नहीं होगा, देश बहुत आगे नहीं बढ़ सकेगा।

देश को आज योजनाएं नहीं चाहिए, नेता भी नहीं चाहिए। आज सब से बड़ी आवश्यकता सच्चे, कर्तव्य-निष्ठ और परिश्रमशील कार्यकर्ताओं की है।

नेहरूजी की चेतावनी

अभी हाल में दिल्ली के माडर्न स्कूल के उत्सव के अवसर पर पं० नेहरू ने अंग्रेजी के साम्राज्य को सुरक्षित बनाने रखने के विरुद्ध जो कड़ी शब्दावली इस्तेमाल की है, वह ध्यान देने योग्य है। अपने संविधान में हमने हिन्दी को राजभाषा और राष्ट्रभाषा स्वीकार किया है और यह भी निश्चय किया है कि १५ वर्ष में हिन्दी अंग्रेजी का स्थान ग्रहण कर लेगी, लेकिन तीन वर्ष बीत जाने पर भी हम उस दिशा में विशेष प्रगति नहीं कर पाये। अंग्रेजी का स्थान आज भी बहुत कुछ अक्षुण्ण बना हुआ है। यदि यही स्थिति रही तो १५ तो क्या, १५० वर्ष में भी हिन्दी अंग्रेजी का स्थान नहीं पा सकेगी। हम अंग्रेजी के विरोधी नहीं हैं और इस बात से भी इन्कार नहीं कर सकते कि अंग्रेजी में बड़ा ही मूल्यवान साहित्य है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि अंग्रेजी के प्रेम में हम अपनी राष्ट्र-भाषा को भूल जायं। हमें खेदपूर्वक स्वीकार करना पड़ता है कि दो-एक प्रदेशों को छोड़ कर शेष सब प्रदेशों के सरकारी दफ्तरों में अंग्रेजी का आज भी बोलबाला है और केन्द्रीय सरकार के दफ्तरों में अंग्रेजी के प्रति ममता पराकाष्ठा को पहुंच गई है। इस स्थिति में हिन्दी को कैसे वह बल प्राप्त होगा, जो उसे मिलना चाहिए, कैसे उसके भंडार की पूर्ति होगी, जिसकी कि आज आवश्यकता है ?

देश की उन्नति में भाषा और साहित्य का बहुत हाथ होता है, लेकिन दुर्भाग्य से आज इन दोनों की ही उपेक्षा-सी हो रही है।

हमारी निश्चित राय है कि यदि सरकार इस ओर शीघ्र ही ध्यान नहीं देती तो संगठित स्वर से मांग की जानी चाहिए कि वह हिन्दी को आगे बढ़ावे। जब चारों ओर की आवाज उठेगी तो हो नहीं सकता कि सरकार कान में तेल डाले बैठी रहे। अब तो नेहरूजी ने अंग्रेजी के अति

प्रेम के विरुद्ध चेतावनी दे दी है और हमें विश्वास है कि उचित माग का वह अवश्य समर्थन करेंगे।

स्टालिन का निधन—

पिछले दिनों रूस के प्राण स्टालिन के देहावसान से सारी दुनिया में हलचल पैदा हो गई है। जिन महापुरुषों का नाम रूस का पर्यायवाची बन गया था, स्टालिन उन्हीं में से एक थे। उन्होंने अपने जीवन का अधिकाश भाग अपने देश को सुसगठित करने में लगाया। इतना ही नही, अपने अथक परिश्रम से रूस की शक्ति को उन्होंने कई गुना बढ़ा दिया। उनकी विचार-धारा या कार्यपद्धति से भले ही कोई सहमत हो या न हो, लेकिन उनके देश-प्रेम के सबध में दो मत नही हो सकते। उन्होंने नि स्वार्थ भाव से अपने राष्ट्र की सेवा की और देश-हित के आगे वैयक्तिक महत्त्वाकाक्षाओ को पनपने का अवसर नही दिया। विश्व की बडी शक्तियो में आज रूस का स्थान है तो इसका बहुत कुछ श्रेय स्टालिन को है। उनका जीवन उस कर्त्तव्यपरायण सिपाही की भाति रहा, जो हमेशा जूझता रहता है और विश्राम नही जानता।

रूस के इतिहास में स्टालिन का नाम सदा अमर रहेगा। —य०

(पृष्ठ १२३ का शेषाश)

हमें विश्वास है कि इस सम्मेलन के फलस्वरूप अहिंसक क्राति के कदम की गति अब और अधिक तेज होगी।

विनोबाजी में इस बार हमने जितना उल्लास देखा उतना पहले कभी नही देखा। शरीर अब भी काफी दुर्बल है, पर उनकी आत्मिक शक्ति जैसे पहले की अपेक्षा कई गुनी अधिक हो गई है। यह सचमुच उन्हीका काम है कि काग्रेस तथा सरकार से निराश कार्यकर्त्ताओ को एक लोक-हितकारी कार्यक्रम देकर उनकी शक्ति को बिखरने से बचा लिया। शासक तो इने-गिने व्यक्ति ही हो सकते हैं, लेकिन बहुसख्यक लोग तो काम चाहते हैं और जब उन्हें काम नही मिलता तो उनमें निराशा घर कर लेती है। प्रत्येक देश के लिए सबसे आवश्यक बात अपने यहा की लोक शक्ति को, जिसके आगे कोई भी शक्ति नही ठहर सकती, जाग्रत करना और उसे लोक हितकारी कामो में लगा देना है। विनोबा यही काम कर रहे है। भगवान करे, वह अपने महान ध्येय की पूर्ति में सफल हो!

(पृष्ठ १४३ का शेषाश)

पूर्णानन्द वे ही भोग कर सकते हैं जो उनके मत से बधे हुए नही है। सूर का क्षेत्र रूखा सिद्धात नहीं है। वे सरसता का भी व्यापार नही करते। वे तो मानव-अस्तित्व के उस स्पन्दन को सम्बोधित और सवेदित करते है जो जीवन में दुख-सुख को सूक्ष्मतर बना कर उन्हें उस उदात्त तल तक उठा ले जाता है, जहा वे पारस्परिक विरोध छोड़कर एक व्यापक आनन्द का रूप धारण कर लेते हैं। सूर उनमें से है जो आनन्द के मार्ग से जीवन को गति दे कर सूक्ष्मतर लोक की ओर ले जाते हैं।

सूर आज नही हैं, पर मेरे लिए वे साधारण होने से अधिक हैं। वह मेरे जीवन के किस तार में हैं, मेरे अस्तित्व के किस कोने मे है, मेरी धमनियो की किस धड़कन में हैं, यह कहना मेरे लिए सम्भव नही है। पर वे हैं। उनका अभाव घोषित करना मेरे लिए असम्भव है। वे मेरे भीतर है और मेरे-जैसे अनेको के भीतर है। अपना शरीर रख देने के बाद उन्होंने अन्य शरीरो को अपना गेह बनाया है। उन्हें अपने तेज से आलोकित किया है। अपनी साधना से स्फुरित किया है। तन-मन में उनकी यह सूक्ष्म यात्रा जारी है। अभी थकान का अनुभव उन्हें नही हुआ है। विशाल डग आनन्द-कलश हाथ में लिये वे उसे वितरित करने चले जा रहे हैं।

'मण्डल' की ओर से

सहायक सदस्य

'मण्डल' की सहायक सदस्य योजना के अंतर्गत जिन सदस्यों के रुपये प्राप्त हो गये हैं, उनकी आगे की सूची इस प्रकार है :—

९७. रामजस हा. से. स्कूल नं ५ करोलबाग, दिल्ली
९८. रामजस हा. से. स्कूल, न १ दरियागंज, दिल्ली
९९. जैन धर्मोपारक हाईस्कूल, दिल्ली
१००. सनातन धर्म हा. से. स्कूल, दिल्ली।
१०१. श्री भंवर पुस्तकालय ओसवाल सभा, बीदासर
१०२. डेली कालेज, इन्दौर
१०३. मेरठ कालेज, मेरठ
१०४. अपरदोब सुगर मिल, शामली
१०५. श्री बालचंद बद्रीप्रसाद, कलकत्ता
१०६. महावीर पुस्तकालय, कलकत्ता
१०७. श्री प्रभुदयाल डाबड़ीवाल „
१०८. श्री भोजनगरवाला ब्रादर्स „
१०९. श्री शिवभगवान गोयनका „
११०. श्री विश्वनाथ मोर „
१११. *श्री किशोरीलाल ढाढनिया कलकत्ता*
११२. आदर्श हिन्दी हाई स्कूल, भवानीपुर, कलकत्ता
११३ श्री विधावतीदत्त, कलकत्ता
११४. सतुलाल पुस्तकालय, रांची
११५. श्री महावीर दि० जैन वाचनालय, महावीर
११६. श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका, कलकत्ता
११७. श्री दुर्गाप्रसाद सरावगी, कलकत्ता
११८. श्री कृष्णदास अग्रवाल, कलकत्ता
११९. श्री मदन गोपाल पोद्दार, कलकत्ता
१२०. श्री रामेश्वर पाटोदिया, कलकत्ता
१२१. श्री रुद्रनारायण रुवतोन, कलकत्ता

कलकत्ते से १०० सदस्य बनाने का सकल्प किया था, जो शीघ्र ही पूर्ण होने जा रहा है। इधर जमशेदपुर का नया क्षेत्र सामने आया है और वहा से कई सदस्य बनने और बनाने का वचन मिला है। रांची में भी कुछ सदस्य बनेंगे। कलकत्ते का भाग पूरा करके बंबई पर ध्यान केन्द्रित करने का विचार है। शिक्षा-संस्थाओं को सदस्य बनाने का प्रयत्न जारी है।

नये प्रकाशन

'मण्डल' के नये प्रकाशनों के विषय में हमने गतांक में कुछ सूचनाएं दी थी। पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि श्री वियोगी हरि द्वारा सम्पादित संतों की वाणियों का संग्रह 'संत-सुधा-सार' प्रकाशित हो गया है। दूसरी पुस्तक निकली है आचार्य विनोबा के चुने हुए युवकोपयोगी लेखों और भाषणों का सकलन **'जीवन और शिक्षण'**। तीसरी पुस्तक है श्री महावीरप्रसाद पोद्दार की **'कब्ज : कारण और निवारण'**।

विनोबाजी के चाडिल सर्वोदय-सम्मेलन में दिये गए तीन महत्वपूर्ण भाषणों का संग्रह शीघ्र प्रकाशित होने जा रहा है।

'गांधी साहित्य' का नया भाग 'आत्म-संयम' प्रेस में दे दिया गया है। इस संग्रह में ब्रह्मचर्य-संबंधी गांधीजी की रचनाएं हैं।

पुनर्मुद्रण

उपर्युक्त नई पुस्तकों के अतिरिक्त नीचे लिखी पुस्तकों के नये संस्करण निकाले जा रहे हैं :—

(१) काश्मीर पर हमला (२) हिन्द स्वराज्य
(३) प्रार्थना प्रवचन (पहला भाग) (४) स्वराज्य शास्त्र
(५) स्वतंत्रता की ओर (६) व्यवहार और सभ्यता
(७) गांधी-अभिनंदन-ग्रंथ (८) बटोही
(९) बा, बापू और भाई (१०) रामतीर्थ संदेश (तीनों भाग)
(११) मालिक और मजदूर (१२) पशुओं का इलाज

इनके साथ-साथ विचार-क्रान्ति-माला, समाज-विकास-*माला तथा संस्कृत-साहित्य-सौरभ-माला* की भी कुछ पुस्तकें प्रेस में जा रही हैं।

—मंत्री

Regd. No. D. 228

मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली में छापकर प्रकाशित।

जून १९५३

भूदान-यज्ञ के सच्चे मार्गदर्शक



अगर विनोबाजी ने भूदान-यज्ञ शुरू न किया होता, तो गांधीवाद या सर्वोदय को हम भूल जाते। गांधीजी की बातों पर से हमारा विश्वास उठ जाता। सर्वोदय का मार्ग रुक जाता।

—जयप्रकाश नारायण

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय
यशपाल जैन

जीवन साहित्य

'जीवन-साहित्य'

हमारी नई पुस्तकें

लेख-सूची



आवश्यक सूचना

'जीवन-साहित्य' के १०००१ से १०४०० नम्बर तक के ग्राहकों का चंदा इस अंक के साथ समाप्त हो रहा है, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे आगामी वर्ष के लिए ४) मनिआर्डर द्वारा भेज देने की कृपा करें। बी पी से भेजने में ॥) अतिरिक्त लग जायगे। डाकखाने के नियमानुसार सूचना या मनिआर्डर फार्म नहीं रख सकते। रुपये ३० जून तक आ जाने चाहिए। तभी जुलाई का अंक भेजा जा सकेगा।

आगामी वर्ष का वार्षिक मूल्य भेजते समय अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें। नवीन ग्राहक मनिआर्डर कूपन पर 'नवीन ग्राहक' शब्द लिखने की कृपा करें।

—व्यवस्थापक

उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश तथा बिहार प्रादेशिक सरकारों द्वारा स्कूलों, लाइब्रेरियों तथा उत्तरप्रदेश की ग्राम-पंचायतों के लिए स्वीकृत

जीवन-साहित्य

अहिंसक नवरचना का मासिक

वर्ष १४] जून १९५३ [अंक ६

सर्वोदय का उद्घोषक

जयप्रकाश नारायण

हम कहते हैं कि शासन में हरेक आदमी को भाग लेने का हक है। सच्ची लोकशाही कैसे निर्माण होगी, इस विषय में विनोबाजी ने कहा है कि इसके लिए ग्रामराज्य का उद्घोष करना आवश्यक है और अगर हम सच्चे समाजवादी हैं तो हमें भी ग्रामराज्य का उद्घोष करना होगा। इस तरह ये दो धाराएं मिल रही हैं। उसमें बहुत शक्ति पैदा होती है। मेरा इस सम्मेलन में आना, इसमें भाग लेना और विनोबाजी का भक्त बनना, इसका कुछ लोग मजाक उड़ाते हैं और कुछ लोग कहते हैं कि आप अब ठीक रास्ते पर आये। लेकिन आज सबके लिए सच्चाई से, गहराई से और हिम्मत से सोचने का समय है। तो जो सच्चा समाजवादी है, वह अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए दिन-रात प्रयत्न करेगा, तो जैसी मेरी दशा हुई है, वैसी उसकी भी होगी। लेकिन ऐसा नहीं मानना चाहिए कि सर्वोदय वालों के सामने पहले से ही सब बातें स्पष्ट थीं और आज जो वे कह रहे हैं, वह उन्हें पहले से ही मालूम था। गांधीजी और विनोबाजी को छोड़ दें। बाकी के लोगों की बात दूसरी है। एक समय आया था, जब आगे बढ़ने का रास्ता नहीं दीख रहा था। इस बात की अपेक्षा सबको थी कि उस समय समाज को बदलने का रास्ता गांधीजी के लोग पेश करेंगे जैसा कि वे खुद होते तो करते। लेकिन गांधीजी के बाद चारों ओर अंधेरा छा गया। मेरा ऐसा मानना है कि अगर विनोबाजी न भूदान-यज्ञ शुरू न किया होता तो गांधीवाद या सर्वोदय को हम भूल जाते। गांधीजी की बातों पर से हमारा विश्वास उठ जाता। सर्वोदय का मार्ग रुक जाता, ऐसा मुझे लगता है। भूदान-यज्ञ के कार्यक्रम को सामने रखकर विनोबाजी ने हमें नयी जान दी है, नहीं तो रचनात्मक काम करनेवाले अपने-अपने काम करते रहते। उसमें देश को अवश्य कुछ लाभ होता, परन्तु यह जो आशा जनता की थी कि गांधीजी के लोग देश को नया बनाने का उद्योग करेंगे, वह नहीं रहती और देश में खूनी-जंग होते। उसमें दूसरा ही नतीजा निकलता।

इसलिए हमें अपने सामने जो उद्देश्य है, उसकी प्राप्ति करने का यह तरीका अपनाना चाहिए। अपना-अपना अहंकार और अपने वालों का अहंकार छोड़कर काम करना चाहिए।

०

स्वराज्य के बाद

विनोबा

जब कोई देश आजादी हासिल करता है तो उसके पास असली काम की शुरुआत होती है। जबतक आजादी हासिल नहीं होती है, तबतक देश के लिए कोई धर्म ही नहीं होता है। जो स्वतन्त्र है उसी के लिये धर्म होता है। हमारे शास्त्रकार जो आज्ञा देते है कि यह करो और यह मत करो, वह उसी को देते है जो आज्ञा का पालन करने के लिए स्वतन्त्र होता है। जो गुलाम होता है, जो अपनी इच्छा से न अच्छाई कर सकता है, न बुराई कर सकता है ऐसे पराधीन मनुष्य के लिए शास्त्रकार न कोई आज्ञा देते है, न कोई धर्म बताते है। जबतक देश स्वतन्त्र नहीं था, तबतक धर्म का आचरण नहीं हो सकता था। इसलिए पहला कदम देश को आजाद बनाना यही हो सकता था। जबतक आजादी प्राप्त नही हुई थी, तबतक आजादी प्राप्त करने के सिवाय दूसरा कोई काम नही हो सकता था, परन्तु अब आजादी प्राप्त हुई तब धर्म आरम्भ हुआ। समाज-सेवा का, गरीबो की भूख मिटाने का धर्म आरम्भ हुआ। अब गाव की सेवा करनी है, गांव की सपत्ति बढानी है, गाव में भाईचारा, न्याय और समता लानी है, गाव सुखी और स्वस्थ बनाने हैं। यह सारा धर्म-कार्य है और उसका आरम्भ तब होता है जब स्वराज्य आता है। परन्तु जहा स्वराज्य आया तबसे बहुत से लोगो ने समझा है कि अब भोग करना है। एक बडी निधि मिली है, इसलिए अब भोग में होड-सी लगी है। कौन कितना भोग करता है, कौन कितना अधिकार प्राप्त करता है और कौन कितना पारिवारिक भोग भोगता है इसमें होड-सी लगी है। यह मानना गलत है कि अब कर्तव्य खत्म हुआ है और भोग का आरम्भ हुआ है। भोग का आरम्भ याने शक्ति के क्षय का आरम्भ, परन्तु अगर शक्ति के क्षय का आरंभ भी करना है तो शक्ति पूर्ण होने के बाद। पूर्ण चन्द्र होने के बाद क्षय होता है तो यह शोभादायक है, परन्तु जहा अमावास्या ही टल गई वहा क्षय कैसे होगा। अभी निधि हाथ में नही आई है।

अग्रेजो ने तो हमें दरिद्री हालत में छोडा था। ऐसी हालत थी जब कि उसमें से सार खीचना ही असभव था, हाथ में ऐसी दुकान आयी थी जिसका दीवाला निकल चुका था और उसमें कुछ फायदा नहीं हो सकता था।

यहा पर अग्रजी राज आने के बाद यहा की सम्पता टूट गयी। पहले यहा पर ग्राम सभाएँ होती थी, पचायत का राज चलता था, गाव की पैदावार, गाव की तालीम, गाव की रक्षा इत्यादि गाव का सारा महत्व का कारोबार पचायत ही करती थी। पचायत का मतलब है पाचो जाति वाले मिलकर काम करते थे। वह एक किस्म की सामुदायिक योजना थी। सारी जमीन पचायत की थी। और किसान को काश्त करने के लिए जमीन का एक हिस्सा दिया जाता था। वैसे ही धोबी, नाई आदि सबको एक हिस्सा दिया जाता था। इस तरह सारा गाव एक परिवार के जैसा रहता था और गाव में पचायत का राज चलता था। इसी को असली स्वराज कहते है। वह सारा इतजाम और वह कल्पना टूट गयी और फिर पैसे का राज आया। भगवान से भी अधिक पैसे की पूजा होने लगी, लेकिन पैसे की कोई कीमत नही है। पैसा लगडा है और उसी के हाथ हमने अपना सारा कारोबार सौपा है और अपनी जिंदगी बरबाद की। पैसा तो साभिक के प्रेम में पैदा होता है और उसका कोई स्थिर मूल्य नही है। और इसलिए हर एक को लगता है कि अधिक-से-अधिक पैसा इकट्ठा किया जाय। जिससे कि बाल-बच्चो के काम में आ जाय। पैसे पर भरोसा नही रख सकते। जिसके कारण अधिक-से-अधिक पैसा इकट्ठा करने की इच्छा होती है, लेकिन पुराने जमाने में ऐसा नही था। तब तो किसी को तेल की जरूरत हो तो वह तिल्ली लेकर तेली के पास पहुचता था और उससे कहता था कि मुझे तेल पेर के दे दो और तुम खली ले लो। पैसे का कोई सवाल ही नही। एक कोडी का भी हिसाब नही रखा जाता था। सारे दिल से उदार थे। नाई, बढई, धोबी सब जितना आ जाय काम करते थे, हिसाब नही रखते

थे' कि किसान ने साल भर में कितना काम किया। नाहक काम तो कोई लेता ही नही था। और हरगज न मान लिया था कि फसल का हिस्सा सबको मिलेगा।

अगर फसल कम आती तो सबको कम मिलता था यानें दुख बँट जाता था। और फसल ज्यादा आई ना सबको ज्यादा मिलता था यानें सुख भी बँट जाता था। लेकिन आज तो कोई दुखी होता है तो अकेला ही दुखी होता है। उसके दुख से समाज नही दुखी होता है। और कोई सुखी होता है तो अकेला ही सुखी होता है और उसके सुख से समाज नही सुखी होता है। जिस समाज मे व्यक्ति के सुख-दुख में समाज सुखी और दुखी नही होता है वह समाज-रचना नही है। बल्कि समाज-रचना टूट गई है, ऐसा कहना पडेगा। अंग्रेज जाने के बाद ऐसा ही हुआ। इसलिए हमारे साथ में कोई निधि नही आयी। बल्कि पुरुषार्थ करने का उपाय आया। अब हम चाहे जो रचना कर सकते हैं। स्वराज के पहले चाहे जो रचना नही कर सकते थे। परकीय सत्ता उसमे बाधा डालती थी, लेकिन आज गाव में चाहे जो योजना कर सकते हैं। इसलिए अब तो काम करने का मौका आया है। इसलिए मैं जवानों से कहता हू कि आप आगे बढिये। बूढो का समय तो अंग्रेजों को निकालने में ही चला गया, लेकिन आज आपके हाथ में बनाने का काम आया है। आप चाहे जैसे मूर्ति बनाओ। आपकी कारीगरी दिखाने का अवसर आपको मिला है। ऐसा अवसर उनको नही मिला था। उन लोगो को तो देश पर जो दबाव था उसको हटाने में ही सारा परिश्रम करना पडा। लेकिन आप जैसे जमाने में आये है, आपको ऐसा सुअवसर मिला है कि आप समाज बना सकें।

मूर्ति बनाकर उसकी मंदिर मे प्राण-प्रतिष्ठा करके उसे स्थापित कर सकते हैं। उस समय तो मंदिर ही हाथ में नहीं था; लेकिन अब हाथ आया। लेकिन उसमे मूर्ति होनी चाहिए। हमें अभी तक पूरी आजादी नही मिली है। सिर्फ राजकीय सत्ता हाथ में आयी है। लेकिन गाव-गाव मे आजादी आनी चाहिए। आजादी की हरारत और गर्मी हर गाव में महसूस होनी चाहिए। सूर्योदय दिल्ली या पटने वालो ने महसूस किया और गाव वालो ने सिर्फ सुना कि वहा सूर्योदय हुआ है, यह नही हो सकता है। सूर्य जब उगता है हर गाव मे उसकी रोशनी फैल जाती है वैसे ही स्वराज की हरारत और प्रकाश हर गाव में फैलना चाहिए। लेकिन वह नही हुआ। सिर्फ मंदिर या इमारत हमारे हाथ मे आई। इतने से ही भक्ति का आरभ नही होता है। मूर्ति की प्रतिष्ठापना के बाद भक्ति का आरभ होता है। इसलिए अब जवानो का धर्म है कि मूर्ति बनाये फिर उसकी प्रतिष्ठापना करना, फिर पूजा करना, फिर नैवेद्य चढाना और उसके बाद भोग भोगना। लेकिन वह भोग भी भोगने की नियत से करोगे तो राष्ट्र का क्षय होगा। उसे परमेश्वर का प्रसाद समझकर भोगोगे तो पूजा चलती रहेगी। नही तो शक्ति क्षीण हो जायगी; लेकिन आज तो भोग का सवाल ही नहीं है। अभी मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा करनी है और पूजा करनी है। यह सब करना बाकी है। जवानों को एक बहुत बडा मौका मिला है। गया में हमने जो भूमि का मसला हाथ में लिया है उसे हल किये बगैर चैन नहीं लेंगे ऐसी प्रतिज्ञा लेनेवाले एक हजार तरुण सेवक चाहिए। अर्थं वा साधयेत, देहं वा पातयेत, ऐसा प्रण करनेवाले युवक चाहिए। गया की तीस हजार की आबादी से एक हजार युवक चाहिए। मै उनमे कहूगा कि मूर्ति कैसी करनी है यह लोगों को समझाओ। जब मूर्ति ध्यान मे आयेगी। इसके लिए पहले जमीन का बटवारा करना होगा। फिर नये ढग से ग्रामोद्योग चालू करने होगे। जो ढग इस जमाने मे टिक सकता है ऐसा ही ढग अपनाना होगा। नयी तालीम चलानी होगी। फिर नये धर्म की स्थापना करनी होगी। पुराना धर्म नही, इसमें छुआछूत वगैरह है। सयम पूर्वक रहोगे, प्रेम से सब मिलकर खाओगे तो सारे सुखी होंगे।

जैसे गोकुल में श्रीकृष्ण भगवान घर का मक्खन सबमे बाटते थे और सब मिलकर प्रेम से खाते थे, सब मिलकर रहते थे, वैसे ही अब करना है। यह छूआछूत वगैरह भोग के पीछे आता है। छूआछूत, जातिभेद वगैरा भेद की बातो के पीछे डडा है; परन्तु जब हम परमेश्वर का प्रसाद समझकर सेवन करेंगे तो यह भेद नहीं रहेंगे। हम चाहते हैं कि समाज की सेवा करके

मुझे परमेश्वर का प्रसाद मिला है और अब इसका सेवन करके मैं फिर से सेवा करूगा, क्योंकि मेरा शरीर सेवा के लिए है ऐसी भावना से काम करना चाहिए। जैसे मशीन को तेल देना पडता है, तेल देने का शौक नही होता है। ऐसा कभी नही होता है कि मशीन में आज यह इत्तर डालू, कल दूसरा, वैसे ही शरीर के लिए जो आवश्यक है उतना ही उसको देना चाहिए। खिलाने का शौक नही होना चाहिए। जैसे हम यत्र को जितना आवश्यक है उतना और जो आवश्यक है वह तेल देते है वैसा ही शरीर के साथ करना चाहिए। किसी को शौक होता है तो सूत कातने का होता है, चर्खे में तेल देने का नही होता। कताई के समान धर्म-कार्य का या सेवा का शौक रखना चाहिए। खाने का याने तेल देने का नही। हम इस ख्याल से काम करेगे तो छूआछूत वगैरह सब खत्म हो जायगी। प्रेम में सब धर्म डूब जाते हैं। शबरी भीलनी के जूठे बेर भगवान ने सेवन किए, क्योंकि प्रेम था। प्रेम एक महान् धर्म है जिसमें सारे धर्म डूब जाते है। सूरज का प्रकाश जहा फैलता है वहा सारे सितारे खत्म हो जाते है। वैसे ही प्रेम-धर्म के प्रकाश के सामने दूसरे सारे धर्म क्षीण हो जाते है। यह प्रेम-धर्म आज लाना है। समाज देवता है और व्यक्ति को उसकी पूजा करनी है। नारायण की सेवा करने के लिए नर-देह मिला है। नारायण याने नरो का समुदाय। नारायण की सेवा का धर्म जिसे आप भक्ति-मार्ग कहो या और भी कुछ कहो, मैं तो उसे नारायण धर्म या भागवत-धर्म कहूगा। वही धर्म मैं लाना चाहता हू। मेरा तेरा, मेरी इस्टेट, तेरी इस्टेट, ये सारे भेद मिटाने है। भक्तो ने कहा है कि भेद छोड दो, परन्तु हमने यह माना कि यह तो सिर्फ परम भक्तो के लिये ही है। लेकिन अभेद का धर्म सिर्फ महात्माओ के लिए है, यह मानना गलत है। वह तो सबके लिए है।

हमारी यह बडी भारी गलती थी कि हमने सारा आचार महात्माओं को सौंप दिया था। स्थितप्रज्ञ के लक्षण हम रोज गाते है, परन्तु कहते हैं कि वह आदर्श तो महात्माओ के लिए है हमारे लिए नही है। मान-अपमान समान मानना, यह हम जो रोज गाते है वह महात्माओ के लिए है। उसका मतलब है कि जो अच्छाई या धर्म का असल रहस्य था वह सब भक्तो को अर्पण कर दिया था, और हम मानते थे कि सिर्फ उन भक्तो का दर्शन करने से हम मुक्त हो जायेंगे। हा, सज्जनो के दर्शन मे ताकत है यह मैं मानता हू, परन्तु वह ताकत जिसने महसूस की उसके जीवन मे परिवर्तन होना चाहिए। वही सच्चा दर्शन है। एक लडके को उसकी मा देखती है और दूसरा कोई देखता है, परन्तु मा का दर्शन सच्चा दर्शन है क्योंकि उसे देखते ही मा के मन मे प्रेम पैदा होता है। सिर्फ आखो से दर्शन करो उसे दर्शन नही कहा जाता है। हृदय से जो दर्शन है वही सच्चा दर्शन कहा जाता है। ऐसे दर्शन मे उसके आखो मे से आसू गिरने लगते है, हृदय में प्रेम पैदा होता है और हृदय-परिवर्तन होता है। वैसे ही भगवान का नाम लेना अच्छा है, परन्तु केवल जबान से नाम लेना अच्छा नही है, हृदय से लेना चाहिए। जैसे हनुमान के हृदय से हमेशा राम-नाम का उच्चारण होता था और अर्जुन के हृदय से श्रीकृष्ण का उच्चारण होता था। एक बार अर्जुन सोया हुआ था, और व्यास भगवान वहा पहुचे। उन्होने सुना कि श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण ऐसी आवाज निकल रही है। वे सोचने लगे कि कौन जप कर रहा है। अर्जुन तो सोया हुआ है। तब उन्होने देखा कि अर्जुन के हृदय से आवाज निकल रही थी। दर्शन और नाम-स्मरण ऐसे साधन है कि जिससे जीवन-परिवर्तन हो जाता है। इसीलिए भक्ति मार्ग आसान समझा जाता है। भक्ति-मार्ग से काम जरूर होता है बशर्ते कि हृदय में भक्ति हो। किसी एक साधारण सस्था का मामूली सेक्रेटरी अपने एक साल के काम की रिपोर्ट पेश करता है और वह रिपोर्ट पचास पन्ने की होती है। किसी मा से पूछा जाय कि तुमने एक साल में बच्चो के लिए क्या-क्या किया तो वह कहती है कि मैंने कुछ भी नही किया, क्योंकि उसके हृदय में आनद होता है, वह अदर के समाधान से काम करती है इसलिए हिसाब नही रहता है। अगर किसी से पूछा जाय कि एक साल में कितना दूध पिया और कितनी शक्कर खायी

तो यह हिसाब नही दे सकेगा। क्योंकि जहां आनंद होता है, स्वाभाविक प्रेम होना है वहां हिसाब नहीं रखा जाता।

एक बार किसी ने मुझसे कहा कि हम तेरह करोड़ का जप करने जा रहे है तो आप भी एक हिस्सा उठा लीजिए। मैं उसकी हंसी नहीं करना चाहता हूं। मैं मानता हूं कि ऐसे संकल्प में भी शक्ति होती है, परन्तु अगर हिसाब करके राम-नाम लिया जाय तो राम-राम कहने के बदले एक-दो-तीन-चार ही याद रहेगा। नाम-नाम पर राम कहो, ऐसा होना चाहिए। अगर आप हिसाब करके जप करोगे तो आप हिसाब या गणित के भक्त बनेंगे, राम के नहीं। जप-तप जब भक्ति से होता है तो मालूम नही होता है। इसीलिए भक्ति मार्ग आसान कहा जाता है, क्योंकि उसमें कष्ट मालूम नही होता है। हम समाज में भक्ति-मार्ग फैलाना चाहते हैं। जबतक स्वराज्य प्राप्त नही हुआ था तबतक हमने छोटे-छोटे धर्मों का पालन किया। अधर्म का पालन किया ऐसा मैं नही कहता हूं, लेकिन छोटे छोटे धर्मों का पालन किया। परन्तु अब महान प्रेम धर्म मैं लोगों में फैलाना चाहता हूं। "राम हि केवल प्रेम पियारा, जान लेहु जो जान निहारा" तुलसी-दास कहते हैं कि राम को केवल प्रेम प्रिय है। प्रेम-धर्म फैल जायेगा तो निरन्तर काम करते हुए भी थकान नहीं महसूस होगी। जमीन का बटवारा तो एक मामूली काम है। यह तो आरंभ है; लेकिन हमें नये धर्म की स्थापना करनी है। नया याने यह नही कि जो पुराने लोगो को सूझा नही था परन्तु यह कि उनसे उस धर्म का सबसे आचरण करवाना बना नही था।

हम चाहते हैं कि सब लोग उस धर्म का आचरण करें। हिन्दुस्तान में ऐसा हुआ था कि कुछ व्यक्ति तो पहाड़ के जैसे ऊंचे थे और बाकी सारे मैदान के समान नीचे। हम चाहते हैं कि पहाड और मैदान ऐसे यह भेद न रहे। जो उत्तम धर्म है वह समाज में फैल जाय। उसका सामाजीकरण हो। आजकल सामाजीकरण और ग्रामीकरण यह शब्द बहुत चलते हैं। प्रेम, त्याग और वैराग्य इत्यादि बातें चन्द लोगों के हाथ में न रहे। वह सबको मिलें। जैसे श्रीकृष्ण भगवान ने गोकुल में आनंद बरसाया था वैसे हम गाव गाव में आनद बरसाना चाहते हैं — जैसे श्रीकृष्ण ने गोकुल मे एकता निर्माण की थी वैसी हम गांव गाव मे निर्माण करना चाहते है। आज तक हम केवल गोकुल के आनद के गीत गाते रहे। और हां, गाना भी अच्छा है। अगर कर नही पाते हैं और गाते हैं तो गाने मे कुछ तो होता है। जपना या रटना इसमें भी कुछ शक्ति होती है। हम उसको आदर्श के रूप में सामने रखते हैं तो अच्छी बात है। परन्तु अब मौका आया है जब कि सारे समाज में हम वह धर्म फैलाना चाहते हैं। हम सबको धर्मनिष्ठ बनाना चाहते हैं। आज हिन्दु धर्म के नाम पर करोड़ो लोग है वैसे ही मुसलमान धर्म के नाम पर करोड़ो लोग हैं, परन्तु वे सारे नाम पर। हिन्दु या मुसलमान धर्म के काम पर कोई नही। हम चाहते हैं कि सिर्फ नाम पर न हो, काम पर हो। हम बोलने में तो अद्वैती भाषा बोलेंगे। सिर्फ मानव ही नही बल्कि सारी पशु-सृष्टि और वनस्पति-सृष्टि भी एक है ऐसी भाषा बोलें। परंतु तेनापि दुखिना. विरला.—ऐसा मत कहो। बल्कि यह कहो कि मानव का लक्षण है दूसरे के दुःख से दुखी होना। जो दूसरे के दुःख से दुखी नही होता है ऐसा सख्त और कठिन मनुष्य ही दुर्लभ है ऐसा कहना चाहिए। सारे मनुष्य प्रेममय दिल वाले है ऐसा कवि बोले; यह हम चाहते हैं। धर्म मठों में और मंदिरों में सीमित नही रखना है। स्थितप्रज्ञ के लिए सुपुर्द नही करना है बल्कि समाज में लाना है।

संपत्ति के बारे में भी पहले यह था कि कुछ लोग मां बाप थे और बाकी सारे बच्चे। मां-बाप समझते थे कि बच्चों की परवरिश करना हमारा काम है। परन्तु अब ऐसा नही रहा है। अब बच्चे अपनी परवरिश कर सकते हैं। इसलिए मा-बाप को यह अहंकार छोड़ देना चाहिए कि हम ही बच्चो की परवरिश कर सकते हैं।

मैं जमीन की तकसीम चाहता हूं, संपत्ति की तकसीम चाहता हूं, अक्ल की तक्सीम तो भगवान ने कर ही दी है। और मैं धर्म की भी तकसीम चाहता हू। आज तक अपना धर्म क्या है यह शास्त्रकारो के पास या धर्म-ग्रन्थो में पूछना पडता है। लेकिन क्या एक मा किसी शास्त्रकार के पास पूछने जाती है या किसी मनुस्मृति में देखती है

कि बच्चे को दूध पिलाना मेरा धर्म है या नही। वह धर्म तो उसे सहज ही मालूम होता है। वैसे ही प्रेम, दया इत्यादि धर्म सहज रूप से स्फुरने चाहिए। किसी गीता या मनुस्मृति में पूछने की जरूरत नही होनी चाहिए।

हम रामराज्य स्थापित करना चाहते है, लेकिन रामराज्य मे क्या था? वहा तो राजा राम थे, प्रजा राम थे, सारे राम थे। राम के सिवाय दूसरी कोई चीज नही, जब हनुमानजी लका जलाकर वापस आये थे और उनसे कहा गया कि तुमने बहुत बड़ा पराक्रम किया तो उसने कहा कि मेरा पराक्रम नही है, रामजी का पराक्रम है। रावण से भी उसने कहा कि मैं तो रामजी का एक तुच्छ सेवक हू, मेरे जैसे लाखो वहा पडे है, इस तरह रामराज्य में जो कुछ बनता था सारे राम के नाम पर बनता था। हर एक के दिल में सच्चाई, प्रेम, सत्यनिष्ठा भरी हुई हो तो राम-राज्य आयेगा।

कुछ लोग कहते है गाधीजी के बाद हमने उनके शिष्यो के पास सत्ता सौंप दी। फिर भी राम राज्य नही आया, लेकिन राम राज्य क्या ऊपर से गिरने वाला है? कोई दिल्ली से पुडिया भर कर राम-राज्य भेजने वाला है? राम-राज्य तो हृदय में पैदा होगा न! आज दिल खोलकर देखो कि स्वराज्य प्राप्त होने के बाद आपने कितना द्वेष छोडा, कितना काम क्रोध छोडा यह जरा हृदय के अदर देखो। अगर नही छोडा हो और पहले जैसे ही पत्थर बने हुए हो तो कैसे राम राज्य आयेगा? आज हम सबको एक बडा ही सुन्दर मौका आया है। 'गाव गाव अस होई अनदा।' हम गाव गाव आनद देखना चाहते है। हम रोती सूरत नही देखना चाहते है। हम चाहते है कि कोई यह न कहे कि मैं दुखी हू। अगर कोई मुझसे यह कहे कि मैं दुखी हू तो मैं उससे कहूँगा कि तू दुखी नही है, मैं दुखी हू। इस तरह दुख मिटाने के लिए मैं फौरन कूद पडू तो दुख का दर्शन ही नही होगा। जब समाज में भक्ति नही रहती है, तभी दुख का दर्शन होता है। सारे समाज मे पैदावार कम हो या ज्यादा हो, भक्ति है तो सुख होगा। अगर हम दूसरे के दुख से दुखी होते है तो पैदावार कम भी रहे तो भी कम सुखी न होगे। कुए से एक बाल्टी भर पानी निकला तो भी कुए में गढा नही पडता, क्योंकि सारे बिंदु गढा भरने के लिए दौड़ पडते है। इतना उन बिंदुओ मे स्नेह रहता कि सारे पानी की सतह नीचे गिर जाती है, परन्तु गढा नही पडता है। लेकिन किसी गेहू के ढेर मे एक सेर गेहू निकाल लो तो गढा पडता है। कुछ दो चार गेहू, महात्मा वहा गिरते हैं और गढा भरने की कोशिश करते है फिर भी गढा कायम रहता है। वैसे ही आज के समाज की हालत है। समाज के दुखरूपी गढे को मिटाने के लिए थोडे से महात्मा आते है, परन्तु उतने से गढा नही भरता है, उन महात्माओ ने अपना काम तो कर लिया, परन्तु गढा बना रहा, इस तरह चद महात्मा होने से गढा मिलता नही, लेकिन अब सारे-के-सारे पानी के विन्दु के समान गढा मिटाने के लिए दौडते है तो पता ही नही चलता है कि कभी गढा होने जा रहा है, वैसे ही दूसरो के दुख मे हम दुखी होते है तो समाज में चाहे पैदावार कम हो या ज्यादा कोई दुखी नहीं हो सकता। अमेरिका कितना सपन्न देश है! परन्तु वहा दुख नही है ऐसी बात नही है, क्योकि वहा कोई भी एक-दूसरे की परवाह नही करता, इसलिए सुख-दुख पैदावार पर निर्भर नही है, एक के दुख मे सारे हिस्सा लेगें तो समाज में दुख रहेगा ही नही।

इसलिये जमीन का बटवारा करना चाहिये।

श्रम की प्रतिष्ठा

पृथ्वी पर अब भाग्य का स्थान श्रम का वैज्ञानिक सत्य लेगा। मनुष्य अब अपनी उलझनो में देवताओ की तरफ आख न उठाकर अपने दस अगुलियो वाले हाथो की तरफ देखने की नई दीक्षा लेगा। यही तो व्यास का पाणिवाद था। बदरी-वन में तप करनेवाले सदा उत्थानशील उस महामुनि ने सोचकर ही इस खेतिहर देश के लिए पाणिवाद का यह सदेश दिया था। 'जिनके पास दैव के दिए हुए दस अगुलियो वाले हाथ है, उन्हे और क्या चाहिए? वे ही सच्चे सिद्धार्थ हैं। जिनके पास हाथ हैं उन्होंने लिए मेरे मन म सच्ची सराहना है। तुम भले ही धन की ओर ताका करो, मैं तो इन हाथो की ओर ही देखता हू। क्या पाणिलाभ से बढकर भी कोई लाभ है?'

अहो सिद्धार्थता तेषां येषां सन्तीह पाणयः। अतीव स्पृहये तेषां येषां सन्तीह पाणयः ।।
पाणिमद्भ्यः स्पृहास्माकं यथा तव धनस्य वै। न पाणि लाभादधिको लाभ कश्चन विद्यते ।।

—(शान्तिपर्व १८०।११-१२)

अहिंसक सामाजिक क्रान्ति की ओर

रंजन

एशिया महाद्वीप के एक कोने में एक नये इतिहास का निर्माण हो रहा है। हम चाहें तो कह सकते हैं कि भारत की इस पुण्यभूमि में एकबार पुन गौतम का सन्देश दुहराया जा रहा है। इतिहास स्वयं बोल रहा है। इस समय जिस प्रकार से इस अहिंसक सामाजिक क्रान्ति की अलख देश में जगाई जा रही है, उसका अपना एक इतिहास है। भारतवर्ष में आजादी बहुत कुछ अप्रत्याशित ढंग से आई। जिस शकल में, जिस तरह और जब यह आई, उस समय बहुत कम लोगों को आशा थी। स्वयं राष्ट्रीय कांग्रेस का भी यह कल्पना न थी कि सब कुछ इतनी शीघ्र और इस तरह हो जायगा। इसीलिए राष्ट्रीय निर्माण का एक सम्यक और पूर्ण चित्र पहले से तैयार नहीं किया जा सका। इसीलिए आर्थिक-रचनात्मक भूमिका का कोई प्रोग्राम उस महत्वपूर्ण अवसर पर घोषित नहीं किया जा सका, और उस कार्य को पूरा करते-करते पांच वर्ष बीत गए। यही कारण था कि बापू का रचनात्मक कार्यक्रम पर पहले से ही पूरा जोर था जिससे कि स्वराज्य प्राप्त होने के बाद हम अपने को एकदम शून्य में न पाए। पूर्ण स्वराज्य की परिभाषा उनकी अपनी थी। उनके विचार से पूर्ण स्वराज्य में देश की एक छोटी से-छोटी इकाई को स्वतंत्र अनुभव करने का सौभाग्य प्राप्त होना चाहिए। यही उनकी स्वराज्य की कसौटी थी। इसीलिए वे चाहते थे कि एक प्रचण्ड सामाजिक क्रान्ति की लहर द्वारा ही देश से अंग्रेजी राज्य को बहाया जाय। उनके विचार से सविनय अवज्ञा-आन्दोलन व्यक्ति और समूह दोनो शकलों में रचनात्मक प्रयत्न का सहायक होता है और निश्चय ही यह सशस्त्र क्रान्ति के समान ही प्रभावोत्पादक होता है। इसीलिए सामाजिक उन्नति की योजना में वे इस 'सविनय अवज्ञा' से पूरा काम लेना चाहते थे। सामाजिक उन्नति अथवा दूसरे शब्दों में 'मानवोन्नति' उनके जीवन का प्रधान ध्येय था। इस ध्येय की पूर्ति में पहली शक्तिशाली बाधा थी—विदेशी शासन। अत उद्देश्य की सफलता के लिए इसे हटाना सबसे पहले जरूरी था। यही पर स्वराज्य के प्रति उनका दृष्टिकोण अन्य लोगो से भिन्न था। स्वराज्य उनके जीवन का साध्य नहीं, साधन मात्र था। बापू के सोचने के इस तरीके को आजतक बहुत से लोग समझ नहीं पाये हैं। दूसरे शब्दों में स्वतंत्रता व्यक्ति और समाज के सर्वांगीण विकास के लिए भूमिका का कार्य करती है। उनके जीवन व्यापी संघर्ष से यह बात स्पष्ट होती है कि संघर्ष और शांति दोनों में वे अपने अधिक व्यापक प्रोग्राम को बढ़ाने की धुन में रहते थे। चरखा-आंदोलन, हरिजन-उद्धार, राष्ट्रभाषा-प्रचार एवं महिला-जागृति उनके सामाजिक आन्दोलन के चार खंभे थे और स्वराज्य से कम महत्व उन्होंने अपनी इन प्रवृत्तियों को कभी नहीं दिया। तीन समताओं के गर्भ से उत्पन्न उनकी स्वतंत्रता सत्ता के व्यक्तियों का परिवर्तन-मात्र कभी नहीं रही।

बापू की असामयिक मृत्यु के बाद क्या-क्या घटनाएं घटीं! स्वराज्य की आशा ने निराशा का रूप लिया; क्योंकि स्वराज्य के बाद बापू की वह सामाजिक क्रान्ति आकार नहीं ले सकी। पंचवर्षीय योजना भूख और बेकारी से पीड़ित वर्ग को कोई आशाप्रद संदेश न दे सकी। यह कहना असंगत नहीं होगा कि एक प्रकार से निम्न वर्ग के प्रति सरकारी नीति ने बहुत अंश तक देश में साम्यवादी प्रचार को प्रोत्साहन दिया और यही कारण है कि आज हजारों साम्यवादी चिल्ला-चिल्ला कर मार्क्सवादी सिद्धान्तों की दुहाई दे रहे हैं और उधर गांधीजी के सिद्धान्तों में निष्ठा रखनेवाले चंद लोक-सेवक समाज के प्रति शांतिपूर्ण परिवर्तन के कार्य में व्यस्त हैं।

इस सम्भावित साम्यवादी प्रभाव का सामना करने और स्वराज्य-पूर्व की अहिंसक सामाजिक क्रान्ति की दिशा में पूज्य विनोबाजी का भूमि-आन्दोलन एक सक्रिय कदम है। आज अधिकांश लोग भूदान-यज्ञ की अहमियत और सफलता में भरोसा नहीं करते; पर यदि वे इतिहास

वे पन्नो को उलट जाय तो उन्हें पता चलेगा कि बिलकुल यही बात लोग सन् १९३१ में 'नमक सत्याग्रह' और सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के विषय में कह देते थे । किसे पता था सन् १९३१ का यह लघु अकुर इतने विशाल देश-व्यापी जन-आन्दोलन का रूप ले लेगा कि अग्रेजो को स्वय यहा से विदा लेने की बात सोचनी पडेगी ? इसलिए आन्दोलन की लघुता या महानता का अध्ययन भविष्य की सभावनाओ एव राष्ट्रीय परपराओ के आधार पर किया जाता है, गणित के अक पर नहीं । सारी स्थिति का विश्लेषण करने से पता चलता है कि भूदान-यज्ञ की सभावनाए बहुत ठोस और आशाप्रद हैं।

प्राप्ति की इच्छा और सपत्ति पर अधिकार मानव-मस्तिष्क में इन दोनो बातो की जडें बहुत गहरी बैठी है । यही बराबर प्राप्त करते रहने का पागलपन व्यवसाय में 'जो चाहो सो करो' के सिद्धान्त का (Laissey Fair) आधार है । पर यह सिद्धान्त न तो स्वतत्र ही है और न साहसिक ही। परन्तु आज तो बहुमत इसके विरुद्ध है । आज के व्यवसाय मे साहस तो एकदम शून्य है, क्योकि आज के समाज में केवल धनी के पास ही लगाने को पूजी है और वैज्ञानिक ज्ञान और समाज की नेतागिरी भी उन्ही के पास है । अत समाज के इन दो वर्गों—'जिनके पास कुछ नही है ', और 'जिनके पास सबकुछ है' (Haves and Haves not) के पीछे यही स्वतत्र साहस (Free Enterprize) काम करता है । इन दोनो के बीच के सघर्ष ने दो अनुदार राज-नैतिक विचारधाराओ को जन्म दिया है—साम्यवाद और पूजीवाद । पूजीवाद का अस्त भारत एव दूसरे देशो म अब निश्चित है । अस्तु, आज देश में प्रधान सघर्ष है साम्यवादी विचारधारा एव उसकी विरोधी विचारधारा में । इस सिलसिले में विनोबाजी का कथन है कि, "देश के इस भूभाग में घूमने के बाद मेरा यह विचार और अधिक दृढ हो गया है कि इस देश में यदि आगे चलकर किन्ही दो शक्तियो में सघर्ष होगा तो वे है — साम्यवादी विचारधारा और दूसरी वह विचार पद्धति *जिसके समर्थन और प्रचार के लिए सर्वोदय समाज का* जन्म हुआ है । दुनिया की अन्य शक्तिया जो आज काम कर रही है अधिक दिनो तक ठहर नही सकती। साम्यवाद और सर्वोदयवाद दो ऐसी शक्तिया है जिनमें बहुत समानताए है और उतने ही स्पष्ट दोनो के भेद है। हमारा विश्वास है कि यह तो समय की माग है।"

साम्यवादी विचारधारा की बुनियादी बात यह है कि यह अपने दर्शन के अन्तिम विश्लेषण में यह मानकर चलती है कि शक्ति (Force) ही दो विरोधी विचारो के सघर्ष में अन्तिम रूप से निर्णायक होती है। यह सच है कि कष्टप्राय मानव के विकास के इतिहास का प्रत्येक पृष्ठ युद्ध और बरबादी का इतिहास है । एक ओर जहा अणुशक्ति की खोज मानवीय मस्तिष्क की अपूर्व विजय है, वही अणुबम का प्रयोग मानव की विनाशात्मक तारीख का सबसे ऊचा कदम है । विश्व की नई जातियो के खोज के साथ ही साथ एक मानव लोगो के सामने आया जो मानव की प्राचीनतम संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता था, जिसने एक ऐसी खोज की है जो शायद दुनिया में मानव इतिहास की धारा को ही बदल दे। इस मानव का नाम था महात्मा गान्धी । उन्होने यह स्पष्ट घोषणा की थी "अहिंसा का कोई ऐसा अस्तित्व नहीं है जिसके लिए हम युगों से भूल करते आये हो । आज तक मानव-ज्ञान की सीमा में यह सबसे अधिक जीवन प्रद शक्ति है, और सच्चे अर्थ में इसी पर इन्सान की जिन्दगी टिकी है।"

बापू ने भारतीय स्वतत्रता के सग्राम में अहिंसा का शौर्य स्वय सिद्ध कर दिखाया है। ईसा की तीसरी ईसवी पूर्व बुद्ध के महान् शिष्य अशोक ने दुनिया के अनेक देशो को अपने शातिदूत भेज कर 'प्रेम और अहिंसा की प्रतिष्ठा सीरिया, मिश्र, साइरेनिका, मेसेडोन, साइप्रस, बर्मा और सिंहल में की थी। और आज महात्मा गाधी के महान शिष्य विनोबा भावे विश्व के सामने अहिंसक शांति की शक्ति को साकार करके दिखा रहे हैं, उन्होने अपनी इस शान्ति का प्रयोग विपक्षी की स्वेच्छा से किया है। आज प्रश्न यह है कि यदि विनोबाजी का यह समझाकर बदलने का प्रयोग सफल नही होता तो अगला कदम *क्या होगा ? इसका उत्तर महात्मा गान्धी ने बहुत पहले* से ही दिया था —' फिर भी सत्याग्रह असीम तक किसी

सुधार की प्रतीक्षा नहीं करता। और इसलिए जब वह सीमा आ जाती है तो खतरा भी मोल लेकर क्रियात्मक सत्याग्रह का नक्शा तैयार होता है।" बापू ने साफ कह दिया था कि बिना गरीब के सहयोग के पूंजीपति पूंजी इकट्ठी कर ही नहीं सकते। इसलिए चन्द मिल मालिकों के खत्म करने से गरीबों के शोषण की योजना बन्द नहीं हो सकती। यह शोषण तो एकमात्र गरीबों के अज्ञान को दूर करने एवं इस शोषण के कामों में भाग न लेने से ही खत्म होगा।

१३ अक्टूबर १९५२ के दिन आचार्य भावे ने घोषणा की कि उनके संदेश ने गरीबों के हृदय को स्पर्श किया है और उनके दिमाग में आशा का संचार हुआ है, परन्तु कुछ लोगों को ऐसी आशाभरी बातें करने में खतरा नजर आता है। इसके उत्तर में विनोबाजी ने एक बड़ा मार्मिक वाक्य कहा है '—"निश्चय ही यदि वे असली जमीन को गरीबों के हक में छोड़ने को आज भी तैयार नहीं है तो इस खतरे की जिम्मेदारी उनके सिर पर है। मैं यह साफ कह देना चाहता हूं कि हम सब अभी भी एक बहुत बड़ी खतरनाक हालत के बीच में हैं।" आज भी देश में बहुत से लोग इस आन्दोलन के विरोध में हैं पर विरोधियों में वे ही लोग अधिक हैं जो आज अपनी संपत्ति को छोड़ने को तैयार नहीं हैं।

पूज्य विनोबाजी की संपत्ति की अपनी व्याख्या है। उनका कहना है कि आज शोषण करनेवाले का शोषण करने का आदर्श दुनिया को अपनी ओर खींच रहा है। इसलिए उनका विचार है कि ऐसे विश्व में अपहरण के विरुद्ध अपरिग्रह का विचार रखना अधिक संगत है। लोभ आज की दुनिया की सबसे बड़ी आवाज है और जो लोग विष को विष से ही मारने का रास्ता अपनाना चाहते हैं वे स्वयं एक प्रकार से शत्रु के दल में ही जाकर शामिल हो जाते हैं। इस शैतान का मुकाबला उसीके हथियार से नहीं होगा। इसे अच्छाई से परास्त करना होगा। अपरिग्रह से विनोबाजी का तात्पर्य-व्यक्तिगत स्वामित्व के अभाव से है। उनके विचार से आज की समस्या एक निश्चित सीमा से अधिक की संपत्ति जब्त करने से ही हल नहीं होगी। बड़ी बात संपत्तिहीन और संपत्तिवान के मानसिक परिवर्तन की है; क्योंकि यदि प्रश्न का ठीक विश्लेषण किया जाय तो संघर्ष का मूल कारण एक ओर संग्रह करने की अतितृष्णा और दूसरी ओर आवश्यक सुविधाओं का अभाव है। भारत में गरीबों के लिए आज एक ही स्वतंत्र व्यवसाय बचा है—घर-घर भीख मांगना। अब साधन-शून्य के पास एक ही रास्ता बच रहता है, मार्क्सवादी शब्दों में उसे इस तरह कहा जा सकता है—"औद्योगिक सुरक्षित सेना में अपना नाम लिखवा लेना।"

इस दिशा में विनोबाजी का रास्ता गरीब के जीवन-स्तर को ऊपर उठानेवाले पिटे-पिटाये रास्ते से बिल्कुल भिन्न है। आचार्य भावे ने इस प्रश्न को बिल्कुल नये दृष्टिकोण से समझने की कोशिश की है। भूदान-यज्ञ का उद्देश्य इसलिए निर्धनों और भूमिहीनों को खड़े होने के लिए जमीन देना मात्र नहीं है जिससे कि वे भी अपने को (Laissey Fair) 'जो मन भावे करो' की पंक्ति में खड़े हो सकें, क्योंकि आज यह बुद्धिहीन प्रतियोगिता अर्थसंग्रह की जोरदार प्रवृत्ति से जुड़ी है। इसीलिए वे जीवन में संपत्ति का मूल्यांकन ही बदल देना चाहते हैं। उनका खयाल है कि हृदय-परिवर्तन की आवश्यकता केवल पूंजीपति को नहीं, गरीब को भी है क्योंकि संपत्ति के प्रति लोभ दोनों जगह मौजूद है। उनकी इच्छा है कि गरीब-अमीर दोनों संपत्ति के प्रति लोभ के बंधन से मुक्त हों। इस बंधन से मुक्ति पाये बिना समतावादी समाज की दृढ़ और स्थायी नींव नहीं पड़ सकती। इसके विपरीत स्थूल हालतों और आवश्यकताओं को बढ़ा-घटाकर जो समता कायम की जायगी वह नकली होगी; क्योंकि संग्रह के प्रति झुकाव फिर संघर्ष और असमानता पैदा करेगा। इस प्रकार मानव एक अनवरत बुराई चक्कर (Vicious Circle) में पड़ा रहेगा। अतः बुराई की जड़ को खोदना ही पहली दवा होना चाहिए।

किसी को आज आनेवाली स्थिति का ठीक-ठीक अंदाज नहीं है। और चारों ओर एक असंतोष और क्रोध की लहर व्याप्त है। इससे प्रकट होता है कि निकट भविष्य में भारत की वर्तमान सामाजिक दशा में एक क्रान्ति

(शेषांश २१४ पर)

नेपाली नेता धर्मरत्न यमी

राहुल साकृत्यायन

सौ वर्ष पूर्व अनेक भीषण खूनी काडो द्वारा जंगबहादुर ने पुश्तैनी प्रधान मन्त्री पद को सभालते हुए जब राजा के प्रभाव का अंत किया तबसे नेपाल के राजा—५ सरकार या धिराज—केवल मूरत बनाकर रख दिये गये थे। लेकिन धिराज वंश ने राणावंश के इस अत्याचार को चुपचाप बर्दाश्त नही किया। वह और उनके अनुयायी चाहते थे कि शक्ति उनके हाथ में चली आवे। वर्तमान धिराज त्रिभुवन चिर नजरबन्दी का जीवन बिताते हुए भी स्वतन्त्र होने की भावना को अपने सीने में छिपाये हुए थे। उन्हे एक लाख से कम की पेन्शन सारे परिवार के लिए मिलती थी, लेकिन जब प्रजा-परिषद ने राणाशाही के खिलाफ सघर्ष करने का निश्चय किया और टेकबहादुर मल्ल के द्वारा परिषद का सबध धिराज से हुआ, तो उन्होने धन से मदद की। राजनीतिक सस्थाओ को धन का अभाव होता है, विशेषकर उनको जिनकी सक्रिय सहानुभूति सबसे अधिक उत्पीडित लोगो के साथ होती है। लेकिन आसानी से अधिक रुपया मिलना भी कार्यकर्त्ताओ में लोभ पैदा कर संस्थाओ के लिए अनिष्ट का कारण होता है। निदान प्रजा-परिषद में फूट पड गई और धिराज ने पैसा देना बन्द कर दिया। इससे छ महीने पहले धिराज के महल (राणाहिटी) में राणाशाही के विरुद्ध एक षड्यन्त्र करने का प्रयत्न किया गया था। योजना यह थी कि महारानी को बीमार बना दिया जाय, फिर बीमारी की भीषणता की सूचना समय-समय पर दी जाय और एक दिन मरणासन्न बतलाकर प्रधान मन्त्री को बुलाया जाय। फिर उन्हे क्लोरोफार्म सुघा कर बेहोश अथवा गोली मार कर त्रिभुवन के शासनारूढ होने की घोषणा कर दी जाय। लेकिन, छ महीने तक कोई षड्यन्त्र प्रधान मन्त्री के गुप्तचरो से भरे राणाहिटी महल में गुप्त कैसे रखा जा सकता था। बुलाने पर प्रधान मन्त्री युद्ध शमशेर नही आये। दो घटे बाद प्रधान मन्त्री के ज्येष्ठ पुत्र बहादुर शमशेर ने आकर धिराज को डाट बतलाई और अस्वाभाविक षड्यन्त्र स्वाभाविक मौत मर गया। प्रजापरिषद् के कुछ लोगो की धर-पकड हुई। इनमें मेधावी तरुण गगालाल भी थे। उनके पिता ने नये प्रधान मन्त्री पद्मशमशेर से माफी मागकर अपने पुत्र को छुडा लिया। गगालाल की इसमें बिल्कुल सहमति नही थी। वह इसके कारण बहुत दुखी हुए। इसी समय धर्मरत्न ने अपने एकमात्र छोटे भाई के ब्याह का आयोजन किया। इस ब्याह के उपलक्ष्य में हुई गोष्ठी में नेवारी में एक राष्ट्रीय गीत गाया गया, जिसमें कमजोर जन-नेताओ पर छीटे फेंके गये थे। गगालाल ने इसे अपने ऊपर व्यग समझा और तुरत उठकर अपने भावो को एक पद्य में व्यक्त किया—

"जेता नेतादि सबस मरनु साजा सबैको ।
हूं वीर नेपाल का वीर पुत्र · · · · ।
· · देश को निमित्त चितामा पुग्नु तैयार ।"

उस समय लोगो को आश्चर्य हुआ और जब मुंह लाल किये २२ वर्ष का तरुण गगालाल वहा से चला गया तो सगीत मडली भग हो गई।

सगीत मडली के पाच दिन बाद हथियार के बल पर राणाशाही के मूलोच्छेद करने का प्रचार करते हुए एक बडा जबर्दस्त पैमफ्लेट निकला। धर्मरत्न ने सत्तर रुपये की भारी पूजी लगाकर अपनी साबुन की दूकान खोल रक्खी थी, जो देशप्रेमी तरुणो और विद्यार्थियो के मिलने का अड्डा बन गई थी। तेगबहादुर मल्ल ने गुप्तचरी से बर्खास्त होने के बाद धर्मरत्न की सब प्रकार सहायता की थी। अब वह फिर अपने पद पर बहाल हो गया था। सिंह दरबार (प्रधान मन्त्री के महल) में खुफिया अफसरो की बैठक हुई। तेगबहादुर ने बतलाया कि साबुन वाले का इसमें खास हाथ है। उसे प्रलोभन या साँसत देकर फोड लेना चाहिए। राणाशाही के हरेक उम्मेदवार को अपने

लिए हमेशा खतरा दिखाई पड़ता था, इसलिए सरकारी खुफिया-विभाग के अतिरिक्त हरेक के अपने खुफिया अफसर हुआ करते थे। प्रधान-मंत्री के ज्येष्ठ पुत्र बहादुर शमशेर को जब बतलाया गया कि प्रजा-परिषद् तुम्हारे पिता को खत्म करना चाहती है तो उन्होंने घुड़क कर कहा था, "मेरे बूढ़े बाप के प्राणों के ग्राहक क्यों बन रहे हैं? शक्ति तो चंद्रशमशेर के लड़कों के हाथ में है, उनके पीछे क्यों नहीं पड़ते ?'

शहीद शुक्रराज शास्त्री का भाई राणाओं का भेदिया बन गया, जिससे परिषद् की कुछ बातों का पता लगा। राणा एवं पांपा और बस्नेत आदि प्रभावशाली वंशों के अफसरों की बैठक हुई, जिसमें युद्ध के पौत्र आदि ने प्रधान-मंत्री को कहा, "आप हुकुम दीजिये, हम सभी संदिग्ध व्यक्तियों को पीट-पाट कर रहस्य उगलवा लेंगे।" रोज की खबरें सुनते-सुनते बूढ़ा युद्धशमशेर बहुत डर गया था। उसने बात मान ली। मुरलीधर शर्मा प्रजापरिषद् के एक प्रधान अगुवा उस वक्त बनारस में रहकर काम कर रहे थे। राणाओं ने उन्हें किसी बहाने से बुलवाया और भीमफेदी पहुंचते ही हथकड़ी डाल जेल में बन्द कर दिया। अब उन्हें डराना-धमकाना और प्रलोभन देना शुरू किया गया। वे कच्चे निकले और उन्होंने ८८ आदमियों के नाम दे दिए। विजयदसमी का पर्व बीत गया था। उसके दो-चार दिन बाद पुलिस ने एक दम मुहल्ले-के-मुहल्ले घेर कर सबकी धर-पकड़ शुरू की। नाम लिखने में कुछ गलती हुई, इसलिए धर्मरत्न की जगह ज्योतिरत्न पकड़ लिये गए और धर्मरत्न दो दिन निश्चित बैठे रहे। फिर भागने के लिए निकले, किंतु लौट कर गिरफ्तार हुए।

जेल और हवालात में धर्मरत्न के साथ जो बीती, वही बात कुछ कम और वैसी सभी के साथ हुई। गिरफ्तारों में धर्मरत्न का नम्बर ५१वां था। पकड़े हुए लोगों को अलग-अलग रखा गया था। हरेक आदमी पर गारद के अलावा एक-एक अठपहरिया (गारद) नियुक्त था।

लोगों से अपराध कबूल करवाने के लिए स्थान, एक स्कूल और समय, रात का चुना गया। बंदियों को एक-एक करके वहां ले गए।

धर्मरत्न से कहा गया—"साबुन की दुकान नहीं, तुमने प्रजापरिषद् के लिए ब्राडकास्टिंग स्टेशन खोल रक्खा है।" धर्मरत्न को मालूम हो ही गया था कि मुरलीधर ने एक-एक बात बतला दी है। उसके विश्वासघात से धर्मरत्न का खून खौल रहा था। मुरलीधर को साथ लिये जब उनके पास पूछने आये, तो उन्होंने कहा—'मुरलीधर को यहां से हटा दो तो मैं अपना बयान दूंगा।' मुरलीधर को हटाकर अधिकारियों ने कहा—'जो कुछ किया या सुना है, सब बतला दो।' इसपर धर्मरत्न ने कहा—'तब तो मुझे स्वयं अपना बयान लिखना पड़ेगा।' अधिकारी खुश हुए। उन्होंने कागज, कलम, दावात लाकर दे दी। धर्मरत्न को 'जो कुछ किया सुना था, सब लिखना था, इसलिए उन्होंने अपनी सारी जीवन-यात्रा ही कागज पर उतारनी शुरू की, छोड़ा केवल अपने राजनीतिक जीवन को। बिना पढ़े ही अफसर अपनी सफलता पर बड़े खुश हुए।

लेकिन अगले दिन बयान पढ़ लेने के बाद कर्नल आग-बबूला हो आकर धर्मरत्न को गाली देने लगे। धर्मरत्न अपना रोया गिराये एक गरीब नेवार-पुत्र की तरह गिड़गिड़ाकर कहने लगे—"मैं गरीब का पुत्र हूं। साबुन की दूकान करके पेट पालता था। आपने किये-सुने को लिखने के लिए कहा, मैंने सब लिख दिया।'

औरों की तरह धर्मरत्न को भी ठीक करने के लिए बिजली करन्ट लगाने का इन्तजाम हुआ, बेंत और बांस सामने रख दिये गए, तरह-तरह का प्रलोभन दिया जाने लगा। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि राजबन्दियों को ठीक करने का यह गुर राणाशाही ने अंग्रेजों की कलकत्ता-स्पेशल ब्रांच से सीखा था। पन्द्रह दिन तक धर्मरत्न को तंग किया गया। शरीर दुबला-पतला और अस्वस्थ होने के कारण डर था कि कुछ करने पर शायद मर ही न जाय। तब भी वह सांसत किये बिना छोड़ना नहीं चाहते थे। धर्मरत्न ने कहा—'अच्छा कल सब विस्तारपूर्वक बतला दूंगा।' रातभर धर्मरत्न अपने मन में सोचते रहे, और एक निर्णय पर पहुंच गए। दूसरे दिन उन्होंने कहा कि मुझे जो बात कहनी है, उसे या तो प्रधान-मंत्री के सामने

मूर्ख और महामूर्ख

रावी

किसी नगर में एक सेठ रहता था ।

एक बार वह नगर से दस कोस दूर, नदी के तट पर अपने परिजनों और नौकरों-चाकरों को लेकर जल-विहार के लिए गया ।

उसकी नौका अभी किनारे के समीप ही थी कि नगर के किसी आदमी ने आकर सूचना दी कि उसकी हवेली में आग लग गई है ।

सेठ ने अपने एक घुड़सवार सेवक को उस नदी का एक लोटा पानी देकर आज्ञा दी कि वह तुरत जाकर उस पानी से आग को बुझा दे ।

उस सेवक और अन्य सभी जनों को सेठ के इस व्यवहार पर बड़ा आश्चर्य हुआ । लेकिन वे सब उसकी बुद्धिमत्ता और उसके स्वभाव से परिचित थे और उसका रोब मानते थे । विश्वास भी रखते थे । किसी का इस सम्बन्ध में कुछ कहने का साहस न हुआ । सेठ ने आदेश दिया कि सब लोग जल्द ही नहा धोकर और खा-पीकर लौटने के लिए तैयार हो जाय ।

जिस समय सब लोग लौटने के लिए लगभग तैयार हो गए थे, उसी समय वह घुड़सवार सेवक लौटकर आ गया । उसने सूचना दी कि हवेली में या उसके आसपास भी आग लगने के कोई आसार नहीं हैं, वह नगर-द्वार के ऊँचे बुर्ज पर चढ़कर देख आया है और वहीं से इसलिए जल्द ही लौट आया है कि जल्द-से-जल्द इसकी सूचना देकर मालिक और उसके अनुचरों की चिन्ता मिटा सके और वे सब निश्चित होकर पूरे पूर्वनिश्चित समय तक जल विहार कर सकें ।

लेकिन सेठ ने इससे अपनी वापसी की तैयारी में कोई ढील न की । वैसे, पहले उनका विचार वह रात नदी तट पर खीमों में बिताने का था, लेकिन अब वे सूर्यास्त के पहले ही नगर में पहुंच गये ।

पहुंचकर देखा, हवेली में आग तो नहीं लगी थी लेकिन उसका एक विशेष भाग गिरकर धराशायी हो गया था ।

सेठ ने उसी समय नौकर को लगाकर गिरी हुई दीवारों और छतों के नीचे दबा सामान निकलवा कर सुरक्षित जगहों में पहुंचवा दिया ।

दूसरे दिन सुबह उसने सबको एकत्र कर अपनी पिछले दिन की बात का समाधान करते हुए कहा —

"जो विश्वास करता है वह मूर्ख है और जो अविश्वास करता है वह उससे भी बड़ा मूर्ख है । यदि मैं उस आदमी की बात पर विश्वास करके उसी समय लौट पड़ता तो अपने अवकाश दिन के सुख-विहार से तुम सबको वंचित करने की मूर्खता करता, और यदि सेवक की सूचना पर उस पहले आदमी की बात पर अविश्वास कर लेता तो पिछली रात चार टूटी दीवारों के नीचे से बहुत-सा कीमती सामान निकाल के आते ।"

(पृष्ठ २०९ का शेषांश)

नहीं दिखला सकती । इसके लिए समय और साधना दोनों की आवश्यकता है । उधर दूसरी ओर साम्यवादी किसी रक्त-क्रान्ति का मौका खोज रहे हैं जिससे कि वे अपना प्रतिशोध ले सकें । अतः आज सब प्रकार के मुकाबिले में गांधीवादी मार्ग की सफलता मानव-सभ्यता के इतिहास में एक नवीन युग की वाहक होगी । परन्तु यह सफलता उस तेजी पर निर्भर करेगी जिस तेजी के साथ भारत का युवक वर्ग अहिंसक सविनय अवज्ञा के महत्व को समझकर उसे स्वीकार कर लेता है । देश का भविष्य आज इस पर्व की प्रतीक्षा कर रहा है जब लाखों की संख्या में स्त्री-पुरुष एक स्वर और एक मत से इस महान् अहिंसक क्रान्ति के तत्व को हृदयंगम कर देश के कोने-कोने में निकलकर संत शिष्य परंपरा के समान भूदान, संपत्ति-दान, और ऐसे ही अनेक दानों की अलख जगाते फिरेंगे—यही एक आशा देश की विपन्नता को दूर कर सकती है । यदि देश ने 'आत्मदान' का यह यज्ञ पूरा कर लिया तो हम विश्व के सामने साकार अहिंसक क्रान्ति का एक ठोस स्वरूप रख सकेंगे ।

६

बोलना कैसा हो ?

यदुनाथ थत्ते

गीता ने हम सबको तप करने का आदेश दिया है। लेकिन इसके लिए उसने हमें घर बार छोड़कर, प्रियजनों का त्याग करके बन में जाने को नहीं कहा है। सबकी शक्ति का खयाल रखकर हम अपने स्थान पर ही कर सकें ऐसा तप का मार्ग उसने बताया है। तप का अर्थ है, सामर्थ्य-संग्रह। हमारे ऊपर सबसे पहला असर शरीर पर होता है, इसलिए तपश्चर्या में शारीर तप को पहला स्थान दिया गया है। ज्ञानेश्वर महाराज ने भावार्थ-दीपिका में—जो ज्ञानेश्वरी नाम से प्रसिद्ध है—लिखा है :

पार्था समस्त हे करणें, देहाचेनी प्रधान पणें।
म्हणौनी ययाती भी म्हणें. शारीर तप॥

यह तप सिर्फ शरीर से ही करना है ऐसी बात नहीं, लेकिन प्रधानतया यह शरीर से करना है इसलिए उसे शारीर तप कहा गया है। उसमें मन का सहकार आवश्यक है और वह मिलना भी चाहिए। गुरुदेव, प्राज्ञ आदियों की सेवा, स्वच्छता, वीर्य-संग्रह, अहिंसा तथा ऋजुता ये शारीर तप के अंग हैं। ऋजुता और अहिंसा की कल्पना देते हुए ज्ञानेश्वर महाराज लिखते हैं :

भूतमात्राचेनि नांवें, तृणहि नातुडावें।
किंबहुना सांडावें, छेदभेद॥

तृण को भी हमें नहीं कुचलना चाहिए, हमें सब प्रकार के भेदों को पार करके सबकी सेवा करनी चाहिए। गीता ने पहलवान बनने का आदर्श हमारे सामने नहीं रखा है, सेवा करते हुए शरीर को कार्यक्षम रखना ही गीता पर्याप्त समझती है। शक्ति दूसरों को पीड़ा पहुंचाने के लिए नहीं बल्कि भूतमात्र की सेवा के लिए है। इसके बाद गीता वाणी के तप का आवाहन करती है।

अनुद्वेग करं वाक्यं, सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव, वाङ्मयं तप उच्यते॥

हमारे यहां इस तरह का वाङ्मय तप करनेवाले साहित्यिक कहलानेवालों में भी इने-गिने ही मिलेंगे। आज वाङ्मय की इतनी भरमार चारों ओर है, पर समाज-जीवन पर उसका प्रभाव बहुत ही अल्प मात्रा में होता है। हजारों वर्ष पहले लिखे गये रामायण, महाभारत आदि ग्रंथों का असर हमारे समाज पर आज भी देखने को मिलता है। वाणी में जो सामर्थ्य और आशय निर्माण होता है वह तो जीवन के कारण होता है। वैसे तो महापुरुष भी कोई नये शब्द जो शब्दकोष में न हों, नहीं इस्तेमाल करते। लेकिन उनके जीवन से उसमें अर्थ की निष्पत्ति होती है। हमारे संतों की वाणी आज भी सब ओर गूंजती है इसका भी सबब यही है। एक 'वंदे-मातरम्', 'जय हिंद' जैसे शब्द से देश पर कितना असर होता है? शब्दों में इस तरह मंत्र का सामर्थ्य आ सकता है। लेकिन उसके लिए वाङ्मयी तपस्या जरूरी है।

कबीर साहब ने एक जगह लिखा है : 'घट-घट में वह सांई रमता, कटुक वचन मत बोल।' गीता ने भी कहा है 'उद्वेगकर नहीं बोलना चाहिए।' लेकिन जिसे घट-घट में रमनेवाले उस राम का खयाल नहीं है उसके मुख से कटु वचन निकल सकता है। यह मानव का दूसरे प्राणियों से वैशिष्ट्य है कि वह वाणी द्वारा अपने भाव प्रकट कर सकता है। लेकिन जिस चीज का हम हमेशा उपयोग करते हैं उसके बारे में लापरवाह से बन जाते हैं। जब कोई भी काम यान्त्रिक हो जाता है, तब उसमें यह जड़ता का दोष पैदा होता है। जिस तरह सिक्के बहुत उपयोग से घिस जाते हैं और आगे फिर सिक्के के तौर पर उनका उपयोग नहीं हो सकता, ठीक उसी तरह शब्द भी घिस जाते हैं और अर्थ की दृष्टि से बेकार बन जाते हैं। शब्दों का जो असर होना चाहिए वह नहीं हो पाता। 'हिंदुस्तान की समस्याएं' नाम की जवाहरलालजी की पुस्तक में पहला ही पाठ है 'भारत माता की जय'। उसमें नेहरूजी ने बड़े अच्छे ढंग से, शब्द कैसे निष्प्राण बन जाते हैं, बता दिया है। जब केवल वह उपचार बन जाता है तो उससे कर्म की प्रेरणा मिलना असम्भव होता है। वाणी के तप का अर्थ यह है कि जीवन द्वारा शब्दों में आशय

को, नये दर्शन की निष्पत्ति करना। जब जीवन द्वारा इस तरह अर्थ की निष्पत्ति होती है, तब व्याकरण के सारे नियम फीके पड जाते है। विनोबा ने जब 'भूदान-यज्ञ' शब्द चलाया है। 'भू', 'दान' तथा 'यज्ञ' ये तीनो शब्द हमारी भाषा में पहले से ही हैं, लेकिन अपने जीवन से उन्होने इस अक्षर समूह में एक नया आशय पैदा किया है।

वाणी हमारी नित्य की सहचरी होने से हमें उसकी महत्ता प्रतीत नहीं होती। अफ्रीका निवासियो की एक कहानी मशहूर है। पुराने जमाने में वहा के आदिवासी अपने पास वाली चीजों का मूल्य नही जानते थे और तमाखू, प्याज जैसी चीजों के बदले में हीरे, सोना, चादी आदि दे देते थे। शब्दो का मूल्य मालूम न होने से हमारा व्यवहार भी कुछ इसी तरह का होता रहता है। एक बार बगाल के शेर श्री आशुतोष मुखर्जी मद्रास में अपने किसी दोस्त के घर गये थे। दोपहर को मित्र आफिस गये और जाते समय अपने बच्चो को जता गये कि आशु बाबू को तकलीफ न देना। जब दोस्त आफिस चले गये तब घर के बच्चे दरवाजो और खिडकियो से झाक-झाक कर देखने लगे। दो-चार बार आशुबाबू ने इसे देखा। उनके दिल में विचार आया कि बच्चों को पास बुला कर कुछ बाते कर ले। लेकिन बोले कैसे? आशुबाबू बडे पडित थे। लेकिन बगला के सिवा अन्य प्रदेश की भाषा नही जानते थे। बिचारे उदास हो गये। शाम को जब मित्र वापस आये तब आशुबाबू को उदास देखकर बोले, "बच्चों ने आखिर तकलीफ दी ही न? मैंने बच्चो को आगाह कर दिया था, लेकिन माने तब न। बडे नटखट है!" आशुबाबू ने कहा 'मेरी उदासी का कारण बच्चो का उपद्रव नही बल्कि उनसे बात करने की मेरी असमर्थता है।' ऐसे मौकों पर हमें वाणी की महत्ता का पता चलता है। वाणी की महत्ता को समझने की इच्छा हो तो एक-दो दिन मौन रखने की कोशिश करके हम देखें। जब कोई गूगा अपने भाव अभिव्यक्त करता है तब उसे कितनी तकलीफ उठानी पडती है। वाणी का अर्थ है अपने भाव दूसरो तक पहुचाने का साधन। मा और बच्चे का-सा सबध जहा होता है वहा शब्दो के बगैर भी भावाभिव्यक्ति हो सकती है। इस दृष्टि से जब हम वाणी के बारे में सोचे तब वाणी का तप एक तरह से भाव का तप बन जाता है।

तो गीता ने बताया है कि हमारा बोलना ऐसा हो कि जो उद्वेग पैदा न करे। इसका अर्थ द्विविध है। वाणी से उद्वेग जिस तरह सुननेवाले को हो सकता है, वैसे ही बोलनेवाले को भी हो सकता है। हमारा बोलना अनुद्वेगकर होना चाहिए, लेकिन दोनो को बोलनेवाले को तथा सुननेवाले को। ऐसा बोलना तो सत्य ही हो सकता है। इसके लिए गीता ने अनुद्वेगकर शब्द के बाद तुरन्त सत्य शब्द रख दिया है।

आज हमारा जीवन ऐसा बन गया है कि हममें ढोंग बहुत मात्रा में आ गया है। यहा तक कि भाषा का काम अपने भावों को छिपाना बन गया है। भाषा का इसीलिए सहारा लिया जाता है। जो होठो पर होता है वही पेट में होना हो सो बात नही। आज के हमारे अनेक सामाजिक दुखो का बीज इस दभ या ढोग ही में है और उसमें वाणी का हिस्सा भी कम नही है। वाणी के सत्य को प्रकट करने के बदले जब हम अपने भाव छिपाने में उसका उपयोग करने लगते है तो उसकी सामर्थ्य नष्ट हो जाती है। इसीलिए वाणी का तप करना हो तो वाणी से सत्य ही निकले ऐसा अभ्यास करना चाहिए। अगर वाणी हमेशा सत्य ही प्रकट करने की अभ्यस्त हो तो आगे चलकर उसमें ऐसा सामर्थ्य आ जाता है कि जो जो वाणी से निकलता है वह सत्य सिद्ध होता है। वाणी भविष्यवाणी बन जाती है। हमारे यहा कल्पना की गई है कि वाल्मीकि ने रामायण लिखी और बाद में रामजी की जीवन-यात्रा हुई। इसका अर्थ यही है कि जो वाणी हमेशा सत्य प्रकट करती है, वह आगे सत्यस्वरूप बन जाती है और उससे जो-जो भी बात प्रकट होती है वह सत्य बन जाती है। इसके उदाहरण हमारे यहां काफी मिल सकेंगे। हम देखते है कि प्राचीन काल में सत्य की उपासना करनेवाले ऋषि जब सताये जाते तो शाप देनेवाली वाणी का उच्चारण करते और वैसी बाते घटती थी। सत्य के कारण वाणी में जो सामर्थ्य पैदा होगा वह दुनिया को नुकसानदेह सिद्ध न हो इसलिए गीता ने वाणी के लिए सत्य का व्रत बताने के पहले ही 'उद्वेगकर'

शब्द रख दिया है। शाप देने वाली वाणी से जिस तरह दूसरो को तकलीफ होती है उसी तरह उसके उच्चारकर्ता को भी उद्वेग होता है। इसलिए सत्य भी अनुद्वेग का होना चाहिए। वाणी के पीछे जो भाव होने चाहिए उसका निर्देश अनुद्वेगकर शब्द से किया गया है। 'सत्य' शब्द से वाणी का स्वरूप बताया गया है और अब वाणी प्रकट करने की विधि बताई जाती है।

हमारी वाणी 'प्रियहित' हो। हितकारी वाणी का ज्ञानेश्वर महाराज ने बड़ा अच्छा वर्णन किया है। इसका जिक्र करनेवाली ज्ञानेश्वरी की सब 'ओवीया' बहुत ही सरस है।

तरी लोहांचे आंगधुक, न तोडिताची कनक।
करेडें जैसे हेख, परीसें तौ ॥

जिस तरह पारस के कारण लोहे के वजन में, आकार में कोई फर्क हुए विना, वह सोना बन जाता है। उसी तरह वाणी के तप के कारण, जिनसे शब्द बनते है उन अक्षरों में या शब्द के स्वरूप में किसी भी तरह का फर्क हुए बगैर, उसका मूल्य सोने का-सा हो जाता है। वाक्तप से यह मूल्य-परिवर्तन हो जाता है।

तैसें न दुख वितां सहजें, जब लिया सुख निपजे।
ऐसे साधुत्व कां देखिजे, बोलणा जिये ॥
पाणी मुइल सांडा जाये, तृण ते प्रसंगेनो जिये।
तैसे अेका बोलिले होये, सर्वांही हित ॥
जोडे अमृताची सुरसरी, तं प्राणातें अमर करी।
स्नानें पापताप वारी, गोडी ही दे ॥
तैसा अविवेकु फिरे, आपुले अस्तित्व भेरे।
आइकतां रुचि न विटे, पीयूषी जैसी ॥
जरी कोणी पुसगें, तरी हो आवे अैसे बोल्णें।
नातरी आवर्तणें, निगमूका नाम ॥

ज्ञानेश्वर महाराज अपने इस वाक्-उपनिषद मे बताते है : "वाणी ऐसी हो कि वह किसी को दुखी न करे और उसके पास जो भी आये उसको वह सुख पहुचाये। ढेकली से पानी निकालकर पेड़ों को सीचते है लेकिन जिस तरह आप ही-आप घास भी जी जाती है, उसी तरह हमारा बोलना ऐसा हो कि भले ही वह किसी एक के निमित्त प्रकट हुआ है, लेकिन उसमें सबका हित हो जाना चाहिए। अमृत की गंगा मे अगर कोई अवगाहन करता है तो उसके शरीर का ताप मिट जाता है, रसना को मिठास की प्राप्ति होती है और अमरत्व की लब्धि हो जाती है उसी तरह वाग्गंगा में निमज्जन करने मे सुननेवाले की हालत होनी चाहिए। हमारा अविवेक, अविचार मिट जाना चाहिए। हमारे आत्मस्वरूप का भान हमें हो जाना चाहिए और साथ-ही-साथ वह वाणी ऐसी हो कि बार बार सुनने पर भी उसकी मिठास से हम ऊब न जायें। वाणी अमृतमयी हो। दूसरो को उपदेश देते फिरना नही चाहिए। जब कोई पूछे तब ही वह प्रकट हो अन्यथा वह हरि नाम का जप करती रहे।" ज्ञानेश्वर महाराज ने ऊपर लिखी ओवियो मे बड़े अच्छे ढंग से वाणी के तप का जिक्र किया है।

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात सत्यमप्रियं।
प्रियं च नानृतं ब्रूयात्, एष धर्मः सनातनः ॥

हमें सत्य बोलना चाहिए यह बात जबान से ही क्यों न हो, सब मानते है। लेकिन सत्य प्रिय भाषा में ही प्रकट हो ऐसा कोई नही मानते। उल्टे सत्य में सामर्थ्य आ जाय इसलिए उसे कठोर भाषा मे व्यक्त करना पसंद करते है। सत्य प्रिय भाषा में बोलना चाहिए, अप्रिय भाषा मे नही, ऐसा ऊपर लिखे संस्कृत श्लोक में बताया गया है। दूसरो को प्रिय लगे, इसलिए झूठ बोलना वाणी-तप का भंग करना ही है। सनातन धर्म यह है कि 'सत्य-हित-प्रिय-अनुद्वेगकर' ऐसी हमारी वाणी हो। तभी वह तप पूत कही जायगी और ऐसी तपःपूत वाणी में ही सामर्थ्य आ जाती है।

वाणी, तप की 'स्वाध्यायाभ्यास' वाली एक ही बात रह गई है। जिसके बारे में हम आगे देखेंगे।

कवि कुँअर-कुशल रचित 'पारसात नाममाला'

अगरचंद नाहटा

कच्छ के महाराजा और उनके गुरु कनक-कुशल के वंश एवं गुरु-परंपरा का परिचय 'लखपति मंजरी' के अनुसार जीवन साहित्य के गत मार्च के अंक में दिया जा चुका है। कुंवर कुशल उपरोक्त कनक-कुशल के ही विद्वान शिष्य थे। इनके रचित 'पारसात नाममाला' नामक पारसी-कोश-ग्रन्थ का परिचय प्रस्तुत लेख में दिया जा रहा है।

कच्छ के राजवंश के साथ जैन-यतियों का संबंध पुराना है। कच्छ का वर्तमान राजवंश यादव वंशी है। सिंध में पहले इनका राज्य था। उन्हड़ के वंश में जामजाडो नामक प्रसिद्ध व्यक्ति हुआ जिससे उस वंश की प्रसिद्धि जाडेजा के नाम से हुई। जाडा के पुत्र लाखा ने संवत् १२०३ में सिंध से आकर कच्छ पर अपना अधिकार जमाया, तबसे ८०० वर्ष हुए कच्छ इसी वंश के द्वारा शासित है। लाखा के १०वीं पीढ़ी में राव श्री खेंगार-जी हुए। जिन्होंने संवत् १५६६ में राज्य पाकर कच्छ के राज्य को सुव्यवस्थित बनाया। संवत् १६०२ में अंजार १६०८ में भुज, १६३६ में मांडवी नाम से कच्छ के तीन प्रसिद्ध नगर बसाये गए। जिससे कच्छ की आबादी व रौनक में उल्लेखनीय अभिवृद्धि हुई। सुव्यवस्थित कच्छ राज्य की स्थापना वास्तव में राव खेंगारजी के समय से शुरू होती है। कहा जाता है कि खेंगारजी को अपने भाई से खटपट हो जाने के कारण बाल्यावस्था में कच्छ से भागना पड़ा था। सौभाग्यवश जैन-यति माणकमेरु से उनका परिचय हो गया। तभी से उनका भाग्य-सूर्य उदयाचल की ओर बढ़ता चला गया। माणकमेरजी ने खेंगार को सांग नामक शस्त्र दिया था जिससे खेंगार ने महमद बेगड़ा को सिंह के मुख में जाने से बचाया था। इससे महम्मद बेगड़ा उनके साहस से बड़ा प्रभावित और प्रसन्न हुआ। उसने खेंगार को राव की पदवी दी और उसी के मदद से वे अपनी सत्ता कच्छ में जमा सके। उन्होंने पहले 'लाखी यारबीयरा' फिर भुज में राजधानी स्थापित की। यह सब उन्नति यति माणक्य मेरुजी की कृपा का प्रसाद है। ऐसा समझते हुए उनका उपकार मानते हुए खेंगार ने उन्हें उपाध्याय पद और अच्छी जागीर प्रदान की। जैन-यतियों के प्रति कच्छ के राजवंश का तभी से आदरभाव स्थापित होता है। माणक्य मेरुजी की दी हुई वह सांग अब भी पूजनीय वस्तु के रूप में स्थापित है। उसकी धूप-पूजा यतिजी के वंशज अभी तक करते हैं। ऐसा उल्लेख मुनि श्री विद्याविजय ने 'मारी कच्छ यात्रा' नामक पुस्तक के पृष्ठ ५३ पर किया है। खेंगार के बाद राव भारमल्ल हुए जिन्होंने कच्छ में अपना स्वतंत्र सिक्का 'कोरी' के नाम प्रचलित किया, जो अबतक चलता रहा है। भारमल्ल ने यह अधिकार सम्राट् जहांगीर से प्राप्त किया था। ये भारमल्ल जैन-धर्म के अनन्य अनुरागी थे। उन्होंने एक विशाल जैन-मंदिर भी बनाया जो अब भी उनकी कीर्ति कौमुदी को प्रसारित कर रहा है।

भारमल्लजी का तपागच्छ और अंचलगच्छ के विद्वानों से घनिष्ठ संबंध था, उसका वर्णन तत्कालीन ग्रन्थों में मिलता है। यहां लेख विस्तार-भय से उल्लेख मात्र ही कर दिया गया है। ऐसा करने का उद्देश्य यह है कि राव लखपत से कनककुशलजी का जो गुरु-शिष्य संबंध स्थापित हुआ था वह कोई आकस्मिक घटना नहीं थी बल्कि जैन-यतियों से यहां के राजवंश का जो सद्भाव पहले से चला आता था उसी का परिणाम था। कच्छ राज्य करीब ५-६ लाख व्यक्तियों की आबादी वाला प्रदेश है। उसमें पौन लाख के करीब जैन ही हैं। अर्थात् जैनों की संख्या अष्टमांश है। इससे कच्छ में जैनों का प्रभाव अधिक होना स्वाभाविक है। हिन्दू-मन्दिरों की भांति जैन-मन्दिरों का भी धूप-दीपादि पूजा के लिए कुछ रुपये राज्य की ओर से दिये जाते हैं। जैनों के पर्यूषण पर्व के उपलक्ष में १५ दिन तक लोहार आदि भट्टिएं बन्द रखकर अगता पालते हैं। राजस्थान के कई राज्यों में भी

ऐसी ही व्यवस्था है। क्योंकि वहां भी जैन-यतियों और श्रावकों का राजाओं से अच्छा संबंध रहा है।

कच्छ में सभी श्वेतांबर जैन हैं। दिगंबर वहां सब भी नहीं पहुंच पाये। श्वेताम्बरों में भी वहां ओसवाल और श्रीमाल ये दो जाति वाले ही निवास करते हैं। इनमें दस्सा और बीसा ये दोनों तो प्रधान रूप में हैं ही पांचा और अढ़ैया भी हैं। ओसवालों की संख्या बहुत अधिक है। 'मारी कच्छ-यात्रा' ग्रन्थानुसार ओसवाल करीब ५०-६० हजार हैं जबकि श्रीमाल केवल १०-१२ हजार ही हैं। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के तपागच्छ, खरतरगच्छ, अचल गच्छ और पायचन्द्र गच्छ और स्थानकवासी सम्प्रदाय के छः कोटी, आठ कोटी, नान्ही-पक्ष और मोटी पक्ष इन उप-सम्प्रदायों के ही वहां के श्रावक अनुयायी हैं। इनमें भी अलग-अलग प्रदेश में अलग-अलग गच्छों व पक्षों का प्रभुत्व है। वहां के जैनों के धार्मिक व सामाजिक जीवन और भद्रेश्वर आदि जैन तीर्थों के संबंध में मुनि विद्याविजयजी की 'मारी कच्छ यात्रा' नामक पुस्तक अच्छा प्रकाश डालती है।

"पारसात नाममाला" ग्रन्थ का परिचय देने से पहले पारसी-भाषा संबंधी भारतीय विद्वानों के कोष-ग्रन्थों के रचना के कारणों आदि पर कुछ प्रकाश डाल देना भी आवश्यक है। वैसे तो मुसलमानों का भारत से सम्बन्ध आठवीं शताब्दी से आरम्भ होता है। पर प्रारंभिक काल में वह सिन्ध-प्रान्त और फिर भारत के अन्य भूभागों में लूट पाट करने के लिए आनेवाले मुस्लिम लुटेरों तक ही सीमित रहा है। ग्यारहवीं शताब्दी में महम्मद गौरी का आक्रमण राजस्थान और गुजरात को श्रमित कर देता है। पर मुस्लिम-राज्य-स्थापना चौहान सम्राट पृथ्वीराज के पराजय के साथ ही आरम्भ होती है। कुछ वर्ष बाद १४वीं शताब्दी में जब उनका राज्य विस्तृत और सुव्यवस्थित हो गया तो उनकी राज्यभाषा पारसी को जान लेना भारतीयों के लिए बहुत आवश्यक हो गया। क्योंकि इस समय के मुस्लिम-साम्राज्य में हिन्दुओं को भी अच्छे अधिकार प्राप्त थे। राज-सभाओं में हिन्दू और जैन पंडितों का आदर होता था। मुहम्मद तुगलक साहित्य-प्रेमी और उदार शासक था। संवत् १३८५ में जैनाचार्य जिन प्रभ-सूरिजी को उसने अपनी राज सभा में आमंत्रित किया था और उनकी विद्वता, आचार विचारादि से प्रभावित होकर उनका बड़ा सम्मान करता था। संपर्क बढ़ने से जिनप्रभ सूरिजी तथा उनके शिष्य जिनदेव सूरिजी को पारसी भाषा का अभ्यास आवश्यक प्रतीत हुआ है। फलतः उन्होंने पारसी भाषा के उपयोगी शब्दों का संस्कृत में अर्थ लिखा जो आज भी बीकानेर के बृहद् ज्ञान-भंडार की १५वीं शताब्दी की लिखी हुई प्रति में उपलब्ध है। जिन-प्रभ सूरि के फारसी भाषा में रचित जैन तीर्थंकरों के दो स्तवन भी प्राप्त हैं। जहां तक मुझे ज्ञात हुआ है फारसी शब्दों का संस्कृत से अर्थ समझाने के लिए शब्द-संग्रह का प्रयत्न सर्वप्रथम इन्हीं जैनाचार्य ने किया है। इसके बाद १५वीं से १७वीं शताब्दी के बीच में कई पारसी-नाममालाएं भारतीय विद्वानों द्वारा निर्मित हुईं जिनमें से ४ का परिचय बड़ौदा ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट के जर्नल में श्रीयुक्त मंजुलाल मजूमदार ने प्रकाशित किया है। ये सभी पारसी-संस्कृत भाषा के हैं। इनका एक संग्रह बड़ौदा की गायकवाड़ सीरीज से निकलने वाला है। वैसे विक्रमसिंह के फारसी शब्द-कोष को कई वर्ष पहले मेरे मित्र डा० बनारसीदास जैन ने टिप्पणी के साथ लाहौर से छपवाया था; पर लाहौर के पाकिस्तान में मिल जाने पर उसकी सब प्रतियां वहीं नष्ट हो गईं। मुझे भी लाहौर जाने पर उस कोष के फर्में उन्होंने भेंट किये थे। वे मैंने किसी के साथ बीकानेर भेजे थे। वे भी कहीं गुम हो गए।

फारसी शब्दों का हिन्दी में भी एकाध कोष निर्माण हुआ है पर अभी मेरे सामने उसका विवरण नहीं है। वैसे अमीर खुसरो की "खालिक-बारी नाम-माला" भी उसी दिशा में एक सुन्दर प्रयत्न है जो १४वीं शताब्दी में रचित होने से महत्वपूर्ण है। कुंवर कुशल की पारसी नाममाला फारसी भाषा के "पारसात-नाम-माला" का व्रज भाषा में किया हुआ मौलिक अनुवाद प्रतीत होता है। मूल ग्रन्थ किसका व कबका रचित है और उसके इस अनुवाद में क्या विशेषता है? इसका स्पष्टीकरण तो उक्त ग्रन्थ के सामने होने पर ही किया जा सकता है।

महाराजा लखपत का औरंगजेब आदि से संबंध था ही इसलिए उन्होंने फारसी भाषा के शब्दों का ज्ञान आवश्यक समझकर कवि कुंवर कुशल से इस ग्रंथ के निर्माण का अनुरोध किया और उन्होंने महाराजा की इच्छानुसार इस नाम माला की रचना की। इसका उल्लेख कवि ने स्वयं ग्रन्थ के आरम्भ में किया है। यथा—

सहर सुथिर भुज है सदा, कच्छ धरा कुअरेस।
पाति इबाह निति को प्रगट, लिखपत लखा नरेस ॥५॥
दानी मानी देसपति, ज्ञानी गुन गंभीर,
बानी वर पानी प्रबल, लखि जादौं लखधीर ॥६॥
दीपे देसल नंद ये, रस जस अमृत रूप।
मघवा ज्यों मौजें करत, भुज मह लखपति भूप ॥७॥
अवनी सकल उघार कौं, हुते हियमें हमझोर
रच्यौ विधाता आप रुचि, जिय बिच लखपति और ॥८॥
किय लखपति कुंअरेस कौं, हित करि हुकुम हजूर।
पारसातहे पारसी, प्रगटउ भाषा भूर ॥९॥

बाब अवल—
खुदा के नाम-थावर सालक है खुदा-रब्ब को जु रसूल।
अलख्ने जोति भको कहे मर्दनजगत को मूल ॥१॥

ग्रन्थ के प्रारम्भ में सूर्य को नमस्कार किया गया है जो मूल ग्रन्थ के अनुकरण व पारस के उपास्य देव का स्मरण करने के रूप में किया गया प्रतीत होता है। ग्रन्थ के दस विभाग हैं जिनकी संज्ञा "बाब" दी गई है। फारसी में अध्याय को 'बाब' कहते हैं। पहले अध्याय में सर्वप्रथम "खुदा" के नाम फिर बाप, माता, भाई, बहन, काका, फूफी, मामू, भानजा, भतीजी इत्यादि सम्बन्धी जनों के फारसी नामों का संग्रह है। जो पद्यांक ११ से ३७ तक में आये हैं। फिर दूसरे बाब में 'आसामी कदर पीछानना आदमी की' शीर्षक के बाद पातस्याह लस्कर, पटेल, मुदी, वजीर, तेली, सुनार आदि की नामावली ६७वें पद्य तक में दी गई है। तीसरे बाब में नख से लगा कर शिखा तक के, मनुष्य शरीर के फारसी नाम दिये हैं। जो पद्यांक ९८ तक में वर्णित हैं। चौथे बाब में पोशाक, जेवर आदि शब्दों का (फारसी) में संग्रह है जो पद्यांक १२१ तक में है। पांचवें बाब में खाने के मेवे फल आदि खाद्य पदार्थों के नामों का उल्लेख है जो पद्यांक १६३ में समाप्त होता है। छठे बाब में शहरकोट हवेली या साज-सामानों के शब्द हैं जो पद्यांक १६५ में समाप्त होते हैं। आठवें बाब में पक्षियों एवं ढोरों के नाम हैं पद्यांक २३२ तक में। नवें बाब में आसमान, बादल, वर्षा, रात्रि, वाद्य यंत्र, आदि के नाम हैं जो २८२ पद्यांक तक में हैं। दसवें बाब में सभी फुटकर आवश्यक बातों के नामों का संग्रह है जैसे ■ वार, १२ मास, ८ दिशाएं आदि। ये पद्यांक ३५२ तक में समाप्त होकर अन्त में एक प्रशस्ति पद्य है। अर्थात् समग्र ग्रन्थ ३५३ दोहों का है। अब आद्यन्त भाग यहां दिया जाता है जिसमें उसकी भाषा व शैली का परिचय पाठकों को मिल जाय।

आदि —अथ व्रज भाषा कृत पारसी पारसात नाम माला लिख्यते।

दोहा—परमतेज जाको प्रगट, रवता जगत आराम।
बदत सविता चरन बिच, कुंअर सु-कविता काम ॥१॥
सूरज की साची भगति, हित सौं जो हिय होय।
कविता तौ बाढ़ै कुंअर, सुनतसुकवि सत सोय ॥२॥
सविता की सेवा किये, सरसै कविता सूर।
छवि सारा जगमें छ्नो, निधि वाकै मुख नूर ॥३॥

मूलग्रन्थ प्रारम्भ—सूरज सौं वीनती

बहिन बरहल्पबिमल, सूरज होउ सहाय,
पारसात है पारसी व्रज भाषा जु बनाय ॥१०॥

लेखन प्रशस्ति—प्रतिपत्र ३५ प्रतिपृष्ठ पंक्ति १५ प्रति पंक्ति वर्ण २८

इति श्री पारसात नाममाला भट्टारक श्री कुंवर कुशल सूरि कृत संपूर्ण। संवत् १८५७ का आसू विद १० सोमे संपूर्ण कृता। सकल पंडित शिरोमणि प० कल्याण कुशलजी तत्शिष्य पंडितोत्तम प० विनीत कुशलजी तत्शिष्य प० ज्ञानकुशलजी तत्शिष्य प० कीर्तिकुशलजी लिपिकृतारच अर्थे श्रीरस्तु।

घायल का सहारा

उपेन्द्र

वैज्ञानिक ने परीक्षण आरम्भ किया। उपकरण सजाए। रासायनिकों की व्यवस्था की और गैस की नली को रासायनिक प्रक्रिया के पात्र से जोड दिया। गैस तरल में बुलबुला रही थी और वैज्ञानिक का समस्त अस्तित्व उस आशा पर लगा था जो प्रकृति में एक नवीन रासायनिक पदार्थ की सृष्टि देखना चाहती है।

द्वितीय महायुद्ध के दिन थे। वैज्ञानिक अपने को भूला हुआ भावी रासायनिक प्रक्रियाओं की योजनाएं बना रहा था कि एक बहुत जोर का धमाका हुआ। उसने पहले उसे तोप की गरज समझा और फिर देखा कि उसके सामने का समस्त उपकरण चूर चूर हो गया है। दीवार में दरारें आ गई हैं। सिर पर हाथ फेरने से पता चला कि वह बाल बाल बचा है।

ओह-उसने सोचा-यह एसीटिलीन ? क्या मैं इस गैस को सधा नही पाऊगा ? क्या यह सदा इसी प्रकार विद्रोह करती रहेगी ?

एसीटिलीन एक सुपरिचित गैस है। जब कैलशियम कार्बाइड से पानी का सम्पर्क होता है तो एक रासायनिक प्रक्रिया होती है। कैलशियम का क्षार बन जाता है और दो कार्बन तथा दो हाइड्रोजन परमाणुओं से निर्मित एसीटिलीन गैस बन जाती है। यह एसीटिलीन गैस साइकिल के लैम्पों में जलती है, खोमचो को प्रकाशित करती है और आक्सीजन के साथ जलकर इतना ऊंचा तापमान देती है कि उसे लोहे की मोटी-मोटी चद्दरे जोडने और काटने के काम में लाया जाता है। सडक के किनारे बैठा हुआ धातुए जोड़नेवाला, आखों को एक विचित्र चश्मे से ढक कर, आक्सीजन एसीटिलीन की चादी सी सफेद लौ का उपयोग करता है। यह एसीटिलीन अचानक दबाव पडने पर भीषण विस्फोटक बन जाती है।

युद्ध के दिन थे। घायलो की संख्या बढती जा रही थी। उनको कोई रोग न होता था। रोग था तो यही कि शरीर कट जाने से रक्त अधिक निकल जाता था। वे इस रक्तहीनता के रोग से मरते थे। इलाज था कि उनकी शारीरिक रक्त-योजना मे रक्त पहुचाया जाय जिससे रक्तवाहक नलियो की दीवारे पिचके नही और रक्त चक्र निरतर काम करता रहे।

युद्ध के दिनो मे अगण्य नवयुवक अपना रक्त दे तो रहे थे, पर वह धरती को सींचता था। रक्त बैंको में इकट्ठा नही होता था। सारा जर्मन राष्ट्र रक्त-दान कर रहा था पर अस्पतालो में जर्मन घायलों के लिये रक्त का अभाव था।

रक्त देखने मे एक तरल है जो लाल-लाल है पर यह जितना सरल दीखता है उतना सरल है नही। मोटे तौर से रक्त के तीन अग अलग-अलग पहचाने जा सकते है। ये है, लाल रक्त कण, श्वेत रक्त-कण और वह हलके पीले रग का तरल जो रक्त-रस कहलाता है और जिसमे लाल और श्वेत कण तैरते रहते है। यह रक्त शरीर के कोने-कोने मे पहुँचता है। लाल रक्त-कण प्राणवायु या आक्सीजन के वाहक है। श्वेत रक्त-कण में से उन पदार्थो का निराकरण करते है जो अवांछित होते है और बाहर से आ जाते है। रक्त-रस मे भोजन से चूसा हुआ पुष्टि-कारी रस विद्यमान होता है। रक्त इस प्रकार शरीर के अग-प्रत्यग के लिए भोजन-वाहक धारा का कार्य करता है।

इसी रक्त का जर्मन अस्पतालो मे अभाव था। प्रश्न था कि सम्पूर्ण रक्त यदि न मिले तो क्या किया जाय ? रक्त के कणो को पृथक् कर रक्त-रस मात्र को अधिक दिनो तक सुरक्षित रक्खा जा सकता है। पर जब रक्त-रस भी प्राप्य न हो तब ? शरीर को भोजन मिले या न मिले, रक्त-वाहिकाओं की दीवारो को पिचकने से रोकना अत्यत आवश्यक था। इन वाहिकाओ की दीवारें पिचकी कि आहत इस दुनिया से गया।

खोज ऐसे पदार्थ की थी जो कारखानों मे बडे परिमाण में बनाया जा सके और मनुष्य की रक्त-वाहिकाओ में पहुंचाने पर रक्त-रस का काम दे सके। उसमें रक्त-रस

महाराजा लखपत का औरंगजेब आदि से संबंध था ही इसलिए उन्होंने फारसी भाषा के शब्दों का ज्ञान आवश्यक समझकर कवि कुंवर कुशल से इस ग्रंथ के निर्माण का अनुरोध किया और उन्होंने महाराजा की इच्छानुसार इस नाम माला की रचना की। इसका उल्लेख कवि ने स्वयं ग्रन्थ के आरम्भ में किया है। यथा—

सहर सुधिर भुज है सदा, कच्छ धरा कुंअरेस।
पाति स्याह लिखि को प्रगट, निरखहु लखा नरेस ॥५॥
दानी मानी देसपति, ज्ञानी गुण गभीर,
बानी बर पांनी प्रबल, लखि जादौं लखधीर ॥६॥
दीपै देसल नंद ये, रस जस अमृत रूप।
मघवा ज्यौं मौजें करत, भुज मह लखपति भूप ॥७॥
अवनी सकल उधार कौं, ह्वौ हियमे हमजीर'
रच्यौ विधाता आप रुचि, बिध बिध लखपति बीर ॥८॥
किय लखपति कुँअरेस कौं, हिन करि हुकुम हजूर।
पारसातहे पारसी, प्रगटउ भाषा पूर ॥९॥

बाब अवल—
खुदा के नाम-बावर खालक है खुदा-रब्ब को जु रसूल।
अलखे जोति भकौ कहे मयंनजगत को मूल ॥१॥

ग्रन्थ के प्रारम्भ में सूर्य को नमस्कार किया गया है जो मूल ग्रन्थ के अनुकरण व पारस के उपास्य देव को स्मरण करने के रूप में किया गया प्रतीत होता है। ग्रन्थ के दस विभाग हैं जिनकी संज्ञा "बाब' दी गई है। फारसी में अध्याय को 'बाब' कहते है। पहले अध्याय में सर्वप्रथम "खुदा' के नाम फिर बाप, माता, भाई, बहन, काका, फूफी, मामू, भानजा, भतीजी इत्यादि सम्बन्धी जनों के फारसी नामों का सग्रह है। जो पद्याक ११ से ३७ तक में आये हैं। फिर दूसरे बाब में 'आसामी कदर पीछानना आदमी की' शीर्षक के बाद पातस्याह लस्कर, पटेल, मुशी, वजीर, तेली, सुनार आदि की नामावली ६७वें पद्य तक में दी गई है। तीसरे बाब में नख से लगा कर शिखा तक के, मनुष्य शरीर के फारसी नाम दिये हैं। जो पद्याक ९८ तक में वर्णित है। चौथे बाब में पोशाक, जेवर आदि शब्दों का (फारसी) में सग्रह है जो पद्याक १२१ तक में है। पांचवें बाब में खाने के मेवे-फल आदि खाद्य पदार्थों के नामों का उल्लेख है जो पद्याक १६३ में समाप्त होता है। छठे बाब में शहरकोट हवेली या साज-सामानों के शब्द हैं जो पद्याक १९५ मे समाप्त होते हैं। आठवें बाब मे पक्षियो एव ढोरो के नाम है पद्याक २३२ तक में। नवें बाब में आसमान, बादल, वर्षा, राशि, वाद्य यंत्र, आदि के नाम हैं जो २८२ पद्याक तक में है। दसवें बाब में सभी फुटकर आवश्यक बातो के नामों का सग्रह है जैसे ७ वार, १२ मास, ६ दिशाएं आदि। ये पद्याक ३५२ तक में समाप्त होकर अन्त में एक प्रशस्ति पद्य हैं। अर्थात् समग्र ग्रन्थ ३५३ दोहों का है। अब आद्यन्त भाग यहा दिया जाता है जिससे उसकी भाषा व शैली का परिचय पाठकों को मिल जाय।

आदि —अथ व्रज भाखा कृत पारसी पारसात नाम माला लिख्यते।

दोहा—परमतेज जाको प्रगट, रचता जगत आराम।
अदल सविता बरन विध, कुंअर सु-कविता काम ॥१॥
सूरज को साखी भगति, हित सौं जो हिय होय।
कविता तो बाढ़े कुअर, सुनतसुकवि भरा सोय ॥२॥
सविता की सेवा कियें, पसरें कविता पूर।
छवि ताकी अगमं छतो, निधि थाके मुख नूर ॥३॥

मूलग्रन्थ प्रारंभ—सूरज सौं बीनती :
बछिन बरदस्यंमिल, सूरज होउ सहाय,
पारसात है पारसी व्रज भाषा जु बनाय ॥१०॥

लेखक प्रशस्ति—प्रतिपत्र ३५ प्रतिपृष्ठ पक्ति स्मति पंक्ति वर्ण २८

इति श्री पारसात नाममाला भट्टारक श्री कुंवर कुशल सूरि कृतं सपूर्णं। सवत् १८४७ का आसू विद १० सोमे सपूर्णं कृता। सकल पंडित शिरोमणि प० कल्याण कुशलजी तत्शिष्य पंडितोत्तम प० विनीत कुशलजी तत्शिष्य प० ज्ञानकुशलजी तत्शिष्य प० कीर्तिकुशलजी लिखितास्च अर्थे श्रीरस्तु।

घायल का सहारा

उपेन्द्र

वैज्ञानिक ने परीक्षण आरम्भ किया। उपकरण सजाए। रासायनिकों की व्यवस्था की और गैस की नली को रासायनिक प्रक्रिया के पात्र से जोड दिया। गैस तरल में बुलबुला रही थी और वैज्ञानिक का समस्त अस्तित्व उस आशा पर लगा था जो प्रकृति में एक नवीन रासायनिक पदार्थ की सृष्टि देखना चाहती है।

द्वितीय महायुद्ध के दिन थे। वैज्ञानिक अपने को भूला हुआ भावी रासायनिक प्रक्रियाओं की योजनाएं बना रहा था कि एक बहुत जोर का धमाका हुआ। उसने पहले उसे तोप की गरज समझा और फिर देखा कि उसके सामने का समस्त उपकरण चूर चूर हो गया है। दीवार में दरारें आ गई है। सिर पर हाथ फेरने से पता चला कि वह बाल बाल बचा है।

ओह-उसने सोचा-यह एसीटिलीन? क्या मैं इस गैस को सधा नही पाऊगा? क्या यह सदा इसी प्रकार विद्रोह करती रहेगी?

एसीटिलीन एक सुपरिचित गैस है। जब कैलसियम कार्बाइड से पानी का सम्पर्क होता है तो एक रासायनिक प्रक्रिया होती है। कैलसियम का क्षार बन जाता है और दो कार्बन तथा दो हाइड्रोजन परमाणुओ से निर्मित एसीटिलीन गैस बन जाती है। यह एसीटिलीन गैस साइकिल के लैम्पों में जलती है, सोमचो को प्रकाशित करती है और आक्सीजन के साथ जलकर इतना ऊचा तापमान देती है कि उसे लोहे की मोटी-मोटी चद्दरें जोडने और काटने के काम में लाया जाता है। सडक के किनारे बैठा हुआ धातुएं जोड़नेवाला, आखों को एक विचित्र चश्मे से ढक कर, आक्सीजन एसीटिलीन की चादी सी सफेद लौ का उपयोग करता है। यह एसीटिलीन अचानक दबाव पड़ने पर भीषण विस्फोटक बन जाती है।

युद्ध के दिन थे। घायलों की सख्या बढती जा रही थी। उनको कोई रोग न होता था। रोग था तो यही कि शरीर कट जाने से रक्त अधिक निकल जाता था। वे इस रक्तहीनता के रोग से मरते थे। इलाज था कि उनकी शारीरिक रक्त-योजना मे रक्त पहुंचाया जाय जिससे रक्तवाहक नलियो की दीवारे पिचके नहीं और रक्त चक्र निरन्तर काम करता रहे।

युद्ध के दिनो में असंख्य नवयुवक अपना रक्त दे तो रहे थे, पर वह घायलों को सीचता था। रक्त बैंकों में इकट्ठा नही होता था। सारा जर्मन राष्ट्र रक्त-दान कर रहा था पर अस्पतालों में जर्मन घायलों के लिये रक्त का अभाव था।

रक्त देखने मे एक तरल है जो लाल-लाल है पर वह जितना सरल दीखता है उतना सरल है नही। मोटे तौर मे रक्त के तीन अग अलग-अलग पहचाने जा सकते हैं। ये हैं, लाल रक्त कण, श्वेत रक्त-कण और यह हलके पीले रग का तरल जो रक्त-रस कहलाता है और जिसमें लाल और श्वेत कण तैरते रहते हैं। यह रक्त शरीर के कोने-कोने में पहुँचता है। लाल रक्त-कण प्राणवायु या आक्सीजन के वाहक हैं। श्वेत रक्त-कण मे से उन पदार्थो का निराकरण करते हैं जो अवाछित होते हैं और बाहर से आ जाते हैं। रक्त-रस में भोजन से चूसा हुआ पुष्टिकारी रस विद्यमान होता है। रक्त इस प्रकार शरीर के अग-प्रत्यग के लिए भोजन-वाहक धारा का कार्य करता है।

इसी रक्त का जर्मन अस्पतालो मे अभाव था। प्रश्न था कि सम्पूर्ण रक्त यदि न मिले तो क्या किया जाय? रक्त के कणो को पृथक् कर रक्त-रस मात्र को अधिक दिनों तक सुरक्षित रखा जा सकता है। पर जब रक्त-रस भी प्राप्य न हो तब? शरीर को भोजन मिले या न मिले, रक्त-वाहिकाओ की दीवारो को पिचकने से रोकना अत्यत आवश्यक था। इन वाहिकाओं की दीवारें पिचकी कि आहत इस दुनिया से गया।

खोज ऐसे पदार्थ की थी जो कारखानो में बड़े परिमाण में बनाया जा सके और मनुष्य की रक्त-वाहिकाओ में पहुचाने पर रक्त-रस का काम दे सके। उसमें रक्त-रस

जैसी अन्य शक्तियां भले ही न हों, पर यह शक्ति अवश्य हो कि यह वाहिकाओं में पहुंचकर रक्त के साथ घुल-मिल जाये, वाहिकाओं को पिचकने से रोके और स्वास्थ्य को किसी प्रकार की हानि न पहुंचाये। जर्मनी के वैज्ञानिक एक कृत्रिम रक्त-रस ढूंढ निकालने में लग हुए थे।

अनेकों गवेषणाशालाओं में अनुसंधान चल रहे थे। इन अनुसंधानों में कितने ही नवीन रासायनिक पदार्थों का निर्माण किया गया और उनके विभिन्न गुणों की परीक्षा की गई। इन नवीन पदार्थों में एक पदार्थ था जो एसीटिलीन के साथ अन्य रासायनिक पदार्थों की प्रक्रिया से प्राप्त हुआ था। रसायन शास्त्रियों ने उसे, उसकी रासायनिक बनावट के आधार पर, पोलिविनिल पाइरोलिडोन की संज्ञा दी थी। इसे संक्षेप में पी० वी० पी० पुकारा जाता था। जब अन्य रासायनिक पदार्थों की भांति पी० वी० पी० के गुणों की परीक्षा की गई तो परीक्षणकर्त्ताओं के हृदय कभी आशा से हरे हो उठते थे और कभी आशंकाओं से मुरझाने लगते थे। पी० वी० पी० के गुण ज्यों-ज्यों विदित होने लगे, आशा बलवती होती गई। परीक्षणों के पूरा होने पर जब उनके नतीजों को जांचा-पड़ताला गया तो पाया गया कि इसके गुण रक्त-रस से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं और एसीटिलीन के आधार पर बना हुआ यह नवीन रासायनिक पदार्थ रक्त-रस के स्थान पर उपयोग किया जा सकता है। अंग्रेजी में रक्त रस को प्लाज्मा कहते हैं और पी० वी० पी० के समान रासायनिक बनावट वाले पदार्थों को प्लास्टिक। इस कारण इसे अर्द्ध-वैज्ञानिक भाषा में प्लास्टिक प्लाज्मा कहा जाने लगा। इसके आविष्कार का श्रेय जर्मन वैज्ञानिक रैपे को है।

यह कृत्रिम रक्त-रस बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ और आठ लाख से भी अधिक जर्मन आहतों को इससे सहायता दी गई। युद्ध के दिनों में इस आविष्कार का ज्ञान और उपयोग जर्मनी तक ही सीमित रहा। शेष संसार को इसका पता न चला। रक्त के अभाव की जो समस्या जर्मनी के सामने थी वही समस्या द्वितीय महायुद्ध में लड़ने वाले अन्य देशों के सामने भी थी। जर्मनी के बाहर भी कृत्रिम रक्त-रस की खोज की जा रही थी। इन खोजों से जिलेटीन और डेक्सट्रन नामक दो पदार्थों में ऐसे गुणों का पता चला जिनके कारण वे रक्त-रस के बदल के तौर पर इस्तेमाल किये जा सकते थे। जब युद्ध समाप्त हो गया तो पी० वी० पी० के गुणों का पता संसार भर के वैज्ञानिकों और चिकित्सकों को लगा। तीनों औषधियों पर तुलनात्मक परीक्षण किये गये और यह पाया गया कि पोलिविनिल पाइरोलिडोन उनमें सर्वोत्तम है। पी० वी० पी० एक चूर्ण है जिसमें पानी के साथ मिल जाने की एक अद्भुत शक्ति है; पी० वी० पी० की इसी शक्ति में उसकी उपयोगिता का रहस्य निहित है।

पी० वी० पी० के आविष्कार का अर्थ यह नहीं कि रक्त बैंकों में अब रक्तदान अनावश्यक हो गया है। रक्त-बैंक को रक्त से भरा पूरा रखने की आवश्यकता अब भी उतनी ही है जितनी कि पहले थी। पी० वी० पी० प्राकृतिक रक्त रस की समानता कदापि नहीं कर सकता। इसका महत्व केवल इतना ही है कि प्राकृतिक रक्त-रस अप्राप्य होने पर इसका उपयोग रोगी के रक्त चक्र को चालू रखने के लिए किया जा सकता है। इस उपयोग में यह रोगियों की अकाल मृत्यु से रक्षा करता है। पी० वी० पी० तात्कालिक सहायता के लिए आज संसार के बड़े-बड़े अस्पतालों में काम में लाया जा रहा है।

पी० वी० पी० केवल रक्त रस का बदल ही नहीं है। वह बच्चों के डिप्थीरिया रोग में भी काफी लाभदायक सिद्ध हुआ है। कुछ औषधियों का प्रभाव पी० वी० पी० के साथ मिलकर अधिक हो जाता है। पेनिसिलीन जब इस के साथ उपयोग की जाती है तो उसका प्रभाव लगभग चौगुना होना कहा जाता है। पी० वी० पी० शरीर में विषैले पदार्थ बाहर निकालने में भी उसकी सहायता करता है।

जिन्दगी का एक पृष्ठ

रामनारायण उपाध्याय

नित्य बड़ी सुबह जब छोटी बच्ची कान के पास आकर आवाज लगाती है, "दादा, उठो चाय आ गई" तो बच्ची के प्यार भरे आग्रह और चाय के आकर्षण का लोभ संवरण नहीं कर पाता और लाचार बिस्तरे से उठना पड़ता है । श्रीमतीजी पूछती है, "पहले चाय लेंगे या हाथ-मुह धोयेंगे ?" मेरा जवाब होता है—'पहले कच्चा मुह धोऊंगा, हल्की-सी चाय लूंगा । फिर पक्का मुह धोऊंगा और पक्की चाय लूंगा ।" यों शुरू ही उनके यहां दो बार की चाय रिजर्व हो जाती है । चाय का क्रम हमारे यहां बहुत देर तक चलता है । जो जब उठता है उसे तब चाय बनाकर दी जाती है । इसमें सबसे पहले उठने वाले को सबसे बाद में उठनेवाले की चाय में से भी हिस्सा मिल जाने की गुंजाइश रहती है । लेकिन हम हैं कि पहले उठते नहीं बनता और दो बार चाय पीने की जिद छोड़ी नहीं जाती ।

चाय से निपटते ही यदि वह दिन डाक का हुआ तो डाक की प्रतीक्षा शुरू हो जाती है । गांव में तो डाक की प्रतीक्षा एक आत्मीय जन के आने की तरह की जाती है । रेल-सड़क, तार और दैनिक अखबार की दुनिया से दूर गांव से साथी मित्रों से मिलने और जगत की गतिविधि एवं विचारों से सम्पर्क बनाये रखने का एकमात्र साधन यही तो होता है । कल आनेवाली डाक का अन्दाज आज से ही लगा लिया जाता है । कब किस मित्र को पत्र डाला था और कब किस अखबार को लेख, इसपर से आने वाली डाक का सहज ही अन्दाज चल जाता है और यदि वह उस दिन नहीं भी आ पावे तो उससे प्रतीक्षा के आनंद में वृद्धि तो होती ही है ।

कभी-कभी असुविधा में से भी सुविधा निकल आती है । हमारे गांव में डाक के तीसरे दिन आने का नियम है । इससे एक दिन डाक देखने और दूसरा दिन डाक तैयार करने के लिये मिल जाता है । जिस दिन डाक वजन में हल्की होती है उस दिन उसमें अखबार कम और मित्रों के पत्र अधिक होते हैं । इसीलिए वह 'स्नेह' में भारी रहती है, लेकिन जिस दिन वह वजन में भारी होती है, उस दिन वह महज सरकारी प्रकाशनों एवं रिपोर्टों से भरी होती है और यों उसमें कोई खास आकर्षण नहीं रह जाता । हां, यदि उस दिन, हिंदुस्तान साप्ताहिक, हरिजन-सेवक, विश्व साहित्य, जीवन-साहित्य, नया जीवन या सर्वोदय जैसा एक ही पत्र आ जाय तो समझिये वह सप्ताह की ही क्षति-पूर्ति करने के लिए पर्याप्त होते हैं ।

डाक आने से पूर्व का समय कभी नया लेख लिखने, और कभी पहले लिखे की कापी करने में बीत जाता है । यों दस-साढ़े दस बज जाते हैं कि अन्दर से आवाज आती है—"भोजन बन गया है, कुछ नहाना-खाना भी है, या डाक से ही पेट भरेंगे ?" सोचता हूं डाक से तो मन भरता है पेट नहीं ? अतएव लाचार नहाने-खाने की भी तैयारी करनी ही होती है ।

भोजन से निपटते ही भाई लोग खेत जाने को तैयार हो उठते हैं । पूछते हैं "क्या आप भी चलेंगे ?" यदि "हां" कहूं तो उत्तर मिलता है "नहीं-नहीं, आज नहीं कल चलिएगा । आज तो जरा खेतों में काम कराना है, आप चलेंगे तो सब बातों में लग जायेंगे और यों चलता हुआ काम भी अधूरा रह जायगा ।" यों मुझे पूरा दिन पढ़ने-लिखने को मिल जाता है । लेकिन जो आनंद खेतों की मुक्त वायु में है वह इस कागज की लिखावट में कहां है ?

गांव के जीवन की यह विशेषता है कि यहां इतनी गुजर जाते हैं, कभी पैसों की आवश्यकता नहीं पड़ती । कागज की जमीन से खेतों की जमीन आज भी इतनी अधिक उर्वरा है कि वह मनुष्य की रोटी-दाल की समस्या को सुलझाने में सहायक होती है । सोचता हूं जब मजदूर को कुदाली और किसान के हल में, जीवन वेतन देने की क्षमता है, तो कलम इस दिशा में क्यों

(शेषांश २२६ पर)

पाप और पुण्य की व्याख्या

ब्रजकृष्ण चांदीवाला

अर्जुन के सामने समस्या क्या थी ? वह जब कुरुक्षेत्र की धर्म-भूमि पर युद्ध लड़ने के लिए खड़ा हुआ तो उसमें पूरा उत्साह था। वह अपने ऊपर इतना विश्वास रखता था कि अकेला ही समस्त कौरव-सेना को पराजित कर देगा। अर्जुन के गांडीव की सहायता न होती तो पांडव युद्ध करने का विचार भी न करते। उसने कृष्ण भगवान से जो उसके साथ थे कहा कि दोनों सेनाओं के बीच में उसके रथ को खड़ा कर दें ताकि वह युद्ध के नक्शे को भली प्रकार समझ ले और देख ले कि किस किस से उसको मुकाबला करना है। भगवान कृष्ण ने वैसा ही किया जैसा उसने कहा था। जैसे जैसे वह अपने शत्रुओं पर दृष्टि डालता गया, उसका उत्साह शिथिल पड़ता गया, उसका शरीर कांपने लगा, उसके रोमांच हो आया, गांडीव धनुष उसके हाथ से गिरने लगा और वह खड़ा भी न रह सका। लेकिन क्या वह विरोधी-सेना को देखकर भयभीत हो गया था ? नहीं, हरगिज नहीं। भय जैसी चीज तो वह सीखा ही न था। तब फिर उसकी ऐसी दशा क्या हो गई ? बात यह थी कि पाप की शंका ने उसे परास्त कर दिया था। उसका उस युद्ध का परिणाम धर्म न दिखाई देकर अधर्म दिखाई देने लगा था। उसने भगवान कृष्ण से कहा—

'हे प्रभो ! कुल का नाश होने से सनातन कुलधर्म नष्ट हो जाते हैं, और धर्म के नष्ट होने पर सम्पूर्ण कुल को पाप दबा लेता है, पाप के अधिक बढ़ने से कुल की स्त्रियां दूषित हो जाती हैं और स्त्रियों के दूषित होने से वर्ण-संकर उत्पन्न होता है। वर्णसंकर कुल को नरक में ले जाता है। चूंकि इन्हें पिंड और जल-क्रिया का अधिकार नहीं होता इसलिए इनके पितर लोग भी गिर जाते हैं और इस प्रकार जिनका कुल-धर्म नष्ट हो जाता है उनका अनन्त काल तक नरक में वास होता है, ऐसा हमने सुना है।' उसने यह भी कहा कि 'कौरव भले ही आततायी हों, आखिर वह हैं तो हमारे सगे सम्बन्धी ही। इनको मार कर हमें पाप ही लगेगा। तथा जिनको आज तक हम गुरु और बड़ा मानते आए हैं उनको मारने के बदले भीख मांग कर खाना अच्छा है।' यह कहकर और युद्ध न करने का निश्चय करके वह चुप बैठ गया।

युद्ध करना अर्जुन के लिए ऐसा ही स्वाभाविक था जैसा कि बच्चे के लिए मां का स्तन-पान करना। उसने न मालूम कितने भयंकर युद्ध किये थे ! राजा विराट के यहां उस अकेले ने ही समस्त कौरवों को हराकर गाएं छुड़ा ली थीं। अपने जमाने का वह अद्वितीय योद्धा गिना जाता था और युद्ध करना उसके लिए सहज कर्म था और यही उसके लिए धर्म-कार्य था। युद्ध भूमि में खड़े होने से पूर्व अर्जुन इन सब बातों को समझता था मगर वहां खड़े होकर एकदम मोह ने उसको ग्रस लिया और पाप की आशंका ने उसे मूढ़ तथा निस्तेज बना दिया।

भगवान कृष्ण उसकी दलीलें सुनकर जरा मुस्करा दिए, क्योंकि उनसे बढ़कर और किसने अर्जुन के स्वभाव का अध्ययन किया था ? वह उनका सखा और प्रिय शिष्य था। वह नासमझ नहीं था बल्कि धुरन्धर पंडित था और हर प्रकार से योग्य था, मगर भगवान जानते थे कि कर्तव्याकर्तव्य का निश्चय करने में बड़े-बड़े पंडित भी उलझन में पड़ जाया करते हैं। भगवान कृष्ण जो मनुष्य स्वभाव के अचूक पारखी थे, इस बात को समझते थे कि अर्जुन जो युद्ध से पराङ्मुख बनना चाहता है, अपने इस निश्चय पर टिक नहीं सकेगा क्योंकि यह निश्चय उसके स्वभाव के प्रतिकूल था। उसका स्वभाव जबरदस्ती उसे युद्ध में प्रवृत्त कर देगा। उन्होंने उससे कहा—

'तू अहंकार से यदि मानता हो कि मैं युद्ध नहीं करूंगा तो तेरा यह निश्चय व्यर्थ है क्योंकि तेरी प्रकृति, तेरा क्षत्रिय स्वभाव, तुमसे यह युद्ध करवा कर रहेगा।

"हे कौन्तेय ! अपने स्वभावजन्य कर्म से बद्ध होने के कारण, मोह के वश होकर तू जिसे न करने की इच्छा करता है, पराधीन होकर अर्थात् अपनी प्रकृति, अपने स्वभाव के आधीन होकर तुझे वही करना पड़ेगा।" भ. गी. १८.५९.६० ॥ क्योंकि जब तेरे विरोधी तेरी हंसी उड़ाएंगे और कहेंगे कि तू डर के मारे युद्ध-भूमि से भाग गया और तरह-तरह से तेरी निन्दा करेंगे, तेरी सहायता के बिना जब तेरे भाई और स्वजन मारे जाएंगे और कुल की स्त्रियों का अपमान होगा तो क्या तू अपने धीरज को रख सकेगा ? यह सब देख-सुनकर तुझे लड़ना ही पड़ेगा, तू हरगिज शांत चित्त से बैठा न रह सकेगा। "हे कौन्तेय ! स्वभावतः प्राप्त कर्म, सदोष होने पर छोड़ना न चाहिए। जिस प्रकार अग्नि के साथ धुएं का संयोग है उसी प्रकार सब कर्मों के साथ दोष मौजूद है।" १८. ४८ ॥

अब प्रश्न यह उठता है कि यदि स्वभाव-नियत कर्म से किसी को पाप नहीं लगता तो फिर पाप-पुण्य की, धर्म-अधर्म की, नेकी-बदी की समस्या ही कहां बाकी रही क्योंकि हर व्यक्ति अपने स्वभाव के अनुसार ही तो बर्तता है। फिर यह इतने बड़े प्रतिबन्ध क्यों, सबको खुली छुट्टी मिल गई, जो जिस प्रकार चाहे करे, सब गुनाह माफ, चाहे कोई चोरी करे, धोखा दे, विश्वासघात करे डाका डाले, खून करे, व्यभिचार करे, जुआ खेले। सारांश यह कि जिन-जिन कृत्यों को पाप-रूप माना गया है सबको करने की खुली छुट्टी मिल गई। सब अपने-अपने स्वभाव के अनुसार बर्त रहे हैं। किसीको पाप कहां लगता है। और फिर इन धर्म-शास्त्रों की, इन कायदे-कानूनों की इस सजा और जजा की भी क्या जरूरत है ?

प्रश्न तो ठीक है, मगर देखना यह है कि मनुष्य-जाति का जबसे विकास हुआ और जंगलीपन से निकलकर सभ्य कहलाने लगी, तब ही से वेद-वेदांग, धर्मशास्त्र और नीतिशास्त्र, कायदे और कानून चले आ रहे हैं, अनेक धर्म-प्रवर्तक आए और भिन्न-भिन्न धर्मों की स्थापना हुई। हरएक ने उन्हीं चन्द कर्मों को पापकारक कहा है और चंद को पुण्यकारक। सबकी शिक्षा मूल रूप से एक ही है। इसके होते हुए भी संसार में अनादि काल से नेकी और बदी चली आ रही है। आज तक कोई धर्म-प्रवर्तक बदी को समाज से पूर्ण रूप से दूर न कर सका। बदी से बचाने के लिए हजारों उपदेश दिये गए, अनेक प्रकार के भय दिखाये गए, तरह-तरह की सजाएं नियत की गईं, यहां तक कि नरक की कल्पना को भी समाज में दाखिल कर दिया गया। (जिसका वेदों में कोई उल्लेख नहीं है) और उस नरक की कल्पना में दंड की भावना को दिखाते हुए ऐसे-ऐसे भयंकर और भीषण दुःख दिखाये गए कि जिनको सुनकर मनुष्य का कलेजा दहल जाय। साथ ही पुण्य-कर्मों के लिए स्वर्ग की कल्पना रखकर वहां ऐसे-ऐसे सुखों की रचना की कि अच्छे-से-अच्छे संयमी का भी वहां जाने के लिए जी ललचा उठे। फिर भी पाप-कर्मों में कमी न पड़ी। हर काल में और देश में दुष्कृत्यों के लिए समय-समय पर दंड नियत किए गए। यहां तक कि प्राणदंड भी रखा, फिर भी लोग जुर्म करने से, पाप-कर्म करने से बाज न आए। इसका कारण भगवान ने बताया : 'स्वभावस्तु प्रवर्तते।'

पापी को पाप के मार्ग से बचाने का तरीका उसको भय दिखाने का, उसपर अत्याचार करने का, उसको शारीरिक कष्ट पहुंचाने का नहीं है बल्कि उस व्यक्ति को एक रोगी मानकर उसके स्वभाव का, उसकी प्रकृति का अध्ययन करके उसका उपचार करने का है। इसको मानसिक उपचार कहते हैं।

भगवान कृष्ण का कहना था कि संसार में जो यह पाप और पुण्य की भावना दाखिल की हुई है और स्वर्ग-नरक की कल्पना दी हुई है यह बिल्कुल गलत तरीका है। समाज इस तरीके से सुधर हो नहीं सकता। यह तरीका समाज के विकास की प्रथमावस्था का भले ही हो, लेकिन पूर्ण विकसित समाज को मनुष्य और अन्य सब वस्तुओं की प्रकृति का अध्ययन करके उसके अनुसार चलना चाहिए, तब ही वह कल्याण के मार्ग पर चल सकता है। उसकी निगाह में पाप और पुण्य-जैसी कोई वस्तु नहीं थी। उन्होंने कहा —

'जगत का प्रभु न कर्तापन रखता है, न कर्म रचता है, न कर्म और फल का मेल रचता है, प्रकृति ही सब करती

है। ईश्वर किसी के पाप या पुण्य को अपने ऊपर नहीं ओढ़ता । अज्ञान द्वारा ज्ञान ढक जाने से लोग मोह में फंस जाते है ।" ५. १४ १५ ॥

पाप और पुण्य तथा अन्य जितनी अच्छी और बुरी भावनाएं हैं वह तुलनात्मक है । अपने आप में कुछ नहीं हैं। कर्म ऐसे ही है जैसे लोहे का एक गोला बेजान पड़ा होता है। कर्म जब क्रिया रूप में बदलता है तो वह कोई परिणाम पैदा करता है । जो परिणाम व्यक्ति और समाज के लिए लाभकारी, सुखकारक होता है उसे सत, शुभ, पुण्य और धर्म-कार्य के नाम से पुकारते है । जो व्यक्ति या समाज को हानि पहुंचाए, दु:ख और क्लेश पहुंचाए, उसे असत, अशुभ, पाप और अधर्म कार्य के नाम से पुकारा जाता है। यह नाम समाज अपना हिताहित देखकर नियत करता है और इसलिए ही कर्म एक प्रदेश में वहां की समाज-रचना के अनुसार पुण्य-कर्म हो सकता है और वही कर्म दूसरे प्रदेश में वहां की समाज-रचना के अनुसार पाप-कर्म हो सकता है । जैसे पूर्वकाल में जब विवाह व्यवस्था न थी तब स्त्री के लिए कोई मर्यादा भी न थी। एक स्त्री कई-कई पुरुषों के पास जा सकती थी। उस कृत्य को पाप नहीं माना जाता था । बाद में समाज में मर्यादा लग गई कि एक स्त्री का एक ही पति हो तो उसका वह काम जो पहले उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता था, बाद में पाप-कर्म माना जाने लगा । इतना ही नहीं उसके लिए अनेक प्रकार के दंड और भय भी नियत हो गये। स्त्री से विवाह करते समय अनेक मर्यादाओं को देखा जाने लगा । जैसे अपने भाई-बहन की सन्तान अपनी ही सन्तान के समान है । इसलिए वे आपस में विवाह नहीं कर सकते, मगर मुसलमानों में यही कृत्य जायज है ।

कहने का तात्पर्य यह है कि यह नियम और कायदे व्यक्ति और समाज ने अपने सुख-दु:ख का विचार रखकर, अपने हिताहित को देखकर बनाए है, यह स्वाभाविक नहीं कहे जा सकते । समाज का जैसे-जैसे विकास होता गया और वह अपने को सभ्य गिनने लगा, उसका अनुशासन भी कड़ा होता गया और प्रतिबन्ध भी बढ़ते गये । मतलब यह कि समाज ने अपने को धर्म-अधर्म की भावनाओं में इतना जकड़ लिया कि वह उसके लिए बोझा-रूप हो गई और इसलिए समाज में दम्भ और कपट भी बढ़ता गया ।

(पृष्ठ २२१ का शेषांश)

असहाय रहे । लेकिन लगता है कि अभी तो वे दिन दूर हैं जब साहित्यिक भी यह गर्व कर सके कि वे 'कलम-जीवी" हैं और अपनी समस्याएं स्वयं सुलझाने में समर्थ हैं ।

और जबतक यह स्थिति है तबतक हर साहित्यिक को अपनी श्रीमतीजी से यह उलाहना सुनना ही पड़ेगा कि क्या आप भी फिजूल की मगजपच्ची में लगे रहते हैं, सुबह के खाने की सुध रखते हैं न शाम के खाने का खयाल। समय पर खाना तो खा लिया करें । फिर आप हैं और किताबें हैं । शायद स्त्रियों को किताबों से इसलिए सौतिया डाह है कि वे उनके महानुभावों को अपने में ही विलमाये रखती हैं । उनसे चार घड़ी मिलने-बोलने का अवकाश ही नहीं देती । सुबह उठते हैं तो किताब के साथ और सोते हैं तो किताब लेकर । और उससे जरा पिंड छूटा नहीं कि कोरे मगज को खाली कागज पर उतारने में लग जाते हैं । लेकिन आदमी हैं कि लाचार है और अपनी आदत से बाज नहीं आते ।

शाम को, रात के भोजन के उपरान्त घर की बैठक में लोग आ जमते हैं और बिना विषय की परवाह किये बड़ी रात तक बात चलती रहती हैं ।

इसीमें रात के दस-ग्यारह बज जाते हैं और मैं पुनः चाय की एक प्याली का रसास्वादन लेते हुए और सुबह की चाय का स्मरण करते हुए अपने को मधुर सपनों और मीठी नींद की गोद में सौंप देता हूं ।

सन्तों की वाणी

विनोबा

संतों की परम्परा अति प्राचीन काल से आजतक चली आरही है। जबसे मानवता का उद्गम हुआ, संतों का आविर्भाव हुआ है। संतों की वाणी का प्रथम नमूना हमें ऋग्वेद में देखने को मिलता है। ऋग्वेद के कुछ व्याख्यानपरक सूक्तों को हम छोड़ दें, तो बाकी का सारा ऋग्वेद संतों की वाणी ही है।

बहुतों का ख़याल है कि वेदों में कर्मकांड ही भरा है। यजुर्वेद आदि में कर्मकांड भी मौजूद है, लेकिन ऋग्वेद के मंत्र भक्तिपरक संत-गाथा हैं। उनका संबंध जो भिन्न-भिन्न कर्मों के साथ जोड़ा गया है, उसका उद्देश्य इतना ही है कि उन-उन कर्मों के निमित्त उन-उन प्रसंगों पर अच्छे-अच्छे वचन लोगों के कंठ में रहें। मेरी मा सुबह आटा पीसने के साथ तुकाराम के भजन गाया करती थी। उन भजनों का आटा पीसने के साथ क्या सम्बन्ध था सिवा इसके कि आटा पीसने में उसे कुछ उत्साहवर्धन होता होगा। इसी प्रकार बहुत सारे ऋग्वेद के सूक्तों का कर्मों के साथ संबंध गिना जा सकता है। सामवेद तो ऋग्वेद में के ही भजनों का चुनाव है, जिनकी एक विशेष ढंग से सामपाठियों ने स्वरलिपि बना रखी थी।

कुछ लोगों का ख़याल था कि वेदों में भक्ति है भी, तो वह बहुदेवता-भक्ति है। लेकिन इसका उत्तर स्वयं ऋग्वेद में दिया है। सत्‌नाम एक ही है; उपासना के लिए उपासक भिन्न-भिन्न रूप पसंद करते हैं:

"एकं सत्, विप्राः बहुधा वदन्ति।
अग्निं यमं मातरिश्वानं आहुः॥"

अग्नि, यम, वायु ये सारे एक ही परमेश्वर के भिन्न-भिन्न गुणवाचक भिन्न-भिन्न नाम हैं। वह परिशुद्ध निर्गुण है, अर्थात् अनंत गुणवान् है। जिस उपासक को बरतने में जिस गुण के विकास की आवश्यकता अनुभव होती है, वह उस गुणवाले भगवान् की भक्ति करता है। जैसे तुलसीदास ने विनय-पत्रिका में मंगलमूरति गण-नायक, प्रेरक सूर्यनारायण, औढरदानी शंकर, विरक्ति-रूपिणी दुर्गा आदि अनेक देवताओं का स्तवन किया, पर हरेक से मांगा यही कि "रामचरण-रति देहु"। ऐसा ही ऋग्वेद में भक्तों का है। भक्तों की वाणी में जो भावना की उत्कटता, अंदर की छटपटाहट, भगवान् के लिए आदर आदि भाव दीख पड़ते हैं, वे सारे वैदिक ही हैं।

"स नः पितेव सूनवे, अग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये॥"

"हे अग्निदेव, ज्योतिर्मय प्रभु, जैसे पिता के पास पुत्र सहज पहुँच जाता है, वैसे ही हम तेरे पास पहुँचे। हमारे मंगल के लिए निरंतर तू हमारे साथ रह।" यह है आर्षवाणी। इसे हम संतवाणी न कहें तो क्या कहें?

संतवाणी का दूसरा आविर्भाव हमें मिलता है, बुद्ध भगवान् की गाथाओं में। वेदवाणी और बुद्धवाणी में वैसा ही फ़रक है जैसा कि तुलसीदास और कबीर में। तुलसीदास हैं प्रतिमा वेदवाणी की, और कबीर बुद्धवाणी की। वियोगी हरिजी के संत-सुधा-सार का बहुत सारा हिस्सा जो मैंने देखा, बुद्धवाणी का नमूना है। "मनो पुब्बंगमा धम्मा, मनो सेट्ठा मनोमया।" यह है धम्मपद का पहला वचन। इसके साथ देखिए जपुजी में गुरु नानक का वचन:

"मन्ने मोख दुवार मन्नै परवारै साधार।"

मैं इन दोनों में कुछ भी फ़रक नहीं देखता। कबीर, नानक, दादू एक ही माला के मणि हैं, जिनमें मेरु-मणि तो मैं बुद्ध को ही समझता हूँ। बुद्ध ने लोक-भाषा में लिखा, यही पीछे के संतों ने भी किया। वेद-वाणी भी उस ज़माने की लोक-भाषा वैदिक संस्कृत में प्रकट हुई।

"अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम्"

"मैं हूँ सब राष्ट्र की वाणी, सबकी वासनाओं का संगम करनेवाली" अगर वैदिक ऋषि लोक-भाषा में न गाते होते, तो "अहं राष्ट्री" ऐसा दावा वे नहीं कर पाते।

संतवाणी का तीसरा आविर्भाव हमें मिलता है दक्षिण के शैव और वैष्णव भक्तों में। पेरिय आळ्वार,

आंडाळ, नम्माळ्वार, कुलशेखरर् आदि वैष्णव, और सबंधर, अप्पर, सुन्दरर्, माणिक्कवाचकर् आदि शैव भक्तो ने जो परममधुर भजन गाये है वे विश्व-साहित्य में अपना एक विशेष स्थान रखते हैं। वेदवाणी और बुद्ध-वाणी जो उत्तरभारत से दक्षिणभारत में पहुँची, उनका ऋण चुकाने के लिए शकर, रामानुज आदि वैष्णव आचार्यों ने भक्ति का प्रवाह दक्षिणभारत से उत्तरभारत में बहाया। उन आचार्यों को यह स्फूर्ति तमिल भाषा में गानवाले वैष्णव और शैव सतो से ही मिली। यहाँ एक भ्रम दूर करने की जरूरत है। लोगो का खयाल है कि रामानुज तो वैष्णव थे, पर शायद शकर वैष्णव नही थे। यह ग़लत है। जहाँ-जहाँ शकर प्रतीक-उपासना का दृष्टान्त देते है वहा '*शालग्रामे इव विष्णु*' ऐसा ही देते है। "अविनयमपनय विष्णो" यह विष्णुस्तोत्र शकराचार्य के मठो में प्रतिदिन गाया जाता है। शकर ने अपनी माता को दर्शन कराया था "मम भवतु कृष्णोक्षि विषय" इस स्तोत्र से। और भाष्य भी उन्होने लिखा भगवद्गीता और विष्णुसहस्रनाम पर, जो कि वैष्णव ग्रथ है। हाँ, अद्वैती के नाते वे शिव, विष्णु आदि में भेद नही करते थे, और "चिदानन्द रूप शिवोऽह शिवोऽहं" गाते थे। शिव और विष्णु का यही अभेद हम तुलसीदास तक में पाते है, जो *कि श्रीराम के अनन्य उपासक थे।*

वेदवाणी, बुद्धवाणी और तमिल भक्तवाणी यह मूलत्रयी है, जिसमें से बाद की सारी भारतीय सतवाणी प्रसृत हुई। ज्ञानदेव, नामदेव और तुकाराम, पुरदरदास और त्यागराज, नरसी मेहता और अखाभगत, तुलसीदास, सूरदास और मीरा बाई, कबीर, नानक, दादू, शकरदेव और चैतन्य—ये सारे मध्ययुगीन सत विविध पुष्प है उस वल्ली के, जिसका मूल उक्त त्रयी में है।

सतो की सामान्य सिखावन मर्त्यलोक-सुलभ और सादी-सी होती है। उनकी जीवन-योजना के मूल में जो बुनियादी विचार पाये जाते है वे थोडे में यह है

(अ) देह की आजीविका के लिए कौटुम्बिक सरणी के या परिस्थिति के अनुसार जिसे जो उद्योग प्राप्त हो वह निरतर करते रहना चाहिए। *समाज पर भाररूप* होकर जीवन बिताना भक्ति के अनुकूल नही हो सकता। बल्कि अपने सहजप्राप्त उद्योग की क्रियाओं को ब्रह्मरूप देखने का अभ्यास करना चाहिए। शुद्ध आजीविका के बिना शुद्ध विचार और विवेक सभव नही है। इसी विश्वास के कारण हम देखते है कि नामदेव "**सोने की सूई**" और "**रूपे का धागा**" लेकर भक्ति भाव से सीवन सीता रहा और चित्त को हरि म पिरोता रहा। कबीर "झीनी झीनी चदरिया" बुनता रहा। दूसरे सत भी इसी तरह अपना अपना काम करते रहे। उन कामो को उन्होंने कभी बाधक समझा हो ऐसा नही मालूम पडता, क्योकि अपने-अपने उद्योग की परिभाषा में वे अपने अध्यात्म के विचारो को प्रगट करते हुए दीख पडते है। यद्यपि यह मैं नही कह सकता कि "निष्काम-कर्म = भक्ति" इस गीतोपदेशित समीकरण को वे मान्य करते थे, या '*निष्काम-कर्म + भक्ति*' ऐसा समुच्चय उनके मन में था। यह बारीक भेद है। इसका निर्देशमात्र करके यहा छोड देता हू।

चाहे समीकरण मानो, चाहे समुच्चय, भक्ति के साथ अकर्मण्यता नहीं टिकती, यह बात सभी सतों के अनुभव पर से निश्चित है। जहाँ भक्ति का ही टिकाव न लगे ऐसी किसी अतिम अवस्था में कर्म गिर पडे यह सभव है। लेकिन उस स्थिति में तो शरीर गिर जाने की बात है। इसलिए यहाँ उसके विचार करने की जरूरत नहीं।

दुर्दैव इस बात का है कि वह अतिम स्थिति मानो प्राप्त ही हो चुकी ऐसे भ्रम में जानबूझकर कर्म छोडने की घातक मनोवृत्ति, बावजूद सतो के जीवन और उपदेश के, हमारे समाज में फैली हुई है, और कभी कभी किसी सत-वचन का असबद्ध आधार भी उसे मिल जाता है।

(आ) अपने शरीर से जितना हो सके उतना परोपकार करना चाहिए। परोपकार का मौका कभी खोना नही चाहिए। सतो के जीवन की यह बहुत ही बुनियादी बात है, बल्कि यही कहना चाहिए कि उनका सारा जीवन ही परोपकारमय होना है। "उपकार" शब्द में हम लोगो को कुछ अहकार का आभास आता है। वास्तव में ऐसा नहीं है। "उप" का अर्थ ही 'अल्प' होता है। मनुष्य को अपने पावो पर खडा रहना होता है, उसे *हम गौणरूप से कुछ मदद पहुँचा देते है—यह अर्थ* 'उपकार' शब्द में निहित है।

आजकल हमने सार्वजनिक सेवा का एक आडम्बर-सा बना रखा है। अपने आसपास के लोगों की, सहजभाव से और स्वभाव से छोटी-मोटी सेवाएं करते रहना यह मनुष्य का सहज लक्षण होना चाहिए। मीमांसकों की भाषा में, परोपकार एक नित्यकर्म है, जिसके करने में कोई पुण्य लाभ नहीं होगा, लेकिन न करने में पाप होगा। दाहिने हाथ से किये उपकार का बायें हाथ को पता न लगे और दोनों हाथों से किये उपकार का मन को पता न लगे।

(इ) "अहिंसासत्यादीनि चारित्र्याणि परिपालनीयानि" यह है नारद की आज्ञा, जो थे सब सन्तों के आदि गुरु। सन्तों की चारित्र्य-पद्धति में और नीति-शास्त्र-वेत्ताओं की विचार-सरणी में एक बड़ा अन्तर यह है कि सन्तों की श्रद्धा में अहिंसा इत्यादि का पालन जाति-देश-काल-समय निरपेक्ष करना होता है। अर्थात् यह लक्ष्मण की खींची रेखा है, जिसका उल्लंघन सीता भी बिना सहने के नहीं कर सकती। विद्वान् नीति-शास्त्री भी अहिंसा आदि को मानते तो हैं, लेकिन इनको वे अविचल या शाश्वत धर्म नहीं मानते, बल्कि परिस्थिति-सापेक्ष या सुभीते के अनुसार मानते हैं। कुछ समाज-शास्त्री भी कहते हैं कि ये यम-नियम व्यक्ति के लिए निरपवाद माने भी जायें तो भी समाज के लिए इनका निरपवाद पालन न सिर्फ असाध्य है, बल्कि अयोग्य भी है। इस विचार से सन्तों का घोर विरोध है।

"आदि सच, जुगादि सच, है भी सच, होसी भी सच।" इस तरह की थी उनकी सत्य-निष्ठा। और हमेशा उनकी आतुरतापूर्वक रटन थी —

"किऊं सचियारा होइये, किऊं कूड़े तुट्टे पाल।" कैसे हम सच्चे बनेंगे, और कैसे असत्य का पर्दा टूटेगा। निरपेक्ष नीति और सापेक्ष-नीति का झगड़ा लोकजीवन में तो जब मिटेगा तब मिटेगा, लेकिन भगवान् की जिसपर कृपा होगी उसके लिए तो वह झगड़ा इसी क्षण मिटेगा। और जिसके मन में यह झगड़ा मिट गया उसपर भगवान् की कृपा हुई ऐसा समझना चाहिए। भक्ति का यह आरम्भ-मात्र है।

(ई) सब सन्तों की सिखावन में और सब धर्म-ग्रंथों में भगवन्नाम की महिमा एक सर्वमान्य वस्तु है। लेकिन नाम-जप के साथ अर्थ-भावन भी करना होता है। उसमें अपनी-अपनी धारणा के अनुसार अनेक प्रकार हो जाते हैं।

कुछ ज्ञानी निर्गुण-निराकार का ध्यान करते हैं, जो सब कल्पनाओं से रहित है। उसका ध्यान करनेवाले अक्सर ओंकार को पसन्द करते हैं। लेकिन राम, गोविंद, नारायण हरि आदि नाम लेकर भी निर्गुण-निराकार का भावन कर सकते हैं। कबीर, नानक आदि में ही नहीं, तुलसीदास तक में यह पाया जाता है। दुनिया के सारे साहित्य में निर्गुण-निराकार का सबसे श्रेष्ठ प्रतिपादन उपनिषदों में मिलता है।

कुछ ध्यानी नाम के साथ सगुण-निराकार का ध्यान करते हैं। अक्सर हम जहां निर्गुण-निराकार को छोड़ते हैं, सगुण-साकार में आ जाते हैं। लेकिन दोनों के बीच सगुण-निराकार की एक भूमिका होती है। इसमें भगवान् को, निराकार मानते हुए, दया, वात्सल्य आदि अनन्त गुणों के परम आदर्श के तौर पर माना जाता है। उपनिषद् में निर्गुण-निराकार के साथ सगुण-निराकार की पुष्टि करनेवाले वचन भी पाये जाते हैं, जिनको रामानुज आदि भाष्यकार विशेष महत्व देते हैं। इस्लाम और ईसाई-मत इसीको मानते हैं। ब्रह्म-समाज, आर्य-समाज इत्यादि आधुनिक समाज सगुण-निराकार की भूमिका पर खड़े हैं।

कुछ भक्त नाम के साथ सगुण-साकार की कल्पना करते हैं। इसके भी तीन पंथ हो जाते हैं:

(१) सांकेतिक रूप की उपासना, जैसे शेषशायी विष्णु, अर्धनारी-नटेश्वर इत्यादि।

(२) विश्वरूप की उपासना, जिससे अर्जुन घबड़ा गया था, लेकिन "खुले नयन पहचानों, हँसि हँसि सुन्दर रूप निहारो" कहकर कबीर आनन्दित होता है। अर्जुन इसलिए घबड़ा गया था कि उसके ध्यान-दर्शन में तीनों काल और तीनों स्थल एकत्र प्रगट हुए थे। कबीर इसलिए आह्लादित है कि वह विश्वरूप का एक भाग ही देख रहा है, जो कि उसके नेत्रों को अनुकूल है।

(३) विशिष्ट श्रेष्ठपुरुष की अवताररूप में उपासना। इस उपासना के करनेवालों के

फिर दो विभाग हो जाते हैं। एक अक्ल रखे हुए, जो कि अपने पूज्य पुरुष को ईश्वर का अंशावतार मानते हैं। दूसरे अक्ल खोये हुए, या अक्ल को शून्य समझनेवाले, जो "कृष्णस्तु भगवान स्वयं" कहकर लीला-विभोर हो जाते हैं।

लेकिन खूबी यह है कि हमारे संतों की पाचन शक्ति प्रखर ज्ञान के कारण ये सारे भिन्न भिन्न दर्शन उनको विरोधी नहीं मालूम होते, बल्कि इन सबको वे एकमात्र हजम कर लेते हैं। मिसाल के तौर पर, तुलसीदासजी पक्ष तो लेंगे सगुण-साकार का, लेकिन निर्गुण निराकार से पूर्णतितरतर की सब तालिका वे स्वीकार करेंगे। शंकराचार्य अभिमानी बनेंगे निर्गुण निराकार के, लेकिन "नित्य-शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव" के साथ त्रिपुर-सुन्दरी का भी स्तोत्र गा सकेंगे। हां, शायद पूर्णावतार की कल्पना वे नहीं निगल सकेंगे। क्योंकि "अज्ञेन कृष्ण किल सब-भूव" ऐसा वे लिख चुके हैं। फिर भी भाविका के साथ पूर्णावतार के भजन में भी वे लीन हो जायें, तो आश्चर्य की बात नहीं क्योंकि जब वे सारा ही मिथ्या समझते थे, तो किसी चीज के लिए क्यों हिचकिचाना ?

कुछ विचारक और उपासक ऐसे जरूर होते हैं जो अपना-अपना आग्रह रखते हैं, जैसे मोहम्मद पैगम्बर सगुण निराकार माननेवाले थे। यद्यपि निर्गुण निराकार का वे निषेध नहीं करेंगे, किंतु सगुण-साकार का अवश्य निषेध करते हुए वे दीख पड़ते हैं। वैसे कुरान में वज्हुल्लाह याने "अल्लाह का चेहरा" ये शब्द कई जगह आये हैं, जिनके आधार पर मूर्तिपूजा की अनिवार्यता का तो अभाव नहीं होगा, लेकिन सगुण-साकार का प्रवेश हो जायगा। कुरान का कुल मिलाकर भाव मैं यही समझता हूँ कि मोहम्मद के सामने विकृत मूर्तिपूजा खड़ी है, जिसके साथ अनेक भ्रष्टाचार जुड़ गये हैं, उस सबका वे निषेध करना चाहते हैं। आखिर, ईश्वर का शब्द वे सुनते थे, 'वही' उन्हें प्राप्त होती थी, उससे वे भावित होते थे, उसका उनके शरीर पर असर होता था, कुछ रूह, कुछ प्रभा, कुछ आभास, जो भी कहो, उनके अंतर-मानस में प्रगट होती थी। यह सब देहधारी मनुष्य कैसे टालेगा। सारांश जो शब्दातीत वस्तु है, उसको शब्द में प्रगट करने के प्रयत्न में ही दोष आजाता है। विष्णुसहस्रनाम में तो भगवान् के दो नाम ही यों दिये हैं, "शब्दातिग शब्दसह" शब्द से परे, किन्तु शब्द का सहन करनेवाला।

इसलिए अचित्य विषय में सर्व आग्रह छोड़कर नम्र हो जाना यही सर्वोत्तम लक्षण है।

(उ) संतों की जीवन-योजना में आखिरी बात है सत्संग की चाह। सामान्य व्यावहारिक विद्या की प्राप्ति के लिए भी जब उस विद्या के जानकार का सहारा लेना पड़ता है, तब आध्यात्मिक साधन में प्रवेश की इच्छा रखनेवाले को अनुभवी सत्पुरुषों की संगति ढूंढनी ही पड़ेगी। यह बात सहज समझ में आती है। इसीलिए शंकराचार्य ने मनुष्यत्व और मुमुक्षुत्व के बाद महापुरुष संश्रय को तीसरा महद्‌भाग्य माना है। आत्मा स्वयं सिद्ध और अपना निजरूप ही होने के कारण हम ऐसा आग्रही विचार तो नहीं रख सकते कि सूर्योदय के पहले उषोदय के समान आत्मदर्शन के पहले महापुरुष-संश्रय या स्थूल सत्संगति आवश्यक है। और हम यह भी नहीं कह सकते कि सत्संग के लोभ में, ऐसे किसी वेषधारी को सत्पुरुष या सद्गुरु के स्थान पर बिठादें। लेकिन यह जरूर मानना पड़ेगा कि जहां सद्विचार के श्रवण मनन का मौका मिलेगा वहां पहुँचने की या वैसी संगति ढूंढने की अभिलाषा साधक में होनी चाहिए। मैं तो कहूँगा कि सत्संगति की अभिलाषा सत्संगति से भी बढ़कर है। या, अधिक समीचीन भाषा में यों कह सकते हैं कि सत्संगति की अभिलाषा ही सच्ची सत्संगति है।

यह है संत-सुधा-सार, जिसका संग्रह एक संस्कृत श्लोक बनाकर मैंने इस तरह रख दिया है

"स्वकर्मणि-समाधान, परदु:ख निवारणम्।
आत्मनिष्ठा, सतां संग, चारित्र्य-परिपालनम्॥"

●

भूल सुधार

मई अंक में प्रकाशित कहानी 'अपराजित दान' के लेखक का नाम 'प्रेमस्वरूप श्रीवास्तव' है।

कसौटी पर

संतति निरोध—कब, क्यों और कैसे ? लेखक—डा राजेन्द्रनाथ गुप्ता, प्रकाशक—स्वास्थ्य संदेश प्रकाशन, कालपी। पृष्ठ १५२, मूल्य २)।

जैसा कि नाम से स्पष्ट है, इस पुस्तक में संतति-निरोध किस अवस्था मे होना चाहिए, क्यो होना चाहिए और किस प्रकार किया जा सकता है, इस सबका वर्णन किया है। भारत की जनसख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है और राष्ट्र के सामने सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि उसे कैसे रोका जाय। सर्वोत्तम उपाय तो यह है कि मनुष्य सयम मे रहे, लेकिन यह काम आसान नहीं है। इसीलिए कृत्रिम उपायो का प्रचलन प्रारभ हो गया है। इस पुस्तक में विभिन्न प्रकार के ऐसे उपायो की चर्चा की गई है और उनके प्रयोग की विधि बताई गई है। पुस्तक पढ़ने से शरीर की जानकारी भी हो जाती है।

कृत्रिम उपायो द्वारा सतान रोकने के जिज्ञासी पाठको के लिए यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी।

ए ग्लिम्प्स इनटू अमेरिकन लाइफ : लेखक डा. सरयू प्रसाद चौबे। पुस्तक मिलने का पता, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, हास्पीटल रोड, आगरा। पृष्ठ १२०, मूल्य २)।

अग्रेजी की इस पुस्तक मे अमरीका, उसके रहनसहन, सामाजिक जीवन आदि के विषय में लेखक ने अपने रोचक अनुभव दिये है। अमरीकी विचार-धारा, बुनियादी सिद्धान्त इत्यादि पर भी सक्षेप मे प्रकाश डाला गया है। अमरीका, रूस और चीन का आज हमारे देश मे खुल कर प्रचार हो रहा है। ढेरो साहित्य कौडियो के मोल बाजार मे आ रहा है। उस सबके पीछे एक ही दृष्टि है : प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रचार। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक का ध्येय यद्यपि उस तरह का प्रचार करना नही है, फिर भी उस दोष से पुस्तक मुक्त नही है। वह अमरीका के बारे में काफी जानकारी देती है पर तह मे नही जाती ; पर्यटको को भी उससे विशेष प्रेरणा नही मिलती। पुस्तक की छपाई अच्छी है।

—सव्यसाची

पानी बोला ! लेखक—रामचन्द्र तिवारी, सिद्धि तिवारी। प्रकाशक—आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, मूल्य २।)।

जीवन का अर्थ जिन्दगी है—जिन्दगी यानी प्राण, चेतना, गति और सृष्टि और जीवन का पर्याय जल भी है। जल अर्थात् जीवन और जीवन अर्थात जल। भारत के प्राचीन सृष्टि-विज्ञान में जल को एक आधारभूत तत्व माना गया है—पंचभूतो में से वह एक है। आज भी इस युग मे जल-शक्ति की महिमा अखण्ड है। मनुष्य के जीवन से लेकर बडे-से-बड़े कल कारखाने तक इसकी शक्ति से संचालित हैं—चाहे वाष्प के द्वारा यह शक्ति प्रकट होती हो या विद्युत के द्वारा। इसलिए अनेक वैज्ञानिक इस औद्योगिक-युग को प्रारम्भ में जल-युग के नाम से भी पुकारते रहे हैं।

इतने महिमाशाली पानी की कहानी को 'पानी-बोला' में बड़े मनोरजक ढंग से कहा गया है। पानी की कहानी—'एकोहं बहुस्याम्' की कहानी है। बर्फ, वाष्प, ओस, कोहरा, पाला, ओला और विद्युत आदि अनेक रूपो को एक जल ही धारण करता है। जल के इन तमाम रूप-परिवर्तनो को कहानी के रूप में लिखकर विज्ञान के एक आधार तत्व को जन-साधारण के लिए सुबोध और सुग्राह्य बनाने का यह सराहनीय प्रयत्न किया गया है।

पुस्तक में पानी के विभिन्न रूपो के परिवर्तनो को १३ कथाओ में चित्रित किया गया है। अन्त में 'पानी की बात' अध्याय में जल-शक्ति को समझाया गया है—यह कहानी के रूप में नहो, लघु निबन्ध है। रमा, दिनेश, और पानी के एक प्रतिनिधि बूंद या बर्फ की आपसी बात-चीत में इस वैज्ञानिक ज्ञान को कथा का रूप देने का प्रयत्न किया गया है। लेखको का उद्देश्य ज्ञान को मनोरंजक बनाकर अधिक-से-अधिक सहज और प्रेषणीय बनाने का है, जिससे ज्ञान वैज्ञानिकता के शास्त्रीय बोझ से मुक्त हो कर सर्व-सुलभ बन सके। इस प्रयत्न में

वे सफल हुए हैं। कहीं कहीं मनोरंजकता और कथा-रूप को देने में इतनी कल्पना का भी काम लिया गया है कि उद्दिष्ट ज्ञान की व्याख्या अलग से अपेक्षित सी लगती है। पारिभाषिक शब्दों को भी बोल चाल के ऐसे शब्दों का जामा पहनाया गया है कि कहीं तो वे उस रूप में अपने वैज्ञानिक अर्थ का पूर्ण प्रतिनिधित्व कर जाते हैं और कहीं विशेष ध्यान देने की अपेक्षा रखते हैं। जैसे बूंद अपने पत्तों के बारे में प्रायः प्रत्येक स्थान पर थैले शब्द का प्रयोग करती है—थैला शब्द वहां किस अर्थ को ध्वनित करता है—इसका अर्थ कहीं-कहीं साधारण पाठक के लिए अस्पष्ट-सा रह सकता है। फिर भी मद मिनावर प्रत्येक कथा जल के एक वैज्ञानिक रूप-परिवर्तन का पूर्ण परिज्ञान कराने में समर्थ है। यदि जल से विद्युत बनाने की कल का ज्ञान भी एक कथा में बद्ध कर दिया जाता तो और अच्छा रहता। अन्त में पारिभाषिक शब्दों की एक संक्षिप्त सूची देनी चाहिए थी। साथ में उनकी संक्षिप्त व्याख्या देने से सुविधानुसार पाठक कथा-रूप के वैज्ञानिक अर्थ को समझने में सहायता पा सकता था।

बाल-शिक्षा और विज्ञान को सामान्य ज्ञान के योग्य बनाने की दृष्टि से यह हिन्दी में एक मौलिक प्रयास है। पुस्तक उपयोगी है। विज्ञान के बाल या सामान्य शिक्षा के पाठ्य क्रम में इस को अवश्य स्थान मिलना चाहिए।

—गोपालकृष्ण कौल

अलका'—लेखिका : शान्ति सिहल। प्रकाशक—भारती साहित्य सदन, ३०/९० कनाट सरकस, नई दिल्ली। मूल्य २।।।) पृष्ठ संख्या ८८।

प्रस्तुत पुस्तक शान्ति सिहल की चालीस कविताओं का संग्रह है। इधर एक दो वर्षों के अन्तर्गत जो अनेक कविता-संग्रह हिन्दी साहित्य में आए हैं, उनमें अलका का अपना विशेष स्थान है। कविताएं भावपूर्ण और सुन्दर हैं। जीवन की अनुभूतियों से ओत प्रोत इन गीतों में कल्पना का भी मधुर मिश्रण है।

सभी गीत मुखर हैं, सजीव हैं। ऐसा कोई भी गीत नहीं है जिसकी एक पंक्ति शुरू करने के बाद उसे पूरा पढ़ने की इच्छा न हो। सभी गीत हृदय की गहराई से उभर कर आए हैं, अपने प्रिय के प्रति मधुर शब्दों में उलाहना और प्यार लिए।

जब तुम्हीं अनजान बन कर रह गए,
विश्व की पहिचान ले कर क्या करूं

* * *

जब न तुमसे स्नेह के दो कण मिले
व्यथा सहने के लिए दो क्षण मिले
जब तुम्हीं ने की सतत अवहेलना—
विश्व का सम्मान ले कर क्या करूं।

अपनी एक कविता में कवियित्री मानव का चित्रण करते हुए लिखती हैं चित्रण कितना यथार्थ बन पाया है—

मैं सुख-दुख से परिचित मानव

* * *

मेरे ही विश्वास जिन्होंने
बांध रखा मुझको बन्धन में,
मेरे ही विश्वास जिन्होंने
साथ दिया मेरा जीवन में,
मैं सुख दुख से निर्मित मानव
मन्दिर का भगवान नहीं हूं,
सुख से भी है मेरा परिचय
दुख से भी अनजान नहीं हूं।

भाषा सरल और गतिवान है। 'अलका' शान्ति सिहल के उज्ज्वल भविष्य की गवाही दे रही है। पुस्तक की छपाई और गेटअप बढ़िया है। —अश्वत्थामा'

हरिजन, लेखक—श्री अमृतधर नल्ले, प्रकाशक—अमृतधुर कम्पनी, कनाट सरकस, नई दिल्ली; पृष्ठ संख्या ९०, मूल्य एक रुपया बारह आना।

पुस्तक एक उपन्यास है जो बापू और बाबा (डा० अम्बेडकर) के प्रभाव के नीचे लिखा गया है। उद्देश्य है हरिजन-सेवा। उपन्यास के तीन विभाग हैं पृष्ठ १ से १४ तक, ३५ से ३३ तक, ३४ से ९० तक। प्रथम भाग में वर्ण व्यवस्था के आरम्भ की कल्पना की गई है। द्वितीय में दलितों पर सामाजिक अत्याचार की झांकी है और तीसरा भाग उपन्यास की कथा है। उपन्यास में विचार और कला की प्रौढ़ता का अभाव है। कथा भाग पत्रिकाओं में प्रकाशित होनेवाली साधारण कहानियों से ऊंचा नहीं उठ पाया है। —सिद्धि तिवारी

भगवान महावीर और उनका साधना मार्ग—लेखक—रिषभदास रांका, प्रकाशक जमनालाल जैन, मंत्री—रोहित जैन सेवा ट्रस्ट, वर्धा। पृष्ठ ४८, मूल्य ।)।

इस छोटी सी पुस्तक में भगवान महावीर के जीवन-परिचय, दुर्धर्ष साधना तथा सिद्धान्तों का बड़े सरल ढंग से उल्लेख किया गया है। आज जब कि चारों ओर हिंसा का ताण्डव नृत्य हो रहा है और पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष, छीन-झपट और होड़ में दुनिया त्रस्त हो रही है, ऐसी पुस्तक का प्रकाशन आशा की एक किरण के समान है। ऐसा साहित्य अधिक-से-अधिक परिमाण में और सस्ते-से सस्ते मूल्य में प्रकाशित होना चाहिए।

पुस्तक अच्छी है और उसकी खूबी यह है कि वह भौतिकता की ओर से हमारी निगाह को हटाकर अन्तर्मुखी होने की प्रेरणा देती है।

भगवान महावीर के सिद्धान्तों को लोग पढ़ेंगे लेकिन कम। यदि उनके जीवन की छोटी-छोटी शिक्षाप्रद घटनाओं का, कहानी के रूप में, संग्रह निकाला जाय तो उसकी लोकप्रियता अधिक होगी। क्या हम आशा करें कि मधुकर रांकाजी इस माला में आगे इसका ध्यान रक्खेंगे ?

संघी मोतीलालजी मास्टर : सम्पादक—जवाहिरलाल जैन, प्रकाशक—श्री सन्मति पुस्तकालय, जयपुर, पृष्ठ १५२, मूल्य १) ।

इस पुस्तक में जयपुर के स्व. संघी मोतीलालजी मास्टर और उनकी सेवाओं का उल्लेख है और अनेक गण्यमान्य व्यक्तियों द्वारा अर्पित की गई श्रद्धांजलियां। मोतीलालजी का नाम अल्पविज्ञापित है; लेकिन जो उन्हें जानते थे, वे इस बात के साक्षी हैं कि उनका काम कितना ठोस और उनकी सेवाएं कितनी महान् थीं। राजस्थान के एक छोटे-से कस्बे में पैदा हुए, इंटर तक पढ़े, अध्यापन-कार्य किया और जब ६१ वर्ष की अवस्था में अवकाश ग्रहण किया तो २० रुपये मासिक की सरकारी पेंशन मिली। लेकिन वे अपने इस अल्प वेतन में से काफी अंश दूसरों की सेवा में खर्च करते रहे। जाने कितने साधनहीन छात्रों की फीस उन्होंने जमा कराई और पुस्तकों आदि के रूप में जानें कितनों को सहायता दी। ज्ञान-प्रसार के लिए उन्होंने जयपुर में 'श्री सन्मति पुस्तकालय' की स्थापना की, जिसमें आज लगभग अठारह हजार पुस्तकें हैं। उनका जीवन सादा और विचार ऊंचे थे। उनकी समूची जिन्दगी त्याग और सेवा का अपूर्व दृष्टांत है। इस निस्स्वार्थ सेवा द्वारा जहां उन्होंने अपने को कृतार्थ किया, वहां हजारों लाखों को अनजाने अपना ऋणी बना दिया। दर्जनों व्यक्तियों ने इस पुस्तक में अपने 'मास्टर साहब' का गहरी आत्मीयता और असीम श्रद्धा से स्मरण किया है।

हमारी दृष्टि में यह पुस्तक एक अमूल्य निधि है। इसमें कोरे साहित्य का नहीं, मानव का स्वर है, उस मानव का, जो साहित्य से भी कहीं ऊंचा है।

—सव्यसाची

गीता, कर्मयोग और सत्याग्रह : लेखक विभिन्न, प्रकाशक—'नवभारत' प्रकाशन, २९२ शनिवार, पूना-२, पृष्ठ लगभग १५०, मूल्य १) ।

प्रस्तुत पुस्तक में गीता के भाष्यों को लेकर सर्वश्री शंकरराव देव, मशरुवाला, मा. अ. भागवत, जावडेकर तथा लक्ष्मण शास्त्री जोशी के लेख संग्रहीत हैं। मूल पुस्तक मराठी में है। उसीका अनुवाद भाई श्रीपाद जोशी ने प्रस्तुत किया है। अनुवाद विषय के अनुरूप है और कहीं भी विषय को अरोचक नहीं बनाता।

जहां तक मूल विषय का सम्बन्ध है, यूं तो गीता पर अरविन्दादि अनेक मनीषियों के भाष्यों की चर्चा की गई है पर मुख्य रूप से तिलक के कर्मयोग और गान्धी के अनासक्तियोग की इसमें विवेचना है। कहना नहीं होगा कि विवेचन में अन्ध-श्रद्धा नहीं है विवेक है और निष्पक्ष विवेक है। सब मिला कर इसमें गान्धी-विचार-दर्शन का पक्ष प्रबल है। वह उचित है या नहीं है इस विवाद में पड़े बिना हम यह निःसंकोच कह सकते हैं कि यह निर्णय थोपा हुआ सा नहीं लगता बल्कि तात्विक विवेचन में से सार रूप होकर निकला है। इस दृष्टि से इस पुस्तक का हम स्वागत करते हैं। मूल्य काफी कम है। पुस्तक पढ़ी जानी चाहिए।

—'सुशील'

"क्या व कैसे ?

श्रमदान : एक अभिनंदनीय कदम

आज का हमारा समाज दो पृथक् वर्गों में विभाजित हो गया है। एक वर्ग है बुद्धिजीवियों का, जो केवल बुद्धि के सहारे काम करता है, और शरीर-श्रम से न केवल बचता है, अपितु उसे हेय दृष्टि से देखता है। 'प्रत्येक कार्य महान् है' बाइबिल की इस उक्ति को वह पुस्तकों में पढ़ता है, पर जीवन में उसपर आचरण करने का उसके पास अवकाश नहीं है। दूसरा वर्ग है उन लोगों का जो शरीर से परिश्रम करते हैं, लेकिन जिनकी बौद्धिक क्षमता नहीं के बराबर है। इस प्रकार के दो अलग-अलग वर्ग हैं और उनके बीच भारी फासला है।

दुर्भाग्य से हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली, जो पुरानी लकीर की फकीर बनी हुई है, इस भेद को और अधिक बढ़ावा देती है। वह युवकों को बौद्धिक (वास्तव में वह बौद्धिक भी नहीं है, क्योंकि उसमें बुद्धि का भी विकास नहीं हो पाता है) शिक्षा तो देती है, लेकिन अन्य दृष्टियों से उन्हें पंगु बना देती है। उनके हाथ-पैर मानो उत्पादक-श्रम की शक्ति क्षीण हो जाती है और वे ऊंची-से-ऊंची डिगरी पाकर भी अपने को असहाय पाते हैं।

दूसरी ओर अपना खून-पसीना एक करके भी श्रमिक उस ज्ञान से वंचित रह जाते हैं, जिसके बिना जीवन पूर्ण नहीं बनता।

इन दोनों वर्गों का विकास अत्यन्त एकांगी है। जीवन की पूर्णता, उसकी सार्थकता सब अंगों के संतुलित विकास में है। गामा या किंगकांग के भारी-भरकम शरीर को देखकर हम प्रसन्न हो सकते हैं, लेकिन उनके जीवन को पूर्ण नहीं कह सकते। इसी तरह यदि किसी बुद्धिशाली व्यक्ति का शरीर क्षीण है तो उसकी कुशाग्र बुद्धि की दाद हम भले ही दे दें, लेकिन उसके शरीर को देखकर आनन्दित नहीं हो सकते। दोनों ही वर्गों का ध्यान इस तथ्य की ओर नहीं जाता कि शरीर का यदि कोई भी अंग कमजोर रहेगा तो उसका प्रभाव समूचे शरीर पर पड़ेगा। शरीर के पूर्ण स्वस्थ होने के लिए शारीरिक विकास जितना आवश्यक है, उतना ही बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास भी जरूरी है।

एकांगी विकास की दूषित मनोवृत्ति ने हमारे वैयक्तिक, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन को निःसन्देह बड़ी हानि पहुंचाई है। उसने ऊंच-नीच की भावना को जन्म और पोषण दिया है, साथ ही व्यक्ति की सब वृत्तियों को विकसित होने से वंचित कर दिया है।

देश के स्वतंत्र होते ही सबसे पहला काम यह होना चाहिए था कि नई पीढ़ी को नये ढंग से विकास करने का मौका मिलता, लेकिन हमें खेद के साथ कहना पड़ता है कि वैसा नहीं हुआ। शायद पुराने बंधन कुछ इतने प्रबल थे कि उनको तोड़ डालना आसान न था।

लेकिन हर्ष की बात है कि अब हमारे शासकों और शिक्षा-शास्त्रियों का ध्यान कुछ-कुछ इधर गया है। कुछ समय पूर्व उत्तर-प्रदेश के श्रम-मंत्री (भू. पू. शिक्षा-मंत्री) श्री सम्पूर्णानंदजी ने बंदियों से शरीर-श्रम के काम लेकर एक महत्वपूर्ण कदम उठाया था। उसका आश्चर्यजनक परिणाम निकला। काम हुआ, उसका तो मूल्य है ही, साथ ही एक नई 'हवा' पैदा हो गई। आए दिन अब समाचार मिल रहे हैं कि अमुक शिक्षा-संस्था के विद्यार्थी और अध्यापक अथवा अमुक गांव के लोग अमुक स्थान पर मेलों में काम कर रहे हैं, सड़कें बनाने में योग दे रहे हैं, कुए खुदवाने में हाथ बटा रहे हैं, आदि-आदि। इससे तीन लाभ होते हैं। पहला तो यह कि बुद्धिजीवियों और श्रमिकों के बीच का फासला दूर होता है। दूसरे पारस्परिक सहयोग से देश की सम्पत्ति बढ़ती है। तीसरा और सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि शरीर-श्रम करने से दिमाग की अनेक गुत्थियां अपने आप सुलझ जाती हैं।

शरीर-श्रम के इस नये कदम का हम स्वागत करते हैं। और चाहते हैं कि यह लहर दो-चार स्थानों तक ही सीमित न रहे; बल्कि सारे देश में फैले।

पाठकों को ध्यान होगा कि विनोबाजी ने भी अपने भूदान यज्ञ में श्रमदान को स्थान दिया है। हमें स्मरण है कि सद्रौली-कालेज के छात्रों और अध्यापकों ने जब विनोबाजी से कहा था कि हमारे पास भूमि तो है नहीं, बताइये आपके इस यज्ञ में हम क्या मदद दें, तो विनोबाजी ने तत्काल श्रमदान की बात उनके सामने रख दी थी। और उन लोगों ने कुछ घंटे सहर्ष जमीन तोड़ने या अन्य रूप से खेत में मदद देने के लिए अर्पित कर दिये थे।

हम नहीं चाहते कि यह काम फैशन के रूप में हो। हम यह भी नहीं चाहते कि यह काम नाम के लिए किया जाय। हम चाहते हैं कि लोगों में श्रम के लिए वास्तविक भावना उत्पन्न हो, श्रम-प्रतिष्ठा पैदा हो। तभी कुछ ठोस काम होगा।

मीराबहन की आपत्तियाँ

पिछले दिनों अपने एक लेख में गांधीजी की अनुयायिनी और रचनात्मक कार्यों में निष्ठापूर्वक योग देने वाली मीराबहन ने विनोबाजी के भू-दान-यज्ञ के संबंध में कुछ आपत्तियाँ उठाई हैं। उनकी पहली आपत्ति यह है कि विनोबाजी ने अपने इस यज्ञ में वृक्षों और पशुओं को सम्मिलित नहीं किया है। उनका कहना है कि मनुष्य ने पहले ही से बहुत अधिक भूमि पर अपना अधिकार कर लिया है। भूमि की कमी के कारण वृक्षों और पशुओं को बड़ी क्षति पहुँची है। जो भूमि पड़ी हुई है, यदि उसको भी जोत-बो डाला गया तो पशुओं और वृक्षों का जीवन और अधिक संकट में पड़ जायगा।

दूसरी शिकायत यह है कि जनता को प्राप्त भूमि के पूर्ण विवरण नहीं दिये जाते।

तीसरी यह कि गरीबों से भी भूमि लेने का परिणाम यह होगा कि जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े हो जायेंगे और उनपर खेती करना आर्थिक दृष्टि से लाभदायक नहीं होगा।

अंतिम बात उन्होंने यह कही है कि छोटे-छोटे दानियों से दान लेकर उन्हें युद्ध करने की बात भ्रामक है। वह तो यहां तक कह गई हैं कि "मैं यह महसूस किये बिना नहीं रह सकती कि निर्धन ग्रामवासियों की धार्मिक और कर्तव्यशील भावनाओं का अनुचित लाभ उठाया जा रहा है।"

मीराबहन और उनके काम के प्रति हमारे मन में बड़ा मान है, लेकिन उनकी इन आपत्तियों को पढ़ कर हमें ऐसा लगा मानो वह विनोबाजी के भूदान-यज्ञ के सम्पर्क में नहीं हैं। विनोबाजी ने कभी नहीं कहा कि वह वृक्षों को कटवाकर या चरागाहों को नष्ट करा कर भूमि को खेती के योग्य बना देंगे। बल्कि उन्होंने तो कई बार कहा है कि भूमि के वितरण में वह चरागाहों का पूरा-पूरा ध्यान रक्खेंगे और रख रहे हैं।

उनकी दूसरी आपत्ति कि जनता को प्राप्त भूमि के पूर्ण विवरण नहीं दिये जाते; निराधार है। विनोबाजी जैसा सजग और सावधान व्यक्ति इस बारे में चूक कैसे कर सकता है।

तीसरी आपत्ति है भूमि के छोटे-छोटे टुकड़े हो जाने के संबंध में। इस बारे में पहले ही बहुत कुछ कहा जा चुका है। जापान में भूमि का आकार २ ५ एकड़ है; लेकिन इन वर्षों में वहां की पैदावार में भारी वृद्धि हुई है।

मीराबहन की अंतिम बात से हमें कुछ आश्चर्य हुआ है, कुछ दुःख भी। उसका उत्तर तो स्वयं विनोबाजी या अन्य अधिकारी व्यक्ति ही देंगे; लेकिन इतना निवेदन हम अवश्य कर देना चाहते हैं कि मीराबहन का यह कथन इस बात का द्योतक है कि वे गांधीजी की अनेक प्रवृत्तियों को भूल गई हैं। कौन नहीं जानता कि देश को जाग्रत करने के लिए गांधीजी ने छोटे-से-छोटे व्यक्ति का भी उपयोग किया था, आर्थिक दृष्टि से भी। क्या मीरा बहन भूल गईं कि बापू की झोली में उन करोड़ों व्यक्तियों ने भी पैसे डाले थे, जिनको खाने के लाले पड़े थे, विनोबाजी ने 'यज्ञ' शब्द का प्रयोग इसीलिए किया है कि उसमें छोटे-बड़े सब भाग ले सकें।

हम मीराबहन से अनुरोध करेंगे कि वे भूदान-आंदोलन का, विशेषकर विनोबाजी के तत्संबंधी भाषणों का भली प्रकार अध्ययन करें और तब कुछ कहें तो अच्छा होगा।

क्या व कैसे ?

श्रमदान : एक अभिनंदनीय कदम

आज का हमारा समाज दो पृथक् वर्गों म विभाजित हो गया है। एक वर्ग है बुद्धिजीवियो का, जो केवल बुद्धि के सहारे काम करता है, और शरीर श्रम से न केवल बचता है, अपितु उसे हेय दृष्टि से देखता है। 'प्रत्येक कार्य महान् है' बाइबिल की इस उक्ति को यह पुस्तको में पढता है, पर जीवन में उसपर आचरण करने का जैसे उसके पास अवकाश नही है। दूसरा वर्ग है उन लोगो का जो शरीर से परिश्रम करते हैं, लेकिन जिनकी बौद्धिक क्षमता नही के बराबर है। इस प्रकार के दो अलग-अलग वर्ग हैं और उनके बीच भारी फासला है।

दुर्भाग्य स हमारी वर्तमान शिक्षा-प्रणाली, जो पुरानी लकीर की फकीर बनी हुई है, इस भेद को और अधिक बढावा देती है। वह युवको को बौद्धिक (वास्तव मे वह बौद्धिक भी नहीं है, क्योंकि उससे बुद्धि का भी विकास नही हो पाता है) शिक्षा तो देती है, लेकिन अन्य दृष्टियो से उन्हें पगु बना देती है। उनके हाथ-पैर मानो उत्पादक-श्रम की शक्ति क्षीण हो जाती है और वे ऊची-से-ऊची डिगरी पाकर भी अपने को असहाय पाते हैं।

दूसरी ओर अपना खून-पसीना एक करके भी श्रमिक उस ज्ञान से वचित रह जाते है, जिसके बिना जीवन पूर्ण नही बनता।

इन दोनो वर्गों का विकास अत्यन्त एकागी है। जीवन की पूर्णता, उसकी सार्थकता सब अगो के सतुलित विकास में है। गामा या किंगकोग के भारी भरकम शरीर को देखकर हम प्रसन्न हो सकते हैं, लेकिन उनके जीवन को पूर्ण नही कह सकते। इसी तरह यदि किसी बुद्धिशाली व्यक्ति का शरीर क्षीण है तो उसकी कुशाग्र बुद्धि की दाद हम भले ही दे दें, लेकिन उसके शरीर को देखकर आनन्दित नहीं हो सकते। दोनों ही वर्गों का ध्यान इस तथ्य की ओर नही जाता कि शरीर का यदि कोई भी अग कमजोर रहेगा तो उसका प्रभाव समूचे शरीर पर पडेगा। शरीर के पूर्ण स्वतन्त्र होने के लिए शारीरिक विकास जितना आवश्यक है, उतना ही बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास भी जरूरी है।

एकागी विकास की दूषित मनोवृत्ति ने हमारे वैयक्तिक, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन को नि सन्देह बडी हानि पहुचाई है। उसने ऊच-नीच की भावना को जन्म और पोषण दिया है, साथ ही व्यक्ति की सब वृत्तियो को विकसित होने से वचित कर दिया है।

देश के स्वतत्र होने ही सबसे पहला काम यह होना चाहिए था कि नई पीढी को नये ढग से विकास करने का मौका मिलता, लेकिन हमे खेद के साथ कहना पडता है कि वैसा नही हुआ। शायद पुराने बधन कुछ इतने प्रबल थ कि उनको तोड डालना आसान न था।

लेकिन हर्ष की बात है कि अब हमारे शासको और शिक्षा-शास्त्रियो का ध्यान कुछ कुछ इधर गया है। कुछ समय पूर्व उत्तर-प्रदेश के श्रम-मन्त्री (भू पू शिक्षा-मन्त्री) श्री सम्पूर्णानदजी ने बदिया से शरीर-श्रम के काम लेकर एक महत्वपूर्ण कदम उठाया था। उसका आश्चर्यजनक परिणाम निकला। काम हुआ, उसका तो मूल्य है ही, साथ ही एक नई 'हवा' पैदा हो गई। आए दिन अब समाचार मिल रहे है कि अमुक शिक्षा-सस्था के विद्यार्थी *और अध्यापक अथवा अमुक सघ के लोग* अमुक स्थान पर खेतो में काम कर रहे हैं, सडकें बनाने म योग दे रहे हैं कुए खुदवाने में हाथ बटा रहे हैं, आदि-आदि। इससे तीन लाभ होते हैं। पहला तो यह कि बुद्धिजीवियो और श्रमिको के बीच का फासला दूर होता है। दूसरे पारस्परिक सहयोग से देश की सम्पत्ति बढती है। तीसरा और सबसे बडा लाभ यह होता है कि शरीर-श्रम करने से दिमाग की अनेक गुत्थिया अपने आप खुल जाती हैं।

शरीर-श्रम के इस नये कदम का हम स्वागत करते हैं। और चाहते हैं कि यह लहर दो-चार स्थानों तक ही सीमित न रहे; *बल्कि सारे देश में फैले।*

पाठकों को ध्यान होगा कि विनोबाजी ने भी अपने भूदान यज्ञ में श्रमदान को स्थान दिया है। हमें स्मरण है कि खतौली-कालेज के छात्रों और अध्यापकों ने जब विनोबाजी से कहा था कि हमारे पास भूमि तो है नहीं, बताइये आपके इस यज्ञ में हम क्या मदद दें, तो विनोबाजी ने तत्काल श्रमदान की बात उनके सामने रख दी थी। और उन लोगों ने कुछ घंटे *सहर्ष जमीन तोड़ने या अन्य* रूप से खेत में मदद देने के लिए अर्पित कर दिये थे।

हम नहीं चाहते कि यह काम फैशन के रूप में हो। हम यह भी नहीं चाहते कि यह काम नाम के लिए किया जाय। हम चाहते है कि लोगों में श्रम के लिए वास्तविक भावना उत्पन्न हो, श्रम-प्रतिष्ठा पैदा हो। तभी कुछ ठोस काम होगा।

मीराबहन की आपत्तियाँ

पिछले दिनों अपने एक लेख में गांधीजी की अनुयायिनी और रचनात्मक कार्यों में निष्ठापूर्वक योग देने वाली मीराबहन ने विनोबाजी के भू-दान-यज्ञ के संबंध में कुछ आपत्तियां उठाई हैं। उनकी पहली आपत्ति यह है कि विनोबाजी ने अपने इस यज्ञ में वृक्षों और पशुओं को सम्मिलित नहीं किया है। उनका कहना है कि मनुष्य ने पहले ही से बहुत अधिक भूमि पर अपना अधिकार कर लिया है। भूमि की कमी के कारण वृक्षों और पशुओं को बड़ी क्षति पहुंची है। जो भूमि पड़ी हुई है, यदि उसको भी जोत-बो डाला गया तो पशुओं और वृक्षों का *जीवन और अधिक संकट में पड़ जायगा।*

दूसरी शिकायत यह है कि जनता को प्राप्त भूमि के पूर्ण विवरण नहीं दिये जाते।

तीसरी यह कि गरीबों से भी भूमि लेने का परिणाम यह होगा कि जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े हो जायेंगे और उनपर खेती करना आर्थिक दृष्टि से लाभदायक नहीं होगा।

अंतिम बात उन्होंने यह कही है कि छोटे-छोटे दानियों से दान लेकर उन्हें मुक्त करने की बात भ्रामक है। वह तो यहां तक कह गई हैं कि "मैं यह महसूस किये बिना *नहीं रह सकती कि विनम्र ग्रामवासियों की धार्मिक और* कर्त्तव्यशील भावनाओं का अनुचित लाभ उठाया जा रहा है।"

मीराबहन और उनके काम के प्रति हमारे मन में बड़ा मान है, लेकिन उनकी इन आपत्तियों को पढ़ कर हमें ऐसा लगा मानों वह विनोबाजी के भूदान-यज्ञ के सम्पर्क में नहीं हैं। विनोबाजी ने कभी नहीं कहा कि वह *वृक्षों को कटवाकर या चरागाहों को नष्ट करा कर भूमि* को खेती के योग्य बना देंगे। बल्कि उन्होंने तो कई बार कहा है कि भूमि के वितरण में वह चरागाहों का पूरा-पूरा ध्यान रक्खेंगे और रख रहे हैं।

उनकी दूसरी आपत्ति कि जनता को प्राप्त भूमि के पूर्ण विवरण *नहीं दिये जाते;* निराधार है। विनोबाजी जैसा सजग और सावधान व्यक्ति इस बारे में चूक कैसे कर सकता है।

तीसरी आपत्ति है भूमि के छोटे-छोटे टुकड़े हो जाने के संबंध में। इस बारे में पहले ही बहुत कुछ कहा जा चुका है। जापान में भूमि का आकार २·५ एकड़ है, लेकिन इन वर्षों में वहां की पैदावार में भारी वृद्धि हुई है।

मीराबहन की अंतिम बात से हमें कुछ आश्चर्य हुआ है, कुछ दुःख भी। उसका उत्तर तो स्वयं विनोबाजी या अन्य अधिकारी व्यक्ति ही देंगे, लेकिन इतना निवेदन हम अवश्य कर देना चाहते हैं कि मीराबहन का यह कथन इस बात का द्योतक है कि वे गांधीजी की अनेक प्रवृत्तियों को भूल गई हैं। कौन नहीं जानता कि देश को जाग्रत करने के लिए गांधीजी ने छोटे-से-छोटे व्यक्ति का भी उपयोग किया था, आर्थिक दृष्टि से भी। क्या मीरा बहन भूल गईं कि बापू की झोली में उन करोड़ों व्यक्तियों ने भी पैसे डाले थे, जिनको खाने के लाले पड़े थे, विनोबाजी ने 'यज्ञ' शब्द का प्रयोग इसीलिए किया है कि उसमें छोटे-बड़े सब भाग ले सकें।

हम *मीराबहन से अनुरोध करेंगे कि वे भूदान-आंदोलन* का, विशेषकर विनोबाजी के तत्संबंधी भाषणों का भली प्रकार अध्ययन करें और तब कुछ कहें तो अच्छा होगा।

जम्मू-काश्मीर समस्या

हिन्दुस्तान के लिए सबसे बडा सिरदर्द काश्मीर का मसला है। करोडो रुपयो खर्च हो चुके है, हो रहे है और अभी तक निश्चयात्मक रूप से यह नही तय हो पाया है कि काश्मीर का भविष्य क्या होगा। मामला सुरक्षा परिषद् में गया, लम्बी चौडी बहसें हुई, एक के बाद एक रास्ता निकालने वाले आये। इन सब प्रयत्नो के बावजूद काश्मीर की समस्या आज भी ज्यो की त्यो बनी है। आगे क्या होगा, यह कहना बडा कठिन है, लेकिन हमारी निश्चित धारणा है कि इधर कतिपय सघो और समाओ के प्रमुख सहयोग से जो आन्दोलन जम्मू तथा अन्य स्थानो में हो रहा है, उससे काश्मीर की समस्या और भी जटिल होती जा रही है। यह आदोलन कब प्रारभ हुआ, किसने किया, कौन-कौन उसमें सहयोग दे रहे हैं, इसके विवरण में हम नही जाना चाहते, लेकिन इतना निश्चित है कि अशाति उत्पन्न करके हम किसी भी समस्या को निष्पक्ष रूप से नही सुलझा सकते। काश्मीर की बहुसख्यक आबादी पर यदि हमने यह असर डाल दिया कि उनका इस देश में रहना खतरे से खाली नही तो साफ समझ लेना चाहिए कि काश्मीर हिन्दुस्तान में रह कर भी हमारे लिए विशेष लाभदायक नही होगा। हमारी शान और इज्जत इसीमें है कि काश्मीर हिन्दुस्तान के साथ रहे और उल्लासपूर्वक रहे। काश्मीर की समस्या को सुलझाने के लिए जितने शातिपूर्ण प्रयत्न किये जाय, अच्छा है, लेकिन जल्दबाजी में अथवा आवेश में यदि कोई कदम उठाया जायगा तो वह न केवल काश्मीर की समस्या को और जटिल बनाएगा, अपितु देश के लिए भी खतरनाक सिद्ध होगा।

खादी कैसे टिके

पिछले दिनो सरकार ने खादी पर तीन आना रुपये की छूट की सुविधा की थी, जिसकी अवधि ३१ मार्च तक रक्खी थी। वह अवधि अब एक वर्ष के लिए और बढ़ा दी गई है। इससे खादी की खपत में थोडी सुविधा जरूर हो जायगी, लेकिन इससे खादी की समस्या हल होने वाली नही है। हमें पता चला है कि जिस समय छूट की गई थी, उस समय खादी कुछ तेजी से बिकी थी, लेकिन बाद में फिर पूर्ववत् स्थिति उत्पन्न हो गई है और अब खादी की बिक्री मद हो गई है। खादी का प्रचार गाधीजी ने मात्र पोशाक के रूप में नही किया था, बल्कि उसके पीछे एक बडा अर्थशास्त्र था। बिना उस अर्थशास्त्र को समझे हजार प्रयत्न करने पर भी खादी टिक नहीं सकती। इसलिए सबसे बडी आवश्यकता खादी के अर्थशास्त्र को समझने की है। उसमे कुछ आने की छूट से बिक्री में थोडी बहुत मदद मिले तो भले ही मिल सकती है, लेकिन उससे स्थायी परिणाम नही निकलेगा।

सौभाग्य से खादी के महान् उन्नायक महात्मा गाधी, विनोबाजी तथा अन्य व्यक्तियो ने इस विषय में काफी लिखा है। उस साहित्य का अधिक-से-अधिक प्रचार अपेक्षित है। यदि हमारी सरकार खादी की वास्तविक सहायता करना चाहती है तो तभी कर सकती है जब वह खादी के साथ-साथ उसकी विचारधारा को फैलाने की भी सुविधा करे, उस सबध में जितना प्रामाणिक साहित्य उपलब्ध है, वह सस्ते-से-सस्ते मूल्य में पाठको को मिले, यह नितात आवश्यक है। आज हमारी निष्ठा इतनी विचलित हो गई है कि बहुत से आदतन खादी पहननेवालो ने भी खादी का उपयोग करना छोड दिया है। हम कई ऐसे परिवारो को जानते है, जिनमे खादी के अतिरिक्त मिल के कपडे का कभी एक टुकडा भी नही मिल सकता था। उन परिवारो में अब मिल का कपडा निस्सकोच प्रवेश पा रहा है। उनका कहना है कि खादी कैसे पहने, इतनी महगी जो है। उनके इस कथन में सचाई हो सकती है। बेशक खादी आज थोडी महगी हो गई है लेकिन मिल के कपडे से उसका मुकाबला करना भारी भूल है।

हमारी निश्चित धारणा है कि खादी अगर टिकेगी तो तब टिकेगी जब लोग उसकी विचार-धारा और उसके अर्थशास्त्र को समझेगे, उसकी शक्ति को पहचानेंगे और महज राष्ट्रीय वर्दी के रूप में उसे देखना छोड देंगे। इसलिए खादी को टिकाने के लिए उसकी विचार धारा को समझने और समझाने की सबसे अधिक जरूरत है।

बेकारी की समस्या

देश के सामने आज जो मुख्य समस्याएँ है, उनमें एक समस्या बेकारी की है। बडी-बडी योजनाओ और उत्पादन

बढ़ाने के प्रयत्नों के बावजूद बेकारी बराबर बढ़ती जा रही है। आए दिन काम की खोज में लोग भटकते दिखाई देते हैं। और तमाशा यह कि जिन्हें काम की जरूरत नहीं उन्हें काम मिल जाता है और जिन्हें काम की जरूरत है वे यों ही रह जाते हैं। स्पष्ट है कि आज की सरकार जन-शक्ति का उपयोग नहीं कर पा रही है। इसके मूल कारण चार हैं —

१. शिक्षा की अनुपयुक्तता यानी गलत पढ़ाई।
२. सरकारी योजनाओं के प्रति लोगों का अविश्वास या उपेक्षा।
३. ऐसे उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन का अभाव, जिनमें जनशक्ति का अधिक-से-अधिक उपयोग हो।
४. लोगों में आत्म-विश्वास की कमी।

इन सब कारणों ने मिलकर देश में बड़ी भयंकर स्थिति पैदा कर दी है। हमारे पास अपार जनशक्ति है लेकिन उसका उपयोग नहीं हो रहा है। नतीजा यह है कि वह शक्ति या तो नष्ट हो रही है, या काम के अभाव में गलत रास्ते पर जा रही है और इस प्रकार देश को शक्तिशाली बनाने के बजाय उसे कमजोर कर रही है।

हमें पता चला है कि विनोबाजी ने प्लानिंग कमीशन के आगे जो शर्तें रक्खी थीं, उनमें एक शर्त यह भी थी कि देश में कोई भी आदमी बेकाम न रहे। बड़ी-बड़ी योजनाएँ चल रही हैं। लेकिन कितने दुर्भाग्य की बात है कि देश की जनशक्ति का बहुत बड़ा भाग बेकार पड़ा हुआ है।

इसमें किसका दोष अधिक है, किसका कम, इसके विवेचन में हमें नहीं पड़ना है, लेकिन इतना हम अवश्य कहेंगे कि इसके लिए सरकार और जनता, दोनों समान रूप से दोषी हैं। सरकार ने जब शासन-सूत्र अपने हाथ में लिया है, उसका कर्तव्य हो जाता है कि वह प्रत्येक व्यक्ति को काम दे। एक भी व्यक्ति के बेकार रहने का अर्थ होता है उस अंश में देश की हानि। जनता का दोष यह है कि वह सरकार के भरोसे हाथ पर हाथ रक्खे क्यों बैठी रहे? सैकड़ों उत्पादक काम हो सकते हैं, और हैं, जिनमें योग दिया जा सकता है। यह ठीक है कि हमारा देश बहुत बड़ा है और करोड़ों व्यक्तियों को काम देना आसान नहीं है, लेकिन यह भी सत्य है कि देश के बड़े होने के कारण काम की गुंजाइश भी बहुत अधिक है।

सुनते हैं, नव चीन में बेकारी की समस्या को बड़े अच्छे ढंग से सुलझाया है। उन्होंने गाँव-गाँव और घर-घर घरेलू उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहित किया है, जिसके कारण लोगों को काम तो मिला ही है, उसकी पैदावार से देश मजबूत भी बना है।

गांधीजी इस बात को जानते थे कि ग्रामोद्योगों को प्रोत्साहन दिये बिना बेकारी दूर नहीं की जा सकेगी। इसलिए उन्होंने अपने जीवन-काल में ग्रामोद्योगों का जाल सारे देश में बिछा दिया था, लेकिन उनकी मृत्यु के बाद, उन जैसे नेता के अभाव में और सरकारी उपेक्षा के कारण ग्रामोद्योग का कार्य शिथिल होता जा रहा है और बेकारी बढ़ती जा रही है।

बेकारी के भूत को भगाने के लिए सरकार और जनता, दोनों के संगठित प्रयत्न की आवश्यकता है। सरकार के हाथ में शासन-तन्त्र है, जनता के हाथ में लोक-शक्ति। दोनों का मेल हो जाय तो बेकारी एक दिन भी न टिक सकेगी।

'मण्डल' की ओर से

सहायक सदस्य योजना

पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि उत्तर प्रदेश और दिल्ली राज्य के शिक्षा-सचालकों की भांति अजमेर-राज्य के शिक्षा-सचालक महोदय ने भी एक सरक्युलर निकाल कर अपने यहा के समस्त मिडिल व हाईस्कूलो व कालेजों से सिफारिश की है कि वे इस योजना का लाभ ले। ऐसा ही एक सरक्युलर राजस्थान के शिक्षा-सचालक महोदय की ओर से भी शीघ्र निकलने की आशा है। हम विश्वास है कि अन्य हिन्दी-भाषी प्रदेश भी इस दिशा में पीछे नही रहेगे। इन गश्ती पत्रो के परिणामस्वरूप अनेक हाईस्कूल हमारे सदस्य बने हैं। अकेले दिल्ली से ही लगभग बीस स्कूलो के रुपये प्राप्त हो गये हैं।

इधर थोडा-सा प्रयत्न हम लोगो ने जयपुर, अजमेर और ब्यावर में किया था। वहा के शिक्षाधिकारियो और सार्वजनिक सस्थाओ के सचालको को यह योजना बहुत पसद आई। उम्मीद है कि राजस्थान और अजमेर राज्यो से कम-से-कम पचास सदस्य अवश्य बन जायगे। स्कूलो और कालेजो के सदस्य बनने पर यह सख्या अधिक भी हो सकती है।

नई और पुनर्मुद्रित पुस्तकें

सहायक सदस्य बनाने के साथ-साथ पुस्तको के प्रकाशन पर भी ध्यान दिया जा रहा है। हाल ही में सत सुधासार, कब्ज (कारण और निवारण) और सर्वोदय का घोषणा-पत्र, ये तीन नई पुस्तके प्रकाशित हुई है। डा॰ वासुदेवशरण अग्रवाल का 'कल्पवृक्ष', पडित बनारसी दास चतुर्वेदी का 'जीवन और साहित्य', साने गुरुजी का 'भारतीय संस्कृति' श्री महावीरप्रसाद पोद्दार का 'हिमालय की गोद में' प्रेस मे हैं और उन्हें जल्दी-से-जल्दी प्रकाशित करने का प्रयत्न किया जा रहा है। कुछ पाण्डुलिपिया 'समाज विकास-माला' के अतर्गत तैयार हो गई हैं और प्रेस मे दी जा रही हैं, इधर 'विचार-क्रांति-माला' का श्रीगणेश हो गया है। उसमें पहली पुस्तक निकली है 'सर्वोदय का घोषणा-पत्र', जिसमें विनोबाजी के तीन महत्वपूर्ण भाषण हैं। दूसरी पुस्तक रूस के सुप्रसिद्ध विचारक क्रापाटकिन की 'नवयुवकों से दो बातें' का नया सस्करण है। इस माला में आगे और भी कई पुस्तके निकलेंगी।

पिछले दो महीनो मे बहुत-सी पुस्तको के पुनर्मुद्रण हुए हैं। माग की जा रही है कि 'मण्डल' की कुछ पुरानी पुस्तके, जो कई वर्ष से प्राप्य नही हैं फिर से निकाली जाय। इस विषय में भी विचार किया जा रहा है।

बिक्री में सहयोग की आवश्यकता

पुस्तकों का प्रकाशित करना जितना कठिन है, उतना ही, बल्कि उससे भी कठिन है उनका प्रचारित और प्रसारित करना। यद्यपि हिन्दी का प्रचार उत्तरोत्तर बढ रहा है, तथापि पैसे डालकर पुस्तक खरीदने का प्रचलन हिन्दी के पाठकों मे अभी तक अधिक नही हो पाया है। उसे बढाने की आवश्यकता है। हम अपने पाठको से अनुरोध करेंगे कि यदि उन्हें 'मण्डल' की पुस्तकें पसन्द हैं तो उन्हें वे स्वय तो खरीदें ही, साथ ही अन्य पाठको से भी खरीदने का अनुरोध करें। अच्छी पुस्तको के प्रसार में योग देना राष्ट्र को मजबूत करना है। अपना भला तो उसमे है ही।

'जीवन-साहित्य' के विषय में पाठकों की सूचनाएं मिल रही हैं कि पत्र उन्हें बहुत पसन्द आ रहा है, लेकिन उसके ग्राहक बढाने के लिए कुछ ही पाठको ने उत्साह दिखाया है। पाठक जानते है कि इस पत्र को विज्ञापनों का सहारा नहीं है। वह अपने कृपालु पाठको पर ही निर्भर करता है। अत हम पाठको से अनुरोध करेंगे कि वे कुछ-न-कुछ ग्राहक अवश्य बना दे, जिससे पत्र अपने पैरो पर खडा हो जाय और उसमें कुछ और पृष्ठ बढाये जा सकें।

—मत्री

मार्तण्ड उपाध्याय मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली में छपाकर प्रकाशित।

कुछ प्रश्न और उनका समाधान

विनोबा

[हाल ही में गया में विनोबाजी के साथ युवकों और कार्यकर्ताओं के कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर हुए थे। उन्हें हम यहां दे रहे हैं। पाठक देखेंगे कि इनमें विनोबाजी ने उन ज्वलंत प्रश्नों पर अपने विचार प्रकट किये हैं, जो आज के बहुत से तरुणों के मस्तिष्क में चक्कर काट रहे हैं।]

—सम्पादक

प्रश्न क्या भूदान-यज्ञ कार्य के लिए हम कालेज छोड़े ?

उत्तर मैंने तो कहा है कि भूदान-यज्ञ में काम न करना हो तो भी कालेज छोड़ दीजिये। हम तो सन् सोलह में कालेज छोड़ कर ही निकले थे। पर जिन्हें एक साल के बाद मोह होगा, तो वे फिर से कालेज में जा सकते हैं, और एक साल यह काम करते हुए अगर उनका मोह छूट गया तो ठीक ही है। जो विद्यार्थी एक साल के बाद पुरानी तालीम नहीं चाहते हैं, उनके लिए तालीम देने की 'सर्व-सेवा-संघ' के जरिये एक योजना हो सकती है। उनके लिए नई तालीम का कुछ इन्तजाम हो सकता है। हरएक प्रांत में एक-दो ऐसी संस्थाएं खुल सकती हैं। जो विद्यार्थी काम करना चाहते हैं, वे तीन प्रकार के होंगे (१) कुछ तो ऐसे होंगे, जो सिर्फ छुट्टी में काम करेंगे। (२) कुछ ऐसे होंगे, जो एक साल के लिए कालेज से मुक्त हो कर काम करेंगे और (३) कालेज से बिलकुल ही मुक्त हो कर काम करेंगे।

तिलक महाराज जब कालेज में थे, तो बहुत ही कमजोर थे। इसलिए उन्होंने एक साल कालेज छोड़ कर व्यायाम किया और चार साल का पाठ्यक्रम उन्होंने पांच साल में किया। परन्तु उन्होंने कहा है कि उससे मैंने कुछ खोया नहीं, उसीके आधार पर जिंदगी की तकलीफें झेली हैं। *उन्हें तकलीफें काफी झेलनी पड़ीं, यह तो सब जानते* ही हैं।

प्रश्न लोगों का विचार है कि भूदान-यज्ञ से साम्य-वाद को भारत में फैलने से रोका जा सकता है। तो क्या तेलंगाना में साम्यवादी पार्टी का उतना जोर अब नहीं है।

उत्तर तेलंगाना में भूदान-यज्ञ का विशेष काम हुआ ही नहीं है। जो हमने किया, उसके बाद वहां कुछ भी नहीं हुआ। और जिन्होंने हमारे साथ कुछ काम किया, वे चुनाव के लिए खड़े नहीं हुए। चुनाव के लिए तो कांग्रेस के लोग खड़े हुए थे और उसी समय कम्यूनिस्टों ने अपनी नीति बदली, इसलिए उनको जेल से छोड़ा गया था। इस तरह जो दो-दो, तीन-तीन साल तक जेल में रहे, वे अब छूटकर 'हीरो' बन कर आये थे। इसीलिए वे जीते। कांग्रेस वाले खुद कुछ काम किये बिना हमारे पुण्य पर मुफ्त में नहीं जीत सकते थे।

कम्यूनिज्म को रोकने का हमारा काम नहीं है। यह एक स्वतन्त्र विचार है। यह 'पाजिटिव' है, 'नेगेटिव' नहीं है। हिन्दुस्तान में गरीबी है। अगर वह अच्छे तरीके से दूर की जा सकती है, तो कोई भी बुरा तरीका नहीं इस्तेमाल करेगा। किसी को प्यास लगी है और पीने को स्वच्छ पानी मिल जाता है, तो वह गंदा पानी क्यों पीयेगा ? लेकिन स्वच्छ पानी नहीं मिले, तो वह गंदा पानी पी सकता है। हिन्दुस्तान में अच्छे तरीके से गरीबी की समस्या हल होगी तो बुरा तरीका नहीं आयेगा। तेलंगाना में हमने दो महीने में बारह हजार एकड़ जमीन इकट्ठी की थी। उसके बाद वहां के लोगों ने कुछ भी नहीं किया। यह बारह हजार आरंभ मात्र ही था। अगर वहां जोरों से यह काम चले, तो लोगों की श्रद्धा इसपर बैठेगी।

प्रश्न भारतीय साम्यवादियों को आप कैसा समझते हैं ?

उत्तर भारतीय साम्यवादी याने क्या ? हिन्दुस्तान में तो हम साम्यवाद का कोई काम ही नहीं देखते हैं। यहां के साम्यवादियों ने जो कुछ थोड़ा-सा किया है, तेलंगाना में किया है और वहां दो-तीन साल लगातार कत्ल, लूटमार, डकैतियां चलती रही हैं। लेकिन इसका नतीजा यह हुआ कि आखिर किसान को कुछ भी नहीं

मिला। इसलिए मेरा तो मानना है कि साम्यवादी लोग कुछ भी रचनात्मक काम नहीं करते, सिर्फ प्रचार करते हैं। प्रचार का काम वे उत्साह से करते हैं। यहां के कम्युनिस्ट तो सिर्फ जड़वादी ही नहीं, बल्कि जड़-बुद्धि भी हैं। जडवाद एक वाद है। इसलिए वे सिर्फ जडवादी ही होते, तो कोई हर्ज नहीं होता। लेकिन वे तो उधर रूस में क्या हो रहा है, यह देखकर सारा काम करते हैं। रूस का रूप बदला तो इनका भी रूप बदल जाता है। उनकी कोई स्वतंत्र अकल नहीं है। इसलिए हम उनको भला या बुरा कुछ भी नहीं कह सकते, क्योंकि वे स्वतंत्र अकल से काम नहीं करते। जो स्वतंत्र अकल से काम करता है, उसीके बारे में हम अपनी राय दे सकते हैं। इसलिए उन्हें भला-बुरा कुछ भी कहना है, तो उनको कहना चाहिए, जो इनके मार्गदर्शक हैं।

साम्यवाद का एक ग्रंथ है और साम्यवादी आर्यसमाजवादियों के समान उसी किताब को प्रमाण मानते हैं, एवं परिस्थिति और अकल दोनों को छोड देते हैं। दरअसल किताब, अकल और परिस्थिति, तीनों का समन्वय होना चाहिए। पर ये लोग ग्रन्थ को वेद मानते हैं। आज मार्क्स हिन्दुस्तान की परिस्थिति में होता तो अपने विचार में अवश्य परिवर्तन करता। मैं कम्यूनिस्टों से कहता हूं कि आप मार्क्सियन हैं, परन्तु मार्क्स खुद मार्क्सियन नहीं था, वह मार्क्स ही था। इसलिए वह बदल सकता था। कम्यूनिस्ट लोग हिन्दुस्तान के दस हजार साल के सारे विचार-प्रवाह के बारे में कुछ भी ज्ञान नहीं रखते। उस विचार में अगर दोष हो तो भी उस दोष को जानने के लिए उस विचार का ज्ञान होना चाहिए। इसलिए कम्यूनिस्टों में दो मुख्य दोष देखता हूं, कि एक तो वे पुस्तक-पूजक हैं, और दूसरे यहां के विचार-प्रवाह को वे जानते नहीं हैं।

प्रश्न : क्या इतना बडा यज्ञ संस्था के बिना सुचारु रूप से चल सकता है ?

उत्तर : हम संस्था के बिलकुल खिलाफ नहीं हैं। आप स्थानिक संस्थाएं खडी कर सकते हैं। लेकिन जहां अखिल भारतीय संस्था खड़ी करने की बात आती है, वहां अनुशासन आता है, और फिर सारा मामला 'बोगस' हो जाता है। इससे हम मुक्त रहना चाहते हैं। जब व्यापक संस्था निकम्मी होती है, तो उसका नाहक अभिमान ही पैदा होता है और काम नहीं होता है, उसका लेबिल चिपकता है। हम कांग्रेस वाले, हम सोशलिस्ट; ऐसा कहा जाता है। हर कोई अपना अलग-अलग पंथ बनाते हैं। याने सारी दुनिया से अलग रहते हैं। सारी दुनिया को अपना रूप देने के बजाय दुनिया से ही वे अलग रहते हैं। अगर हम कोई खास संस्था बनाते, तो आज हमें जो सहयोग मिल रहा है, वह नहीं मिलता।

प्रश्न चीन की आधुनिक जन-सरकार तीन वर्ष के अन्दर ही इतनी उन्नति कर गई है कि जितने विदेशी वहां जाते हैं, वे आश्चर्य से चकित होकर बडाई करने लगते हैं। क्या भारत की परिस्थिति ऐसी नहीं है कि वह चीन का रास्ता अपने देशवासियों को सुखी बनाने के लिए अपनाये ? क्या आपका भूदान-यज्ञ ऐसा माध्यम साबित हो सकता है कि वह इतने कम समय में चीन की तरह उन्नति करे ?

उत्तर : चीन की तारीफ की बातें बहुत लोग बोलते हैं। परन्तु चीन में एक राज्य-क्रांति हुई है। ऐसी राज्य-क्रांति जहां होती है, वहां दूसरे तरीके से काम होता है। उसके लिए तीस साल तक चीन में 'सिविल वार' हुई है, यह कोई नहीं देखता और सिर्फ राज्य-क्रांति के बाद का, दो-तीन साल का काम देखते हैं। लेकिन राज्य-क्रांति के बाद सरकार के हाथ में जो शक्ति आती है, वैसी शक्ति हिन्दुस्तान के पास नहीं है। दंड-शक्ति भी नहीं है और आपकी सेना भी काफी नहीं है। आज जो सेना है, उसे रखने में ही तो बजट का साठ प्रतिशत खर्च हो जाता है। इसलिए और सेना बढानी हो तो सारा खर्च सेना ही खा जायेगी। चीन की हालत ही दूसरी है। वहां राज्य-क्रांति हुई। कितना रक्तपात हुआ। इसलिए चीन का उदाहरण अपने देश में लागू नहीं होता है। परन्तु हम यह मानते हैं कि अभी अपनी सरकार जितनी प्रगति कर रही है, उससे अधिक प्रगति कर सकती है। मगर कांग्रेस आज राज्यकर्ता जमात बन गई है। इसलिए उसमें पूंजीवादी भी आये हैं। उनके खिलाफ जाकर काम करने की हिम्मत सरकार में नहीं है और मुख्य बात यह है कि अबतक

विचार की सफाई ही नहीं हुई है।

प्रश्न : भारत-सरकार बड़े-बड़े कारखानों का राष्ट्रीयकरण क्या नहीं करती ?

जवाब इसका कारण एक तो यह है कि सरकार उस विचार को मानती नहीं है। सरकार पर पूंजीवाद का असर है। और फिर राष्ट्रीयकरण करने से कुछ बात बनती है, ऐसा नहीं है। रेलवे का राष्ट्रीयकरण हुआ, लेकिन उससे कुछ बहुत लाभ हुआ सो बात नहीं है। सरकार के हाथ में आज जो शक्ति है, उसका ही उपयोग सरकार ठीक तरह से कर नहीं सकती, तो अधिक शक्ति देने में क्या फायदा ? देश में जबतक चारित्र्यवान् लोग नहीं निर्मित होते हैं, तबतक काम नहीं होगा। आज घूसखोरी चलती है। अधिकारियों के हाथ में और भी काम दें तो काम और बिगड़ेगा। इसलिए जनता की विचार-शुद्धि और चारित्र्य-शुद्धि होनी चाहिए, तब चीज सुधरेगी और फिर काम बनेगा।

प्रश्न पूंजीवाद का अन्त कैसे होगा ?

उत्तर पूंजीवाद का अन्त न प्रेम से होगा, न संघर्ष से, बल्कि विचार से होगा। प्रेम या संघर्ष किसी का अन्त नहीं करते हैं। संघर्ष में घर्षण हो जाता है, तो दोनों क्षीण होते हैं और प्रेम भी कोई नई चीज नहीं पैदा करता है। प्रेम उत्साह पैदा करता है। परन्तु समाज में क्रांति होती है विचार से ही। हम हिस्सा मांगते हैं, भिक्षा नहीं, क्योंकि लोगों को यह विचार समझाना चाहते हैं कि जमीन सबकी है। विचार को कबूल किया, इसकी निशानी के तौर पर हम हिस्सा मांगते हैं। और आखिर तो जमीन सबकी बनानी है। हम विचार में जितनी श्रद्धा रखते हैं, उतनी और किसी चीज पर नहीं रखते हैं। संघर्ष से क्रांति नहीं, क्षय होता है और प्रेम से क्रांति नहीं, वृद्धि होती है। लेकिन फिर भी अगर संघर्ष का मौका आये तो हम विचार प्रचार के लिए संघर्ष भी करेंगे, हम संघर्ष टालेंगे नहीं। संघर्ष भी एक ताकत है। उस ताकत की कोई आवश्यकता हो, तो वह भी करेंगे। परन्तु क्रांति केवल विचार प्रचार से ही होती है। इसलिये हम विचार-प्रचार करते हैं।

प्रश्न आज के काम से नया नेतृत्व नहीं मिलता है, बल्कि पुराने नेताओं को ही फिर से संजीवन मिलता है।

उत्तर अगर पुराने नेताओं को फिर से संजीवन मिलता है तो उसमें क्या हानि है ? अगर उनको यह विचार पसंद आये और उनमें परिवर्तन हो जाय तो फिर उन्हें नेतृत्व मिलेगा तो उसमें क्या बुराई है ? और अगर उनका ढोंग ही है, तो उसकी भी इस काम में परख होगी। संस्कृत में श्लोक है कि 'वसंत समये प्राप्ते काकः काकः पिकः पिकः'— कौआ और कोयल दोनों काले होते हैं, परन्तु वसंत ऋतु आने पर दोनों की पहचान हो जाती है। इसी तरह इस काम में जो नकली लोग होंगे, वे ढीले पड़ेंगे। पर नया नेतृत्व इस काम में नहीं होगा तो और किस काम में होगा? यह एक ऐसा आंदोलन निकला है, जो सारे समाज को त्याग की प्रेरणा देता है। इसमें नये-नये लोग आ रहे हैं और उनसे नया नेतृत्व निर्माण होता है।

प्रश्न आप कहते हैं कि साधन अच्छे हों, यह हमारा आग्रह है। तो फिर आप भूदान-यज्ञ के काम के लिए बुरे मनुष्यों का क्यों उपयोग करते हैं ?

जवाब जो बुरा मनुष्य माना जाता है, वह हमेशा के लिए ऐसा नहीं है। ऐसा पुराना खयाल था कि ब्राह्मण के कुल में जन्म हुआ तो वह ब्राह्मण ही रहेगा, उसमें परिवर्तन नहीं हो सकता है, वैसे ही यह प्रश्नकर्ता सोचता है। मनुष्य में हमेशा परिवर्तन हुआ करता है। इसलिए हम मनुष्य को अच्छा या बुरा नहीं मानते हैं। साधन कैसे हों, यह हम देखते हैं। अगर बुरा मनुष्य भी इस काम में आयगा और धमका कर जमीन मांगेगा तो जमीन नहीं मिलेगी। अगर कोई धमकाने लगेगा, तो लोग उससे कहेंगे कि विनोबाजी तो ऐसा नहीं कहते हैं। इस जवाब से वह धमकाने वाला फीका पड़ जायगा। कुछ लोग कहते हैं कि कैसा भी लोभ या डर दिखाया जा सकता है। लेकिन ऐसे कहने वालों के बारे में जनता कहेगी कि तू इस टोली में शोभा नहीं देता। इस प्रकार इस काम में प्रतिक्षण भले-बुरे की प

परोपकार से स्वास्थ्य का सम्बन्ध

धर्मचन्द सरावगी

हर धर्म वालों ने भूखे को भोजन, रोगी को औषधि, अनपढ को विद्या और आनंद में पडे हुए को अभय दान देने के लिए लिखा है। साथ ही यह भी लिखा है कि इससे पुण्य होता है। आज पाश्चात्य सभ्यता के जमाने के पले हुए लोग पुण्य और पाप को दलील को दकियानूसी कहकर खिल्ली उडाते हैं। परन्तु कुछ दिन पहले ई. जी. वाइट नामक एक विदेशी विद्वान ने वैज्ञानिक ढंग से साबित करने की कोशिश की है कि यदि मनुष्य परोपकार और जन-सेवा को निःस्वार्थ भाव से करे तो उसका असर उसके स्वास्थ्य पर किस प्रकार अच्छा पड़ता है और उसका स्वास्थ्य दिन-पर-दिन बढ़िया होकर वह आनन्दमय जीवन बिताता है। स्वर्ग और नरक कहीं और नहीं हैं, अपने कर्मों (व्यवहार) के अनुसार इसी जीवन में उसका परिणाम उसे मिल जाता है। किसी को देरी से मिलता है और किसी को तुरन्त ही। परन्तु अपने किये का फल मनुष्य को भोगना ही पड़ता है।

उनका कहना है कि शरीर और आत्मा का बहुत गहरा सम्बन्ध है। एक दूसरे का असर एक दूसरे पर हर समय पड़ता है। एक अस्वस्थ होता है तो दूसरे को भी अस्वस्थ रहना पड़ता है। एक यदि ठीक रहता है दूसरा भी ठीक रहता है। इसका प्रभाव मस्तिष्क पर पड़ता है। यदि मस्तिष्क खुश है और हर प्रकार की चिन्ताओं से मुक्त है तो वह प्रसन्नताओं से भरा रहता है। उसके द्वारा हृदय अपना पूरा काम करता है और इस प्रकार शरीर के सारे भागों में रक्त का दौरा ठीक रहता है और शरीर के सारे अवयव ठीक रहते हैं और इसे लोग भगवान का आशीर्वाद या कर्म का फल कहते हैं। जब कोई व्यक्ति उपरोक्त किसी प्रकार की सेवा, किसी भी व्यक्ति को बिना किसी आकांक्षा के करता है, तो वह केवल उसकी भलाई नहीं करता किन्तु वह अपनी भी भलाई करता है क्योंकि इस प्रकार के कार्यों से उसके स्वास्थ्य और उसके शरीर पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है। परसेवा करने से मनुष्य को जो सन्तोष और शान्ति मिलती है उसके चिन्ह उसके मुखमण्डल पर आ जाते हैं। वह बराबर प्रफुल्लित और प्रसन्न रहता है।

मनुष्य अच्छा काम करता है और उसकी प्रशंसा दूसरी जगह होती है और धीरे-धीरे वह उसके कानों तक पहुंचती है तो शरीर खुशी से रोमांचित हो उठता है और उस समय उसके शरीर के सारे रोमकूप खुल जाते हैं। जब कोई व्यक्ति अपने प्रति अच्छे शब्द (आशीर्वाद) सुनता है तो उसी समय उसका असर उसके सारे शरीर पर होता है और उसका स्वास्थ्य भी प्रतिक्षण अच्छा होता जाता है।

इसके विपरीत जो लोग किसी की सेवा या सुपात्र को दान-पुण्य नहीं करते उनकी आत्मा हर समय संकुचित रहती है और वह प्रसन्नता और मस्ती उनमें नहीं आती। फलस्वरूप उनके शरीर पर बुरा असर पड़ता है और बुरे कामों से जब उनकी निन्दा होती है और जब वे अपनी बुराई सुनते हैं तो वे लोगों से दूर रहना चाहते हैं और नाना प्रकार की चिन्ताएं उनको घेर लेती हैं। इसलिए न तो हृदय अधिक खून शरीर में पहुंचाता है, और न रोमांचित होकर उनके शरीर में रोमकूप ही खुलते हैं। इस तरह वे अपने स्वास्थ्य को खो देते हैं। छोटी उम्र में ही उनको कई तरह की बीमारियां घेर लेती हैं और साथ ही चेहरे पर सिकुड़न भी आ जाती है, जिसे लोग पाप का फल, श्राप आदि नामों से पुकारते हैं। वास्तव में वे सब अपने बुरे कर्म (व्यवहार) के फल हैं।

इसलिए जो व्यक्ति दूसरों की सेवा तन-मन-धन से किसी भी रूप से करता है उससे जितना वह उसका उपकार करता है, उससे कहीं ज्यादा अपना उपकार करता है। इस तरह का मौका यदि किसी को मिले तो उसे अपने भाग्य को सराहना चाहिए और उस मौके से लाभ उठाना चाहिए।

एम० आर० ए० : एक नैतिक शक्ति

कमलनयन बजाज

आज का संसार प्रकृति से दूर हट चला है। इससे मेरा मतलब यह है कि हम अपना जीवन स्वाभाविक रूप से नहीं बिताते। सारा वातावरण अस्वाभाविकता से इतना भरा हुआ है कि हमारा जीवन किस हद तक विकृत हुआ है यह जानना भी हमारे लिए मुश्किल हो गया है। हम अनजाने ही परिस्थिति के दास बन गये हैं। हमें ऐसी ही चीजें ज्यादा भाने लगी हैं कि जो उत्तेजक, उन्मादक और रोमहर्षक हों। ऐसी चीजें हमें जितनी अधिक मिलती हैं उतना ही उनके प्रति हमारा आकर्षण बढ़ता जा रहा है। हम दोषहीन जीवन जीने की कला भूल गये हैं। क्षणिक उत्तेजना और सम्मोहन ने हमें घेर लिया है। बेबस होकर नहीं, बल्कि अपनी खुशी से हम उनके बस में होते जा रहे हैं और हम इस जीवन में रस लेते हैं। इसका हमारे स्नायुओं, भावनाओं पर यों कहें कि हमारी सारी मनोरचना पर, बहुत ही गहरा असर हो रहा है। आज के जीवन में भरा हुआ उतावलापन और गति हमारी इस हालत को और भी बुरा बना रही है। हम कोशिश करते हैं कि हमें अपना स्वाभाविक और सम्यक् जीवन फिर से प्राप्त हो। मगर उसको प्राप्त करने का मार्ग हमें नहीं सूझता और इसीलिए इस चिन्ताजनक स्थिति के असर से हम बच नहीं पाते। आधुनिक युग के चंगुल में फंसे हुए व्यक्ति का यह चित्र है और ऐसे ही व्यक्तियों से जिस समाज का निर्माण हुआ है, उस समाज की हालत उन व्यक्तियों की हालत से भला कैसे अच्छी हो सकती है? जब हमारी भावनाएं चूर चूर हो जाती हैं और हमारी मज्जासंस्था छिन्न भिन्न हो जाती है तो इसका परिणाम यह होता है कि हमारी असूया, संदेह और भय जाग उठते हैं। फिर हम केवल अपनी कल्पना में ही शैतान का निर्माण करके नहीं रुक जाते, बल्कि उसे प्रत्यक्ष जीवन में उतार लेते हैं। वह हमें मनुष्य की आन्तरिक सहृदयता का भी दर्शन नहीं करने देता। हमारी समाज-रचना का—फिर वह रचना कौटुंबिक, राष्ट्रीय अथवा अन्तरराष्ट्रीय संबंधों की ही क्यों न हो—यह एक भयंकर शाप है। हमें आधुनिक युग की इस बीमारी का इलाज निकालना है।

कुछ लोगों की धारणा है कि आज की जो हमारी आपत्तियां हैं उनकी रोक-थाम और उनका उपचार अणुबम से हो सकता है। उन लोगों को अणुबम में ही अपना सुख, सुरक्षा और हित दिखाई देता है। उन्हें आशा है कि अन्तिम संकट में वही हमारी रक्षा कर सकता है, परन्तु यह अणुबम उस इंजेक्शन के समान है जो मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए बीमार आदमी को मृत्यु से बचाने की आशा से अन्तिम क्षण में दिया जाता है मगर वह न तो मरीज को बचा सकता, है न उसे सुख-चैन से स्वाभाविक रूप में मरने देता है। हमारे इस मरीज के लिए तो आवश्यकता है दीर्घकालीन निसर्गोपचार की। एम० आर० ए० इसी प्रकार का एक विनम्र प्रयत्न है।

आधुनिक विज्ञान ने मनुष्य के हाथ में प्रचंड शक्ति सौंपी है; परन्तु इस शक्ति का उचित उपयोग किस तरह करना चाहिए, यह हम नहीं जानते। अणु जड़ पदार्थ का एक क्षुद्रतम कण है। मगर उस अणु का स्फोट करने पर उसमें से प्रचंड शक्ति का निर्माण होता है। एम० आर० ए० के सिद्धान्त बिलकुल सीधे-सादे और सरल हैं, परन्तु जब हमारे दिल में इन सिद्धान्तों का परिस्फुटन होने लगता है तब उनमें से ऐसी प्रचंड आध्यात्मिक शक्ति पैदा होती है, जो समस्त विश्व को निगल सकती है। एक सामान्य जड़ अणुकण को छेदने से अगर महान् शक्ति का सृजन हो सकता है तो चेतन प्राणकण से निकली हुई शक्ति कितनी विशाल होगी!

भूतकाल में व्यक्तिगत, दलगत, जातिगत और धार्मिक स्वार्थों को घटाने का कार्य राष्ट्रवाद और राष्ट्रभक्ति ने किया है। हमारी क्षुद्र असूया और भय को कम करने में इन दो भावनाओं का अच्छा योग रहा

मगर साथ-ही-साथ उन्होंने स्वार्थ को राष्ट्रीय स्तर पर लाकर उसे और भी शक्तिशाली बना दिया। व्यक्ति के स्वार्थ को कम करने के लिए दो तरीकों का प्रयोग किया जा सकता था। राजनीतिज्ञ और मुत्सद्दी पुरुषों ने ऊपर बताया हुआ तरीका अपनाया और दुर्दिन को टालने की कोशिश की। उन्होंने स्वार्थ को मूलतः बुरा नहीं कहा। उन्होंने सिर्फ इतना कहा कि अपने लिए स्वार्थी न बनो। अपने देश और देशबंधुओं के लिए कष्ट सहने और मरने के लिए उन्होंने लोगों को प्रेरित किया और उसे राष्ट्र-धर्म की सज्ञा दी। व्यक्ति की उदात्त प्रवृत्तियों का समाधान हुआ और जनता के नेताओं ने इससे लाभ उठाया। अब इसी राष्ट्रीय सीमा तक पहुंचे हुए स्वार्थ से हमें लड़ना है। इस स्वार्थ की गति को रोकने के लिए राष्ट्रों के—साम्यवादी राष्ट्रगुट और लोकशाही राष्ट्रगुट—ऐसे दो गुट बनाकर उसी पुराने तरीके का उपयोग किया जा सकता है। मगर इस तरीके से यदि उस परिधि में सारी दुनिया का समावेश करना और उसे स्वार्थ-मुक्त बनाना हमारी अभिलाषा है, तो हमें एक ऐसी दूसरी दुनिया का निर्माण करना होगा कि जो स्पर्धा और संघर्ष के लिए आवश्यक है। मगर यह बात असम्भव है। इससे यह स्पष्ट है कि कि हमारी एकता भय पर आधारित है और ऐसी एकता से स्वार्थ का सपूर्ण निर्मूलन कभी नहीं हो सकेगा। सिर्फ उसका रूपांतर-मात्र ही जायगा।

प्राचीन काल में युद्ध इसलिए लड़े जाते थे कि कोई अत्याचारी राजा दूसरे किसी राज्य की लड़की से विवाह करना अथवा पड़ौसी राज्य को हड़पना चाहता था। परन्तु आज के अन्तरराष्ट्रीय युद्ध किसी व्यक्ति-विशेष, समूह अथवा किसी एक राष्ट्र के भी स्वार्थ के कारण नहीं छिड़ सकते। राष्ट्रसमूहों का स्वार्थ ही अब युद्ध को सम्भव बना सकता है। व्यक्तिगत स्वार्थ अब पहले की अपेक्षा बहुत कुछ संयमित हो गया है। इस दृष्टि से देखा जाय तो हम कह सकते हैं कि समार ने सही दिशा में प्रगति की है।

एक प्रकार से सामुदायिक हिंसा व्यक्तिगत हिंसा से कम हानिकारक है। इसलिए विश्वयुद्धों से डरने की आवश्यकता नहीं। जागतिक युद्ध सामुदायिक हिंसा का महान् आविष्कार है। कम-से-कम समय में बहुत बड़े पैमाने पर वे विध्वंस और महानाश का ताडव दिखा सकते हैं। दूसरों का नाश करने के लिए आत्म-बलिदान करने की गलत शिक्षा लोगों को दी जाती है। इस प्रक्रिया में अगर वे स्वय मर जाय तो उनको शहीद बना दिया जाता है। इस प्रकार युद्ध में आत्माहुति देनेवाले लोगों की निर्णय-शक्ति पर हमें शका हो सकती है। मगर उनकी स्वार्थहीन वृत्ति के बारे में सदेह नहीं हो सकता। हमारे सामने जो भविष्य का दृश्य है वह पूर्णत निराशा-जनक नहीं है। अगर मानव की दैवी वृत्तियों को उचित संचालन और सही दिशा देकर उनका सदुपयोग कर सकें तो मनुष्य-जाति के लिए अब भी बहुत कुछ आशा की जा सकती है। ससार को नष्टप्राय करने की धमकी देनेवाले जागतिक युद्ध-रूपी कृष्ण मेघों में भी एक रजत रेखा है। हमें इसी रजतरेखा का आश्रय लेना है। हमारे नेताओं को चाहिए कि वे राष्ट्र-धर्म की मर्यादा को इतना आगे बढ़ायें कि सारा ससार उसमें समा जाय। अति पुरातनकाल से सारे ससार के साधु-सतों ने अपने व्यावहारिक जीवन में सपूर्ण स्वार्थ-त्याग की शिक्षा दी है। जिस अश तक वे मानव के इस स्वार्थ का नाश कर पाये उसी अश तक वे संसार में नैतिक शक्ति की सस्थापना कर सके। यह नैतिक शक्ति इस ससार में जहा-तहा और काफी मात्रा में प्राप्त हो सकती है। मगर इसे इकट्ठा करना चाहिए। प्रत्येक देश में और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इस कार्य के लिए कार्यकर्ताओं के अनुशासनयुक्त दलों को तैयार करना चाहिए। ऐसे दल ही राष्ट्रगत अथवा दलगत स्वार्थ का सामना कर सकते हैं। हमें चाहिए कि हम मनुष्यमात्र के भय को नष्ट कर दें। मनुष्य के अदर की स्वाभाविक अच्छाई को ऊपरी तल पर लाना है। मनुष्य की यह स्वाभाविक अच्छाई गहरे कुए के पानी के समान है। कुए के अदर का पानी स्फटिकवत् स्वच्छ हो, मगर उसके ऊपर यदि गदे तेल की पतली-सी परत पड़ी हुई हो तो देखनेवाले को वह पूरा-का-पूरा पानी गदा मालूम होता है। उस पानी को पीने की इच्छा उसे नहीं होती। मानव-हृदय की पवित्रता तथा अच्छाई के ऊपर मलिनता की ऐसी ही एक गदी परत छा गई है। अगर हमें भीतर का स्फटिक-शुद्ध पानी पाकर अपनी प्यास को बुझाना है तो हमें इस ऊपरी परत को हटाना ही पड़ेगा।

नेपाली नेता धर्मरत्न यमी

राहुल सांकृत्यायन

भद्रगोल में तेंतीस राजबन्दी इकट्ठे रक्खे गये, जिनमें राणा-अदालत के शब्दों में "देशद्रोही, जनताद्रोही" मुरलीधर शर्मा भी थे। लोगों को चार कमरों में रखा गया था। टंकप्रसाद का प्राण केवल ब्राह्मण होने से बचा था, लेकिन उन्हें और रामहरि को "मुंडी-दामल" करके जातिच्युत करने का दंड दिया गया था। छ-सात दिन बाद उन्हें मूडने के लिए ले गये, लेकिन उन्होंने पहले ही से अपने बाल साफ करवा लिये थे। दामल को शायद बर्बर शासन का चिन्ह माना गया, इसलिए उनके दोनों गालों और ललाट को दागा नहीं गया, केवल लाल रेखा बना दी गई। राजगुरु के आदेश से अब उन्हें ब्राह्मण-जाति से निकालकर विवाह पर १४ रुपया व्यय करनेवाली मतवाली (छोटी) जाति में मिला दिया गया।

बाहर के क्रान्तिकारी, जो अब चौबीस घंटा एकसाथ रहते थे किसी दृढ़ अनुशासन या सिद्धान्तवाद के अभाव में आपस में लड़ने लगे। पहले नेवार और पर्बतिया का भेद शुरू हुआ, लेकिन वह वहीं तक कैसे रह सकता था? नेवारों में भी श्रेष्ठ और दूसरों का भेदभाव पैदा हुआ और अन्त में श्रेष्ठों में भी चारमास्या (अर्धश्रेष्ठ) और छमास्या (पूर्णश्रेष्ठ) का झगड़ा खड़ा हुआ। एक दिन मार-पीट भी हुई, जिसके बाद शांति स्थापित हो गई।

नेवारों में चित्रधर और धर्मरत्न श्रेष्ठमित्र तथा बौद्ध थे। उन्होंने कहा—हम खाने-पीने में कोई छूतछात नहीं मानते। हमें जो खाना देगा, उसीके चौके में शामिल हो जायेंगे।

चूड़ाप्रसाद पागल-से हो गये थे। उनको किसी नेवार ने भोजन दे दिया, जिसपर ब्राह्मण लड़ पड़े—हमारे ब्राह्मण को इन्होंने झूठा खिला दिया। इसी तरह का झगड़ा छ-सात महीने तक चला। इसी बीच राजबंदियों के लिए सेल (काल कोठरियां) तैयार हो गईं। झगड़ा भी मन्दा पड़ा और अब लोगों का ध्यान पढ़ने की ओर गया। कैदियों को संस्कृत तथा धार्मिक ग्रंथ ही मिल सकते थे। धर्मरत्न शिक्षा से करीब-करीब वंचित रह गये थे। अब यह जेल का पांच साल का (४० से ४५ तक) जीवन उन्हें विद्यार्थी-जीवन के रूप में मिला और उसका उन्होंने खूब उपयोग किया। कागज-पेन्सिल की बड़ी मनाही थी, लेकिन वह चोरी-चोरी मिल जाती थी। कवियों और लेखकों ने धार्मिक पुस्तकों की पंक्तियों के बीच की खाली जगहों में अपनी कृतियों को लिखा। कैदियों को ६ छटांक चावल, एक मुट्ठी लकड़ी तथा नमक मिर्च-तेल आदि के लिए एक नेपाली पैसा मिलता था। छ महीने पर नौ हाथ लंबा, डेढ़ हाथ चौड़ा खादी का कपड़ा दिया जाता। हां, वह अपने घर से कपड़ा मंगा सकते थे।

धर्मरत्न-जैसे कुछ लोगों ने रोज मिलनेवाले एक पैसे को मुरली पंडित को ट्यूशन के लिए देना शुरू किया। वे उन्हें संस्कृत ग्रंथ पढ़ाते। तरुण पूर्णबहादुर (एम ए) सबसे अधिक अंग्रेजी पढ़े हुए थे। ये अंत समय में फांसी के तख्ते से उतरे थे। यह सरल आदर्शवादी तरुण अपने साथियों को अर्थशास्त्र, भूगोल, गणित, अंग्रेजी आदि पढ़ाता। धर्मरत्न ने चंद्रमान मास्को से चित्र बनाना सीखना चाहा। सिद्धिचरण ने उन्हें कवि बनाने की कोशिश की। महाकवि चित्रधर ने पढ़ाने के अतिरिक्त नेवारी भाषा में "सुगत सौरभ" महाकाव्य लिखा। धर्मरत्न ने भी "अर्हत् नन्द" के नाम से अश्वघोष की अमर कृति 'सौंदरानंद" की तरह एक महाकाव्य किताब की पंक्तियों के बीच में पेंसिल से लिख डाला। जेल में साहित्य-गोष्ठियां होतीं, समस्या-पूर्तियां भी चलतीं, राजनीति और दूसरे विषयों पर व्याख्यान होते। वहां जगह थोड़ी थी, लेकिन चावल-दाल को कुछ और प्रिय बनाने की आवश्यकता थी, इसलिए लोग वहीं साग-सब्जी उगाते थे। इस तरह एक साल (१९४०) काल-कोठरी में गुजरा। बलबहादुर पांडे १७ वर्ष का तरुण था। वह वहीं पागल होकर ग्यारह महीने बाद मर गया। वह गुरुजी के खानदान का था। डाक्टर ने जब पूछा कि

तुम क्या चाहते हो, तो उसने कहा—"पिस्तौल ला दो मैं मोहन शम्शेर को मारूंगा"। बलबहादुर के पागलपन का असर कालकोठरी में एकांत जीवन बिताने वाले औरों पर भी थोड़ा-थोड़ा पड़ने लगा था।

१९४१ में कुछ लोग जेल से भागने की तजवीज सोचने लगे। टंकप्रसाद का दल इसके विरुद्ध था, लेकिन तरुण इसके पक्ष में थे। जेल के दो मेहतरों को मिलाकर दीवार तोड़ने का काम शुरू किया गया। रात को ईंट निकाली जाती और उसकी जगह कीचड़ रख दिया जाता। बेड़ी भी निकालने लायक कर ली गई थी। जिस रात को १ बजे भागने की तैयारी हो चुकी थी, उसी रात १२ बजे जेलवालों ने पता पाकर हल्ला बोल दिया। एक मेहतर इतना पीटा गया कि घायल होकर छ महीने में मर गया। कैदियों में से किसी ने ईंट निकालना स्वीकार नहीं किया।

इस असफलता के बाद धर्मरत्न और उनके साथी पढ़ने-पढ़ाने में तल्लीन हो गए। भीम शम्शेर के समय में ही खड्गमानसिंह "प्रचंड गोरखा दल" के आरोप में बन्दी थे। नये राजबन्दियों के भद्रगोल में आने के तीन-चार महीने बाद वह भी वहीं लाये गए। उनकी वैष्णव-कट्टरता ने और भी घी में आग का काम दिया, लेकिन पहले प्रयत्न के निष्फल होने पर दो-ढाई साल बाद १९४३-४४ में फिर भागने की तैयारी होने लगी। इसमें अगुवा थे गणेशमान। इस बार ईंट निकालने का खयाल छोड़ दिया गया था और बाहर से अंकुश मंगाकर रस्सी में बांध उसके सहारे दीवार फांदनी थी। अंकुश दीवार पर फंस जाय, यह अपने बस की बात नहीं थी। छ महीने तक कोशिश करने के बाद एक रात अंकुश दीवार में फंस गया। गणेशमान रस्सी पकड़ दीवार लांघकर उधर उतर गए। चन्द्रमान कम्पौंडर भारी होने से गिर पड़े और पहरेवालों ने देख लिया। पूछने पर "भाग नहीं सका" कहकर उन्होंने हंसी में उसे उड़ाना चाहा। १ बजे रात की बात थी। पहरेवालों ने तीन घंटे यों ही खो दिए। ४ बजे पूछा—तुम अकेले थे या दूसरा भी कोई। तो चन्द्रमान ने कहा—मैं अकेला था। पहरेवालों ने अंकुश देख लिया। लेकिन तबतक गनेशमान को भागे चार घंटे हो चुके थे। कम्पौंडर को पकड़कर सिंह दरबार भेज दिया गया। सवार दो-तीन दिन तक इधर-उधर बेकार दौड़-धूप करते रहे। गणेशमान कमाई का भेस बनाकर भैंसा खरीदने बुटवल की ओर चल दिये और सीमा-पार नौतनवा में पहुंच कर सुरक्षित हो गए।

महायुद्ध समाप्त हो गया। दुनिया में जो परिवर्तन हो रहे थे, उसका असर नेपाल पर पड़े बिना कैसे रह सकता था? राणा-शासकों में भी कितने भविष्य से निराश हो चुके थे! पद्म शम्शेर-जैसा नम्र, उदार और दब्बू आदमी प्रधान-मंत्री था। पांच साल बाद संवत् २००२ भाद्र मास की इन्द्र-यात्रा से एक दिन पहले टंक-प्रसाद, रामहरि, गोविंदप्रसाद, चूड़ाप्रसाद, खड्गमान और चन्द्रमान डगुल को छोड़ बाकी सब राजबंदियों को इस शर्त के साथ छोड़ दिया गया कि वह प्रतिमास पुलिस में हाजिरी देते रहेंगे और विशेष राहदारी (पासपोर्ट) के बिना उपत्यका से बाहर नहीं जायेंगे।

धर्मरत्न के छूटकर आने पर दादी ने ब्याह करने का आग्रह शुरू कर दिया। महीने भर बाद एक लड़की किसी भोज में आई, उसकी आंखों पर चश्मा लगा हुआ था। ल्हासा के व्यापारी हीराकाजी की लड़की हीरादेवी है—यह भी लोगों ने बतला दिया। उसी से ब्याह करने की बात चल रही थी। धर्मरत्न ने अपनी भावी पत्नी को चिट्ठी लिखकर कह दिया—"मेरे जैसे राजनीति में पड़े बे-घरबार के आदमी के साथ रहने में तुम्हें कष्ट ही-कष्ट होगा। लिखने ही से संतोष न कर एक दिन दोनों ने खुलकर बातें की। हीरादेवी ने कहा—"बुरे आदमी होते तो तुम राजनीति में क्यों पड़ते?" हां, उस समय नेपाल में राजनीति में पड़ने का अर्थ था जेल, फांसी और सर्वस्वहरण। बाप तैयार था, लेकिन सौतेली मां नहीं चाहती थी। एक दिन हीरादेवी घर से भाग आई और दोनों का ब्याह हो गया, लेकिन उनका मधुमास एक महीने का भी नहीं हो पाया। धर्मरत्न अब कलकत्ता पहुंच गये। वहां गणेशमान और दूसरे नेपाली क्रांति-कारियों से उनकी भेंट हुई। डेढ़ मास बाद फिर वह नेपाल लौट आये।

अब राजनीति में फिर गर्मी आने लगी। मनमोहन अधिकारी के नेतृत्व में विराटनगर के मिल-मजदूरों ने

जबर्दस्त हड़ताल की। १९४७ में अंग्रेज भारत छोड़कर चले गए। इसपर हर्ष प्रकट करने का नेपाली-राष्ट्रीय नेताओं का आदेश था। टोले के लोगों को बुला, सलाह कर १५ अगस्त को प्रसिद्ध काष्टमंडप के नीचे गांधीजी तथा दूसरे नेताओं का चित्र रख, हीरादेवी के सभापतित्व में सभा करने का निश्चय हुआ। हीरादेवी उस समय एक छोटा-मोटा स्कूल चला रही थी। वह अपने पैंतीस बच्चों के साथ जलूस बनाकर सभा-स्थान पर आईं। जलूस में कोई राजनीतिक नारा नहीं लगाया गया, बल्कि हिन्दू "हरे राम" और बौद्ध "तारे मां" का धार्मिक वाक्य उच्चार रहे थे। इस पर भी राणाशाही कर्नल ने धमकाकर सभा को बंद करने के लिए कहा और छ-सात मास की अपनी पुत्री धर्मदेवी के साथ हीरादेवी गिरफ्तार करके जेल भेज दी गईं। उसी दिन उनके पति आदि नौ और आदमी पकड़े गए। काठमाडू की तरह पाटन में भी भारतीय स्वतंत्रता के उपलक्ष में प्रसिद्ध गांधीवादी तुलसी मेहर अपने ४५ साथियों के साथ जलूस निकालने के अपराध में पकड़ लिये गए। इसी तरह उपत्यका के तीसरे नगर भादगांउ में भी नौ आदमी पकड़े गए। बन्दी सत्याग्रही थे, इसलिए उनके भागने का डर नहीं था। जिस घर में इन लोगों को बन्द किया गया था, उसमें खटमलों और पिस्सुओं की भरमार थी। पानी-बरसा तो वह खटियों के नीचे तक भर गया। वहीं दस कदम पर पेशाब और पाखाना पड़ा हुआ था। साथ ही हवालात बंदीगृह का ही काम नहीं देती थी, बल्कि भैंस-गाय का काजीहौज (पशुवारा) भी वही था। इसी जगह स्त्रियां पुरुष और बच्चे दस दिन रक्खे गए। इस बर्ताव के लिए बंदियों को भूख हड़ताल भी करनी पड़ी।

हीरादेवी तथा कुछ और आदमी छोड़ दिये गए। बाकी अब भी उसी गन्दी हवालात में बंद थे। इसपर लोगों ने बेहतर घर में रखने के लिए भूख-हड़ताल की और अधिकारियों को उसे मानना पड़ा। गिल्टी बुखार के कारण धर्मरत्न को अस्पताल ले जाकर आपरेशन किया गया, जहां वह जान-बूझकर घाव अच्छा न होने देते थे। इस तरह वह वहां डेढ़ महीना रहे। इसके बाद सबको जेल में भेज दिया गया। इस जेलयात्रा में—जो छ मास से अधिक की नहीं थी—उन्हें बौद्ध धर्म के साथ मार्क्सवाद और समाजवाद भी पढ़ने-सुनने का मौका मिला। तुलसीलाल गिरि नये राजनीतिक विचारों पर भाषण देते थे। इसी छ महीने के कारावास के समय धर्मरत्न ने 'जगत् ज्योति" नाम से पर्वतिया (नेपाली) भाषा में बुद्ध की एक संक्षिप्त जीवनी लिखी।

उस समय नेपाल के राष्ट्रीयतावादी नेताओं में आपस में भारी झगड़ा उठ खड़ा हुआ था, जिसकी जड़ में नेता बनने की धुन काम कर रही थी। कोइराला और रेगमी दोनों अपने को कांग्रेस का मुखिया मानते थे। धर्मरत्न चाहते थे कि दोनों में मेल हो जाय। भारत आने भर के लिए भी उनके पास पैसा नहीं था। इसलिए पचास रुपये पर अपनी एक बुद्ध-मूर्ति को बन्धक रखा और बनारस चले आये। बहुत कोशिश की। इसी सिलसिले में वह समाजवादी नेता" डा० राममनोहर लोहिया से मिले। विश्वेश्वरप्रसाद कोइराला से पहली बार उनका साक्षात्कार हुआ। गणेशमान, सूर्यबहादुर, धर्मरत्न तीनों ने बातचीत करके इस बात पर जोर दिया कि (१) चुनाव होने ही वाला है, इसलिए तबतक श्री डिल्लीरमण रेगमी का नेतृत्व रहने दिया जाय, (२) अविश्वास का प्रस्ताव करके जबर्दस्ती किसी को हटाना या रखना नहीं चाहिए। भारत में आये नेताओं से यह भी शिकायत की गई कि आप जैसे नेता देश से बाहर चले आये हैं और हमारे सब साथी कैद में हैं। पर धर्मरत्न अपने इस मिशन में सफल नहीं हुए। इसपर काठमाडू के लोगों ने निश्चय किया कि हम रेगमी और कोइराला दोनों में से किसी का समर्थन न कर तटस्थ रहेंगे। धर्मरत्न एक बार फिर कलकत्ता गये लेकिन इस बार भी उन्हें असफल ही लौटना पड़ा। इस पर अब नेपाल लोकतांत्रिक दल के नाम से एक नया दल कायम किया गया, जिसके अज्ञात संचालक और पोषक धिराज, सुवर्ण शम्शेर और महावीर शम्शेर थे, और ज्ञात नेता थे सूर्यप्रसाद उपाध्याय, महेंद्रविक्रम शाह और प्रेमबहादुर कसाकार। कोइराला और रेगमी दोनों दल विरोधी थे। धनी सरसकों के दल में काम करनेवालों के ऊपर रुपया

लेन का आक्षेप होना स्वाभाविक है। नेपाल में इन लोगो ने यह निश्चय किया कि पद्म शम्शेर ने जो सुधार-विधान तैयार किया है, उसको ही लेकर काम को आगे बढाया जाय। साथ ही यह भी सुझाव रक्खा गया कि दल का केन्द्र नेपाल में रहे, बाहर केवल प्रचार-विभाग काम करे।

इसी सिलसिले में ग्यारह आदमियो को मिलाकर नेपाल प्रजा-पंचायत का भी संगठन किया गया और ऊपर-ऊपर से शासको के प्रति भक्ति दिखलाते हुये यह प्रचार किया जाने लगा कि बाप (राणा प्रधान-मंत्री) का दिया हक बेटे को मिलना चाहिए। दो सप्ताह के भीतर ही काठमाडू में पंचायत के १५ सौ, पाटन में ४ सौ और भातगाऊं में ७ सौ सदस्य हो गए। यह भी निश्चय किया गया कि पद्म-संविधान को यदि मोहन शम्शेर ठुकरा दे तो सत्याग्रह किया जायगा। राणा धोखे में आने वाले थोडे ही थे। उन्होंने सभासदी के लिए पुर्जी निकाल दी। पंचायत वालों ने कहा—राणाओं ने अपने थूके को आप ही चाटा। विधान के सामने उनकी पुर्जी अवैधानिक है। पंचायत के तीन प्रतिनिधियो ने सिंह-दरबार में जाकर जब पुर्जी की अवैधानिकता के बारे मे कहा तो हजुरिया जरनैल ने उत्तर दिया—"वही पुर्जी विधान है।"

अब उपत्यका के नगरों मे फिर गर्मी पैदा हो गई थी। व्याख्यान और सभा करना बन्द था। ऐसी ही एक सभा मे हीरादेवी ने व्याख्याता को माला पहनाई, जिसपर पुलिस वाले नाम लिख ले गए। विश्वेश्वर ग्रुप इसके खिलाफ था, रेगमी और लोकतान्त्रिक दल इसके समर्थक थे। पंचायत वालों ने कहा—यदि तीनों पार्टियां मिल जायं तो हम भी अपनी पंचायत को उसमें मिला देंगे। सत्याग्रहियो की सूची बनाई जाने लगी, जिसमें तुरत ही छ-सात सौ आदमियों ने अपना नाम लिखा दिया। त्रिपुरवर भी सत्याग्रह के पक्षपाती थे, लेकिन उनके नेता विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला के सत्याग्रह के विरोध करने के कारण यह डर हो गया था कि शायद त्रिपुरवर आगे नही बढेंगे। इसपर धर्मरत्न स्वयं पहले जाने के लिए तैयार हो गये। तीनों नगरो में सत्याग्रह शुरु हो गया, और महीने-डेढ-महीने के भीतर तीन सौ बन्दी जेलो में पहुंच गये। उस समय विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला अन्तर्धान थे और अपनी असावधानी के कारण त्रिरत्न तुलाधार के घर में पकड लिये गये।

राणा पुलिस अब पूरी तौर से पशुता पर उतर आई थी। वह सत्याग्रहियो के घर की हरेक चीज को तोड़-फोड़ कर बरबाद करती। बहू-बेटिओं की इज्जत बरबाद करने की जब नौबत आ रही हो तो फिर सत्याग्रहियो को कौन अपने घर में शरण देने के लिए तैयार होता? राष्ट्रकर्मी मारे मारे फिर रहे थे, लेकिन धर्मरत्न ज्यापू (नेवार किसान) का भेस बदले जगह-जगह घूमकर प्रचार कर रहे थे। उनकी पत्नी हीरादेवी भी सत्याग्रह के सगठन मे जुटी हुई थी। जिस दिन उनके लडका हुआ, उसी दिन वारट आया। बच्चा पैदा होते समय दो सौ सिपाही पाच छ. दिन तक उनका घर घेरे रहे। पद्रह दिन के बच्चे का मुह देख, हीरादेवी के हाथ में पद्रह रुपया थमाकर चार आदमियो के साथ धर्मरत्न उपत्यका से निकल पडे और राणाशाही के आदमियो से आख बचाते चौथी रात को २ बजे भारत की सीमा के भीतर आदापुर स्टेशन (चम्पारन) पहुचे। उधर उसके पद्रहवें दिन हीरादेवी एक महीने के अपने बच्चे को गोद में लिये जेल चली गईं।

सत्याग्रह से जनता की शक्ति का पता तो लग गया; लेकिन यह भी साफ मालूम होता था कि जबतक सभी दल एक होकर कोशिश नही करते, तबतक राणा-शाही को दबाया नही जा सकता। फिर मेल-मिलाप के लिए जोर-शोर से कोशिश होने लगी। पटना में सभी दलो के आठ प्रतिनिधियो की बैठक हुई। बड़े भाई मातृका-प्रसाद कोइराला मेल के विरोधी थे। इसपर लोकतान्त्रिक कांग्रेस के प्रतिनिधि सूर्यप्रसाद ने रेगमी और पंचायत के मिलाने की बात कही। लेकिन फिर नेताओ में पद के लिए झगडा हो गया। बनारस में जाकर धर्मरत्न ने रेगमी से बातचीत की। उनका रगा की तरह का अपना एक दल कुछ थोडे से आदमियों का था। उधर विश्वेश्वरप्रसाद कोइराला की पीठ पर भारतीय सोशलिस्ट नेता थे। राष्ट्र-कर्मियों पर इस वक्त बड़ी बुरी घड़ी बीत रही थी। खाने का ठिकाना नही था और कुछ तो कहते थे कि इस जीवन से तो भद्रगोल जेल ही अच्छा था।

भारत में रहने का कोई फायदा न देख धर्मरत्न नेपाल लौट आये। तबतक हीरादेवी जेल से छूट आई थी। उन्हें हर पाचवे दिन पुलिस में हाजिरी देने की हिदायत थी। नेपाल लौटकर धर्मरत्न उत्तर के सीमान्ती इलाके दयबरु में डेढ महीने तक लड़कों को पढाते रहे। लेकिन, जहा-तहा फिरने से क्या काम चलने वाला था? अच्छे-अच्छे कार्यकर्ता चार सौ की सख्या में जेल में पड़े हुए थे। धर्मरत्न ने उनको चिट्ठी लिखकर देश की अवस्था बतलाई और कहा —"नेता लोग आपस में लड रहे हैं। पार्टिया निष्क्रिय हैं तो भी भारत की सहानुभूति हमारे साथ है। जनता के उत्साह को मरने देना हमारे लिए अच्छा नही होगा। राणाशाही अपनी बदनामी के डर से छोड़ने को इच्छुक है। तुम्हे भी छोटी-मोटी शर्तें पर जेल से बाहर निकल आना चाहिए। कम्यूनिस्ट चीन तिब्बत पर दावा कर रहा है। बाहर आकर काम करने का यह अच्छा मौका है।" धर्मरत्न ने चिट्ठी टकप्रसाद के पास भेजी थी, लेकिन उन्होने उस चिट्ठी को किसी को दिखलाया भी नही। लोग तो किसी शर्त पर भी निकल आने के लिए तैयार थे और बहुतो ने माफी भी माग ली।

सत्याग्रह चाहे और तरह से सफल न रहा हो, लेकिन उसके कारण अब जनता के हृदय से कानून और जेल का डर बहुत कुछ हट गया था। १९४९के अक्तूबर-नवम्बर में धर्मरत्न भी अब बाहर निकलकर घूमने लगे। लेकिन पुलिस ने पकड़कर थाने की हवालात में रख दिया। हीरादेवी की आर्थिक अवस्था बड़ी बुरी थी, लेकिन तब भी इधर-उधर से चावल लेकर भात पका पति के पास भेजती। तीन महीने हवालात में रखने के बाद धर्मरत्न को सिंह दरबार में भेजा गया। इस समय विश्वेश्वर ग्रुप का सत्याग्रह चल रहा था। गिरफ्तार बन्दी "राणाशाही मुर्दाबाद"का नारा लगाते पुलिस की हिरासत म जब निकले तो लोगो में बिजली-सी दौड गई, वह भारी सख्या में जमा हो गये। धर्मरत्न को मद्रगोल जेल में रखा गया। यहीं पर उन्होंने नेवार भाषा में "सदेय लिस" (तिब्बत देश का उत्तर) नामक खड काव्य लिखा। तीन महीने वहा और फिर नखूके जेल में नौ महीना रहकर राणाशाही के खतम होने के बाद उन्हें मुक्ति मिली।

बाहर आकर धर्मरत्न ने देखा कि चारो तरफ चार-तारा वाले काग्रेसी झडे का जोर है। जहा पहले लोग घर घर में राणा-खानाशाही की तस्वीरें टागने में होड लगाये हुए थे, अब वह चार-तारा झडा टागने में उसी तरह होड लगा रहे थे। लेकिन नेताओ मे इस वक्त भी फूट का राज था। धर्मरत्न जेल से निकलते ही अब धुआधार भाषण दे रहे थे और उधर घर मे चूहे दंड पेल रहे थे। काग्रेस का गगा-जमुनी मत्रिमडल बन चुका था, लेकिन मंत्रियो की चाल-ढाल को देखकर लोगों में असतोष पैदा होने लगा था। धर्मरत्न के घर की हालत को किसी तरह धिराज ने जान लिया और उन्होने उनकी पत्नी के पास कुछ सहायता भेज दी। तरुण कोइराला अधिकारारुढ थे। वह बडे ठाटबाट से राजधानी में निकलते। रेगमी को मोहन शम्शेर का कृपापात्र कहकर बदनाम किया जाता था। उन्हें लोग बोलने तक का अवसर नही देते थे। इसी समय धर्मरत्न ने साहस करके अपने सभापतित्व में रेगमी का भाषण कराया। सानु-टुडी खेल में २ बजे के समय रेगमी की राष्ट्रीय काग्रेस की यह खुली सभा हुई, रेगमी के भाषण पर किसी ने कोई आपत्ति नही की। धर्मरत्न के व्याख्यान में बात-बात पर ताली पिट रही थी। धर्मरत्न की वाणी का चमत्कार आज राजधानी की जनता के देखने में आया और चारो ओर उसकी चर्चा सुनाई देने लगी। आखिर नेवार प्रधान नेपाल-उपत्यका में धर्मरत्न जैसा जादू का असर रखनेवाला वक्ता भी तो नहीं था। सभी राजनीतिक सस्थाए उन्हे अपनी सभाओ में भाषण देने के लिए निमत्रित करने लगी और चाहने लगी कि वह उनके सदस्य हो जाय, लेकिन, धर्मरत्न यमी—अब इसी नाम से वह प्रसिद्ध थे—भिन्न भिन्न दलों के दलदला के तजर्बे से ऊब गये थे और उनमे शामिल होने के लिए तैयार नही होते थे।

१९५१ में नेहरू नपाल मे आनेवाले थे। सभी दल उनके स्वागत के लिए होड लगाये हुए थे, लेकिन नेपाल की जनता नई सरकार के शासन में अभाव-ही-अभाव देखकर असतुष्ट हो चुकी थी, जिससे कोई भी लाभ उठा सकता था। यह तो निश्चय ही है, कि दिल्ली के सबध के कारण सरकार का खर्च कई गुना बढ़ गया—पहले

राणा तानाशाही खजाने पर हाथ साफ करती थी, अब वही काम नौकरशाही कर रही थी। चारों तरफ भाई-भतीजे-भांजों की भरमार और भ्रष्टाचार का अखंड राज्य था। वामपक्षी लोगों ने नेहरू को काला झंडा दिखलाने की तैयारी शुरू की। किसान संघ से धर्मरत्न का भी घनिष्ट संबंध था। वह भी काले झंडे में शामिल होना चाहता था। धिराज ने धर्मरत्न को बुलाकर कहा कि अपने अतिथि के लिए ऐसा करना ठीक नहीं होगा। धर्मरत्न ने एक बार संघ में निश्चय करा लिया कि काला झंडा नहीं दिखायेंगे, लेकिन रात को निश्चय बदल दिया गया। काला झंडा दिखलाया गया। सरकारी गोलियों से चिनिया काजी तरुण ने प्राण गंवाये। एक ओर गृहमंत्री विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला जनता के कोपभाजन हुये तो दूसरी ओर गंगा-जमुनी मंत्रिमंडल में राणाओं का रहना मुश्किल हो गया। धर्मरत्न ने मोहन शम्शेर से मिलकर कहा—"यदि आप अपनी पद-मर्यादा को बनाये रखना चाहते हैं और राणाओं को भी, तो राणा लोगों का जितना धन विदेशी बैंकों में लगा हुआ है, उसे देश में मंगाकर सूद पर लगा दीजिये, इससे देश की औद्योगिक उन्नति बड़ी तेजी से होगी और राणाओं के प्रति लोगों का पुराना भाव कम होगा। मोहन शम्शेर देश से सदा निर्वासित होने के लिए बाध्य हो रहे थे। उन्होंने यमी की बात को बड़े ध्यान से सुना और कहा— 'सुझाव तो अच्छा है। मैं और लोगों से पूछकर सात दिन बाद जवाब दूंगा।" लेकिन अपने लूट के विदेशी बैंक में सुरक्षित जमा पचासों करोड़ रुपयों को राणा लोग नेपाल में क्यों लौटाने लगे?

गंगा-जमुनी मंत्रिमंडल तोड़ दिया गया। बड़े भाई मातृकाप्रसाद कोइराला ने प्रधान-मंत्री का पद संभाला। अब सारे मंत्री कांग्रेस के थे। इसी समय धिराज के कहने पर धर्मरत्न भी "माननीय धर्मरत्न यमी" के नाम से मंत्रिमंडल में उपमंत्री बने, और नौ महीना बाद मातृका-मंत्रिमंडल के भंग होने पर वह "भूतपूर्व मंत्री" बन गए।

धर्मरत्न यमी लड़ाई से प्रायः अशिक्षित-से थे। गरीबी के जीवन से वह बचपन ही से अभ्यस्त थे उनकी जाति (उदास नेवार) दब्बू-बनिया कही जाती थी। इतनी प्रतिकूल परिस्थितियों में भी वह किस तरह सुशिक्षित-सुसंस्कृत होकर संघर्षों के भीतर आगे बढ़े, यह उनके इस जीवन से मालूम होगा।



मेरे पिताजी को फोटोग्राफी का शौक था। बक्स-जैसे दो बड़े-बड़े कैमरे हमारे घर में थे। हमें सामने कुर्सी पर बिठाकर वे एक काला कपड़ा अपने सिर पर ओढ़कर कैमरे में देखते। एक दिन मैंने उनसे कहा, "तस्वीर खींचने के इस यंत्र में क्या दिखाई देता है, यह जरा मुझे देखने देंगे?" उन्होंने मुझे कैमरे के पीछे एक चौकी पर खड़ा किया और सिर पर काला कपड़ा ओढ़ाकर कहने लगे, "देखो, उस सफेद शीशे पर क्या दिखाई देता है?" पहले तो मेरा यह ख्याल था कि कांच में से आर-पार दिखाई देता होगा और मुझे दीवार पर लटकनेवाला पर्दा देखना है। पर मुझे तुरंत ही मालूम हो गया कि सफेद शीशे पर ही अक्स पड़ता है। लेकिन अरे, यह क्या? सामने की कुर्सी तो उलटे पाववाली दिखाई देती है! और वह देखो, केशू कुर्सी पर आकर बैठ गया तो वह भी सिर नीचे और पैर ऊपर करके बसता है। वह देखो, बिल्ली भी पूंछ उठाकर केशू के पैरों में अपनी नाक रगड़ रही है। केशू जीभ निकालता है और कुत्ते की तरह हाथ हिलाता है। अब मालूम हुआ कि सच्ची दुनिया औंधी ही है। पागल की तरह हम पैरों पर चलते हैं, इसलिए हमें यों औंधा दिखाई देता है। दर-असल आकाश नीचे है और जमीन ऊपर है!

—काका कालेलकर

चित्रकला

रामचन्द्र तिवारी

मनुष्य की संस्कृति और उसकी कला की आधार उसकी अनुभूतियां हैं। ये अनुभूतियां उसे अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त होती हैं। प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय अलग-अलग प्रकार के उत्तेजनों से प्रभावित होती है। यह उत्तेजन विभिन्न शक्तिरूपों की भांति हमें प्राप्त होते हैं। त्वचा के ज्ञानतंतु दबाव के माध्यम से स्पर्श का अनुभव करते हैं। जिह्वा और नासिका के ज्ञानतंतु पदार्थों की रासायनिक बनावट के आधार पर स्वाद और गंध से संवेदित होते हैं। वायु में गतिवान स्वरतरंगें अपनी शक्ति से हमारे लिए सुनना संभव बनाती हैं और सूर्य से चलकर आनेवाला जो प्रकाश है वह हमें ज्योति देता है, आंखोंवाला बनाता है। दृष्टि की अनुभूति अन्य सब अनुभूतियों से व्यापक, गहरी और प्रधान है।

कला का आधार हैं अनुभूतियां। दृष्टि से हम देखते हैं, प्रकाश हमें रूप की अनुभूति देता है। सौर प्रकाश रश्मियां जब क्रीडा में अपने को वितरण करती हैं तो हम उन नाना रंगों का अनुभव करते हैं जो सौंदर्य को मांसलता प्रदान करते हैं। रूप और रंग की सीमा हम रेखा में देखते हैं। सहज शक्ति प्रकाश पर हमारा जो अनुभव आश्रित है वह है दृष्टि। इस अनुभूति पर जो कला विकसी है, वह है चित्रकला। चित्रकला संवेदना की वह अभिव्यक्ति है जो प्रकाश के माध्यम से ग्राह्य होती है। यह रेखा में चलती है, रंगों में खिलती है और रूप बनकर सामने आती है।

चित्रकला कला है। प्रकाश से उसका संबंध है। हुआ करे! कला के प्रति इतनी ममता क्यों? सीधा प्रश्न यह है कि इस कला की उपयोगिता क्या है? कला की उपयोगिता का प्रश्न अभी नहीं उठा है, काफी पुराना है। स्पष्ट उत्तर के अभाव में आचार्यों ने अपनी चिरपरिचित विभाजन की रीति से काम लिया। उन्होंने कहा कला तो ठीक! पर कला दो प्रकार की है, एक है उपयोगी कला और दूसरी है ललित कला, इसका मोटा अर्थ जो मैं समझा हूं वह यह कि जो ललित कला है, उसे उपयोग से विशेष संबंध की आशा नहीं करनी चाहिए। मैं अपनी बात यदि कहूं तो मुझे आचार्यों की खींची विभाजन रेखा कहीं दिखाई नहीं पड़ती। मनुष्य ने जीवन के प्रत्येक चरण में देश-काल के अनुसार उपयोगिता पर लालित्य का आरोप करने का प्रयत्न किया है। वह ललित कला को अधिक-से-अधिक उपयोग की ओर खींचता रहा है। ललित कला धीरे धीरे उपयोगी कला में परिवर्तित होती रही है। किसी व्यक्ति, कबीले या जाति की संस्कृति का स्तर नापने के लिये यदि हम एक मानदंड बनाना चाहें तो हम उस मानदंड को उपयोगी और ललित कला की शब्दावली में बता सकते हैं। हम कह सकते हैं कि जिस व्यक्ति, कबीले या जाति की उपयोगी कला में ललित कला आपेक्षिक रूप से जितनी अधिक उतर आई है, उसका सांस्कृतिक स्तर उतना ही अधिक ऊंचा है।

कला और संस्कृति। कला अधिकाधिक उपयोगी हुई और उससे संस्कृति ऊपर उठी। पर संस्कृति की बात इतनी क्यों? उसकी उपयोगिता क्या है? वह क्या है? संस्कृति मनुष्य से अलग कुछ नहीं है। वह व्यक्ति के अनुभव का, सर्वांगीण अनुभव का, निचोड़ है। वह उसके जीवन का रस है। वह उसके जीवन की कला है। संस्कृति व्यक्ति के जीवन की कला है। व्यक्ति अकेला ही नहीं जीता, साथ-साथ समाज में भी जीता है, इसलिए संस्कृति सामाजिक जीवन की भी कला है। जब सामाजिक और वैयक्तिक जीवन एक-दूसरे पर क्रिया प्रतिक्रिया करते हैं तो संस्कृति सुधरती, सँवरती और मंजती है। आचारों और व्यवहारों की निचली मर्यादाएं ऊंची उठती हैं। मानव-इतिहास की प्रधान गति पर यदि ध्यान रखें तो दिखाई देता है संस्कृति की दिशा संकोच से फैलाव की ओर है, एक से अनेक की ओर है, ठोस से सूक्ष्म की ओर है, विचार और कल्पना की ओर है।

संस्कृति ने बड़े-बड़े जनसमुदायों को इकट्ठा कर

दिया है। उसके बीच की देश-भाषा की दीवारें मिटा दी हैं। संस्कृति की उपयोगिता है मनुष्य के आत्मिक विकास के लिए। इसलिये कि मानव अपनी प्रतिमूर्ति विश्व-मानव में देख सके और उससे शक्ति प्राप्त कर सके। वह संसार में जिए। अधिक सौंदर्य, अधिक आनन्द, और अधिक संपूर्णता के साथ जिए ।

महान कलाकार वह है, जो उस बात को कहता है जिसे अधिक-से-अधिक मनुष्य कहना चाहते हैं । जो अधिक-से-अधिक मनुष्यों के भीतर उपस्थित है, पर जिसकी वे एक झलक भर पाते हैं। जिसको वे पकड़ना चाहते हैं पर पकड़ नहीं पाते । जो उनकी होते हुए भी उनकी मुट्ठी में से निकल जाती है। किन्तु जब कलाकार उसे पकड़ कर उनके सामने रख देता है तो वे चमत्कृत हो उठते हैं। एक-दूसरे की ओर चमकती आंखों से देखते हैं और कहते हैं, यही तो हमारी बात है। जो कलाकार जितनी हमारी बात कहता है वह उतना ही हमारा हो जाता है।

पर चित्रकला को वाणी का वरदान नहीं है, वह गूंगी है। वह मौन रहती है, वह नीरव है । पर नीरवता को उसने अपनी सीमा नहीं माना है । उसने नीरवता को अपनी वाणी बना लिया है। जिस प्रकार गूंगों की भाषा के लिए सारे संसार में व्याकरण एक है, उसी प्रकार चित्र कला की नीरवता सदा और सर्वत्र एक ही स्वर में बोलती है। देश और भाषा का व्यवधान वह नहीं मानती।

चित्र बोली गई भाषा नहीं, लिखी हुई भाषा है, और वह संसार की विभिन्न लिपियों से अधिक व्यापक और सीधी भाषा है। यह अत्यंत शक्तिशाली भाषा है । उसकी शक्ति का अनुभव करने के लिए मूक चित्रपटों का उदाहरण लिया जा सकता है। वे कुछ बोलते नहीं, पर मुखरता में उनकी समानता करना क्या सरल काम है ?

चित्रकला का माध्यम प्रकाश है। प्रकाश सीधा चलता है और तेज चलता है। तेज भी ऐसा कि उसकी गति को कोई पा नहीं सकता। चित्रकला का प्रभाव भी इसी भांति सीधा होता है और शीघ्र होता है। वह साक्षरता और निरक्षरता की चिंता नहीं करता। वह अज्ञान की मोटी चट्टान में होकर पलक मारते ही सीझ जाता है। वह सूचना-मात्र नहीं देता। हृदय तक उतर जाता है।

चित्रकला आदि-कलाओं में से है। उसके साधने के लिए एक हस्त-कौशल या शिल्प की आवश्यकता होती है। चित्रकला का मुख्य ध्येय रहा है; चित्रकार की संवेदना को रूपवान बनाना। यह संवेदना चित्रकार को ठोस प्राकृतिक वस्तुओं से प्राप्त हो सकती है और कल्पित अप्राकृतिक-प्रकृति में अप्राप्य (विचार) वस्तुओं से भी मिल सकती है । चित्रकार भावना-जगत की एकदम प्रवाही तथा तरल अनुभूतियों को भी रेखा और रंगों द्वारा व्यक्त कर सकता है। प्राकृतिक प्रतिलिपियों में प्राय राजाओं, महाराजाओं धर्म-गुरुओं या कुछ धनिक पुरुषों के चित्र पाये जाते हैं। इसी प्रकार के कल्पित चित्र वे हैं जो राम, कृष्ण, ईसा आदि के जीवन से संबधित घटनाओं का चित्रण करते हैं। मनुष्य ने सत्कर्मकारी के लिए स्वर्ग और कुकर्मी के लिए नरक की कल्पना की है। स्वर्ग में देवता और नरक में अदेवता की बसावट भी सोची है। स्वर्ग के आनन्द और नरक के कष्ट को भी विचारा है; पर यह सब कल्पना और विचार उसके मन में ही नहीं रह गये। चित्र-शिल्पियों ने विचारों के अनुरूप रूप कल्पना की, और उसे पट पर अंकित किया। आज हमें राक्षस तथा देवताओं के स्वरूप, स्वर्ग का सुख और नर्क का कष्ट चित्रकारों की संवेदना-शील तूलिका की कृतियों में देखने को मिलता है।

यह कुछ समय पीछे की बात है। अब विज्ञान ने बड़ी उन्नति कर ली है। कैमरा एक आश्चर्यजनक सीमा तक क्षमतावान हो गया है। जहां तक प्राकृतिक वस्तुओं की प्रतिलिपि करने का संबंध है उसने चित्रशिल्पियों का काम बहुत कुछ बटा लिया है और इसका फल यह हुआ कि जहां एक ओर प्राकृतिक वस्तुओं के, ठोस दृश्य वस्तुओं के एक-से-एक सुन्दर फोटोग्राफ तैयार किये जा रहे हैं, वहां, दूसरी ओर चित्रशिल्पी इस कार्य के लिए स्वतंत्र हो गया है कि वह भावना-जगत का मंथन करे और उसमें से रूप के रत्न निकालकर प्रकाश में लाए। वे रूप के रत्न जो उसके अपने तो होंगे ही; पर सबके भी होंगे और इस सबके होने के नाते जगत में आनन्द के वितरक बनेंगे।

मनुष्य का व्यक्तित्व कभी अपने भीतर सम्पूर्ण

(शेष पृष्ठ २७१ पर)

अमृतस्य पुत्राः

प्रेमस्वरूप श्रीवास्तव

राजा के यहां पुत्रजन्म के उपलक्ष में एक विशाल भोज का आयोजन था।

राजा ने अपने चरों को विशेष आज्ञा दी थी कि नगर का कोई भी परिवार अनिमन्त्रित न रहने पाए। अतः दो दिन पहले से ही चरों के दल निमन्त्रण-पत्र बांटने में व्यस्त हो गए।

दो चर महर्षि की कुटिया में भी आये। महर्षि ने निमन्त्रण-पत्र पढ़ा, किन्तु मुस्कराते हुए उसे फिर चरों को ही लौटा दिया। अतिथियों के स्वागताध्यक्ष आये, किन्तु उन्हें भी निराश लौटना पड़ा। राज्य के प्रधान अमात्य को भी इसी स्थिति का सामना करना पड़ा। अन्त में बारह अश्वों के स्वर्ण रथ पर आसीन स्वयं महाराज महर्षि की कुटिया में पधारे।

"गुरुदेव! सेवक से क्या अपराध हुआ है?" राजा ने विनम्रता की साक्षात् मूर्ति बनकर कहा।

"राजन्! उस दिन मैं अन्यत्र निमन्त्रित हूं।" महर्षि ने किंचित् खेद प्रकट करते हुए कहा।

"किन्तु...!" महाराज रुक गए। आशा के विपरीत उत्तर था। उन्हें लगा कि जैसे महर्षि उनका अपमान कर रहे हैं, किन्तु तुरन्त ही उन्होंने इसे अपना भ्रम समझकर मन को संयत कर लिया।

'कहो, रुक क्यों गए राजन्।' महर्षि ने कहा।

"गुरुदेव! उस दिन प्रत्येक नगर निवासी मेरे यहां निमन्त्रित है।"

'हो सकता है।" महर्षि ने निर्विकार भाव से उत्तर दिया।

और इस बार भ्रम ने राजा का साथ नहीं दिया। उन्हें लगा कि जैसे उनके मान, ऐश्वर्य, यश सभी को महर्षि ने बलात् कुचलने का प्रयत्न किया हो।

"गुरुदेव! मैंने अपने कर्तव्य का पालन कर दिया।" राजा ने अभिमान के भार से झुककर अभिवादन करते हुए कहा और द्वार की ओर घूम पड़े।

दो क्षण पश्चात् ही दुर्ग-द्वार के शिखर प्रहरी ने घोषणा की—एक सप्ताह तक नगर का प्रत्येक व्यक्ति राजा के यहां निमन्त्रित है। सैनिकों को आदेश मिला—विशेष भोज के दिन राज्य में किसी के यहां चूल्हा न जले। सब लोग राजा के यहां सम्मिलित हों। आज्ञा उल्लंघन करनेवाले के लिए विशेष दंड की व्यवस्था की गई। इतना हो जाने पर राजा के मन को कुछ आत्मसंतोष हुआ।

सचमुच ऐसे सुवासित और स्वादिष्ट व्यंजनों का किसी नगरनिवासी ने जीवन में दर्शन तक न किया था। प्रातःकाल से ही लोगों का तांता लग गया। लोग जितना खाते नहीं थे उससे कहीं अधिक प्रशंसा कर रहे थे। रत्नखचित विशाल मंडप के नीचे भोजन करते देश के कोने कोने से आमन्त्रित पंडितों, महात्माओं, साधुओं और सन्यासियों के मुख से दीर्घसमासयुक्त पदावलियों में राजपुत्र के प्रति आशीर्वाद निकल रहे थे, शतायु होने की शुभकामनाएं प्रकट की जा रही थीं।

सन्ध्या-समय स्वर्ण-रथ पर चढ़कर राजा नियमित वायु सेवन के लिए बाहर निकले।

जिस समय रथ नगर के बाहर उन्मुक्त वायु में दौड़ रहा था, राजा ने एक आश्चर्यजनक घटना देखी। उन्होंने तुरन्त रथ रुकवाया और नीचे उतर पड़े। सामने नगर निर्वासित चांडाल की झोंपड़ी थी और वहीं बैठे भोजन कर रहे थे महर्षि।

राजा को अपने नेत्रों पर विश्वास नहीं हुआ। वे और समीप चले आए। उन्होंने देखा—महर्षि के सामने हाथ बांधे चांडाल बैठा था और वे अत्यन्त प्रेम के साथ ढाक के पत्ते पर नमक के साथ जौ का सत्तू खा रहे थे।

महर्षि मुस्कराए और राजा मूर्तिवत् अवाक् खड़े रहे।

"राजन्! भाग्य की बात कि जस दिन तुम्हारे पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ, उसी दिन इस चांडाल के यहां भी पुत्र

(शेष पृष्ठ २६२ पर)

प्रकृति का अध्ययन

व्रजकृष्ण चांदीवाला

समाज ने अपने ऊपर प्रतिबन्ध लगाकर अपने हो को परतंत्र क्यों बनाया ? सुख-प्राप्ति के लिए।

सत्य को ही लीजिए। सत्य को धर्म में प्रथम स्थान दिया जाता है, क्योंकि बिना सचाई के समाज की व्यवस्था टिक ही नहीं सकती। जहां सचाई न होगी, विश्वास भी न होगा और बिना विश्वास के मनुष्य एक कदम भी नहीं रख सकता। असत्य और अविश्वास से समाज के टुकड़े-टुकड़े हो जायगे। जो व्यक्ति झूठ बोलने और बरतने में अभ्यस्त है वह भी अपनी होशियारी से उसे सत्य ही करके बताना चाहता है। दूसरा उसे सत्य ही मानता है।

संसार में हिंसा ही अधिक है, इसीलिए अहिंसा को नकारात्मक बताया गया है। यह जानते हुए भी कि हर स्थान के साथ हिंसा हो रही है अहिंसा को परम धर्म माना गया है, क्योंकि बिना अहिंसा और प्रेम के समाज टिक नहीं सकता। इसी प्रकार धर्म की अन्य भावनाओं पर जब हम विचार करेंगे तो पता लगेगा कि व्यक्ति जिस बात में अपना लाभ देखता है और अधिक व्यक्तियों का (समाज का) अधिक लाभ देखता है, तो उस कृत्य को शुभ कर्म का नाम देकर धर्म-कार्य मान लेता है और उसके विपरीत को अशुभ कर्म। इसीलिए एक कृत्य एक स्थान पर धर्म-कार्य और दूसरे स्थान पर अधर्म-कार्य हो जाता है। जैसे खून करना पाप माना गया है, क्योंकि यह समाज-व्यवस्था के लिए हानिकारक है। व्यक्ति का खून करने में मनुष्य का स्वार्थ निहित है, इसलिए हत्यारे के लिए मृत्यु दंड की व्यवस्था है, मगर यही हत्या यदि स्वार्थ के लिए न करके देशहित के लिए की जाय, तो वह हत्यारा देश-प्रेमी माना जाता है। मनुष्य का खून तो दोनों अवस्थाओं में हुआ मगर वह किस भावना से हुआ, इसने कीमत को बदल दिया। पहला कृत्य पाप और दूसरा पुण्य कहलाने लगा। स्त्री के बच्चा होता है। यह कृत्य प्राकृतिक है। वह बच्चा स्त्री अपने पुरुष से पैदा करे तो धर्म-पुत्र कहलायगा, और लोग खुशियां मनाएंगे। वही पुत्र पर-पुरुष से हो तो जार-पुत्र कहलाएगा और लोग उसकी माता से ही नहीं, उस बालक से भी घृणा करेंगे। प्रकृति इस बात को नहीं देखती। वह तो इतना जानती है कि स्त्री-पुरुष का जहां संयोग हुआ कि उसका परिणाम सन्तान हो गई। वह कृत्य पुण्य-कार्य है या पाप-कार्य इसकी धारणा समाज की अपनी दी हुई कीमतों पर निर्भर है। जैसे धृतराष्ट्र और पांडु का जन्म पर पुरुष से होते हुए भी दोनों धर्मपुत्र माने गये। अग्नि का कार्य जलाना है। वह तो हर वस्तु को भस्म कर देगी। यह उसका प्राकृतिक स्वभाव है। वही अग्नि हमारे लिए जब भोजन पकाती है तो हम उसकी पूजा करते हैं। वह जब हमारे घरों को जला डालती है तो हम रोते हैं। वर्षा हमारे लिए कितनी उपयोगी है। यदि जल न गिरे तो खेती कैसे हो, हम प्यास कैसे बुझाएं और जिन्दा भी कैसे रहें ? वर्षा के होते ही किसान में जान आ जाती है, लेकिन वही वर्षा यदि कुछ दिन न रुके तो बाढ़ आ जाए। गांव बह जाए। सब उसी वर्षा को कोसने लगें। जल के लिए सबकुछ समान है मगर बरसने की क्रिया ने जो परिणाम पैदा किया उससे प्रभावित होकर हमने उसको भली-बुरी कीमत दे दी।

इन सब बातों से पता चलता है कि वास्तव में पाप और पुण्य, अच्छाई और बुराई, नेकी और बदी स्वतः कुछ अर्थ नहीं रखते, जैसे जल के साथ रंगों का समावेश होने से वह पानी हरा, नीला, पीला आदि कहलाने लगता है, स्वतः पानी स्वच्छ है, वैसे ही कर्म भी परिणाम से अच्छा या बुरा हो जाता है, स्वतः वह न अच्छा है न बुरा।

कृष्ण भगवान मनुष्य की मनोवृत्ति को बदलना चाहते थे। वह उसे प्रकृति की तरह स्वाभाविक बनाना चाहते थे और मनुष्य की दृष्टि को, उसकी भावना को इतना ऊंचा उठाना चाहते थे कि उसमें संकीर्णता और असहिष्णुता न रहे। वह पाप-भावना से तो बेशक बचने को कहते थे, क्योंकि समाज की प्रगति में वह बाधक है,

मगर पापी से घृणा करने को वह नही कहते थे । उनकी पाप और पुण्य की धारणा बिल्कुल भिन्न थी। वह पाप और पुण्य को एक ही सिक्के के दो बाजू देखते थे और जिस दृष्टि से समाज पाप और पुण्य को आकती है उसको वह बदलना चाहते थे। उनकी जिन्दगी में महान पापी-से पापी को भी उतना ही स्थान था जितना कि एक पुण्यात्मा को। क्योंकि वह मानते थे कि स्वभावत कोई पापी या पुण्यात्मा है ही नही। हर व्यक्ति में नेकी और बदी की भावना मौजूद है। आज जिसे घोरतम पापी गिना जाता है, वह कल ही पुण्यात्माओ में श्रेष्ठ गिना जा सकता है और जो आज पुण्यात्मा गिना जाता है उसका क्षण भर में पतन भी हो सकता है। पापी और पुण्यात्मा के बीच में इतनी ही बारीक लाइन है जितनी वर्तमान और भूत में। जो इस क्षण वर्तमान कहलाता है वह उस क्षण के गुजरते ही भूत बन जाता है। इसलिए वह मानते थे कि पापी और दुराचारी को भी प्रगति करने का पूरा अधिकार है। और इसीलिए उन्होंने कहा,'भारी दुराचारी भी यदि अनन्य भाव से मुझे भजे तो उसे साधु हुआ ही मानना चाहिए, क्योंकि अब उसका अच्छा सकल्प है ?' गी० ६ ३० ॥

उन्होने यह भी नही कहा कि दुराचारी को नरक की यातनाए भोगनी ही पड़ेंगी। उन्होने यह भी नही कहा कि उसे अमुक-अमुक प्रायश्चित करने पड़ेंगे। उनके लिए एक ही वस्तु काफी है हृदय का परिवर्तन। जहा उसने अपना सकल्प बदला कि भगवान की दृष्टि में वह साधु हो गया। भगवान दड का रूप नही है। वह दया का रूप है। वह हृदय को देखते हैं और उसी पर से वह मूल्य आकते हैं। उनका कहना है कि हर मनुष्य को ऊपर उठने का, प्रगति करने का अवसर मिलता रहता है। आत्मा का गुण ही ऊर्ध्वगामी है। अग्नि सदा ऊपर की ओर जलती है। वह इसान को आत्मा रूप देखते थे और मानते थे कि अन्तिम ध्येय जो मुक्ति है वह मनुष्य शरीर द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। मनुष्य अपूर्ण है, लेकिन हर एक मनुष्य इस अपूर्णता से पूर्णता की ओर जा रहा है। एक दिन अपने ध्येय पर वह अवश्य पहुचेगा। इसलिए बीज रूप मे प्रगति करने की सब शक्तिया हर जीव मे मौजूद रहती है। किसी में वह विकसित हो उठती है, किसी में विकसित होने में देर लगती है। प्रभु ने कोई भी वस्तु ससार मे व्यर्थ नही बनाई है। सब उसी के अग है, तब ही वह सम्पूर्ण है। उसकी सृष्टि में कोई वस्तु व्यर्थ नही है। जिसे हम पापी कहते हैं, न मालूम उसी से उसको क्या-क्या काम लेना है और जिसे हम पुण्यात्मा कहते हैं, न मालूम वह कितना धूर्त और धोखेबाज है ? सच्ची जाच तो वही कर सकता है जो सर्वज्ञाता है। देखने में आता है कि समाज जिन्हें पाप-योनि, नीच गिनता था, उन्हीमें बडे बडे भक्त हुए। सूरदास जो विषयवासना में लिप्त रहते थे, उच्च कोटि के भक्त बन गये। वाल्मीकि ऋषि जो डाकू थे, आदिकवि और राम के परम भक्त कहलाए। पिंगला वेश्या ज्ञानी बन गई। सदना कसाई से ब्राह्मण को उपदेश लेना पड़ा। यह घटनाए इस बात का प्रमाण हैं कि भगवान की कसौटी जुदा है।

समाज में ही क्या रहा है ? एक व्यक्ति है, उसकी भूल पकड़ी जाती है। वह दड पाता है। पापी कहलाता है। हजारो और लाखो उसी पाप को मन से, कर्म से, वाणी से क्षण क्षण करते रहते हैं, मगर पकडे नही जाते। समाज में वह प्रतिष्ठित है, पुण्यात्मा हैं, नेता हैं। लोग उनके पीछे चलते हैं। मगर मनुष्य सबको धोखा दे सकता है, प्रभु को धोखा नही दे सकता, क्योंकि वह जानता है कि असल अपराधी कौन है ?

भगवान कृष्ण ने स्वभाव को परखा और उसके अनुसार उसके लिए नियम बनाये। उन्होंने यह नही कहा कि पापी से घृणा करो, बल्कि कहा .

'हितेच्छु, मित्र, शत्रु, निष्पक्षपाती, दोनो का भला चाहने वाला द्वेषी, बन्धु और साधु तथा पापी इन सबमें समान भाव रखता है, वह श्रेष्ठ है ।।६ ६ ॥

यह तो हुई मनुष्य समाज की बात, मगर प्रभु की सृष्टि में पशु-समाज भी है। उसके लिए प्रभु ने कहा

'विद्वान और विनयी ब्राह्मण में, गाय में, हाथी में, कुत्ते में और कुत्ते को खानेवाले चाडाल मनुष्य में ज्ञानी समदृष्टि रखते हैं'।।५ १८॥

समदृष्टि रखने का अर्थ यह नही है कि ब्राह्मण का भोजन गाय को खिला देगे और गाय का ब्राह्मण को। बल्कि यह कि वह प्रभु की सृष्टि में सबकी उपयोगिता

ममता का आधार

देवराज 'दिनेश'

पात्र-परिचय

रूपा—

महेश—रूपा का पति

दुर्गादेवी—महेश की मां

नरोत्तम—महेश का मित्र

बच्चा—नरोत्तम का पुत्र

पहला दृश्य

(स्थान—एक मध्यम श्रेणी का मकान, रूपा बैठी मशीन पर कपड़े सी रही है। साथ-ही-साथ कुछ गुनगुनाती जा रही है।)

आजा निंदिया, आजा
मेरे इस प्यारे मुन्नू की आंखों बीच समाजा।
आजा निंदिया आजा।
रोता हो तो इसे हंसाऊं,
गीत सुनाकर इसे सुलाऊं,
यह मेरे मन की दुनिया,
मेरे दिल का राजा।
आजा निंदिया आजा।

(गाती-गाती अचानक सिसकियां भरने लगती है)

दुर्गादेवी : (सिसकियां सुनकर आती है) रूपा, बेटी रूपा, मैं तुझे कैसे समझाऊं बेटी, कि भगवान के आगे मनुष्य का कुछ भी वश नहीं चलता। धीरज धर बेटी, आज मुन्नू को भगवान के घर गये दो महीने हो गये; पर तेरी आंखों के आंसू न सूखे, अपने शरीर का ध्यान रख, मेरी रानी। मुन्ना क्या हमें प्यारा नहीं था? तू क्या समझती है कि मुझे और महेश को उसकी मौत का दुख नहीं है? इन्सान के पास धीरज धारण करने के अलावा कोई चारा नहीं है, बहू!

रूपा : माजी, मैं क्या करूं, मैं बेबस हूं, मैं जितना उसे भुलाने की कोशिश करती हूं वह उतना ही अधिक मुझे याद आता है। कई बार तो ऐसा लगता है कि जैसे वह अभी-अभी आंगन में खेल रहा हो। उसके बिना यह सूना घर मुझे खाने को दौड़ता है। बैठे-बैठे मेरे कान बजने लगते हैं। कभी-कभी ऐसा लगता है जैसे वह तोतला बहता हुआ, मुझसे आंख मिचौनी खेलता हुआ, इस अलमारी के पीछे छिप गया हो। और मैं पागल की तरह उसे ढूंढने चल देती हूं। (फिर रोने लगती है)

दुर्गा : साहस से काम ले बेटी! भगवान जल्दी ही तेरी गोद भरेगा। (रूपा रोती जा रही है) तू मुझ बुढ़िया की ओर देख! सबसे अधिक तो वह घर में मेरा खिलौना था, हर वक्त मेरे साथ ही खेलता। मुझ बूढ़ी दादी की लकड़ी टूट गई है, बेटी। इस बुढ़ापे में मुझे कोई दादी कहनेवाला न रहा। महेश दफ्तर से आता था, उसे देखकर खिल उठता था, अब उसका मुरझाया हुआ चेहरा देखकर, मेरा तो दम अन्दर-ही-अन्दर घुटा जाता है। (पुचकारती है) चुप कर मेरी रानी, भगवान जल्दी ही तेरी सुनेंगे।

रूपा : भगवान का नाम मेरे सामने मत लो माजी, वह तो अन्धे और बहरे हैं। पहले जब मुन्नी तीन वर्ष की हुई, उसे भी भगवान ने उठा लिया, और अब जब मुन्ना . . (रोने लगती है। नेपथ्य से महेश की आवाज आती है, वह दरवाजा खटखटाता है)

महेश : (नेपथ्य से) मां, दरवाजा खोलो।

दुर्गा : (ऊंचे स्वर में) आई भैया। (रूपा से) रानी बहू, पोंछ डालो अपनी आंखों के आंसू, तुम्हारी डबडबाई आंखें देखकर महेश बहुत दुखी होगा। बेचारा दफ्तर से थका-मांदा आया है। हो सके तो चाय बना दो उसके लिए, नहीं तो मैं आकर बना देती हूं।

रूपा : नहीं आप जाकर दरवाजा खोलिए, मैं जाकर चाय बनाती हूं।

(रूपा रसोई की तरफ जाती है। मां दरवाजा खोलने जाती है, कुछ देर बाद दुर्गा और महेश आते हैं)।

महेश : रूपा कहां है मां?

दुर्गा : रसोई में तेरे लिए चाय बना रही है, बेटा।

महेश तबियत तो ठीक है न उसकी। न जाने क्या मा, मुझे इन दिनों उसके शरीर की बड़ी चिन्ता बनी रहती है ?

दुर्गा बात ही चिन्ता की है। कोई करे तो क्या करे ! एक क्षण को भी उसके दिल से मुन्ने का ध्यान नहीं बिसरता। आज इस पालने को ही लोरी देकर झुलाने लग पड़ी और साथ ही रो पड़ी। कभी उसके खिलौनों को देखकर सिसक उठती है। कभी उसके कपड़ा का ट्रंक खोलकर बैठ जाती है। पागल-सी हो गई है यह तो !

महेश (सांस भर कर) ओहो, मेरी तो समझ में नहीं आता, क्या होगा ! (अवकाश) मैंने तुमसे कितनी बार कहा है मा, कि इसे कुछ दिनों मायके भेज दें।

दुर्गा कहता तो तू ठीक है, पर किसके पास भेजूं ? इसकी भावज के पास ? ना बाबा ना, मैं उनका स्वभाव अच्छी तरह जानती हू। तू भी जान-बूझकर अनजान बने तो मैं तुझे क्या कहूं। इसकी भावज रेवती अच्छ-भले का, ताने दे-देकर रस निचोड़ ले ! फिर इस बेचारी का तो कहना ही क्या ! मुन्नी की मौत के बाद भी तो इसे वहा भेजकर तू ने देख लिया था।

महेश रघुनाथ भाई कई पत्र लिख चुके हैं कि रूपा को कुछ देर के लिए यहा भेज दो।

दुर्गा उनकी बात और है। वह भले हैं, पर उनकी भी अपनी पत्नी के आगे कुछ नहीं चलती, फिर मुझ बहू की इच्छा पहले देखनी है। बाकी सबकुछ बाद में। उसकी इच्छा वहा जाने की नहीं है।

महेश अजब समस्या है। मेरी तो बुद्धि इन दिनों काम करती नहीं। राम जाने इस पगली का क्या होगा मा !

दुर्गा इस 'मा' शब्द की आवाज में बड़ा जादू है महेश। मुझे ही देख, 'मा' शब्द सुनते-सुनते बूढ़ी हो चली हू। पर अब भी जब तू मुझे प्यार से मा कहता है तो मेरे दिल में गुदगुदी होने लगती है। तो उसके दिल की बात सोच, जो मा बनने के बाद भी अब किसी की मा नहीं है। पर गली मुहल्ले की नारियाँ अब भी उसे मुन्नू की मा कहकर बुलाती हैं। (सांस भरकर) ठीक है बेटा। भगवान की दुनिया बड़ी अनोखी है। स्त्री सन्तान जनकर मा बनती है और उसी सन्तान की मौत के बाद पगली, क्योंकि मा कहनेवाला कोई नहीं रहता।

महेश मैं करू तो क्या करू ?

दुर्गा जिन जिन चीजों को देखकर रूपा के दिल में रह-रहकर मुन्ने की याद उभर आती है उन सबको यहा से हटा दें। किसी मित्र के यहा रख दें, ममता की मारी मा के दिल में ये चीजें खिलवाड़ करती हैं।

महेश यह बात तो कई बार मेरे दिल में भी उठती है मा, पर रूपा क्या ऐसा करने देगी ? नहीं मा, वह ऐसा नहीं करने देगी !

दुर्गा पर इन चीजों को यहा से हटाने का कोई-न-कोई उपाय तो करना ही होगा।

महेश (सोचते हुए) ऐसा हो सकता है मा, कि तुम एक दो दिन में मुन्ने का सामान नीचे वाले कमरे में कर दो।

दुर्गा (उत्सुकता से) हू, फिर क्या होगा ?

महेश किसी रात जब रूपा सो रही हो, तभी मैं वह सामान नरोत्तम के यहा पहुंचा दू और साथ में दो चार आलतू-फालतू चीजें भी ले जाऊ, दरवाजा खुला छोड़ दें, ताला तोड़कर रख दे, सुबह उठकर उसमें कह दें कि घर में चोरी हो गई। एक-दो दिन रोकर फिर आप ही चुप हो जायगी।

दुर्गा हा ऐसा ही करो, देखें इसका असर कैसा रहता है। अच्छा, अब कुछ देर जाकर उससे बातें करो, ताकि उसका दिल बहल जाये।

महेश (ऊंची आवाज में) रूपा, चाय पिलाओगी न भई, कितनी देर है अभी ?

(रूपा ट्रे में चाय लेकर आती है)

रूपा चाय में देर काहे की, पांच बजने से पहले ही मांजी आग जलाकर पानी उबलने रख देती हैं। (सामान मेज पर रखती है और चाय बनाती है।)

महेश बहुत बढ़िया रंग है आज चाय का। रूपा चाय खूब बनाती है मा !

दुर्गा मेरी बहू के सुघड़पन की बराबरी कर ही कौन सकता है ! हजारों में से एक छांटकर लाई हू अपने घर। (हंसकर) क्या समझ रखा है तूने मुझे !

महेश : (चाय पीता हुँ) अरे हा याद आया मा, मुझे सौ रुपये की इसी समय आवश्यकता है ।

दुर्गा : क्यो ऐसी क्या जरूरत पड गई ?

महेश : नरोत्तम की पत्नी की तबियत दिन प्रति-दिन बिगड़ती जा रही है । उसे डाक्टरों की भेंट पूजा के लिए रुपये चाहिए । दफ्तर मे आज उसने मागे थे ।

रूपा : पाच-छ दिन पहले जब नरोत्तम भैया आये थे तब तो कहते थे कि अब उनकी तबियत कुछ ठीक है ।

महेश बीमार की तबियत बिगडते कितनी देर लगती है ! आज वह बहुत घबराया हुआ था ।

रूपा : तो क्या वह आजकल भी दफ्तर जाते है ?

महेश . नही, महीने भर की छुट्टिया ले रखी हैं। घर में तीन ही आदमी है—मिया, बीवी और बच्चा, कोई बडा-छोटा नही, जो देख-भाल कर सके ।

दुर्गा : मैंने तो कई बार कहा भैया, कि मैं कुछ दिनो के लिए तेरे घर चली चलू, पर कहता है ऐसी कोई घबराहट की बात नही चाची. (रूपा से) उठ बेटी, ट्रक में से सौ रुपये निकाल के ले आ ।

(रूपा जाती हैं)

महेश . उसकी पत्नी के बचने के कोई आसार नही हैं मा । (चाय का दूसरा कप बनाता है) ।

दुर्गा : बेटा, यह बीमारिया अच्छे-भले घरो को तबाह करके छोडती है । भगवान भला ही करेगे ।

रूपा : (आते हुए) भगवान किसी का भला नही करते माजी । यह लीजिए रुपये ।

महेश : (चाय पीकर) अच्छा तो मैं चलू । हो सके तो तुम लोग भी चली चलो ।

दुर्गा : बहू को ले जा साथ, मैं तुम्हारे आने तक खाना बना दूगी ।

महेश : आकर बन जायगा ।

रूपा : आप मेरे होते खाना बनायेगी, माजी ?

दुर्गा : कोई बात नहीं बेटी, मान मेरी बात । तू भी जा के ट्रक से शाल निकाल ले । (रूपा जाती है)

महेश : तुम क्यो नहीं चलती मा ? खाना आकर बन जायगा ।

दुर्गा . पागल है तू । मैं कल जाऊगी, तुम्हारे पीछे सब सामान नीचे वाले कमरे में रखवा दूगी । टाल वाले के नौकर घीसू से कहते जाना कि मा बुला रही है । दो-चार आने में काम कर जायगा ।

महेश अच्छी बात है । तो फिर हम जाए, उधर से ही सीढिया उतर जायगे ।

(जाता है और परदा गिरता है ।)

दुर्गा . और क्या, जाओ ।

दूसरा दृश्य

(स्थान वही । सुबह का समय दुर्गा राम-नाम जप रही है ।)

महेश तुम्हारा क्या विचार है रूपा, नरोत्तम की पत्नी बच जायगी ?

रूपा जी, मैं तो कल दिन भर उन्हीके पास बैठी रही । तीन-चार दिन से रोज जाती हू । आसार कुछ अच्छे नही दीख रहे ।

महेश नरोत्तम तो बेचारा पागल हो रहा है ।

रूपा बात ही ऐसी है । भाभी के मरने का मतलब है पूरे परिवार का बरबाद होना । नरोत्तम के आगे अपने बच्चे का भी प्रश्न है । बच्चा अधिक से अधिक तीन वर्ष का होगा । न कोई नातेदार, न रिश्तेदार । आगे अधेरा-ही-अन्धेरा दिखाई देता है । मुझे तो अब डाक्टरों के बस से बाहर की बात दीख रही है ।

दुर्गा . (जाप बन्द करके) बेटा, भगवान के काम मे बेचारे डाक्टर क्या कर सकते हैं ? भाग्य का लिखा नही मिटाया जा सकता । जो नरोत्तम की किस्मत में होगा वही होगा (दुखी होकर) अरे महेश, मुझे रात कुछ ऐसा लगता रहा जैसे हमारी बैठक का कोई ताला तोड रहा है ।

महेश : (चौंक कर) क्या कह रही हो मा ?

दुर्गा : अरे नही, कुछ शक-सा हुआ था । पर नही कोई ऐसी-वैसी बात भला क्या हो सकती है ।

महेश तुमने मुझे डरा दिया मा । मैं जल्दी से जाकर देख ही आऊ । (जाता है और नीचे से शोर मचाता है) चोरी हो गई मा, बैठक के सामान की चोरी हो गई ।

दुर्गा : हैं हैं रे, क्या कहता है । हाय राम, हम तो लुट गये ।

रूपा तो क्या मेरे मुन्ने का सामान भी मुझसे दूर चला गया। (चलने लगती है, लेकिन मूर्च्छित होकर गिर जाती है)

दुर्गा (जोर से) अरे महेश, जल्दी ऊपर आ, रूपा बेहोश हो गई है। भगवान! न जाने हमारी किस्मत में अभी क्या-क्या देखना बदा है।

महेश (आते हुए) क्यों क्या हुआ मा ?

दुर्गा बहू बेहोश हो गई। जल्दी से पानी ला। मैं जानती थी कि इसका नतीजा यही होगा। (पानी लाता है)

महेश लो, इसके मुह पर पानी के एक दो छीट दो।

दुर्गा (छीटा मारते हुए) रूपा बेटी, होश में आ बहू।

रूपा (होश में आते हुए) माजी, अब मेरा क्या होगा, मेरा तो रहा-सहा सहारा जाता रहा।

दुर्गा अब धीरज से काम ले रानी, क्या बहू .

रूपा मैंने उस दिन ही कहा था कि मा, इन चीजो को नीचे मत ले आओ। पर मुझ अभागिन की बात कौन मानता है! (सिसकियां भरने लगती है)।

महेश रोने की क्या बात है। अभी थाने में जाकर रिपोर्ट लिखाए देता हू। सामान मिल ही जायगा। अब हमें इस होनहार का क्या पता था? क्या हम चाहते थे कि घर के सामान की चोरी हो जाय, क्यों मा ?

दुर्गा और क्या बेटा, हम क्या इस बात से दुखी नही हैं। भगवान ही जानते हैं, जो कुछ हमारे दिलो पर इस समय बीत रही है। चुप हो जा। जल्दी ही भगवान तुझे ।

(जोर से दरवाजा खटकता है, आवाज आती है महेश भाई, महेश भाई)

दुर्गा देख बेटा, नीचे कोई आया दीखता है।

महेश पता नही, आज इतनी सुबह-सुबह ही कौन आ धमका। (जाता है)

दुर्गा पडौसी होगे। चोरी की बात सुनकर इकट्ठे हो गये होगे। लो, अब सारा दिन इन्हे जवाब देते फिरो। चोरी कैसे हुई? क्यो हुई ?

रूपा है तो अचम्भे की बात, चोरी हो कैसे गई?

दुर्गा मेरे खयाल में तो रात दरवाजा खुला रह गया होगा। कहता था न महेश, कि बैठक का ताला टूटा पड़ा है।

रूपा वहा ताला भी तो आपने नकली ही लगा रखा था।

दुर्गा - हमारे भाग खोटे बेटी, अब और क्या कहें।

(महेश घबराया हुआ आता है। गोद में तीन वर्ष का रोता हुआ बच्चा है।)

महेश गजब हो गया मा! नरोत्तम की बहू चल बसी। यह ले मुन्ने को सभाल रूपा, मैं जा रहा हू।

दुर्गा ठहर बेटा, मैं भी तेरे साथ चलती हू। आफत पर-आफत चली आ रही है। नरोत्तम बेचारे की किस्मत खोटी। भगवान तुम्हारी माया का कोई पार नही।

रूपा इस नन्हे मुन्ने ने भगवान का क्या बिगाड़ा था मा? जो इसे उन्होंने इतनी कठिन सजा दी।

दुर्गा होगे इसके कोई पिछले जनम के खोटे काम।

महेश कर्मों का लेखा फिर कर लेना, मा। हमें जल्दी ही वहा पहुचना चाहिए। नरोत्तम को वहा धीरज बधाने वाला भी कोई नही होगा।

दुर्गा चल भैया चल, जरा मेरा शाल उतार दे इस खूटी से।

महेश मुन्ने को चुप करा रूपा, कोई बिस्कुट दे इसे, हीटर पर दूध गरम करके इसे पिला। (दुर्गा राम नाम जपती है दोनो जाते है। रूपा बिस्कुट लाती है)

रूपा (पुचकारते हुए) चुप होजा मेरा अच्छा मुन्ना, ले बैठ तेरे लिए दूध गरम करू। ले तबतक बिस्कुट खा, हा चुप हो जा। अभी तेरे पापा आयेंगे। तेरे लिए खिज्जी लायेंगे, (स्वय से) कैसा बुरा दिन है आज, घर में कोई खिलौना भी नही है। (बच्चा चुप हो जाता है। रूपा दूध गरम करती है)।

रूपा ले दूध पी ले। हां ऐसे, (बच्चा दूध पीता है) शाबाश, अरे, तूने मुझे अपना नाम तो बताया था उस दिन, पर मैं भूल गई। फिर बता मुन्ना।

मुन्ना ऊ हू मैं तो नही बताता।

रूपा बता दे न भई, हम भूल जो गय। देख, फिर मैं तेरे खेलने के लिए मोटर ला कर दूगी।

मुन्ना - अच्छा। छच।

रूपा : और नहीं तो क्या झूठ !

मुन्ना : मेला नाम हं लाजा वेता ।

रूपा : हूं तेरा नाम तो बड़ा बढ़िया है ।

मुन्ना : लाओ मोतल ।

रूपा : अभी थोड़ी देर बाद बाजार चलेंगे, हम-तुम दोनों, मोटर भी लायेंगे और भी बहुत से खिलौने *लायेंगे ।*

मुन्ना : अभी तलो ना, नहीं तो मैं लोऊंगा ।

रूपा : चलते हैं भाई । अभी तो दुकानें भी नहीं खुली होंगी, जा तू सोजा थोड़ी देर, नींद आ रही है तुझे ।

मुन्ना : तू मुझे थुला दे न !

(थपकी और वही लोरी देती हुई सुलाती है । बच्चा सो जाता है । रूपा को अपने बच्चे की याद आती है सिसकियां भरती है)

(तीसरा दृश्य)

(स्थान वही । रूपा कपड़े सी रही है । बच्चा पास बैठा मोटर से खेल रहा है ।)

मुन्ना : (तालियां बजाकर) अली मा, देख मेली मोतल कैछी चलती है ।

रूपा : (अपने आपसे) मा, नादान बच्चा, मा, आज तीन दिन से मेरे पास है ।

मुन्ना : ऊ हूं । तू बोलती क्यों नहीं, तू लूथ क्यों गई ?

रूपा : अरे वाह मैं तुमसे कैसे रूठ सकती हूं ! बड़ी अच्छी लगती है तेरी मोटर । तू अपने घोड़े पर नहीं चढ़ेगा ।

मुन्ना : चढूंगा, चढूंगा क्यों नहीं ।

दुर्गा : (आते हुए) अरे मुन्ने तू अपनी दादी मा के साथ नहीं खेलेगा ।

मुन्ना : खेलूंगा, पहले मेली मोतल तला दो ।

दुर्गा : (चाबी भरती है) बहू, नाश्ता बना ले, अभी महेश आ ही रहा होगा दफ्तर से, साढ़े पांच बज गये ।

रूपा : अच्छा जी, (रूपा जाती है । दुर्गा मोटर को चलाती है । बच्चा नाचता-कूदता है, तालियां बजाता है) ।

मुन्ना : दादी मां । देखा मेली मोतल कैछी तलती है ।

दुर्गा : बहुत बढ़िया, अरे वाह वा ! क्या कहने तेरी मोटर के । ले यह अमरूद खा ।

मुन्ना : मैंने अभी थोली देल पहले बहुत कुछ खाया ।

दुर्गा : किसने खिलाया तुझे ।

मुन्ना : लूपा मा ने ।

दुर्गा : तुझे अच्छी लगती है तेरी रूपा मा ।

मुन्ना : *हां वली अच्छी, मेली थीला मा भी वली अच्छी* थी । पापा कहते हैं वो लूथ गई । अब हमाले पास नहीं *आयेगी । (रोने लगता है) ।*

दुर्गा : क्यों क्या है रे मुन्ना, चुप कर बेटा !

मुन्ना : मैं अपनी थीला मा के पास जाऊंगा (रोता है) ।

रूपा : (आकर) क्यों क्या हुआ मुन्ना ?

दुर्गा : इसे शीला की याद आ गई ।

रूपा : (पुचकारती है) चुप कर मेरा राजा बेटा । चल तुझे एक चीज दूं । चल मेरे साथ ।

(गोद में उठाकर ले जाती है । बच्चा रोता है तभी कुछ देर बाद महेश और नरोत्तम आते हैं ।

महेश : रूपा क्या कर रही है, मा ?

दुर्गा : तुम्हीं लोगों के लिए चाय बना रही है ।

महेश : और मुन्ना ?

दुर्गा : वह भी उसीके पास है ।

महेश : उससे बहुत हिल-मिल गया है ।

दुर्गा : अभी कुछ देर पहले मेरे पास था, अचानक शीला को याद करके रोने लगा । रूपा आकर ले गई, कुछ देर बाद चुप हो गया । (ऊंचे स्वर से) रूपा बेटी, चाय ले आ, ये लोग आ गये ।

रूपा : (चाय लाती है) मुझे मालूम हो गया था कि आप लोग आ गये हैं । मैं आप ही की बाट जोह रही थी । (मेज पर सामान रखकर चाय बनाती है) ।

नरोत्तम : मुन्ना क्या कर रहा है भाभी ।

रूपा : वहीं छज्जे पर अपनी मोटर से खेल रहा है बुला दूं ?

नरोत्तम : नहीं, नहीं, खेलने दो । (चाय पीता है) तुम्हारे रूप में उसे मां की ममतामय गोद मिल गई है । भाभी, मैं उसके लिए बहुत चिन्तित था, पर अब मेरा विश्वास है कि वह तुम्हारा आश्रय पाकर जी सकेगा ।

दुर्गा भगवान को सबका ध्यान है बेटा। उसे मा की ममता की जरूरत थी, इसे ममता के आधार की। उस भगवान ने इन दोनों में एक-दूसरे के लिए काफी मोह पैदा कर दिया है।

रूपा मैं समझ नहीं रही कि आप लोग क्या कह रहे हैं।

महेश नरोत्तम की यह इच्छा है और हमारा भी विचार है कि जबतक मुन्ना बड़ा न हो जाय, तुम्हारे पास रहे। तुम उसे पालो।

रूपा मैं कोई आया नहीं हूं। नरोत्तम किसी आया को रखकर बच्चे को पाल लें। यह काम मेरी हिम्मत से बाहर का है।

महेश (चौंक कर) रूपा!

नरोत्तम भाभी।

रूपा ठीक है भैया, मैंने दो बार भगवान से धोखा खाया है। अब तीसरी बार इन्सान से धोखा नहीं खाना चाहती।

नरोत्तम इसमें धोखे की क्या बात है भाभी?

रूपा धोखा नहीं तो और क्या है। तीन चार साल तक इसे पालूं, अपनी ममता लुटाऊं और बाद में उस-पर अधिकार कर लो तुम!

महेश तो क्या तुम चाहती हो कि नरोत्तम उससे कोई वास्ता न रखे?

रूपा यह तो मैंने नहीं कहा। मैं हृदयहीन नहीं हूं। यह उसे जितना प्यार कर सकते हैं करें। पर यह जीवन-भर रहेगा मेरे पास, बड़ा होने पर हममें से कोई उसे यह न कहे कि मैं उसकी मा नहीं हूं। तुम उसके पिता बन कर रहोगे। नरोत्तम उसे हमें गोद दे दें। उसका चाचा बनकर रहे। (क्षणिक सन्नाटा सब एक-दूसरे को देखते हैं। फिर नरोत्तम कहता है)।

नरोत्तम मुझे स्वीकार है भाभी। पर एक बात कहता हूं। आनेवाली संतान के बाद तुम्हारी ममता अपने आप उसमें कम हो जायगी।

रूपा वह दिन और होते हैं नरोत्तम भाई। मा के दिल की ममता सब बच्चों में समान रूप में होती है। फिर मैं इतनी नीच कभी नहीं हो सकती कि अपने दुखी दिनों के सहारे को भूल जाऊं। तुम सबको क्या बतलाऊं कि मुन्नू ने इन दिनों मुझे कितनी शांति दी है। (मुन्नू आता है।)

महेश लो मुन्नू साहब खुद ही चले आ रहे हैं।

मुन्ना रूपा मा मुझे भूख लगी है।

महेश आओ मेरी गोद में बैठकर चाय पी।

मुन्ना न न, मैं तो रूपा मा की गोद में बैठकर चाय पियूंगा।

रूपा आओ मेरे पास ले बिस्कुट खा।

मुन्ना पापा, तुम भी खाओ न बिस्कुट।

नरोत्तम तेरे पापा यह हैं मुन्ने, मैं तो तेरा चाचा हूं।

मुन्ना झूठे, यह तो चाचाजी हैं। तुम हो पापा।

नरोत्तम नहीं। आज से मैं तेरा चाचा हो गया हूं। और यह तेरे पापाजी हो गये हैं।

मुन्ना क्यों मा, यह ठीक कहते हैं।

रूपा हां बेटा! मैं तेरी मा हूं और यें तेरे पापा हैं।

मुन्ना और यह चाचा, यह दादी मा! दादी मां, लाओ मेला अमलूद। अच्छा तो पापा मेली मोतल चला दो।

महेश लाओ कहां है तुम्हारी मोटर?

नरोत्तम (उठकर) अच्छा तो अब मैं चलूं। (हंसकर) बड़ी जल्दी मान गया मुन्ना।

महेश नरोत्तम, वह सब सामान कल साथ लेते आना।

रूपा कौन-सा सामान?

नरोत्तम (जाते हुए) कल तुम्हारे सामने आ जायगा। भाभी, मुन्ने का सामान है। और महेश, ममता बड़े बड़ों को दाब लेती है मुन्ना तो अभी बच्चा है।

महेश ठीक कहते हो, नरोत्तम। रूपा भी तो ममता के मारे ही मुन्ने की मा बनी है।

(नरोत्तम जाता है। बच्चा मोटर लाकर देता है। महेश मोटर चलाता है—रूपा कई क्षण बनबूझ-सी देखती है, फिर वह भी मोटर के खेल में लग जाती है।)

(पटाक्षेप)

बुद्ध के समीप कौन है ?

भरतसिंह उपाध्याय

भगवान् बुद्ध महा कारुणिक पुरुष थे। परन्तु उनकी करुणा का अर्थ क्या है? तथागत की हमपर अनुकम्पा है। इसका अर्थ यह है कि हम उनके धर्म के वारिस बनें। भगवान् ने स्वयं कहा है, "भिक्षुओ! तुमपर मेरी अनुकम्पा है। वह क्या? यही कि तुम धर्म के वारिस बनो, भोगों के नहीं।" प्रज्ञा के साथ-साथ करुणा की गहरी अभिव्याप्ति तथागत के व्यक्तित्व की एक मुख्य विशेषता है जिसने विश्व-मानव के लिए उसे इतना आकर्षक बना दिया है। यही कारण है कि एक ओर बौद्ध धर्म प्रज्ञावानों का, ज्ञानियों का धर्म कहलाता है, 'पञ्ञावन्तस्साय धम्मो', और दूसरी ओर दुखियारों के लिए इसके समान 'आश्वासनिक ब्रह्मचर्य' (आश्वासनप्रद धर्म) कोई दूसरा नहीं है।

तथागत की करुणा! विशुद्ध वैष्णव अर्थों में इसकी व्याख्या न कर हमें उसके मूल प्रज्ञावादी रूप को समझना चाहिए। भक्त के योग-क्षेम का भार वहन करनेवाले भगवान् तथागत नहीं हैं। इस प्रकार की अपेक्षा से वे विमुक्त हैं। प्रार्थनाओं के स्वीकरण से वे परे हैं। पूजा उन्हें नहीं चाहिए। उन्होंने केवल एक 'कल्याण-वर्त्म' को स्थापित किया है। पर हमारे अनुग्रहार्थ, हमारे लिए वे स्वयं उसपर नहीं चल सकते। यह काम तो स्वयं हमे करना है। 'धम्मपद' में चेतावनी देते हुए कहा गया है, "काम तो तुम्हें स्वयं ही करना है, तथागत तो केवल मार्ग दिखानेवाले हैं, उपदेश करनेवाले हैं"—तुम्हेहि किच्चं आतप्पं अक्खातारो तथागता। तथागता की अनुकम्पा वस्तुतः उनके उपदेश की सत्यता पर निर्भर है। वह भागवती कृपा नहीं है।

जीवन-विशुद्धि ही बौद्ध धर्म का मूल सन्देश है और वही बुद्ध के अनुगामी का एकमात्र लक्षण है। भगवान् ने इस विषय में कोई सन्देह नहीं रखा है।

कौन व्यक्ति उनके पास है और कौन दूर, इसके सम्बन्ध में एक मार्मिक उपदेश देते हुए उन्होंने कहा है, "भिक्षुओ! यदि कोई भिक्षु मेरी चादर (संघाटी) के छोर को पकड़कर मेरे पैरों के पीछे पैर रखता हुआ, मेरा अनुसरण करता फिरे, किन्तु यदि वह लोभी हो, कामी हो, दूसरों से द्वेष रखनेवाला हो, दूषित मानसिक संकल्पों वाला हो, नैतिक जागरूकता से रहित हो, ज्ञान-पूर्वक आचरण करनेवाला न हो, चंचल और अजितेन्द्रिय हो, तो भिक्षुओ! वह भिक्षु मुझसे दूर है और मैं भी उससे दूर हूं। क्यों? क्योंकि भिक्षुओ! वह भिक्षु धर्म को नहीं देखता और धर्म को न देखने के कारण वह मुझे भी नहीं देखता। किन्तु भिक्षुओ, यदि कोई भिक्षु मुझसे सौ योजन की दूरी पर भी हो; परन्तु यदि वह न लोभी हो, न कामी हो, न दूसरों से द्वेष करनेवाला हो, न दूषित मानसिक संकल्पों वाला हो, बल्कि नैतिक जागरूकता से युक्त हो, ज्ञान-पूर्वक आचरण करने वाला हो, शान्त, समाधिनिष्ठ और जितेन्द्रिय हो, तो भिक्षुओ! वह भिक्षु मेरे अत्यन्त समीप है और मैं भी उसके अत्यन्त समीप हूं। क्यों? क्योंकि भिक्षुओ! वह भिक्षु धर्म को देखता है और धर्म को देखने के कारण वह मुझे भी देखता है।"

जो बात भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में ठीक थी वह आज उससे अधिक ठीक है। अनुपाधिशेष निर्वाण धातु को प्राप्त कर तथागत परिनिर्वृत्त हो चुके है। शास्ता अब नहीं रहे हैं। पर वे कह गये हैं, "यह मत समझना हमारे शास्ता नहीं रहे। जिस धर्म और विनय को मैंने सिखाया है वही मेरे बाद तुम्हारा शास्ता होगा।" जिसके जीवन में वह विद्यमान है वह तथागत के समीप है। जिसके जीवन में वह विद्यमान नहीं है वह तथागत से दूर है। धर्मकायास्तथागता।

संत विनोबा की पलामू जिले की यात्रा

निर्मला देशपाण्डे

पलामू के घने जंगलो का १३ मील का बीहड़ रास्ता तय करके विनोबाजी जब सिलदिलिया पहुंचे तो जय-जयकार से सारा जंगल गूंज उठा। तेरह मील तक रास्ते भर मनुष्य का हो दर्शन दुर्लभ था। सिर्फ विनोबाजी तेजी से चलते हुए अपने ७-८ साथियों के साथ दिखाई दे रहे थे। सिलदिलिया यद्यपि एक जंगल का गाव था, फिर भी जनता मे अपार उत्साह था। दूर-दूर के गावों से जंगल के लोग संत के दर्शन के लिए आये थे। दानपत्र लिखवाने के लिए दाताओं की भीड लगी थी। दिन भर कार्यकर्तागण लिखने में व्यस्त रहे। एक साथ ४-५ दाता घोषणा करते थे। इसलिए कार्यकर्ताओं के लिए लिखना भी मुश्किल होता था। गरीब दाताओं का स्वयं स्फूर्ति से दान देने का यह दृश्य किसी भी विरोधक या शकाशील के सारे सदेहो को दूर कर सकता था।

पलामू के बच्चे भी वानर सेना में भर्ती होने के लिए बहुत उत्सुक हैं। डाल्टनगंज के स्कूल का गोपाल नाम का १५ साल का एक लड़का पिछले १५ दिनो से सिलदिलिया में भूदान का काम कर रहा है, और उसने अबतक १०० एकड़ भूमि प्राप्त की है। जंगल का प्रदेश, मई की सख्त गर्मी, यह सब होते हुए भी वह लडका अकेला घर घर जाकर भूदान-यज्ञ का सदेश सुना रहा है। महुआटांड में जब कार्यकर्ता एक बड़े जमीदार के यहा पहुचे तब बहुत समझाने पर उसने ३०० एकड़ देना स्वीकार किया। तब कार्यकर्ताओं ने घर के बालक को प्रेरणा दी तो उसने कहा कि मैं भूदान का काम करूंगा और आरम्भ अपने घर से ही करूंगा। फिर उस ७ साल के लडके ने अपने पिताजी से हठ किया कि कम-से-कम १००० एकड भूमि दान में देनी ही चाहिए। पिता-पुत्र की लडाई शुरू हुई जिसमें पांच साल के दूसरे बच्चे ने भी भाई का ही साथ दिया। बच्चो के हठ के परिणाम-स्वरूप पिताजी ने ४३१ एकड भूमि का दान दिया। डाल्टनगंज के स्कूल के सात आठ साल के दो लडके यहा के भूदान-समिति के कार्यालय में गये और कहने लगे कि हम भी भूमि मांगने का काम करना चाहते हैं। जब उनको समझाया गया कि "बच्चों को भूमि कौन देगा" तो भी वे अपने निश्चय पर अटल रहे। आखिर उनको भूदान-समाचार बेचने का काम दिया गया। उन्होंने अत्यन्त उत्साह से घर घर जाकर उसकी सैंकड़ों प्रतियां बेची। जब देश के नन्हें से बच्चे भी रामजी की वानर-सेना के सैनिक बन रहे हैं तो राम राज्य की स्थापना हुए बगैर कैसे रह सकती है?

भूदान-यज्ञ के कारण बिछुड़े हुए भाई मिल जाते हैं, बरसो का वैर खतम हो जाता है। स्नेह-बधन निर्माण होता है। उसकी कई कहानिया कार्यकर्ता लोग सुनाते हैं। पलामू के एक जमीदार भाई का अपने एक रिश्तेदार से बरसों से वैर था। दोनों एक-दूसरेका मुह भी नही देखते थे, लेकिन भूदान के काम ने दोनो को मित्र बना दिया। अब वे दोनों न सिर्फ एक दूसरे के घर जाकर प्रेम से खाना खाते हैं, बल्कि एकसाथ जमीन मांगने के लिए भी घूमते हैं।

सिलदिलिया से विनोबाजी करार आये, जो उनके एक भक्त का स्थान था। वहा के जमीदार ठाकुर कमलेश्वरी प्रसाद सिंह ने विनोबाजी की पलामू की पहली यात्रा में ही काफी भूमि दान में देकर, जमीन मांगने का काम करने का आश्वासन दिया था। तबसे वे उसी काम के लिए घूमते रहे हैं। करार में विनोबाजी उन्ही के यहा ठहरे थे। आते ही विनोबाजी ने कहा कि 'यह बच्चू बाबू (ठाकुर साहब) का गांव है, याने हमारा ही स्थान है, जहा उनके जैसे भक्तजन काम कर रहे हैं, वहा मेरा सदेश घर घर पहुंचा ही होगा।' बच्चू बाबू ने सम्पत्ति-दान भी दिया है, उनके उत्साह के परिणामस्वरूप करार की प्रार्थना-सभा में १४७६ दाताओं के ११,५६८ एकड़ जमीन दान की घोषणा की गई। "विष्णु सहस्रनाम" सुनते ही विनोबा-जी की इच्छा फिर से एक दफा पूर्ण हो गई। सारी भूदान-यात्रा में दाताओं की सख्या का यह उच्चांक है

उसके पहले हजारीबाग में कोडरमा पडाव पर ११३८ दाताओं ने दान दिया था और पलामू के पहले ही पडाव पर १०११ दाताओ ने दान दिया था। भारतवर्ष में सबसे अधिक दाताओ ने यहीं पर दान दिया। यह पलामू के कार्यकर्ताओं के लिए गौरव की बात है।

जगल के बारे में सरकार के खिलाफ विनोबाजी के पास कई शिकायतें आती रहती हैं। करार के प्रार्थना प्रवचन में उसका जिक्र करते हुये विनोबाजी ने कहा कि सरकार ने जंगल का रक्षण करने के लिए उसे अपने हाथ ले लिया यह अच्छा ही है। लेकिन उसका अमल ठीक तरह से नही हो रहा है, ऐसा मुझे लगता हैं। गरीबों को पहले जंगल से जो राहत मिलती थी, वह अब नहीं मिल रही है। ऐसी शिकायतें मेरे पास आती हैं। मैं सरकारी अधिकारियों से प्रार्थना करता हूं कि वे उस ओर ध्यान दें और गरीबो की तकलीफें दूर करें। लोकशाही सरकार गरीबो को पीड़ा नहीं दे सकती है। जहा गरीबो के दु:ख की आवाज सुनाई पड़ती है, वहा परमेश्वर की कृपा नहीं होती है और हम तो चाहते हैं कि हमारे स्वराज्य पर परमेश्वर की कृपा हो। इसलिए गरीबो के दु:ख दूर करना हमारा फर्ज है।"

विनोबाजी जगल की जनता को अपने हरेक भाषण में निर्भय बनने का और व्यसन छोड़ने का उपदेश देते हैं। "डरना और डराना दोनों पाप हैं" यह उनका संदेश है। स्त्रियां मीटिंग में मच के पास आने के लिए डरती हैं, दूर खड़े रहकर सुनने का प्रयत्न करती हैं। इसलिए विनोबाजी ने एक दिन महादेवी ताई को उन स्त्रियों को नजदीक बुलाने के लिए भेजा और उनसे कहा, "मैं आपको निर्भय करना चाहता हूं। मैं आपको निर्भयता का धर्म सिखाना चाहता हूं।" बच्चों को अपने पास बिठाकर विनोबाजी ने कहा, "कोई आपको डराकर, धमकाकर या पीट-कर आपसे कुछ काम कराना चाहते हैं तो काम मत करो। कोई प्रेम से समझाये तभी उनका कहना मानना, बिना प्रेम के समझाये तो नहीं मानना। कोई मारे-पीटे तो खुद रोना नहीं, भागना नहीं या दूसरो को पीटना नहीं। शान्ति से और निडर होकर सहते रहना। मैं चाहता हूं कि ऐसी हिम्मत बच्चों में भी आ जाये।"

(पृष्ठ २५५ का शेषांश)

नहीं रहा है पर आज के वैज्ञानिक और यान्त्रिक युग में तो उसके व्यक्तित्व का जो अनुपात उसके अपने भीतर है वह और भी कम हो गया है। उसकी निजता और भी अधिक पर के आश्रय में चली गई है। दुई आज जितनी दूर हो गई है, उतनी पहले कभी नहीं हुई थी। लोकतंत्र का मूल विचार पर में निज की व्याप्ति है।

लोकतंत्र एक राजनीतिक अवसरवादिता मात्र नहीं है। वह मानव की इतिहास-यात्रा में एक निश्चित अवस्था है। वह उसकी सभ्यता की माग है। वर्तमान स्थिति की अनिवार्यता है। सभ्यता बढ़ जाय आगे और संस्कृति रह जाय पीछे। तो दोनों के बीच एक तनाव हो जायगा। ऐसे तनावों के दुष्परिणाम हम प्रथम और द्वितीय महायुद्धों के रूप में देख चुके हैं।

लोकतन्त्र सफल हो। इसके लिए आवश्यक है कि मनुष्य की सभ्यता और उसकी संस्कृति के स्तरों में कम-से-कम अन्तर हो। उसके बीच कम-से-कम अंतर हो। सभ्यता तेजी से शरीर पर बढ़ रही है। संस्कृति भी उतनी ही तेजी से दिलो में फैले। हम जितनी क्षमता प्राप्त करें उतना संयम भी उपजाएं।

फिर कहूं कि संस्कृति का प्रमुख अंग है, आत्म-वितरण अथवा पर में से निज का संचय। कला इस साधना का माध्यम है तथा चित्रकला संवेदना की सबसे सहज, सरल और सीधी संवाहिका है।

कसौटी पर

ऋषि लेखक—श्री अरविन्द : अनु.-श्री नारायणदास प्रकाशक—श्री अरविन्द चक्र, ३४ रमना बन्व, कानपुर पृष्ठ २८ बड़ा साइज : मूल्य ६ आना।

प्रस्तुत पुस्तक श्री अरविन्द की एक अंगरेजी कविता का साराश है। ऋषि और मनु के बीच वार्तालाप के रूप में इसमें ईश्वर का स्वरूप वर्णन और उसको पाने का सच्चा मार्ग बताया गया है। अरविन्द दर्शन जीवन से भागने का नही उसे भोगने का सही रास्ता सुझाता है। उसका सार है, 'कर्म भी करो, प्रेम भी करो और ज्ञान भी प्राप्त करो, तभी तुम्हारी आत्मा शाश्वत आनन्द की अधिकारी होगी। मानव से भी प्रेम करो और भगवान से भी प्रेम करो अपनी मानव-सामर्थ्य की सिद्धि करो और मानवता को भी परिपूर्ण करो तत्वमसि, तुम भी वही हो।"

यह छोटी सी पुस्तक इस सार तत्व को बड़ी सरलता से हृदयंगम कराने मे समर्थ हुई यह निश्चय से कहा जा सकता है। अनुवाद विषय के अनुरूप सरलातिसरल है।

हिमालय-परिचय (१) गढवाल: लेखक राहुल सांकृत्यायन प्रकाशक—इलाहाबाद ला जरनल प्रेस, इलाहाबाद। पृ० ५६८।

राहुलजी की लौह लेखनी ने हिन्दी साहित्य को कितना कुछ दिया इसका लेखा जोखा कोई सरल बात नही है। राजनीति, दर्शन, इतिहास सस्मरण, जीवन चरित्र, कथा साहित्य सभी शाखायें उनकी ऋणी है। प्रस्तुत पुस्तक हिमालय-परिचय का प्रथम भाग है। इसमे गढवाल का इतिहास है। इतिहास केवल राजनीतिक नही है वह न केवल भौगोलिक और सास्कृतिक दृष्टि से सम्पूर्ण है बल्कि राहुलजी ने यात्रा की दृष्टि से स्वास्थ्य, शिक्षा, यातायात के बारे में भी पूरा विवरण दिया है। उद्योग व्यापार की बात भी नही छूटी है। यह हर दृष्टि से सम्पूर्ण और उपादेय है।

लेकिन यह मात्र गजेटियर भी नही है बल्कि सौन्दर्य के आगार और विश्व के सबसे ऊचे पर्वत हिमालय के प्रति मानव की जो स्वाभाविक उत्सुकता रहती है उसको शान्त करने की इसमें पूरी सामग्री है। राहुलजी ने सब कुछ आखो से देख कर लिखा है। उनकी घुमक्कड वृत्ति हम भारत वालो के लिए अनुकरणीय है। पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ में उस वृत्ति की छाप है।

पुस्तक यात्री के लिए, इतिहास के विद्यार्थी के लिए वैज्ञानिक के लिए, सबके लिए उपादेय है। वस्तुत यह एक बडे अभाव की पूर्ति है।

इस बार हम जिन दो नये उपन्यासो की चर्चा करगे वे साधारण उपन्यासो से बहुत अलग है। पहला उपन्यास फ्रास के नोबल पुरस्कार विजेता आन्द्रेजीद का है। नाम है 'सकरा द्वार'। इसे श्रीमती सुशीलादेवी शास्त्रिणी ने मूल फ्रेंच से अनूदित किया है। यह एक अद्भुत उपन्यास है। इसमें ऐसे प्रेम का वर्णन है जो शरीर की नितान्त उपेक्षा करके भगवान के प्रेम में रूपान्तरित हो जाता है। आन्द्रेजीद स्वतत्र विचारो के पोषक है। जहा उन्होने जमाने के धार्मिक विश्वासो का विरोध किया वहा उन्होने इन्द्रीय सुख से ऊपर उठकर बाइबल के इस वाक्य के आधार पर 'सकरे द्वार से प्रवेश करन का प्रयत्न करो' इस पुस्तक की रचना की। यह अद्भुत बात है कि आज के भौतिकवादी युग में कोई व्यक्ति, विशेषकर भोगवादी फ्रास का एक विद्वान अशरीरी प्रेम का समर्थन करे। पुस्तक त्याग की गरिमा से पूर्ण, मानवता से ओतप्रोत और उस सच्चे सुख से पगी हुई है जो मनुष्य को जीवन के सघर्ष से मुक्त करके सच्ची शान्ति प्रदान करता है। इस उपन्यास का सार है—प्रेम और परमार्थ एक ही तत्व है। कला की दृष्टि से उपन्यास बहुत सुन्दर, सफल और पठनीय है। अनुवाद बहुत सुन्दर हुआ है। पर कही कही याद दिला देता है कि यह अनुवाद है।

हम इसकी कथा के बारे में चर्चा न करके पाठको से निवेदन करेंगे कि वे इसे अवश्य ही पढें। प्राप्ति स्थान

है सरस्वती सदन, मसूरी और मूल्य २॥) मात्र।

दूसरा उपन्यास हमारे सुपरिचित कथाकार श्री रावी ने लिखा है। नाम है **नये नगर की कहानी**। इसके प्रकाशक राजपाल प्रकाशन, राजपाल प्रेस, आगरा है। मूल्य १।) है। यह उपन्यास इस दृष्टि से नया है कि इस में न प्रेम कहानी है और न रोमहर्षक हत्याकाण्ड का जाल। इस में भविष्य के ऐसे समाज की कल्पना की गई है जिसे लेखक अपनी दृष्टि में आदर्श समझता है। उपन्यास में रोचकता है, मौलिकता है और नवीनता है। इसमें मार्ग-दर्शन भी है। भले ही आप उसमे सहमत न हो पर आपकी बुद्धि को खाद्य तो वह इतना देता है कि आप काफी दिन तक उस पर जी सकते है। दुख केवल इतना है कि बुद्धि की मात्रा कुछ बढ गई है, और हृदय के मौलिक तत्व कुछ कम पड गये है फिर लेखक (यह उपन्यास का एक पात्र है) स्वय अपने व्यक्तिगत उपादानो सहित इतना उभर उठा है कि वह नवीनता की सीमा को पार कर जाता है। यूटोपियन कथावस्तु को लेकर चलने वाले के लिए यह किसी सीमा तक क्षम्य है। इसलिए इसकी चिन्ता न करके पुस्तक का मूल्यांकन करना होगा और लेखक के शब्दो में मानना होगा कि "यह कुछ ऐसे पाठको के भी हाथ में पहुचेगा जो उपन्यास के भीतर की मूर्ति को स्वय सजीव करके उसके सम्मुख सम्पर्क में आवेंगे और उसके ससर्ग से अपने लिये नई मूर्तियो की सृष्टि करेंगे।

कुछ सूक्तिया देखिये :—

१. स्नेह और सहयोग प्रतिबन्धो और रोक थामो द्वारा सुरक्षित रखी जाने वाली वस्तुएं नही हैं।

२. जीवन और जीवन का रस कर्म करने में है और वह सदैव तात्कालिक है। श्रेयों, उत्तरदायित्वो और अप्राप्त फलो की कल्पनायें उस रस की बाधक ही है।

३. मनुष्य की ऊंची-से-ऊंची सम्भावनायें उसमें हर समय विद्यमान है और उनमें से कोई भी सम्भावना किसी भी क्षण उसके सामने, परिस्थिति विशेष उत्पन्न कर के लाई जा सकती है।

लेखक ने जिस सुखी समाज की की कल्पना की है उस तक पहुचने का जो मार्ग सुझाया है वह हर दृष्टि से अध्ययन, मनन और चिन्तन का विषय है। इसलिए यह उपन्यास मात्र खाद्य ही नही देता बल्कि जीने की प्रेरणा भी देता है।

शरत साहित्य के भाग दो और तीन में शरतबाबू की ६ कहानियां सग्रहीत है। ये पुस्तके **बम्बई के हिन्दी-ग्रंथ रत्नाकर, हीराबाग, गिरगाव** से प्रकाशित की है और प्रत्येक का मूल्य१॥)है। दोनों पुस्तकों की चार चार आवृत्तियां हो चुकी है और मानव हृदय के शिल्पी की लोकप्रियता का अच्छा परिचय देती है। प्रत्येक कथा में मानव हृदय के घात प्रतिघात का सुन्दर चित्रण है। 'स्वामी' में स्वामी मानव न होकर अलौकिक गुणो से भूषित कोई दिव्य आत्मा है। 'बैकुण्ठ का दानपत्र' दो सौतेले भाइयों और उनको लेकर उल्लू सीधा करने वालो की कहानी है पर अनपढ बडे भाई का प्रेम भले ही अटपटा हो पर वह है इतना निश्छल कि वहा अनिष्ट की आशका नही है, 'अधकार मे आलोक' हमे शरत की लेखनी के योग्य नही जची, जैसे जूठन हो। 'चन्द्रनाथ' में भी दैवी प्रेम की विजय है। सामाजिक रूढिया उसे दबा न सकी पर बूढ़े कैलाश को मारे बिना क्या कला खडित ही हो जाती? पढने पर बड़ी पीडा होती है। कथा बडी मार्मिक है। 'तसवीर' के पात्र बरमा के लोग हैं पर भावना वही शाश्वत है। 'दर्पचूर्ण' भी मुकाबले म हल्की जची। इस माला के कुछ भागो की चर्चा हम पहले कर चुके है। कुछ की आगे करेंगे। इन पुस्तको का जितना प्रचार हो थोडा है। श्रेष्ठ साहित्य के मनके है। —सुशील

"फुलवाड़ी" (उपन्यास)—*लेखक, रवीन्द्रनाथ ठाकुर। अनुवादक, धन्यकुमार जैन। प्रकाशक, हिन्दी ग्रन्थागार* पी—१५, कलाकार स्ट्रीट, कलकत्ता ७—मूल्य २।) रुपया।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर का यह छोटा सा उपन्यास नारी-हृदय के अत्यन्त कोमल किन्तु असहिष्णु हृदय मन का एक जीता जागता चित्र है। रवीन्द्रनाथ की आख्यान रचनाओ में घटनाओ का बाहुल्य जितना कम होता है, मानव हृदय के द्वन्द्व-संघर्ष और घात-प्रतिघात का सूक्ष्म विश्लेषण

उतना ही अधिक पाया जाता है। नीरजा का प्रेम 'छुईमुई' लता से भी सुकोमल और सकोचशील है, और उसका पति आदित्य कर्तव्य-धर्म और प्रेम धर्म दोनो की एक साथ आराधना करने वाला है। बीच में आ जाती है सरला, जिसके प्रति आदित्य का कर्तव्य-धर्म कहता है कि 'प्रेम के लिए कर्तव्य की उपेक्षा न करो', और प्रेम कहता है कि 'कर्तव्य के लिए प्रेम और प्रेमिका की बलि न चढ़ाओ।' दोनों का दाम्पत्य जीवन आरभ हुआ था एक बगीचे (फुलवाडी) के माध्यम से और वह अन्त तक उसी के आधार पर टिका रहना चाहता है। किन्तु सरला निरीह और निर्दोष होने पर भी नीरजा के लिए असह्य हो जाती है। आदित्य जानता है कि सरला और फुलवाडी का जन्म जलागम एक ही है, एक ही पिता की दो सन्ततिया हैं एक 'कन्या' और दूसरी 'कृति'। नीरजा इसमें बाधक होती है, उसके मन में अविश्वास आ जाने से आदित्य वेदना पाता है, किन्तु कुछ कहता नही। इसके बाद शुरू होता है नर-नारी के हृदय मन के घात प्रतिघात का द्वन्द्व, विकास और मन्थन। मन्थन के परिणाम में होती है नीरजा की मृत्यु। कवि का यह उपन्यास अपने ढग का एक ही है।

अनुवाद के विषय में कुछ कहना ही व्यर्थ है। बगला से हिन्दी रूपान्तर करने में धन्यकुमार जैन सिद्धहस्त है। हमें यह जान कर अत्यन्त आनन्द हुआ कि श्री जैन रवीन्द्रनाथ की रचनाओं का स्वय प्रकाशन भी कर रहे है। उन्होने २४ भाग निकाल दिये, यह उनकी सच्ची लगन का परिचायक है। —राजेन्द्र शर्मा

भारतीय ज्योतिष: लेखक—श्री नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, बनारस पृष्ठ सख्या ६२४, मूल्य ६)।

प्रस्तुत पुस्तक का विषय नाम से ही स्पष्ट है। यह पाच अध्यायो में विभक्त है। प्रथमाध्याय में विषय प्रतिपादन की पूर्वपीठिका के अनन्तर भारतीय ज्योतिष शास्त्र की परिभाषा और उसका क्रमिक विकास, होरा, गणित या सिद्धान्त सहिता, प्रश्नशास्त्र, शकुन, ज्योतिष का उद्गम-स्थान और काल एव भारतीय ज्योतिष की प्राचीनता पर विदेशीय विद्वानो के अभिमत, मानव जीवन तथा भारतीय ज्योतिष की उपयोगिता आदि विषयों पर बडा मार्मिक विवेचन किया है। पुन भारतीय ज्योतिष के इतिहास का कालवर्गीकरण द्वारा परिचय कराया गया है।

यह कालवर्गीकरण ज्योतिष-शास्त्र के विकास के आधार पर किया गया है। इन विभागो में ज्योतिष के क्रमिक विकास के साथ ही तत्कालीन ज्योतिष-ग्रन्थ तथा ग्रन्थकार आदि का सप्रमाण परिचय भी दिया गया है।

द्वितीय अध्याय में भारतीय ज्योतिष के सिद्धान्त, तिथि, नक्षत्र, योग, करण, राशि, मास आदि की विविध सज्ञाए, उनके स्वामी आदि के निरूपण के पश्चात् जातक सबधी गणित विषय की सोदाहरण प्रक्रिया का दिग्दर्शन बडे सरल ढग से किया गया है। इस सम्बन्ध में भारत में प्रचलित विभिन्न पचागो की शैली पर एक साधारण सी दृष्टि डाली गई होती तो इसकी उपादेयता और भी महत्वपूर्ण हो जाती।

तृतीयाध्याय में जातक विषयक फलादेश का निरूपण किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में ताजिक वर्षफल निर्माण विधि का सोदाहरण सफल प्रयोग बतलाया गया है।

पचम अध्याय में मेलापक (गणना विचार) मुहूर्त विचार, प्रश्न विचार आदि का सुन्दर शैली में प्रतिपादन किया गया है।

इस प्रकार इस पुस्तक के लघु कलेवर में ही ज्योतिष के गणित, फलित तथा सिद्धान्त इन तीनो विभागों का अच्छी प्रकार समावेश हो गया है। इसकी भाषा इतनी सरल एव रोचक है कि इसका स्वाध्याय करने से हिन्दी के गणित का एक साधारण-सा विद्यार्थी भी थोडे ही काल में, अल्प अभ्यास से ही बिना गुरु का सहारा लिये भी ज्योतिषी बन सकता है। यह लेखक की विद्वत्ता एवं परिश्रम का स्पष्ट परिचायक है।

यह पुस्तक ज्योतिष विद्या के निपुण विद्वान, प्रारम्भिक विद्यार्थी तथा जिज्ञासु सबके लिए बहुत ही उपयोगी है। —महादेव चतुर्वेदी

"पर्यावर्त कैसे ?"

अद्भुत पराक्रम

पिछले दिनो जिन मूर्धन्य व्यक्तियो ने एवरेस्ट के शिखर पर पहुंच कर विश्व की तरुणाई के आगे पराक्रम और साहसिकता का महान आदर्श उपस्थित किया है, उन्हें हम नमस्कार करते है । हममे से अधिकाश लोग छोटे-मोटे कामो में अहर्निश घिरे रहते है; लेकिन कभी-कभी ऐसे व्यक्ति भी निकल आते है, जो अपने प्राणो की चिंता न करते हुए बडे-बडे काम कर दिखाते है । कर्नल हंट, श्री शेरपा तेनसिंह तथा श्री हिलेरी, इन तीन पर्वतारोहियो ने हमारे इतिहास मे शौर्य का एक अद्वितीय अध्याय खोल दिया है । पाठको को ज्ञात होगा कि लगभग दो सप्ताह पूर्व ब्रिटिश नायक कर्नल हट के नेतृत्व में यह दल विश्व के उच्चतम शिखर एवरेस्ट पर, जिसे हम गौरीशकर कहते है, पहुचने के लिए प्रयत्न कर रहा था और निस्सदेह यह बडे गर्व और गौरव की बात है कि उनका भगीरथ प्रयत्न सफल हुआ और उस दल के शेरपा तेनसिंह और श्री हिलेरी ने प्रथम बार इस उच्चतम शिखर पर मानव के पराक्रम की यश-पताका फहराई ।

गौरीशकर की चढाई आसान नही है । हमारे सामने कोई कठिन काम होता है तो हम कह देते है कि यह तो गौरीशकर की चढाई के समान है । उस चढाई मे कितने खतरे है, यह भी हमसे छिपा नही है । ऊपर पहुचने के अनेक बार प्रयत्न हुए, पर विफल । उक्त पर्वतारोहियों ने अपनी जान की बाजी लगा कर जो दुर्लभ कार्य कर दिखाया, उसके लिए भारत ही नही, सारा संसार उनका ऋणी रहेगा ।

यह निस्सदेह एक विचित्र सयोग था कि जिस दिन इग्लैंड की रानी का राजतिलक हुआ, उसी दिन दुनिया को इस गिर्यारोहण का समाचार मिला । लेकिन दादा धर्माधिकारी के शब्दों में "'राज्यारोहण' की अपेक्षा यह 'गिर्यारोहण' कही अधिक उदात्त और भूषणास्पद है ।" रानी के राजतिलक के पीछे जहा एक लकीर पीटने की भावना थी, वहा इसके पीछे मानव के गौरव और पुरुषार्थ की महान् प्रेरणा है। दृष्टि की विशालता और पराक्रमशीलता का इससे बढकर दूसरा उदाहरण नही हो सकता।

हम इन तीनो महापुरुषो का तो हार्दिक अभिनन्दन करते ही है, साथ ही उन व्यक्तियों का भी, जिन्होने इनसे पूर्व विश्व के इस उच्चतम शिखर पर चढने का स्तुत्य प्रयास किया था।

इस महान घटना का पूरा महत्व तो तब समझा जायगा, जब हमारे देश के युवक इससे प्रेरणा लेकर पुरुषार्थवान बनेगे और युगो के प्रमाद को तिलाजलि देकर ऐसे साहसिक कामो में जुट जायगे ।

कलाकारो और साहित्यिकों से

'सर्व सेवा सघ' के सहमत्री श्री वल्लभस्वामी ने 'सर्वोदय' के जून-अक मे देश के कलाकारो और साहित्यिको से भूदान-यज्ञ के सबंध मे अपनी अपेक्षा व्यक्त करते हुए लिखा है :

"भूदान-यज्ञ युग क्राति की दिशा मे एक नया कदम है, जिस ओर दुनिया के विचारकों का ध्यान आकर्षित हुआ है । आदोलन की सहज रफ्तार शोषणहीन व साम्ययोगी समाज की नीव डाल रही है । मानव के हृदय मे नई भावनाओ का मथन आरंभ हुआ है । ऐसी मन स्थिति में हृदय को हिलाकर उसे उचित दिशा की ओर उत्साहित व गतिमान करने की अद्वितीय सामर्थ्य कलाकारो व साहित्यिको में है ।"

अन्त में अपील करते हुए वह लिखते है, "कलाकारो और साहित्यिकों से निवेदन है कि अपनी कलाकृतियो से लोगो को जाग्रत करने मे वे हमें सहयोग दे और अहिंसक क्राति को सफल बनाने में अपना हाथ बटावें।"

भूदान यज्ञ ने अब एक आदोलन का रूप धारण कर

लिया है और देश के प्रत्येक भाग में उसकी चेतना दिखाई दे रही है। फिर भी यह काम इतना बड़ा है कि देश के कोने-कोने तक उसका स्वर पहुंचाने के लिए व्यापक सहयोग की आवश्यकता है। सबके हाथ लगाने से ही इस गोवर्द्धन को उठाया जा सकता है।

इस काम में साहित्यकारों की मदद बहुत लाभदायक सिद्ध हो सकती है। साहित्यकार अपनी रचनाओं द्वारा लोकसेवा के इस अनुष्ठान के संदेश को घर-घर पहुंचा सकते हैं। हम ईमानदारी को सबसे अधिक महत्व देते हैं। इसलिए हम यह नहीं कहेंगे कि जो इस कदम से सहमत नहीं हैं, वे भी इसका समर्थन करें। उनका सद्भावनापूर्वक किया गया विरोध भी इस आंदोलन को गति ही प्रदान करेगा, लेकिन जो इससे सहमत हैं, उन्हें पूरी निष्ठा के साथ इस काम में सहयोग देना चाहिए।

साहित्य की बड़ी शक्ति है और हम इतिहास में देखते हैं कि क्रांति कराने में साहित्य का कितना हाथ रहता है। भूदान-यज्ञ एक क्रांतिकारी कदम है। आज के युग में लोकशक्ति को जाग्रत और संगठित करने का इससे अधिक प्रभावशाली उपाय दूसरा हो नहीं सकता।

कलम के धनी जरा जोर लगा देंगे तो निश्चय ही भूदान का स्वर अधिक प्रखर होगा।

प्रत्येक आंदोलन को तीन अवस्थाओं में होकर गुजरना पड़ता है। पहली अवस्था में लोग उदासीन होते हैं और कुछ उपेक्षा दिखाते हैं। दूसरी अवस्था में उसका मजाक उड़ाते हैं। लेकिन तीसरी अवस्था में उसे सहयोग देते हैं। भूदान-यज्ञ का आंदोलन पहली दो अवस्थाओं को बहुत-कुछ पार कर चुका है और तीसरी में प्रवेश कर रहा है। उसे अंतत सभी क्षेत्रों के लोगों का तो सहयोग मिलेगा ही, लेकिन जितनी जल्दी मिल जायगा, उतना ही देश का लाभ होगा।

श्यामाप्रसाद मुकर्जी का देहांत

अभी-अभी दुखद समाचार मिला है कि जनसंघ के महान नेता श्री श्यामाप्रसाद मुकर्जी का हृदय की गति रुक जाने से देहान्त हो गया। वह कुछ दिनों से रोगग्रस्त थे, लेकिन जनसंघ के आंदोलन के कारण उन्होंने अपने स्वास्थ्य की चिंता नहीं की।

श्री श्यामाप्रसाद मुकर्जी के निधन से प्रत्येक देशवासी को वेदना होगी। वह बंगाल के ही नहीं, सारे भारत के एक बड़े नेता थे। देश की आजादी के संग्राम में वह बड़ी बहादुरी से लड़े और देश के स्वतन्त्र होने पर उन्होंने भारतीय शासन को मजबूत बनाने में यथाशक्ति योग दिया।

उनकी विचारधारा कुछ भी क्यों न रही हो, लेकिन इसमें शंका नहीं कि देश का हित उनके लिए सर्वोपरि था।

डा० मुकर्जी के प्रति हम अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं और उनके परिवार के प्रति हार्दिक समवेदना। सेवा के प्रति समर्पित ऐसे प्रतिभावान व्यक्ति मर कर भी चिरस्मरणीय रहते हैं।

शिवपूजनजी स्वस्थ हों

हिन्दी के जिन वरद पुत्रों ने साहित्य-सेवा को 'पेशा' न मान कर मिशन के रूप में राष्ट्र भारती की वर्षों से सेवा की है और कर रहे हैं, उनमें श्री शिवपूजनसहायजी का नाम अग्रणी है। हिन्दी ही क्या, अन्य भाषाओं में भी उन जैसे प्रामाणिक, सतुलित और ईमानदार लेखक कम ही मिलेंगे। उनके जीवन में आडम्बर का नामोनिशान भी नहीं है। और उनके विचार उलझन रहित हैं। ऐसी दशा में उनका साहित्य सात्विक और सुस्पष्ट हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। नाम में वह पीछे और काम में सदा आगे रहे हैं। लगभग दो वर्ष पूर्व बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद् स्थापित हुई तो उसके मंत्रित्व का दायित्वपूर्ण भार शिवपूजनजी के ही कंधों पर आया और हमें यह कहते हुए गर्व होता है कि उसे वह बड़ी योग्यता से निभाते आये हैं।

काम के आगे शिवपूजनजी ने स्वास्थ्य की कभी चिन्ता नहीं की, बल्कि उपेक्षा की। यह अनाचार प्रकृति बहुत दिनों तक सहन नहीं कर सकती थी। फलत आज वह क्षय से पीड़ित हैं। पिछली बार पटना में राष्ट्र-भाषा परिषद् के द्वितीय वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर जब हमने उनके दर्शन किये थे तो उन्होंने अत्यंत दुखित होकर कहा था कि वह इंजेक्शनों के सहारे जी

'मण्डल' की ओर से

कलकत्ता का संकल्प

पाठकों को स्मरण होगा कि हम लोगों ने सहायक सदस्य योजना के संबंध में संकल्प किया था कि कलकत्ता से कम-से-कम १०० सदस्य अवश्य बनायंगे। हमें यह सूचना देते हुए हर्ष होता है कि हमारा वह संकल्प पूर्ण हो गया। १०३ सदस्य वहां से बन गये। जिनमें से ९२ का रुपया भी प्राप्त हो गया। बाकी के फार्म भरे हुए हमारे पास है। रुपया शीघ्र ही आ जायगा।

कलकत्ते की इस सफलता का श्रेय वैसे तो वहां के उन सब महानुभावों को है, जिन्होंने इसे अपना ही काम मान कर इसमें योग दिया, फिर भी जिन हितैषियों ने प्रारंभ से लेकर अंत तक सक्रिय सहयोग दिया उनमें श्री भागीरथजी कानोड़िया, श्री प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका, श्री रामकुमारजी भुवालका, श्री सीतारामजी सेकसरिया, श्री श्यामसुन्दरजी जयपुरिया, श्री राधाकृष्णजी नवटिया, श्री रामेश्वरजी टाटया, श्री श्रीचंदजी रामपुरिया प्रभृति के नाम विशेष उल्लेख योग्य हैं। यदि इन तथा अन्य अनेक स्नेही मित्रों ने हमारा हाथ न बटाया होता तो इतनी सफलता हम कदापि न मिल सकती थी। हमें याद नहीं आता कि किसी भी बंधु ने हमें सहयोग देने में संकोच किया हो। कलकत्ता जैसी महानगरी में जीवन कितना व्यस्त है, यह हमसे छिपा नहीं है, लेकिन हमारे सब हितैषियों ने समय निकाल कर हमारी पूरी-पूरी सहायता की। हम इन सबके हृदय से आभारी हैं। आशा है, आगे भी इनका कृपा भाव इसी प्रकार बना रहेगा।

हम अपने सब सदस्यों के भी कृतज्ञ हैं जिन्होंने ऐसे आड़े समय में सदस्य बन कर इस योजना को आगे बढ़ाने में योग दिया। यदि उन्होंने सदस्य बनने की कृपा न की होती तो यह योजना ज्यों-की-त्यों पड़ी रह जाती।

हमें कुल मिला कर ५०० सदस्य बनाने हैं। कलकत्ता का संकल्प पूरा हो जाने का अर्थ यह नहीं है कि अब हम वहां से सदस्य बनायेंगे ही नहीं। हमारा मतलब केवल इतना है कि अब हम अपना ध्यान किसी दूसरे स्थान पर केन्द्रित करेंगे। कलकत्ते के मित्रों को हम प्रेरणा करते रहेंगे कि वहां जो सदस्य बनने के अभिलाषी हों, उन्हें सदस्य बना दें। हमें विश्वास है कि अभी वहां से काफी सदस्य और बन जायंगे।

कलकत्ते की इस सफलता का प्रभाव अन्य स्थलों पर भी पड़े बिना न रहेगा। हमें तो अब यह भी विश्वास हो गया है कि जहां कहीं हम जायंगे, वहीं हमें सहायता देने वाले मित्र मिल जायंगे।

मिली हैं, उनमें एक भी हल्की नहीं है।

इससे हमें हर्ष अवश्य होता है, पर साथ ही हम यह भी जानते हैं कि हमारी जिम्मेदारी कितनी बढ़ गई है।

हम कृपालु सदस्यों को विश्वास दिलाते हैं कि आगे भी हमारा यही प्रयत्न रहेगा कि हम उन्हें बढ़िया से बढ़िया पुस्तकें देते रहें।

अब हम अपना ध्यान बंबई पर लगाना चाहते हैं। कुछ आवश्यक कार्यों से छुट्टी मिलते ही हम लोग कुछ समय के लिए वहां चले जायंगे।

नये प्रकाशन

नई पुस्तकों के विषय में हम पाठकों को समय-समय पर सूचना देते रहते हैं। जो पुस्तकें पहले से प्रेस में हैं, उनके अतिरिक्त 'संस्कृत साहित्य सौरभ'— माला की चार पुस्तकें प्रेस में दे दी गई हैं :

(१) कादम्बरी (३) वेणीसंहार

(२) उत्तर रामचरित (४) शकुंतला

इस माला की और भी पुस्तकें प्रेस में जा रही हैं। आशा है, इन छोटी छोटी पुस्तकों का एक अच्छा सेट पाठकों को जल्दी ही मिल जायगा।

इनके अलावा विनोबाजी की कई पुस्तकें निकालने की योजना है। पाण्डुलिपियां तैयार हो रही हैं।

हम चाहते हैं कि हमारे पाठक हमें प्रकाशनों के बारे में अपने सुझाव दें। हमारे एक विद्वान मित्र ने सलाह दी है कि 'मण्डल' को 'महाभारत' का एक सुन्दर और सस्ता संस्करण निकाल देना चाहिए। पहले वह मासिक प्रकाशन के रूप में निकले, अर्थात् पाठकों को लगभग १०० पृष्ठ की सामग्री प्रतिमास मिलती रहे, बाद में उसे एकत्र कर दिया जाय। सुझाव बहुत उपयोगी एवं महत्वपूर्ण है। हम चाहते हैं कि हमारे अन्य चिंतनशील पाठक भी समय-समय पर हमें इस प्रकार की सूचनाएं देते रहें। उससे हमें अपने कार्य को देखने-समझने के साथ-साथ आगे की प्रकाशन की दिशा निश्चित करने और तदनुकूल योजना बनाने में मदद मिलेगी।

पिछले छः महीने में प्रकाशित

मण्डल की पुस्तकें

नई

१ संत-सुधा-सार	(सम्पादक—वियोगी हरि)	११)
२. जीवन और शिक्षण	(विनोबा)	२)
३ सर्वोदय का घोषणापत्र		।)
४. सर्वोदय के सेवकों से		।)
५ कब्ज: कारण और निवारण	(महावीरप्रसाद पोद्दार)	२), १।।)
६. काश्मीर पर हमला	(कृष्णा मेहता)	२)

(इनके अतिरिक्त अनेक पुरानी पुस्तकों के पुनर्मुद्रण हुए हैं।)

प्रेस में

१. आत्मसंयम ('गांधी साहित्य' का नवां भाग)	(गांधीजी)
२. कल्प-वृक्ष	(वासुदेवशरण अग्रवाल)
३. हिमालय की गोद में	(महावीरप्रसाद पोद्दार)
४. जीवन और साहित्य	(बनारसीदास चतुर्वेदी)
५. भारतीय संस्कृति	(साने गुरुजी)
६. कादम्बरी	(महाकवि बाणभट्ट)
७. उत्तर-रामचरित	(,, भवभूति)
८. वेणी संहार	
९. शकुंतला	(कालिदास)
१०. बद्रीनाथ	(विष्णु प्रभाकर)
११. जंगल की सैर	(रामचंद्र तिवारी)
१२. भीष्म पितामह	(देवराज 'दिनेश')
१३ शिवि और दधीचि	(दयाशंकर 'दद्दा')

सस्ता साहित्य मण्डल

नई दिल्ली

Regd. No. D. 228

मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली में छपाकर प्रकाशित।



गोस्वामी तुलसीदास

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय
यशपाल जैन

जीवन साहित्य

'जीवन-साहित्य'

लेख-सूची

नियम

१ 'जीवन-साहित्य' प्रत्येक मास के पहले सप्ताह में प्रकाशित होता है। १० तारीख तक अक न मिले तो अपने यहा के पोस्टमास्टर से मालूम करें । यदि अक डाकखाने में न पहुचा हो तो पोस्टमास्टर के पत्र के साथ हमारे कार्यालय को लिखें ।

२ पत्र-व्यवहार में अपनी ग्राहक सख्या अवश्य दें। उससे कार्रवाई करने में सुगमता और शीघ्रता होती है ।

३ ग्राहक पूरे वर्ष के लिये बनाये जाते है ।

४ बहुत से लोग ग्राहक किसी नाम से होते हैं और आगे का चदा किसी नाम से भेजते हैं । इससे गड़बड़ी हो जाती है। इस सम्बन्ध में मनीआर्डर के कूपन पर स्पष्ट सूचना होनी चाहिए।

५ पत्र में प्रकाशनार्थ रचनाए उसके उद्देश्य के अनुकूल भेजी जाय और कागज के एक ही ओर साफ-साफ अक्षरो में लिखी जाय।

६ अस्वीकृत रचनाओ की वापसी के लिए साथ में आवश्यक डाक टिकट आने चाहिए ।

७ समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतिया भेजी जाय ।

८ पत्र के ग्राहक जुलाई और जनवरी से बनाये जाते है। बीच में रुपया भजनेवालो को सूचना दे देनी चाहिए कि उन्हे पिछले अक भेज दिये जाय या आगे से ग्राहक बनाया जाय।

—व्यवस्थापक

निवेदन

हमारे अनेक पाठको ने प्रेमभरी शिकायत की है कि 'जीवन-साहित्य' की पृष्ठ-सख्या कम है । कुछ और पृष्ठ बढा दिये जाय । इन तथा अन्य मित्रो से हमारा विनम्र निवेदन है कि हम लोग पत्र को सब प्रकार से उन्नत बनाने के लिए प्रयत्नशील है, लेकिन जबतक ग्राहको की सख्या न बढे तबतक यह कैसे सम्भव हो ? पिछली जनवरी में हमने आठ पृष्ठ बढाकर भी, क्योंकि शुल्क वही रक्खा था । पाठक जानते है कि 'जीवन-साहित्य' को विज्ञापनो की आमदनी नही है और वह ग्राहको के सहारे ही चल रहा है । प्रति वर्ष कुछ-न-कुछ घाटा हो जाता है । यदि ५००० ग्राहक हो जाय तो पत्र अपने पैरो पर खडा हो जायगा और उसके कलेवर तथा पृष्ठो मे भी वृद्धि हो जायगी।

अपने पाठको और ग्राहको से हमारा अनुरोध है कि वे ५००० ग्राहक बनाने मे हमारा हाथ बटाने की कृपा करें । देश मे हिन्दी-भाषियो की सख्या २० करोड है । उसे देखते ५००० ग्राहक बनाना कठिन नही है ।

—यशपाल जैन, सम्पादक

उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश तथा बिहार प्रादेशिक सरकारों द्वारा स्कूलों, कालेजों व लाइब्रेरियों तथा उत्तरप्रदेश की ग्राम-पंचायतों के लिए स्वीकृत

जीवन-साहित्य

अहिंसक नवरचना का मासिक

वर्ष १४] अगस्त १९५३ [अंक ८

एशिया में नई चेतना

डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन

हम किसी एक देश में स्वतन्त्रता और दूसरे देश में इसका अभाव नही रख सकते। चाहे हम पसन्द करें या नही, हम सब एक विश्व के वासी हैं। यदि हमारे शरीर का एक अवयव पीड़ित है, तब दूसरे अवयवों मे भी व्याकुलता और अशान्ति आ जाती है। यदि कोई बात सर्वाधिक हमारे युग को विशिष्टता प्रदान करती है तो वह एशिया और अफ्रीका के देशों मे मानवात्मा का जागरण है। इन देशों की जनता मे भी राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने की उत्कट लालसा एवं अपने आर्थिक बन्धनों एवं जातीय दमन से मुक्ति पाने की प्रबल आकांक्षा है। इन विचारो की प्रतिध्वनि आपके हृदयों में भी होनी चाहिए। प्रजातन्त्र, स्वतन्त्रता और स्वाधीनता अविभाज्य हैं। यह संभव नहीं है कि हम राजनीतिक मामलों में स्वतन्त्र हों तथा सामाजिक और आर्थिक मामलों में न हों। इसी प्रकार एक देश मे स्वतन्त्रता और दूसरे देश मे पराधीनता भी नही चल सकती। हम सब एक मानव-वंश के हैं। यही समय है जब कि विश्व को विभिन्न जातियों एवं धर्मावलंबियो में एक अन्तर-धर्म और अन्तर-संस्कृति के समझने के लिए कार्य करना चाहिए।

आज एक विश्व-क्रांति फैल रही है जो पूर्णतः साम्यवाद से अलग चीज है। भूखे, अस्वस्थ तथा उपेक्षित लोग जो गैर-साम्यवादी देशों में बहुसंख्या मे हैं, आर्थिक प्रगति तथा विकास की मांग करते हैं। यदि हम इन समस्याओ पर ध्यान देने मे हिचकिचायगे तो दूसरे हमारी लापरवाही व अयोग्यता से फायदा उठायगे।

आज हमे अमरीकी या रूसी तरीके की जरूरत नही है, बल्कि मानवीय तरीके की जरूरत है। हम मानवीय इतिहास के एक ऐसे युग मे पहुच गए हैं जब कि विज्ञान ने इस पृथ्वी से भूख व गरीबी दूर करने की संभावनाए हमें दी है। यदि हम गैर-साम्यवादी दुनिया मे समृद्धि स्थापित कर सके तो शांति की आशा में वृद्धि होगी।

गहराई में जायँ

विनोबा

सन् १९२० में जब हमने गांधीजी के मार्गदर्शन में सूत कातना शुरू किया था, तो उसकी शक्ति का भान लोगों को उतना नहीं हुआ था। परन्तु धीरे धीरे आंदोलन व्यापक होता गया और परिणाम-स्वरूप हम स्वराज प्राप्त कर सके। सत्ताईस साल की दीर्घ अवधि उसमें लगी। लेकिन दूसरे देशों के आजादी के रण-संग्रामों की बात जब हम सोचते हैं तो यह अवधि दीर्घ नहीं कही जावेगी, छोटी ही मानी जावेगी। खादी व्यापक भी हुई और उसका एक दृश्य परिणाम भी स्वराज के रूप में फलित हुआ जो हमने देखा। परन्तु वह गहराई में न जा सकी। उसका परिणाम हम आज देख रहे हैं कि उससे देश में आर्थिक क्रांति की जो अपेक्षा थी, उसकी कल्पना ही अभी बहुत दूर है। उससे राजनैतिक सत्ता प्राप्त की और यद्यपि उसमें आर्थिक क्रांति की भी शक्ति थी, लेकिन आर्थिक क्रांति तो तब पैदा होती, जब हम उस विचार को गहराई में ले जा सके होते। लेकिन कई कारणों से हम गहराई में नहीं जा सके।

मैं तो जब खादी का चिंतन करता था, तो गहराई में जाकर ही करता था। इसलिए खादी उत्पादन और खादी-प्रचार के जो कार्यक्रम चलाये गये, उनमें मुझे कभी विशेष दिलचस्पी नहीं रही। मेरी दिलचस्पी तो इसमें रही कि खादी घर घर में कैसे तैयार हो, उसे यज्ञ के तौर पर लोग किस तरह कबूल करें। और घर-घर में कातने का यज्ञ कैसे दाखिल हो। उसी तरफ मेरा विचार रहा। आज भी गांधीजी की स्मृति में साल भर में एक गुंडी अपने हाथ से कते सूत की देने का जो विचार मैंने जाहिर किया है, उसमें यही गहरी दृष्टि है। इसका विकास करना जरूरी है।

> पन्द्रह अगस्त का दिन भूमिदान-दिवस मनाया जाय, यह कल्पना अच्छी है। इधर देश को आजादी मिल गई है। उधर बापू की नोआखाली यात्रा चल रही है, दोनों स्मरण भारत की जिम्मेदारी और उसके शेष कर्तव्य का हमें भान कराते हैं। कल्पना तो अच्छी है, लेकिन गांव-गांव कैसे पहुँचा जाय यह भी हमारे सामने सवाल है? सब पक्षों के और दलों के लोग काम को उठा लें तो हो।
>
> एक पत्र से]   विनोबा के प्रणाम

इसी तरह जब हम भूदान-यज्ञ-आंदोलन की बात सोचते हैं, तो ध्यान में आवेगा कि दो साल में वह काफी व्यापक हुआ है। उससे विशेष जीवन का संचार हुआ है और खास कर रचनात्मक काम करनेवालों में वह भावना आई है। दो साल पहले जो निराशा थी, उसे देखते हुए अपेक्षा से अधिक परिणाम आया, ऐसा ही मैं मन में सोचता हूं। यह दिन-ब-दिन व्यापक ही होता जायगा। परन्तु उसको भी हम अगर गहराई में नहीं ले जा सके, तो जिस तरह खद्दर का पूरा लाभ हम अभी तक नहीं हासिल कर सके, उसी तरह इसका भी होगा। इसलिए मैं उसका गहराई से ही चिंतन करता हूं।

लोग मुझसे बीच-बीच में पूछते हैं कि पैदल घूमने के बजाय मोटर इस्तेमाल करो तो इससे व्यापक प्रचार होगा। पहले तो पैदल जाने से ही प्रचार हो सकता था। लेकिन अब हम इस अवस्था में हैं कि मोटर से सारे प्रांत भर में एक दफा चक्कर लगायें तो व्यापक प्रचार होगा। इसलिए मुझसे मोटर के बारे में सवाल पूछा जाता है। मैं मन में मानता हूं कि क्षण भर के लिए यदि हम मानें कि उससे हम बहुत जगह शीघ्र पहुंचेंगे, तो भी गांव-गांव जाकर पैदल घूमने में जो चिंतन होता है, उससे मानवों के हृदय का जो स्पर्श हमें होता है और हमारे हृदय का भी ग्रामीणों को जो स्पर्श होता है, वह हमें गहराई में भी ले जायगा। इसीसे चिंतन बढ़ता है। उसी-में से संपत्ति-दान-यज्ञ भी सूझा है। और अब हमने जो श्रम-दान की बात सोची है वह भी उसीसे सूझी है।

१९५७ तक पांच करोड़ भूमि का हस्तांतर हो जाय, ऐसी हमने अपेक्षा रखी है। परन्तु भूदान यज्ञ का जो असली

रूप है, वह, जैसा कि मैंने कई दफा कहा है, एक धर्म-विचार के प्रवर्त्तन का है। किसी ने हमें भूमि दी। मान लीजिये कि दबाव से नहीं दी श्रद्धा से ही दी, फिर भी उस दान से उसके अपने जीवन चलाने के अभी तक के विचारों में परिवर्तन नहीं हुआ तो उस दान को क्षणिक पुण्य का ही रूप मानना होगा। ऐसा क्षणिक पुण्य भी मनुष्य का समाधान देता है, कुछ सद्भावना भी पैदा करता है, परन्तु उनसे से हमारा काम नहीं बनेगा। जैसा मैंने कल पालकोट में कहा था कि दान देने में हृदय-परिवर्तन हुआ, तो भी वह चिरस्थाई परिवर्तन तब कहा जायगा, जब कि उसके अनुसार दान देने वाले व्यक्ति का जीवन-परिवर्तन हो। वैसा कुछ लोगों का जीवन-परिवर्तन हो रहा है। ऐसे लोग थोड़े ही है। फिर भी वे ही हमारे यज्ञ की मुख्य कमाई है। और ऐसा जीवन-परिवर्तन तब होगा, जब हम तप से हृदय में अधिक-से-अधिक संशोधन करते जायेंगे और हमारी वाणी, हमारा व्यवहार, हमारे मन के सूक्ष्म विचार, इन सबका पूरा संशोधन करेंगे। तब हम आशा कर सकते हैं कि दान देनेवालों का भी हृदय-परिवर्तन चिरस्थाई हो, क्षणिक न रहे और इससे उनके जीवन में में ही कुछ फर्क हो।

इस दृष्टि से कुदाली चलाने का जो काम हमने शुरू किया है, उस पर सोचना चाहिए। खेत में खोदने का काम मैंने एक उपासना के तौर पर कई बरसों तक किया है और वह निष्ठा इतनी गहरी है कि उसीमें से जन-शक्ति निर्माण होगी ऐसी मेरी अपेक्षा रही है। हम दस-दस मील चलते हैं। उसके बाद कुदाल चलाने की बहुत ज्यादा शक्ति नहीं रहती है। फिर भी थोड़ी ही देर क्यों न हो, हम कुदाल चलाते हैं। रोज चलायें तो भी एक यांत्रिक कार्य क्रम नहीं होना चाहिए। शरीर-परिश्रम की निष्ठा, उत्पादक शरीर-परिश्रम की निष्ठा निर्माण हुए बगैर न भूदान यज्ञ सफल होगा, न यहां के गरीबों का उत्थान होगा, न गरीब-अमीर का भेद मिट सकेगा, न सर्वोदय समाज की स्थापना होगी। यह समझ कर हमें कुदाल चलाने का यह काम करना है। यह मैं सिर्फ अपने कुदाल चलाने के कार्यक्रम के बारे में नहीं कह रहा हूं। और भी बातें मुझे सूझती रहेंगी, जैसे-जैसे हम गहराई में जाते जायेंगे।

वह जो वस्त्र-बहिष्कार हुआ: अन्न-वस्त्र के बारे में, उसका भी ऊपरी-ऊपरी अर्थ नहीं करना है, बल्कि भूदान यज्ञ की गहराई में जब हम जायंगे तब वह चीज उसके साथ सहज आवेगी। ऐसे ही एक-एक पहलू उसके साथ जुड़ जायगें। मेरा विश्वास है कि इस आंदोलन के जरिये आखिर जो कार्य खादी-आंदोलन में नहीं कर सके वह भी कर सकेंगे। अभी मैं इसको ज्यादा विस्तृत नहीं करना चाहता, परंतु यह सब मेरे मन में चल रहा है।

राम-राज्य

पालत राज यों राजा राम धरम धुरीन,
सावधान, सुजान, सब दिन रहत नय-लयलीन।
स्वान-खग-जति-न्याउ देख्यो आपु बैठि प्रवीन,
नीचु हति महिदेव-बालक कियो मीचुविहीन।
भरत ज्यों अनुकूल जग निरुपाधि नेह नवीन,
सकल चाहत रामही, ज्यों जल अगाधहि मीन।
गाइ राज-समाज जांचत दास तुलसी दीन,
लेहु निज करि, देहु निज-पद-प्रेम पावन पीन।

—तुलसीदास

मानवता का झरना

घनश्यामदास बिड़ला

[अपने बंदी-वास के जीवन में दादा मावलंकरजी अनेक फांसी की सजा के बंदियों के निकट सम्पर्क में आये थे। उन्हें बचाने के लिए उन्होंने काफी प्रयत्न किया और कई एक को बचा भी लिया। लेकिन इससे भी मूल्यवान बात यह थी कि उन्होंने उन बंदियों के व्यथित हृदय में प्रकाश का प्रवेश कराकर उन्हें जीने का सहारा प्रदान किया। यह स्वाभाविक ही था कि उनके सम्मुख उन बंदियों ने अपना हृदय खोलकर रख दिया। मानवता से स्पंदित अनेक घटनाओं को दादा ने बड़ी हृदयस्पर्शी शैली में लिपिबद्ध कर लिया था और अब वे 'मानवता का झरना' के नाम से सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली तथा हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, वर्धा के संयुक्त प्रकाशन के रूप में शीघ्र ही पाठकों को सुलभ हो रही हैं। प्रस्तुत लेख उसी पुस्तक की भूमिका है।]

—सम्पादक

जड़ चेतन गुण दोषमय विश्व कीन्ह करतार।
सन्त हंस गुण गहहिं पय परिहरि वारि विकार॥

तुलसीदास के इस दोहे को गांधीजी ने अपने जीवन में इतना ओत-प्रोत कर रखा था कि इसे अवसर वे मित्रों के सामने दोहराते थे। बात तो इस दोहे में सीधी-सादी ही है, पर सीधी और सही बात को भी सभी हृदयगम नहीं कर पाते। यदि सही बात सब के दिमाग में बैठ जाय तो दुनिया का सारा टंटा ही समाप्त हो जाय। मावलंकर दादा जब कारावास में बंद थे तब खूनी बंदियों पर उन्होंने ऊपर के इस सीधे-सादे सत्य का प्रयोग किया था। उस प्रयोग की कहानी ही इस पुस्तक का विषय है।

कारागृह के साथियों से दादा साहब की इतनी अधिक घनिष्टता हो गई कि कैदी उन्हें 'गुरु महाराज' के नाम से पुकारने लगे। पर दादा साहब केवल 'गुरु महाराज' ही नहीं रहे उनके शिष्य भी बने। हंस की तरह नीर क्षीर विवेक द्वारा अपने संत-स्वभाव का अनुसरण कर उन्होंने बहुतों के गुण ग्रहण किये और अनेकों को अपना गुरु बनाया। जो निम्न से भी निम्न को गुरु बना सकता है अर्थात् जड़-चेतन गुण दोषमय वस्तुओं से कुछ-न-कुछ सीख सकता है, वही गुरु बनने का भी अधिकारी होता है। इसलिये दादा साहब यदि गुरु महाराज बने तो इसी बल पर कि उन्होंने हंस या संत बनकर नीर-क्षीर का पृथक्करण किया और खूनियों से भी गुण सीखा।

प्राचीन काल में न तो सब किसी में लिखने की शक्ति थी और न थी मुद्रणकला ही। इसलिए कम-से-कम पुस्तकें उस जमाने में लिखी जाती थीं। पर जो लिखी जाती थीं उनका अध्ययन बहुत गहरा होता था। सैकड़ों सालों में ६ शास्त्र और कुछ इने गिने पुराण लिखे गये। पर जो कुछ लिखा गया वह था बहुत ठोस। इसलिए आज भी उस प्राचीन साहित्य का नये की अपेक्षा ज्यादा चलन है, क्योंकि उस प्राचीन के पीछे कुछ सद्हेतु है। और वह यह कि पढ़ने वालों को कुछ जीवन का तत्व मिले। इस जमाने में हजारों ही पुस्तकें हर साल छपती हैं और लाखों मनुष्य इन पुस्तकों के पन्ने उलट-पलट कर सरसरी तौर पर उन्हें पढ़ जाते हैं। पर क्या पढ़ा था इसे जल्दी ही भूल भी जाते हैं। क्योंकि इस नवीन साहित्य में अक्सर सारभूत मसाला नहीं के बराबर रहता है। इसलिए दिमाग पर इसकी कोई छाप नहीं रह जाती। इस दृष्टि से दादा साहब की यह मौलिक अनुभव-जन्य पुस्तक, जो रुचिकर शैली में लिखी गई है, हिन्दी भाषाभाषियों के लिये स्वागत की चीज है।

तत्व इस पुस्तक में यह है कि ईश्वर के इस विश्व में कोई भी प्राणी चाहे वह कितना ही पापी क्यों न हो धिक्कार या द्वेष का पात्र नहीं हो सकता। ईश्वर सबमें है और सब ईश्वर में हैं, इस वेदांत वाक्य का दर्शन हम हर मनुष्य के चरित्र में कर सकते हैं। ढूंढें तो सोना हमें सभी जगह मिलेगा। 'जिन खोजा तिन पाइया गहरे पानी पैठ।' जो गहरे उतरते हैं, उन्हें मिट्टी में से सोना मिलता है। 'बुरा जो खोजन मैं चला बुरा न दीखा कोय।' क्योंकि सोने की खान में उतरनेवालों की दृष्टि मिट्टी

और कीचड़ पर नहीं पड़ती। मिट्टी में जो प्रच्छन्न सोना है उसी पर जौहरी की नजर जा पड़ती है। दादा साहब की नजर खूनी हृदय में जो प्रच्छन्न सोना था उसी पर जा पड़ी, जिसका विवरण उन्होंने रोचक ढंग से इस पुस्तक में किया है। यह पुस्तक पाठकों के लिए एक चुनौती है जो यह आवाहन देती है कि हर मनुष्य अपने इर्द-गिर्द कीचड़ में पड़े सोने को ढूंढ़े, क्योंकि जिसमें सोना छिपा है उस मिट्टी की उपेक्षा और घृणा करके हम सोना खो बैठते हैं और प्रकारान्तर से अपने आप की ही हम हानि करते हैं।

भर्तृहरि ने कहा कि जब मैंने थोड़ा-सा जाना तो ऐसा माना कि मैं सब कुछ जान गया। पर जब ज्यादा जाना तो बात समझ में आई कि मैं अभी कोरा नादान हूं।

यदा किंचिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवम्।

अज्ञ और विज्ञ में यही बड़ा भारी भेद है। अज्ञ इसी भ्रम के चक्कर में फंसा रहता है और समझता है कि वह सब कुछ जानता है। विज्ञ अपनी मर्यादा पहचानता है और जानता है कि हम अपने आपको ही पूरा नहीं जानते तो दूसरों पर निर्णय कैसे दे सकते हैं। एक छोटी सी मिसाल के लिए हमारे इस शरीर के भीतर क्या-क्या रचनायें हैं, किस तरह हमारे बिना प्रयास और हमारी बिना जानकारी के हमारा हृदय एक घंटे में करीब ६ मन रक्त को साढ़े चार हजार मर्तबा हमारे शरीर के कोने-कोने में धकेलता और वापस लेता है, किस तरह यदि शरीर के तमाम अणु परमाणुओं के आकाश को हम समेट लें, तो परिणामतः शरीर की विशालता खत्म होकर एक इतना छोटा ठोस अणु रह जाता है, जो सूक्ष्मदर्शक यंत्र के बिना आंखों से दिखाई भी नहीं दे सकता, इस हमारे अपने शरीर की इस विचित्र रचना को भी हम नहीं जानते हैं। और हमारी इन स्थूल क्रियाओं को नहीं जानते तो फिर अपने सूक्ष्म गुण दोषों की तो परख ही कहां है। जब हम अपने आपको ही नहीं पहचानते तो पराये को हम जान गये, यह दावा बालू की भीत जैसी भावना है। दत्तात्रेय ने इसलिए पशु-पक्षियों को भी गुरु बना लिया था यही उनके ज्ञान की निशानी थी। पापी कहे जाने वालों के प्रति नफरत, यह हमारे अज्ञान का प्रदर्शन है।

मनुष्य का मानस बड़ा विलक्षण है। मनुष्य हृदय में न एक रस सत्व रहता है, न रजस और तमस्। समुद्र की लहर की तरह एक गुण आता है, तो दूसरा जाता है। कभी-कभी साथ ही में दोनों टक्कर मारते हैं। जो गुण जिस समय आता है वह अपना खेल उस समय के लिये दिखाता है।

रजस्तमश्चाभिभूय सत्वं भवति भारत।
रजः सत्वं तमश्चैव तमः सत्वं रजस्तथा॥

गीता ने भी हमें यही बताया है। गुणों के इस उतार-चढ़ाव का साक्षात् दर्शन इस पुस्तक के कुछ नायकों के चरित्रों में होता है। यह दर्शन हमारी कुंठित बुद्धि को विशाल बनाने में सहायक होगा।

वैसे तो इसमें कई चरित्र हैं, पर महमद मूसा और शिवराम इन दो खूनियों की कहानी अध्ययन के लायक है क्योंकि दोनों के हृदय में सत्त्व, रज, तम का युद्ध चला और अंत में जब सत्व का प्रभाव बढ़ा तब उन्होंने अनासक्ति से मृत्यु पर विजय पाई, निर्भय होकर मृत्यु का सामना किया।

महमद की स्त्री चंचलन थी। महमद को इसका पता चला और उसने क्रोध में आकर उस पर छुरी से वार किया और वह मर गई। जैसा कि होता है वकीलों ने अपराध को अस्वीकार करने की सलाह दी। महमद ने वैसा ही किया, पर तो भी अन्त में फांसी की सजा हुई। अब जो कुछ हो सकता था वह इतना ही कि महमद की तरफ से दया भिक्षा की प्रार्थना की जाय। दादा साहब ने महमद से कहा "मनुष्य का शरीर नश्वर है, इसलिए सच ही बोलना चाहिए।" पर फिर दादा साहब को लगा कि कहीं "परोपदेशे पाण्डित्यम्" वाली बात तो नहीं कर रहा हूं। इसलिए दादा साहब ने अपना आग्रह छोड़ दिया और महमद के पास जाना भी छोड़ दिया। पर उनके न जाने से महमद को बुरा लगा। खैर, अंत में दादा साहब ने दया-भिक्षा का आवेदन पत्र भिजवाया। जिसमें महमद से अपने दोष को स्वीकार करवाया। पर इसका भी कोई फल नहीं हुआ। फांसी की सजा कायम रही। अब जैसे-जैसे फांसी का दिन नजदीक आने लगा, महमद मृत्यु के लिए अधिकाधिक तैयार होने लगा। उसकी अनासक्ति बढ़ गई। देह सम्बन्धी उसकी अनास्था सम्पूर्ण हो गई, मानो गीता के तत्वज्ञान का उसे साक्षात्कार हो गया। मृत्यु

का समय निकट पहुंचा तब महमद ने खाना छोड़ दिया और करीब-करीब केवल दूध पर ही रहने लगा। पहरा देने वाले सतरिया को इससे चोट लगी। दादा साहब से उन्होंने कहा "दादा साहब हम फांसी वाले कैदियो को फांसी के तख्ते पर ले जाकर उन्हें वहां लटका हुआ देखने के आदी हो गये हैं, फिर भी उन कैदियो के प्रति हम हमदर्दी है। इस तरह के दृश्य देखकर भी हमारे दिल निष्ठुर नहीं हुए हैं। इसलिए महमद का अनशन हमें परेशान करता है। आप उसका अनशन तुड़वा दें तो हमारे दिल को शान्ति मिलेगी।" महमद से जब दादा साहब ने भोजन लेने के लिए आग्रह किया तो महमद ने कहा 'दो-चार दिन के अन्दर ही मुझे खुदा के दरबार में जाना है। वहां शरीर और मन को पाक करके जाना चाहिए। अगर मैं खाना जारी रक्खू, तो मुमकिन है फांसी के वक्त टट्टी और पेशाब हो जाय और मेरी यह देह अपवित्र हो जाय।" उत्तर में महमद की ईश्वर श्रद्धा और निर्भयता दोनों का समावेश था। मरने के एक रोज पहले महमद सारी रात माला फेरता रहा। सुबह गर्म पानी मंगवा कर स्नान किया। स्नान के बाद प्रार्थना की। और बाद में निर्भय होकर फांसी पर चढ़ गया।

शिवराम ने भी गुस्से में आकर एक स्त्री का खून किया और दादा साहब के प्रयास करने पर भी उसकी फांसी की सजा कायम रही। मरने का समय आया तो रात भर शिवराम विठोवा के पद गाता रहा। अन्त समय में जब मजिस्ट्रेट ने अपराध के बारे में पूछा तो उसने साफ स्वीकार किया कि यद्यपि मेरा खून का इरादा नहीं था तो भी खून मैंने किया है और जो सजा मिली है वह न्याय्य है। फांसी के तख्ते पर चढ़ते हुए उसने एकत्रित अफसरों से कहा, "साहबान, रात को मैंने पांडुरंग का एक बहुत अच्छा भजन बनाया है, आप उसे सुनें।" यह कह कर वह ऊंचे स्वर से भजन गाने लगा और गाते-गाते ही उसने देह-विसर्जन किया।

ये सब अनोखी घटनायें है, जो हमें बताती है कि मनुष्य स्वभाव किस तरह क्षण-क्षण पर बदलता है। कभी अच्छी लहर, तो कभी बुरी लहर आती है। बुरी लहर को मार भगाना और अच्छी को जकड़ के पकड़ लेना यही धर्म और व्यवहार है जो गीता और शास्त्र हमें सिखाते है। इन कैदियो ने अपढ़ होते हुए भी ऐन मौके पर शत्रु को कैसे पकड़ा और उसपर कैसे विजय पाई, यही इस पुस्तक का सारभूत है। मावलंकर दादा की इस पुस्तक में पाठक केवल मनोरंजन ही नहीं, नीति और धर्म की भी झांकी पायेंगे।

वे और हम

कमलनयन बजाज

बापू	वे सत्य के आग्रही थे, हम आग्रही सच्चे हैं। वे राम नाम लेते थे कि उसे भूल न जाय, हम भूल से राम नाम लेते हैं।
विनोबा	प्रार्थनामय जीवन, हमारा जीवन प्रार्थना का। उनकी प्रज्ञा स्थिर है, काया चंचल, हमारी काया स्थिर है, प्रज्ञा चंचल।
जमनालालजी	व्यापार में दान था, हमारे दान में व्यापार है।
मोतीलालजी	भोग में त्याग था, हमारे त्याग में भोग है।
अरविंद	योग में मुक्ति थी, हमारी मुक्ति में योग है।
जवाहरलाल	देश की चिन्ता में मरता है, हमारी चिन्ता में देश मरता है।
सरदार	बिना बात के असर करता था, हम बिना असर के बात करते हैं।
रमण महर्षि	वेदना का अभाव था, हमारे अभाव में वेदना है।
रवि ठाकुर	रुदन में गान था, हमारे गान में रुदन है। उनके लिए चित्त में रमनेवाले चित्र थे, हमारे लिए चित्रों में रमने वाला चित्त है।
बादशाह खान	जेल में जीवन है, हमारा जीवन ही जेल है
महादेवदेसाई	दोषों में विचार था, हमारे विचारों में दोष है।

आंतर भारती की भाषा-दृष्टि

स० ज० भागवत

स्वाधीन भारत में सामाजिक विकास के विविध प्रश्न विचार के लिए सामने आ रहे है। उनमे भारत की विविध भाषाओ के विकास के प्रश्न को महत्व मिलने वाला है। भारतीय गणराज्य मे जो प्रमुख लोक-भाषाएं है उनका विकास हुए बिना भारत के जन-साधारण का बौद्धिक एव सास्कृतिक विकास नही हो सकेगा। जबतक शिक्षा का माध्यम लोकभाषा नही बनती तबतक लोगो के मनोविकास का उद्देश्य कभी पूरा नही होगा। इसके लिए यह जरूरी है कि आहिस्ता-आहिस्ता भारत की सारी प्रधान लोकभाषाओ को लोकजीवन के सभी क्षेत्रो में सम्मान का स्थान दिलाया जाय। गणराज्य के व्यवहार के लिए समावेशक स्वरूप की राष्ट्रभाषा का विकास करना होगा। लेकिन यह राष्ट्रभाषा या गणराज्यभाषा लोकभाषाओ का स्थान कभी नही ले सकती। अत राष्ट्रभाषा के विकास के साथ ही भारतीय लोकभाषाओ का विकास आस्था एव हिम्मत के साथ, करने की योजनाओ को भी स्वीकार करना चाहिए। इसी हेतु से यहा पर इस सबध में कुछ विचार पेश किये जा रहे हैं।

भारतीय लोकभाषाओ की दृष्टि से देखें तो पाकिस्तान और भारत में भेद मानने का कोई कारण नही दिखाई देता। पजाबी और बंगला भाषाएं बोलनेवाले लोग दोनो राज्यो मे बहुत बडी संख्या में है। सिंधी भाषा बोलने वाला एक बडा समाज भी भारत में आकर स्थायी रूप से रहने लगा है। अत. पजाबी और बंगला भाषाओ की तरह सिन्धी को भी भारत की ही भाषा समझना चाहिए। केवल उत्तर पश्चिम सीमा-प्रदेश के पठानो की पश्तो भाषा ही पाकिस्तान की अपनी विशेष भाषा कही जा सकती है, किन्तु भारत में पठान लोग भी स्थायी रूप से रहने लगे है और सस्कृत भाषा के साथ पश्तो का गहरा सबंध होने से उस भाषा को भी भारत परायी न माने। खान अब्दुल्-गफ्फार खान अखंड भारत के प्रमुख हिमायती थे। आज भी पाकिस्तान की सरकार उन्हे और उनके अनुयायियो को यत्रणाये दे रही है। इन सब बातो पर एक साथ विचार किया जाय तो भारतीय भाषाओं की दृष्टि से राजनैतिक बटवारे को हम भुला सकते हैं। हमारे सामने यही सवाल आता है कि अखड भारत की सब लोकभाषाओ का विकास कैसे होगा? लोकभाषाओं के विकास के लिए पहले इस बात का प्रबध किया जाना चाहिये कि लोगो का हमेशा का कारोबार जहा तक हो सके, उन्ही की भाषाओ में चले। इसीलिए भाषानुसारी राज्यरचना की आवश्यकता होती है। आजकल राज्य-व्यवहार का साम्राज्य लोकजीवन के विविध क्षेत्रो पर छाया हुआ है। जहा पर राज्य-व्यवहार की भाषा लोकभाषा से भिन्न है वहा पर लोकभाषाओं का सकोच हुए बिना नही रहता? लोकभाषाओ को समृद्ध बनाने के लिए लोक-व्यवहार पर अन्य भाषाओ का जो बोझ पडा हुआ है पहले वह हट जाना चाहिए। यह खयाल बिलकुल गलत है कि विदेशी अंग्रेजी भाषा की जगह भारतीय हिन्दी भाषा के आ जाने से लोकभाषाओ की हालत कुछ कम बुरी होगी। इसके विपरीत हिन्दी भाषा एव भारतीय भाषा होने से यदि लोक-व्यवहार पर बहुत ज्यादा हावी होती जायगी तो लोकभाषाएं बडी तेजी से पिछड एव सीमित हो जायेंगी। अत राष्ट्रभाषा और लोकभाषाओ के क्षेत्रो को विचारपूर्वक निर्धारित करना होगा। आवश्यक एव अनिवार्य क्षेत्रो से बाहर का सारा प्रदेश लोकभाषाओ के लिए खुला रहना चाहिए। जिससे राष्ट्रभाषा का अनुचित दबाव नही रहेगा। आतरिक-राज्य-व्यवहार की तरह आतरिक शिक्षा-व्यवहार के क्षेत्र मे भी लोकभाषाओं को सम्पूर्ण क्षेत्र पर छा जाने का मौका देना चाहिए। शिक्षा का व्यवहार यदि लोकभाषाओ में ही होता रहे तभी जाकर साधारण समाज का बौद्धिक स्तर ऊपर उठ सकेगा। इसके लिए लोकभाषाओ के विद्यापीठो का निर्माण भारत में सब जगह होना चाहिये और उन विद्यापीठो के सारे शिक्षा-सबंधी व्यवहार

प्रधानतया लोकभाषाओ में ही हो सकें ऐसी आयोजना करनी चाहिए। इतना हो जाने पर लोकभाषाओ की सामर्थ्य बहुत बढ़ेगी। इसका मतलब यह नही है कि भारत के लोग अपनी प्रादेशिक भाषाओ से भिन्न अन्य भाषाओ का अध्ययन न करें। लोकभाषाओ की समृद्धि के लिए दुनिया का सारा ज्ञान लोकभाषाओ म लाने का प्रबन्ध करना होगा। उसके लिए यह जरूरी है कि प्रत्येक प्रादेशिक राज्य म दुनिया की सारी प्रमुख भाषाओ का ज्ञान रखने वाले अध्ययनशील व्यक्ति पैदा हो। ये लोग दुनिया की प्रमुख भाषाओ का अच्छा अध्ययन कर और उन भाषाओ के ज्ञान एव सुन्दरता को अपनी प्रादेशिक भाषाओ में लाकर अपनी भाषाओ को समृद्ध बनाए। इसी तरह खुद भारतीय गणराज्य म जो विभिन्न भाषाए है उनकी भी परस्पर-अध्ययन करने की प्रवृत्ति को बढावा दिया जाय। भारतीय गणराज्य म जो पद्रह सोलह भाषाए हे उनके श्रेष्ठ साहित्य एव सास्कृतिक विचारो का परस्पर परिचय तथा आदान-प्रदान होना चाहिए। भारतीय गणराज्य की प्रतिष्ठा के लिए भारतीय नागरिको में भारतीय एकता की भावना बढनी चाहिए। भारतीय सस्कृति का स्वरूप कभी इकरगा या साचे म ढला हुआ नही था। वह हमेशा बहुरगा या विविध पहलुओ वाला रहा है। अनकता मे एकता देखना भारतीय जीवन का मुख्य सिद्धान्त बना हुआ है। यद्यपि सत्य तो एक ही होता है फिर भी उसका आविष्कार सदैव विविध रूपों और विविध आकारो में होता रहता है। और इस विविधता के झरोके में से एकता का दर्शन करना ही भारत ने अपना श्रेष्ठ जीवन-दर्शन माना है। ऋग्वेद के 'एक सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' वाले वचन में हो या गीता के 'अविभक्त विभक्तेषु' वाले वचन में हो, यही सदेश दिया गया है। अत भारतीय एकता की भावना के लिए भारतीयो को चाहिये कि वे अपने अदर की विविधता का ज्ञान प्राप्त कर लें। दुर्भाग्य से अबतक इस प्रकार अपनी विविधता का ज्ञान कर लेने का विशेष साधन उपलब्ध नही हुआ है। स्व० रवीन्द्रनाथ ठाकुर की विश्वभारती ने भारत और दुनिया को एक-दूसरे के साथ जोडने की एक विशाल योजना बनाई है, परतु भारतीय गणराज्य की विविध भाषाओ एव सास्कृतिक आन्दोलनो का परस्पर परिचय करा लेने का काम अभी बाकी है। पूज्य साने गुरुजी की प्रेरणा से स्थापित आतर-भारती सस्था का यही कार्य है। भारत की विविध भाषाओ मे जिस साहित्य का निर्माण हो चुका है या होने वाला है उसका परिचय लोग आपस में करा लिया करें। इसीलिए आतर-भारती का जन्म हुआ है। भारतीय लोकभाषाओ में प्राचीन काल म बहुत अच्छा साहित्य पैदा हुआ है। पश्चिमी दुनिया के निकट परिचय म आने के बाद इन सब भाषाओ में आधुनिक युग भी शुरू हो चुका है। भारत की एकता को दृढ करने के लिए भारतीयो को चाहिए कि वे इन सब प्राचीन एव अर्वाचीन सास्कृतिक प्रयत्नो की अच्छी जानकारी प्राप्त करें। इसके लिए यह जरूरी है कि भारत की विभिन्न भाषाओ का अध्ययन करने का काम भारतीय लोग अपने सिर पर उठा लें।

भाषाओ का अध्ययन करने की विभिन्न पद्धतिया हो सकती है। यह बात नही कि बच्चो को शालेय ढग से ही किसी भाषा का अध्ययन करना चाहिए। जिन्हें मामूली जबानी कारोबार के लिए किसी भाषा का प्रयोग करना हो उन्हें उस भाषा के ज्ञान की प्राप्ति के लिए लिपि ज्ञान की आवश्यकता नही होती। मसलन कोई मराठी भाषी व्यक्ति दिल्ली, कलकत्ता, अहमदाबाद, बगलोर या मद्रास चला जाय और व्यवसाय के कारण वहा कुछ साल तक रह जाय तो उसके बाल-बच्चे पडोसी बच्चो के साथ खेलते समय हिन्दी, बगाली, गुजराती, कन्नड या तामिल भाषाओ में बोलने लगते है। घर की स्त्रिया नौकरो या पडोसियो के साथ जरूरी बातचीत के लिए इन भाषाओ का ज्ञान आसानी से हासिल कर लेती हैं। मर्दों को भी कारोबार करते-करते इन भाषाओ का ज्ञान हो जाता है। यह सारा ज्ञान जबानी व्यवहार के लिए ही होता है। अत. उसमे उन भाषाओ के व्याकरणादि अध्ययन की अपेक्षा नही रहती है। भाषा जब व्यवहार के लिए सीखनी होती है तब वह सुन-सुनकर सीखी जाती है। श्रोत्र और वाणी इन दो इद्रियो के सयुक्त सहयोग से कोई भी भाषा सीखी जा सकती है। भाषा शिक्षण का यह सबसे श्रेष्ठ मार्ग है। मनुष्य के विकास के साथ उसकी भाषाओ का भी विकास होता गया और बढती हुई साहित्य-सम्पत्ति की रक्षा के लिए

मनुष्य ने लेखन-विद्या का सहारा लिया। इससे भाषा के अध्ययन का यह नया तरीका प्रचलित हुआ कि लिखित या मुद्रित चिह्नों का आंखों द्वारा किया गया आकलन ही भाषा का अध्ययन है। इससे श्रोत्र एवं वाणी का महत्त्व कम हो गया और आंखों एवं हाथ का महत्त्व बढ़ गया। रस-साहित्य और व्याकरणादि भाषा-शास्त्रों का दायरा बढ़ता गया। आज के जमाने में भाषाओं का अध्ययन अत्यंत पेचीदा एवं जटिल प्रक्रिया बन गई है। सारग्राही दृष्टि से भाषाओं का अध्ययन करना हो तो भाषा के अध्ययन की कोई आसान पद्धति खोजनी चाहिए। भाषा के अध्ययन में लिपिज्ञान और व्याकरण का बोझ बहुत बढ़ गया है। फर्ज कीजिये कि किसी महाराष्ट्रीय व्यक्ति को स्व० रवीन्द्रनाथ के साहित्य का आस्वाद बंगला भाषा में लेना है तो क्या सचमुच उसके लिए बंगला का लिपि-ज्ञान अपरिहार्य है? क्या बंगला के व्याकरण का बाकायदा अध्ययन किये बिना वह रवीन्द्रनाथ की कविता या कथा को समझ ही नहीं सकेगा? व्यावहारिक बंगला भाषा बोलने की शक्ति यदि उसमें न हो तो क्या रवीन्द्र-साहित्य उसकी समझ में आयेगा ही नहीं? भाषा के अध्ययन की रूढ़ शालेय पद्धति को ही एकमात्र पद्धति मान लिया जाय तो इन सब प्रश्नों के उत्तर कुछ और ही मिलेंगे। रवीन्द्र-साहित्य का आस्वादन करने की इच्छा रखनेवाले महाराष्ट्रीय व्यक्ति को साक्षात् रवीन्द्र-साहित्य मुंह से पढ़कर सुनाया जाय तो उसकी समझ में उसका बहुत कुछ अर्थ आ जायगा। उसमें किसी भी लिपि की आवश्यकता नहीं रहती। लेकिन यदि लिपि के द्वारा रवीन्द्र-साहित्य के साथ परिचय कराना हो तो भी महाराष्ट्रीय व्यक्ति के लिए वह नागरी-लिपि में कर लेना अधिक सुविधाजनक और सुखदायी होगा। अतः केवल साहित्य के आनंद की प्राप्ति के लिए ही जिसे बंगला भाषा का परिचय प्राप्त करना हो उसे बंगला पढ़ाने के लिए बिलकुल अलग ही तरीका अख्तियार करना होगा। नागरी-लिपि में रवीन्द्रनाथ की कविताएं लिखकर ने प्रौढ़ों को सीधे पढ़ायी जा सकती हैं। उस हालत में शिक्षक को बंगला भाषा का अच्छा ज्ञान होना जरूरी है। बंगला, हिंदी, गुजराती भाषाएं मराठी के लिये इतनी नजदीक हैं कि थोड़ी-सी मदद से महाराष्ट्रीय व्यक्ति इन तीनों भाषाओं के साहित्य का आनंद लूट सकता है। बंगला और गुजराती की लिपियां भी नागरी से बहुत मिलती-जुलती हैं। यदि रवीन्द्र-साहित्य में से संस्कृत-प्रचुर वर्णनात्मक काव्य और संवाद चुन लिये जायं और नागरी-लिपि में छपवाये जायं तो महाराष्ट्रीय व्यक्ति की समझ में वे बहुत कुछ आ सकेंगे। यदि व्याकरण की टिप्पणियां उनके साथ जोड़ दी जायं तो उसमें संपूर्ण अर्थज्ञान भी होगा। इस प्रकार के विशेष प्रयत्न हमने अपनी आंतर-भारती संस्था की तरफ से अभी-अभी शुरू कर दिये हैं। हम समझते हैं कि साहित्य में से साक्षात् भाषा की तरफ ले जाने वाली यह एक नयी अध्ययन-पद्धति है। प्रयोगों से सिद्ध हुई इस पद्धति को यदि भाषा के अध्यापक अपनायें तो विभिन्न भाषाओं के अध्ययन में बड़ी आसानी होगी। यहां पर यह फिर से बताना चाहिये कि भाषा का अध्ययन केवल आंखों से नहीं करना चाहिए। रेडियो और ग्रामोफोन का उचित इस्तेमाल किया जाय तो भाषाओं के अध्ययन में उससे अच्छी मदद मिलती है। बंगला भाषा के अध्ययन में तो रेडियो और ग्रामोफोन की विशेष आवश्यकता है। क्योंकि बंगला के लेखन और उच्चारण में बहुत फर्क होता है। वास्तव में कोई भी भाषा केवल किताबों पर से पूर्ण रूप से कभी नहीं सीखी जा सकती। भाषा का स्वरूप अच्छी तरह मुंह में बैठ जाय इसलिए वह सतत मुंह से निकली हुई सुननी ही चाहिए। इसके लिए भाषाओं के अध्ययन में व्याख्यान, संभाषण, गाने, नाटक आदि को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए।

बंगला और गुजराती साहित्य का अधिक अध्ययन करने के लिए फिलहाल तो बंगला या गुजराती लिपि का ज्ञान प्राप्त करना ही होगा। लेकिन जिसे केवल साहित्य-ज्ञान के लिए लिपि को स्वीकार करना हो वह यदि लिपि को आंखों से पहचानकर उसमें लिखा हुआ साहित्य पढ़ भर सके तो काफी है। यह जरूरी नहीं है कि उन भाषाओं की लिपियों में लिखने जितना ज्ञान उसके पास होना चाहिए। हां, यह ठीक है कि जिसे उन भाषा-भाषी लोगों के साथ लेखनादि व्यवहार रखना हो तो वह उन-उन लिपियों का प्रयोग भी लिखने के लिए करे। बंगला-जैसी भाषा में जिसे पांडित्य प्राप्त करना हो या अपनी भाषा के साहित्य का

अनुवाद उस भाषा में करने की इच्छा हो वह उस भाषा का अधिक सूक्ष्म एवं वैज्ञानिक अध्ययन जरूर करे।

भारतीय भाषाओं के अध्ययन में द्रविड भाषाओं का एक स्वतंत्र स्थान मानना होगा। भारतीय एकता की दृष्टि से संस्कृत कुल की भाषाएं बोलनेवालों को चाहिए कि वे द्रविड भाषाओं—कन्नड, तेलुगु, तामिल और मलयालम का परिचय प्रयत्नपूर्वक प्राप्त करें। इसके लिए भी नई सुलभ अध्ययन-पद्धति खोजनी होगी। द्रविड भाषाओं की लिपियां विभिन्न हैं और उनका बुनियादी शब्दसंग्रह भी बिलकुल अलग है। द्रविड साहित्य के साथ परिचय कराने के लिए नागरी में उन भाषाओं की जानकारी देने वाली किताबें तैयार करनी होंगी। उनके साहित्य में से सुलभ वर्णनात्मक विभाग चुनकर उनका नागरी में अनुवाद के साथ प्रचार करना होगा। उस अनुवाद के साथ व्याकरण की जरूरी टिप्पणियां जोड़ दी जायें तो द्राविड भाषाओं के साथ पाठकों का सामान्य परिचय हो सकेगा। इसके लिए भी रेडियो और ग्रामोफोन की मदद लेनी होगी। नागरी के द्वारा अच्छी तरह भाषा परिचय हो जाने के बाद इन भाषाओं की लिपियों का परिचय करा देना उचित होगा। भाषा-ज्ञान हो जाने के बाद लिपि ज्ञान कर लेना आसान होता है। जन्म-भाषा के बारे में भी यही बात है। बच्चा जब लिपि की पढ़ाई शुरू करता है तब पहले से उसे भाषा की कुछ-न-कुछ जानकारी रहती ही है। प्रौढ़ व्यक्तियों के विषय में, अन्य भाषाओं की दृष्टि से तो पहले भाषा ज्ञान और बाद में लिपि ज्ञान देने का नियम ही स्वीकार करना उचित होगा। ऐसी अपेक्षा रखी जा सकती है कि किसी जमाने में भारत की सब भाषाओं की लिपि एक ही होगी। शायद नागरी ही अखिल भारत की लिपि हो सकेगी। लेकिन उसके लिए यह जरूरी है कि जिन लोगों की लिपियां नागरी से भिन्न हैं वे अपनी इच्छा से नागरी को स्वीकार करें। नागरी के हिमायती अपनी लिपि को दूसरों पर जबर्दस्ती लादने की कोशिश न करें। ऐसी कोशिशें कभी सफल नहीं हो सकतीं। द्राविड भाषाओं के विषय में एक महत्व की दिशा यहां सुझायी जा सकती है। द्राविड भाषा न जानने वाला बहुत बड़ा हिस्सा हमारे देश में है। इनमें से कुछ लोग साहित्य की अभिरुचि में भारत की एकता के लिए स्वयं किसी द्राविड भाषा का अध्ययन मन पूर्वक करने की ठान लें। ऐसा अध्ययन करने वालों के लिए जिस साहित्य का निर्माण करना होगा वह नागरी में ही तैयार किया जाय। इन नये द्राविड-साहित्य-पाठकों के लिए नागरी में द्राविड-साहित्य के विशेष संस्करण निकाले जा सकेंगे। अतः द्राविड-साहित्य का आस्वाद लेनेवाले लोग द्राविड प्रदेश से बाहर जितनी मात्रा में बढ़ेंगे उतनी मात्रा में द्राविड भाषाओं का साहित्य नागरी में प्रकाशित होने की संभावना बढ़ती जायेगी। इसके लिए यह जरूरी है कि नागरी के हिमायती लोग द्राविड भाषाओं का अध्ययन करने की ओर अधिक-से-अधिक ध्यान दें।

भारतीय भाषाओं में उर्दू भाषा का स्थान स्वतंत्र रूप से निश्चित करने की आवश्यकता है। आजकल यह गलत ख्याल बहुत फैल गया है कि हिंदुस्तान के राजनैतिक बटवारे के बाद उर्दू भारत की भाषा नहीं रही है। यद्यपि पाकिस्तान ने उर्दू को अपनी राष्ट्रभाषा घोषित किया है, फिर भी पाकिस्तान के मुसलमानों की जन्म-भाषा उर्दू नहीं है। अतः पाकिस्तान में भी आम जनता द्वारा उर्दू का विरोध ही हो रहा है। भारत के और खासकर उत्तर भारत के मुसलमानों की जन्म-भाषा बहुत कुछ अंशों में उर्दू ही है। फिर उत्तर भारत में सदियों से उर्दू जिनकी जन्म-भाषा रही है, ऐसे हिंदुओं की संख्या अब भी कुछ कम नहीं है। अलावा इसके, उर्दू भाषा के साहित्य-निर्माण में मुसलमानों की तरह अनेक हिंदू लेखकों ने भी हिस्सा लिया है। इन सब कारणों से भारतीय गणराज्य ने यह स्वीकार कर लिया है कि उर्दू भाषा भारत की ही एक भाषा है। फिर भी उर्दू-साहित्य का संरक्षण एवं संवर्धन होना हो तो उर्दू भाषा के लिए भी नागरी-लिपि का स्वीकार करना फलदायी होगा। अतः उर्दू का चुना हुआ साहित्य नागरी में प्रकाशित करना एक महत्व का कार्यक्रम समझना चाहिए। उर्दू जिनकी जन्म-भाषा नहीं है ऐसे लोग भी उर्दू-साहित्य का परिचय प्राप्त करेंगे तो उर्दू का स्वरूप सहज एवं स्वदेशी बनता जायगा और

(शेष पृष्ठ २९३ पर)

एवरेस्ट विजेता तेंजिंग

कन्हैयालाल मिण्डा

संसार का सबसे ऊंचा पर्वत-शिखर एवरेस्ट युगों से अविजित रहा। भारत और निष्पक्ष दर्शकों के अनुसार एवरेस्ट-शिखर पर मानव का विजय पा सकना न केवल कठिन परन्तु असम्भव था। और गत ३० वर्षों से, विभिन्न देशीय पर्वतारोही अभियानों द्वारा किये गये विफल आक्रमणों के आधार पर, एवरेस्ट दुर्जेय और अजेय हो गया था। परन्तु मनुष्य अपार शक्तिशाली है, इसका समुज्ज्वल उदाहरण रखते हुए भारत-गौरव सम्राट तेंजिंग नोर्के ने भारतीय वीरता के इतिहास की करवट बदल दी और सदियों से अजेय गगनचुम्बिनी एवरेस्ट-शिखर पर प्रथम चरण-चिन्ह रखकर संसार में जयजयकार किया।

एवरेस्ट-विजय की प्राप्ति के लिए विभिन्न देशों द्वारा किये गए आक्रमणों में ११ चढ़ाइयों के नाम उल्लेखनीय हैं, जिनमें से नौ दलों के साथ तेंजिंग बराबर जाता रहा है। तेंजिंग की एवरेस्ट-शिखर विजय की लालसा घर कर गई थी और वह इस कामना-पूर्ति के लिए प्राणों की बाजी लगाने पर कटिबद्ध था। तेंजिंग को भारतीयता का बड़ा अभिमान है। वह अपने को भारतीय मानता है और इसी खयाल से उसने अपनी सफलता को भारत की सफलता माना तथा एवरेस्ट-विजय के लक्ष को सामने रखते हुए, वह केवल मात्र २५० रु० माहवार वेतन पर पर्वतारोही दलों के साथ, एवरेस्ट-विजय की लालसा से प्रेरित, हथेली पर जान रखकर गया। गत ५ मार्च १९५३ को दार्जिलिंग के ब्रिटिश अभियान में सम्मिलित होने के लिए रवाना होते समय तेंजिंग ने कहा था कि मुझे पूर्ण विश्वास है कि यदि मौसम ने साथ दिया तो मैं निस्संदेह एवरेस्ट-शिखर के दर्शन करके ही लौटूंगा। मुझे पूरा भरोसा है कि इस बार हमारी विजय निश्चित है। १९५२ में तेंजिंग स्विस अभियान के साथ गया था और २८ मई, १९५२ को दल के सदस्य रेमन्ड लम्बर्ट को साथ लेकर २८,२१५ फुट तक पहुंच गया था जो संसार में मानव का उच्चतम स्तर था। इतनी ऊंचाई तक एवरेस्ट-शिखर पर चढ़कर कोई मानव लौट कर नहीं आया था। तेंजिंग आगे भी जाना चाहता था किन्तु वह सफल नहीं हो सका। परन्तु उसे यह निश्चय हो गया था कि उसकी दूसरी चढ़ाई एवरेस्ट की जय-यात्रा होगी। अपने स्विस दल के अनुभवों के आधार पर तेंजिंग ने ब्रिटिश अभियान में सम्मिलित होने से पूर्व यह शर्त लिखवा ली थी कि यदि आपके दल के सदस्य आगे न जा सके और मैं शिखर तक जा सका तो मैं जाने को स्वतन्त्र हूंगा और मुझे किसी प्रकार रोका न जा सकेगा। दल के नेता कर्नल जॉन हन्ट ने तेंजिंग की न केवल यह शर्त ही मानी थी अपितु उसे दल का सदस्य बना लेने का भी आश्वासन दिया था। परन्तु आज तक तेंजिंग को दल का अधिकृत सदस्य बनाने का उल्लेख कहीं नहीं देखा गया। हां, उसके गहरे अनुभव का लाभ उठाने के लिए और उसकी विजय का श्रेय हड़पने की नीति से तेंजिंग को अन्य सदस्यों-जैसी सहूलियत जरूर दे दी गई थी। तेंजिंग एवरेस्ट के उच्च शिखरों पर जा पहुंचेगा इसकी शायद किसी ने कल्पना भी न की होगी। परन्तु स्विस पर्वतारोही रेमण्ड लम्बर्ट इस बात को भलीभांति जानता था कि यदि एवरेस्ट पर कोई आदमी कामयाब हो सकेगा तो वह विश्व का सर्वप्रथम मानव तेंजिंग होगा और लम्बर्ट के इस इशारे पर ही ब्रिटिश दल के नेता हन्ट ने, जिसने तेंजिंग को ले जाने का प्रोग्राम नहीं बनाया था, जाने के कुछ ही दिन पूर्व उसे साथ ले जाने की व्यवस्था की। तेंजिंग को एवरेस्ट-विजय का निश्चय था और उसने यह रहस्य अपनी स्त्री से कह दिया था कि वह इस बार जब भी आयगा एवरेस्ट-विजय करके ही लौटेगा। परन्तु भारत सरकार को इस बात का ख्याल तक न था। २८,२१५ फुट तक चढ़ के संसार में विजय का सर्वोच्च स्तर स्थापित कर चुकने पर भी भारत सरकार ने तेंजिंग के सम्मान में एक शब्द तक नहीं कहा और इसी खयाल से ब्रिटिश दल के साथ जाते

समय भारत सरकार ने उसे भारतीय राष्ट्र का कोई प्रतीक नहीं दिया था जिसे वह कामयाब हो जाने पर भारत की पवित्र भेंट के रूप में संसार के सर्वोच्च भाल पर अटका आता। परन्तु तेंजिंग की रगों में भारतीयता का माद्दा है। वह भारत विजय को अपना कर्तव्य मानता है और भारतीय शान में अपनी शान। इसलिए उसने दार्जिलिंग से प्रस्थान करते समय तथा पत्र प्रतिनिधियों से भेंट के समय इशारतन जिक्र भी किया था कि हम लोग इस बार एवरेस्ट पर विजय तो अवश्य पायेंगे, परन्तु मुझे दुःख होगा कि हमारे साथ कोई भारतीय राष्ट्र का प्रतीक नहीं होगा और इसलिए वह विजय नीरस रहेगी। परन्तु इस चर्चा पर भी भारत-सरकार ने कोई ध्यान नहीं दिया और तेंजिंग को भारतीय राष्ट्र का प्रतीक एवरेस्ट-शिखर के लिए कहीं से प्राप्त नहीं हुआ। तब उसने अपनी भारतीयता के अरमानों की रक्षा के लिए भारतीयता का प्रतीक एक छोटा-सा तिरंगा खरीदा और चुपचाप पाकिट में डालकर चल पड़ा। तेंजिंग ने अनेक बार यह चर्चा की कि यदि भारत-सरकार अपने स्वतन्त्र दल का गठन कर सके तो वह किसी भी विदेशी दल से शीघ्र एवरेस्ट विजय कर सकता है। परन्तु यह खयाल ही किसे था कि पर्वतारोही दलों के साथ एक साधारण भारवाहक के रूप में जानेवाला तेंजिंग कभी एवरेस्ट-विजय कर पायेगा और इसी खयाल से तेंजिंग की ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया। विदेशी पर्वतारोही, जिन्होंने एवरेस्ट विजय के लिए प्राणों की बाजी लगा रखी थी, तेंजिंग की शक्ति से भलीभांति परिचित थे और इसीलिए प्रत्येक दल उसको अपने साथ ले जाना चाहता था। फिर भी अंग्रेज अपनी कूटनीति से कभी बाज नहीं आये। यह इनका जन्मगत गुण है जिसकी झलक इस एवरेस्ट-विजययात्रा में तेंजिंग के साथ किये गये व्यवहार से भी प्रत्यक्ष है, लेकिन तेंजिंग इन्हीं के साथ वर्षों से रहता आया है और इसलिए वह अपने लक्ष्य को सिद्ध करने में उनका गुरु साबित हुआ। २७,५०० फुट की ऊँचाई पर आठवां शिविर डालने के पश्चात जब दल के नेता और अन्य सदस्य बार-बार अपनी सरतोड़ कोशिश करके हार चुके और वहां से आगे न बढ़ सके तो हताश हारकर शिविर में आ गये और बेतार के तार से उन्होंने दल की असफलता का समाचार प्रसारित कर दिया। वे लौटने की तैयारी करने लगे, परन्तु तेंजिंग अपनी अपार शक्ति को बछुए की भांति दबाये बैठा था। जब सब सदस्यों की भरसक शक्ति के बावजूद दल ने हार मान ली और आगे बढ़ सकने में असमर्थता प्रकट कर दी तब हिम-शिखरों का शेर तेंजिंग भारत-सम्मान का प्रतीक पाकेट में दबाये हुए उठा और हिम-कुठार की सहायता से एवरेस्ट शिखर पर जमी हुई सनातन हिमावलियों को चीरता हुआ अदम्य उत्साह से आगे बढ़ता चला गया। तेंजिंग के साथ न्यूजीलेंड का रहनेवाला एक ३४ वर्षीय सदस्य ई. पी. हिलारी भी था। तेंजिंग के दिल में विश्वमुकुट एवरेस्ट के शिखर पर विजय-पताका फहराने का जोश हिलोरें मार रहा था। मौसम ने साथ दिया और तेंजिंग अपने बीसियों वर्षों के प्रगाढ अनुभव एवं प्राकृतिक हिमारोहिणी शक्ति के प्रबल वेग से ऊपर चढ़ता हुआ २९ मई १९५३ को एवरेस्ट के ठेठ शिखर पर जा पहुंचा। इस प्रकार तेंजिंग ने युगों से अविजित एवरेस्ट के भाल पर मानव विजय की पताका गाड़ते हुए संसार में मानव-शक्ति की दुन्दुभी पूर दी तथा ब्रिटिश दल का यूनियन जैक, राष्ट्र-संघ का तथा नेपाल का झण्डा और भारत का तिरंगा फहराकर विश्व में जय-जयकार किया। संसार पुकार उठा : 'शाबाश तेंजिंग! तुमसे एवरेस्ट की हिमावलियों ने भी हार मान ली। इस प्रकार भारतीय वीरता के इतिहास ने करवट बदली और तेंजिंग का नाम विश्व वीरता के अखंड इतिहास में सदा के लिए स्वर्णाक्षरों में अंकित हो गया। हिम शिखरों ने मानव-शक्ति के आगे नतमस्तक होकर तेंजिंग का लोहा माना और प्रणाम करने के लिए विश्व का सगुण मुकुट, गिरिशिखर एवरेस्ट तेंजिंग के चरणों पर झुक गया।

जब कर्नल हन्ट ने तेंजिंग की विजय का सन्देश पाया तो सोचा कि यह तो एक भारतीय के सिर विजय का सेहरा बन्धा है। दूसरा व्यक्ति न्यूजीलेंड का है, परन्तु कोई ब्रिटिश तो शिखर तक नहीं पहुंचा। अतः दल के नेता कर्नल हन्ट ने दूसरे सदस्यों तथा विजय प्राप्त कर लौटे हुए तेंजिंग को साथ लेकर शिखर पर पहुंचने का

सा प्रयास किया; परन्तु एवरेस्ट शिखर के पट तेंजिंग के मस्तक पर विजयश्री का कुंकुम लगाने के पश्चात् किसी अन्य मानव के लिए बन्द हो गये थे। अत दल के नेता कर्नल हन्ट को लौटने पर वाध्य होना पड़ा।

तेंजिंग को गत साल २८,२१५ फुट तक चढ़कर संसार में उच्चतम रिकार्ड कायम करने की प्रशंसा में, स्विस को अल्पाइन तथा इंग्लैंड की विश्वविख्यात क्लब ने अपना सदस्य बनाया तथा नेपाल सरकार ने तेंजिंग को प्रताप-वर्द्धक चक्र देकर सम्मानित किया और हालीवुड के फिल्म-निर्माताओं ने तेंजिंग को फिल्म-निर्माण के लिए निमन्त्रण भेजा, परन्तु भारत-गौरव चरित्रवान तेंजिंग ने इसे केवल कमाई का एक साधन समझकर अस्वीकार कर दिया। संसार ने तेंजिंग को सम्मान दिया और विश्व में तेंजिंग की जय-जयकार हुई।

तेंजिंग का पूरा नाम तेंजिंग नोर्के है। वह शेरपा जाति का सिंहपुरुष है। उसका जन्म १९१४ के जून मास में, नेपाल की तिब्बत से लगती हुई, उत्तर पूर्वी सीमा पर स्थित, शोलूखम्बा नाम के क्षेत्र के अन्तर्गत, नानचेबा ग्राम में हुआ था। उसको बाल्यावस्था से ही पर्वतारोहण का शौक था। उसके पिता रोजी की खोज में दार्जिलिंग आये और तेंजिंग अपने शौक के अनुसार सबसे पहले एक पर्वतारोही अभियान के साथ, साधारण भारवाहक के रूप में गये। सन् १९३६ तक वह इसी प्रकार जाते रहे तथा इसके पश्चात् पर्वतारोही अभियानों के लिए भारवाहकों की व्यवस्था करने का धन्धा शुरू किया और स्वयं पथ-प्रदर्शक का काम करने लगे। तेंजिंग का रंग गोरा, शरीर पतला तथा गठीला है। ऊंचाई ५ फुट ३ इंच है। इनकी सुन्दर स्त्री का नाम आगल्हामू है। पीमा और नीमा नाम की दो पुत्रियां हैं जो दार्जिलिंग के नेपाली गर्ल्स हाईस्कूल में पढ़ती हैं। तेंजिंग अपनी पुत्रियों को आधुनिक ढंग की शिक्षा देना चाहता है तथा आधुनिक वेशभूषा में रखना चाहता है। वह कुत्ता पालने का भी शौकीन है और इस समय उसके पास शानदार नाम का एक सफेद कुत्ता है। बहुत पढ़ा-लिखा न होने पर भी वह एक साहसी कर्मवीर है। और अच्छी नेपाली, अंग्रेजी और हिन्दी बोल लेता है।

तेंजिंग दार्जिलिंग की तुगसुग बस्ती में रहता है। उसका एक छोटा-सा किन्तु सुन्दर लाल छप्पर का घर है। घर में पर्वतारोहण-सम्बन्धी अनेक तस्वीरें, सामान तथा साहित्य है। आगन्तुकों का स्वागत तेंजिंग की स्त्री गरमा-गरम चाय से करती है और तेंजिंग पर्वतारोहण की जान-कारी करवाकर बहुत प्रसन्नता का अनुभव करता है।

तेंजिंग की एवरेस्ट-विजय पर नेपाल, भारत और इग्लैण्ड में उसका जो भव्य स्वागत हुआ है वह उचित ही है।

(पृष्ठ २९० का शेष)

उसकी भारतीयता सुस्पष्ट होगी।

भारतीय भाषाओं के विकास एवं समृद्धि के तीन तरह से प्रयत्न किये जाने चाहिएं। केन्द्रीय सरकार और राज्य-सरकारें इस विषय में अपनी नीति निर्धारित करके उसके अनुसार अपने-अपने क्षेत्रों में उसपर अमल करना शुरू करें। विद्यापीठ और शिक्षा-संस्थाएं भी इसमें अपना उचित हिस्सा अदा करें। लेकिन साथ ही शिक्षित जनता को भी स्वावलम्बन के बल पर भाषा-विकास का प्रश्न हल करने की स्वतंत्र रूप से चेष्टा करनी चाहिए। इस प्रकार सब तरह से गवेषणा, संगठन एवं प्रचार होने लग जाय तो भारतीय भाषाओं का विकास अच्छी तरह होगा—यही आतर-भारती की भाषा-दृष्टि है। —अनु० श्रीपाद जोशी

❁

स्मरण

पहली अगस्त को हमें सदा स्वराज्य के मन्त्र-दाता लोकमान्य तिलक का स्मरण करना चाहिए।

मां का सपना

इंदुकुमारी जयपुरिया

मा ने सबेरे उठते ही पुकारा -

'इंदु ! इंदु !"

"हां मा !"

"अरे, आज रात को मुझे एक बुरा सपना आया। मैंने देखा, तेरी नानी बहुत बीमार है, वह दो ही चार दिन की मेहमान है । मेरा जी चाहता है कि आज ही भागलपुर चली जाऊं।"

मैंने कहा, "मा, सपने भी क्या सच्चे होते हैं ? सपना नाम ही झूठ का है। कहते ही हैं 'सपन की-सी सम्पत् है' यानी झूठी है। सपने को लेकर तो चिंता करो मत, यों दस-पांच दिन भागलपुर जाने का जी चाहे तो भले चली जाओ।"

मा को मेरी बातों से संतोष न हुआ। बात मेरी सही थी, लेकिन मैं लड़की हूं वह मा है, यह बड़ा फर्क है।

फिर मा ने कहा, "नहीं इंदु, मेरे सपने अक्सर सच्चे होते हैं" और इसके बाद उसने कई उदाहरण दे दिये, जैसा कि अपने सपने की बात को सच्चा साबित करने के लिए लोग अक्सर दिया करते हैं।

मुझे उन उदाहरणों से कुछ संतोष नहीं हुआ, लेकिन उनका प्रतिवाद करना मेरा धर्म नहीं था और उस दशा में जब कि उस सपने के प्रभाव से मा का मन खिन्न हो रहा था।

मैंने मा के सपने की बात अपने पिताजी से कही। उन्होंने मा को बुलाकर पूछा। उनसे भी मा ने वही बात कही। उन्होंने कहा, "तो ठीक है, आज या कल में भागलपुर चली जाना। पर लाओ, भागलपुर से टेलीफोन जुड़ा कर इंदु की नानी के समाचार पूछ लिए जाय।"

पिताजी ने भागलपुर के लिए एक 'ट्रंक-काल' बुक करा दिया। खुद वह मिल चले गये। घंटे भर बाद 'काल' का जवाब न मिलने पर मा ने कहा, "ट्रंक वाले से पूछ तो।" मैंने फोन उठाकर पूछा कि भागलपुर के लिए हमने एक ट्रंक काल बुक किया था, उसका क्या हुआ ? आपरेटर ने कहा, "लीजिए, बात कीजिए।" मैंने भागलपुर से बात करने वाले का नाम पूछा। बोला, 'हरि'। मैंने पूछा, "नानीजी की तबियत कैसी है ?"

"नानीजी तो गुजर गईं।"

फिर मा ने फोन हाथ में लेकर पूछा। उन्हें भी यही जवाब मिला। मा ने कहा, "तुम लोग ऐसे नालायक हो कि मुझे खबर तक न दी। उत्तर मिला—"तार दिया है।"

अब क्या था, घर में सब रोने लगे। मा तो जोर जोर से रोने लगी। झूठ क्यों कहूं, मैं भी रोई। राजेंद्र के भी छटांक भर आंसू निकल गये। मा के आंसू तो मन से कम न रहे होंगे। उनकी मा जो थी ! मिल को फोन करके पिताजी को तुरत बुलाया और हम सब भागलपुर जाने की तैयारी में लगे। दो-तीन घंटे के अंदर-ही-अंदर यह सब हो गया। सवा ग्यारह बजे हम लोगों की बुक कराई हुई 'काल' आई। फोन पर मेरे मामाजी थे। उन्होंने कहा, "सब मजे में हैं।" उनसे पहले फोन का हाल कहा तो उन्हें पहले तो बड़ा अचंभा हुआ, फिर बोले कि यहां 'हरि' नाम के एक लड़के की बूआ मरी है। उसी ने किसी को कलकत्ता खबर देने को फोन मिला रखा होगा और वह तुम लोगों से मिल गया होगा।"

अक्सर टेलीफोन में एक ही काल दूसरे से मिल जाती है, लेकिन टेलीफोन की बदौलत इस तरह रोने धोने के प्रसंग तो शायद कम ही आते होंगे।

हमारा सारा गम खुशी में बदल गया। हम सब हसते हसते लोट-पोट हो गये। जितने रोये थे उतने ही हम लिये। यह तीन घंटे का सपना-सा लगा। पर मैं सोचती हूं कि एक बार तो मेरी मा का सपना सच्चा ही हो गया, बाद को चाहे वह झूठा ही निकला।

आगामी कल को अपनी इच्छानुकूल बनाइये !

महेन्द्र 'राजा' और मोहिनी शर्मा

यदि आपने अपने मन में यह विश्वास कर रखा है कि जो कुछ भी आप अपने जीवन में पा सकते थे, वह आपने सम्पूर्ण रूप से प्राप्त कर लिया है, अर्थात् जो कुछ भी आपके पास है, उसे ही आप सब कुछ मानते हैं तो फिर अपने जीवन में कभी भी आगे नहीं बढ़ सकते। हां, यह अवश्य सम्भव है कि जहां आप आज हैं, कल वहां भी न रहें—एक कदम और पीछे आपको हटना पड़े। पर यदि आपके मन में इस प्रकार का आत्मविश्वास हो जाय कि आप अपने भविष्य को आशा से अधिक सुन्दर बना सकते हैं तो आप निश्चय ही अपने उद्देश्य में सफल होंगे। यदि आप पूर्ण लगन के साथ अपने उद्देश्य की सिद्धि में जुट जायं, एक बार भी आप अपने भविष्य के प्रति एक सुन्दर कल्पना अपने मस्तिष्क में करें तो आप अवश्य ही उसे साकार रूप दे सकेंगे।

पहले आप अपने आनेवाले कल की एक सुन्दर कल्पना अपने मन में सोचिए, उसकी रूपरेखा निश्चित कीजिए और फिर उस कल्पनात्मक चित्र को यथार्थ में परिवर्तित करने में लग जाइए। आपका यथार्थ चित्र निश्चय ही कल्पना से भी सुदर होगा।

यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो आगामी कल को अपनी इच्छानुकूल बनाना कोई कठिन बात नहीं। हां, इस बात को मानने से हम इन्कार नहीं करते कि सभी के सोचे हुए सपने सच नहीं होते; पर इससे भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि अपने निश्चित लक्ष्य की ओर यदि दृढ़ता और लगनपूर्वक चला जाय तो निश्चय ही सफलता आपके कदम चूमेगी। यदि आप संसार के महापुरुषों के जीवन-चरित्र पढ़ेंगे तो आपको पता चलेगा कि उपरोक्त कथन उन्होंने अपने जीवन में सत्य सिद्ध किया है। उन्हें उपरोक्त कथन की सत्यता पर विश्वास था, तभी वे अपने जीवन में सफल हो सके, महापुरुष बन सके। यद्यपि उन्हें किसी भी प्रकार के साधन सुलभ नहीं थे, आर्थिक स्थिति उनकी हमसे भी खराब थी, सामाजिक प्रभाव भी उनका नगण्य ही था, उनके पिता का राजकीय या पदीय प्रभाव भी कुछ न था, फिर भी सभी ने यह महसूस किया था कि वे जो कुछ बनना चाहते हैं, भविष्य के प्रति उनकी जो आकांक्षाएं हैं, वे तकदीर नहीं, तदवीर पर विश्वास करने से पूरी होंगी। उन्होंने अपनी आकांक्षाओं का अपने मस्तिष्क में एक खाका खींचा और फिर तदनुसार कार्यक्षेत्र में अग्रसर हुए। परिणामस्वरूप सफलता उनके हाथ आई।

भविष्य के लिए किसी भी प्रकार की कल्पना करते समय हमें सबसे पहले जीवन को उसी रूप में स्वीकार करना चाहिए जैसा कि वह वास्तव में है। अर्थात् हमें अपने वास्तविक कर्त्तव्यों व अधिकारों पर पूर्ण ध्यान रखना चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि उत्साह के आवेग में हम अपना उचित कर्तव्य भूल जाय व कोई अनधिकार चेष्टा कर बैठें।

प्रेम, स्नेह, आदर, अपने स्वतंत्र विचार, स्नेहियों का सम्मान, हमारे श्रम का उचित मूल्य, उचित आनन्दोपभोग आदि कुछ ऐसी बातें हैं जो हमें प्राप्त होनी चाहिए और जिनके हम वास्तव में अधिकारी हैं। हमारी कुछ जिम्मेदारियां व कर्तव्य भी हैं जो हमें पूरे करने चाहिए। प्रेम, सहानुभूति, परोपकार, अपने आश्रितों पर कृपा-दृष्टि, देश, राष्ट्र, जाति व समाज के प्रति सेवाएं आदि कुछ हमारे ऐसे कर्तव्य हैं जिनसे हमें पीछे नहीं हटना चाहिए। अपने सुखमय भविष्य को लक्ष्य कर बनाई गई हमारी कोई भी योजना तबतक सफल नहीं हो सकती, जबतक कि हमारे अंदर लेने के साथ-ही-साथ देने की प्रवृत्ति भी न हो, लेने व देने में पूर्ण सामंजस्य न हो। हमारी सामंजस्य-भावना ही हमारी सफलता की पहली सीढ़ी है।

रोमन लोगों में एक कहावत है—"अपने भाग्य से प्यार करो" जो सफल जीवन के लिए दूसरा पाठ नहीं जा सकती है। आपकी सामाजिक स्थिति चाहे जैसी

हा, आपके जीवन में चाहे जैसी भी परिस्थितिया क्या न आए अपने भाग्य का कभी दोष मत दीजिए। जो कुछ भी, जैसा भी समय आपके जीवन में आता है, उसे अपने जीवन का सर्वश्रेष्ठ समय समझिए। जैसे भी दिन आपको देखने पड़े, उन्हें अपने जीवन के सर्वश्रेष्ठ दिन मानिए। और ऐसे समय तथा दिनो का श्रेष्ठतम व अधिक-से-अधिक उपयोग कीजिए, उन्हें व्यर्थ न जाने दीजिए। जितने भी सारभूत आपको तत्व मिलें, एक भी व्यर्थ न छोडें, सभी आपके लिए उपयोगी है। सभी का अन्तिम सीमा तक उपयोग कीजिए। वे आपको आपकी वर्तमान स्थिति से आगे बढाने या उठाने में सहायक सिद्ध होंगे। आपके भविष्य को तो वे सुन्दरतर बनाएगे ही, पर वर्तमान को भी सुन्दर बनायेंगे। हाथ में आया कोई भी अवसर व्यर्थ न छोडिए। हो सकता है वह फिर कभी न आए। वर्तमान में उपस्थित व सामने आई हुई कठिनाइयो से घबडाकर, भूत की ओर इस आशा से कभी मत देखिए कि वहा सरल व सीधा मार्ग मिलेगा। वह आपको और भी उलझा सकता है। बीती हुई बातो को सोचना व्यर्थ है। फारसी में एक कहावत है—"बीती को भूल जा, वर्तमान को सामने रख, मुस्कराकर स्वागत कर, व भविष्य से बेफिक्र रह।" वास्तव में यह ही सफलता की कुजी है। किसी कवि की उक्ति—"बीती ताहि बिसारि दे—" कभी मत भूलिए। यदि आप अपने जीवन में सफलता पाना चाहते है तो आप पीछे की ओर कभी मत देखिए।

भविष्य के लिए सोचे जानेवाले या सोचे गये किसी भी कार्य के लिए, हमेशा आपके समक्ष कुछ-न-कुछ ऐसी स्थितिया अवश्य रहेंगी, आपको कुछ-न-कुछ ऐसी सुविधाए अवश्य प्राप्त रहेंगी, जो आपके कार्य को अधिक सभव व अधिक जल्दी सफल बना व पूरा कर सकेंगी। आपके भविष्य को सफलता का बाना पहना सकेंगी। वह उपाय कौन-सा है, वह स्थिति कौन-सी है, जिस उपाय से आपको जल्दी सफलता प्राप्त होगी, यह खोज निकालना आपका काम है। यदि आप तनिक सतर्कता एव बुद्धिमानी से काम लें तो आपको शीघ्र ही पता चल जायेगा कि वह उपाय क्या है अथवा आपको क्या करना चाहिए।

मान लीजिए, आप अगली छुट्टियो में बम्बई घूमने का विचार कर रहे है। अब समस्या यह है कि खर्च के लिए रुपयो की व्यवस्था कैसे की जाय? आपके विचार में चार उपाय है—(१) आपकी आमदनी में बढती की सभावना है। (२) आपको किसी लाटरी या पहेली का पुरस्कार मिलने वाला है। (३) आपके ऐसे किसी निकट सबधी की मृत्यु होने वाली है जिसकी समस्त सम्पत्ति अथवा उसका कुछ अश आपको मिलने वाला है। (४) यदि आप धूम्रपान करना बन्द कर दें या अपने ऊपरी खर्चे में कुछ कमी कर दें तो छुट्टियो तक आपके पास काफी रुपया एकत्र हो जायगा।

आप अपनी आराम कुर्सी पर लेट जाते है और एक सिगरेट जलाकर विचारो में खो जाते है। छुट्टियों में बम्बई घूमने की समस्या आपके मस्तिष्क को उद्वेलित किये हुए है। तरह-तरह के विचार आपके मस्तिष्क में आ रहे है, पर आप कुछ निश्चय नहीं कर पा रहे है कि कौन-सा उपाय उचित है? यदि सच पूछा जाय तो चौथा उपाय ही आपकी समस्या का वास्तविक एव सही हल है। और उसी से आपको सफलता मिलेगी। पर आप सच मानिए १० में से ९ व्यक्ति इस चौथे उपाय की अवहेलना करेंगे, इस ओर से उदासीन रहेंगे और पहली तीनों सभावनाओ पर ही अपनी आशाओ का अम्बार जुटाने की चेष्टा करेंगे। उन्ही तीनो की ओर प्रयत्नशील रहेंगे और इस प्रकार उनके सपने सपने ही बनकर रह जायगे।

वर्तमान ही भविष्य की कुजी है। सदा वर्तमान को साथ लेकर चलिए। आप कभी असफल नही होगे। अपनी आशाओं को फलीभूत करने के लिए आप आज से ही कोई उपाय आरम्भ कर सकते है। भले ही आपके द्वारा किया जाने वाला प्रयत्न कितना ही छोटा व नगण्य क्यो न हो, आप अपने प्रयास में आज से ही लग जाइए। आज की बात कल पर मत छोडिए। 'कल' के लिए 'आज' की अवहेलना उचित नहीं। "काल करे सो आज कर, आज करे सो अब—" मिथ्या नही। आज थोडा-सा प्रयास कीजिए, कल कुछ अधिक और इस प्रकार क्रमशः वृद्धि। निश्चय ही आपको सफलता मिलेगी। सफलता का ही दूसरा नाम है—छोटे-छोटे प्रयत्नो का अनुक्रम। केवल

मन में आया, अगर ऐसा करतब हमसे होता तो इस सवार की तरह आना-पैसा मांगने के बदले एक ही रात में मालामाल हो जाते। खेल के बाद इन्होंने ने उससे भेंट की और उसको रात के लिए मजदूरी पर रख लिया। रात में एक धनी आदमी के घर के सामने सब जा खड़े हुए। रात घनी अंधेरी थी। आस-पास कहीं सूनसान थी। इन्होंने डोवारी से कहा "भाई, पहली मंजिल पर जाकर अंदर से लगी कुंजी खोल दो, बाकी हम सब निबटा लेंगे।" डोवारी ने कपड़े उतारे। दो चार दंड लगाये, बैठकें लगाई, फिर ताल ठोक कर वह खड़ा हो गया। ताल ठोकने की आवाज से डकैत घबरा गये। वे उसे ऐसा करने से रोकने लगे। ताकि गली में से कोई जाग न जाय। डकैतों ने उससे कहा "भाई जल्दी करो, जल्दी कूदो। देर हो रही है।" तब डोवारी बोला : "जी, मैं तो तैयार ही हूं। बजाइये बाजा कि कूदा ही मैं।" अब बेचारे डकैत क्या बाजा बजाते और डोवारी क्या कूदता! यह तो ऐसा ही हुआ कि, 'न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी।' हमारी आज की शिक्षा क्या ऐसी ही नहीं है। जब उत्तर-पत्रिकाएं लिखना होता है तब सब बातें याद आती हैं लेकिन जब जीवन में उतारना है तब सब गायब! यह तो कच के संजीवनी-मंत्र की ही बात हुई, मंत्र की प्राप्ति तो उसे हुई थी, लेकिन उसका जीवन की दृष्टि से कोई लाभ नहीं था। आज की शिक्षा भी कच की संजीवनी-विद्या की तरह हो गई है। कबीर साहब ने इसीलिए तो गाया है —

> पढ़ी पढ़ी पत्थर भया,
> लिखि लिखि भये जो ईंट।
> एक ही अक्षर प्रेम का,
> लागी नेक न छींट॥

अगर सही अर्थ में प्रेम का एक भी अक्षर हमने न पढ़ा तो पढ़कर भी हम ईंट-पत्थर ही बननेवाले हैं।

ऐसा क्योंकर होता है? इसलिए कि शिक्षा का सही अर्थ हमें ज्ञात नहीं है। ज्ञान होता तो ऐसा न हो पाता। शिक्षा का अर्थ यह नहीं है कि पढ़ा हुआ सब कुछ रटकर जबानी याद कर लेना। हम तो कितना ही भूल जाते हैं। पहली-दूसरी जमात में जो कविताएं रट-रट कर याद की थीं वे अब याद नहीं आतीं, तो क्या वह पढ़ना बेकार हुआ? हर्गिज नहीं। शिक्षा की व्याख्या है- "संस्कार-समुच्चय।" शिक्षा को संस्कार-समुच्चय में परिवर्तन करने का काम करता है स्वाध्याय। इसीलिए स्वाध्याय का बड़ा महत्व है।

पुरानी कहानी है। जब कौरव-पांडव गुरु द्रोणाचार्य के पास पढ़ने लगे तब पहले ही दिन गुरुजी ने पाठ पढ़ाया 'सत्य वद—सच बोलो।' दो-चार बार विद्यार्थियों से रटा लिया। फिर बोले क्या और कुछ पढ़ाऊं? बच्चों ने 'ना' कहा। हमें लगेगा कि पांडव-कौरव कितने बुद्धू थे! लेकिन धर्मराज निकला सबसे बुद्धू। दूसरे दिन गुरुजी ने जब बच्चों से पूछा : "क्या अगला पाठ पढ़ा दूं?", सिर्फ धर्मराज को छोड़कर और सबने 'हां' कहा। धर्मराज बोला "गुरुजी, सत्य के असंख्य पहलू हैं। जैसे-जैसे मैं उसके बारे में सोचता हूं वैसे-वैसे नये पहलू मेरे सामने आते हैं। तब मैं यह कैसे कहूं कि मेरा पहला पाठ पूरी तरह से तैयार हुआ।" गुरुजी को छोड़कर सब ठठाकर हंस पड़े। गुरुजी ने समझ लिया कि धर्मराज ही सही शिष्य है, क्योंकि वह शब्द में निहित भावना की सृष्टि में स्वाध्याय की सहायता से अवगाहन करता था। धर्मराज 'सत्य' को सिर्फ ज्ञान-व्यापी नहीं, बल्कि जीवन-व्यापी बनाना चाहता था।

स्वाध्याय से गीता ने अभ्यास को भी जोड़ दिया है। ऐसा क्यों? स्वाध्याय से क्या काम नहीं चल सकता? गीता का कहना है 'नहीं'। सिर्फ स्वाध्याय से काम पूरा नहीं होगा। स्वाध्याय का अर्थ है जानबूझकर सब बातें करना। लेकिन जब हम जानबूझ कर बातें करने लगते हैं तब उसमें दिखावा या दंभ पैदा होने की संभावना रहती है। लेकिन जब किसी बात का अभ्यास हो जाता है तब वह बात आत्मभूत बन जाती है। तब जानबूझकर कोई काम करने की जरूरत नहीं रहती। अनजाने ही सत्कृति हाथों से होने लगती है। गीता ने इस स्थिति को अत्युत्तम माना है। अभ्यास हो जाता है तब अहंकार और दंभ दोनों से हम बच जाते हैं। अभ्यास से क्या नहीं होता? 'करत-करत अभ्यास' सबकुछ हो सकता है। बचनाग जो अति

अन्तर्राष्ट्रीय खाद्य-सम्मेलन में भूदान की चर्चा

ज्ञानवती दरबार

इसमें सन्देह नहीं कि भूदान-आन्दोलन अब देश-व्यापी बन चुका है। उसका संदेश दूर-सुदूर देशों में भी पहुंच चुका है। इस क्रान्ति-यज्ञ की ज्योतिमयी ज्वालाओं में उठा हुआ सुगन्धित धूम्र भारत के वातायन से बाहर होकर, वेगमयी वायु के साथ विदेशों तक पहुंच चुका है। इसकी सौरभ को पाकर वे उत्सुक एवं जिज्ञासा से इस ओर देखने लगे हैं। विदेशों से आनेवाले भाई बड़े अचरज के साथ इस नये आन्दोलन की ओर आकृष्ट होते और अपने साथ एक नवीन प्रेरणा लेकर जाते हैं। इसी प्रकार हमारे भारतीय जहां भी जाते हैं, संत विनोबा भावे के इस अद्भुत दिव्य संदेश को साथ लेकर जाते हैं।

भूमि-सुधार-समस्या केवल भारत में ही नहीं लगभग संसार के सभी देशों के सामने है। सभी अलग-अलग तरीके से इसे हल करने का प्रयत्न कर रहे हैं, लेकिन आचार्य विनोबा की यह एक अनोखी सूझ है। जीवन की अखंड तपस्या और मानवता के प्रति असीम सहृदयता के प्रतिफल के रूप में इसका उदय हुआ है। कोई आश्चर्य नहीं यदि विश्व मानव इस आंदोलन की ओर आशाभरी दृष्टि से देखे और उसमें दिलचस्पी ले। अभी-अभी हैदराबाद सरकार के कृषि, अन्न व योजना-मंत्री, डा. चन्ना रेड्डी भारतीय प्रतिनिधि मंडल के नेता बनकर अन्तर्राष्ट्रीय खाद्य-उत्पादक सम्मेलन में भाग लेने इटली गये हुए हैं। उन्होंने रोम से पत्र भेजे हैं, उनकी जो रिपोर्ट मैंने तैयार की है, उसका सारांश यहां दे रही हूं

आइ. एफ. ए. पी. की नीति निर्धारिणी समिति की बैठक गत सप्ताह में एफ. ए. हेडक्वार्टर्स, रोम में हुई। एफ. ए. ओ. के विशेषज्ञ श्री ए. एच. बॉर्नी ने पिछड़े हुए देशों के "आर्थिक विकास" की विशद व्याख्या की। एफ. ए. ओ. के उपसंचालक और संयुक्त राष्ट्रसंघ की टेक्निकल सहायता-समिति के उपप्रधान श्री हर्बर्ट ब्रोडले का "संयुक्त राष्ट्र संघ और एफ. ए. ओ. के भूमि-सुधार-कार्यक्रम" पर व्याख्यान हुआ। इसमें श्रोताओं में बड़ी रुचि पैदा हुई और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, यू. के., भारत, नेदरलैंड आदि देशों के प्रतिनिधियों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया। श्री बालन ने बताया कि इस समस्या के विभिन्न अंगों पर प्रत्येक देश को अपनी-अपनी परिस्थिति और आर्थिक निर्माण को ध्यान में रखते हुए विचार करना चाहिए। उनकी राय में राजनैतिक और भावुकता-पूर्ण तथ्यों पर अधिक ध्यान देना हानिकारक है। भारतवर्ष के प्रतिनिधि डा. चन्ना रेड्डी ने उक्त चर्चा में भाग लेते हुए यह विचार प्रगट किया कि वर्तमान समय के उच्च अधिकारियों ने इस विषय की त्रिविध समस्याओं पर विवेकपूर्ण प्रकाश डाला है। ये तीनों ही एक-दूसरे से सुसंबद्ध हैं और पिछड़े हुए देशों के लिए तो विशेष विचारणीय हैं। न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया, कैनेडा जैसे कुछ देशों में भूमि सुधार की समस्या कोई विशेष समस्या नहीं है, क्योंकि वहां भूमि पर्याप्त है। इसी प्रकार संयुक्त राष्ट्र अमरिका तथा कुछ अन्य देशों में भी सुधार की अन्य योजनाएं विद्यमान हैं तथा वहां बेकार की समस्या नहीं है। भारत में जहां ७५ प्रतिशत से अधिक जनता कृषि-उद्योग से निर्वाह करती है, वहां हमारे पास अपेक्षाकृत बहुत कम भूमि है। प्राय प्रति मनुष्य डेढ़ एकड़ भूमि का औसत पड़ता है। यह एक बड़ी ही उलझी हुई, महत्वपूर्ण और तुरन्त विचारणीय समस्या है। 'योजना-आयोग' अर्थात् हमारे विशेषज्ञों की परिषद इस पर गंभीरतापूर्वक विचार कर रही है और हमारी राज्य-सरकारें सुधार की विभिन्न योजनाओं पर विचार कर रही हैं, जिन पर विस्तार से प्रकाश डालने का अवसर यहां नहीं है। किन्तु एक बड़े आन्दोलन की रूपरेखा यहां अवश्य रखना चाहता हूं जिसको राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के प्रमुख शिष्य आचार्य विनोबा ने चलाया है। यह एक संयोग की बात

है कि मेरे प्रदेश हैदराबाद-राज्य में विनोबाजी दौरा कर रहे थे और भूमिहीन किसानों और मजदूरों के लिए भूमि-वितरण की समस्या का समाधान सोच रहे थे कि पोचरम ग्राम के एक कृषिकार श्री रामचन्द्र रेड्डी ने एक सौ एकड़ भूमि, भूमिहीनों के लिए उन्हें दान दी। यहीं से हमारे भूमिदान-आन्दोलन का सूत्रपात हुआ और लगभग एक वर्ष में ही करीब १० लाख एकड़ भूमि हमारे देश भर में दान दी जा चुकी है। जनता की मनःवृत्ति पर इसका गहरा असर हुआ है और हमें आशा है कि हम इस विचित्र और शानदार तरीके के द्वारा इस समस्या को सुलझा सकेंगे। आचार्य भावे और उनके गुरु महात्मा गांधी के उच्चादर्शों के अनुरूप ही यह सूझ है। मैं एफ ए ओ और आइ एफ ए पी, अन्तर्राष्ट्रीय खाद्य-उत्पादक सम्मेलन के विशेषज्ञों से जोर देकर कहूंगा कि इस समस्या का कोई हल या आधार निकालने की खोज करते हुए इस विधि पर अवश्य विचार करें।" इस प्रकार हम देखते हैं कि भूदान-आन्दोलन की यह विचारधारा तो पदयात्रा से कहीं अधिक वेगवती है जो देश तक ही सीमित न रहकर दूसरे देशों में तेजी से पहुंच रही है।

अपने वक्तव्य के उपसंहार में डा० रेड्डी ने कहा कि वास्तव में सब आचार्य विनोबा की इस नवीन कल्पना में भूमि-सुधार समस्या के शान्तिपूर्ण हल का दर्शन करते हैं और सबका विश्वास है कि इसमें मानवमात्र के कल्याण का सन्देश निहित है।

इस प्रकार नवोदित अहिंसात्मक क्रान्ति-सूर्य की दीप्तिमयी किरणें सब तरफ फैल रही हैं। उनमें मानवता के उज्ज्वल भविष्य के नवांकुर निहित हैं। उनमें नवजीवन देनेवाली शक्ति और जीवन को विकसित करने वाली विश्वशान्ति की उल्लसित सौरभ भरी है।

सभी अनुभव करते हैं कि इस त्रस्त दुनिया को मानवता का सन्देश देने वाला और हिंसा की लपटों को अहिंसा और प्रेम से शमन करने वाला कोई महामानव भारत भूमि में प्रगट हुआ है। दानवता को मानवता में बदल देने वाले इस महामानव ने कहा है "··मेरा उद्देश्य क्रान्ति को टालना नहीं है। मैं तो हिंसक क्रान्ति से बचाना चाहता हूँ और अहिंसक क्रान्ति लाना चाहता हूँ। मनुष्य की भावी सुख-शान्ति भूमि की समस्या के शान्तिमय हल पर निर्भर है।"

अहिंसक राजक्रान्ति से भारत ने स्वराज्य हासिल किया, यह संसार ने देखा और सराहा। आज संसार फिर इस आर्थिक क्रान्ति को आश्चर्य भरी निगाह से देख रहा है। क्रान्ति के इस नव-सन्देश में जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए यदि हम कुछ सीख सकेंगे तो 'सर्वोदय' का अवश्य ही 'पूर्णोदय' होगा।



क्या आप जानते हैं

कि पन्द्रह अगस्त की तिथि कितनी प्रसिद्ध है। इसी तिथि को भारत स्वतन्त्र हुआ था। इसी तिथि को श्री अरविन्द का जन्म हुआ था और इसी तिथि को परमहंस रामकृष्ण देव तथा श्री महादेव देसाई स्वर्ग सिधारे थे। इसी मास की ७ तारीख को रवीन्द्र-पुण्यतिथि तथा १७ को तुलसी-पुण्यतिथि भी पड़ती है।



उतावला सो बावला

अगरचन्द नाहटा

लोकोक्तियाँ या कहावतें लोक जीवन के अनुभवों के सूत्र वाक्य हैं। जो ज्ञान बड़े-बड़े पोथे पढ़ लेने पर भी जानने व समझने को नहीं मिलता, वे ही साधारण और अपठित लोगों द्वारा समय-समय पर सहज रूप में कथित इन अनुभव-सूत्रों द्वारा मिलती रहती हैं। कर्त्तव्य के निर्धारण और जीवन निर्माण में इन अनुभव सूत्रों का बड़ा भारी महत्व है। जन-साधारण किताबी ज्ञान से प्रायः शून्य-सा होता है फिर भी उनके अनुभव के द्वार सतत खुले रहने से उनका व्यवहारिक ज्ञान शिक्षित कहे जाने वाले व्यक्तियों से किसी प्रकार न्यून नहीं होता। बहुत बार तो किताबी ज्ञानवाले व्यक्ति अनुभव-शून्य और व्यवहार में अकुशल सिद्ध होते हैं। पद-पद पर ठोकरें खाते हैं, तब जाकर उन्हें होश आता है। इसलिए अनुभव ज्ञान का महत्व पुस्तकीय ज्ञान से बहुत अधिक माना गया है।

जीवन को सुसंस्कृत बनाने के लिए अक्षर-ज्ञान ही सब कुछ नहीं है। हम देखते हैं कि भारत के हजारों गावों और शहरों में साधारण जाति के लोगों में अक्षर-ज्ञान का अभाव है, फिर भी उनका जीवन सुव्यवस्थित और सुसंस्कृत पाया जाता है। इसका प्रधान कारण यही है कि हमारे यहां श्रुति-परंपरा को बड़ा महत्व दिया गया था। सन्तों एवं कथावाचकों द्वारा भजन व उपदेश सब समय सर्वत्र मिलते रहे हैं। वृद्ध एवं गुरुजनों के संपर्क से प्राप्त अनुभव ज्ञान उनका पथ प्रदर्शक रहा है। लोकश्रुति से जो कहावतें प्रचलित रही हैं, उनसे भी बहुत कुछ बोध जन साधारण को मिलता रहा है।

कहावत किसी को शिक्षा देने के हेतु नहीं गढ़ी जाती, पर जीवन का सत्य जो चिरकाल के अनुभवों से निखरा हुआ होता है वह समय-समय पर अनायास ही लोकमुख से निसृत होता रहता है और वे निखरे हुए अनुभव-वाक्य लोकोक्तियों का रूप धारण कर लेते हैं। उनमें शब्द बहुत थोड़े, पर अर्थ गंभीर हुआ करते हैं। छोटे-छोटे वाक्यों में सारभूत वाक्य गुंफित होने से सुननेवाले को वे सहज प्रभावित करते हैं और उनका स्मरण रह जाना भी कोई कठिन नहीं है। इसीलिए कहावतों को याद रखने के लिए किसी पुस्तक की आवश्यकता नहीं रहती। वे परम्परा से मौखिक रूप से ही सुरक्षित हैं और सुनते-सुनते सहज ही याद हो जाती हैं। जिस प्रकार कोई शास्त्रज्ञ पंडित अपने किसी कथन को प्रभावशाली एवं प्रामाणिक बनाने के लिए बीच-बीच में धर्मशास्त्रादि के वाक्य दुहराकर अपना प्रभाव दूसरे पर डाल देता है, उसी प्रकार जन-साधारण अपने कथन के बीच में प्रसंगवश स्मरण हुई लोकोक्तियों द्वारा कहे जानेवाले वाक्य को प्रभावशाली बना देते हैं। इन कहावतों में किसने, कब, किसको प्रचलित किया, यह कहना संभव नहीं, क्योंकि इनकी परंपरा बहुत प्राचीन और क्षेत्र-विस्तार भी अत्यंत व्यापक है। जीवन के अनुभव सब समय और सब लोगों के बहुधा समान हुआ करते हैं। इसलिए कई कहावतें वैदिक काल से अबतक ज्यों-की-त्यों किंचित् शब्द-फेर के साथ समाज में प्रचलित हैं। कई कहावतें सामान्य हेरफेर के साथ देश-विदेश में सर्वत्र व्यवहृत हैं। मौखिक होने से इनके रूपों की भिन्नता एक ही प्रान्त में होना स्वाभाविक है। व्यवहृत कम होने से बहुत-सी भुला भी दी जाती हैं और समय-समय पर नई कहावतें भी प्रसंग विशेष से उपजती जाती हैं। यहां यह बात लिख देना आवश्यक है कि सभी कहावतों का महत्व समान नहीं होता। क्योंकि उनके निर्माता एक सी योग्यता वाले नहीं होते। कच्चे अनुभव और व्यक्तियों की रागद्वेष-जन्य प्रवृत्तियों के कारण कई कहावतें बड़ी छिछली और बेतुकी सी मालूम होती हैं। कई कहावतें किसी परिस्थितिवश बनती हैं और उनका महत्व सब समय और सब परिस्थितियों में रहना स्वाभाविक नहीं है। संसार की सभी वस्तुएं परिवर्तनशील हैं। अतः समय के प्रभाव से मनुष्य की प्रकृति और अन्य बातों में भी परिवर्तन होता रहता है। कहावतें भी समय समय पर उसका रूप बदलकर नये रूप

में प्रकाश में आती रहती हैं। और उनका रूपान्तर होता रहता है। कई कहावतें तो ढाई-तीन हजार वर्ष पूर्व भी उसी रूप में प्रचलित थी। केवल भाषा का भेद हो गया है बात वही है। प्राचीन ग्रन्थों में प्रयुक्त कहावतों में कई आज प्रचलित हैं और कई नहीं। कुछ प्रचलित कहावतें बहुत थोड़े समय पहले की चालू हुई मालूम देती हैं।

कुछ वर्ष पूर्व मित्रवर नरोत्तमदासजी के पास की राजस्थानी कहावतों की पाण्डुलिपि देखी तो विचार हुआ कि इसमें तो करीब २५०० कहावतें ही हैं। पर राजस्थान में प्रचलित कहावतों की संख्या दस हजार से भी अधिक होगी। अतः इस संग्रह में न आई हुई कहावतों को एकत्र करने का प्रयत्न किया जाय। कुछ दिन तक वही धुन रही और महीने के भीतर ही २०००.के लगभग कहावतें नोट कर ली गई। स्वामीजी के संग्रह से मिलाके देखा तो उनमें आधी छंट गयी, फिर भी १००० कहावतें जो उनमें नहीं थी संग्रहीत हो जाने से संतोष का अनुभव किया। अभी कुछ वर्षों से जब आनंदवर्द्धनजी की कहावतों की कहानियां छपी देखी तो ऐसी अन्य कहावतों की कहानियों के संग्रह की ओर ध्यान गया जिनमें से कुछ प्रकाशित भी की गई हैं। अन्य क्रमशः होती रहेंगी।

कहावतों के अनेक प्रकार हैं। उनमें से सर्वाधिक प्रभावशाली वे हैं जिनके पीछे वर्षों के अनुभव की गहराई छिपी हुई है। ऐसी ही कहावतें जिन्हें अनुभव के सूत्र कहना ही विशेष उपयुक्त है, विश्लेषण की अपेक्षा रखती हैं। समुचित रूप से विचार करने पर उनका महत्व बहुत अधिक विदित होता है। मेरा विचार है कि ऐसी चुनी हुई कुछ कहावतों पर विश्लेषणात्मक लेख प्रकाशित किये जायं। प्रस्तुत लेख में एक ऐसी राजस्थानी कहावत पर थोड़ा-सा विचार किया जा रहा है। कहावत है "ऊंतावका सो बावला" जो कही "सयावका सो बावका" भी कहलाती है। इसका मतलब है कि उतावला व्यक्ति बावले (व्याकुल) व्यक्ति के सदृश होता है, क्योंकि अधिक उतावली में विचारों का संतुलन नहीं रह पाता। चित्त की अव्यवस्था और व्याकुलता से किए जानेवाले काम गड़बड़ा जाते हैं। इस अनुभव-सूत्र की यथार्थता-का अनुभव सभी व्यक्ति पद-पद पर करते रहते हैं। इस वाक्य की प्रामाणिकता के लिए अन्य प्रमाण खोजने या देने की आवश्यकता नहीं। अपने जीवन में हर व्यक्ति को यह बात अनुभूत मिलेगी।

संस्कृत का एक अनुभव-सूत्र है जो चाणक्य-नीति में भी आता है "अति सर्वत्र वर्जयेत्" अर्थात् हर काम की मर्यादा होती है। उसका उल्लंघन करना हानिप्रद होता है। अच्छे हो या बुरे सभी काम जिस समय जिस रूप में करने चाहिए उनका परिमित मात्रा में करना ही औचित्यपूर्ण माना जा सकता है। मर्यादा-क्षेत्र से बाहर जाते ही अनौचित्य सिद्ध हो जाता है। इसलिए 'अति' सब जगह वर्जनीय कहा गया है। उतावलेपन में भी एक 'अति' है जिस ढंग से जो कार्य जितने समय में करने से ठीक से संपन्न हो सकता है उसे अधीरता से, हड़बड़ाहट के साथ करने का प्रयत्न ही उतावलापन है, यह उतावलापन अनेक प्रकार का है।

कार्य होने का समय नहीं हुआ, उससे पहले कर डालने का प्रयत्न ही एक उतावलापन है। अभ्यास से एक ही कार्य कोई स्वल्प काल में कर लेता है और किसी को अधिक समय लग जाता है। अभ्यास के ऊपर निर्भर होने से एक व्यक्ति यदि थोड़े समय में ठीक से कार्य सम्पन्न कर लेता है तो वह उतावलेपन में शुमार नहीं होता। ऐसा प्रयत्न करना अर्थात् जल्दी से कार्य को निपटाने का अभ्यास डालना तो एक आवश्यक बात है। पर अभ्यास धीरे-धीरे होता है, उसके द्वारा कठिन कार्य सुगम हो जाते हैं। और बहुत समय लगनेवाले कार्य अल्पकाल में सपन्न हो जाते हैं। यह तो ठीक है, पर कोई व्यक्ति अभ्यास करने में भी उतावलापन करे, धीरे-धीरे योग्यता व शक्ति बढ़ाने की अपेक्षा एक साथ ही तुरंत कार्य कर लेने का सोचे तो वह कार्य ठीक से सम्पन्न नहीं होगा, उसमें कचाई रह जायगी। जैसे प्रथम कक्षा की योग्यता वाला व्यक्ति उच्च कक्षाओं में अभ्यास के द्वारा क्रमशः ही ऊपर पहुंच सकता है। अधैर्यवश बीच का अभ्यास छोड़ अधिक आगे का अभ्यास प्रारंभ कर दे तो अपरिपक्वता के कारण सफलता नहीं मिलेगी। उस उतावली से कार्यसिद्धि नहीं होती।

जीवन थोड़ा-सा है और कार्य असंख्य हैं अतः जितने अधिक कार्य किये जा सकें, करने का प्रयत्न करना जरूरी

है पर काम करने के अपने तरीके है। कलकत्ते जाना है तो अभी मन में किया और तुरत पहुच गये यह असभव है। कुछ समय तो लगता ही। यह अवश्य है कि यदि कोई व्यक्ति पैदल चलता है तो उसे ४-५ मास लगेंगे और ऊट घोडे आदि वाहनो पर जानवाले को उससे चतुर्थांश समय लगता। रेलगाडी और मोटर आदि वाहन दो-चार दिन में ही पहुचा देंगे। वायुयान के द्वारा तो कुछ घण्टो में ही पहुचा जा सकता है। साधनो के अनुसार कार्य की गति म शीघ्रता व विलब होगा, पर यदि कोई व्यक्ति पैदल चलकर दौडते हुए कलकत्ते पहुचना चाहता है तो यह सभव नही। क्योंकि दौडने की क्रिया थोड समय तक ही चालू रह सकती है। इसके बाद उसे विश्राम लेना अनिवार्य है। इसम उतावलापन करना लाभप्रद न होगा। जल्दी दौडने में यदि कही ठोकर लग गयी तो उसका दुष्परिणाम अवश्यमेव भोगना पडेगा और उस उतावलेपन का परिणाम भी अधिक धैर्य के रूप में परिणत हो जायगा।

उतावलेपन के साथ विस्मृति का बडा भारी मेल है। उतावलेपन का भूत सवार हुआ कि व्याकुलता या हडबडाहटपन आ धमका, इससे मन अस्त व्यस्त हो जाता है, स्थिरता से सोच विचार कर नही पाता। फलत बहुत-सी आवश्यक बातें उस समय विस्मृत हो जाती है जैसे आपने कोई पुस्तक उतावलेपन मे पढी तो उसके भाव मन में जैसी स्थिरता से जमने चाहिए, जम नही पायेंगे। पहले तो आप भावो को सुन्दरता से ग्रहण करने में ही असमर्थ रहेगे। अन्यमनस्कता के कारण ग्रहण किये हुए भाव पचा नही पायेंगे। बहुत-सी बातें तो पढने के साथ-साथ ही विस्मृति के गर्भ में निहित हो जायगी। कही जाने में आपने उतावली की तो साथ लेने योग्य आवश्यक वस्तुओ को भी आप भूल जायगे। चित्त की विक्षिप्तता से उस समय कुछ याद ही न पडेगा, रास्ते में कभी उस चीज को भूल गए और कभी वह काम रह गया, उससे यह भोलापन देनी आवश्यक थी आदि अनेक बातें ध्यान में आवेगी। भूली हुई वस्तुओ को लाने यदि स्वय लौटेंगे या आदमी भेजेंगे तो दुगुना समय लग जायगा और लौटने तक शायद गाडी ही चल हो जाय।

उतावली में विचार या विवेक-शक्ति का ह्रास हो जाता है। किसी कार्य के करने के पूर्व उसमे होने वाले लाभालाभ पर भलीभांति विचार करना आवश्यक होता है, पर उतालेपन से किये गये निर्णय में उतनी गभीरता से विचार करने का अवकाश कहा ? इसलिए कार्य सुधरने के स्थान पर बिगड जाता है और उसके लिए पीछे से परिताप या पश्चात्ताप होता है कि पहले मैंने क्यो नही आगा-पीछा सोचा, अच्छा होता मैं धीरज से सारी बातें पहले सोच लेता। उतावली के कारण जो परिस्थिति पैदा हो गयी है वह अब समालनी कठिन हो गयी। कहावत प्रसिद्ध है —

बिना बिचारे जो करे सो पाछे पछताय।
काम बिगाडे आपणो जग में होत हसाय॥१॥

उतावली से कार्य सागोपाग नही हो पाता उसमें अपूर्णता व कचाई रह जाती है। इसलिए उससे जो फल मिलना चाहिए वह नही मिल पाता। उतावली से बोला जाता है तो कहते हुए कुछ के-कुछ शब्द निकल पडते है। कभी-कभी तो अर्थ का अनर्थ हो जाता है। उतावली से भोजन करते ठीक से चबा नहीं पाते और पाचन भी ठीक से नही होता। उतावली से लिखा जाता है तो लिपि और भाव स्पष्ट नही हो पाते। भूलें अधिक रहती है, जो कभी-कभी बडी घातक सिद्ध होती है। किसी को सौ रुपये देना है तो उतावली में अधिक दे दिया जाता है। इस प्रकार जीवन के हर क्षेत्र में अधिक उतावली करना हानिकारक ही सिद्ध होता है। उतावलेपन के समय की व्याकुलता को देखकर ही उसकी तुलना बावले व्यक्ति से की गयी है। हमें यह अनुभव-सूत्र सचेत करता है कि कार्य धैर्य और विचारपूर्वक स्थिर चित्त से करिए ताकि बावले की कोटि में न आना पडे।

उपर्युक्त विवेचन से कोई यह निष्कर्ष नही निकाले कि काम धीरे धीरे जैसे भी होता है होने दिया जाय। उसको शीघ्रता से पूरा करने का प्रयत्न नही किया जाय। वास्तव में यह भाव लेना गलत होगा। हर व्यक्ति अपने काम में प्रगति करना चाहता है और इसके लिए हर कार्य शीघ्रता से सफल हो यह परमावश्यक है। पर इसके लिए कार्य

(शेष पृष्ठ ३०९ पर)

हरिराम व्यास

वासुदेव गोस्वामी

संवत् १५६७ विक्रमी की मार्गशीर्ष कृष्णा पचमी को झांसी के निकटस्थ ओरछा नामक नगरी मे श्री सुमोखनजी शुक्ल के घर श्रीमती देविकाजी की धन्य कुक्षि से इन व्यासजी का जन्म हुआ था जिनके परिचय में नाभादासजी ने अपनी भक्तमाल में यह छप्पय लिखा है :—

काहू के आराध्य मच्छ कछ सूकर नरहरि।
बावन, परसा धरन, सेतु बंधनहु सैल करि ॥
एकन के यह रीति नेम नवधा सौं लाए।
सुकुल समोखन-सुवन अच्युत गोत्री जु लड़ाएं ॥
नौ गुनों तोरि नूपुर गुह्यो महत सभा मधि रास के।
उत्कर्ष तिलक अरु दाम को भक्त इष्ट अति व्यास के ॥

इन व्यासजी का पूरा नाम था हरिराम और यह थे सनाढ्य ब्राह्मण। पुराण वक्ता होने के कारण श्री हरिराम शुक्ल प्रथानुसार 'व्यास' की उपाधि से विभूषित हुए। इस उपाधि से यह इतने प्रसिद्ध हुए हैं कि अनेक व्यक्तियों की यही संज्ञा होने पर भी, उनके समकालीन नाभादासजी तथा ध्रुवदासजी आदि अन्य कितने ही विज्ञ भक्तो ने अपनी लेखनी से उनको इसी उपाधि नाम से अंकित किया।

बाल्यावस्था में व्यासजी शास्त्रार्थी पडित थे। उन्होने शास्त्रार्थ करने के लिए पण्डितो को ललकारा और उनपर अपनी विद्या की धाक जमाई। बुन्देला नरेशो के राजगुरु होने के कारण इन्हें पर्यटन करने में अधिक सुविधाएं राज की ओर से भी उपलब्ध थी। एक समय काशी में इन्होंने एक स्वप्न देखा जिसमें शिवजी इन्हे भक्ति का उपदेश दे रहे थे और शुष्कवाद-विवाद की असारता बता रहे थे। उस स्वप्न का इनपर इतना प्रभाव पडा कि वे तदनन्तर अपनी विद्या का अभिमान त्याग कर श्री युगलकिशोर की आराधना मे ही दत्तचित्त हो गये। उन्हे युगल मन्त्र की दीक्षा तो अपने पिता शुकुल समोखनजी से पहले ही प्राप्त हो चुकी थी। काशी आदि स्थानो मे कबीर, रैदास, धना आदि भक्तो की जिन कथाओं को इन्होंने सुना था उनको मनन करने मे इन्हे आनन्द मिलने लगा। भक्ति का जो अंकुर शास्त्रार्थ की तीव्र तपन मे झुलस रहा था, घनश्याम की आनन्दमयी धारा से पुन. हरित हो उठा। किन्तु व्यासजी की इस अनन्य-भक्ति से परिवार वालों को चिन्ता हो उठी। फलत इनकी साधना में विक्षेप होने लगा।

ये तीर्थाटन के लिए घर से चल दिये और वृन्दावन पहुचे। वहा अनेको सत विद्वानो के साथ गोस्वामी हितहरिवंशजी और स्वामी हरिदासजी से इनका परिचय हुआ। हितजी ने कुछ ही समय पूर्व राधावल्लभीय सम्प्रदाय की स्थापना की थी और माधुर्य भक्ति को उपासना के क्षेत्र में पूर्ण रूप से प्रचारित करना उनका लक्ष्य था। जिस समय व्यासजी उनसे मिले तो वे रसोई बना रहे थे। जब व्यासजी ने उनसे बातचीत करने की उत्सुकता प्रकट की तो उन्होंने चूल्हे पर से बटलोई उतार दी। यह देखकर व्यासजी ने कहा कि बातचीत करने में बटलोई उतारने की क्या आवश्यकता थी ? दोनो कार्य साथ-साथ चल सकते थे। उत्तर में हितजी ने एक पद पढ़ा कि :

यह जु एक मन बहुत ठौर कर, कहि कौनें सचु पायौ ॥
(बे० श्री चतुरासीजी)

इससे व्यासजी को मन की एकाग्रता के लिए महत्वपूर्ण प्रेरणा तो मिली ही वे हितजी को सद्गुरु भी मानने लगे तथा उनकी उपासना-पद्धति के प्रचार में योग देने लगे। स्वामी हरिदासजी की उपासना भी माधुर्य भाव की थी और वे अपने समय के श्रेष्ठ संगीतज्ञ थे। व्यासजी को संगीत से भी रुचि थी। इन्होने संगीत संबंधी एक ग्रंथ 'राग माला' के नाम से लिखा भी था। एक उपासना पद्धति और समानशीलता ने इन दोनो में अभिन्न प्रेम बढाया।

जैसा कि नाभादासजी के उक्त छप्पय से प्रकट है

व्यासजी भक्तों को अपना इष्टदेव मानते थे। उन्होंने अपनी वाणी में अनेक भक्तों का बड़ी श्रद्धा से स्मरण किया है। साम्प्रदायिक दलबन्दी के कारण इन मतभेदों में एक हठधर्मी-सी पड़ गई है। परन्तु व्यासजी के वर्णना में जो साधुओं के प्रति सद्गुरुभाव लक्षित होता है, वह उनके इस विचार का परिणाम है कि

आदि अंत अरु मध्य में, यहि रसिकन की रीति।
सन सबै गुरदेव हैं, व्यासहि यह परतीति॥

अतएव किसी भी मत का व्यासजी का गुरु न मानना भी अनुचित होगा। किन्तु जहां एक दीक्षा-गुरु के निर्णय करने का प्रश्न है वहां मेरी मति से वे जन्म ही पिता मुकुन्द सनोवन से दीक्षित हुए थे और अन्त समय तक उन्हीं के प्रति अपने गुरु के प्रति भावना प्रकट करते रहे।

जैसा कि श्री वियोगी हरि ने भी कहा है, व्यासजी के अनेक पद सूरदास जी के पदों से भाव और भाषा दोनों ही दृष्टियों से किसी तरह कम नहीं। मार्मिक भी बड़ी मार्मिक है। व्यासजी के कितने ही पदों को सुनकर सूरदास का भ्रम हो जाता है। सूरसागर में व्यासजी की रास-पंचाध्यायी तथा कुछ पद नाममात्र के शब्द-परिवर्तन के साथ प्रकाशित भी हुए हैं। सूरदास के अंध भक्तों ने ही 'व्यास' के स्थान पर 'सूर' आदि बदल कर यह दुस्साहस किया है, किन्तु इससे इतना निर्विवादरूपेण सिद्ध हो जाता है कि सूरसागर में व्यासजी के पद विलीन करने में भाषा और शैली आदि की कठिनाई नहीं रही।

जहां सूरकाव्य में भ्रमर गीत विरह-वर्णन का एक प्रधान अंग है, वहां व्यास-वाणी में गोपियों की विरह दशा के चित्रण करने का अवसर ही नहीं आता। यह मौलिक मतान्तर है। इन दोनों कवियों की उपासना के तत्वों में आन्तरिक भिन्नता के कारण जहां सूर की राधा का कृष्ण के प्रवासजन्य विरह का दुःख होता है वहां व्यास के कृष्ण को राधा के मान के परिणाम से उत्पन्न क्षणिक वियोग से अधीरता उत्पन्न होती है। व्यासजी सिद्धान्त रूप से हरि से मिलने की कामना करते हैं, परन्तु राधा की कृपा-कोर उनके लिए मुख्य है। इन पार्थक्यों के बीच भी दोनों महाकवियों की शैली और भावव्यंजना कितनी समान है इसे प्रकट करने के लिए यह एक उदाहरण देखिये :—

अटपटि बात तिहारी ऊधौ सुनै सो ऐसी कोहै।
हम अहीर अबला शठ, मधुकर! तिन्हें जोग कैसे सोहै॥
बूचिहि खुभी, आंधरी काजर, नकटी पहिरै बेसरि।
मुंडली पाटी पारन चाहै, कोढ़ी अंगहि केसरि॥
बहरी सों पति मतो करै, सो उतर कौन पै पावै।
ऐसो न्याव है ताको ऊधौ, जो हमें जोग सिखावै॥
जो तुम हमको लाए कृपा करि, सिर चढ़ाय हम लीन्हें।
"सूरदास" नरियर जो विष को करहि बंदना कीन्हें॥
(भ्रमर-गीत-सार, पद सं० ३५)

हरि बिनु सब सोभा सोभा सी।
अजन मंजन पति बिनु सीठो, ज्यौं नटकी मसवासी॥
अधरहि काजर, नकटहि बेसरि, डोकिहि पहुंची हासी।
होज पुरुष, बिया बाझ बूथा, मुंडली लटकने मति नासी॥
कुटिमहि मुरली, बूचहि कुंडल, केस बिना आकासी॥
दासी लौन कुलीन कामिनी, कंचन तन सन्यासी॥
स्यारहि राज नरनि में सोहै, जैसे राज बिमासी।
'व्यास' स्याम बिनु सब असमंजस, जैसे धनिक बिनासी॥
(भक्त कवि व्यासजी, पृष्ठ २३३)

ब्रज भाषा के इतिहास में विद्वानों को जो चीज चकित कर रही है वह है उसका सोलहवीं शताब्दी में एकाएक प्रौढ़तम-साहित्य सृजन। सूरदास किंवा अष्टछाप के कवि बिना पूर्व साहित्यिक परंपरा से साहित्य गगन में दिखाई देते हैं और ठीक उसी समय हरिराम व्यास किंवा हरिवंशी हरिराम, हरिवंश तथा हरिदास, अपनी उत्कृष्ट स्वर लहरी को झंकृत करते हैं। इन कवियों ने धर्म और संस्कृति की रक्षा की, किन्तु लोक-कल्याण की व्यापक भावना के लिए तत्कालीन कवियों में व्यासजी का ही प्रमुख स्थान है। वे निर्भीक उपदेशों के उच्चारण तक ही अपने को सीमित न रखकर उन सब पर चले भी, और जनता के सामने एक आदर्श स्थापित करने में सफल हुए। वृन्दावन की महिमा के वर्णन व्यासजी की अमूल्य सम्पत्ति हैं। वहां के स्वपच का उन्हें बड़ा आदर है —

वृन्दावन के स्वपच की रहिये सेवक होय।
तासौं भेद न कीजिये, पीजै पद रज धोय॥

पन्द्रह अगस्त की दिव्यता

रामलाल

भारतीय क्रान्ति के इतिहास में पन्द्रह अगस्त की राजनीतिक क्रान्ति एक अत्यन्त मौलिक और अभूतपूर्व घटना है। सदा आध्यात्मिक जीवन क्रान्ति के दर्शन-मंच पर सत्य और शान्ति तथा स्वराज्य का विवेचन करनेवाले देश ने पन्द्रह अगस्त को जो राजनीति मूलक क्रान्ति देखी उसका विवरण चार्ल्स प्रथम का सिर उतारनेवाला, राजत्व के दैवी अधिकारों को निर्मूल करनेवाला अंग्रेजी इतिहास नहीं दे सकता। बैस्टाइल, पेरिस और वारसाई के राजोन्माद को भस्मीभूत करनेवाली फ्रेंच राजक्रान्ति ऐसी किसी रक्तहीन घटना का उल्लेख नहीं कर सकती। अमेरिका की स्वतन्त्रता का इतिहास भी इस तरह के घटना सादृश्य से सर्वथा शून्य है। रूस की जनक्रान्ति, लेनिन और ट्राटस्की के विजय गीत गाने वाली खूनी घटना का इससे साम्य ही नहीं बैठता है, विश्व में बड़ी-बड़ी राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक क्रान्तियां हुईं पर उनमें से किसी एक ने भी यह सन्देश नहीं दिया कि जो जाति दूसरों की स्वतन्त्रता और प्रभुता को पैरों तले रौंदती है उसे विश्व में एक क्षण के लिए जीने का अधिकार नहीं है।

सन् ४७ का पन्द्रह अगस्त 'भारत-छोड़ो' प्रस्ताव की श्राद्ध तिथि है, स्वराज्य का सुनहला जन्मदिन है। इस पवित्र तिथि को प्रत्येक वर्ष विश्व के सारे प्राणी यह संकल्प दोहराते रहेंगे कि दुनिया में किसी भी देश को दासता की जंजीर में जकड़ने वाला राष्ट्र मानवता और स्वतन्त्रता के भाल पर कलंक है, उसका अन्त ही श्रेयस्कर और समीचीन है।

पन्द्रह अगस्त ने विश्व को सत्य और शांति का दान किया और इतिहास साक्षी है कि यह दान चिरन्तन, स्थायी और सनातन है तथा रहेगा। आज से सौ साल पहले योरप के प्रतिक्रियावादी नेता मेटरनिक ने भी कहा था कि विश्व को युद्ध और शान्ति में से शांति की अधिक आवश्यकता है, पर उसकी घोषणा में दम्भ और पाखण्ड का अंश अधिक था और प्रतिक्रिया का चोगा पहननेवाला योरप विश्व को दो महायुद्धों की भीषणता से न बचा सका। आज का भारत अपने पन्द्रह अगस्त की ऐतिहासिक तिथि की कसम खा कर यह कहने को प्रस्तुत है और कह रहा है कि विश्व को शान्ति चाहिए और यदि महायुद्ध छिड़ता है तो भारत उसे यथाशक्ति रोकने और नियन्त्रित करने का पूरा-पूरा प्रयास करेगा। आज का भारत अठारहवीं सदी के फ्रान्स और बीसवीं सदी के रूस से जनतन्त्र और मानवता के क्षेत्र में कहीं आगे है। पन्द्रह अगस्त को वह संसार में शान्ति स्थापना का आश्वासन देता है।

पन्द्रह अगस्त का क्रान्ति-साहित्य हमें सावधान करता है कि भारत को अब राजनीतिक, दार्शनिक या आध्यात्मिक क्रान्ति की आवश्यकता नहीं है। इस तरह की क्रान्तियों में और उनके नेताओं में अब जनता का विश्वास नहीं ठहर सकता। विश्व भौतिकता के आधार पर संयोजित सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति की मांग करता है। विश्व के समझदार प्राणी यह समझ गये हैं कि किसी आध्यात्मिक योग में समाधिस्थ होने से या भर्तृहरि की तरह भोग से वैराग्य लेने पर, क्षुधा और पेट की आग की समस्या का हल नहीं निकल सकता है, यद्यपि इस तरह के आचरण किसी युग विशेष के लिए मान्य थे पर फिर भी उस समय के प्राणी और आज की जनता में बड़ा अन्तर है। आज यदि योरप और एशिया में सूफ़र और फ़कीर उतर पड़ें तो उनकी अध्यात्म-साधना और धर्माचरण तथा योगाभ्यास का हम स्वागत करेंगे पर मानसिक और शारीरिक तृप्ति तो आर्थिक और सामाजिक क्रान्ति से ही हो सकेगी। पन्द्रह अगस्त का यह मौलिक और शुभ सन्देश है। इसका अक्षर-अक्षर प्राणमय और प्रभावपूर्ण है। पन्द्रह अगस्त विश्व को प्रोत्साहित करता है कि वह रूसो, वाल्तेयर, मानटस्की, टालसटाय और तुर्गनेव आदि पैदा करे और भारतीय निराला और पन्त से क्रान्तिपूर्ण साहित्य की सृष्टि की मांग करे। भारत सत्य और अहिंसा

का देवदूत है इसलिए पन्द्रह अगस्त सत्य और अहिंसा के व्यास की खोज करता है। मानवता को दिव्य, स्वर्गीय, और अलौकिक बनाने के लिए किसी अभिनव व्यास, वाल्मीकि और कालिदास की आवश्यकता है। इधर चार सौ सालों में विश्व में जितनी राजनैतिक और आर्थिक क्रान्तियां हुई हैं उन्होंने धर्मान्धता का खण्डन कर सत्य की स्थापना की है। राजा के दैवी राज्याधिकार का विरोध कर जनराज्य की नींव डाली है। ऊंच और नीच वर्ग का भेद रखनेवाली व्यवस्था का प्राणान्त किया है। पर उनमें से किसी ने मानवता को दिव्य बनाने का, देवत्व से ऊपर उठा कर ईश्वरीय करने का बीड़ा नहीं उठाया। पन्द्रह अगस्त की भारतीय राजक्रान्ति मानवता को स्वर्गीय और अलौकिक बनाकर पृथ्वी को सत्य, शान्ति और स्वराज्य से सम्पन्न करने का प्रतिनिधित्व करती है। अठारहवीं सदी में फ्रांस ने पेरिस और वारसाई का राजप्रासाद खून से रंग दिया, बीसवीं सदी के पहले चरण में रूस ने उपासना-घरों और सामन्तों के महलों की गगन चूमनेवाली पताकाओं को रक्तरंजित कर उनको पैरों तले रौंद डाला पर अभिनव तथागत गांधी के देश ने अपना स्वतन्त्रता के महान् पर्व पर पन्द्रह अगस्त को समस्त विश्व को सत्य, शान्ति और स्वराज्य की त्रिवेणी में नहला कर जन्म-जन्म तक के लिए दासता के पाप से मुक्त कर दिया। बीसवीं सदी की भारतीय स्वराज्य साधना की यह विशेषता है। पन्द्रह अगस्त सन् ४७ की पवित्र तिथि १ अगस्त सन् ४७ के भारतीय स्वाधीनता संग्राम की विजय-तिथि है।

माना, योरपीय दृष्टिकोण से दूसरा महायुद्ध १५ अगस्त सन् ४७ से पहले ही समाप्त हो गया, पोटसडम के सन्धि लेख पर अमेरिका, रूस और इंगलैंड का परमार्थी ईमान थिरक उठा; हिरोशिमा के प्राणियों के कन्धों पर अणुबम का जनाजा निकल गया, हिटलर और तोजो तथा मुसोलिनी का पतन हो गया पर भारत के लिये यह सब कुछ तो तमाशा था मानो कुछ हुआ ही नहीं। भारत ने तो अपने हाथ और पैर में बंधन देख कर यही सोचा कि विश्व के द्वितीय युद्ध की परिसमाप्ति तो उसकी स्वाधीनता और मुक्ति में अन्त-निहित है। बात ठीक भी थी, दो सौ साल की दासता ने लालकिले और ताजमहल, अयोध्या और रामेश्वरम्, अमृतसर और नवद्वीप से अपना पहरा उठा लिया। इतना ही नहीं, भारत के साथ ही साथ विश्व के अन्य पराधीन देशों ने अपनी मुक्ति प्राप्त की। पराधीन मानवता स्वतन्त्र हो गयी। दुनिया ने महात्मा गांधी को धन्यवाद दिया।

पन्द्रह अगस्त चालीस करोड़ जन-समूह वाले देश के राष्ट्रीय आन्दोलन की सफलता का स्मारक दिवस है उस दिन चार सदी के महामानव ने 'राघव राजा राम' के पवित्र नाम का उच्चारण कर सत्य और अहिंसा की घोषणा की, तपस्या, बलि और स्वार्थत्याग की भावना के मांगलिक स्वर में स्वराज्य का स्वर्णिम विहान देखा। पाश्चात्य राजनीति पन्द्रह अगस्त को पराजित हो गयी और योरप ने स्वयं समझ लिया कि उसने ईसा के सत्य-सिद्धान्तों को तिलाञ्जलि देकर अपने दम्भपूर्ण आचरण का फल भोग लिया। पन्द्रह अगस्त भारतीय संस्कृति के उत्थान और अभिवृद्धि की वकालत करता है। यदि योरप के यशस्वी कूटनीतिज्ञ टामस वूल्जे की दूरदर्शिता ने 'बैलन्स आफ पावर' की योजना से साम्राज्य-विस्तार की चेष्टा की और उसी नीति का आज तक परिपालन होता चला आ रहा है तो पन्द्रह अगस्त को महात्मा गांधी ने विश्व में सत्य और शांति का संतुलन बनाये रखने के लिये अहिंसा और असहयोग के सफल प्रयोग की नींव डाली।

आज सारे-का-सारा विश्व सन्त्रस्त और आतंकित है। मानवता क्षुब्ध है। अमेरिका और रूस के स्वार्थ एक दूसरे को नीचा दिखाने की चेष्टा कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में भारत केवल शांति की स्थापना में ही श्रेय प्राप्त कर सकता है। विश्व जानता है कि शान्ति-स्थापना गांधीजी के सत्य और अहिंसा के आचरण से ही सम्भव है। अतएव भारत की यह निस्संकोच घोषणा ही नहीं, सहानुभूतिपूर्ण आश्वासन भी है कि जो राष्ट्र विश्व के किसी भी भाग के स्वत्वापहरण का सपना देखता है वह भारत का दुश्मन है, वह ऐसा कर के भारतीय महासागर की गम्भीरता को चुनौती देता है। पन्द्रह अगस्त भारत के लिये ही नहीं सारे विश्व के लिये राष्ट्रीय पर्व है; यह सत्य का पाञ्चजन्य फूंकता है।

कसौटी पर

कब्ज—कारण और निवारण लेखक—महावीरप्रसाद पोद्दार, प्रकाशक—सस्ता-साहित्य मंडल, नई दिल्ली। पृष्ठ संख्या १६० सजिल्द—दाम दो रुपया।

इस पुस्तक के लेखक ने अबतक प्राकृतिक-चिकित्सा पर सैकड़ों लेख लिखे हैं। पर प्राकृतिक चिकित्सा सबंधी स्वतन्त्र पुस्तक के लेखक-रूप में उनका यह पहला ही कदम है। लेकिन आरम्भ में ही लेखक ने उस जरूरी विषय पर अपनी लेखनी उठाई है कि जिससे आज के पढ़े लिखे तथा नगरों में बसनेवाले नर-नारियों में प्रति सैकड़ा नब्बे कष्ट पा रहे हैं।

कब्ज अनगिनत रोगों की जड़ माना गया है। इसे हटाकर मनुष्य अनेकानेक रोगों के पंजे से छूट सकता है। कब्ज से बचे रहकर प्राय सब रोगों से बचा रहा जा सकता है। इस पुस्तक के विचार क्षेत्र से कब्ज का कोई अंग बचा नहीं है। इसके १७ प्रकरणों में मुख्य रूप से ३२ विषयों पर विचार किया गया है।

कठिन विषयों को चित्रों से सरल किया गया है। अनेक स्थानों पर चरक और सुश्रुत के उद्धरण और उनका सरल अनुवाद देकर लेखक ने सिद्ध किया है कि प्राचीन-काल में भी इस सबंध में काफी विचार किया गया था। एनिमा (बस्ति) के सबंध में आयुर्वेद का मत तथा उसके लेने की सरल तथा पूर्ण विधि और उसके सबंध में उठने वाली सब शंकाओं का उत्तर देते हुए लेखक ने विस्तार से समाधान किया है। लेखक का यह दावा सही जान पड़ता है कि हिन्दी ही नहीं भारत की अन्य भाषाओं को देखते हुए भी कब्ज के सबंध में अपने ढंग की यह पहली पुस्तक है। कब्ज जैसे विषय को लेखक ने अपने भाषा-कौशल से कहानी और उपन्यास की भांति रोचक बना दिया है। पढ़ने में पाठक को पुस्तक कहीं से अटपटी नहीं लगती। छपाई-सफाई बहुत सुन्दर है।

हमारे सहयोगी

'बालभारती' केन्द्रीय सरकार की मासिक पत्रिका है। उसके प्रत्येक अंक में कुछ न-कुछ सुपाठ्य सामग्री मिल जाती है। जून का 'वार्षिक अंक' हमारे सामने है। उसमें विविध रुचियों की रचनाएं हैं। रवीन्द्र ठाकुर की 'लुका चोरी' भावपूर्ण कविता तथा सावित्री देवी वर्मा की 'नहले पर दहला' रोचक कहानी हमें विशेषरूप से पसंद आई। जापानी तोमोजी मूतो का मूल हिन्दी में लिखा 'पक्षी द्वारा मछली-शिकार' एक अभिनंदनीय प्रयास है। ब्लादिमीर मिल्तनेर का 'चेकोस्लोवाक डाक टिकटें' बड़ों के लिए भी ज्ञानवर्द्धक है। अंक में अनेक चित्र भी हैं। रंगीन चित्रावली विशेष रूप से आकर्षक है। आवरण-पृष्ठ बड़ा मनोहारी है। —सव्यसाची

हिन्दी जगत के हमारे कई सहयोगी अपनी पत्रिकाओं के विशेषांक प्रकाशित करते हैं। इसी परम्परा के अन्तर्गत अपने १२ वें वर्ष पर "मानव धर्म" का गीताज्ञान नाम से मार्च का अंक निकाल चुका है। इस अंक में श्री दीनानाथ भार्गव 'दिनेश' ने गीता के १३वें, १४वें और १५ वें अध्याय का सरल एवं सुबोध जीवनोपयोगी भाष्य प्रस्तुत किया है। दिनेशजी आल इंडिया रेडियो पर गीता और रामायण की व्याख्या प्रसारित करनेवाले भारत भर के जाने-पहचाने व्यक्ति हैं। मूल श्लोक, पदच्छेद, अन्वय, सरलार्थ और पद्यानुवाद सहित गीता के तीन अध्यायों का यह भाष्य प्रत्येक हिंदी भाषा-भाषी के लिए पठनीय है। योग्य व्याख्याकार एवं पत्रिका के संपादक दिनेशजी का यह प्रयास अभिनन्दनीय है। विशेषांक का मूल्य ४) रु। प्राप्ति-स्थान—मानवधर्म कार्यालय, पीपल महादेव, दिल्ली—६।

विजयगढ़ (अलीगढ़) से प्रकाशित होने वाले 'धन्वन्तरि' ने जनवरी-फरवरी का विशेषांक विष-चिकित्सांक के रूप में निकाला है। गत २७ वर्ष से 'धन्वन्तरि' आयुर्वेद-विज्ञान की उपयोगी सामग्री हिन्दी जगत को देता आ रहा है। अपनी मर्यादा को अक्षुण्ण रखते हुए वर्तमान अंक भी एक अति आवश्यक विषय विष-विज्ञान

पर प्रचुर सामग्री से भरा है। संपादक-मंडल ने विषयों के चुनाव और तरतीब में अपनी विद्वता का परिचय दिया है। किसी एक विशेषांक में इतनी अधिक सामग्री का दिया जाना हिन्दी संसार की विज्ञान-रुचि के साथ-साथ धन्वन्तरि की सुव्यवस्था का द्योतक है। विशेषांक का मूल्य ४) रु० है, जो पाठ्य-सामग्री और गेट अप की दृष्टि से अधिक नहीं। प्राप्ति-स्थान-धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ (अलीगढ)।

'युग-संदेश' का तीसरा अंक 'विनोबा-अंक' के नाम से प्रकाशित हुआ है। संत विनोबा भूदान-यज्ञ-आन्दोलन के प्रणेता के रूप में विश्व मानव को अपनी ओर आकर्षित कर चुके हैं। अहिंसक क्रांति का सूत्रपात करनेवाले विनोबाजी जिस संदेश के वाहक हैं वह यथार्थ में युग-संदेश है और उसी संदेश को उत्तर बुनियादी विद्यालय, श्रीनगर (पूर्णिया) के कर्मीजन घर-घर पहुंचा रहे हैं। भूदान-आन्दोलन को बिहार में अभूतपूर्व सफलता मिली है। कौन कह सकता है कि इसके पीछे बिहार के इन कर्मीजनों का हाथ नहीं जो अपने प्रांत को 'युग-संदेश' द्वारा जगा रहे हैं। अंक का मूल्य १) रु०। वार्षिक मूल्य ५) रु०।

पटना से प्रकाशित 'ग्राम सेवक' (मासिक) पत्रिका का दूसरा अंक हमारे सामने है। भारत की ग्रामीण समस्याओं पर अधिकांश सामग्री देकर एक आवश्यकता को पूरा करने का यह प्रयास अभिनन्दनीय है। हमें हर्ष है कि साहित्यकार अब ग्राम्यजीवन की ओर ध्यान देने लगे हैं। इसमें सुयोग्य संपादक श्री परमेश्वर सिंह का बहुत बड़ा हाथ है, इसमें हिन्दी जगत उनका बहुत आभारी है। एक प्रति का मूल्य ।।=) आना, वार्षिक ६) रु०। भारत जैन महामंडल वर्धा द्वारा प्रकाशित 'जैन जगत' का भ० महावीर-अंक भी अच्छा सम्पादित हुआ है। इस अंक में भगवान महावीर के जीवन-दर्शन और अहिंसा के सिद्धान्त पर विद्वत्तापूर्ण सामग्री है। अंक का मूल्य १) रु०, वार्षिक मूल्य ४) रु०।

—हलीम काश्मीरी

"नई तालीम" का एक साल

"नई तालीम" मासिक को पुनर्प्रकाशित हुए एक वर्ष समाप्त हो गया है।

आरंभ में ही इस पत्रिका के संपादन का भार श्रीमती आशादेवी और मार्जरी साइक्स ने उठाया और प्रबन्ध का भार मुझ दिया गया था। हमने तय किया कि इसे अधिक-से अधिक लोगों के पास पहुंचाने के लिए इस दृष्टि से कि गरीब से गरीब शिक्षक और विद्यार्थी भी इसे खरीद सकें, इसकी कीमत कम-से-कम रखी जाय। इसलिए ३२ + ८ पृष्ठों की इस मासिक पत्रिका का वार्षिक मूल्य तीन रुपये और एक प्रति का चार आने रखा गया। इस वर्ष तो हमने नुकसान उठाया है पर हमें आशा है कि यदि हमें पूरा सहयोग मिला तो दूसरे साल के अंत में यह अपना खर्च स्वयं उठा लेगी।

पत्रिका के लिए लेख-सामग्री जुटाने में हमें हिन्दुस्तानी तालीमी संघ के कार्यकर्ताओं के अतिरिक्त डा० सुशीला नायर, स्वास्थ्य मंत्रिणी, दिल्ली राज्य, श्रीमती शांता बहन नारलकर, श्री आनन्दप्रकाश, फरीदाबाद नई तालीम केन्द्र और श्री बनवारीलाल चौधरी आदि सह-योगियों से बहुत सहायता मिली है। श्री देवीप्रसाद ने बड़े परिश्रम से नई तालीम के लिए कला व रंगमंच सम्बन्धी लेख लिखे हैं।

लेख-सामग्री के चयन में हमने मुख्यतः जो दृष्टिकोण रखे हैं। एक तो यह कि जहां-जहां बुनियादी शिक्षा या सर्वोदय-विचार-धारा की शिक्षा-संस्थायें चलती हैं, उनका कार्य विवरण पत्रिका में छापा जाय, जिससे दूसरे कार्यकर्ताओं को उससे मार्गदर्शन और प्रेरणा मिले। दूसरा उद्देश्य यह रहा है कि नई तालीम के कार्यकर्ताओं को शिक्षा तथा इस सम्बन्धी देश विदेशों के नये प्रयोगों की ओर नये विचारों की जानकारी मिले। जीवन में व्यापक क्रान्ति करनेवाले विनोबाजी के विचारों से पाठकों को परिचित कराने का भी हमारा प्रयत्न रहा है।

इसके अतिरिक्त नई तालीम वास्तव में क्या है तथा उससे और उसके कार्यकर्ताओं से क्या अपेक्षा की जाती है, यह देकर नई तालीम के आलोचकों की भ्रान्ति को नम्रता पूर्वक दूर करने का भी प्रयत्न 'नई तालीम' ने किया है।

हम आशा करते हैं कि उपरोक्त दृष्टिकोण से हम आगे भी पाठकों को उपयोगी सामग्री देते रहेंगे।

—रामकिशोर 'पाषाण'

क्या व कैसे ?

राजाजी की नई सूझ

श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य बहुमुखी प्रतिभा वाले व्यक्ति हैं। देश के हित में नित्य कुछ-न-कुछ सोचते और करते रहते हैं। मद्रास के मुख्यमंत्री के रूप में उन्होंने कन्ट्रोल उठाकर उस सम्बन्ध में जो बड़ा कदम रक्खा, वह अन्य किसी के लिए शायद ही सम्भव होता। लोगों ने जब उनसे कहा कि आपको कण्ट्रोल पुनः चालू करना होगा तो उन्होंने दृढ़तापूर्वक स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि कण्ट्रोल को फिर से चालू करने की नौबत आई तो मैं इस पद पर नहीं रहूंगा।

इधर उनका ध्यान शिक्षा की ओर गया है और उन्होंने मद्रास प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों के लिए एक सूझभरी योजना तैयार की है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य बौद्धिक विकास के साथ-साथ काम धंधे के प्रति प्रेम उत्पन्न करना, काम के द्वारा जीवन को समझना और ग्रामीण उद्योगों को आगे बढ़ने के लिए अपने अंदर बौद्धिक योग्यता एवं शारीरिक क्षमता उत्पन्न करना है। इस योजना के अनुसार तीन मुख्य बातें होंगी ? १ विद्यार्थी केवल तीन घंटे स्कूल में पढ़ेंगे। २ आधा दिन अपने अपने परिवार के साथ पारिवारिक धंधों में काम करेंगे और ३ जिन विद्यार्थियों के परिवार में कोई उद्योग-धंधा नहीं होता, उन्हें किसी कारीगर या किसान के पास या उद्योग में काम करने का अवसर मिलेगा।

इस नई योजना को स्पष्ट करते हुए राजाजी ने कहा, "आज ऐसे लाखों लोग हैं, जो शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकते और विभिन्न उद्योग धंधों में लगकर किसी प्रकार अपनी जीविका चलाते हैं। राष्ट्र की उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि इन उद्योग-धंधों को अधिक कार्यक्षम बनाया जाय। ऐसा करने के लिए बेहतर कदम यह होगा कि इन उद्योग-धंधों और कारीगरों का ज्ञान बढ़ाया जाय। इस नई योजना में विद्यार्थी उद्योग भी सीखेंगे और साधारण ज्ञान बढ़ाकर अपने मस्तिष्क का विकास भी कर सकेंगे। यह होने पर वे अपने उद्योग में नई-नई खोज और सुधार करने में समर्थ होंगे।"

निस्सन्देह यह योजना एक नया कदम है। इसका प्रयोग मद्रास प्रदेश में अगले साल से होने जा रहा है। परिणाम क्या होगा, यह तो उसे चलानेवाले शिक्षाधिकारियों की लगन, निष्ठा और परिश्रमशीलता पर निर्भर करेगा, फिर भी हमारा विश्वास है कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली की अपेक्षा यह पद्धति कहीं अधिक सामयिक, राष्ट्रोपयोगी एवं लोकहितकारी है। आज जो शिक्षा स्कूल, कालेजों और विश्वविद्यालयों में दी जा रही है, उसकी निरर्थकता इसी बात से सिद्ध है कि ऊंची-से-ऊंची डिगरी प्राप्त युवक भी नौकरियों के लिए मारे-मारे फिरते हैं। उनकी योग्यता और कार्यक्षमता के बारे में तो कुछ न कहना ही अच्छा है। हमें आश्चर्य होता है और दुःख भी कि देश के स्वतंत्र हो जाने पर भी हम शिक्षा के मामले में बहुत-कुछ पहले की तरह गुलामी के शिकंजे में कसे हुए हैं। ऊपरी बातों पर बहसें होती हैं, भाषा को लेकर लड़ाई-झगड़े होते हैं; पर बुनियादी बातों पर या तो ध्यान नहीं जाता या जान-बूझ कर उनकी उपेक्षा की जाती है। हम पूछते हैं कि आखिर ६ घंटे तक विद्यार्थियों को स्कूलों में भेड़-बकरी की तरह घेर कर, उन्हें ऐसे विषय पढ़ाकर, जिनका हमारे जीवन, हमारे रहन-सहन और हमारी परिस्थितियों से कोई संबंध नहीं है, गरीब मां-बापों के हजारों रुपये स्वाहा कराकर और विद्यार्थियों को काम-चोर और तर्क-शूर बना कर निकालने में कौन बड़ा भारी हित साधा जा रहा है ? हम पहले भी दो-एक बार निवेदन कर चुके हैं और अब पुनः निवेदन करते हैं कि यदि व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की दृष्टि से उपयोगी शिक्षा-क्रम तैयार नहीं किया जा सकता और उसपर अमल नहीं होता तो स्कूल-कालिजों को बंद कर देना ही देश की सेवा

होगी। शिक्षा का अर्थ होता है ऐसे नागरिक तयार करना, जो अपने चरित्र-बल, ज्ञान-बल और शरीर-बल से देश को ऊंचा उठावें, न कि स्वय देश के लिए सिरदर्द बन जाय।

हम शिक्षाधिकारियो, शिक्षा-विशेषज्ञो एव देश के कर्णधारो से अनुरोध करेगे कि वे इस ओर जल्द-से-जल्द ध्यान दें और लकीर के फकीर न बनकर शिक्षा के मामले में कोई क्रांतिकारी कदम उठावें। राजाजी की नई शिक्षा-योजना का हम हार्दिक स्वागत करते हैं और चाहते हैं कि उस पर अन्य स्थानो मे भी अमल हो।

विनोबा का आवाहन

भूदान यज्ञ को सफल बनाने के लिए विनोबाजी ने अपने प्राणो की बाजी लगा रक्खी है। गाधीजी ने 'करेंगे या मरेंगे' का मंत्र देश को दिया था। विनोबा उसी मार्ग पर चल पड़े हैं। शरीर काम नही दे रहा है, ज्वर बार-बार हैरान करता है, फिर भी वह प्रभु-कृपा का सबल लेकर असीम निष्ठा के साथ अपने काम मे जुटे हुए है।

पिछले अक में हमने लिखा था कि भू-दान यज्ञ अब एक देश-व्यापी आदोलन बन गया है। देश के कोने-कोने में उसकी हलचल फैल गई है। परन्तु समस्या इतनी बडी है कि उसे अधिक-से-अधिक लोगो का विवेकपूर्ण सहयोग चाहिए। स्पष्ट हो गया है कि यह आदोलन मात्र भूमि के समवितरण का आदोलन नही है, वरन् समाज एव राष्ट्र के नव-निर्माण का आदोलन है। राजनैतिक आजादी मिल जाने से कोई राष्ट्र स्वतत्र नही हो जाता, सच्ची स्वतत्रता तो तब प्राप्त होती है, जब उसका उल्लास उस देश के कोटि-कोटि व्यक्तियो के जीवन से फूटने लगता है। विनोबा उसी स्वतत्रता को लाने के लिए प्रयत्नशील हैं। वह चाहते हैं कि मानव मानव के बीच आज जो खाई पैदा हो गई है, वह दूर हो, सबको जीने और विकास के समान अधिकार प्राप्त हो और एक को अधिकार या सुख-सुविधा से वचित कर दूसरे स्वार्थ-परायण जीवन व्यतीत न करे। वह समाज की प्रतिष्ठा नैतिक मूल्यो के आधार पर स्थापित करना चाहते हैं, धन, पद या सत्ता की बुनियाद पर नही। सक्षेप मे, वह वर्तमान समाज का रूप ही बदल देना चाहते हैं।

भूदान यज्ञ मे उस परिवर्तन की शक्ति विद्यमान है। वह बुद्धि और कर्म मे सामजस्य स्थापित करता है, छोटे-बडे का भेद दूर करता है, पद-प्रतिष्ठा के स्थान पर श्रम को प्रतिष्ठित करता है और सबसे बडी बात यह कि वह धरती से हमारा गहरा सबध जोडता है। इसीसे हम कहते हैं कि इस आदोलन की बडी सभावनाएं हैं। गाधी-परम्परा की यह एक मजबूत कडी है।

काम बडा है और इसीसे विनोबाजी ने देश के समस्त व्यक्तियो और शक्तियो का आवाहन किया है। 'एकै साधे सब सधै' के सिद्धान्त के अनुसार वह कहते हैं कि आओ, सब इस काम मे जुट जाओ। इस एक के सहारे अन्य अनेक काम अपने आप हो जायगे।

विनोबाजी के ये शब्द प्रत्येक देशवासी के लिए मानो चेतावनी-स्वरूप हैं।

हम आशा करते हैं कि विनोबाजी की इस पुकार की प्रतिध्वनि देश के अगणित हृदयो में होगी और इस महान् कार्य को देश के असख्य व्यक्तियो का बल मिलेगा।

एक नया दान

भूदान-यज्ञ के प्रारभ में विनोबाजी ने कहा था कि मेरा यह अनुष्ठान नदी की भाति है, जो अपने उद्गम स्थल पर छोटी होती है, लेकिन अपने प्रवाह के साथ व्यापक होती जाती है। बात सही निकली। भूदान-यज्ञ का प्रारभ भूमि के दान से हुआ था। बाद में उसमे हलदान, बैलदान, कूपदान आदि आकर मिले, फिर श्रमदान आया, अनंतर सम्पत्ति-दान, औजार-दान और अब एक नया दान उसमें आ सम्मिलित हुआ है। वह है बुद्धि-दान। सूरत के एक वकील महोदय ने घोषणा की है कि वहा की भूदान-यज्ञ समिति जिन पाच मुकदमो का निर्देश करेगी, उनकी वह बिना फीस लिए पैरवी कर देंगे।

भूदान-यज्ञ की मदाकिनी इस प्रकार अनेक धाराओं में प्रवाहित होती जा रही हैं। इसमे सदेह नही कि ज्यो-ज्यो इस यज्ञ का प्रवाह तीव्र होगा, नित्य नई धाराए खुलती जायगी। आश्चर्य नही कि एक दिन राष्ट्र का सम्पूर्ण जीवन इस यज्ञ में समाविष्ट हो जाय। वह दिन देश के लिए सचमुच बडे सौभाग्य का दिन होगा।

गांधी-स्मारक—

राजघाट पर गांधीजी के प्रस्तावित स्मारक का मॉडल समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुआ है। देखने में वह बड़ा सुन्दर प्रतीत होता है और सुन्दर हो भी क्यों नहीं। जाने कितने इंजीनियरों आदि के दिमाग उसमें लगे होंगे। उसीके आधार पर राजघाट को नया रूप देने का विचार किया जा रहा है। अच्छा स्मारक बने, दुनिया की निगाह में यह ठीक ही है, लेकिन इस संबंध में जरा उस व्यक्ति की भावना को देख लेना चाहिए, जिसकी स्मृति में यह तैयार किया जा रहा है। अपनी मृत्यु से लगभग साढ़े चार मास पूर्व १३ सितम्बर, १९४७ को गांधीजी ने 'मेरी मूर्ति' शीर्षक से लिखा था, "मुझे कहना होगा कि मुझे मेरा फोटो भी पसंद नहीं। कोई मेरा फोटो खींचता है तो मुझे अच्छा नहीं लगता। . . . अगर कोई पैसे खर्च करके मेरी मूर्ति खड़ी करने की बात करता है तो यह मुझे अच्छा नहीं लग सकता और खास करके इस वक्त, जबकि लोगों को खाने को अनाज नहीं मिलता, पहनने को कपड़े नहीं मिलते, हमारे घरों में गलियों में गंदगी है, बस्तियों में इन्सान किसी तरह जिन्दगी बिता रहे हैं। सब शहरों को कैसे सजाया जा सकता है? इसलिए मेरी सच्ची मूर्ति तो मुझे रुचनेवाले काम करने में है। . . . कल्पना कीजिये कि इतने रुपये अगर अधिक अनाज पैदा करने में लगाये जायं तो कितने भूखों का पेट भरे।"

इससे दो बातें स्पष्ट हैं। पहली यह कि गांधीजी अपने भौतिक स्मारक के अधिक पक्ष में नहीं थे। दूसरे, अपना सच्चा स्मारक वह अपनी रुचि के काम करने में मानते थे।

राजघाट देश-विदेश के लिए आकर्षण और श्रद्धा का महान केन्द्र बन गया है। वहां एक सुरुचिपूर्ण, पर सीधा-सादा स्मारक हो तो कोई हानि नहीं है, पर असली स्मारक तो वह तब बनेगा जब वहां गांधीजी की रचनात्मक प्रवृत्तियां जोरों से चलेंगी। आज तो वहां वैसा कुछ भी नहीं है। लोग आते हैं, अपनी श्रद्धा के पुष्प अर्पित कर जाते हैं, पर उन्हें गांधीजी के दर्शन नहीं होते।

हम गांधी स्मारक के अधिकारियों और गांधी स्मारक निधि के संचालकों से अनुरोध करेंगे कि वे भौतिक स्मारक की योजना के साथ-साथ ऐसी योजना भी बनावें, जिससे राजघाट गांधीजी की समस्त रचनात्मक प्रवृत्तियों का प्रमुख केन्द्र बन जाय। यदि गांधीजी को जीवित रखना है [illegible] को

भारतीय संस्कृति के प्रेमी श्री कन्हैयालाल माणेकलाल मुन्शी ने आज से कई वर्ष पूर्व 'वन-महोत्सव' का श्री-गणेश किया था। अब प्रतिवर्ष यह उत्सव मनाया जाता है। निस्सन्देह इस अनुष्ठान की मूल भावना हमारी प्राचीन संस्कृति के अनुरूप है और हमारे राष्ट्रीय कल्याण की दृष्टि से भी यह समयोपयोगी है। आज रेगिस्तान कितनी तेजी से फैलता जा रहा है, यह किसीसे छिपा नहीं है। वन वृक्षों के महत्व के विषय में दो मत नहीं हो सकते। यदि हम चाहते हैं कि हमारा देश मरुस्थल बनने से रुके, समय पर वृष्टि हो और हमारा उत्पादन पानी के अभाव में कम न हो तो हमें सारे देश को हरे-भरे वृक्षों से आच्छादित कर देना होगा।

वन-महोत्सव अच्छा है, पर हमें लगता है कि अधिकांश स्थानों पर फैशन के रूप में उसे मनाया जाता है। वृक्षा-रोपण का अर्थ होना चाहिए पौधों की रक्षा करना और जबतक वे बड़े न हो जायं, उनकी उसी तरह देखभाल करना जैसे बच्चे की जाती है। लेकिन वैसा नहीं होता। पौधा लगाया कि जिम्मेदारी खत्म। यही कारण है कि अधिकांश पौधे नष्ट हो जाते हैं। वन महोत्सव का दूसरा अर्थ होना चाहिए मौजूदा वृक्षों के प्रति सम्मान और उनकी सुरक्षा। लेकिन कौन नहीं जानता कि हजारों-लाखों पुराने पेड़ काट काट कर गिरा दिये गये हैं, जंगल-के-जंगल साफ कर दिये गये हैं। एक ओर बड़े-बड़े पेड़ों पर कुल्हाड़ी चलाना और दूसरी ओर पौधे लगाना, हास्यास्पद-सा लगता है। यदि हम सच्चे अर्थों में इस उत्सव को मनाना चाहते हैं तो हमें निश्चय करना होगा कि हम पेड़ रोप कर ही संतोष नहीं कर लेंगे, बल्कि एक भी हरा-भरा पेड़ नहीं कटने देंगे। पेड़ों पर कुल्हाड़ी मारने का मतलब है अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारना। जबतक यह भावना हमारे दिल में घर न कर जायगी तबतक

वृक्षारोपण का प्रयोजन सिद्ध नही होगा ।

हम यह भी देखते हैं कि जहा पेडो की आवश्यकता नही है, उत्सव के उत्साह में वहा भी पेड लगाये जाते हैं । यह धन और शक्ति का अपव्यय नहीं तो क्या है ?

इसलिए वन-महोत्सव की मूल भावना के प्रति अपना सम्मान प्रकट करते हुए हमारा निवेदन है कि जो पेड लगाये जायें, उनकी रक्षा की जाय, जीर्ण पेडो को छोड कर शेष का काटना अक्षम्य अपराध माना जाय और पेड वहीं रोपे जायें, जहा उनकी आवश्यकता हो । यह भी आवश्यक है कि 'वन-महोत्सव' के सप्ताह में एक दिन यह देखने के लिए दिया जाय कि पिछले वर्ष में लगाये गए कितने पौधे सुरक्षित रहे और कितने नष्ट हो गये । अन्न की समस्या अब भी पूर्णतया हल नहीं हो पाई है । इसलिए जो पेड लगाये जायें उनमें अधिकाश फलोवाले हों तो उनसे 'एक पंथ दो काज' वाली कहावत चरितार्थ होगी ।

जन-संघ का आंदोलन स्थगित

जनसघ, हिन्दूमहासभा आदि की ओर से इधर-जम्मू-काश्मीर में जो आंदोलन चल रहा था, डा० श्यामाप्रसादजी की मृत्यु के बाद अब उसे स्थगित कर दिया गया है । हमारी राय थी कि यह आंदोलन न सामयिक था, न कल्याणकारी और उसने काश्मीर की घटिल स्थिति को और विकट बना दिया । साम्प्रदायिकता के इस नारे ने वहा भी साम्प्रदायिकता के स्वर को ऊंचा कर दिया । शेख अब्दुल्ला को कहना पड़ा कि काश्मीर पर अविश्वास करके हिन्दुस्तान उससे विश्वास की आशा नही कर सकता । शेख साहब का यह कथन एक क्रिया की प्रतिक्रिया ही है, यद्यपि उससे सारे देश को आश्चर्य और दुःख हुआ है ।

काश्मीर की समस्या कितनी नाजुक है, यह बताने की आवश्यकता नही है । भारत की धर्म-निरपेक्ष स्थिति का तो तकाजा है ही, पर उससे भी अधिक काश्मीर की स्थिति का तकाजा है कि हमारे देश में सबके साथ समान व्यवहार हो ।

यदि काश्मीर को भारत के साथ रखना है तो हमें बडी सावधानी के कदम उठाना होगा । जन-सघ के आंदोलन को स्थगित करने के निश्चय को हम एक बुद्धिमत्तापूर्ण बात मानते हैं और आशा करते हैं कि ये संस्थायें आगे भी विवेक से काम लेंगी ।

—म०

(पृष्ठ ३१८ का शेष)

छप रही हैं । इनकी सूचना पाठको को समय-समय पर मिलती रहेगी ।

'मण्डल' का कार्य अब तेजी से फैल रहा है, पर हम जानते हैं कि हमें अपने उद्देश्य में सफलता तभी मिलेगी जब पाठकों का सहयोग हो । इसलिए हम समस्त हिन्दी-प्रेमियो से अनुरोध करते हैं कि वे पुस्तकों के प्रसार में हमारी सहायता करें ।

सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन

'सर्व-सेवा-संघ' के सहयोग से 'सर्वोदय-साहित्य' के प्रकाशन की इधर एक योजना बनी है, जिसमे २५ पुस्तकें निकलेंगी । एक पुस्तक निकल चुकी है—'सर्वोदय के सेवकों से', जिसमे चाडिल की कार्यकर्त्ता-सभाओ में दिये गए विनोबाजी के भाषण हैं । आगामी दो पुस्तकें होंगी—'नई क्रान्ति' और 'नई क्रान्ति के गीत' । पहली में भूदान और उसके विकास के बारे में सामग्री रहेगी, दूसरी में भूदान-संबधी संगीत । चार आने मूल्य की यह माला भी पठनीय एवं संग्रणीय है ।

—मंत्री

Regd. No. D. 228

घर का अंधकार
दूर करने के लिए प्रकाश चाहिए
पर
घर को सुसंस्कृत और समुन्नत बनाने के लिए

उससे भी आवश्यक है



हिन्दी का स्वस्थ, सात्विक एवं सस्ता मासिक पत्र

वार्षिक शुल्क केवल ४)



चाहे तो पहले एक कार्ड भेजकर नमूना मंगा कर देख लें।
जुलाई और जनवरी से ग्राहक बनाये जाते हैं।

सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली द्वारा नवजीवन प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली में छपाकर प्रकाशित।

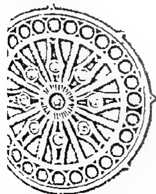
सितम्बर १९५३

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन



हमारे उपराष्ट्रपति मनीषी राधाकृष्णन
जिनकी ६५ वीं वर्षगांठ ५ सितम्बर को मनाई जा रही है

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय
यशपाल जैन



जीवन साहित्य

आत्मिक जागरूकता का साहित्य

'जीवन-साहित्य'

सितम्बर १९५३

लेख-सूची

नियम

१ 'जीवन साहित्य' प्रत्येक मास के पहले सप्ताह में प्रकाशित होता है। १० तारीख तक अंक न मिले तो अपने यहां के पोस्टमास्टर से मालूम करें। यदि अंक डाकखाने में न पहुंचा हो तो पोस्टमास्टर के पत्र के साथ हमारे कार्यालय को लिखें।

२ पत्र व्यवहार में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य दें। उससे कार्रवाई करने में सुगमता और शीघ्रता होती है।

३ ग्राहक पूरे वर्ष के लिए बनाये जाते हैं।

४ बहुत से लोग ग्राहक किसी नाम से होते हैं और अपना चंदा किसी नाम से भेजते हैं। इससे गड़बड़ी हो जाती है। इस सम्बन्ध में मनीआर्डर के कूपन पर स्पष्ट सूचना होनी चाहिए।

५ पत्र में प्रकाशनार्थ रचनाएं उसके उद्देश्य के अनुकूल भेजी जाय और कागज के एक ही ओर साफ साफ अक्षरों में लिखी जाय।

६ अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए साथ में आवश्यक डाक टिकट आने चाहिए।

७ समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां भेजी जाय।

८ पत्र के ग्राहक जुलाई और जनवरी से बनाये जाते हैं। बीच में रुपया भेजनेवालों को सूचना दे देनी चाहिए कि उन्हें पिछले अंक भेज दिये जाय या आगे से ग्राहक बनाया जाय।

—व्यवस्थापक

निवेदन

हमारे अनेक पाठकों ने प्रेमभरी शिकायत की है कि 'जीवन-साहित्य' की पृष्ठ-संख्या कम है। कुछ और पृष्ठ बढ़ा दिये जाय। इन तथा अन्य मित्रों से हमारा विनम्र निवेदन है कि हम लोग पत्र को सब प्रकार से उन्नत बनाने के लिए प्रयत्नशील हैं, लेकिन जबतक ग्राहकों की संख्या न बढ़े तबतक यह कैसे सम्भव हो ? पिछली जनवरी से हमने आठ पृष्ठ बढ़ाकर भी वार्षिक शुल्क वही रखा था। पाठक जानते हैं कि 'जीवन साहित्य' को विज्ञापनों की आमदनी नहीं है और वह ग्राहकों के सहारे ही चल रहा है। प्रति वर्ष कुछ-न-कुछ घाटा हो जाता है। यदि ५००० ग्राहक हो जाय तो पत्र अपने पैरों पर खड़ा हो जायगा और उसके कलेवर तथा पृष्ठों में भी वृद्धि हो जायगी।

अपने पाठकों और ग्राहकों से हमारा अनुरोध है कि वे ग्राहक बनाने में हमारा हाथ बटाने की कृपा करें। देश में हिन्दी-भाषियों की संख्या २० करोड़ है। उसे देखते ५००० ग्राहक बनाना कठिन नहीं है।

—यशपाल जैन, सम्पादक

उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, हिमाचल प्रदेश, मध्यभारत तथा बिहार प्रादेशिक सरकारों द्वारा
स्कूलों, कालेजों व लाइब्रेरियों तथा उत्तरप्रदेश की ग्राम-पंचायतों के लिए स्वीकृत

जीवन-साहित्य

अहिंसक नवरचना का मासिक

वर्ष १४] सितम्बर १९५३ [अंक ९

अपना प्यारा कौन ?

कोसलराज प्रसेनजित्, जहां भगवान् थे वहां आया और उनका अभिवादन करके एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठ कर कोसलराज प्रसेनजित् ने भगवान् से यह कहा, "भन्ते! अकेला बैठ कर ध्यान करते समय मेरे मन मे ऐसा वितर्क उठा—किनको अपना प्यारा है और किनको अपना प्यारा नही ? भन्ते ! तब मेरे मन में यह हुआ—जो शरीर से दुराचार करते है, वचन से दुराचार करते है, मन से दुराचार करते है, उनको अपना प्यारा नहीं है। यदि वे ऐसा कहें भी—मुझे अपना प्यारा है, तो भी सचमुच में उनको अपना प्यारा नही है। सो क्यों ? जो शत्रु, शत्रु के प्रति करता है, वही वे अपने प्रति आप करते है, इसलिए उनको अपना प्यारा नही है। और जो शरीर से सदाचार करते है, वचन से सदाचार करते हैं, मन से सदाचार करते है, उनको अपना प्यारा है। यदि वे ऐसा कहें भी—मुझे अपना प्यारा नहीं है, तो भी सचमुच उनको अपना बड़ा प्यारा है। सो क्यों ? जो मित्र, मित्र के प्रति करता है, वही वे अपने प्रति आप करते हैं, इसलिए उनको अपना बड़ा प्यारा है।"

"महाराज! यथार्थ में ऐसी ही बात है। जो शरीर से दुराचार करते हैं, उनको अपना प्यारा नहीं है और जो शरीर से सदाचार करते है, उनको अपना बड़ा प्यारा है।

जिसे अपना प्यारा है वह अपने को पाप में मत लगावे,
दुष्कर्म करनेवालों को सुख सुलभ नहीं होता॥"

(संयुत्त निकाय ३. १.४)

निवृत्त जीवन और सर्वोदय

विनोबा

रांची जिले में यह हमारा दूसरा मर्तबा आगमन हुआ है। छः महीने पहले हम यहां से गुजरे थे और उस वक्त हमारे साथ आपके गांव के राजा साहब भी थे। उस वक्त उन्होंने अपनी जमीन का एक हिस्सा दान में दिया था। हमारे साथ वे पैदल घूमे। तबसे उनका और हमारा हृदय-संबंध बन गया। फिर इस जिले से दूसरे जिले में जाने के समय हमने इस जिले के काम के लिए एक समिति बना दी। उसमें राजा साहब ने अपना नाम मान लिया यह सन्तोष की बात है। अब हम दुबारा आये हैं, परन्तु तभी से हमारे मन में था कि पालकोट जायेंगे। यह बारिश के दिन हैं इसलिए लोग सूचना करते थे कि गुमला से रांची जाइये, क्योंकि यहां आने में चार दिन ज्यादा लग जाते थे। पर मेरी इच्छा थी कि मैं एक दफा यहां जरूर आ जाऊं वैसे तो राजासाहब की भी इच्छा थी, लेकिन वे तो मेरे चार दिन बचाने के लिए अपनी इच्छा को छोड़ सकते थे मेरी ही तीव्र इच्छा थी कि एक बार आ जाऊं।

वैसे दान तो हमें बहुत से दाताओं से मिले हैं और हृदय से मिले हैं। अपना सर्वस्व-दान तो छोटों ने भी दिया है और बड़ों ने भी दिया है। ऐसे सैकड़ों उदाहरण बने हैं। फिर भी हमारे मन में दूसरा विचार आता है। जो दान देते हैं और पूरे दिल से देते हैं, वे तो बड़ा काम करते ही हैं, परन्तु हम एक दूसरी बात चाहते हैं। हृदय-परिवर्तन के साथ-साथ दूसरा कदम है जीवन-परिवर्तन। राजासाहब ने हृदय-परिवर्तन का सबूत पेश किया ही है। उन्होंने पहले जमीन दी थी, अभी भी बहुत दी है। उसके साथ-साथ उन्होंने जीवन-परिवर्तन भी किया है। अब वे गांव-गांव घूमने लगे हैं, उन्होंने यज्ञ का झंडा उठाया है। अभी उनके घर में खादी ने प्रवेश किया है। घर की स्त्रियां भी कातने लगी हैं। यह जीवन-परिवर्तन है। ऐसे जीवन-परिवर्तन से उनका हमारे हृदय से निकट का संबंध बन गया, केवल एक सार्वजनिक कार्यकर्ता के नाते नहीं, लेकिन एक साधना करनेवाले साधक की दृष्टि से। इसलिए मेरी यहां आने की इच्छा थी। और हम यहां आये हैं, इसलिए मुझे बहुत आनन्द हो रहा है।

आज बारिश हुई, लेकिन मुझे कोई तकलीफ नहीं हुई। उलटा मेरे आनंद में वृद्धि हो गई। परन्तु हमारा विश्वास है कि परमेश्वर की अपार कृपा-वृष्टि हुई है। इसमें हमें कोई नुकसान नहीं हुआ है, बल्कि लाभ हुआ है। परमेश्वर की अपार कृपा-वृष्टि होती है उसमें हमें आनंद होना है, पर हमारा शरीर कमजोर है, इसलिए उससे बचने की जरूरत होती है। पलामू जिले में जब हम घूमते थे तब वहां बहुत गर्मी थी, लेकिन उसमें भी आनंद होता था। सूर्यनारायण तपता है, तो उसके साथ-साथ हृदय की शुद्धि होती है। इस तरह सारी सृष्टि हमारी रक्षक देवता है। इसलिए कमजोर शरीर के बावजूद भी हम हजारों मील घूम सकते हैं। आज बारिश थी हमें आनंद हुआ। ऐसा लगा कि हम पालकोट आ रहे हैं, इससे भगवान को खुशी है, इसलिए वह बारिश बरसा रहा है, कृपा बरसा रहा है।

पहला कदम हृदय-परिवर्तन का, दूसरा है जीवन-परिवर्तन का और फिर तीसरा कदम शुरू होता है समाज-परिवर्तन का। तो हम उम्मीद करते हैं कि आपके इस गांव में समाज-परिवर्तन होगा। जहां एक अच्छे कार्यकर्ता, सेवक और ईश्वर के पुजारी यज्ञ की दीक्षा लेकर तैयार हुए हैं, जहां राजासाहब-जैसे आदमी होते हैं वहां का समाज वैसे-का-वैसा नहीं रह सकता। वहां समाज-परिवर्तन हुए बगैर नहीं रह सकता। वहां यह काम करना चाहिये, कोशिश करनी चाहिए। हम चाहते हैं कि पालकोट एक आदर्श गांव बने और सर्वोदय का दृश्य हम यहां देखें। भूदान-यज्ञ सर्वोदय-समाज का एक छोटा-सा काम है। असली काम यह यज्ञ समाप्त होने के बाद का है—समाज-स्थापना। अभी तो पहला कदम है। उसके बाद बहुत काम करना है। हम सारी सृष्टि को हरि-रूप देखना चाहते हैं। सारे धर्म का यही निचोड़ है और संतों ने हमें सिखाया

है कि हमारे सामने जो सृष्टि हम देखते हैं वह मारा एक नाटक हो रहा है। सारे इस नाटक के पात्र हैं। परमेश्वर ने यह स्वांग रचा है। एक खेल उसने शुरू किया है। तो हमारे जीवन का यह उद्देश्य होना चाहिये कि हम शरीर वाणी और प्राण से परमेश्वर की सेवा करें और सर्वत्र उनका रूप देखें। वैसे दुनिया में कुछ-न-कुछ सेवा होती है। घर में बाल-बच्चे माता-पिता की सेवा करते हैं और माता-पिता बाल-बच्चों की, यह सेवा का पहला सबक है। इसलिए तो समाज टिका हुआ है, लेकिन इतनी सेवा में हम प्रसन्न नहीं होते, इतने में हमारा काम नहीं होता। यह तो पहला काम है। स्कूल में बच्चा पहला सबक सीखता है, तो उतने से वह विद्वान नहीं होता। वैसे आज जो सेवा की जाती है, सेवा का आरंभ मात्र ही है। उससे हमें यह नहीं समझना चाहिए कि हमने जीवन का उद्देश्य सफल किया। वह तो तब सफल होगा कि हमारे सामने जो भी प्राणी है, उसे हरि-रूप में देखें और हरि समझकर उसकी सेवा करें। हर एक मां अपने बच्चे की सेवा करती है। वैसे ही कौशल्या ने भी अपने बच्चे की सेवा की; परन्तु कौशल्या और यशोदा को यह दर्शन हुआ था कि मैं अपने बच्चे के रूप में परमात्मा की सेवा कर रही हूं। सीता ने राम से प्रेम किया। वैसे हर एक पत्नी पति से प्रेम करती है, परन्तु सीता ने जो प्रेम किया, वह राम को परमेश्वर के रूप में देखकर किया। इसलिए इसका गायन वाल्मीकि ने किया, नहीं तो वैसी सेवा घर-घर में चलती है, और उसकी कीमत कम नहीं है। जिसकी सेवा करनी है उसको हरि-रूप में देखना चाहिए। उसी से चित्त-शुद्धि होती है। सर्वोदय-समाज के मानी है जितने भी प्राणी हैं सब हरि-रूप हैं। कोई छोटा नहीं और कोई बडा नहीं।

आपके घर में परमेश्वर की मूर्ति छोटी है और राजा-साहब के मंदिर में जो मूर्ति है वह बडी है, तो क्या आप यह कहेंगे कि यह मूर्ति छोटी है? नहीं, यह मूर्ति आकार में छोटी है, परन्तु दो परमेश्वर नहीं हैं। वह तो एक ही है। एक ही मनुष्य की दो तसवीरें हैं, तो छोटी तसवीर में भी बडी शकल रहती है। परमेश्वर है—उसके यह दो चित्र हैं। वैसे ही दुनिया में कोई पढा-लिखा है, कोई अपढ, किसी के गुण अधिक- किसी के कम, कोई कुरूप वैसे तरह-तरह के स्वांग या रूप हैं, परन्तु वे सारे एक ही भगवान के हैं। इसीलिए उसमें कोई ऊंच नहीं, कोई नीच नहीं। वे सब बराबर हैं, यह समझना चाहिये और उसके अनुसार समाज का ढांचा बनाना चाहिए। उसीके अनुसार सर्वोदय-समाज बन सकता है। आसमान में जो सितारे हैं वह हमें कोई छोटे और कोई बड़े दीखते हैं, लेकिन ज्योतिष जानने वाले कहते हैं कि जो छोटे दीखते हैं वे वास्तव में बड़े हैं, और जो बड़े दीखते हैं वे वास्तव में छोटे हैं। लेकिन हम कहते हैं कि जो सारे सितारे हैं वे एक ही के विविध रूप हैं। गांव के लोग हमारे स्वामी हैं। भगवान के रूप हैं। उनकी सेवा करनेवाला हर कोई अपने को सेवक समझेगा। लोग मुझे पूछते हैं कि सर्वोदय-समाज का असली रूप क्या है? समाज को हरि-रूप समझेगा तो सर्वोदय समाज का रूप पूरा होगा। सर्वत्र हरि-रूप देखना चाहिए और उसके अनुसार दुनिया की सेवा हमें करनी चाहिए। ऐसा स्वरूप हम पालकोट में देख सकें। गांववालों से हमें पूछना चाहिये कि यहां कोई भूखा है क्या? अगर कोई है तो उसे खिलाकर ही हम खायें। यहां कोई दुखी नहीं रहेगा। सब एक-दूसरे की चिंता करेंगे। चाहे वह हरिजन हो, मेहतर भी हो, यदि बीमार हो तो उसकी सेवा के लिए यहां सब दौड़ेंगे। जात-पात, यह सब ऊपर के भेद हैं। वह तो देह के साथ जाते-आते हैं। आत्मा के साथ नहीं। आत्मा शुद्ध मंगल है। वह न चमार है न ब्राह्मण है, न हिंदू है न मुसलमान है। उसका वर्णन करने के लिए हमारे पास शब्द नहीं। वही आत्मा यह रूप लेकर हमारे सामने आता है। अगर उसे कहते हैं 'तू अछूत है', तो हमने हमारा धर्म नहीं समझा, ऐसा कहा जायगा। इस तरह हम मानव का तिरस्कार करें तो हमने अपना धर्म नहीं समझा। तुलसीदास रामायण सुनाते थे, तो कोई कोढी मनुष्य आता था। लोग तिरस्कार करते थे, और कहते थे, कोढी आता है। तुलसीदास ने कहा कि यह कोढी नहीं है। यह तो रामायण सुननेवाला है। यह कोढी नहीं हो सकता। आखिर में उन्हें साक्षात्कार हुआ कि वह तो हनुमान ही रामायण सुनने आता था। उन्होंने वैसा भाव रखा था। अगर

उन्होंने उसका तिरस्कार किया होता, उसे भगा देते, तो वह उठकर चला जाता, परन्तु तुलसीदासजी अपना दर्शन गवा देते। लेकिन उन्होंने पहचाना कि यह भगवान है। परमेश्वर हमारे सामने इस कोढी के रूप में है।

अब आपको क्या मालूम कि आपके गाव में जो मेहतर है वह हनुमान नहीं है, पापी है ? वह छिपकर परमेश्वर के रूप में आया हुआ है। इसीलिए हमें तो सेवा करनी चाहिए। जो शक्ति हमें परमेश्वर ने दी है, उससे हम को छूटना चाहिये, मुक्त होना चाहिए। मुक्ति का मतलब है छूटना लिप्त होना नही।

हम सिर्फ भूमि का दान नही मागते। हम तो कहते हैं कि उसके साथ-साथ यह भाव छोड दो कि हम भूमि के मालिक है। ऐसा जो मानते है उन लोगों को यह बात छोडनी चाहिए। यह मेरा घर, मेरी संपत्ति, ऐसी भावना छोड दो। अगर बाहर बारिश हो रही है, तो क्या हम आये हुए अतिथि को आधार नही देंगे। हमने घर किसलिए बनाया है ? श्मशान नही बनाया। ऐसे अतिथि को देखकर हमें मानना चाहिये कि उसके रूप में परमेश्वर आया है। जो इस दृष्टि से देखेगा उसे फौरन परमेश्वर का दर्शन मिलेगा। अगर वह कितना भी गधा हो, तो मानो परमेश्वर ही असली रूप में आया है। सेवा का और मौका दिया है, ऐसा मानना चाहिए। हमारे घर जो आता है उसे कहना चाहिये कि, यह घर तेरे लिए ही बनाया था तू आया है इसलिए हम धन्य हुए है।

एक तामिल संत छोटी-सी झोंपडी के बाहर सोते थे। बारिश होने पर वे उठकर अन्दर जाकर सोये। बाहर एक मनुष्य ने दरवाजा खटखटाया। उन्होंने कहा "भाई, आओ, अन्दर एक मनुष्य सो सकता है, लेकिन दो बैठ सकते हैं।" तो वे उसको अन्दर लेकर बैठे थे। उसके बाद फिर किसी तीसरे मनुष्य ने दरवाजा खटखटाया तो उन्होंने फिर कहा, "एक सो सकता है, दो बैठ सकते हैं, लेकिन तीन खडे हो सकते हैं, इसलिए आओ हम तीनों खडे होंगे।" उसको भी उन्होंने अंदर बुलाकर वे तीनों खडे हो गये। तो भाइयो, इस तरह का दर्शन जब होता है तब सर्वोदय-समाज की स्थापना होगी। यह हम भूमि माग रहे है, गाव-गाव घूमते हैं, पैदल घूमते है, यह गोरख-धधा हम क्यों कर रहे है ? इसलिए कि हम आपको यह समझाना चाहते है कि यह हिंदुस्तान, यह भारत, धर्म-भूमि है। ऐसी पुण्यभूमि में जन्म पाया है तो वैसे पुण्य के काम भी किया करो। यह मालिकी की बातें छोड दो। छोडो यह जमीन का मोह। छोडो घर। खेती छोड दो। यह सब जो हमारा है वह सबकी सेवा के लिए है। हम उसे सभालने वाले है। हम उसके ट्रस्टी है। जहा मागनेवाला पात्र आयगा वहा फौरन उसे देने के लिए हम राजी हैं। इस तरह हम समझाना चाहते है। अपने इस देश के लिए जितनी महान पवित्र भावना हम उपनिषद् में पढते है "दुर्लभ भारते जन्म"— जब बहुत पुण्य होता है तब भारत भूमि में जन्म पावोगे, उसके मानी क्या है ? भारत-भूमि में जन्म पाना बहुत पुण्य की बात है। इस धर्म-भूमि में जन्म पाना और उससे भी बडी बात मनुष्य का जन्म पाना, दुर्लभ भाग्य की बात है। 'मानुषी तत्र दुर्लभं'—कीडे मकोडे का जन्म पावोगे तो भी पुण्य की बात है, क्योंकि सत पुरुषों के पाव यहा की धूलि पर से गुजरे है। तो पहला भाग्य यहा जन्म पाना है, और उसमें भी मानव का जन्म पावोगे यह तो और भी भाग्य की बात है। "मानुषी तत्र दुर्लभं" यह मैंने और कहीं नहीं पढा। वैसे दूसरे देशों के लोगों को अपने देश का प्यार, अभिमान होता जरूर है। मातृभूमि के प्रेम का ठेका हिन्दुस्तान ने ही नही उठाया; परन्तु यहा निकृष्ट जंतु का जन्म पाना भी दुर्लभ है। किसी अन्य साहित्य में, जो मने पढा है यह बात नही पढी। भाइयो, ऐसी यह धर्म-भूमि है। इसलिए हमें जमीन मिली है।

कल मैंने अखबार में पढा, एक अमेरिकन ने लिखा है—"कोई ऐसा विश्वास करेगा कि दुनिया में ऐसी जमीन लोग उठ-उठ के दान देते हैं ?" उसने कहा है, लोगों की का उसपर विश्वास नही होता। परन्तु यहा पर ऐसा हो रहा है, क्योंकि यह धर्मभूमि है। इसलिए आप यह विचार समझ लेंगे तो मुझे तो ज्यादा घूमने की भी जरूरत नहीं है। आप आ-आकर जमीन देंगे। हवा, पानी और सूरज की किरणों के समान जमीन भी भगवान् की देन है। वह हर कोई समझता है। यह काम अगर इस भूमि में

हो जाय तो सारी दुनिया में हो जायगा। यहा सारे सज्जन और बाहर सारे दुर्जन लोग हैं, ऐसी बात नहीं है। वहा भी सज्जन है। यहा एक सभ्यता है और उसी मे यह काम होता है। वहा के लोग इस तुलना मे बच्चे हैं।

हृदय के भाव हमने थोडे-से शब्दो मे बताये हैं। हम चाहते है कि पालकोट में सर्वोदय-समाज दिखाई दे। यहा कोई दुःखी न रहे। भगवान ने मनुष्य-जीवन मे दुःख तो दिया ही है, वह तो मनुष्य के जन्म के साथ जुडा हुआ है, वह आप नही टाल सकते। बीमारी और रोग सारे है, लेकिन दूसरों के दुःख को सुख बनाने की यह उत्तम कीमिया है। प्रेम से वह हलका होता है। जितना दुःख लाजिमी है उतना ही सुख भी लाजिमी है। जैसे दिन के बाद रात आनेवाली है, उसी तरह सुख के बाद दुःख आनेवाला है। उसे हम टाल नही सकते। मनुष्य उसको टाल सकेगा, तो वह परमेश्वर ही बन जायगा, केवल परमेश्वर ही दुःख को नष्ट कर सकता है। परन्तु जबतक हमने यह चोला पहना है, तबतक दुःख को मिटाने का यही तरीका है कि दुःख मे हिस्सा लेना चाहिए। धर्म का सही रूप समझने का यही तरीका है। पालकोट में ऐसा हो सकता है।

महात्मा गाधी आखिर मे कातना पूरा करके ही गये। आप सब लोगो के बदन पर बाहर का कपडा है। ऐसा क्यो? गाव का भार दूसरो पर नहीं लादना चाहिये, खुद उठाना चाहिए, स्वावलम्बन करना चाहिये। क्या हम अपना कपड़ा अपने हाथ से नहीं बना सकते? हम समझाना चाहते है कि आप अपना कपडा खुद बनाइए। गाधीजी रोज कातते थे। यहा तक कि आखिरी दिन भी उन्होंने सूत काता था। परमेश्वर की क्या योजना होती है। वे इसीलिए कातते थे कि हिन्दुस्तान के लोगो को कपड़े के बगैर एक क्षण नही रख सकते। पालकोट के राजा कई उपवास करते हैं, एकादशी के दिन भूखे रहते हैं; लेकिन एकादशी के दिन कोई नगे नही रहते। कपड़ा सभ्यता की निशानी है। वेदो मे लिखा है, "जब बच्चा वस्त्र पहनता है तब उसको सभ्यता मिल जाती है उसे संस्कार मिलते हैं।" कुछ लोग कहते हैं कि अन्न पहली जरूरत है और कपडा दूसरी। लेकिन मैं कहता हू कि कपडा पहली जरूरत है। चार दिन खाने को नही मिला तो चल सकता है, लेकिन नंगा कोई नहीं रह सकता बदन पर लगोटी तो चाहिए ही।

खादी के बिना कोई भी बडा धधा नहीं हो सकता। सरकार के लोग हजार धधे ढूढते है, लेकिन खादी का ही नही सोचते। वे तो कहते है कि जनता आलसी है, मिल का कपडा सस्ता है तो वह पहनती है। मैं कहता हू कि जनता धेनु है, उसके पास जो मांगो सो मिलता है। हमें हजारों एकड़ जमीन मिलती है, इसमें कौन विश्वास करेगा? इसी जनता म गाधीजी ने आदोलन किया था, उन्होंने समझाया और लोगों ने सुना। सब लोग सूत कात सकते हैं, लेकिन सरकार मिल के पीछे है। कपड़े की हरएक को जरूरत होती है। अक्सर पैदा करनेवाले पर टैक्स होता है, परन्तु कपड़े के बारे में तो जो कपडा पहनता है उसी पर टैक्स होता है। कपड़ा पहनने वाले बच्चे पर भी टैक्स है। इसीको पोलटैक्स कहा जाता है। इसीलिए हम चाहते है कि आप लोग अपना कपडा बनाइए। हम चाहते हैं कि यहा जमीन का बटवारा हो, गाव की जरूरत की चीजे यहीं पर पैदा हों। गाव में झगडे मत करो और झगड़े हो जाय तो उसका फैसला यहीं करो। गाव के सब बच्चो को एक ही तालीम दो। आजकी निकम्मी तालीम नहीं, जिससे काम के प्रति नफरत पैदा होती है। तालीम में हरएक को दो घटे तक हुनर सिखाना चाहिए, सब लोग प्रेम मे रहें। सर्वोदय-समाज का हमारा जो चित्र है, वह यहा खडा करने की कोशिश करो।*

*राची जिले मे पालकोट पडाव पर दिया प्रवचन।

"जब कि बोलना चाहिए उस वक्त खामोश रहने में लोगों का 'खात्मा' हो सकता है, जब कि खामोश रहना चाहिए, उस वक्त बोलने से हम अपने शब्दों को फिजूल खर्च करते हैं। अक्लमन्द आदमी सावधानतापूर्वक दोनों गलतियों से बचता है।" —कन्फ्यूशियस

क्रांति की प्रतिक्रिया से बचने का उपाय

धीरेन्द्र मजूमदार

खुशी की बात है कि भूदान-यज्ञ में अब हर तबके के लोग सक्रिय सहयोग दे रहे हैं। मुल्क के लिए निस्सदेह यह एक सौभाग्य की बात है। लेकिन जनता के तथा नजदीक से कार्यकर्ताओं के सवालों को देखते हुए मुझको ऐसा लगता है कि लोग भूदान-यज्ञ के मौलिक आधार को समझे बिना ही इस ओर दौड़ रहे हैं। क्रान्तिकारी आंदोलन में धूमिल दृष्टि खतरनाक होती है। इतिहास में देखा गया है कि क्रांतिकारी कार्यकर्ताओं की दृष्टि स्पष्ट न होने के कारण अक्सर सफल-प्राय क्रांति, प्रतिक्रांति के गर्भ में विलीन हो गई है। इसलिए यह आवश्यक है कि भूदान-यज्ञ के कार्यकर्ता अपने काम के मूलतत्व पर गंभीरता के साथ विचार करें।

गांधीजी के नेतृत्व में हम लोगों ने स्वराज्य का आंदोलन चलाया। शुरू से ही गांधीजी स्वराज्य की व्याख्या बराबर करते रहे हैं। मुल्क के सामने आर्थिक तथा सामाजिक क्रांति के लिए ठोस तथा व्यावहारिक कार्यक्रम भी रखते रहे हैं, लेकिन आंदोलन के अन्य नेताओं तथा कार्यकर्ताओं ने गांधीजी की इन मौलिक बातों पर ध्यान नहीं दिया, न ही मुल्क को उसके लिए तैयार किया। वे शायद 'एक साधे सब सधे' सोचते रहे। वे कहते भी रहे कि इन सब छोटी-मोटी बातों में न फंसकर पहले अंग्रेजों को बाहर निकालें, उनके चले जाने पर आर्थिक तथा सामाजिक क्रांति फौरन हो जायगी। इस धुन में लोगों ने स्वराज्य की बुनियादी क्रांति की बात को सोचना भी छोड़ दिया। नतीजा यह हुआ कि देश की आर्थिक और सामाजिक जिन्दगी जिन प्रतिक्रियावादियों के हाथ में थी, उन्हींके हाथ में रह गई। इतना ही नहीं, बेहोशी और असावधानी के कारण अंग्रेज चलते-चलते उन शक्तियों को अधिकतर मजबूत करते गये।

इसी तरह यदि भूदान-यज्ञ के कार्यकर्ता अपने अंतिम मकसद पर होश के साथ सावधान नहीं रहेंगे, तो जमीन का वितरण तो हो जायगा, लेकिन क्रांति सफल नहीं होगी। आखिर भूदान-यज्ञ कोई आखिरी मकसद नहीं है। जिस तरह गांधीजी कहते रहे कि अंग्रेजों को हटाना स्वराज्य का पहला काम है, उसी तरह आज विनोबाजी कहते हैं कि भूमि का समविभाजन 'ग्रामराज्य' या 'रामराज्य' का पहला कदम है। संसार में आज तानाशाही यानी सर्वाधिकारी राज्यवाद का बोलबाला है। उसे देखते हुए अगर दुनिया में गणतंत्र की रक्षा करनी है, तो केन्द्रवादी राजनैतिक व्यवस्था तथा आर्थिक उत्पादन-पद्धति को खत्म करके विकेन्द्रित व्यवस्था ही कायम करनी होगी। केवल विकेन्द्रीकरण से भी काम नहीं चलनेवाला है, बल्कि विकेन्द्रीकरण द्वारा स्वावलंबन तक पहुंचना है, अन्यथा विकेन्द्रित उत्पादन तथा व्यवस्था का संगठन और संचालन केन्द्र-शक्ति के आश्रित होकर तानाशाही की सृष्टि भी कर सकते हैं।

भूमि का बटवारा तो जापान और चीन में भी हुआ है, पर उन मुल्कों में मौलिक गणतंत्र की स्थापना नहीं हुई। जापान में एक 'वर्ग' की तानाशाही और चीन में एक 'दल' की तानाशाही का विकास हो रहा है। फिर भारत में केवल भूमि-वितरण से ही समस्या हल हो जायगी, ऐसा किस आधार से सोचा जा सकता है? क्या इस देश में भी भूमि-वितरण के बाद वर्ग या दल की तानाशाही नहीं हो सकती है? इन सारी बातों पर विचार करके हमारे कार्यकर्ताओं को अपनी कार्यशैली निर्धारित करनी होगी।

हम सर्वोदय को माननेवाले इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि जनता के शोषण तथा दलन को हटाने के लिए पहली जरूरत आर्थिक विकेन्द्रीकरण की है। आर्थिक विकेन्द्रीकरण का मतलब है, उत्पादन के तरीके तथा साधन का विकेन्द्रीकरण। यही कारण है कि अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ ने भूमि-दान-यज्ञ और अन्न-वस्त्र की चीजों के लिए केन्द्रित उद्योगों के बहिष्कार को अभिन्न माना है। विनोबाजी ने भी दोनों सीता-राम के रूप में हैं, ऐसा कहा है। दोनों को साथ-साथ न चलाने से हम किस तरह प्रति-

प्रदेश-भाषा और संघभाषा का मतभेद

लक्ष्मीनारायण भारतीय

हिंदी हिंदुस्तानी के संघर्ष का अन्त संविधान-सभा के निर्णय के बाद हुआ, तो भाषिक संघर्ष का अन्त भी साथ ही में हो गया ऐसा अनुमान था। क्योंकि हिन्दी-अंग्रेजी का संघर्ष केवल हिन्दी तक सीमित नहीं रहता, प्रादेशिक भाषाओं को भी उसमें आना पड़ता और तब वह 'प्रादेशिक भाषाएं बनाम अंग्रेजी' ऐसा बन जाता। परन्तु प्रादेशिक भाषाएं बनाम राष्ट्रभाषा के रूप में नया संघर्ष उपस्थित हुआ, जिसने इस आवेश में अंग्रेजी माध्यम के विरुद्ध उठनेवाली आवाज को भी क्षीण कर दिया। एक ओर 'संघ की राष्ट्रभाषा हिन्दी हो' की आवाज बुलन्द होने लगी तो दूसरी ओर 'अंग्रेजी भले रहे, मगर हिन्दी का यह साम्राज्यवाद कतई नहीं चाहिए' ऐसी आवाज उठी। दुर्भाग्य यह कि हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में जबरन स्वीकृत करानेवाले भी इस पक्ष में शामिल हो गए। वस्तुतः राष्ट्रभाषा के प्रचार में अहिंदी खासकर दक्षिणी 'जनता' ने जितना सहयोग दिया उतना शायद हिंदी भाषियों ने भी शुरू से न दिया होगा। वह सहयोग तो आज भी जारी है, परन्तु 'राष्ट्रभाषा नहीं संघभाषा' और 'हमारे क्षेत्र में पूर्णतः हमारी भाषा' की मर्यादाओं के साथ। इस मनोवृत्ति को 'संकुचित पाकिस्तानी' आदि कहकर और उत्तेजित किया गया तब 'हिन्दी शिक्षा-माध्यम सर्वत्र हो' ऐसा आग्रह करके तो पर निर्माण की नींव ही डाल दी गई। परिणामतः अंग्रेजी माध्यम के विरुद्ध होनेवाला संघर्ष ढीला पड़ गया और ऐसा भय उत्पन्न होने लगा कि कहीं पन्द्रह वर्ष बाद फिर संविधान में संशोधन करने की नौबत न आ जाय।

हिन्दी हिन्दुस्तानी के संघर्ष का कटु अनुभव लेने के बाद अब फिर एक नये भाषिक संघर्ष को खड़ा होने देना या उसमें वृद्धि करना आत्मघात के समान ही होगा। आज ऐसा तीव्र मतभेद भी नहीं है कि दोनों के बीच की खाई भी न पाटी जा सकती हो। केवल एक-दूसरे को समझने और अनाग्रही होने की बात है, समय का तकाजा है कि ऐसा अगर हम नहीं करते हैं, तो वह हमारी बुद्धिमानी, सहृदयता, सौहार्दता को एक चुनौती हो जाती है। संक्षेप में हम दोनों पक्षों को यहां इस प्रकार रखेंगे :

'हिन्दी राष्ट्रभाषा है, उसे अब सरकारी मान्यता मिल गई है, अतः उसका उचित स्थान उसे मिलना ही चाहिए। जैसे अंग्रेजी आज तक सारे देश की उच्च शिक्षा, राजकारोबार, आपसी व्यवहार आदि का माध्यम रही है, हिंदी भी वही स्थान ले। राष्ट्रीय ऐक्य को अक्षुण्ण रखने की दृष्टि से यह आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। प्रादेशिक भाषाओं को हम नष्ट नहीं करना चाहते, उन्हें बढ़ावा देना चाहते हैं, परन्तु हिन्दी उनकी ज्येष्ठ भगिनी के रूप में है, अतः वही आज अंग्रेजी का स्थान ले सकती है। शिक्षा का माध्यम, प्रादेशिक सरकारों के सचिवालय, केंद्रीय सरकार का समस्त कारोबार आदि हिन्दी में ही रहे। अगर हमको अब अलग-अलग पाकिस्तान नहीं बनाने हैं तो विच्छेद-वृत्ति को रोकना होगा। वह हिंदी ही रोक सकती है।"

यह है एक पक्ष। इसमें कई उपपक्ष हैं, परन्तु मुख्यतः यही मांग विशेषतः हिन्दी भाषियों की ओर से आती है। "हमारी हिंदी व आपकी हिंदी" अलग-अलग हैं, ऐसा भी उसमें झगड़ा आ चुका है, परन्तु हम यहां उसमें नहीं जाना चाहते, वह स्वतन्त्र विषय है।

दूसरा पक्ष है, "हिंदी राष्ट्रभाषा नहीं, संघभाषा है। बहुसंख्या उसे काफी जानती है। अतः दो प्रांतों के व्यवहार के कामों में वह आ सकती है। केंद्रीय सरकार में भी वह रह सकती है। परन्तु जहां तक अपने अपने प्रांतों का प्रश्न है न तो वहां शुरू से आखीर तक हिन्दी अनिवार्य करने की जरूरत है, न यहां के सब लोग हिन्दी जानें ही, यह जरूरी है, न किसी भी श्रेणी में वह माध्यम बन सकती है, अंग्रेजी की जगह वह ले, ऐसा कहना तो सरासर भूलना है, क्योंकि अंग्रेजी 'लादी' गयी थी। 'हिंदी'

अगर "लादी" जाय, तो राष्ट्रभाषा के रूप में भी हमें वह नहीं चाहिए, धन्यवाद ! हम जरूरत से मुनासिब दूसरी भाषा, जो हिन्दी से निकली हो, ढाल लेंगे। और अंग्रेजी की साहित्यिक योग्यता भी हिन्दी में नहीं है यहां तक कि प्रादेशिक भाषाओं में से कुछ के साथ ता वह टिक भी नहीं सकती। अतः अपना साहित्यिक अस्तित्व लेकर या अंग्रेजी की दुहाई देकर वह हमपर नहीं लादी जा सकती। राष्ट्र के बीच, प्रान्तों के बीच आपसी व्यवहार, पत्र-व्यवहार आदि के लिए वह ली जा सकती है। आवश्यक हो तो किसी एकाध कोर्स में उसे अनिवार्य भी किया जा सकता है। उच्च शिक्षा के माध्यम के रूप में ता हम उसे हरगिज-हरगिज नहीं मानेंगे।"

इसमें भी उपपक्ष है,—जैसे, उच्च शिक्षा का माध्यम हिन्दी नहीं बनाई जा सकती है, अनिवार्य विषय के तौर पर भी नहीं रखी जा सकती है, आदि-आदि।

परन्तु इस वाद के बीच जो दो शक्तिशाली पक्ष हैं, वे हमने कुछ साफ जबान में यहां रख दिये हैं। स्पष्टता अधिक है, कड़ाई भी दीख सकती है, परन्तु स्थिति करीब ऐसी ही है। लेकिन हिंदी-हिंदुस्तानी के समान मनोमालिन्य, तीव्रता, कटुता आदि का सृजन करने तक अभी इसमें से किसी भी पक्ष की प्रवृत्ति नहीं है, यह अत्यन्त सन्तोष की बात है। वस्तुनिष्ठता से व्यक्तिनिष्ठा तक चीज अभी नहीं पहुंची है और आपस में बैठकर समझौता करने की ओर ही पूरा झुकाव है। दोनों पक्षों में दोनों तरह के लोग 'हिन्दी' एवं 'गैर हिन्दी' वाले हैं। हमारी मान्यता है कि इतनी सामग्री, इतनी पूंजी हाथ में होने पर उपर्युक्त दोनों पक्षों को निकट नहीं लाया जा सकता, ऐसा कदापि नहीं है। दोनों पक्षों की बातों में से 'आग्रह' हटा दिया जाय तो बहुत शीघ्र दोनों का ऐक्य हो सकता है। "क्या होना चाहिए" इसीके साथ "क्या हो सकता है," इसका भी ध्यान रखना आज अनिवार्य हो गया है। सिद्धान्त-व्यवहार में मेल जरूरी है। अगर हम इस नये वाद को प्रेमपूर्वक और समझौते के साथ नहीं खत्म करते हैं तो हमारे राष्ट्र-जीवन के लिए वह बहुत बड़ा अभिशाप होगा, क्योंकि 'हिन्दी-हिंदुस्तानी' का वाद बड़ा होने पर भी वह 'राष्ट्रीयवाद' नहीं था, पर यह 'प्रादेशिक भाषा बनाम राष्ट्रभाषा' वाद निश्चित रूप में 'राष्ट्रीयवाद' बनकर 'दक्षिण-उत्तर,' 'उत्तर-पूर्व' के बीच गहरी खाई पैदा कर सकते हैं।

इस दृष्टि से क्या इस प्रकार कोई 'फार्मूला' नहीं सोचा जा सकता कि

(१) राष्ट्र-भाषा, संघ-भाषा, राज्य-भाषा, दफ्तरी-भाषा, (आफीशियल लेंग्वेज) आदि शब्द-प्रयोगों के बजाय केवल 'संघभाषा' शब्द चले। संविधान के शब्दों व अर्थों में यही प्रयोग जमता है। 'संघभाषा' शब्द का 'राष्ट्र-भाषा' के अर्थ में विरोध नहीं है, बल्कि एक अधिकृत रूप में उसीकी यह अभिव्यक्ति है। 'राष्ट्रभाषा' शब्द कुछ भ्रमोत्पादक भी हो जाता है।

(२) राज्यों (प्रदेशों) के विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम अनिवार्य रूप से प्रदेश-भाषा ही रहे और कोई प्रान्त चाहे तो वैकल्पिक रूप से 'संघभाषा' का माध्यम भी प्रदेश-भाषा के साथ रखे।

(३) अखिल भारतीय शिक्षा-संस्थाओं में अनिवार्यतः हिंदी ही माध्यम हो, यद्यपि प्रादेशिक भाषा-विशेष के माध्यम से सीखनेवाले छात्रों की सुविधा भी देखी जाय।

(४) माध्यमिक व प्राथमिक शिक्षा का माध्यम अनिवार्यतः प्रदेश-भाषा ही रहे, परन्तु प्राथमिक शिक्षा के लिए पर्याप्त संख्या हो तो मातृभाषा भी माध्यम रहे।

(५) माध्यमिक शिक्षा में (गैर हिंदी प्रांतों में) हिंदी की पढ़ाई पूरी तरह से हो, और उच्च शिक्षा में हिंदी अनिवार्य विषय हो।

(६) दो प्रांतों का आपसी व्यवहार एवं केंद्र और प्रांत के बीच का व्यवहार हिंदी द्वारा और प्रांत का अंतर्गत व्यवहार प्रदेश-भाषा द्वारा हो। अखिल भारतीय संबंध के व्यवहार, जैसे हाईकोर्ट के फैसले आदि संघ-भाषा में भी प्रकट किये जायें।

(७) दो-दो, तीन-तीन प्रदेश-भाषाओं में एक ही राज्य बटा हो तो वहां प्रमुख प्रदेश-भाषाओं द्वारा ही शिक्षा एवं व्यवहार हो। हिंदी किसी विभाग में अनिवार्य की जा सकती है।

(८) सभी भाषाएं समान मान कर सबकी उन्नति, प्रगति, प्रसार का भार प्रत्येक राज्य ले, यानी अपने सूबे की भाषा के अतिरिक्त दूसरे सूबे की भाषा के विकास का

ध्यान रखा जाय। हर हिंदी भाषी को पड़ौसी सूबे की प्रदेश भाषा का ज्ञान होना जरूरी माना जाय। कम-से-कम कार्यकर्ता, अफसर, सेवक आदि को तो अनिवार्यतः एक प्रदेश भाषा, अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त, आनी ही चाहिए जैसे महाकोशल वालों को मराठी।

यह अष्टसूत्री योजना हम संक्षेप में यहां प्रस्तुत कर रहे हैं। हमारा विश्वास है कि शुरू में हमने जो दो पक्ष बताये उन दोनों को एक करनेवाली योजना इसी के आधार से बन सकती है। इन आठ सूत्रों में कमी-बेशी की जा सकती है और सूत्र भी सुझाये जा सकते हैं, परन्तु मोटे तौर पर यदि यह स्वीकार कर ली जाती है तो 'प्रदेश-भाषा' बनाम 'राष्ट्र-भाषा' का यह संघर्ष ही खत्म हो जाता है। अपने-अपने दायरे से बाहर होकर हम सोचें और अपने से विभिन्न राय रखनेवालों की बात हम समझें, तो यह समझौता सहज हो सकता है। होता यह है कि हिंदी प्रदेश वाला अपने बाहर की बहुत कम देख-सोच पाता है, गैर हिंदी प्रदेश वाला भी भिन्न-भिन्न वक्तव्यों, प्रचार आग्रह के कारण भय खाता है। दोनों को समझकर दोनों की बातों का समन्वय करनेवाले लोग, आज मौजूद हैं और खाई नहीं बढ़ने देते हैं, यही खुशी की बात है।

इसी दिशा में कुछ रचनात्मक प्रयत्न भी हो रहे हैं, यह प्रसन्नता की बात है। भारतीय संसद् का 'देवनागर' एवं उसकी प्रेरणा इस दिशा में बहुत ही प्रशंसनीय और ठोस कदम है। हिंदी का पक्ष अंग्रेजी के मुकाबले मजबूत करने में भी यह प्रवृत्ति सहायक होने वाली है। हम आशा करते हैं, कि भारतीय संसद् तक ही ये प्रयत्न सीमित न रह कर आगे ये काम करेंगे।

एक और प्रयत्न की ओर हम पाठकों का ध्यान खींचना चाहते हैं। अभी पूना में महाराष्ट्र विश्व विद्यालय के संचालकों ने एक परिषद् आमंत्रित की थी, "भारतीय भाषा विकास-परिषद्" के नाम से। चुने हुए, लेकिन प्रातिनिधिक व्यक्तियों को बुलाकर जहां संचालकों ने अपनी मर्यादा में काम किया, वहां ठोस रूप देने में भी कोई कोर-कसर बाकी न रखी। सात राज्य सरकारों के, एवं केंद्रीय शिक्षा-मंत्रालय का और ग्यारह विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधि इसमें उपस्थित थे, और अन्य समितियों—जैसे राष्ट्रीय भाषा प्रचार समिति आदि के प्रतिनिधि भी थे। डा० सुनीति कुमार, डा० रघुवीर-जैसे विद्वान भी थे। प्रांत-भाषा व राष्ट्र-भाषा के सम्बन्ध व स्थान, पारिभाषिक शब्दावली आदि पर चर्चा करने और सुझाव देने के लिए ही यह आयोजन था और अत्यंत ही प्रसन्नता की बात है कि सर्वसम्मति से परिषद ने कुछ सुझाव भी पेश किये हैं। ये इतने महत्वपूर्ण सुझाव हैं कि उनके आधार पर भारत-सरकार, राज्य-सरकार और विश्वविद्यालय फौरन एक योजना बनाकर उसे कार्यान्वित कर सकते हैं। वह योजना और भी विद्वानों व प्रतिनिधियों के पास भेजी जा सकती है। परन्तु हमारा मानना है कि इसी बुनियाद पर यदि योजना बनती है तो ही वह सर्वमान्य हो सकती है। आज 'सर्वमान्य' होने-जैसी कोई योजना बिना लंबे-चौड़े कमीशनों व खर्चों के बनती है तो वह एक शुभ संयोग ही मानना चाहिए। बड़ी-बड़ी सरकारी कमेटियां कायम करके, समय और रुपया बर्बाद करके भी "सर्वमान्यता" प्राप्त करना आज सरल नहीं है, और यही इसकी खूबी है।

हम संक्षेप में इसकी जानकारी पाठकों को देना जरूरी समझते हैं :

परिषद् ने विषय वर्गीकरण की दृष्टि से तीन विभाग किये और तीनों विभागों के अध्यक्ष ऐसे चुने, जिनकी उन विषयों के बारे में पूरी अनाग्रही वृत्ति थी। जैसे,डा० रघुवीर को 'परिभाषा-निर्माण-विभाग' न सौंपकर 'प्रदेश-भाषा-विभाग' सौंपा। तीन विभाग ये थे :

(अ) भारतीय भाषाओं के लिए पारिभाषिक शब्द समूह की निर्मिति किस प्रकार की जाय?—अध्यक्ष-डा० सुनीतिकुमार चैटर्जी।

(आ) संविधान द्वारा प्रेषित 'संघभाषा' हिंदी का शिक्षा क्षेत्र में एवं अन्यत्र क्या स्थान रहेगा? अंग्रेजी एवं प्रादेशिक भाषाओं के साथ उसके क्या संबंध रहेंगे? अध्यक्ष—कन्नड़ साहित्यश्रेष्ठी श्रीमती वेंकटेश आयंगर।

(इ) प्रादेशिक भाषाओं का स्थान स्वतंत्र भारत में क्या व कैसा रहेगा? इनकी उपयुक्तता, ज्ञान, समृद्धि, सामर्थ्य आदि की वृद्धि के लिए क्या प्रयत्न किये जायं? अध्यक्ष—डा० रघुवीर।

और सारी परिषद् के अध्यक्ष थे, महामहोपाध्याय श्री पा. वा. काणे।

तीनों विभागों ने जो सुझाव दिये व परिषद् ने जिन्हें मान्य करके देश के सामने प्रस्तुत किया, वे नीचे दिये जा रहे हैं। ध्यान रहे कि इन निर्णयों पर परिषद् सहज नहीं पहुंची है। बहुत चर्चा, वादविवाद, और मतभेद हुए। पक्ष-समर्थन भी जोरों से हुआ, परन्तु आपसी सौहार्द और एकमत से निर्णय लेने की एवं आज की संघर्षमय स्थिति में से विधायक रास्ता निकालने की वृत्ति के कारण ही यह संभव हुआ है।

परिषद के सुझाव :

(अ) वैज्ञानिक परिभाषाओं के सम्बन्ध में यह नीति रहे :

(१) विभिन्न विज्ञानों के लिए लगनेवाले पारिभाषिक शब्द यथासंभव संस्कृत से ही बनाये व लिये जायं।

(२) आंतर्राष्ट्रीय चिह्न, संकेत एवं 'फार्मूलाज' आज के ही समान आंतर्राष्ट्रीय रहें।

(३) जहां आंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक शब्दावलि के लिए भारतीय प्रतिशब्द न हों, वहां आंतर्राष्ट्रीय शब्द ही [redacted] लिये जायं।

(४) वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावलि सारे भारत में यथासंभव एक ही हो।

(ब) राष्ट्र-भाषा के बारे में निम्न सुझाव मिले —

(१) राष्ट्र-भाषा के विकास में यह एक बड़ा डर अंतर्निहित है कि कहीं प्रादेशिक भाषाओं पर उसका आक्रमण न हो। इसलिए सर्वप्रथम इस भय को निःसंदिग्ध रूप से हटाया जाय और अलग-अलग प्रदेशों का व्यवहार व शिक्षा वहां की प्रादेशिक भाषाओं में दी जाय।

(२) चूंकि हिंदी संघ-भाषा के रूप में स्वीकार कर ली गई है, अतः जिनकी वह मातृभाषा नहीं है, ऐसे सूबों का यह फर्ज है कि वे सरकारी, गैर सरकारी रूप से हिन्दी के प्रचारार्थ पूरे प्रयत्न करें।

(३) हर भारतीय का, जो किसी भी भाषा को बोलने वाला हो, भारतीय संविधान के अनुसार संघ-भाषा का विकास करना कर्तव्य है। अतः ३५१ की धारा के अनुसार विश्वविद्यालय, साहित्यिक संस्थाएं, सरकारें इस प्रयत्न में लगें। पर इस प्रकार जो हिंदी भाषा अर्थात् राष्ट्र-भाषा होगी, उसमें जो परिवर्तन होंगे, वे किसी प्रकार हिंदी के मूल स्वरूप के प्रतिकूल न हों एवं हिंदी वाले उसे स्वीकार कर सकें।

(क) प्रादेशिक भाषाओं के सिलसिले में निम्न बातें तय हुईं

(१) स्कूलों में विद्यार्थियों की इच्छानुसार मातृ-भाषा या प्रदेश भाषा माध्यम रहे।

(२) माध्यमिक स्कूलों में हिंदी पढ़ाने-सिखाने की व्यवस्था हो।

(३) माध्यमिक स्कूलों में जहां संभव होगा, वहां अन्य भारतीय भाषा सिखाने का प्रबन्ध रहे।

(४) सभी विश्वविद्यालयों में भारतीय भाषाओं की उच्च शिक्षा और अनुसंधान की पूरी सुविधा रहे।

(५) साहित्यिक एवं वैज्ञानिक पुस्तकों के अनुवाद आदि करने के लिए प्रादेशिक सरकारें, विश्वविद्यालय एवं भाषा संस्थाएं स्वतन्त्र विभाग कायम करें।

(६) प्रारंभ के तौर पर व्याकरण, संवाद की पुस्तकें एवं भारतीय भाषाओं में [redacted] दो के शब्द-कोष तैयार किये जायं।

(७) हर प्रदेश-भाषा में एक ऐसी पत्रिका निकले, जो अन्य भाषाओं के साहित्य का उत्तमोत्तम अंश प्रकाशित किया करे। उसके द्वारा अन्य भाषा व साहित्य के एवं विचारों के प्रवाह का परिचय होना चाहिए।

(८) स्कूलों के लिये, केंद्रीय व प्रान्तीय सरकारें, भाषा-शिक्षकों के शिक्षण केंद्र खोलें।

(९) उपर्युक्त कार्यक्रमों को अमली जामा पहनाने की दृष्टि से मध्य और प्रादेशिक सरकारें इनाम, छात्र-वृत्ति, फंड सहायता आदि दें।

ये सिफारिशें देखने के बाद कोई भी इनपर यही राय देगा कि आज की हालत में सबको साथ लेकर चलनेवाली कोई नीति अख्तियार की जा सकती है और जिसमें सबका हित हो सकता है, तो वह इन सिफारिशों के आधार पर अख्तियार की जा सकती है। आशा है कि हिंदी के विद्वान इसपर विचार करेंगे।

विधाता

वनफूल

बार ने बहुत उपद्रव मचा रखा था। मनुष्य जर्जरित हो उठा। गाय बछड़े और अन्त में मनुष्य भी बाघ के शिकार बनने लगे। सब ने अपने-अपने लाठी बल्लम, बर्छी और बन्दूक बाहर कर बाघ को मारा। एक बाघ गया किन्तु और एक आ गया। अन्त में मनुष्य ने विधाता से निवेदन किया—

"भगवान् बाघ के भय से हमें छुड़ाइये।"

विधाता ने कहा, "अच्छा!"

कुछ देर बाद बाघों ने उठाकर विधाता के दरबार में नालिश की—"हम मनुष्यों के मारे परेशान हैं। एक जगह से दूसरी जगह में भागते-फिरते हैं। फिर भी शिकारी लोग हमें शान्ति की सांस नहीं लेने देते। इसका कुछ प्रबन्ध कीजिए।"

विधाता ने कहा, "अच्छा!"

उसी समय एक गर्ज की मां ने विधाता से प्रार्थना की, "बाबा, मेरे गज्जू का एक सुन्दर-सी बहू ला दो। दोहाई ठाकुरजी तुम्हें पांच पैसे की सीरनी दूंगी।"

विधाता ने कहा, "अच्छा।"

हरिहर भट्टाचार्य मुकदमा लड़ने जा रहे थे। उन्होंने विधाता को सम्बोधित कर कहा, "जन्म भर तुम्हारी पूजा की है, अन्त में शरीर सुखा डाला है। मैं 'साले' उस भतीजे को मजा चखाना चाहता हूं। तुम मेरी सहायता करो।"

विधाता ने कहा, "अच्छा।"

सुशील परीक्षा देगा। वह रोज विधाता से कहता है, "ठाकुरजी पास करा देना।" आज उसने कहा, "ठाकुरजी, यदि वजीफा दिला दो, तो पांच रुपये तुम्हारे नाम पर लुटा दूंगा।"

विधाता ने कहा, "अच्छा।"

हरेन्द्र श्रीवास्तव डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैन होना चाहते थे। काली पुरोहित की मार्फत उन्होंने विधाता को पकड़ लिया, मुझे ग्यारह वोट चाहिए। कालीचरण पुरोहित ने मोटी रकम दक्षिणा में लेकर गजानन सहस्र के मन्त्रों की चोट से विधाता को परेशान कर दिया "वोट देहि वोट देहि"—

विधाता ने कहा, "अच्छा, अच्छा!"

किसान ने दोनों हाथ उठाकर कहा, "देवता, जलदो!"

विधाता ने कहा, "अच्छा।"

पीड़ित सन्तान की माता ने विधाता से विनती की, "मेरी इकलौती सन्तान है, ठाकुर छीन न लेना।"

विधाता ने कहा, "अच्छा।"

पड़ोसी घर की क्षेन्ति बुआ ने उपरोक्त माता के सम्बन्ध में कहा, "विधाता, इस औरत को बड़ा घमण्ड है। नित्य नूतन गहने पहनकर घरा को सकोरा समझती है। लड़के का गला दबोच दो तो अच्छा हो, दयामय! इस लुगाई को थोड़ी-सी सीख तो मिलेगी।"

विधाता ने कहा, "अच्छा।"

दार्शनिक ने कहा "हे विधाता, तुम्हें जानना चाहता हूं।"

विधाता ने कहा, "अच्छा।"

चीन देश में चीत्कार उठी, "जापानियों से रक्षा करो, प्रभु!"

विधाता ने कहा, "अच्छा।"

बंगाल के एक युवक ने आग्रह किया, "कोई सम्पादक मेरी रचना नहीं छापता। 'प्रवासी' में रचना छपाना चाहता हूं मैं, सम्पादकजी से दया करने के लिए कहिए।"

विधाता ने कहा, "अच्छा।"

कुछ फुर्सत मिलते ही विधाता ने बगल में बैठे हुए ब्रह्मा जी से पूछा, "आपके घर में विशुद्ध सरसों का तेल है?"

ब्रह्मा ने कहा, "है! क्यों?"

विधाता—"मुझे कुछ जरूरत है। देंगे क्या?"

ब्रह्मा—(पांचों मुख से) "अवश्य-अवश्य!"

ब्रह्मा के घर से विशुद्ध सरसों का तेल आया। विधाता तत्क्षण उसे कान में डालकर गहरी नींद सो गये। आज भी उनकी नींद टूटी नहीं है।

[रामराज्य से साभार

प्रौढ़शिक्षा की रूप-रेखा

रामकृष्ण पाराशर

शारीरिक दृष्टि से प्रौढ़ता प्राप्त व्यक्तियों को दी जानेवाली शिक्षा को प्रौढ़ शिक्षा की संज्ञा देते हैं। हमारे देश में आज भी ८५ प्रतिशत के लगभग लोगों को काला अक्षर भैंस बराबर है। आज संसार में क्या हो रहा है? विज्ञान ने मानव को क्या-क्या वरदान दिये हैं? अच्छा सम्मानपूर्ण जीवन कैसे प्राप्त किया जा सकता है—इसकी उनको कोई जानकारी नहीं। शताब्दियों से निर्धनता, निराशा और निरक्षरता के जगत में जीवन की घड़ियां गिनते-गिनते आज उनकी मनोभूमि नैराश्य पूर्ण बनी हुई। आज हमें राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त है परन्तु अभी हम मानसिक और आर्थिक पराधीनता से छुटकारा नहीं पा सके हैं। इस कारण हमारे देश को बौद्धिक क्रान्ति की आवश्यकता है। शिक्षा का प्रचार तथा प्रसार हमारे राष्ट्रीय तथा आर्थिक जीवन में विकास की एक नई दिशा देगा—ऐसा हमारा विश्वास है।

हमारे देश की ८५ प्रतिशत के लगभग आबादी गांवों में रहती है जिसमें से ९७ प्रतिशत के लगभग खेती-बाड़ी अपनी जीविका चलाते हैं। इनमें से ९९ प्रतिशत लोग अशिक्षित हैं। इनको बिना साक्षर बनाये राष्ट्र-विकास के स्वप्न देखना एक बड़ी भूल होगी। इनकी शिक्षा का ध्येय केवल इन्हें साक्षर करना नहीं, बल्कि इस जीवन को अच्छा, पूर्ण, सम्पन्न, स्वावलम्बी तथा आशावादी बनाना होगा। यही प्रौढ़शिक्षा का मूल उद्देश्य है।

प्रौढ़शिक्षा जीवन की शिक्षा है। यह शिक्षा व्यक्ति तथा समाज के जीवन के सभी अंगों को छूती है। इसके अन्तर्गत खेती, गोपालन, जन-स्वास्थ्य, उद्योग तथा गर्भाधान-विज्ञान आदि सभी विषय आ जाते हैं। इस प्रकार प्रौढ़शिक्षा द्वारा सर्वांगीण स्वावलम्बी समाज की रचना सम्भव है।

प्रौढ़ शिक्षा का उद्देश्य ग्राम समाज में आत्मसम्मान जगाकर उनमें उन्नत अवस्था प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न करना है। विकास-कार्य के सभी प्रयत्न जनता की भावना, इच्छा तथा विश्वास के बिना असफल होते हैं। आत्म-विश्वास तथा इच्छा के होने पर आवश्यक साधनों के अभाव में भी पर्याप्त प्रगति होती देखी गई है। इसी प्रौढ़-शिक्षा में आत्मविश्वास के विकास को बड़ा महत्व दिया गया है। आज हमारे ग्रामवासियों के पिछड़े होने का सबसे बड़ा कारण आत्मविश्वास-रहित निराशावादी दृष्टिकोण है। हमारा ग्राम्य समाज शताब्दियों से लूटा जा रहा है। शोषण ने उसे अभावग्रस्त और दारिद्र्यपूर्ण बना दिया है। अपने विकास की बात आज उनकी समझ में नहीं आती। आज उन्हें जीवन के प्रति कोई अनुराग नहीं है। सबसे पहले हमें उनमें यह विश्वास पैदा करने की आवश्यकता है कि उनका जीवन भी शहर के रहनेवाले लोगों जैसा सम्पन्न बन सकता है। पहले हमें उनके मस्तिष्क में अपने निराशा-पूर्ण जीवन से उठने की कल्पना जागृत करनी पड़ेगी। इसके बाद यही कल्पना उनमें विकास की ओर बढ़ने की इच्छा उत्पन्न करेगी और जब उनमें इच्छा उत्पन्न हो जायेगी तो वह स्वयं आगे बढ़ने लगेंगे।

संक्षिप्त में प्रौढ़-शिक्षा का पहला कदम ग्राम्य समाज में प्राण फूंककर उसमें आशा का संचार करके विश्वास उत्पन्न करना है। इसकी सफलता के लिए हम ग्रामीणों की अनिवार्य आवश्यकताओं को उनसे मालूम करें और ऐसा कार्यक्रम लेकर चलें, जिसमें उन्हें तुरन्त आर्थिक लाभ हो। खेती और घरेलू धन्धों को इस दिशा में चुना जा सकता है। दूसरा कार्य उनमें नेतृत्व का विकास करना है। उनमें अन्तःशक्ति का उद्बोध करना है। उन्हें स्वावलम्बी बनाना है। यही सच्चे ग्राम-स्वराज्य का मूलभूत सिद्धान्त है। इसके लिए ग्राम समाज की बिखरी हुई शक्तियों को संगठित करके रचनात्मक कार्य में लगाना है जिससे ग्राम्य जनता विकास की ओर बढ़ सके। इस प्रकार एक सच्चे स्वावलम्बी समाज का निर्माण होगा

जिसके सभी कार्य स्व-निर्दिष्ट स्व-संचालित स्व-परीक्षित और स्व नियन्त्रित होंगे। इस प्रकार उनके जीवन में आशा का संचार होने लगेगा, तभी उनकी जड़ता शिथिल हो जायगी।

इस तरह जब उनकी मनोभूमि शिक्षा प्रसार के लिए उर्वरा हो जायगी तो हम अपना तीसरा कदम निरक्षर लोगों को साक्षर बनाने के लिए उठायेंगे। रचनात्मक कार्यकर्ताओं को चाहिये कि गांव में तीन समुदाय निम्न आधार पर बना लें यथा—

(१) वृद्ध समाज (२) युवक मंडल (३) बाल जगत

(१) वृद्ध समाज—इसमें ४० वर्ष से अधिक आयु के लोग हों। इनके पास अनुभव तथा हृदय में समाज के प्रति सद्भावना हो। अपने अनुभव के आधार पर वे हमें सत्परामर्श देने में समर्थ हों। इनमें से रचनात्मक कार्य में अभिरुचि रखने वाले लोगों को ही समाज में रखा जाय। समाज की पाक्षिक या साप्ताहिक बैठकें होनी चाहिए जिनमें गांव के विकास की चर्चा हो, गांव की समस्याओं का समाधान सोचा जाय। एक-दूसरे की कठिनाइयों को दूर करने के उपाय सोचें। अपने बालकों में अच्छे विचार पैदा करने का प्रयत्न करें। गांव के लड़ाई-झगड़ों को दूर करके आपस में भाईचारा बढ़ाने का प्रयत्न करें।

(२) युवक मंडल—इसमें १८ वर्ष से ४० वर्ष तक की आयु के लोग हों जिनका काम वृद्ध समाज द्वारा दिये गये सुझावों तथा कार्यक्रमों को रचनात्मक रूप देना हो। इसमें सभी प्रकार के आर्थिक, सांस्कृतिक, शिक्षा सम्बन्धी रक्षा-सम्बन्धी और जन-स्वास्थ्य-सम्बन्धी कार्य आ जाते हैं। इस आयु के लोगों में बड़ी महत्वाकांक्षा रहती है। अपने उत्तरदायित्व को निभाने की भावना भी तीव्र होती है। उनको समाज-सेवा के कार्य में लगाकर इनके व्यक्तित्व को विकसित किया जा सकता है। युवक मंडल के सदस्यों को एक स्थान पर इकट्ठे करने का प्रबन्ध होना चाहिए। इसके लिए पंचायत घर, ग्राम की पाठशाला या मुखिया की चौपाल अथवा दूसरा सार्वजनिक स्थान चुना जा सकता है। इसी स्थान पर एक पुस्तकालय का प्रबन्ध होना चाहिए। साथ-साथ समाचार-पत्र और रेडियो की व्यवस्था भी अवश्य हो। यहीं पर ज्ञान-विज्ञान की चर्चा हुआ करे। गांव के लोग अपने काम से निबटकर सायंकाल यहां इकट्ठे हों। संसार की नई-नई बातें सुनें। अपने आप को पहचानना सीखें। कभी आल्हा, कभी रामायण, कभी गीता तथा कुरान आदि की भी चर्चा रहे जिससे लोगों का नैतिक स्तर ऊंचा हो सके। स्वास्थ्य-विकास के लिए अखाड़े आदि की भी व्यवस्था हो।

कुछ चुने हुए त्योहारों को मनाने का भी कार्यक्रम रहना चाहिए, जिनमें नाटक, भजन-मंडली, कीर्तन, शिक्षाप्रद चलचित्रों तथा ऊंचे चरित्र के माने हुए सुप्रसिद्ध समाज सेवी सन्तों के भाषण आदि की व्यवस्था कराते रहना चाहिए। इससे समाज में संगीत, साहित्य और कला का विकास होता है और मानव सुसंस्कृत होता है। इससे ज्ञान की वृद्धि होती है। उनका मनोरंजन होता है जो उनके स्वास्थ्य तथा मस्तिष्क के विकास के लिए आवश्यक है।

(३) बाल जगत—तीसरा संगठन बालकों का करना चाहिए जिसमें ५ वर्ष से १३ वर्ष तक के बच्चे आ जायगें। इस आयु के बालक बड़े क्रियाशील होते हैं। वे रचनात्मक कार्य में बड़ा आनन्द लेते हैं। अनुकरण की मात्रा इस आयु में विशेष रूप से होती है। सायंकाल को उनके खेलने की व्यवस्था सामूहिक रूप से होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त मानसिक विकास और ज्ञानवृद्धि के लिए भाषणों, प्रतियोगिताओं, अन्त्याक्षरी की तथा प्राकृतिक दृश्यों को दिखाने की व्यवस्था होनी चाहिए।

महिला मंडल—पुरुषों की भांति महिलाओं को भी संगठित करना चाहिए। गर्भाधान-सम्बन्धी विज्ञान की जानकारी के साथ जन-स्वास्थ्य, घरेलू शिल्पकार्य, भोजन-निर्माण आदि कार्यों की जानकारी देने की व्यवस्था होनी चाहिए। हमें उन्हें सफल गृहिणी और सुयोग्य माता तथा आत्म-निर्भर महिला बनाना है। बिना उनके विकास के हमारी प्रौढ़ शिक्षा अधूरी है।

इस प्रकार के संगठित रचनात्मक कार्य से गांव के लोगों में विनम्रता, सहयोग, आत्मनिर्भरता का विकास होगा जो शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों में से है। इस प्रकार की प्रौढ़ शिक्षा की आज हमारे समाज को आवश्यकता है।

महाराऊ लखपत-रचित 'शिव-ब्याह'

अगरचंद नाहटा

भारतीय देशी नरेशों में कई राजा बड़े विद्या-विलासी और कला-प्रेमी हो गये हैं। जिनके कारण साहित्य और कला की बहुत बड़ी उन्नति हुई। उनकी राजसभा में विविध विषय के विद्वानों का जमघट सा जमा रहता था। एक तरह से वे उस सभा के आदर्श शृंगार थे। जिस प्रकार महलों एवं मकानों को सुसज्जित करने के लिए विविध भांति के फरनीचर, चित्र व साज सामान लगाये जाते हैं, उसी प्रकार राज-सभा बाह्य सामानों के साथ इन विद्वानों की प्रतिभा से खिल उठती थी। कलाकोविद्-गण अपनी कलाओं द्वारा राज-परिवार एवं आगत जन-समुदाय को आकर्षित व चमत्कृत करते रहते थे। आजकल रेडियो आदि सुलभ-साधनों द्वारा जिस प्रकार घर में बैठे हुए, विविध भाषण व गायन सुनकर आनन्द उठाया जा सकता है, प्राचीनकाल में वैसी सुलभता न थी। राज-सभाओं में जब विद्वानों की शास्त्रीय चर्चा होती या संगीत एवं नृत्य का कोई आयोजन होता तो लोगों में नवीन उत्साह उमड़ पड़ता। हजारों दर्शक दूर-दूर से बड़े कष्ट सहन करके भी ऐसे अवसरों का लाभ उठाने में नहीं चूकते। कला-प्रेमी नृपतिगण जब नवीन राजप्रासाद बनाते, जन-साधारण के भक्ति-केन्द्र मंदिर बनाते, तो उनमें भी कला को प्रश्रय दिया जाता। जनता भी उन्हें देख-देखकर यथाशक्य अपने घरों को सुरुचिपूर्ण बनाने का प्रयत्न करती। 'यथा राजा तथा प्रजा।' जिस प्रदेश के नृपति धार्मिक, विद्या-विलासी व कला-रसिक होते, उनकी प्रजा भी सब प्रकार से समुन्नत और आदर्श होती।

राजस्थान के कई महाराजाओं का साहित्य-प्रेम और कला-प्रेम सर्वविदित है। उनके आश्रय में सैंकड़ों विद्वान व कलावन्त अपने साहित्य एवं कला की साधना में निरन्तर प्रगति करते रहते थे। कई महाराजा तो स्वयं बड़े अच्छे विद्वान होते, जिनके रचित ग्रन्थ आज भी उनकी प्रतिभा का परिचय दे रहे हैं। कच्छ के महाराउ लखपत भी ऐसे ही एक साहित्य-मर्मज्ञ और सुकवि-मण्डल नरेश थे। उनके विद्या प्रेम का परिचय 'जीवन-साहित्य' के पाठकों को फरवरी और मार्च के अंकों में प्रकाशित मेरे दो लेखों द्वारा हो ही चुका है। कच्छ जैसे गुजरात के निकटवर्ती प्रान्त के एक नरेश का व्रज-भाषा के प्रति आकर्षण, उस भाषा के सुमधुर साहित्य और व्यापक प्रभाव का परिचायक है। महाराउ अनेक कवियों एवं गुणी जनों के आश्रय दाता होने के साथ-साथ स्वयं भी एक सुकवि थे। उनके रचित 'शिव ब्याह' नामक व्रजभाषा के काव्य में, उनकी काव्य-प्रतिभा एवं व्रज-भाषा के अनन्य अनुराग का भलीभांति परिचय मिल जाता है। इस ग्रन्थ का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत लेख में उपस्थित किया जा रहा है।

महाराजा लखपत के कला-प्रेम और व्यक्तित्व के सम्बन्ध में मुनिवर्य विद्याविजयजी ने 'म्हारी कच्छ-यात्रा' नामक पुस्तक के पृष्ठ ५५ पर निम्नोक्त महत्वपूर्ण उल्लेख किया है

"कच्छ अत्यारे पण कारीगरो नुं एक सुन्दर स्थान ओलखाय छे। कहेवाय छे के ते महाराउ श्री लखपत नें आभारी छे। कारण के तेमने सारा-सारा कारीगरो ने बोलावी, उत्तेजन आपी हुनर वाज बनाव्या हता। कच्छ ना महाराजाओ मिर्जा अने महाराजाधिराज कहे वाय छे ते गौरव पण महाराउ श्री लखपत ने आभारी छे। कारण के मिर्जा री पदवी बाद ब्याह आलमगीर अने महाराजाधिराजनी पदवी काबुलना अमीरे महाराउ श्री लखपतने आपी हती।"

महाराऊ श्री लखपत के रचित 'शिव-ब्याह' की पूर्णता अन्तिम पद्य के अनुसार संवत् १८१७ के श्रावण शुक्ला ५ को हुई थी। इसके पद्यों की संख्या प्राप्त प्रति में ३७३ दी है; पर पद्यांक २० के बाद १ से संख्या चालू कर दी गई है जबकि वास्तव में वहां संख्या २१

लिखी जानी चाहिए थी। अत २० पद्यो की सख्या और जोड दी जाय तो पद्याक ३१३ होंगे। ग्रथ म दोहो के साथ कवित्त छप्पय, मोतीदाम अढली, आर्या कुण्ड, त्रिभगी दडकला कमल, सवैया चौपाई, पद्मावती, वेताल, य छन्द भी प्रयुक्त हे।

ग्रन्थ का विषय जैसा कि नाम से स्पष्ट है 'शिवजी का विवाह' है। ग्रथारम्भ शिव के स्वसुर दक्ष प्रजापति द्वारा शिव के प्रति किये गये तिरस्कार व अपमान से होता है। दक्ष न अपने यज्ञ मे अन्य सब व्यक्तियो को निमन्त्रण देकर बुलाया पर वे शिव-जैसे फक्कड को फूटी आखो से भी देखना नही चाहते थ। इसलिए शिव को (दामाद होते हुए भी) निमन्त्रित नही किया। सरल स्वभावा शिवपत्नी गौरी को अपने पिता के यज्ञ को देखने के लिए बडी उत्सुकता थी। इसलिए उसने सदाशिव से प्रार्थना की कि यज्ञ म चला जाय पर शिव ने बिना निमन्त्रण जाना अनुचित बतलाया। गौरी ने सोचा होगा कि सभव है कि पिता की विस्मृति से या प्रेषित व्यक्ति के किसी कारण न पहुचने से ही निमन्त्रणपत्र नही मिला होगा। इसलिए उसन शिव से अपन जाने के लिए अनुमति मागी और शिव के गणो के साथ वह अपने पिता के घर जा पहुची। उसके जाने पर भी उसे अनादर ही मिला। शिव का अपमान देखकर उनके गण शात न रह सके और उन्होंने जो उपद्रव मचाए वे सर्वविदित है।

महादेव ने जगत के उत्पत्ति के प्रधान कारण कामदेव को अपन ध्यान और तेज के बल से भस्म कर डाला। उसके बिना प्रजा की उत्पत्ति और उत्पत्ति के बिना विश्व की स्थिति असभव देखकर ब्रह्मादि विश्व व्यवस्थापको को चिन्ता हो उठी। अन्त में विचार विनिमय करते भगवान विष्णु न अपना एक सुझाव या निश्चित उपाय उपस्थित किया कि माया की आराधना से उमा को शिवजी म कामदेव जागृत करने के लिए भेजा जाय। विष्णु के मतानुसार वह ध्यानस्थ शिव को अवश्य ही विचलित कर देगी। परामर्शानुसार उमा को भेजा गया और उसने भीलनी का अत्यन्त ही मोहनी रूप धारण कर शिवजी के आसपास का सारा वातावरण कामोद्दीपन के उपयुक्त बना दिया। कवि ने उसका सुन्दर वर्णन ग्रन्थगत पद्याक ४७ से ५९ तक में किया है। यहां केवल उस में से ३ पद्य ही उद्धृत किये जा रहे हे

"चन्द्र चूड के चिहुतरफ, बाग कियो विस्तार।
बोए तिनिकों बाग थल, करि नीके केदार।४७।

छन्द त्रिभगी :

घन घटा रचाई घरर घुराई, तडित लताई विसतारैं।
बरषा बरसाई, झरी झुकाई, भूमि भराई जल धारैं।
उलभरी उगाई, अकुर आई, सरस सुहाई छबिवारैं।
इहि विधि एकगी मदति अनगी, भामिनि भगी रसवारै
छवि पत्रनि छाई,उर लगि आई, द्युति दरसाई हिय हरनी।
बहु सौरभ बहकीं,मजरी महकी, गुन सौं गहकी छल छरनी
फूलनि सौं फूली, मूल अमूली, फिर जड मूली ठिठ डारैं
इहि विधि एकगी रग सुरगी, भामिनि भगी रसवारैं।
रागनि मल्हारी, उमसु उचारी, शिव सुखकारी कामिकरी
ससबोई सुल्लै,जहां शिव भुल्लै, छाकनि छिल्लै त्रिग उघरी
नव जोवनमाती, कान्त किराती, छबियर छाती नजर परी
स्मर औसर पायो, चाप चढायो, चित्त चलायो भाय अरी

तत्पश्चात् पद्याक ५५ से उमा की शरीर शोभा, वेश-भूषा और हावभाव का वर्णन ७२ वें पद्य तक कवि ने बड़ा ही मनोरम किया है। अन्त में भीलनी अपने सम्मोहन से शिवजी में काम जागृत कर देती है। और वे भीलनी से काम प्रार्थना करने लगते है। भीलनी शिव जी का तिरस्कार करती है। बहुत उपालम्भ देती है, पर कामी को अपनी सुध-बुध नही रहती। वह विवेक विकल होकर, कर्तव्याकर्तव्य को भूल जाता है। इसलिए कामी को अधे की सज्ञा दी गई है। शिव और उमा का कथोपकथन कवि ने पद्याक ७६ से ११४ तक बडे विस्तार से दिया है। शिवजी को किसी तरह छेड-छाड करने से बाज नही आते देख उमा अपने कुटुबी जनो को जोरों से पुकारकर बुलाती है। शिवजी का उनसे युद्ध होता है, पर उनके तेज के सामने वे टिक नही पाते। सब भूमि सात् हो जाते हैं। भीलनी अपने कुटुम्बी जनो का यह हाल देखकर जोरा से विलाप करती है जो कवि ने २२ पदो में गुम्फित किया है। शिवजी उसे राजी करने के लिए मीठे वचनो से सात्वना देते है और यदि वह उनकी

प्रार्थना स्वीकार करती हैं तो मृत व्यक्तियों को जिला देने का प्रलोभन भी देते हैं । उमा के अनुरोध से शिव मदन को जीवित करते हैं । उनके चले जाने पर उमा शिव से तांडव-नृत्य देखने की इच्छा प्रगट करती हैं । शिव उसे स्वीकार कर नट का वेश धारण करते हैं । कवि दिल खोलकर उनके नृत्य का वर्णन करता है । वहां गीत, वादित्र, राग-रागिनी, ताल, नृत्य, शब्द, आदि का विवरण और वर्णन देकर अपनी संगीत और नृत्य की जानकारी का कवि ने अच्छा परिचय दिया है । इस वर्णन के कुछ पद्य नीचे दिये जा रहे हैं ।

"आदि हे ईश अविकार भाउ । सविकार भये सर्व प्रभाउ ।
लय जोग छांड़ि भो भोग लिन्ह पहरयो वागो चुनि-चुनि प्रवीन ॥४७॥

चतुराई चंदन किये चित्र, उढनी सिर ओढी प्रति पवित्र ।
बिच बांहे बांधे बाजु बंध, सुचि फूलमाल पहनी सुगन्ध
लह लहतहार मोतिनि लंब, लह गाजु लाल पहरयो प्रलंब
मकराकृत कुंडल श्रवन मंजु, छविदार भनों ब्रज छबि निकुंज ॥४९॥

गीतभेद :

ईधातुक चव धातु चउ, धातुक कह लख धीर,
ईधातुक हेतुक धरे, त्रिधा तीन तुक सीर ॥५७॥

अगले पद्य में 'संगीत-रत्नाकर' ग्रन्थ का उल्लेख किया है। फिर गति के भेदों का वर्णन कर छ राग, छत्तीस रागिनी, ३६ वाद्य-यंत्र का विवरण दिया है। ताल और नृत्य के भेदों का वर्णन कर, पखेरा के शब्द और संगीत का विवरण है। नृत्य के निम्नोक्त १० भेद बतलाये है

"नृत्य १ नाट्य २ अरनृत्त ३ सुनी के, ताडव ४ नर्त ५ लास्य ६ सुख जी के । विषम ७ लघू ८ पैर ९ निरी बेरनों गोडिल १० दस विधि नाच सुकरना ॥२६॥"

फिर विभाव, नो रस, हस्तक आदि का वर्णन है।

शिव के इस नृत्य से उमा प्रसन्न होकर उन्हें कहती है कि मैं हिमाचल की पुत्री हू, मुझे आपसे विवाह करना स्वीकार है। मैं अपने माता-पिता को सूचना देती हूं। वे आपको निमन्त्रित करेंगे। आप बरात सहित पधार कर मुझे सहर्ष अपनी अर्द्धांगिनी बनाइएगा।

उमा अपने पिता के घर पहुचती है। माता उसकी इच्छा को हिमाचल से व्यक्त करती है। वे सदाशिव को लग्न-पत्र भेजते हैं और औरों को आमन्त्रणपत्र। लग्नपत्र पाकर शिव अपने बरातियों को एकत्रित करके, विवाह करने जाते हैं। विवाह का वर्णन कवि ने पद्यांक २९४ से ३५२ तक विस्तार से किया है। यथाविधि विवाह बड़े धूमधाम से होता है। सधवा स्त्रियां मगल-गान गाती है। पुरोहित वर-वधू का गठ-बन्धन करता है। वेदोक्त मत्रों से विवाह-विधि सपन्न होती है। पिता कन्या-दान करता है। फिर बरातियों की भोजन से बड़ी भक्ति की जाती है। खाद्य-पदार्थों की नामावली कवि बड़े विस्तार से देता है। जिससे उसकी विविध खाद्यों के प्रति आसक्ति भलीभांति स्फुटित होती है। पाठकों का भी उन खाद्यों के रसास्वाद करने को मन ललचायगा, इसलिए पद्य यहां उद्धृत करना आवश्यक समझता हूँ।

रसवतियं ल्याये रुचिर, परसत सुर नर पांति ।
जिहि जो भावं सो धरे, खुसि मन जीमत खांति ॥२२॥
लापसीस लडुवानी परसत, सीरा पूरी
पेड़े, घेवर, पाक रुचत, नुखती, सह शरी ॥
सुरमें, साटे खूब हेसमी लखि दिल हर त,
गूदपाक गुलपुले गगन गंठिये बहु बरसित ॥
हलुआ अरु गुलाव सु पाक हुव मोतीचूर, मनो हरहिं ।
दुति वेत दमीदा, घेलचीदाने, युक्त भोजन करहिं ॥२३॥

फिर शिव की सालियां आदि व्यंग-रूप में गीत गाती है। इधर शिव की बरात की स्त्रियां हिमाचल को गालियां गाती हैं। इस तरह विवाहान्तर उमा को लेकर शिव अपने स्थान को आते है। बराती अपने स्थान को चले जाते हैं। शिव के साथ शक्ति का सम्मेलन बड़ा आनन्ददायक होता है। अन्त में कवि शिव की स्तुति करता हुआ ग्रन्थ समाप्त करता है।

बचपन

रामनारायण उपाध्याय

बचपन में मनुष्य अनेकों तरह के रंगीन स्वप्न बुनता आया है।

न जाने क्यों इस अवस्था में उसे, साबुन के बुलबुलों में फुकने और गुब्बारे बनाकर उड़ाने का अद्भुत शौक होता है।

लेकिन अपने ही सांसों का बोझ पाकर जब ये गुब्बारे हवा में कुछ ही दूर जाकर फूट जाते हैं, तो बच्चे उन्हें पुनः पाने के लिए मचलते हैं।

सृष्टि में नित्य यह खेल चलता रहता है। लेकिन आज तक कभी भी फूटे हुए गुब्बारों को लौटाया नहीं जा सका।

बड़े होने पर मनुष्य के बनाये हुए स्वप्न भी जब इसी प्रकार टूट जाया करते हैं तो आदमी उनपर रुदन करता है। लेकिन बच्चों के रुदन की तरह विराट प्रकृति के समक्ष मनुष्य के इस रुदन का कोई मूल्य नहीं है।

(२)

बचपन में मनुष्य अनेकों अर्थहीन, मूल्यहीन, खाली वस्तुओं से अपना मनोरंजन करता आया है।

बच्चों को दियासलाई की खाली डिबियों, सिगरेट के खाली खोलों और इसी तरह की अनेकों व्यर्थ की खाली चीजों से खेलने का शौक होता है।

यह शायद इसलिए कि तब उसका मन इतना भरा होता है कि वह अपने मन को जिस किसी भी चीज के साथ मिला देता है वही आनंदमय हो उठती है।

लेकिन बड़ा होने पर उसका मन इतना खाली हो उठता है कि तब उपयोगिता के नाम पर जुटाई गई अनेकों वस्तुएं भी उसमें 'रस' की सृष्टि नहीं कर पातीं।

(३)

वर्षा के दिनों में बच्चों को, अपने घर के सामने से बहनेवाले पानी में, कागज की नावें तैराने का शौक होता है।

वे नाव को पानी में छोड़कर उसके साथ दूर तक दौड़ते चले जाते हैं। जहां भी नाव के मार्ग में रुकावट आती है, वे उसे अपने नन्हें हाथों से गति देते आये हैं।

यदि नाव किसी स्थान पर जाकर टूट या डूब जाती है, तो वे वापस लौटकर पुनः दूसरी नाव बनाकर तैराते हैं। नावों के टूटने या डूबने से, उनके खेल में कोई फर्क नहीं आ पाता। वरन् वे नई नाव में नये खेल का आनंद पाते आये हैं।

वे जब नाव को बनाकर पानी पर रख देते हैं तो ऐसे लगता है मानो वे कोई विराट चालक और द्रष्टा हों। बड़े जहाज को बनानेवाला भी, जहाज के समक्ष, महज उसका एक पुर्जा सा लगता है। लेकिन नन्हीं-सी नाव के समक्ष बच्चे ऐसे प्रतीत होते हैं मानो सृष्टि के एक किनारे पर खड़े होकर, स्वयं सृष्टिकर्ता, अपने द्वारा निर्मित जीवन के जहाजों के तैरने और उलटाने का खेल देख रहे हों।

(४)

बच्चे जब स्लेट पर पहला अक्षर लिख देते हैं, तो इतने खुश होते हैं मानो उन्होंने अखिल ब्रह्मांड का ज्ञान प्राप्त कर लिया हो।

यद्यपि, न तो, उस अक्षर का कोई डीलडौल होता, न कोई अर्थ होता। न उससे किसी शब्द की शुरुआत होती, न उसपर आकर कोई वाक्य समाप्त होता। स्लेट पर लिखे होने के कारण, उसका कोई स्थायित्व भी नहीं होता।

लेकिन बच्चे उसे लिखकर शायद इसलिए खुश होते हैं कि धरती पर आने के बाद यह उनकी 'पहली रचना' होती है।

बड़ा होने पर तो आदमी अनेकों काम की और ज्ञान की बातें लिखता आया है, लेकिन बचपन की कुआरी अंगुलियों द्वारा मिट्टी की खड़िया से, मिट्टी की स्लेट पर, लिखी उस अनमिटी लिखावट का सुख जीवन में फिर कभी लौटकर नहीं आता।

(५)

मैं जब अपने काम की फाइलें जमाता हूं और रद्दी छांटता हूं, तो बच्चे मुझे चारों ओर से घेर लेते हैं। और प्रत्येक फेंके हुए कागज की ओर मतृष्ण दृष्टि से देखते हुए पूछते हैं कि क्या यह रद्दी है?" यदि वह काम का कागज हुआ, तो उसके प्रति उन्हें कोई आकर्षण नहीं होता लेकिन यदि वह रद्दी हुआ, तो उसे पाकर उनका मन हर्ष से ललक उठता है।

और मैं देखता हूं उन रद्दी-सद्दी कागजों के साथ अपनी अंतरात्मा का असीम प्यार मिलाकर वे उनसे कुछ इस कदर खेलते आये हैं कि उनके समक्ष मेरा सम्पूर्ण कामकाजी जीवन और ज्ञान की फाइलें भी फीकी पड़ जाती हैं, और मैं सोचता कि काश वे बचपन के दिन एक क्षण को भी लौट पाते।

(६)

बचपन में मनुष्य का मन प्रकृति से कुछ इस कदर तदाकार होता है कि वह घर बैठे ही पक्षियों के साथ खेलने, बादल से आंख-मिचौनी करने और इन्द्रधनुष पर झूलने के स्वप्न देखता आया है।

उसका मन जब मचल उठता है तो चिड़िया रानी की सगाई करने, भालू दादा की बारात जाने और चन्दा मामा के गीत गाने से ही समझता आया है।

लेकिन बड़ा होने पर जब आदमी ऐसी बातें करता है तो घर-परिवार जमीन-जायदाद और लोहे-लंगर में बन्धी दुनिया, उसे पागल ठहराती आई है।

(७)

बच्चों की दोस्ती और झगड़े भी बड़े ही दिलचस्प होते हैं। खेलते-खेलते दो बच्चों में जब खटपट हो जाती है तो वे बड़े आदमियों की तरह व्यर्थ की गालीगलौज, या मारपीट नहीं करते, वरन् बड़ी ही समझदारी से, बात करते हुए अपनी एक-एक अंगुली निकाल उन्हें टेढ़ी कर एक दूसरे से छुआते हुये "कट्टी" ले लिया करते हैं। मानो वे अपनी तिरछी अंगुली के जरिये, मन की टेढ़ को व्यक्त करते हुए, कहते हैं कि मन में जहां तनिक भी टेढ़ आ जाती है वहां कुछ भी नहीं जुड़ता। अतएव वे बड़ी ही समझदारी से एक-दूसरे से दूर हो जाया करते हैं।

लेकिन कुछ ही समय के बाद, जब मन का मैल साफ हो जाता है तो वे पुनः नजदीक आकर, अपनी दो सीधी अंगुलियां आगे बढ़ाकर, उन्हें परस्पर एक-दूसरे से छुआते हुए, अत्यन्त स्नेह से उन्हें चूमकर, पुनः अपनी 'दोस्ती' जारी करते आये हैं। और तब मानो—खुले हाथों, खुले मन, वहां सबका स्वागत होता है।

और यों खेल-ही-खेल में—बचपन समाप्त हो जाता है।

(पृष्ठ ३५८ का शेष)

१५३ श्री लखमीचंद मुछाल, इन्दौर
१५४ स्टार पेपर मिल्स लि०, सहारनपुर
१५५ बनाय मारसेट वैष्णव हाईस्कूल, इन्दौर
१५६ कुसुम प्रोडक्टस लि०, कलकत्ता
१५७ लंका एण्ड कं०, कलकत्ता
१५८ श्री केशवप्रसाद गोयनका, कलकत्ता
१५९ श्री बंशीधर डागा, कलकत्ता
१६० सेठिया पुस्तकालय, कलकत्ता
१६१ श्री ताराचंद साबू, कलकत्ता
१६२ जैन संस्कृत कमर्शियल हाईस्कूल, दिल्ली
१६३ युवराज जनरल लाइब्रेरी, उज्जैन
१६४ श्रम शिविर कार्यालय उज्जैन
१६५ श्री बद्रीलाल भोलाराम, इन्दौर
१६६ श्री राजकुमारसिंहजी, इन्दौर
१६७ श्री मन्नालाल लच्छीराम एंड संस, इंदौर
१६८ श्री मोतीलाल लाठ, कलकत्ता
१६९ श्री हंसराज गुप्ता, दिल्ली
१७० श्री नंदलालजी भुवालका, कलकत्ता
१७१ रोहतक एण्ड हिसार इलेक्ट्रिक सप्लाई क. हिसार
१७२ श्री पी एम बी गुजराती कालेज, इन्दौर
१७३ कल्याणमल मिल्स लि०, इन्दौर
१७४ श्री गोरधनदासजी मुछाल, इन्दौर
१७५ श्री भंडारी क्लब, इन्दौर
१७६ श्री मालवा मिल्स लाइब्रेरी इन्दौर
१७७ श्रम शिविर, मजदूर संघ, इन्दौर
१७८ श्री जाल ब्रदर्स लिमिटेड, इन्दौर
१७९ श्री मोहनलालजी साघी, इन्दौर
१८० श्री सार्वजनिक वाचनालय, हातोद
१८१ श्री मुन्नालालजी अग्रवाल, इन्दौर
१८२ सी. आर. एम. टी इन्टर कालेज, नैनीताल
१८३ श्री विश्वेश्वरलालजी, देवास
१८४ हरिजन उत्थान कार्य कमेटी, नगरपालिका, धार
१८५ म्युनिसिपल बॉयज हा० से० स्कूल, नई दिल्ली
१८६ मोदी स्पिनिंग एण्ड वीविंग मि क. लि., मोदीनगर
१८७ सोभागचन्द केसरीमल बाफना, बड़वाह

स्वभाव और गुण

वृजकृष्ण चांदीवाला

'स्वभावस्तु प्रवर्तते' पर थोड़ा और भी विचार कर लें। पृथ्वी पर करोड़ों मनुष्य आबाद हैं, मगर जैसे एक से दूसरे की सूरत नहीं मिलती, वैसे ही एक से दूसरे का स्वभाव भी नहीं मिलता। एक ही माता पिता से चार बालक पैदा होते हैं। माता पिता उनका पालन-पोषण और शिक्षण बिल्कुल एक समान रूप से करते हैं फिर भी उनमें से हर एक अपने-अपने स्वभाव के अनुसार बर्तता है। किसी का स्वभाव तेज देखने में आता है किसी का शान्त। कोई संसार में आसक्त रहना पसन्द करता है कोई उससे विरक्त। किसी को मीठी चीजें खानी पसन्द हैं किसी को नमकीन। गरज कि हर बात में कुछ-न-कुछ अन्तर रहता है। कोई विद्या अध्ययन करके शिक्षक बनना चाहता है कोई फौज में भरती होकर युद्धकला सीखना चाहता है तीसरा व्यापार को पसन्द करता है तो चौथा सेवाकार्य में ही लगा रहता है। इस प्रकार अपने-अपने स्वभाव के अनुसार उसका जीवन ढलता चला जाता है। अब इसमें यदि हस्तक्षेप किया गया तो वह जीवन सफल न बन सकेगा। प्राय देखने में आता है कि मनुष्य अपने स्वभाव को स्वयं ही समझ नहीं पाता और गलत रास्ता पकड़ लेता है। इसी कारण जीवन में उसे अनेक असफलताओं का सामना करना पड़ता है। इसी कारण आरम्भ में कहा गया था 'अपना धर्म आचरण करने में भले ही कठिन हो और दूसरे का धर्म आचरण करने में आसान दिखाई दे फिर भी अपने धर्म का पालन करता रहे चाहे उसमें मृत्यु का ही सामना करना पड़े क्योंकि परधर्म भयावह है।'

स्वभाव का लिहाज रखकर ही पुराने जमाने में समाज की व्यवस्था की गई थी और उसे चार वर्णों में विभक्त कर दिया गया था। वह वर्ण जन्म से नहीं माने जाते थे जैसा कि बाद में बन गया, बल्कि गुण और कर्म के विभागानुसार नियत किये हुए थे, भगवान ने स्वयं बताया है कि .

'मैंने चारों वर्णों को उनके गुण और कर्म के विभागानुसार बनाया है।' ४ १३ ॥

चार वर्ण थे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इन में कोई उच्च और नीच नहीं था, किसी का कर्म पुण्य-कारक और किसी का पापकारक नहीं माना जाता था। समाज में चारों वर्णों को बराबरी के अधिकार थे और समाज के प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण अधिकार था कि अपने स्वभाव के अनुसार वह जिस वर्ण का चाहे, बन जाय। समाज को चारों वर्णों की ही समान भाव से आवश्यकता थी। तिलक महाराज लिखते हैं

'पुराने जमाने के ऋषियों ने श्रम-विभाग रूप चातुर्वर्ण्य संस्था इसलिए चलाई थी कि समाज के सब व्यवहार सरलता से होते जावें, किसी एक विशिष्ट व्यक्ति या वर्ग पर ही सारा बोझ न पड़ने पावे और समाज का सभी दिशाओं से संरक्षण और पोषण भलीभांति होता रहे। यह बात भिन्न है कि कुछ समय के बाद चारों वर्णों के लोग केवल जाति मात्रोपजीवी हो गये, अर्थात् सच्चे स्वकर्म को भूलकर केवल नामधारी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र हो गये। इसमें संदेह नहीं कि आरम्भ में यह व्यवस्था समाज धारणार्थ ही की गई थी और यदि चारों वर्णों में से कोई भी एक वर्ण अपना धर्म अथवा कर्तव्य छोड़ दे अथवा यदि कोई वर्ण समूल नष्ट हो जाय और उसकी स्थान-पूर्ति दूसरे लोगों से न की जाय, तो कुल समाज उतना ही पंगु होकर धीरे धीरे नष्ट होने लग जाता है अथवा वह निकृष्ट अवस्था में तो अवश्य पहुंच जाता है।' यही बात भगवान वर्णों के सम्बन्ध में उद्धव से कहते हैं

'हे उद्धव! वर्ण स्वभाव से जाने जाते हैं। शम, दम, तप शौच, सन्तोष, क्षमा कोमलता, मेरी भक्ति, दया और सत्य ये ब्राह्मण के स्वभाव हैं। तेज, बल, धैर्य शूरवीरता सहनशीलता, उदारता, पुरुषार्थ, स्थिरता, ब्रह्मण्यता और ऐश्वर्य यह क्षत्रिय वर्ण के स्वभाव हैं। आस्तिकता, दान-

शीलता, दम्भहीनता, ब्राह्मणो की सेवा, धन-सचय से मंतुष्ट न रहना यह वैश्य वर्णो का स्वभाव है । ब्राह्मण, गौ और देवताओ की निष्कपट भाव से सेवा करना और उसीमे जो कुछ मिल जाय उसमें सन्तुष्ट रहना यह शूद्र वर्ण के स्वभाव है ।

अपवित्रता, मिथ्याभाषण, चोरी करना, नास्तिकता, व्यर्थ कलह करना, काम, क्रोध और तृष्णा ये अन्त्यजो के स्वभाव हैं । अहिंसा, सत्य, अस्तेय, काम, क्रोध, लोभ से रहित होना और प्राणियो की प्रिय तथा हितकारिणी चेष्टा में तत्पर रहना यह सब वर्णो के सामान्य धर्म हैं ।'

एक मनुष्य-स्वभाव ही क्या ससार मे नाम और रूप से जाना जानेवाला कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं है, जिसका अपना स्वभाव, अपना गुण न हो । भगवान ने कहा है -

पृथ्वी मे या स्वर्ग मे देवताओ के मध्य ऐसा कुछ भी नही है जो प्रकृति से उत्पन्न हुए इन तीन गुणो से मुक्त हो ॥ १८. ४०. ॥

जैसा बताया गया है, हर वस्तु का अपना स्वभाव जुदा होता है और पदार्थ असंख्य है तब फिर स्वभाव का पता कैसे लगे ? इसी सुगमता के लिए भगवान ने स्वभाव को प्रकृति से उत्पन्न हुए तीन गुणो मे बाट दिया है, वह हैं १. सत्व, २. रजस्, ३ तमस् । इन तीनो से क्या जीव और क्या पदार्थ सब बंधे हुए हैं । अब यदि यह समझ लिया जाय कि सत्व के क्या लक्षण हैं, रजस् के क्या है और तमस् के क्या है तो फिर किसी के भी स्वभाव को समझने में बहुत आसानी हो जाती है और वह व्यक्ति स्वय भी यह जान जाता है कि मेरी स्थिति क्या है और मुझे क्या करना है और दूसरो को भी समझने मे कठिनाई नही रहती कि अमुक व्यक्ति या पदार्थ किस कोटि का है । गुणो के सम्बन्ध मे भगवान कहते हैं :

यह जीव जो अविनाशी हैं उसे यह देह के सम्बन्ध में बाधते हैं' १४. ५. ॥ यह तीन गुण निर्विकार आत्मा को देह में कैसे बाध लेते हैं यह जरा समझने की बात है ।

कहा जाता है कि हम जो-कुछ कर्म करते हैं उनका फल हमें भोगना ही पडता है । कर्मफल भोगने के लिए ही हमें बार-बार जन्म लेना पडता है और मरना पडता है । जबतक कर्मफलो का भोग समाप्त नही हो जायगा, यह जन्म-मरण का सिलसिला जारी रहेगा । यह तीन गुण आत्मा के तो हैं नही, वह तो गुण तीत और निर्विकार है । किन्तु जबतक कर्मफल समाप्त नही होता, शरीर जारी रहेगा और इसलिए आत्मा को शरीर मे रहना पड़ेगा । वास्तव में इन तीनो गुणो के सिवा कोई कर्ता है ही नही । इसलिए मनुष्य जब जन्म लेता है तो पूर्वजन्म के गुणो के सस्कारो को ही साथ लेकर जन्मता है । उसी पर से उसका स्वभाव निर्माण होता है । इसलिए यह तीनों गुण अविनाशी आत्मा को देह मे बाधने मे सहायक होते हैं । अब यदि हम गुणो के लक्षणो के चित्र का थोडी देर अध्ययन कर ले तो सब बातें हमारे लिए साफ हो जाएगी ।

सत्व—निर्मल होने के कारण प्रकाशक और आरोग्य-कर होना हैं । वह देही को सुख और ज्ञान के सम्बन्ध मे बाधता हैं । यह आत्मा को शान्ति एव सुख का सग कराता हैं ।

रजस्—यह राग-रूप है । तृष्णा और आसक्ति इसका मूल है । यह देहधारी को कर्म मे बाधता है । यह कर्म का सग कराता है ।

तमस्—यह अज्ञान-मूलक है । यह देहधारी मात्र को मोह मे डालता है और असावधानी, आलस्य तथा निद्रापाश मे बाधता है । यह ज्ञान को ढककर प्रमाद का सग कराता हैं ।

यहा यह सब भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि किसी जीव या पदार्थ में कोई गुण अकेला नही रहा करता । तीनो का मिश्रण होता है, लेकिन जिस गुण की जिस समय अधिकता होती है, प्रधानता होती है, उसी गुण से वह जाना जाता है । जब रजस और तमस दबता है तो सत्व प्रधान हो जाता है, सत्व तथा तमस् के दबने से रजस प्रधान हो जाता है और सत्व तथा रजस् के दबने से तमस् प्रधान हो जाता है । अब यह कैसे पता लगे कि किस समय कौन-सा गुण प्रधान है ? वह इस प्रकार है :

सब इंद्रियो द्वारा इस देह में जब प्रकाश और ज्ञान का उद्‌भव होता है, तब सत्वगुण की वृद्धि हुई ऐसा समझ लो । जब लोभ, प्रवृत्ति, कर्मो का आरम्भ, अशान्ति और इच्छा का उदय हुआ हो तो समझो कि रजोगुण की वृद्धि हुई और जब अज्ञान, मन्दता, असावधानी और मोह उत्पन्न

हो तो समझो कि तमस् बढ़ गया।

भगवान ने गुणों की यह व्याख्या करके हमारे लिए एक सीधा गुर बता दिया। सुनार के पास तुम सोने का जेवर लेकर जाओ और खरीदने को कहो तो वह जेवर के घड़न में जो मजदूरी लगी, मीना करवाने में जो खर्च हुआ। इन सब बातों को नहीं देखता—सुनार के लिए सोना और केवल सोना ही मुख्य वस्तु है। वह खरे और शुद्ध सोने के दाम तुम्हें बता देगा। इसी प्रकार भगवान कृष्ण पाप और पुन्य की बात नहीं करते, वह तो तीन गुणों की बात करते और कहते हैं कि सिवा एक ईश्वर के जो गुणातीत है और सबकुछ इन तीन गुणों के आधिन हैं। चौबीसों घंटों में हर व्यक्ति में समुद्र की लहरों की तरह इन गुणों का उतार चढ़ाव होता ही रहता है। कभी सत्वगुण की लहर चल रही है कभी रजस् की तो कभी तमस् की। एक समय मनुष्य ज्ञान-चर्चा कर रहा है, भक्ति में चूर है अनासक्ति और त्याग से भरपूर है, दूसरे क्षण उसी व्यक्ति को देखो वह कर्म में प्रवृत्त है, तृष्णा और आसक्ति उसे घेरे हुए हैं। थोड़ी देर बाद उसे देखो तो वह निद्रा-अधीन होकर निश्चेष्ट पड़ा है। यह तीनों प्रकार की लहर चौबीसों घंटों में न मालूम कितनी बार आती और चली जाती हैं। मगर हर व्यक्ति में यह सामर्थ्य अवश्य है कि वह जिस गुण की चाहे अपने में प्रधानता कर ले। इसके लिए जीवन में बार-बार अवसर आता है। साथ ही पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण हर व्यक्ति में एक-न-एक गुण की प्रधानता रहती है, उसी पर से उसका स्वभाव आंका जाता है। मसलन एक बच्चा है, बचपन से ही उसका स्वभाव शान्त है, ज्ञान प्राप्ति की ओर उसकी प्रवृत्ति है, उसका अन्तःकरण निर्मल है। समझ लो वह सत्वगुण वाला है। भले ही उसमें दूसरे दोनों गुण भी हों वह सत्व गुण को बढ़ाने का ही प्रयत्न करेगा और यदि कभी संगति-दोष से या किन्हीं और कारणों से उसमें दूसरे गुणों की वृद्धि हो भी जाय, और वह कुछ भूल कर भी बैठे मगर वह अपने को सुधार लेगा और ठीक रास्ते पर आ जायगा। जो रजोगुण प्रधान है वह रात दिन काम में लगा रहेगा। हर काम में उसकी आसक्ति बढ़ती जायगी और तृष्णा उसकी शान्त न होने पायेगी। जो तामसी वृत्ति का है उसमें आलस्य की हद न मिलेगी, मूढ़ और मोह ग्रस्त। दिनभर सोना और किसी बात का नियम नहीं।

किन्तु जैसे सात्विक वृत्ति वाले का पतन हो सकता है, वैसे ही यह तमस् और रजस वृत्ति वाले सत्वगुणी भी बन सकते हैं। इसीलिए कहा है

'क्षिप्रं भवति धर्मात्मा।'

अब किसी का स्वभाव तुम उसके कर्मों से पहचानना चाहो तो कर्म भी तीन गुणों में विभक्त है। मसलन

सात्विक वृत्तिवाला जो कर्म करेगा, वह फलों का त्याग करके, आसक्ति और द्वेष के बिना सदा नियत कर्म को करेगा। कर्तव्य कर्म को करेगा। वह सदा यही सोचेगा कि कर्म करना मेरे अधिकार में है, उसका फल मेरे हाथ की बात नहीं है, इसलिए कर्मफल को वह अपना हेतु कभी नहीं बनायेगा और न ही कर्म का त्याग करेगा। बल्कि उसके सब कर्म सेवार्थ, परोपकारार्थ होंगे।

जो राजसी कर्मों को पसन्द करेगा, वह सदा कर्म-फल की इच्छा से, भोग की इच्छा से और यह अभिमान रखकर कि मैं करता हूं इस भाव से बड़े आयासपूर्वक करेगा। और जिस आदमी को देखो कि वह कर्म को परिणाम का, हानि का, हिंसा का और अपनी शक्ति का विचार किये बिना मोह के वश होकर कर रहा है, समझ लो वह तामस कर्म करने वाला है।

अर्थात् जो आसक्ति-हीन और अहंकाररहित है, जिसमें दृढ़ता और उत्साह है, जो सफलता-निष्फलता में शोक नहीं करता, वह सात्विक कर्ता है। जो कर्मफल की इच्छा वाला है, लोभी है, हिंसावान है, मलिन है, हर्ष और शोक वाला है, वह कर्ता राजस है और जो अव्यवस्थित, असंस्कारी, घमंडी, शठ, नीच, आलसी, अप्रसन्न चित्त और दीर्घसूत्री है वह तामस कर्ता है।

इसी प्रकार, ज्ञान, बुद्धि और धृति, सुख, भोजन, यज्ञ, तप और दान, त्याग और श्रद्धा आदि भी तीन गुणों वाली हैं। इन सबके भेदों को जानकर मनुष्य को अपना स्वभाव समझने में और दूसरों का स्वभाव पहचानने में कोई कठिनाई नहीं रहती और फिर मनुष्य अपने कर्तव्य और अपने धर्म को भली प्रकार स्थिर कर सकता है।

आमेर-जयपुर

अमृतलाल मोदी

हिन्दुस्तान में एक-से एक बढ़कर दर्शनीय स्थान हैं जिनमें ताजमहल व आबू बहुत प्रसिद्ध हैं। जयपुर शहर राजस्थान क्या भारत भर में एक बड़ा ही खूबसूरत शहर है। इसकी चौड़ी सड़कें, एक कतार में आया हुआ बाजार तथा गलियाँ—बड़े बड़े शहरों में भी नहीं पाये जाते। आजकल के नये बने हुए शहर भले ही योजनानुसार बने हों; पर पुराने शहरों में जयपुर एक ऐसा शहर है जो इस बात में अपना सानी नहीं रखता।

जयपुर खास में जंतर-मंतर, म्यूजियम, हवामहल, गल्ता आदि कई दर्शनीय स्थान हैं। उन सबका यहां पर मैं वर्णन नहीं करना चाहता। पर जो कला व कारीगरी मैंने आमेर के महलों में देखी, वह अद्वितीय है। अब उसे मैं यहां पाठकों के सामने प्रस्तुत कर रहा हूं।

आमेर जयपुर शहर बनने के पहले जयपुर की राजधानी था। सैकड़ों वर्ष हो गये; पर आमेर के महलों की सुंदरता व कारीगरी एकदम नई-सी प्रतीत होती है। यद्यपि काल का उसपर प्रभाव अवश्य पड़ा है; लेकिन बहुत कम पड़ा है। वहां राजधानी न होने और राजाओं के न रहने से बाग-बगीचे और तालाबों की जो सुन्दरता थी, वह मारी गई है—वे सब सूने पड़े हैं—केवल चिन्ह मात्र रह गये हैं। लेकिन महल जो कि कारीगरी के नमूने हैं अपनी सुन्दरता के कारण आज भी हजारों-लाखों यात्रियों को आकर्षित करते हैं और कम-से-कम सौ व्यक्ति प्रतिदिन औसतन अवश्य वहां आते होंगे।

जयपुर शहर से आमेर जाने के लिए हर समय मोटर तथा तांगे मिलते रहते हैं। आमेर जयपुर शहर से करीब पांच छः मील दूर पड़ता है। महलों में जाने के दो रास्ते हैं—एक रास्ता सीधा ऊपर जाता है और दूसरा रास्ता दलाराम बाग में होकर म्यूजियम के पास से जाता है।

यह दलाराम बाग अभी भी थोड़ा बहुत हरा-भरा रहता है। उसमें कुछ थोड़ी-सी मूर्तियों, सिक्के, पत्थर आदि का छोटा-सा म्यूजियम है। खास बड़ा म्यूजियम तो जयपुर शहर में अजमेरी दरवाजे के बाहर है।

इस बगीचे व म्यूजियम से डेढ़-दो फर्लांग की चढ़ाई है और वहां जाने पर बड़ा-सा दरवाजा आता है। इसमें इधर-उधर सिपाहियों आदि के रहने की कोठरियां बनी हुई हैं। दरवाजे में घुसकर बाईं ओर मुड़कर करीब १००–५० फुट पर खास महल में जाने के लिए चढ़ाई प्रारंभ होती है। पास ही दूसरा रास्ता है जो देवी के मंदिर में जाता है।

फिर एक दरवाजा आता है। वहां एक आदमी महल देखने के लिए प्रति व्यक्ति दो आने का टिकट देने के लिए बैठा होता है। इस टैक्स से महल दिखाने के लिए जो आदमी आते हैं, उनकी तनख्वाह चुकाई जाती है।

टैक्स चुकाकर घुसते ही सामने 'मजलस-विलास' याने 'दीवाने-आम' दिखता है और दाहिने हाथ की तरफ मुख्य शाही महल।

'मजलस विलास' वह स्थान है, जहां पर राजा लोग आम सभा करते थे। इसमें सामने की तरफ एक बड़ा-सा कमरा बना हुआ है और बाकी सारा भाग ढका हुआ है। लेकिन बंद नहीं पर खुला है। इसमें लगे हुए खम्भे एकदम चिकने हैं जिससे पुराने चूने की कारीगरी प्रगट होती है।

दाहिनी तरफ महलों में घुसने के लिए एक दरवाजा आता है—इसका नाम है गणेशपोल। गणेशपोल से अंदर घुसने पर दो चीजें आती हैं—दीवाने खास तथा शीशमहल। गणेशपोल से एक आदमी साथ आता है जो सारा महल दिखाता है।

दीवाने खास में खास दरबारियों की सभा होती थी और उसमें राजा लोग अपने राज्य की भलाई की बातों पर सलाह करते थे।

महल का मुख्य मकान—जो बहुत ही सुन्दर है—वह है शीशमहल। इसकी बनावट बड़ी सुन्दर है और खास दर्शनीय। इस तरह का काम आजकल के जमाने में होना यदि असंभव नहीं तो, कठिन अवश्य है।

शीशमहल में शीशे का जड़ाऊ काम हुआ है। सारे हिस्से में काच-शीशे-द्वारा तरह-तरह की चित्रकारी की गई है। हर जगह सभी दीवार तथा छत-सभी स्थानों में शीशे का काम है। शीशे को दीवार पर या छत में लगा कर ऊपर से मिट्टी द्वारा ढक दिया है। यह मिट्टी का काम इतना मजबूत सफेद साफ तथा सुंदर है जितना आजकल का सीमेन्ट का जाली का काम होता है। इस तरह से कई तरह की चित्रकारी-सा काम दिखाई देता है। सवाई मानसिंह के समय का मिट्टी का काम आज तक भी करीब-करीब वैसा ही है।

इसी शीशमहल में एक तरफ राजा के नहाने व सूर्य को अर्घ्य देने के लिए छोटा-सा चबूतरा है, इसी का एक भाग जस-मंदिर या जनाना हिस्सा है। उसमें सामने खड़े रहने से एक आदमी के असंख्य प्रतिबिम्ब दिखाई देते हैं। यहां की खिड़कियों में से देखने से नीचे का मोहनबाग तालाब जयपुर से आनेवाली सड़क आदि सब स्पष्ट दिखाई देते हैं। नीचे से ऊपर चढ़ाई वाली सड़क भी पूरी दिखाई देती है।

यहां से गणेशपोल के ऊपर आते हैं, जहां सुहाग मंदिर है। इस स्थान में बैठकर रानियां नीचे के मजलस विलास में होने वाली आम सभा को देखती थी। आगे बढ़कर जरा ऊंचे पर एक बड़ा-सा चबूतरा है जो सबसे ऊंचा है और उसे शरद् पूनों का दरबार कहते हैं। यहां पर राजा लोग शरद् पूनो के दिन चांदनी रात में अपना दरबार करते थे।

यहां पास ही खड़े हो कर—जो नहर के किनारे पर का सबसे ऊंचा भाग है, सारा आमेर शहर दिखाई देता है। यह आमेर का कस्बा एक छोटे-से गांव जैसा है तब भी इसमें कई मंदिर मस्जिद जैन मंदिर आदि हैं।

वहां से नीचे आने के बाद राजा मानसिंह के १२ पत्नियों के रहने के लिए १२ 'रावले' बने हुए हैं। ये ऊपर से भी दिखाई देते हैं, जो चारों तरफ तीन-तीन की कतार में बने हुए हैं। साधारण गृहस्थ के घर की तरह इनमें एक रसोड़ा, एक कमरा, दालान व थोड़ा खुला हिस्सा है। आगे बढ़कर हम सुख-मंदिर देखते हैं। इसके एक कमरे में महारानी का रिवडा रखा हुआ है।

पास ही एक जनाना बाग है और उसमें पानी जाने के लिए जो नाली बनी हुई है उसके अंदर की बनावट ऐसी है कि सफेद व काली धारियां चलते पानी में मछली की तरह दीखाई देती हैं। पास में ही एक-दो कमरे हैं जिनके किवाड़ चंदन के हैं।

तब हम आगे बढ़कर राजा की भोजनशाला याने डाइनिंग हाल में आते हैं। उसके पहले के एक कमरे में चूने पर पैंसिल जैसा काम दिखाई देता है और वह इतना गहरा है कि अंगुली घिसने से भी नहीं जाता। भोजनशाला में चित्रकारी इस खूबसूरती से बनाई हुई है कि उसमें हिन्दू-तीर्थ गया, पटना, पुरी, बद्रीनाथ, आदि सब आ जाते हैं। अर्थात् जब राजा भोजन करने बैठते तो सब तीर्थों के दर्शन हो जाते।

यहां ऊपर से आमेर के कस्बे के सिवाय पुराने महल भी दिखाई देते हैं—जिनमें से खास खास इस प्रकार हैं–जयगढ़, जिसमें आजकल मिलिट्री व मैगजीन रहती हैं। दूसरी तरफ को तालगढ़ जिला है—जो बहुत पुराना है और टूटफूट चुका है।

उधर एक तरफ पुराने मकान हैं—जिन्हें कदीमी महल कहते हैं और जहां पर, अभी तक भी, राजाओं के गद्दी पर बैठते वक्त शाही तिलक हुआ करते थे।

इस तरह आमेर का वर्णन पूरा होता है। यह बहुत ही आश्चर्यकारक बात है कि इतना पुराना होने पर भी अभी तक वही सुंदरता दृश्यमान है। सभी तरफ चूने की चिकनाई आज तक भी बनी हुई है। हां, कहीं-कहीं मामूली टूटफूट हुई है—फिर भी वह एक आकर्षण है।

हां यहां पर इन महलों से बाहर आकर बाईं ओर एक देवी का मंदिर है—उसके लिए कहा जाता है कि कोई राजा साहब किसी पुराने समय में बंगाल की तरफ गये थे—वहां से यह मूर्ति आई है। या तो इस मूर्ति का उद्धार करने से राजा साहब जीते थे और या फिर जीतने के कारण यह मूर्ति राजा साहब को भेंट की गई थी।

नीचे कस्बे में कई पुरानी इमारतें फूटी फूटी दशा में हैं और कई मकान अब भी रहने लायक हैं। कुछ प्राचीन हिंदू मंदिर भी दर्शनीय हैं। इसके बाद पुनः आमेर से हम मोटर या तांगे से जयपुर आ जाते हैं।

जौनी एपिलसीड

डब्ल्यू० डी० हेली

यह उन दिनों का किस्सा है जब लोगों ने पहले-पहल अमरीका के पश्चिमी प्रदेशों में बसना शुरू किया था। तब एक ऐसा अद्भुत अध्यवसायी व्यक्ति था जो सहिष्णुता और क्रियाशीलता की मूर्ति था; पर उसके इन गुणों में परप्रेरणा या परपीडन का लेश भी न था। यद्यपि उसका नाम आज कोई बड़ा-बूढ़ा ही कभी लेता होगा; पर यह नाम इतिहास में अमर होने लायक अवश्य है।

हमारे चरितनायक का प्रथम प्रामाणिक उल्लेख १८०१ में ओहायो प्रदेश के आसपास मिलता है। तब वह एक घोड़े पर सेब के बीज लादे हुए दीखता है। वह इन बीजों को लिकिंग क्रीक में और उसके आसपास के इलाकों में बोया करता था। इस प्रकार उसके हाथों से लगाया हुआ पहला बगीचा आइजक स्टैडन के फार्म पर तैयार हुआ।

उससे बाद के पाँच वर्षों में यद्यपि वह अपने उस विचित्र धंधे में लगा रहा होगा; पर हमें १८०६ की वसन्त ऋतु तक उसका कोई प्रामाणिक विवरण नहीं मिलता। फिर एक सुहावने दिन जैफर्सन काउण्टी (ओहायो) में आकर बसे एक व्यक्ति ने, ओहायो नदी की धार में बहती हुई एक विचित्र-सी डोंगी देखी जिसमें एक अद्भुत व्यक्ति सवार था और उसका अजीब सामान भी रखा था। यह व्यक्ति और कोई नहीं, 'जौनी एपिलसीड' ही था—जोनैथन चैपमैन, ओहायो नदी से लेकर उत्तरी झीलों तक और पश्चिम के उन मैदानी इलाकों तक जहाँ अब इण्डियाना राज्य बसा हुआ है, इसी नाम से हर झोंपड़ी में विख्यात हुआ। वह दो डोंगियों को जोड़कर सेब के बीजों का गट्ठर पश्चिमी सीमान्त की ओर ले जा रहा था ताकि वहाँ की बस्तियों में बाग-बगीचे लगाये जा सकें। यह अनुमान है कि उसका जन्म बोस्टन (मैसेच्यूसेट्स) में १७७५ में हुआ था क्योंकि उसके अपने एक बयान के अनुसार, वह २६ वर्ष की आयु में लिकिंग क्रीक पहुँचा था। उसने पश्चिमी पेन्सिल्वेनिया में सेब की शराब निकालने के कारखानों से बीज इकट्ठे किये, किन्तु सिर्फ १८०६ में ही उसने उन्हें ढोने के लिए डोंगी का सहारा लिया। बाद में तो उसने सेब के बीज अपनी पीठ पर ही लादकर इधर-से-उधर पहुँचाये। अपने पास के सब बीज खत्म हो जाने पर वह नये बीज हासिल करने के लिए पेन्सिल्वेनिया लौटता था और यदि झाड़-झंखाड़ वाले घने जंगलों या लम्बी यात्रा से कमज़ोर घोड़े काम न देते, तब उसने स्वयं चमड़े की थैलियाँ सी ली थीं। वह सेब के बीज खूब मज़बूती से सी हुई थैलियों में कभी-कभी तो घोड़े पर लादकर ले जाता था, पर अक्सर वह अपनी ही पीठ का उपयोग किया करता था।

घासफूस और झाड़ियों में साँप आदि विषैले जीव-जन्तु इतनी अधिक संख्या में मिलते थे कि चैंसलर नामक एक तत्कालीन प्रवासी ने लिखा है कि जब वह वहाँ जाकर बसा और अपनी थोड़ी-सी जमीन की घासफूस साफ की, तो पहले ही वर्ष में उसने २०० से अधिक साँप मारे।

चैपमैन नाटे कद का गठीला व्यक्ति था और कभी चैन से नहीं बैठता था। उसके बाल लम्बे और काले थे; पर दाढ़ी कभी हजामत न बनाने पर भी बहुत हल्की थी। उसकी काली आँखें सदा चमकती रहती थीं। उसकी पोशाक बड़ी विचित्र ढंग की थी। अक्सर जाड़े के मौसम में भी वह नंगे पाँव ही घूमता फिरता था, पर कभी-कभी लम्बे सफ़र के लिए वह अपने हाथों से अपने जूते सी लेता था। कभी-कभी वह किसी के फेंके हुए जूतों से ही अपना काम चला लेता था—तब उसके एक पैर में एक भारी-सा जूता होता था तो दूसरे में चप्पलनुमा जूती।

उसके कपड़े भी कभी तो किसी के उतरे हुए मोटे गाढ़े के होते थे और कभी सेब के पौधों के बदले में मिली हुई हिरण की खाल के।

बाद में उसका मुख्य पहनावा कॉफ़ी का बोरा ही हो गया था। उसमें उसने अपने सिर और बाहों के लिए

छेद काट लिये थे। उसने इस चोगे को "बड़ा उपयोगी और मनुष्य के पहनने के सर्वथा उपयुक्त" बताया था। सिर के पहनावे के सम्बन्ध में भी उसकी पसन्द बड़ी अनोखी थी—पहले तो उसने टीन की एक बटलोई को सिर पर रखना शुरू किया जिसमें वह अपना दलिया पकाता था, पर उसमें कमी यह थी कि उससे आंखों की धूप से रक्षा नहीं हो पाती थी। इसलिए उसने एक मोटे गत्ते का टोप बनाया और आगे की ओर उसमें एक बड़ी-सी चोंच बना ली। इस प्रकार उपयोगिता और मितव्ययिता के मिश्रण से तैयार की गई यह अद्भुत चीज उसके पहनावे का स्थायी अंग बन गई थी।

इस विचित्र हुलिये में वह जंगलों और दलदलों की खाक छानता फिरता था तथा इण्डियाना के गांवों और नई बस्तियों में पहुंचता था। किन्तु उसकी आकृति और बोलचाल में कुछ न-कुछ सौम्यता व आकर्षण अवश्य रहता होगा, क्योंकि खूंख्वार-से खूंख्वार सीमान्तवासी भी उसका पूरा आदर-सत्कार करता था।

प्रौढ़ व्यक्तियों और लड़कों के साथ वह सामान्यतः बहुत कम बोलता था, पर छोटी लड़कियों से वह बड़ा स्नेह करता था—वह नन्ही-मुन्नियों को रेशमी फीते और सुन्दर छींट के टुकड़े दिया करता था। ओहायो और इण्डियाना की बहुत सी बड़ी-बूढ़ी नानी दादियों को आज भी याद है कि उन्होंने अपने बचपन में बेचारे उस बेपरवाह जौनी एप्लिसीड से क्या क्या तोहफे पाये थे। यदि वह किसी परिवार में भोजन करना स्वीकार कर लेता तो वह मेज पर तबतक नहीं बैठता था, जबतक कि उसे यह भरोसा न हो जाय कि बच्चों को खाना कम नहीं पड़ेगा। वह बच्चों के दुःख दर्द से परेशान हो उठता था और उनसे इतना स्नेह करता था कि वह उस सीमाप्रदेश के सभी बच्चों का सगा सम्बन्धी बन गया था।

रेड इण्डियन भी जौनी से बड़े अपनत्व का बर्ताव करते थे। वे उसे 'सिद्धपुरुष' मानते थे, क्योंकि एक तो उसका हुलिया बड़ा अजीब था और उसकी हरकतें सनकियों-जैसी थीं और दूसरे उसमें दुःख दर्द को सहने की क्षमता गजब की थी—उसे प्रमाणित करने के लिए वह कभी-कभी अपने मांस में पिन और सूई तक चुभो कर दिखाता था।

उसके कपड़ों की तरह ही उसका भोजन भी स्वल्प होता था। अपना पेट भरने के लिए किसी प्राणी की हत्या करना वह पाप समझता था। और उसका मत था कि मानव जीवन के लिए जितना कुछ आवश्यक है वह सब पृथ्वी से उत्पन्न होता है। वह खाद्य-पदार्थों को बर्बाद करने या उनका अपव्यय करने का भी कट्टर विरोधी था। एक बार किसी कुटिया पर पहुंचने पर उसने देखा कि जिस बर्तन में सुअरों के लिए दाना आदि रखा जाता था उसमें ऊपर रोटी के टुकड़े तैर रहे हैं। उसने उन्हें तुरन्त निकाल लिया और गृहिणी को दिखाकर कहा कि मानव के उपयोग में आनेवाली किसी भी चीज को दूसरे किसी प्रयोग में लाना दयालु परमात्मा की देन का तिरस्कार करना है।

जब कभी दिन भर की लम्बी यात्रा के बाद उसे किसी कुटिया में ठहरने को आमन्त्रित किया जाता तो वह नीचे जमीन पर ही लेट रहता था और यदि उसके पूछने पर उसके श्रोता "प्रभु से प्राप्त ताजे समाचार" सुनने की इच्छा प्रकट कर देते, तो वह अपनी फटी पुरानी पोथियां निकालता था, जिनमें न्यू टैस्टामेन्ट (बाइबिल) भी होती थी। वह अपने श्रोताओं पर अपने उत्साह का सिक्का पूरी तरह बैठ जाने तक पुस्तक पढ़ता और व्याख्यान देना जारी रखता था—यद्यपि उसकी भाषा तो श्रोताओं के पल्ले मुश्किल से ही पड़ती थी।

उसने पशुओं को मारने और यातनाएं न दिये जाने के लिए भी अनथक आंदोलन किया। जब कभी जौनी किसी पशु के साथ दुर्व्यवहार होता देखता या ऐसी शिकायत सुनता तो वह उसे खरीदकर किसी दयालु ग्रामवासी को सौंप देता था। वह पतझड़ में लंगड़े या बेकार पशुओं को इकट्ठा करके अगली बसन्त ऋतु तक उनके दाने-चारे की व्यवस्था का सौदा पटाता था। बसन्त में वह उन्हें कहीं चरागाह में छोड़ आता था। यदि वे अच्छे हो जाते तो उनसे सद्व्यवहार करने की शर्त पर किसी को मुफ्त ही सौंप देता था। उसकी दया भावना बड़े पशुओं तक ही सीमित नहीं थी, वह तो जीवमात्र में दिव्य अंश मानता था। एक बार एक मनचले जौनी के बोरे वाले

चोगे के भीतर जा फंसी और उसने बार-बार क ला, पर जौनी ने बडे प्यार से उसे अलग कर दिया। लोगो ने हं कर पूछा कि तुमने इसे मार क्यों नही दिया, तो जौनी ने कहा, 'इस बेचारी मक्खी को मारने से क्या लाभ, इसकी नीयत तो मुझे हानि पहुचाने की नहीं थी।'

लेन-देन के मामलो में वह सिद्धान्त दूकानदारों की तरह ही हिसाबी था। सेबो की पौधशालाओ के स्थान रमणीयता के अलावा इस दृष्टि से भी चुने गये थे कि पौधो के बडे हो जाने पर उनकी माग मनोरम प्रदेश में काफी होगी। जो लोग पौधो का मूल्य न दे सके उन्हें वह मुफ्त भी देता था, तथापि आमतौर पर वह पुराने कपडो या भोजन के बदले उनकी बिक्री करता था। पर वह बाद में कोई चीज लेने का रुक्का लिखकर पौधे देना पसंद करता था। जब ऐसा हो जाता था तो वह समझता था कि लेन-देन का हिसाब ठीक हो गया। यदि रुक्का लिखनेवाला बाद में उसकी अदायगी नहीं करता था तो भी वह उसे परेशान नहीं करता था। उसके खाने-कपडे का खर्च इतना थोडा था कि अक्सर उसके पास अपनी सामर्थ्य से ज्यादा रकम हो जाती थी और उसे वह लगडे घोडो को जाडे में पालने-पोसने के लिए या किसी गरीब या किसी विपत्तिग्रस्त परिवार को दे देता था।

पाठक यह न समझे कि इस व्यक्ति के जीवन मे मुसीबतें और खतरे-ही-खतरे थे या उसमे दुःख व निराशा ही भरी थी। आत्मोत्सर्ग की सभी क्रियाओं में एक प्रकार का मानवी गौरव होता है जो या तो पीड़ा और यातना को नगण्य बना देता है, फिर उससे सहनशीलता की शक्ति उद्बुद्ध हो उठती है। जौनी के जीवन में भी उसकी इस धारणा के कारण अलौकिक सुख का समावेश हो गया था कि वह सच्चे और आदिकालीन ईसाई की भांति अपनी जिन्दगी बसर कर रहा है। उसमें विनोद की भी कमी नही थी। लिकिंग क्रीक में पहुचने के ठीक ३७ वर्ष बाद १८३८ में जौनी एपिलसीड ने अनुभव किया कि ओहायो के जगली प्रदेश में सभ्यता, सम्पत्ति और जनसख्या का खूब प्रसार हो गया है। तबतक वह नई-नई बस्तियो के प्रवाह से आगे ही रहा था; पर अब कस्बे व गिरजे बडी तेजी से कायम होते जा रहे थे और घने जगलो मे भी गाड़ियो के भोपू उनकी नीरवता को भग करने लगे थे, अतः उसने उस प्रदेश में अपने कार्य की इतिश्री समझ ली। उसने हरेक कुटिया में जा-जाकर सब परिवारो से विदाई ली और अन्तिम आदेश-उपदेश देते हुए उसने पश्चिम के क्षितिज की ओर प्रस्थान कर दिया।

१८४७की गर्मियो मे एक दिन वह बीस मील चलकर, इडियाना की ऐलन काउटी में, किसी आप्रवासी की कुटिया में पहुचा। सदा की भांति उसका अच्छा स्वागत हुआ। उसने परिवार के साथ बैठकर खाना खाने से इकार किया, पर दरवाजे के पास बैठकर अस्त होते हुए सूर्य की ओर मुह करके उसने कुछ रोटी और दूध लिया। रात में फर्श पर सोया, अगले दिन सुबह होने पर उसका शरीर दिव्य आभा से आलोकित था। उसका अन्त निकट था और बोलने की शक्ति समाप्त हो चुकी थी। चिकित्सक ने आकर बताया कि उसके बचने की कोई आशा नहीं। डाक्टर को यह देखकर बडा आश्चर्य हुआ कि मृत्यु के इतने निकट होने पर भी उसकी मुद्रा शात और गभीर है। अपने जीवन के ४६ वर्ष, अपने अभीष्ट कार्यक्षेत्र मे लगाने के बाद, ७२ वर्ष की आयु मे उसने मृत्यु का आलिंगन किया।

इस प्रकार आदिम आप्रवासियो के युग के उस स्मरणीय पुरुष का अन्त हुआ, जिसने कभी किसी का अनिष्ट चिन्तन नही किया था और जो अजात-शत्रु था, जिसकी आदतें अजीब और अनूठी थी, जिसके प्रेम की एक भुजा क्षुद्रतम जीवजन्तु तक पहुचती थी, तो दूसरी प्रभु के ऊपरी दरबार तक उठी रहती थी। आत्मत्यागी, निःस्वार्थ सेवी, एकाकी और हाथ से काम करने वाला फटे चीथडो वाला वह व्यक्ति नगे व सूज सने पावों जगलो में भटककर उन्हे फलों से लदा देखने के लिए लालायित रहता था। आज कोई उसका समाधि-स्थल नहीं जानता; पर उसके कार्यो की महक उन सेबो में अवश्य आती रहेगी जिनसे वह इतना अधिक स्नेह करता था और उसकी जीवन-गाथा, इसका पक्का सबूत देगी कि सच्चा साहस, विशुद्ध परोपकारिता, भद्र शालीनता जैसे गुण और अमर कर देनेवाले कार्य भव्य प्रासादों और गगनचुम्बी देवालयों से बहुत दूर दीनहीन व्यक्तियों में भी उपलब्ध हो सकते हैं। [अमेरिकन रिपोर्टर से साभार

आई. डी. पी. ए.*

[अंतर्राष्ट्रीय सहयोग से शांति के लिए रचनात्मक कार्य करने के निमित्त अमेरिका में स्थापित इस संस्था की ओर से जनवरी-फरवरी १९५३ में रोवे और कैली दम्पति सेवाग्राम-परिवार में सम्मिलित हुए थे। यहां रहकर उन्होंने काम करते हुए सेवाकार्य का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त किया। हमारे अनुरोध पर संस्था के संचालक श्री वंग ने संक्षेप में अपनी संस्था की जानकारी भेजी है। —सं०]

गांधी विचारधारा के रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं को इस संस्था के स्वरूप व कार्यक्रम की जानकारी देने और यह बताने के लिए कि यह संस्था किस तरह रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं के साथ परस्पर संपर्क के साथ सेवा-कार्य करना चाहती है, यह विवरण दिया जा रहा है।

इस संस्था की स्थापना गत वर्ष की गई। इसका उद्देश्य दो आवश्यकताओं की पूर्ति थी। पहली तो यह कि संस्था के संस्थापकों ने यह महसूस किया कि इस देश में विभिन्न अवस्था और विभिन्न कुशलता और अनुभववाले ऐसे व्यक्ति हैं, जो चाहते हैं कि इस बीसवीं शताब्दी के एक महान साहसी कार्य में सक्रिय भाग लें। वह महान कार्य है—संसार की एक-तिहाई सम्पन्न और दो-तिहाई भूखे और दरिद्र लोगों के बीच की खाई को पाटना। हम जानते हैं कि इन उत्साही लोगों में से कुछ चतुर्सूत्री (पाइन्ट फोर) कार्यक्रम, संयुक्त राष्ट्र का वैज्ञानिक-सहायता कार्यक्रम तथा कोलम्बो-योजना आदि सरकारी कार्यक्रमों में लगे हुए हैं, परन्तु इनकी संख्या बहुत कम है। इसलिए यह आवश्यक समझा गया कि एक ऐसी केन्द्रीय संस्था हो जो इस बात की जानकारी रखे कि किस देश में किस स्थान पर सेवाकार्य के लिए स्थान है और उसके लिए योग्य कार्यकर्त्ता चुनकर भेजे। इसमें हमें गैर-सरकारी सूत्रों से सहयोग मिलता रहेगा।

इस संस्था के सम्पर्क में ऐसे व्यक्ति आये हैं जो आदर्शवादी हैं और जिन्होंने संस्था को लिखा है कि जहां भी सामाजिक या आर्थिक विकास-सहायता की आवश्यकता हो, वहां वे कार्य करने के लिए तैयार हैं। ये लोग रचनात्मक कार्य करना चाहते हैं, लेकिन काम करते हुए भूखे रहना नहीं चाहते और न वे अपने पास से इसके लिए पैसे खर्च करना चाहते हैं। अधिकांश इसके लिए तैयार हैं कि एक साल या अधिक समय तक जहां भी उन्हें काम मिले, वहां की परिस्थितियों के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करें और वहां अपनी कुशलता की छाप छोड़कर फिर अपने-अपने धंधों में वापस चले जायं।

कुछ लोग आदर्शवादी नहीं हैं। वे एक प्रकार के साहसी लोग हैं, जिन्हें दूर के देशों को जानने की उत्सुकता है, ऐसे लोग चिरकाल से एक देश में रह हैं। कुछ ऐसे भी होंगे, जो यहां किसी चीज से बचने के लिए कहीं दूर चला जाना चाहते हैं। इसलिए इस संस्था को हरएक उम्मीदवार के बारे में सच्ची जानकारी प्राप्त कर योग्य उम्मीदवारों के नाम उन संस्थाओं को भेजना होता है जिन्हें उनकी सेवाओं की आवश्यकता है।

आई डी पी ए व्यक्तियों व संस्थाओं के चंदे से चलती है। इसके संचालक-मंडल में ३० अनुभवी व्यक्ति हैं, जिनमें प्रसिद्ध दार्शनिक, जनसेवक और विद्वान लेखक भी हैं। इसके राष्ट्र सलाहकार-मंडल में निम्नलिखित व्यक्ति हैं:

श्री रोजर बाल्डविन, अध्यक्ष, इंटरनेशनल लीग फार दी राइट आफ मेन (मानव अधिकारों का अंतर्राष्ट्रीय संघ) डा फ्रैंक जी, बाड्री, निर्देशक, मिलबैंक मेमोरियल फंड, श्री स्काट बुचनन, दार्शनिक, सेंट जान कालेज के अध्यक्ष; श्री डोनल्ड हैरिंग्टन, सामाजिक गिरजाघर, न्यूयार्क के पादरी, श्री मोर्डेकाई जान्सन, हावर्ड विश्वविद्यालय के अध्यक्ष, श्री रेनहोल्ड नेबहार, यूनियन थेओलाजिकल सेमिनरी की फैकल्टी के अध्यक्ष, श्री जेरी वूरीज, अमरीका के सहकारी संघ के मंत्री और श्री गिल्बर्ट एफ.

*इंटरनेशनल डिवेलपमेंट प्लैनिंग एसोसियेशन।

कसौटी पर

महाकवि अकबर और उनका काव्य : ले० स्व० उमरावसिंह कारुणिक, सं० चौ० शिवनाथसिंह शाण्डिल्य, प्रकाशक . ज्ञानप्रकाश मन्दिर, माछरा, जिला मेरठ। पृष्ठ लगभग २००, मूल्य ढाई रुपया।

इस पुस्तक का पांचवां संस्करण हमारे सामने है। यही उसकी लोकप्रियता का बड़ा प्रमाण है। फिर उर्दू शायरी में 'अकबर' का अपना एक विशेष स्थान है। हास्य और व्यंग के वे बादशाह थे। इल्मो-हुनर के बाजार में उन्होंने अपना नया मदरसा खोला और इस शान से खोला कि दुनिया वाले दंग रह गये। उन्होंने चोट की, पर रुलाया नहीं, हंसाया। कहते इतने कि क्या पण्डित! जिन्दादिल ऐसे कि मुर्दों को हंसा दें! ऐसे महाकवि की शायरी पर कारुणिक साहब ने यह पुस्तक लिखकर हिन्दी-वालों पर बड़ा उपकार किया है। अकबर की जीवनी, उर्दू कविता का संक्षिप्त परिचय देकर लेखक ने सोने में सुहागे का मेल मिलाया है। पाठकों से हमारा अनुरोध है कि वे इस पुस्तक को अवश्य पढ़ें। इसकी सूक्तियां 'देखन में छोटे लगें पर घाव करें गम्भीर' वाली कहावत चरितार्थ करनेवाली है।

स्मरण-यात्रा—ले० काका कालेलकर; प्रकाशक—नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद। पृष्ठ १७०, मूल्य १॥)।

काका हिन्दी, गुजराती, मराठी सबमें समान भाव से लिखते हैं और खूब लिखते हैं। कुछ की शिकायत है, वे बहुत लिखते हैं। बेशक वे बहुत लिखते हैं, पर वे अजगर पंथी नहीं हैं। वे निरन्तर प्रवासी और कर्मरत हैं। तब उनके लिखने में न सीझ है न ऊब, बल्कि रस और ज्ञान भरपूर है। स्मरण-यात्रा उनका अपना जीवन है। महापुरुषों के जी... की बात हम नहीं करेंगे। न हम इस जीवन-चरित्र में ... जीवन का मूल्यांकन करेंगे पर पाठक इसे पढ़ेंगे ... उपन्यास का रस मिलेगा। वे काका के ... हंसेंगे, खेलेंगे, शरारत करेंगे, भावनाओं में बहेंगे और जीने के लिए संघर्ष करेंगे। पाठक पढ़ते-पढ़ते भूल जायगा कि यह किसी काका कालेलकर नामधारी जीव की जीवनी है, उसे तो मनुष्य के संघर्षशील विकास का चित्र ही इसमें मिलेगा। कुछ दृश्य जहां हंसाते हैं, कुछ रुलाते हैं, कुछ से शायद कोई ऊब भी उठे, क्योंकि जीवन में ऊब किसने नहीं होती, पर कुछ दृश्य तो ऐसे हैं कि वे अपने ही अन्तर की इतनी स्पष्ट साक्षी दे जाते हैं कि पाठक तड़प उठता है। 'जीवन पाथेय' अनेकों में एक उदाहरण है।

जीवन की गहराइयों में उतरनेवाली काका की दृष्टि इस पुस्तक में जैसे रमी हुई है। माध्यम वे स्वयं हैं इसलिए आत्मीयता और भी अधिक है।

रवीन्द्र-साहित्य

रवीन्द्र हमारे देश के मुकुटमणि थे। विश्व भर ने मुक्तकण्ठ से उनकी सराहना की। यह सब हुआ उनके साहित्य के कारण! उनके साहित्य का प्रचार भी बहुत है। जितना हो उतना कम! पर वह हो अधिकृत। हिन्दी में उनके साहित्य का अनुवाद बहुत हुआ, पर अधिकतर हुआ बाजारू, उनके गौरव को धूमिल करनेवाला। श्री धन्यकुमार जैन ऐसे साधक विरले ही रहे, जिन्होंने तन-मन-धन से रवीन्द्र-साहित्य का प्रचार किया। अनुवाद भी उन्होंने स्वयं किये। पर इतने बड़े देश में अकेले वे क्या करें? खुशी की बात है कि अब रवीन्द्र की विश्वभारती ने स्वयं यह काम अपने हाथ में ले लिया है। अधिकारी विद्वानों से अनुवाद कराके उन्होंने अबतक पांच पुस्तकें प्रकाशित की हैं -

मेरा बचपन—अनुवादक : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : यह रवीन्द्र के अपने बचपन की उन्हीं के शब्दों में कहानी है। मूल्य २)।

दो बहनें—अनुवादक : वही : यह उपन्यास है और इसमें नारी के उन दो रूपों की कहानी है जिन्हें संसार 'मां' और 'प्रिया' के नाम से जानता है। वैसे तो प्रत्येक

नारी में दोनों रूप रहते हैं; पर कुछ नारियां होती हैं जो केवल 'मां' का दिल लेकर जन्मती हैं। कुछ केवल प्रिया बनी रहती हैं। 'दो बहनें' उन्हीं का प्रतीक है। मूल्य २॥)

फुलवाड़ी—अनु० श्री मोहनलाल वाजपेयी। यह बंगला उपन्यास मालंच का अनुवाद है। इसमें नारी के एक दूसरे रूप का चित्रण है। उस नारी का जो पूंजी सहेजती है। त्यागना चाहकर भी त्याग नहीं सकती, प्राण त्याग देती है। मूल्य २॥)

नटी की पूजा—अनु० श्री भगवतीप्रसाद चन्दोला यह नाटक है इसमें अपने पुत्र अजातशत्रु के लिए राज्य त्याग करनेवाले, बिम्बसार की राजमहिषी लोकेश्वरी की कथा है, जो एक ओर व्यवस्थित गृहस्थी के छिन्न होने के क्षोभ और दूसरी ओर धर्म की उदात्त पुकार के बीच फंसी हुई है। मूल्य २)

इन चारों पुस्तकों का रूप-रंग रवीन्द्र की महत्ता के अनुरूप सुन्दर, सादा और कलाप्रिय है। अनुवाद न केवल प्रामाणिक है बल्कि मूल के रस को अक्षुण्ण रखनेवाला है। पांचवीं पुस्तक 'चतुरंग' (मूल्य १॥) का रूप-रंग कुछ सुन्दर नहीं है। इसके अनुवादक श्री मोहनलाल वाजपेयी हैं। पहली चार पुस्तकों के प्रकाशक हैं—हिन्दी प्रकाशन-समिति, विश्व भारती ग्रंथन विभाग, शान्ति-निकेतन। पांचवीं के प्रकाशक—विश्वभारती, ६/३ द्वारकानाथ ठाकुर लेन कलकत्ता। वैसे सारी पुस्तकें यहीं से मिल सकती हैं।

—'सुशील'

नया मसीहा (खंडकाव्य) लेखक—श्यामसुन्दर 'अशान्त' प्रकाशक—श्यामसुन्दर "अशान्त", शान्ति-सन्देश कार्यालय, खगड़िया (मुंगेर), बिहार, पृष्ठ संख्या ८१। मूल्य १)

प्रस्तुत पुस्तक आचार्य विनोबा और उनके सिद्धान्तों पर लिखी गई कविताओं का संग्रह है। अधिकांश कविताएं भाषा और भाव की दृष्टि से सुन्दर हैं, पाठक के हृदय पर प्रभाव डालने वाली हैं और 'सर्वोदय' की भावना को आगे बढ़ाती हैं।

ले नूतन संदेश विनोबा चला आ रहा।
आज गांव की पगडंडी से,
छलकर पीड़ों को दुलराता,
और मनुज की खातिर अपनी,
विह्वल बाहों को फैलाता,
गिरे हुओं को उठा गले से वह लगा रहा,

आगे कवि लिखता है।

चला आ रहा
आज किसानों-मजदूरों का नया मसीहा
हल करता है आज क्रान्ति के
मसले को वह प्रेम भाव से,
वह मानव मन के विवेक को जगा रहा है।

भूमिदान के सम्बन्ध में कवि लिखता है।

यह भूमिदान युग के सारे प्रश्नों का हल,
यह भूमिदान मजदूर-किसानों का सम्बल।

पुस्तक भूदान के राष्ट्रीय यज्ञ में सहयोग देती है। प्रयत्न सुन्दर है।

चार चुनाव (कविता-संग्रह) लेखक—प्रतापनारायण कविरत्न। सम्पादक—मंडन-मिश्र शास्त्री। प्रकाशक—मंत्री, राजस्थान साहित्य-प्रकाशन समिति, जयपुर। पृष्ठ संख्या २१०। मूल्य २॥)

प्रस्तुत पुस्तक में अधिकतर छंदों में लिखे हुए विविध विषयों पर उपदेश है। कविता की हृदय को छूने वाली शक्ति का निरन्तर अभाव है। आद्योपान्त पढ़ जाने पर भी ऐसा कोई भी स्थल नहीं आता जहां पाठक खो जाय। भाषा और शैली साधारण है। बच्चे इस पुस्तक के द्वारा उपदेश और आनन्द दोनों प्राप्त कर सकते हैं। पर हो सकता है उनके लिए भी पुस्तक कहीं थोड़ी बोझिल हो जाय। 'भरोसा' शीर्षक कविता में कवि मानव से कहता है।

नहीं भरोसा जीवन का
तू घमंड करने को मत कर
कुछ पाकर के ओ नादानी ॥
तुझसे बढ़कर यहां कई हैं,
धनी, गुणी, मानी, विज्ञानी ॥

मन को दास बना तू तो है दास हो रहा अपने मन का !

गेटअप छपाई इत्यादि मामूली है। —'अश्वत्थामा'

सहयोगियों के विशेषांक

चार सहयोगियों के सुन्दर विशेषांक हमारे सामने हैं। 'अदिति' से हमारे पाठक परिचित हैं। अब वह नये रूप रंग में आई है। भारतमाता का उसे साथ मिल गया है और मिलन की इस खुशी में यह अंक 'श्री माताजी के प्रवचन' के रूप में प्रकाशित किया गया है। अरविन्द आश्रम की श्रीमां से वैसे तो सब परिचित हैं उनकी साधना की नींव पर ही आश्रम खड़ा है, पर उनके ज्ञान उनकी सूझ, उनकी सदाशयता और काम करने की शक्ति से वे ही परिचित हैं, जो उनके सम्पर्क में आये हैं। इस विशेषांक द्वारा दूसरे लोग भी इस शक्ति को पहचान सकेंगे। वे जन्म से फ्रेंच हैं, पर उनकी मानवता किसी सीमा का बन्धन नहीं स्वीकार करती। इस अंक में उनकी तीन पुस्तकों के अलावा स्फुट वचन भी संग्रहीत हैं। ये वचन सहज ही बोधगम्य और अपूर्व ज्ञान से ओत-प्रोत हैं। सूक्तियाँ ऐसी हैं कि मन में खुबकर रह जाती हैं। जिन्हें इस विचारधारा से मतभेद है यह अंक उनके भी उपयोग का है। इतना ज्ञान एक स्थान पर इतनी सरलता कम प्राप्त होता है। यह विशेषांक सहेजकर रखने योग्य एवं अमूल्य ग्रंथ है।

प्रदीप पंजाब सरकार का पत्र है—अगस्त अंक स्वाधीनता-विशेषांक के रूप में आया है। रूप रंग चोखा है और सामग्री भी उसके अनुरूप है। सरकारी प्रगति के अलावा साहित्यिक रचनाएं भी हैं। देवराज 'दिनेश' का नाटक 'बहादुरशाह जफर', माधवे का स्केच 'दीनू' माधव की कहानी 'सभ्यता का विध्वंस' मदान और सेठ के लेख तथा पन्त, नलिन और सिन्धु की कविताएं सभी सुन्दर हैं। अंक सब मिलाकर उपादेय है।

'आजकल' भी सरकारी पत्र है। भारत सरकार का पत्र होने के कारण ठाठबाट रईसाना है। साधन-सम्पन्न है। प्रस्तुत अंक कविता-अंक है। भारत की सभी भाषाओं में कविता की जो स्थिति है उसका परिचय इस अंक में मिल जाता है। बेशक नई दिशा की ओर कोई संकेत नहीं है, पर शायद यह इस अंक का उद्देश्य नहीं था, फिर भी इसने जो भारत की एकरूपता का दर्शन कराया है वह श्लाघ्य है। चाहते थे कि अंक और बड़ा होता। सब कविताएं अपनी अपनी भाषा में छपती तो और उपादेयता बढ़ जाती।

'विश्वदर्शन' का जो बच्चा इसके साथ जुड़ा रहता है उसमें नेपाली, अमरीकी तथा फ्रांसीसी कविता का परिचय भी दिया गया है जो सुन्दर है।

इस प्रकार अपने वर्तमान रूप में भी इस अंक की उपयोगिता स्पष्ट है। वह सहेज कर रखने योग्य है।

इस वर्ष जिन पत्रों ने स्वतन्त्रता दिवस के अवसर पर अपने विशेषांक प्रकाशित किये उनमें कुछ ये हैं 'आर्थिक समीक्षा' ने जो अ० भा० का० कमेटी का मुख पत्र है अपने इस अंक में ठोस सामग्री दी है। सभी लेख मनन करने योग्य हैं। इन्दौर की 'नई दुनिया' ने बापू का सपना अमर करने की प्रार्थना की है और भूदान पर जोर दिया है। अंक अच्छा है। पटना का 'योगी' काश्मीर के पीछे है। वैसे इस अंक में सर्वोदय और पिछड़ी जातियों के सम्बन्ध में भी दो लेख हैं। कान-पुर के 'राम राज्य' ने चरित्र निर्माण, और ग्रामोत्थान पर जोर देते हुए स्वाधीनता के इतिहास और प्रभाव की चर्चा की है। अंक सुन्दर बना है। कई लेख व कविताएं पठनीय हैं। 'नया भारत' उत्तर प्रदेश कांग्रेस कमेटी का पत्र है। इस अंक पर परिश्रम और सूझ दोनों की छाप है। लेख मनन करने योग्य हैं। आर्थिक और सांस्कृतिक दोनों पक्ष प्रौढ़ हैं। 'लोकवाणी' ने अपने संक्षिप्त कलेवर में भूदान पर ही ध्यान केन्द्रित किया है। गुजराती के तीन पत्र 'प्रस्थान' 'मिलाप' और 'फूल छाब' के विशेषांक भी हमें मिले हैं। तीनों सहयोगियों को सुंदर अंक निकालने पर हमारी बधाई। विशेष कर प्रस्थान को।

—सुशील

याद रखिये, अन्न और वस्त्र की तरह पुस्तकें भी जीवन के लिए अनिवार्य हैं।

क्या व कैसे ?

काश्मीर में उलट-फेर

पिछले कई वर्षों से काश्मीर भारत अथवा पाकिस्तान का ही नहीं, अपितु सारी दुनिया के आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है। उसका भाग्य त्रिशंकु की भांति अधर में लटका है और देश-विदेश की हर तरह की कोशिशों के बावजूद अभी तक उसके भाग्य का निर्णय नहीं हो पाया। यह अनिश्चित स्थिति सालों से चल रही है। भारत और पाकिस्तान की फौजें वहां पड़ी हैं और करोड़ों रुपया खर्च हो रहा है। लेकिन हाल ही में वहां जो उलट-फेर हुए, उन्होंने लोगों की आंखें खोल दी हैं।

काश्मीर के सर्वेसर्वा शेख अब्दुल्ला थे। उन्होंने वहां नई चेतना लाने के लिए विरोधी तत्वों से संघर्ष किया और सामन्ती शासन के अन्तर्गत अनेक प्रकार की यातनायें सहकर वहां की प्रभावशाली संस्था 'नेशनल कान्फ्रेंस' को उत्तरोत्तर बलशाली बनाया। अब से कुछ समय पहले तक काश्मीर और शेख अब्दुल्ला पर्यायवाची शब्द जैसे बन गये थे। गांधीजी जैसे पारखी व्यक्ति ने उन्हें 'शेरे-काश्मीर' की संज्ञा से विभूषित किया।

लेकिन कुछ महीनों से शेख अब्दुल्ला का रुख बदल गया। वे काश्मीर को भारत या पाकिस्तान में सम्मिलित करने की नहीं, बल्कि उसे स्वतन्त्र राज्य बनाने की चर्चा करने लगे। जनसंघ आदि ने जम्मू वगैरह स्थानों में जो आंदोलन किया उसकी यह प्रतिक्रिया हो सकती है। कतिपय विदेशी लोगों ने उन्हें कुछ आश्वासन दिये, उसका परिणाम हो सकता है, अथवा कि अपनी बढ़ती हुई ताकत और लोकप्रियता को लेकर शेख साहब की अपनी महत्वाकांक्षा। जो हो; लेकिन शेख अब्दुल्ला का स्वर बदल गया और उन्होंने एकाधिक अवसरों पर, घोषणा की कि काश्मीर स्वतन्त्र रहेगा। इतना ही नहीं, उन्होंने शासन में इस मत के विरोधी अपने साथियों के साथ अनुचित व्यवहार किया। एक ओर यह हो रहा था, दूसरी ओर काश्मीर की आर्थिक स्थिति बराबर बिगड़ती जा रही थी। कहा जाता है कि गरीबी के साथ भ्रष्टाचार भी वहां तेजी से बढ़ रहा था और नेशनल कान्फ्रेंस में शेख अब्दुल्ला की लोक-प्रियता कम हो गई थी।

इस सबका परिणाम यह हुआ कि शेख साहब को प्रधान मंत्री के पद से हट जाना पड़ा। आजकल वह नजरबंदी में हैं। काश्मीर की बागडोर अब बख्शी गुलाम मुहम्मद के हाथों में आ गई है। नया मंत्रिमंडल वहां पर स्थापित हो चुका है और शासन का कार्य-भार वही संभाल रहा है।

राजनैतिक क्षेत्र में यों तो जो न हो जाय वही थोड़ा है, लेकिन काश्मीर में घटना-चक्र इतनी तेजी से चलेगा, इसकी कल्पना कम ही लोगों को थी। शेख साहब के वक्तव्यों, भाषणों और चर्चाओं से इतना तो स्पष्ट था कि वे एक-न-एक दिन वहां विषम स्थिति उत्पन्न कर देंगे, परन्तु उन्हें स्वयं नजरबन्द होना पड़ेगा, यह कल्पना-तीत था। शेख अब्दुल्ला के प्रति भारतवासियों की गहरी आत्मीयता थी और इसमें इस प्रसंग को लेकर बहुत से लोगों को बड़ी वेदना हुई है।

काश्मीर प्राकृतिक सौंदर्य की खान है। करोड़ों आदमियों की निगाह वहां लगी रहती है, लेकिन राजनैतिक दांव-पेंचों ने इस सौंदर्य को भारभूत और घिनौना बना दिया है।

हमारा शुरू से ही यह कहना रहा है कि काश्मीर के मसले को विदेशियों के हाथ में सौंपना एक भारी भूल थी। जैसा कि गांधीजी ने कहा था, यह आपसी मामला था और आपस में ही मिल-जुल कर निबट जाना चाहिए था। अंततः बात भी वही हुई; पर भारी धक्का और गहरी चोट खाकर। खर्च हुआ और हो रहा है, सो अलग।

काश्मीर का यह दृश्य-परिवर्तन हम सबके लिए,

विशेषकर राजनीति में लिप्त व्यक्तियों के लिए, एक बहुत बड़ा सबक होना चाहिए ।

नेहरू-अली-वार्त्ता

पाठकों को यह जानकर बड़ा हर्ष हुआ होगा कि काश्मीर के मसले को लेकर भारत और पाकिस्तान के प्रधान मंत्रियों के बीच बहुत संतोषजनक रूप से चर्चा हुई है और उन्होंने निर्णय किया है कि काश्मीर के भाग्य का निर्णय वहां के जनमत के आधार पर होगा। सन् १९५५ में जनमत लिया जायगा।

इस बातचीत पर जहां भारत में संतोष प्रकट किया जा रहा है, वहां पाकिस्तान में कुछ असंतोष-सा सामने आ रहा है। वहां के कई पत्रों ने उसकी आलोचना की है। उनका मानना है कि इसमें पाकिस्तान घाटे में रहेगा। शेख अब्दुल्ला के पदच्युत और गिरफ्तार होने के समय भी वहां शोर मचाया गया था और शासन से मांग की गई थी कि वह भारत के विरोध में कोई सक्रिय कदम उठावे।

पाकिस्तान के लोगों की यह व्यग्रता इस बात की ही द्योतक हो सकती है कि वे उचित-अनुचित हर प्रकार से काश्मीर को पाकिस्तान के साथ चाहते हैं।

जबकि नेहरू और मुहम्मद अली की वार्त्ता इतनी सद्भावनापूर्ण हुई है और अबतक का अवरुद्ध मार्ग खुलना-सा दिखाई देता है। तो हमें इस व्यग्रता का कोई कारण नहीं दिखाई देता।

हमारी राय में जनमत के द्वारा काश्मीर के मामले को निबटाने का निर्णय सर्वथा उचित है। काश्मीर एक महान् प्रदेश है उसकी कला और संस्कृति महान् है। उसकी परम्पराएं महान् हैं। ऐसी अवस्था में उस पर किसी बाहरी इच्छा का लादा जाना न्यायसंगत नहीं हो सकता था। वहां के निवासियों को ही यह फैसला करने का अधिकार होना चाहिए कि वे भारत में रहेंगे या पाकिस्तान में जायंगे। बिना उनकी इच्छा के, जोर-जबर्दस्ती यदि इसे हड़प लिया गया, भले ही ऐसा पाकिस्तान द्वारा हो या हिन्दुस्तान के द्वारा, तो वह काश्मीर और वहां बसने वाले लोगों के प्रति घोर अन्याय होगा।

इसलिए हम चाहते हैं कि भारत और पाकिस्तान के प्रधान मंत्रियों ने जो निर्णय किया है उसे ईमानदारी के साथ कार्यान्वित करने के लिए काश्मीर में अनुकूल वातावरण तैयार किया जाय, न कि एक-दूसरे की नीयत पर शक करके वहां के उलझे हुए मसले को और जटिल बनाया जाय।

संगठित प्रयत्न की आवश्यकता

'जीवन-साहित्य' के पिछले अंक में हमने राजाजी की नवीन क्रांतिकारी शिक्षा-योजना के बारे में लिखा था। पाठकों को यह जानकर आश्चर्य और खेद होगा कि विरोधी पक्ष ने उस योजना के अमल को अनिश्चित काल के लिए स्थगित करा दिया है। क्या इससे यह समझा जाय कि योजना उपयोगी नहीं थी ? क्या इससे यह समझा जाय कि लोग वर्तमान शिक्षा प्रणाली को इतना लाभदायक मानते हैं कि उसमें परिवर्तन नहीं चाहते ? बात ऐसी नहीं है। योजना की उपयोगिता के बारे में दो मत नहीं हो सकते। यह भी सच है कि देश का शायद ही कोई ऐसा शिक्षित-अशिक्षित व्यक्ति होगा, जो मौजूदा शिक्षा-प्रणाली की अनुपयुक्तता और उसके हानिकारक प्रभाव को न जानता हो।

प्रश्न उठता है कि तब राजाजी की योजना, जो कि अगले वर्ष से मद्रास के स्कूलों में चालू होने वाली थी, क्यों स्थगित हो गई ?

उत्तर स्पष्ट है—आपसी झगड़ों के कारण। विरोधी लोगों का कहना है कि यह योजना गरीब लोगों के लिए भारी होगी। निश्चय ही यह गरीबों की सहानुभूति प्राप्त करने का एक तरीका है। हम पूछते हैं कि आज जो शिक्षा-प्रणाली चल रही है, वह क्या कम खर्चीली है ? हमें यह देखकर भारी वेदना होती है कि आज के समय में पारस्परिक भेद-भाव, ईर्ष्या-द्वेष एवं महत्वाकांक्षाएं कुछ इतनी उभर आई हैं कि उनकी वेदी पर देश हित को न्यौछावर-सा कर दिया जाता है। वास्तविक विचार-प्रेरक लोकोपयोगी योजनाएं वैसे ही बहुत कम आती हैं, लेकिन जो आती हैं, उनकी आपसी झगड़ों में उपेक्षा कर दी जाती है। हम मद्रास की सत्तात्मक राजनीति के विवेचन में नहीं पड़ना चाहते और न यह बताना उचित समझते हैं कि इस योजना को स्थगित कराने में किस का कितना हाथ है ; पर हम यह स्पष्ट कह देना चाहते

है कि इन कार्रवाहियों से हमारा भला होनेवाला नहीं है। आज जिस शिक्षा-प्रणाली के विषय में सब एक स्वर से कह रहे हैं कि निकम्मी है, उसमें बच्चो और युवकों का समय और शक्ति तथा उनके अभिभावकों का रुपया व्यर्थ जा रहा है, उस शिक्षा-प्रणाली को चालू रखने से आखिर क्या लाभ हो रहा है ? हजारो ग्रेजुएट विश्वविद्यालयो से डिगरिया लेकर निकल रहे हैं और शासन के सामने विकट प्रश्न है कि उनका उपयोग कैसे हो ? जब यह हालत है तब क्या फायदा है इस शिक्षा-प्रणाली से चिपके रहने से ? विनोबा ठीक कहते हैं कि यदि शिक्षा-शास्त्रियो को कोई नई बात नही सूझती है तो कुछ समय के लिए कालेज और विश्वविद्यालय बद कर देने चाहिए। देश की जन-शक्ति और धन-शक्ति को जब कि वह देश के नव-निर्माण में लगनी चाहिए यों बर्बाद करना बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं है ।

हम चाहते हैं कि शिक्षा के मामले मे केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारे कान में तेल डाले न बैठी रहे । हम सरकारी तथा गैरसरकारी प्रभावशाली व्यक्तियो से भी अपेक्षा रखते हैं कि वे आपसी झगड़ो मे देश के व्यापक हित को आखों से ओझल न होने दें । देश की आजादी को सुरक्षित रखने के लिए जरूरी है कि जीवन की मूलभूत आवश्यकताओ—भोजन, वस्त्र, शिक्षा और स्वास्थ्य के विषय में सगठित रूप से प्रयत्न हो। यदि इन तथा दूसरी इतनी ही जरूरी चीजो के बारे मे मतभेद, खीचतान और एक-दूसरे को गिराने की भावना रही तो फिर इस देश का ईश्वर ही मालिक है।

एक अनुकरणीय उदाहरण

इदौर के निकट हातोद नाम का एक गाव है। है तो वह छोटा-सा, लेकिन शहर के पास होने के कारण बड़े-बड़े कामो मे बराबर हिस्सा लेता रहता है। यहा पर ग्रामवासियो की अपनी पचायत है, जिसके आधीन एक 'सार्वजनिक पुस्तकालय' भी चल रहा है। इस पुस्तकालय के वार्षिक अधिवेशन में सम्मिलित होने का हमे सुअवसर प्राप्त हुआ । मध्यभारत के विकास-मत्री श्री वी. वी. द्रविड भी उपस्थित थे। पचायत और पुस्तकालय की प्रवृत्तियो की जानकारी पाकर हमे बडा हर्षमिश्रित आश्चर्य हुआ। ग्राम-जीवन का कोई भी अग ऐसा नही बचा, जिसको इन सस्थाओ ने अछूता छोडा हो। वहा प्रतियोगिता होती है कि देखें, सबसे अधिक अन्न आदि का उत्पादन कौन करता है, सबसे अधिक ग्रामोद्योगो को प्रोत्साहन किससे मिलता है, सबसे अधिक सफाई किसके यहा पाई जाती है, सबसे सुन्दर कला-कृति कौन तैयार करता है, पढने में कौन सबसे आगे रहता है ? आदि-आदि । सालभर का लेखा-जोखा लिया जाता है और जो उनमें सर्वोच्च रहते हैं, उन्हें सार्वजनिक रूप में सम्मानित किया जाता है । मजे की बात यह है कि यह प्रतिस्पर्द्धा केवल बालकों, बालिकाओ या विद्यार्थियों तक ही सीमित नही रहती, बूढे तक भी उसमें शामिल होते हैं और सम्मान पाते हैं। बच्चों से लेकर बड़ो तक की ऐसी टीम बहुत कम स्थानो पर पाई जाती है ।

भारत गावों मे बसता है और बिना गावो को उठाये देश ऊपर नही उठ सकता। गावो को उठाने का मतलब है वहा की गरीबी मिटाना, वहा के लोगो को शिक्षित करना, उनके लिए स्वास्थ्य के साधन जुटाना, वहा की गदगी को दूर करना, उनके लिए यातायात के साधनो की सुविधा करना , आदि-आदि । इन कामो मे सरकार सहायता दे सकती है, लेकिन मुख्य काम तो वहा के निवासियो के करने से ही हो सकता है। गावों में साधन है, शक्ति है, पर लोग उनका पूरा-पूरा उपयोग नही कर पाते। आवश्यकता इस बात की है कि कुछ दूरदर्शी कर्मठ व्यक्ति वहा पहुंचे और गाव वालो के बीच उन्ही की तरह रहकर उनकी सुषुप्त शक्तियो को जाग्रत करके प्रेरणा दे कि वे अपने साधनो का लाभ ले ।

हातोद की व्यवस्था में भी अपूर्णताएं होगी, उनकी कार्य-प्रणालियो में दोष होंगे, पर मिल-जुलकर गाव के हित की बात सोच कर और संगठित शक्ति से तदनुसार काम करना अपने आपमें बहुत बडी बात है ।

अपने अधिकाश झगडे वे स्वय निबटा लेते हैं। हमें बताया गया कि पिछले दिनो वहा के लोगो ने मिलकर एक सडक तैयार कर ली। वे इस बात के लिए निरतर उत्सुक है कि गाव का सर्वांगीण विकास किस प्रकार हो।

ग्राम-कर्ताओ के लिए हातोद का दृष्टात दिलचस्पी और प्रेरणा की वस्तु होनी चाहिए ।

गाव उबरेंगे, देश उबरेगा, गाव डूबेंगे, देश डूबेगा, यह बात हमें अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए ।

'मण्डल' की ओर से

जैसा कि हमने पिछले अंक में सूचित किया था, सहायक सदस्य योजना के सिलसिले में हमने अपना ध्यान मध्यभारत, विशेषकर इंदौर पर केन्द्रित किया। यह बताते हुए हमें बड़ा हर्ष होता है कि वहां आशातीत सफलता प्राप्त हुई। मध्यभारत से १०१ सदस्य बनाने का सकल्प था, जिसमें से लगभग ४० बन गये और करीब २५ के वायदे हैं। कुछ हितैषी मित्रों का कहना था कि वहां के लिए अनुकूल समय दिवाली के बाद का है। अतः यदि हम नवम्बर में, दिवाली के तत्काल बाद, पहुंचें तो निर्धारित सख्या इंदौर से ही पूरी हो जायगी।

यों इस योजना को लेकर हम जहां-जहां गये है, सबका सहयोग प्राप्त हुआ है, लेकिन इंदौर में हमें जिस प्रकार का हार्दिक सहयोग मिला वह हमारे लिए बड़ा मूल्यवान है। शासन से लेकर सार्वजनिक क्षेत्र तक, प्रत्येक व्यक्ति ने इसमें हाथ बटाया है। शासन ने विभिन्न विभागों में कई सदस्य बनाये और सार्वजनिक प्रमुख व्यक्तियों का तो कहना ही क्या! जो सदस्य बन सकते थे, वे स्वयं बने और दूसरों को भी बनाया। समाचार-पत्रों विशेषकर 'जागरण' और 'नई दुनिया' ने तो इतनी मदद की कि शब्दों में व्यक्त नहीं की जा सकती। सारे मध्यभारत में उन्होंने योजना को प्रचारित कर दिया। इस अवसर पर अनेक हितैषियों के नाम याद आ रहे हैं। सहयोग सबने दिया और सबके प्रति हम हृदय से कृतज्ञ हैं, पर जिन नामों का उल्लेख किये बिना नहीं रह सकते, वे ये हैं सर्वश्री सात्या सा मरवटे, बैजनाथ महोदय, सखमलजी जैन, कन्हैयालाल खादीवाला, हस्तीमलजी जैन, सेठ हीरालालजी, आर सी जाल, जौहरीलाल मित्तल, रामसिंहभाई, चदनसिंहजी, श्यामलालजी, रामदासजी, गुलाबचदजी सोनी, प्रो डेविड, हुकमचदजी पाटनी, सोहनलालजी माथी, लाभचदजी जैन, बाबूलालजी पाटोदी, कल्याणजी लखोटिया, श्री रामकुमार मुखाल, श्री भागवत साबू, ईश्वरचदजी जैन, गोकुलदासजी धूत। शासन का कोई भी विभाग ऐसा नहीं था, जहां इस योजना को स्वागत और समर्थन प्राप्त न हुआ हो। शासन के सहयोग से कई सदस्य भी बने। मध्यभारत में हमारी सफलता का श्रेय मुख्यत इन्हीं सब महानुभावों को है और हम पुन इन सबका आभार स्वीकार करते हैं।

इंदौर में समय अधिक लग गया। इसलिए अन्य स्थानों को हम समय न दे सके, पर पहले ही हमारे प्रतिनिधि श्री कृष्णकात द्विवेदी उज्जैन, बड़नगर, रतलाम आदि स्थानों में हो आये थे। वहां उनको सर्वश्री पुस्तके सा. सूर्यनारायणजी व्यास, कुसुमकातजी जैन आदि महानुभावों ने बहुत सहायता एव सहयोग दिया। उनका भी आभार माने बिना हम नहीं रह सकते। इंदौर से हम महू गये, जहां श्री सोमाभाई शाह, डॉ अग्रवाल और श्री रामनारायण विजयवर्गीय ने बड़ी सहायता की। धार में श्री लक्ष्मणसिंह खादीवाला, कृष्णलालजी शर्मा, विठ्ठलकरजी तथा चादमलजी जैन ने और देवास में श्री पटवर्धनजी आदि ने सक्रिय सहयोग दिया। दिवाली बाद जब हम फिर इंदौर जायगे तो रतलाम, जावरा, उज्जैन, मदसौर ग्वालियर, भोपाल तथा निमाड के प्रमुख स्थानों की यात्रा करेंगे।

अबतक सब जगहों से जो सदस्य बने है, उनकी आगे की क्रमानुसार सूची इस प्रकार है :

१४१ मैनेजिंग डाइरेक्टर, एडवर्ड मि क. लि, ब्यावर
१४२ कृष्णा मिल्स लि, ब्यावर
१४३ बी एम एम्री हा से स्कूल खेडागढी, दिल्ली
१४४ रोहतगी ए वी हाईस्कूल, दिल्ली
१४५ एल एन गिरधारीलाल के यू हा से स्कूल, दिल्ली
१४६ रामजस हा से. स्कूल चादनी चौक दिल्ली
१४७ गवर्नमेंट गर्ल्स हाईस्कूल, दिल्ली ६
१४८ श्री रतनलालजी सुरेका, कलकत्ता.
१४९ अजमेर म्यूनिसिपेल्टी पुस्तकालय, अजमेर
१५० रामजस हा से स्कूल आनद पर्वत, दिल्ली
१५१ दि बक्सर आयल एण्ड राइस मिल्स, बक्सर
१५२ न्यू स्वदेशी शुगर मिल्स लि०नरकटियागज चम्पारन

(शेष पृष्ठ ३४१ पर)

Regd. No. D. 228

मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली म छपाकर प्रकाशित।

अक्तूबर १९५३



राष्ट्रपिता और राष्ट्रपति

21.10.53

गांधी-जयंती पर
राष्ट्रपति की अनुपम श्रद्धांजलि
'गांधीजी की देन'

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय
यशपाल जैन

जीवन साहित्य



मूल्य
[वार्ष]िक ४)] · [एक प्रति ६ आना

'जीवन-साहित्य'

लेख-सूची अक्तूबर १९५३ **नियम**

१ 'जीवन साहित्य' प्रत्येक मास के पहले सप्ताह में प्रकाशित होता है। १० तारीख तक अंक न मिले तो अपने यहां के पोस्टमास्टर से मालूम करें। यदि अंक डाकखाने में न पहुंचा हो तो पोस्टमास्टर के पत्र के साथ हमारे कार्यालय को लिखें।

२ पत्र व्यवहार में अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य दें। उससे कार्रवाई करने में सुगमता और शीघ्रता होती है।

३ ग्राहक पूरे वर्ष के लिए बनाये जाते हैं।

४ बहुत से लोग ग्राहक किसी नाम से होते हैं और आगे का चंदा किसी नाम से भेजते हैं। इससे गड़बड़ी हो जाती है। इस सम्बन्ध में मनीआर्डर के कूपन पर स्पष्ट सूचना होनी चाहिए।

५ पत्र में प्रकाशनार्थ रचनाएं उसके उद्देश्य के अनुकूल भेजी जायं और कागज के एक ही ओर साफ-साफ अक्षरों में लिखी जायं।

६ अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए साथ में आवश्यक डाक टिकट आने चाहिए।

७ समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां भेजी जायं।

८ पत्र के ग्राहक जुलाई और जनवरी से बनाये जाते हैं। बीच में रुपया भेजनेवालों को सूचना दे देनी चाहिए कि उन्हें पिछले अंक भेज दिये जायं या आगे से ग्राहक बनाया जाय। —व्यवस्थापक

उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, हिमाचल प्रदेश, मध्यभारत तथा बिहार प्रादेशिक सरकारों द्वारा स्कूलों, कालेजों व लाइब्रेरियों तथा उत्तरप्रदेश की ग्राम-पंचायतों के लिए स्वीकृत

जीवन-साहित्य

अहिंसक नवरचना का मासिक

वर्ष १४] अक्तूबर १९५३ [अंक १०

उद्योग और सरकार

महात्मा गांधी

मैं यह भी मानता हूं कि कुछ खास उद्योग, जो मानिन्द चाबी के हैं, जरूरी होंगे। मैं उस समाजवाद को नहीं मानता, जिसमें लोग या तो घर में बैठकर बातें करते हैं या हथियारों की मदद से मरने-मारने में यकीन रखते हैं। मैं अपनी श्रद्धा के अनुसार अमली काम करने में मानता हूं। मैं उस दिन की राह देखता बैठना नहीं चाहता, जब सबके दिल बदल जायंगे और सब एक-से हो जायंगे। इसलिए मैं 'की इण्डस्ट्रीज' यानी खास-खास उद्योगों की फेहरिस्त तैयार करने के झमेले में न पड़कर यह चाहूंगा कि जिन उद्योगों या कल-कारखानों में बहुत-से लोगों को एक साथ काम करने की जरूरत पड़े, उनकी मालिक सरकार हो। सरकार के जरिये मजदूर अपनी कुशल या अकुशल मजदूरी का फल बहैसियत मालिक के पाते रहेंगे। लेकिन मेरे खयाल में ऐसी सरकार तो सिर्फ अहिंसा की बुनियाद पर ही खड़ी हो सकती है। इसलिए मैं दौलतवालों की दौलत उनसे जबरदस्ती छीनूंगा नहीं, बल्कि उनसे दरख्वास्त करूंगा कि वे एक आदमी की मिल्कियत को सरकार की मिल्कियत में बदलने के काम में मेरी मदद करें। क्या करोड़पति और क्या भिखारी, समाज की निगाह में कोई अछूत नहीं। दोनों एक ही बीमारी के दो अलग-अलग पहलू हैं। क्या अमीर और क्या गरीब, सब इन्सान ही हैं।

हिन्दुस्तान में और दूसरे मुल्कों में हमने हैवानियत के जो नजारे देखे हैं, और जो शायद आगे भी देखने पड़ जायेंगे, उनके रहते भी मैं अपनी यह श्रद्धा जाहिर करता हूं। हम खतरों का सामना करते हुए जीना सीखें।

('हरिजनसेवक', २२-९-४६)

इन्सान बनो

विनोबा

हिंदुस्तान में दो प्रश्नो पर खयाल करना चाहिए । आप लोग जानते हैं कि स्वराज्य प्राप्ति के बाद अपने देश के बहुत से भाइयो में कुछ आलस आ गया। इस तरह होता है। आलस होता है। दिन भर बहुत काम करने के बाद रात को मनुष्य बहुत ही थका हुआ सोता है, पर यह सब बहुत काम करने के बाद होता है। लेकिन जब स्वराज्य प्राप्त हुआ, उसके बाद फौरन ही लोग सुस्त हो जाय, यह अपेक्षा के बाहर है। अपना देश बहुत बड़ा है। उसमें काम भी बहुत है। तो स्वराज्य के बाद लोगो ने बहुत काम किया होता तो समझ सकते हैं। जहा स्वराज्य प्राप्ति हुई वहा ज्यादा काम न करते हुए भी आलस आ जाय, लोग सुस्त बन जाय, तो येह एक भारी खतरा समझना चाहिए। सुस्ताने का परिणाम तो यह हुआ कि कुछ लोग सत्ता में पहुचे हैं। सत्ता तो इसलिए ली थी कि उसकी भी जरूरत थी। वैसा तय हुआ था। बाकी बहुत-से लोग जो बाहर हैं वह उनका मत्सर करते है या निजी स्वार्थ में मशगूल रहते हैं। उन्हें जनता की सेवा करना भी सूझ नही रहा है। उसी-से नैतिक निष्ठा गिर गई। जहा पर हर कोई अपना स्वार्थ हासिल करना चाहता है, स्वराज्य के पहले किये हुए त्याग का मुआवजा मागता है, वहा सारे देश का नैतिक स्तर गिर जाता है। जिनसे लोग अपेक्षा रखते हैं ऐसे लोग स्वार्थसाधना म लग जाय, अच्छे-बुरे को भूल जाय, तो इसका परिणाम यह होता है कि सारे देश का नैतिक स्तर गिर जाता है। तो इसका ख्याल रखना चाहिये। चाहे हम किसी पार्टी में हो, चाहे हम किसी भी क्षेत्र में काम करते हो हमें अपने नैतिक तरीके को याद रखना चाहिए। उसे छोडना नहीं चाहिए। उस पर कायम रहना चाहिए।

अहिंसा की बात हम बोलते हैं, लेकिन आपस में बैर-भाव रखते हैं। कार्यकर्ताओं में आपस में मनमुटाव होता है। पर हा, मारपीट नहीं करना चाहिए इतना ख्याल रखते हैं। लेकिन यह कोई अहिंसा का व्यवहार नहीं। ऐसी मानसिक अहिंसा भी नही करनी चाहिए।

और सत्य की कोई चिन्ता भी नही करता। सत्य भी तो आखिर एक चीज है, जिसका खयाल राजनीति, व्यापार और वकालत में करना चाहिए। जरूरी है यह हम मानते नहीं। व्यवहार में थोड़ा झूठ बोलना चाहिए, राजनीति में झूठ के सिवाय चलता ही नहीं। तो हम पूछते हैं, राजनीति, व्यापार, व्यवहार और वकालत में अगर सत्य की जरूरत महसूस नही होती, तो सत्य के लिए भी कहीं जगह है या नहीं? एक जगह दिखाई देती है। वह है स्कूल के बच्चों में। वहा अगर कोई असत्य सिखायेगा तो लोग चिढ़ जाते है। छोटे बच्चे को झूठ का व्याख्यान दें तो नहीं चलेगा। हां, हाईस्कूल और कालेज में यह झूठ चलता है। वहा तो बड़े लड़को को तालीम मिलती है असत्य बोलने की, लेकिन प्राइमरी स्कूल में झूठ व्यवहार करनेवाले पिता भी बच्चे को यह झूठ की तालीम देना पसन्द नहीं करते। यह भी परमेश्वर की कृपा है कि जहातक बच्चों का ताल्लुक है सत्य की अपेक्षा मानी गई है। उनसे हम आशा करते है कि यही बच्चे आगे बढ़ेंगे और जो सबक सीखते हैं उन्हीको लेकर आगे बढ़ेंगे। लेकिन सामने का शिक्षक जब झूठ का व्यवहार-बर्ताव करता है तो बच्चे को लगता है कि सत्य केवल बोलने की भाषा है। जहा असत्य का वातावरण फैल जाता है वहा एक-दूसरे के विरुद्ध बुराई करने की इच्छा रहती है। गलतफहमियां खूब फैलती हैं।

बिहार में हमें इतनी गलतफहमियां दिखाई देती हैं कि और कहीं इतनी नहीं दिखाई देंगी। सामने का पक्ष कोई अच्छा काम करेगा, इसपर विश्वास ही नहीं होता। कुछ शका होती है। बुराई पर झट से विश्वास होता है। इतनी सारी गलतफहमियां एक-दूसरे के बारे में होती हैं और इन सारे तरीकों का एलेक्शन में प्रदर्शन होता है। इन एलेक्शन चलानेवालों से मैंने कहा था कि

एलेक्शन में आत्मस्तुति, परनिन्दा और मिथ्याभाषण चलता है। तो कहते है कि (Everything is fair in love and politics) प्रेम के लिए चाहे जो करे वह चलता है। पर जहा कामवासना पैदा हुई, वहा सत्य की परवाह कौन करेगा? वहा सत्य से अलग चला जाता है। वैसे ही राजनीति में भी चलना है। ऐसा अगर चलेगा तो देश के लिए बड़ा खतरा है।

सत्कार्य में सत्य-प्रेरणा होती है—ऐसा मैं मानता हूं। कई लोगो में सद्भावना है, ऐसा भी मैं मानता हू। मैं हजारीबाग में घूम रहा हूं। दोनो पक्ष के लोग काम कर रहे हैं ऐसा देखता हू तो खुशी होती है। लेकिन पक्ष के जरिये काम होते हुए जब देखता हू, तो मुझे बहुत दु ख होता है। अच्छे काम में अगर सारे पूर्वाग्रह छोड के काम न करे, तो कैसे निस्तार होगा देश का? सत्यनिष्ठा, चारित्र्य, वचननिष्ठा इत्यादि गुणो का आत्यन्तिक तरह से विकास करना चाहिए। इसीसे देश का कल्याण होगा।

गलतफहमिया कैसे पैदा होती है इसकी मिसाले तो बहुतसी दे सकता हूं। उदाहरण के लिए एक यहा पर बताता हू। त्रिभुवन बाबू के गाव जाने का तय हुआ, तो मैंने सुना कि कार्यकर्ताओ में ऐसी चर्चा चल रही थी कि त्रिभुवन बाबू ने अपने गाव आने की मांग की। उस बेचारे को हिम्मत ही क्या होती ऐसी माग करने की? पिछली बार मैं हजारीबाग आया था। तब उनका मेरा तीन हफ्ते का अच्छा परिचय भी हुआ था। मैंने यह प्रेम की माग की थी कि मैं उनके गाव जाऊं। अब विरोध-पक्ष वालो का यह ख्याल रहा कि त्रिभुवन बाबू ने अपने गाव में बाबा आवें, ऐसी इच्छा प्रकट की। अब यह गलत-फहमी फैल गई। हम मान ही नही सकते कि सामने वाले कुछ अच्छा काम कर सकते हैं।

हजारीबाग में देखा—काग्रेस ने सोचा है सारा दान चौधरण में दें। एक जत्थे में देंगे तो हमारा उत्कर्ष दिखेगा नहीं। सामने वाले भी फिर ऐसा ही सोचते हैं। यह सब चलता है; लेकिन यह सब छोटी-छोटी बातें है। भूदान का काम इतना व्यापक है कि इसका जब विचार करता हूं तब दो लाख एकड़ जमीन से कोई लाभ होगा, ऐसा नही लगता। काम बहुत व्यापक है। करने की बात है। गांव-गाव जाकर ग्राम-राज्य बनाना है। वहा एलेक्शन खेलना चाहिये, एलेक्शन लडते क्या हो? मैंने हजारीबाग में कहा था कि एलेक्शन लड़ना यह तो पश्चिमी विचार है। एलेक्शन खेलना चाहिए। जैसे कुश्ती में जो जीतता है उसे इनाम मिलता है और हारने वाले को नारियल मिलता है। निर्वैरता से चुनो। चुनाव के बाद जो जीतता है वह अपने काम में लग जाता है। बाकी सब लोगो को आम जनता में सेवा में लग जाना चाहिए। एलेक्शन के बाद सब-के-सब अच्छे-अच्छे काम में जुटें हं ऐसा होना चाहिए। काग्रेस के लोग कहते हं आप जनता पार्टी से सहयोग ले रहे हो। आपके साथ उनके फोटो आयेंगे, तो एलेक्शन में उन-का उपयोग होगा और उनकी जीत होगी। और जनता पार्टी के लोग कहने लगे कि जमीन हम सब मागते हैं, यह ठीक है, लेकिन बटवारा अगर काग्रेस करेगी तो हम एलेक्शन में कही के न रहेगे। दोनों पार्टी के लोगो ने दिल खोलकर बात मेरे सामने रखी। यह ठीक हुआ, छिपाना बुरा है।

भूदान का काम निष्काम भाव से करो। गीता में कहा है, हर काम निष्काम भाव से करो। मैं यह कबूल करता हूं कि पोलिटिकल पार्टी के लिए इस तरह काम करना नही हो सकता, कठिन होता है। लेकिन भूदान का काम 'नानपोलिटिकल' है। तो मैं यह प्रेम से समझाना चाहता हू कि जहा तक आपका ताल्लुक है आप निष्काम-भाव से काम करे। अपने निज के स्वार्थ तो नही बल्कि अपनी पार्टी का भी स्वार्थ नही सोचना चाहिए। काग्रेस में दो पक्ष हैं—एक अनुग्रह बाबू का पक्ष और दूसरा श्रीबाबू का पक्ष। उनमें भी यह चलता है कि दूसरे पक्ष को अधिक जमीन न मिले। अनुग्रह बाबू आये हैं तो जमीन नही देंगे यानी कौन आया है इसपर जमीन देंगे, यह मनुष्य के दोष हैं। लेकिन इसलिए किसी एक को दोषी नही कहते। जिस प्रकार से काम हो रहा है वह ऐसा ही होगा। लेकिन इसे छोड़ेंगे तो बहुत भारी गुण होगा।

भूदान का काम जो हमने लोगों के सामने रखा है उससे जनता का भला तो होता ही है, उससे हमारी

चित्त-शुद्धि भी दिन-ब-दिन हो रही है। अनेक लोगों का पवित्र संबध आता है। आनन्द की उपलब्धि हमें जो होती है वह और कहीं नहीं होती। अतः समाधान एक महान् चीज है। वह आपको भी मिल सकता है अगर आप स्वार्थ को छोड़ेंगे। चम्पारन में अब एलेक्शन हो रहा है। उसमें एक पार्टी को भूदान के काम पर चुना जायगा। दूसरी पार्टी को खतरा मालूम होगा तो इसलिए दोनों भूदान काम का उपयोग करेंगी। यह होगा तो मैं कहूंगा, क्या आपके पास अपनी सम्पत्ति नहीं है? भूदान यही कमाई है तो आप दोनों बेकार हैं। दूसरी कमाई हो तो उसपर खड़े होकर, एलेक्शन खेलना चाहिए। भूदान का उपयोग करेंगे, यह बहुत दुःख की बात है। इस काम से तो अन्तःशुद्धि का लाभ हो सकता है और चीज से भी यह हो सकता है। यह नहीं कि यही एक बात है जिससे अन्तःशुद्धि हो सकती है। राम नाम के स्मरण से भी अन्तःशुद्धि मिल सकती है। लेकिन राम-नाम लेकर हमें धन मिले, मेरे बाल-बच्चे सुखी हों, ऐसी इच्छा करोगे, तो धन-सम्पत्ति तो मिल जायगी; लेकिन इसमें एक बड़ी चीज का उपयोग बहुत ही छोटे काम के लिए हुआ है ऐसा होगा। जैसे नाम-स्मरण की प्रतिष्ठा है वैसे ही भूदान के काम की प्रतिष्ठा है।

दूसरी बात यह है कि हिन्दुस्तान में बहुत ही बड़ी जन-शक्ति है, लेकिन उसमें छोटी-छोटी बहुत-सी जातियां हैं। गीता में अभेद का महत्त्व समझाया गया है। लेकिन हम तो जाति-भेद, धर्म-भेद से बढ़कर पार्टी-भेद बढ़ा रहे हैं। आपकी पार्टी जो भी होगी, उसका एक अच्छा-सा कार्यक्रम होना चाहिए। एक अच्छे काम में सब पार्टियां सहयोग देंगी तो भेद धीरे-धीरे मिट सकते हैं।

लेकिन यह 'निगेटिव' है। एक सरकार और एक जनता; इनके बीच खड़े होकर एक-दूसरे की बात एक-दूसरे को समझनी चाहिए। यह हमारा एक काम है। लेकिन साक्षात जन-शक्ति का काम भी एक दूसरा बड़ा काम है। हमें अपने देश की सेवा करनी है। इसके लिए जिनके हृदय-परिवर्तन हुए हैं, ऐसे कार्यकर्ताओं की जरूरत है।

पालकोट के लाल साहब का हृदय-परिवर्तन हुआ है। वे तो हमारे साथ घूमे। गांव-गांव जाकर हमारा काम कर रहे हैं। उनका जीवन परिवर्तन हो रहा है। उनके घर में स्त्रियों ने सूत कातना शुरू किया है। अब वे वान-प्रस्थ की सोच रहे हैं। यह हमारे लिए (असेट) होगा। लाखों एकड़ की कमाई हमें इसमें हो गई।

हम चाहते हैं कि आपकी पार्टी के चुनाव में एक-दो चुन कर आयेंगे, तो बाकी लोगों को भूदान का काम करना चाहिए। उसके साथ-साथ ग्राम-सेवा का रचनात्मक काम भी करना चाहिए। गांव के धन्धों को ऊपर उठाना चाहिए। गांव में जिस चीज की आवश्यकता होती है वह गांव में ही बननी चाहिए। पुराने जमाने की खद्दर लाचारी थी। उस वक्त कातना लाजिमी था, लेकिन अब खादी लाचारी नहीं विचारी है। उसकी ग्रामों में स्थापना होनी चाहिए। इस तरह के कामों में जिनका सहयोग मिलेगा उन सबका सहयोग हमें हासिल करना है।

कांग्रेस में मेम्बर बनो, प्रजा-सोशलिस्ट पार्टी के मेम्बर बनो, ऐसा सब कहते हैं। लेकिन 'इनसान बनो' ऐसा कोई भी नहीं कह रहा है। भूदान का काम एवं रचनात्मक काम है, अच्छे इन्सान बनने का काम है। तो यह काम आपकी पार्टी को दूसरी पार्टी के साथ करना है। गान्धीजी ने अस्पृश्यता-निवारण का काम उठाया, तो कहा था कि कांग्रेस के लोग इस काम में न आयें तो अच्छा ही है। राजनीति में तो जो विरोधी लोग हैं वे सहयोग नहीं देते हैं। वे इसमें ज्यादा आवेंगे ऐसा होना चाहिए। और कुछ लोग आये भी। उनकी यह खूबी थी। जिनका विरोध था उनसे वे रचनात्मक काम लेते थे, सबसे काम लेते थे। सबकी मर्यादा जानते थे। श्रीनिवास शास्त्री खद्दर का काम नहीं कर सकते थे, तो उन्हें वह काम नहीं दिया था।

जो विरोधी थे उनके साथ कैसे प्रेम से बर्ताव करना चाहिए यह सबक जो उन्होंने हमें सिखाया वह हमको भूलना नहीं चाहिए।

भूदान का काम ऐसा ही है। इसमें रचनात्मक काम सब लोगों के साथ करने का मौका है। आम जनता में जाकर उसकी सेवा करने का यह काम है। यह पार्टी के ख्याल से भी नहीं करना और व्यक्तिगत ख्याल से भी नहीं करना है। इस काम में चित्त-शुद्धि का आनन्द लूटो।

नेताओं का नेता

हरिभाऊ उपाध्याय

आज बापू की जयंती है। उनका स्मरण होते ही पिछली आधी सदी का भारत का इतिहास सामने खड़ा हो जाता है। काठियावाड़ के एक कोने में एक बनिया परिवार में एक लड़का पैदा हुआ जो मंद और झेंपू था, लेकिन अपने जीवन के अन्त में जिसने सारे संसार को हिला दिया। जब वह पैदा हुआ था, लोग आपस में अंग्रेजों के संबंध में बातचीत करते हुए भी डरते थे, लेकिन उसने बूढ़ों, बच्चों और स्त्रियों तक में ऐसी जान डाल दी कि सीना खोलकर गोलियां खाने को तैयार हो गए। लाठियों की बौछारें सहीं, सीनों पर पुलिस की घुड़दौड़ हुई मगर उफ तक न किया। उसने न केवल भारत को आजाद कराया बल्कि सत्याग्रह के रूप में संसार को एक नया और अद्‌भुत रामबाण दिया। सत्याग्रह केवल एक जीवन-सिद्धान्त या जीवन-नीति ही नहीं, बल्कि संघर्ष और युद्ध में विजय पाने का एक महान अस्त्र भी है। वो बालक गांधी था, मगर सत्य की धुन बचपन से ही थी। इसीसे आगे चलकर सत्य की खोज में सत्याग्रह-जैसा रत्न मिला और हमने देखा कि मुट्‌ठी भर हड्‌डी वाले आदमी ने देखते-देखते संसार को चकित कर दिया। एक दफा की बात है कि बापू जितना ही मुसलमानों को नजदीक लाने का प्रयत्न करते थे, उतना ही उनका ख्याल बापू के बारे में बिगड़ता जा रहा था। अन्त में वे बापू को दुश्मन नंबर एक कहने लगे। तब मैं बहुत सोच में पड़ा कि इसमें कहीं-न-कहीं गलती होनी चाहिए। या तो कहीं बापू गलती कर रहे हैं या मुसलमान सचमुच इतने गिरे हुए हैं कि बापू के इतने प्रेम और सद्‌भाव का भी उल्टा ही अर्थ लगाते चले जा रहे हैं। मैंने सोचा कि शायद बापू जिस भाषा को बोलते हैं, बापू की जो अभिव्यक्ति है, उसे मुसलमान समझ नहीं पा रहे हैं। तो क्यों न बापू इसमें परिवर्तन करें? कई बार ऐसा मौका होता है कि पति अपनी पत्नी को प्यार करना चाहता है, सच्चे दिल से प्यार करता भी है, परन्तु पत्नी उसका यह अर्थ निकालती है कि वह मुझसे रूठे हुए हैं। कई बार जिन्दगी भर ऐसा चलता है और दोनों एक-दूसरे को समझ नहीं पाते। इसमें यही कसर हो सकती है कि उनके प्रेम-प्रकाशन का ढंग ठीक न हो। मैंने बापूजी को लिखा, "बापूजी, मुझे आश्चर्य होता है कि मुसलमान क्यों नहीं अबतक आपपर विश्वास करते हैं? ज्यों-ज्यों आप उनके लिए छटपटाते हैं त्यों-त्यों वे छिटकते और सशंकित होते हैं। आपके प्रेम और सद्‌भावना में तो कोई कसर नहीं मालूम होती, परन्तु मुझे ऐसा लगता है कि उसके प्रकाशन के प्रकार या ढंग में कोई भूल आपसे हो रही है। आप अपनी भाषा को छोड़कर जो भाषा उनकी समझ में आती हो वही बोलें तो क्या हर्ज है?" उन्होंने उत्तर दिया, "यह मेरी अहिंसा की कमी को बतलाता है। उनकी भाषा में बोलने का मतलब यह हुआ कि उनकी शर्त मान लूं, उनकी मांग मंजूर कर लूं। उनके जिस सिद्धान्त को मैं दूषित व हानिकार मानता हूं उसे कैसे मान सकता हूं? मुझमें अभी और आग चाहिए जिससे उनके हृदय पिघल सकें।" और हमने उनके जीवन के अन्त में देखा कि वही मुसलमान उन्हें मित्र नंबर एक मानने लग गये। यह कितना कायापलट! कैसा चमत्कार! यह जादू उनके सत्याग्रह का था। जिसको उन्होंने सत्य, सही समझा उसपर वे डटे रहे। न दायें देखा न बायें, न आंधी देखी न तूफान, न कांटे देखे न कंकर; वे चलते ही गये। कभी इधर से प्रहार हुआ, कभी उधर से। कभी ऊपर से तो कभी नीचे से। मगर उन्होंने सब शांति और प्रेम के साथ सहे और बदले में उन सबके लिए अपनी तरफ से फूल बरसाये।

जो तोको कांटा बुवै, ताहि बोइ तू फूल

यह अहिंसा का सर्वोत्तम सिद्धान्त है और गांधीजी के जीवन के चमत्कारों का यही मर्म है।

सत्याग्रह की इस साधना ने उन्हें दूसरों के हृदय से अपना हृदय मिलाना सिखा दिया था। यह मामूली बात

नही। जिसने अपने हृदय में से 'स्व' को निकाल दिया, वही दूसरे के हृदय से अपना हृदय मिला सकता है। बापू कभी कहते "मैं मजदूर हू", कभी कहते "मैं किसान हू", कभी कहते 'मैं हरिजन हू"। कभी कहते "मैं बनिया हू इसका क्या रहस्य है? उन्होंने एक बार मुझसे कहा 'हरिभाऊ, जब कोई विधवा मेरे सामने आती है और मुझसे बात करती है, तो मैं यह अनुभव करता हू कि मैं विधवा हू और इसका दुखडा मेरा दु ख है। कोई दुखी मजदूर या फटे हाल किसान मेरे पास आता है, तो मेरा हृदय किसान और मजदूर का हो जाता है और मैं उनसे अपनापन महसूस करता हू। जब हरिजन आते है, तो मुझे ऐसा लगता है कि जो-कुछ पीडाए इन्हे भुगतनी पडती है वह सब मैं भुगत रहा हू। इसीलिए जब मैं इन लोगो के लिए बोलता हू तो मेरी वाणी मे बडी ताकत आ जाती है"। साधारण लोग चक्कर में पड जाते है और कभी-कभी फब्तिया कसते है कि गाधीजी को हम समझ नही सकते। वह अपने लिए कभी कुछ कहते है, कभी कुछ। लेकिन जिस व्यक्ति ने सारे जीवन भर सबमे सत्य को ही देखने की चेष्टा की है वह इस प्रकार सबका अतरात्मा बन जाय तो, इसमे क्या आश्चर्य।

आज जवाहरलाल बापू के उत्तराधिकारी माने जाते है। उन्होंन अपने जीते जी घोषित कर दिया था कि मेरा राजनीतिक वारिस जवाहरलाल है। यह कोई राजनैतिक घोषणा नही थी। वे जवाहरलाल के साथ इतनी आत्मीयता अनुभव करते थे कि विश्वास के साथ कहते थे कि जवाहरलाल आज कुछ भी कहे, मेरे मरने के बाद मेरी भाषा बोलेगा और वही हो रहा है। बापू जवाहरलाल को कितना अभिन्न मानते थे उसकी घटना एक मित्र न मुझे सुनाई थी।

फैजपुर काग्रेस के सभापति जवाहरलालजी थे। किसी देहात मे वह पहली बार ही काग्रेस हुई थी। गाधीजी बहुत जोर दिया करते थे कि काग्रेस गाव में होनी चाहिए। उसका यह पहला प्रयोग था। कुछ बारिश भी हो गई थी इसीलिए लोग स्वभावत कम आये। उसके बाद ही बेलगाव में 'गाधी सेवा-सघ' का सम्मेलन हुआ, जिसमें बहुत ज्यादा लोग आये। शायद प्रेमाबहन कटक ने, जो बापूजी की बडी भक्त थी सहज विनोद में किसी से कहा, "यह देखो गाधी की काग्रेस, और वह फैजपुर की काग्रेस देखी थी? वह जवाहरलाल की काग्रेस थी।" बापू ने सुन लिया। बडे नाराज हुए। प्रेमाबहन को डाटा कि तू मुझमें और जवाहरलाल में फर्क करती है। और यदि फर्क ही है तो जवाहरलाल की काग्रेस असली काग्रेस है। वह काग्रेस सारे देश की प्रतिनिधि है। यह सम्मेलन तो एक मामूली सघ का सम्मेलन है। इसकी उससे तुलना ही क्या हो सकती है?" प्रेमाबहन ने झेंपते हुए कहा, "बापूजी, मैंने तो विनोद मे कहा है।" उन्होंने फिर त्योरी चढाते हुए कहा "विनोद में भी तो तेरे मन में ऐसी कल्पना क्यो आनी चाहिए कि जवाहरलाल मुझसे अलग है?"

सत्याग्रह ने एक ओर बापू को महान् बनाया, दूसरी ओर मिट्टी में से नेता बनाने का प्रभाव उनको दिया। आदमी की चमक को वे फौरन देख लेते थे और उसकी कमजोरी को भी। कमजोरी के प्रति वह क्रोध नही, सहानुभूति दर्शाते थे और चमक के प्रति आदर। और इस प्रकार वह व्यक्ति को बडा बनाने और चमकाने मे सिद्धहस्त हो गये थे। इस प्रक्रिया में उन्हे बडी कडवी घूटें पीनी पडती थी, बडे प्रहार सहन करने पडते थे। लेकिन बापू उन सबको सहकर दूसरो की ढाल बनते थे। भारत का शायद ही कोई बडा आदमी या नेता ऐसा होगा जिसकी ढाल बापू न बने हो। जो दूसरो की पोल खोलता है वह बडा होने पर भी छोटा हो जाता है। 'पिशुन पराये पाप कहि देही" किन्तु जो दूसरो की ढाल बन जाता है वह छोटे से बडा बनता ही चला जाता है। बापू को तो जो हमने राष्ट्रपिता माना वह इसी अर्थ में कि न केवल उन्होंने राष्ट्र को बनाया बल्कि राष्ट्र नेताओं को बनाया और बचाया भी। एक बार दिल्ली की एक ए. आई. सी सी की मीटिंग मे वक्ताओं ने बापूजी को खूब आडे हाथों लिया। बारदोली में सत्याग्रह करने की घोषणा उन्होंने की थी और फिर चौरीचौरा काड हो जाने के कारण उन्होंने यह घोषणा वापस ली, जिसपर ए आई सी सी में बडा कोलाहल मचा। बापू के जीवन मे भारतवर्ष मे ऐसे आन्तरिक विरोध का वह पहला ही अवसर था। मुझे बहुत बुरा लगा। मैंने बापू से कहा, "बापू, अबकी

तो ए. आई. सी. सी. वाले आपसे बुरी तरह पेश आये। इससे मुझे बड़ी चोट लगी।' उन्होंने हसते हुए कहा, "नहीं, मुझे तो उन लोगो का विरोध बहुत अच्छा लगा। उनकी निर्भयता देखकर मुझे विश्वास हो गया कि जो लोग मुझ-जैसे का खुल्लमखुल्ला विरोध कर सकते हैं वह दुनिया में किससे डरेंगे ? किसी का विरोध करते हुए नहीं डरेंगे। अत मुझे इन प्रहारो से हर्ष हुआ।" यह उनके ढाल बनने का एक अच्छा उदाहरण है।

एक बार आर्य समाज के लोग बापू से बहुत नाराज हुए। उन्होने आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द की कुछ आलोचना कर दी थी और एक ऐसी बात आर्यसमाजियो के लिए लिख दी थी कि जिससे वे बहुत आपे से बाहर हो गये थे। ऐसा मालूम होता था कि मानो बापू को खा जायेंगे। मैंने बापूजी से पूछा, "बापू, आप वह रहस्य खोल दीजिये, जिससे आर्यसमाजियो का सतोष हो जाय और आप पर यह वार होने बंद हो जाय।" बापू ने कहा, "इस समय मेरा कड़वी घूट पी जाना आर्यसमाजियो के हित में है। मैं उनका मित्र हूं। वह भले ही मुझे अपना शत्रु समझते हो। यदि वह बात मैं प्रकट कर दू तो उनके विरोधी आर्यसमाजियो को खा जायगे। जीता नही छोड़ेगे।"

बापू को सेवाग्राम में रहते कई साल हो गये थे; लेकिन उस गाव के लोगो पर उनका खास प्रभाव नही पड़ रहा था। दलितोद्धार, अस्पृश्यता-निवारण-सबधी उनके आन्दोलनो ने जनता को, जो पुराणपथी थी उनके पास आने से रोक दिया था। सभी जगह यही हाल था। लेकिन जब मैं सेवाग्राम गया, तो वहा गाववालो की बड़ी भीड़ देखी। मैंने बापू से पूछा, "यह क्या चमत्कार हो गया?" बापू ने हसकर कहा, "यह मेरा चमत्कार नही है। यह गोरो की महिमा है। जब इन्होंने देखा कि बड़े-बड़े साहब (पार्लमेंट और मत्रिमडल के सदस्य) लदन से यहा मिलने आते हैं, मोटरो पर मोटरें चली आ रही हैं, तो इन्होंने समझा कि गाधी सचमुच कोई बडा आदमी है, प्रभावशाली व्यक्ति है। सो अगरेजों के जरिये इन्होने मुझे पहचाना। लोग अभी सत्ता के पुजारी है, सेवा के नहीं।"

इस सिलसिले मे मुझे अपनी जनता की जड़ता का एक मजेदार सस्मरण याद आ रहा है। मैं विनोबा के दर्शन करने नालवाड़ी गया था। नालवाड़ी वर्धा शहर के पास मेहतरो की एक बस्ती है जिसे वर्धा की नगरपालिका ने नगर से कोई दो मील की दूरी पर बसाया है। हरिजनो की सेवा, मेहतरो का उद्धार करने की दृष्टि से, विनोबा ने उस नालवाड़ी में अपनी झोपडी बनाई और दो-चार साथियों के साथ वहा आश्रम-सा बनाकर रहने लगे। रास्ते की सफाई उनका एक नित्य कार्यक्रम था। मैंने और कई बातों के साथ विनोबा से पूछा, "आपको दस-बारह साल यहा हो गये, नालवाड़ी वालो पर आपका कितना असर हुआ ?" हम तो हद्दी और खाजपुरा में सब रास्ते साफ करने जाते हैं, तो तमाशाइयो की भीड़ तो अलबत्ते लग जाती है मगर हाथ मे झाड़ू लेकर कोई माई का लाल नही आता। आपने यहा क्या हाल है" उन्होंने हसकर कहा, "क्या हाल है ! अभी तुम्हारे आने से थोड़ी ही देर पहले एक बुढ़िया मेहतरानी आई थी और उलाहना दे गई कि फला जगह रास्ते में शौच (मैला) पड़ा रह गया है। उसे उठवा दो। तुम्हारे लोग ठीक काम नहीं करते।" ऐसी जड़ जनता को जिसने जगाया, उठाया, चलाया, दौड़ाया और तूफानो, चट्टानों से टकराने की हिम्मत दी और अन्त को विजय की मजिल तक पहुंचा दिया, उस बापू की जयती पर हमारा क्या कर्तव्य है, यह हमें गभीरता से सोचना चाहिए।

पाकिस्तान बनने से बापू को बड़ा धक्का लगा, वे अखड भारत का स्वप्न देखते थे। उसीमें हिन्दू-मुसलमान का सच्चा हित और एकता मानते थे। लेकिन जब भारत के दो टुकडे हो ही गये और उनके सामने-सामने जब अमानुष और आसुरी काड होने लगे तो वे भगवान से प्रार्थना करने लगे कि भगवान मुझे उठा ले, असहाय बनकर यह दारुण दृश्य मुझ से नहीं देखा जाता। यहा तक कि एक बार तो उन्होंने प्रार्थना मे दर्शकों से भी कहा कि तुम लोग भी भगवान से प्रार्थना करो कि मुझे दुनिया से उठा ले। एक महापुरुष का कैसा आर्तनाद ! यह हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रति कितनी उत्कटता दिखलाता है और दो ही चार दिन में भगवान ने उनकी प्रार्थना सुन ली। वे एकाएक चल बसे।

बापू के चले जाने से जो सबसे बडी कमी हुई है वह यह कि सचमुच हमारा राष्ट्रपिता, हमारा बुजुर्ग, हमारा सरपरस्त चला गया, जो हमारी कमजोरियो की ढाल बनता था और अपनी जादू की छडी से उन्हें दूर कर हमारा हौसला बढाता और हमें हाथ पकड कर आगे दौडाता था। कुछ दिन तो हमें ऐसा लगा मानो हम बिल्कुल अनाथ हो गय है। अब ऐसा लगता है मानो उनकी आत्मा भारत में दो व्यक्तियो के द्वारा बोल रही है। एक विनोबा और दूसरे जवाहरलाल। विनोबा ने उनकी आध्यात्मिक और रचनात्मक विरासत को सभाला है और जवाहरलाल ने राजनैतिक और अन्तर्राष्ट्रीय धरोहर को। भारत की ही नही, ऐसा मालूम होता है मानो सारे ससार की आखें इन दो महापुरुषो की ओर लगी है और जब बापू के करीब-करीब सब पुराने साथी और सहयोगी चल बसे, उनके दो धर्मपुत्र हिमालय के दो महान शिखरो की भाति अपनी धवल कीर्ति को छिटकाते हुए खडे हैं। दोनो का काम यो परस्पर-पूरक है, परन्तु यदि दोनो परस्पर सम्मति से योजनापूर्वक चल सकें और काम कर सकें तो बापू का, जनता का राज्य या सर्वोदय का सुखस्वप्न जल्दी पूरा हो जाने की आशा हो जाय।

गाधी-जयती पर बापू के प्रति अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए मुझे एक बात याद आ रही है। बापू जिन्दगी भर अग्रेजो से लडते रहे, उनके साम्राज्यवाद के खिलाफ। उस सिलसिले में उनपर अग्रेजो ने पेट भर के प्रहार किये। आखिर तो एक जगह वाइकाउन्ट सेम्यूअल (उदार दल के तत्कालीन नेता) ने कहा है,

"उन्होने एक विशाल राष्ट्र की आत्मा का उत्थान करने और गौरव को बढाने में नेतृत्व दिया। उन्होने आज की तथा कल की दुनिया में यह दिखाने में नेतृत्व किया कि सार्वजनिक कार्यक्षेत्र में मानव केवल आत्मा की शक्ति से ही, पाशविक शक्ति का आश्रय लिय बिना, बडे-बडे शुभ परिणाम निकाल सकते हैं, और उन्होने अन्याय-पीडितो का सदैव से चली आ रही अपनी पतित अवस्था से उद्धार करने में नेतृत्व किया. . . . उन्हें अवसर तीखे-तीखे काटे चुभाये गये हैं। आइये, अब हम उन्हें कृतज्ञता के फूल अर्पण करें।"

यह विरोधियों के हृदय-परिवर्तन का ज्वलत उदाहरण है। यह अमोघ शक्ति बापू को उनकी सत्याग्रह साधना से मिली थी। अत आज हम केवल उनका और उनके सिद्धान्तो का गुणगान करके नही, बल्कि उनकी स्पिरिट को अपने जीवन में उतार के उनके कार्यक्रम को हृदय से अपनाए। इस समय स्वर्गीय विट्ठलभाई पटेल के यह शब्द मेरे कानो में गूज रहे हैं, "गाधी नेता नही, नेताओ का नेता है। भारत के सब नेताओ को तराजू में एक तरफ रख दें तो सब मिलकर भी गाधीजी की बराबरी नही कर सकते।" ऐसा महाव्यक्ति हमको अपने नेता और पिता के रूप में मिला, यह हमारा कितना बडा भाग्य है! हम उसके सच्चे वारिस और अनुयायी सिद्ध हो, यही परमात्मा से प्रार्थना है।

अन्त में भागवत समर्पित गोपियो के स्वर में अपना स्वर मिलाकर हम भी गावें

तव कथामृतं तप्तजीवनम्
कविभिरीडित कल्मषापहम्।
श्रवणमगलं श्रीमदाततम्
भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जना ॥

बापू, तुम तो अब हमें छोडकर चले गये। अब हमारा सहारा रह गया तुम्हारी अमृतमयी जीवन कथाए जो हम सन्तप्त लोगो को प्रेरणा देनेवाली और पापनाशिनी है, जो सुनने से ही मगल करनेवाली और अत्यन्त शान्तिदायिनी है।

नामदेव की यह भावना हमारे हृदय में सदा सचार करती रहे—

वदनी तुझें मगलनाम हृदयी अखडित प्रेम।

अहिंसा का अर्थ सूक्ष्म जन्तुओ से लेकर मनुष्य तक सभी जीवो के प्रति सद्भावना रखना है।

—मो. के. गांधी

सरदार पटेल

यशपाल जैन

सरदार वल्लभभाई पटेल का स्मरण होते ही जो आकृति सामने आ खडी होती है, वह कुछ इस प्रकार है : शरीर थोडा भारी-भरकम, नाक बडी और मोटी; आखें चौडी कम, लम्बी अधिक, होंठ न मोटे, न पतले; ललाट ऊंचा; शरीर पर मोटा कुरता और ऊंची धोती; पैरो मे चप्पल और कधे पर चादर। चेहरा इतना धीर-गभीर और रौबीला कि देखकर मन एकबारगी आतकित हुए बिना न रहे।

सक्षेप में यह थे हमारे सरदार पटेल, जिनकी याद आते ही श्रद्धा से मस्तक नत हो जाता है और जिनके काम का ध्यान आते ही शरीर में रोमाच हो आता है। महसा विश्वास नही होता कि हाड-मास का एक पुतला ३५ करोड की आबादी के बिखरे देश को एक-सूत्र में पिरोकर एक इकाई बना सकता है। इतिहास में बिस्मार्क का नाम पढा था कि उसने टुकडो मे विभक्त जर्मनी को मिलाकर एक कर दिया, पर बिस्मार्क का वह पराक्रम पुरानी कहानी थी। सरदार पटेल का काम तो हम लोगों की आखो के आगे हुआ। अग्रेजी शासन यहा से हटा तो देश छोटी-बडी ६०० रियासतो मे बटा था। सरदार ने भारत के स्वतन्त्र होते ही सबसे पहला काम यह किया कि रियासतो के अस्तित्व को मिटा दिया। यह कोई छोटी बात नही थी और सरदार ने जिस मजबूती और होशियारी से इस काम को किया, उसकी मिसाल हमारे तो क्या, दूसरे देशो के इतिहास में भी मुश्किल से मिलेगी। न एक बूद रक्त गिरा, न बहुत परेशानी उठानी पडी। रजवाडे आये और चुपचाप विलीनीकरण के कागजो पर हस्ताक्षर कर गये। स्थापित स्वार्थों ने दो-एक बडी रियासतो में कुछ गडबड की, पर 'लौह पुरुष' के आगे उनकी एक न चली।

स्वाधीनता-सग्राम में सरदार ने एक महान सेनानी के रूप में जो किया, उसे हम न गिनें तब भी उनके इस एकीकरण के महान काम से उनका नाम भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा।

सरदार का समूचा जीवन त्याग और तपस्या का जीवन था। बचपन मे उन्होंने गरीबी पाई और यही कारण है कि वह देश की गरीबी की वेदना को अपने हृदय में अनुभव करके उसे दूर करने के लिए तन, मन, धन से अपने को अर्पित कर सके। उन्होने अग्रेजी की शिक्षा पाई, बैरिस्टर बने, पर उनका स्वभाव आजन्म किसान का बना रहा। देहाती जीवन का बचपन से ही उन्होंने गहरा अध्ययन और अनुभव कर लिया था।

शरीर को उन्होंने सतत साधना में खूब कसा और नैतिक बल तो इस दर्जे का प्राप्त किया कि भले-भले भी उनके आगे नही ठहर सके।

सरदार बोलते कम, पर काम जोरो से करते थे। बडे-बडे वक्तव्य या भाषण देना उनके स्वभाव के विपरीत था, पर जो गिने-चुने शब्द उनके मुह या लेखनी से निकलते थे, वे शक्तिशालियो को भी थर्रा देते थे।

देश की आजादी की लडाई में वह एक महान योद्धा के रूप मे जूझे और जब वह सग्राम समाप्त हुआ, तो उन्होंने वैराग्य नही ले लिया। देश पर आई भारी जिम्मेदारी मे उन्होंने खूब हाथ बटाया। देश की एक-एक बात में उनकी अत काल तक गहरी दिलचस्पी और सतर्कता रही। मुझे स्मरण है कि मृत्यु से कुछ समय पूर्व गाधी-स्मारक निधि की बैठक के सिलसिले में श्री महावीरप्रसादजी पोद्दार के साथ मे उनके निवास-स्थान पर गया, तो वह सोफा पर लेटे हुए थे। शरीर बहुत अशक्त-सा लग रहा था। उन्होने गर्दन उठा कर श्री पोद्दारजी की ओर देखा और बोले, "आप तो बहुत घूम कर आये है। कहो, नेहरू-लियाकतअली-पैक्ट की क्या प्रतिक्रिया है ?" और मैंने देखा कि उन्होने पोद्दारजी की बात इतने ध्यान से सुनी और इतनी बातें कुरेद-कुरेद कर पूछी कि मैं आश्चर्यचकित रह गया। जैसी तबीयत थी, और कोई

होता तो विश्राम करता पर सेना के सरदार के लिए कभी विश्राम का क्षण होता है, जो सरदारों के इन सरदार के लिए होता!

गांधीजी की मृत्यु से उनके हृदय को गहरी चोट लगी और जीवन से जैसे उनका रस सूखने लगा। वह चाहने लगे कि भगवान उन्हें जल्दी-से-जल्दी उठा ले। वैसे वह गांधीजी से पहले ही चले जाने के आकांक्षी थे लेकिन गांधीजी के विछोह के बाद भी इतने दिन जीवित रहे तो इसलिए कि उनके बापू उनके लिए कुछ काम छोड़ गये थे।

गांधीजी के प्रति उनकी असीम भक्ति थी, लेकिन वह किसी के भी अंधविश्वासी नहीं बने। गांधीजी की जो बातें उनकी समझ में नहीं आई उनके संबंध में उन्होंने खूब तर्क किया और जब उन बातों पर उनका विश्वास जम गया, तो उनमें ऐसे जुटे कि कोई क्या जुटेगा! जबान उनकी कुछ कड़वी थी, पर काम उनका बड़ा प्यारा था।

कुशल योद्धा में सब से बड़ा गुण होता है अनुशासन का पालन। उसके लिए वह अपने प्राण भी दे देता है। सरदार में यह गुण गजब का था। नेहरूजी और उनका मतभेद सर्वविदित है, लेकिन जब गांधीजी ने नेहरू-जी को अपना उत्तराधिकारी चुना और देश का नेता माना तो सरदार उसका विरोध कैसे कर सकते थे? गांधीजी के निधन के पश्चात् एकाधिक अवसरों पर, सार्वजनिक रूप से, उन्होंने यह भी दिया कि नेहरूजी उनके नेता हैं। अपने मतभेदों को भूलकर नेता का यों अनु-सरण करना सरदार जैसे महान् व्यक्ति के सर्वथा योग्य ही था। नेहरू-लियाकतअली समझौते पर जब पश्चिमी बंगाल से विरोध का तीव्र स्वर उठा तो सरदार ही थे, जो कलकत्ता गये और लोगों के विरोध को शांत किया।

सरदार की आकृति गंभीर थी, उनके कामों के पीछे भी महासागर की-सी गंभीरता थी, लेकिन उनमें विनोद की मात्रा भी कम न थी। उनके विनोद कला की दृष्टि से भले ही बहुत ऊंचे न हों, पर उनमें उनके स्वभाव की निर्भीकता और हृदय की उन्मुक्तता साफ दीखती है। उनके कई विनोद बड़े मजे के हैं। गांधीजी सादा पानी नहीं पी सकते थे। वह उसमें नींबू मिलाकर पीते थे। जेल में नींबू महंगे मिलते थे, इसलिए उन्होंने कहा कि नींबू के स्थान पर इमली इस्तेमाल की जाय। सरदार ने तर्क किया। बापू ने पूछा, "तुम इमली का विरोध क्यों करते हो?"

सरदार ने उत्तर दिया, "इसलिए कि वह नुकसान करती है।"

"क्या नुकसान करती है?" बापू ने पूछा।

"उससे हड्डियां गल जाती हैं।"

"जमनालालजी तो बराबर इस्तेमाल करते हैं?"

सरदार ने तत्काल उत्तर दिया, "उनकी हड्डियों तक वह पहुंच कहां पाती है!"

ऐसे बीसियों मजाक यत्रतत्र बिखरे पड़े हैं।

सरदार ने गुजरात में जन्म पाया, प्रारंभ में उसी प्रदेश को अपना कार्य-क्षेत्र बनाया, पर धीरे धीरे उनका क्षेत्र व्यापक होता गया और जब उनकी मृत्यु हुई तो गुजरात के ही नहीं, समूचे देश की आंखों में आंसू थे।

भारत के उन्नायकों में सरदार का सदा ऊंचा स्थान रहेगा और अपनी महान कृतियों से वह भारत के इतिहास में युगों तक अमर रहेंगे।

बुराई से रहित और भलाई के अंश से युक्त न्यायपूर्ण स्वार्थवृत्ति व्यवहार्य अहिंसा है। यह आदर्श और शुद्ध अहिंसा नहीं है।

—कि० घ० मशरूवाला

आत्मा ही हिंसा और आत्मा ही अहिंसा है। अप्रमत्त आत्मा अहिंसक और प्रमत्त आत्मा हिंसक होती है।

—हरिभद्रसूरि

सरदार की अमर वाणी

संकलन

हमारे देश के इतिहास में यह अमूल्य अवसर है। हम मिलकर काम करेंगे तो देश को महत्ता के शिखर पर पहुंचा देंगे। अगर मेल नहीं रख सकेंगे तो नई-नई आफतों को निमंत्रण देंगे।

..   ..

लम्बे अरसे तक रोग-शैया पर पड़े रहने के बाद जब बीमारी मिटती है और भूख खुलती है तब परहेज रखना चाहिए। न रखने से कोई बड़ी बीमारी लग जाती है। इसी तरह स्वतंत्रता के साथ हमें परहेज और संयम रखना चाहिए।

..   ..

सुख और दुख को पहचानना सीखना चाहिए। सुख और दुख जीवन के साथ लगे हुए हैं। गरीबी में एक प्रकार का दुख है, पर उसमें जो सुख है, वह अमीरी में नहीं है। गरीबी में भगवान ने एक तरह का सुख दिया है। सूखी रोटी खाने से गरीब को मजा आता है, क्योंकि उसके पेट में आग जलती है।

..   ..

हमारे देश की संस्कृति दूसरी ही है। उसने दुनिया में जो नाम पाया है, वह तलवार- बन्दूक के जोर से नहीं, परन्तु केवल प्रेम से पाया है। यदि हम उस संस्कृति के योग्य बनने का प्रयत्न करें तो आज जो क्षणिक दुख आ पड़ा है, वह आसानी से मिट जायगा और भुला दिया जायगा। स्वतंत्र भारत में हमारा पुराना वैभव वापस आ जाय, हम भगवान से यही प्रार्थना करें।

..   ..   ..

अस्पृश्यता मिटाइये। मंदिरों में, सार्वजनिक स्थानों में, सार्वजनिक सवारियों में, कुंओं पर, रेल और मोटर में, कहीं भी छूत-अछूत का भेद नहीं होना चाहिए। इससे दुनिया में हमारी बदनामी होती है। यह हमारी बेवकूफी है। . . . राज्य को इतना तो करना ही चाहिए कि जहां हरिजनों को लाभ न मिले, वहां मोटर चलाने के और होटल चलाने के परवाने न देने चाहिए।

इस समय महासागर में जो मंथन हो रहा है, उसमें से रत्न निकालना है। दूध बिलोकर उसमें से मक्खन निकालने के बजाय बिलोते ही रहे, तो दूध की हंडिया फूट जाय और फूहड़ माना जाय।

गुलाब के फूल पर बैठी हुई मक्खी उसमें से शहद ही खींचेगी परन्तु मैले के कीड़े को गुलाब पर बैठाएंगे, तो वह वहां भी थोड़ी-सी गन्दगी ही करेगा। उसे उसी की बू आवेगी। इसी तरह गुलामी की दुर्गंध छोड़ दीजिये और स्वतंत्रता की खुशबूदार हवा लीजिये।

..

जैसे हड्डी फेंकने से दस-बीस कुत्ते खींचतान करते हैं वैसे ही सत्ता की खींचतान करने की जो बातें सब तरफ हो रही हैं, वे मूर्खताभरी हैं।

..   ..

अबतक तो हिन्दुस्तान लुटा हुआ, चुसा हुआ रहा। अब उसकी प्रतिष्ठा और इज्जत बढ़ेगी। ऐसे समय छोटी-छोटी बातों से बचना चाहिए। अमुक ने त्याग किया या नहीं, अमुक कांग्रेस में था या नहीं था, ये सब बातें भूलकर एक हो जाइये और संगठन पक्का कीजिए। गई-बीती बातें भूलकर जनता की सेवा करने लग जाइए।

..   ..

हमारा देश गरीब है। हमें खुद गरीबी में रहना है। उस गरीबी में भी हमें सुगंधि फैलानी है। गरीबी किसी भी तरह की बुराई या दोष नहीं है। गरीबी का मेरे अपने बचपन का उदाहरण देता हूं। आठ-दस दिन का सामान कंधों पर रखकर पेटलाद ले जाते और पांच-सात लड़के साथ-साथ एक कमरे में रहते और हाथ से खाना पकाकर खाते थे। मेरी मां मुझे रेल की कोठरी तक पहुंचाने आती कि कहीं मुझे रेल में बैठने का लालच न हो जाय।

..   ..

आजकल जनमत का राज्य है। अगर उसमें आपकी भी जिम्मेदारी न हो, तो मत देकर प्रतिनिधियों को वहां

भेजने से क्या लाभ है ? आप जिसे मत देकर भेजते हैं वह वहां क्या करता है, आपसे क्या चाहता है, यह सब जानना और समझना चाहिए।

स्वराज्य का अर्थ यह है कि हम आत्मबल के आधार पर खडे रहें। किसी पर आधार न रखें। पडौसी भूखों मर रहा हो तो अपनी रोटी में से आधी उसे दे दें।

हिन्दुस्तान को सच्चे स्वराज्य का अनुभव करना हो, तो देहात की, किसान की शकल बदलनी होगी।

आजकल तो लोगों को सन्निपात हो गया है। जिसे देखो वही कहता है, मुझे इंग्लैंड जाना है, अमेरिका जाना है, रूस जाना है। विदेश जाने का मोह हो गया है। ये लोग विदेशों की बड़ी-बड़ी मशीनों और उद्योगों की और वहां की नई समाज रचना की बातें करते हैं। मगर यह गांधीजी का रास्ता नहीं है।

दुनिया जबतक अहिंसा को स्वीकार नहीं करेगी तबतक दुनिया में शांति नहीं होगी। जिसका अहिंसक मार्ग है उसे कौन रोक सकेगा? परन्तु अहिंसा के नाम पर कायर बनकर बैठेंगे, तो काम नहीं चलेगा। वीरता से अहिंसा के रास्ते चलें तो दुनिया को अणुबम भी भुला देंगे।

राज्य के अपने हित के लिए भी खादी को राजमहलों और राज्य की संस्थाओं में प्रतिष्ठा मिलनी चाहिए। प्रजा की आर्थिक उन्नति का इसके जैसा उत्तम साधन और कोई नहीं है।

सभी जातियां एक पिता की संतान हैं। मनुष्य के मर जाने पर ब्राह्मण का चोला हो या चमार का, उसे कोई नहीं छू सकता। प्राण तो पवन के साथ मिल जाते हैं और यह चोला रह जाता है। इसलिए ऊंच-नीच का भेद क्यों मानते हैं ?

उसे सौ-सौ बार है मेरी सलामी !

महेन्द्र राजा

एक स्वर बोला कि जग में सांस डोली,
हृदय में जो लगी थी, वह गांठ खोली,
आज हमसे दूर गांधी जा चुका है,
जा चुकी वह देह जो थी कभी बोली

जिन्दगी का राज वह बतला गया है,
'जियो, जीने दो' हमें सिखला गया है,
हमें—भोले मानवों को सत्य, शिव औ'
सुन्दरम् का पाठ वह सिखला गया है।

एक गांधी था कि जिसने जगत जाना,
सभी को ही सगा अपना बंधु माना,
जूझता जो रहा मरते दम तलक था—
देश के हित, नहीं सीखा पग हटाना,

वह गया, पर दिलों में सबके समाया,
आज हमने है उसे दिल से भुलाया,
था कि जो मानव, नहीं अब रहा मानव,
आज वह इस जगत का ईश्वर कहाया।

दूर कर दी देश की जिसने गुलामी,
उस सरीखा जगत में कोई न नामी,
आज के दिन था लिया अवतार उसने,
उसे सौ-सौ बार है मेरी सलामी।

प्रेमचंद

रामचन्द्र तिवारी

मनुष्य सोचता है, बोलता है और करता है। मन, वचन और कर्म; ये उसके जीवन में क्रिया के तीन क्षेत्र हैं। वचन और कर्म की जड़ मन में है। मनुष्य के विचार में जो नहीं आया, वचन और कर्म में वह कैसे आयेगा? विचार गुप्त है, निजी है, वैयक्तिक है, वे उघड़े उजागर नहीं है। वे लौकिक नहीं है। जो लौकिक नहीं है, लोक उसकी चिन्ता नहीं करता। कर नहीं सकता। जीवन-कला के मर्मज्ञ कहते है कि शुद्ध मन और वैसे ही विचार कल्याणमय ही नहीं है, आनन्दमय भी है। पर यह सौख्य-मात्र है। इसकी उपेक्षा होने पर किसी बाहरी दंड की व्यवस्था नहीं की जा सकती। इसलिए कहा जाता है कि मनुष्य विचार में स्वतन्त्र है पर व्यवहार मे परतन्त्र है।

व्यवहार वह है जहां व्यक्ति का सम्पर्क समाज से होता है, अपने व्यक्तित्व से बाहर दूसरे व्यक्ति से होता है। मनुष्य बोलता है और करता है, तो लौकिक हो जाता है, लोक में उतरता है। मनुष्य जो बोलता है और करता है, वह उघड़ा और उजागर होता है। उसे परखा और जांचा जा सकता है। उसकी नाप-तोल की जा सकती है। उसे भले-बुरे की कसौटी पर परखा जा सकता है। लोक कल्याणी और अकल्याणी श्रेणियों में बांटा जा सकता है तथा अनुचित व्यवहार के लिए दंड की व्यवस्था की जा सकती है। वचन-व्यवहार और कर्म-व्यवहार, लोक-व्यवहार के ताने-बाने है।

विचारों के क्षेत्र में मनुष्य ने सहस्रों वर्ष पूर्व परिपक्वता प्राप्त कर ली थी। वसुधा पर जहां-जहां मनुष्य है, वे सब एक ही मानव-कुटुम्ब के सदस्य है, यह विचार आज नहीं उपजा है, बहुत पुराना है। इस विचार के सामने हम कुछ सिमटे ही है, फैले नहीं है।

मानव के जीवन-दर्शन में सत् को सबसे ऊंचा स्थान दिया गया है। वचन-व्यवहार में वह सत्य के रूप में आया है।

सत्य-वचन के उदाहरण हमें सतयुग, त्रेता और द्वापर में बार-बार मिलते है, पर कर्म के क्षेत्र में सत्य का केवल एक ही उदाहरण उभर कर आता है। यह उदाहरण है हिरण्यकश्यप के पुत्र प्रह्लाद का। प्रह्लाद का सत्य-वचन-सत्य नहीं, कर्म-सत्य है। वह किसी वचन पर डटा हुआ नहीं है, वह उस कर्म पर अड़ा हुआ है जिसे वह सत्य, समझता है। सत्य को कर्म के क्षेत्र में स्थापित करने का सौभाग्य कलियुग का है और यह स्वाभाविक ही है। पहले तीनों युगों में कर्म की गति सीधी और सरल है। ज्यों-ज्यों मनुष्य की संख्या बढ़ी है, उसके स्वार्थों की संख्या भी बढ़ी है। एक देश-काल में बहुसंख्यक स्वार्थों की उलझन में कर्म की गति कलि में जटिल हो गई है। इस जटिलता में सच्चे-झूठे सभी प्रकार के कर्मों का सामना मनुष्य को करना पड़ता है। एक स्थल आता है जब व्यक्ति सत्य को पकड़ लेता है और ऐसा होता है कि वह स्वयं सत्य द्वारा पकड़ा जाता है। सत्य स्वामी बन जाता है और व्यक्ति सेवक। उसके लिए सत्य सब-कुछ हो जाता है और जीवन तथा व्यक्तित्व न कुछ रह जाता है। इस स्थिति में से कर्म-सत्य की उत्पत्ति होती है। तुलसी के पद में विभीषण और भरत ने बंधु तथा महतारी से असहयोग-मात्र किया है, सत्य पर आग्रह किया है प्रह्लाद ने। प्रेमचंद का युग सत्याग्रह का युग था। वह चुनौती का युग था। उन दिनों वर्तमान भविष्य की ललकार में घर्रा रहा था।

प्रेमचन्द ने वह ललकार सुनी थी। उसमें जनार्दन की वाणी को अनुभव किया था और वे भूत के बंधनों से जकड़े वर्तमान से निकलकर भविष्य के दल में चले आये थे। वे देख सकते थे और शब्दचित्र खींच सकते थे। उन्होंने इन चित्रों द्वारा समाज के उन जर्जर, पंगु और दुर्गंधमय स्थलों की ओर ध्यान आकर्षित किया जिनका विनाश भविष्य के हित में श्लाघ्य है और उन स्वस्थ शाखाओं को प्रोत्साहन दिया, जिनमें से फूटी हुई नई कोंपलें नव-जीवन की हरियाली का आवाहन

कर रही थी।

सामाजिक सघर्ष एक ऐतिहासिक स्थायित्व है। यह संघर्ष मन, वचन और कर्म तीनो क्षेत्रो में चलता है। कर्म के क्षेत्र में जब विस्फोट होता है, तो हिंसा उभर आती है और भौतिक युद्ध में मनुष्य प्रवृत्त हो जाता है। शस्त्रास्त्रो का उपयोग होता है। पर इस युद्ध मे केवल वे ही नही लडते जो रण-क्षेत्र में गोली चलाते है, वे भी लडते है जो लडने वालो के लिए सडके बनाते है, पुल तैयार करते है गोला-बारुद ढोकर लाते है, गोला-बारूद बनाते है, गोला-बारूद बनाने का ज्ञान तथा कौशल प्राप्त करते है। युद्ध की क्रिया एक व्यापक क्रिया है। हिंसात्मक युद्ध म ये सब क्रियाए उभर कर ऊपर आ जाती है और स्पष्ट दिखाई देने लगती है। अहिंसात्मक सघर्ष में भी ये सब क्रियाए होती है। जिस प्रकार गोली चलाने वाली सेना की विजय के लिए उत्तम रण-चातुरी और गोला-बारुद की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार अहिंसक सघर्ष की सफलता के लिए कर्म-सत्य की प्रबलता अपेक्षित है।

अहिंसक सघर्ष के सिपाहियो की सुसगठित सेना नही होती। उसमें प्रत्येक व्यक्ति जीवन मे अपने-अपने स्थान पर सघर्ष करता है। वह स्वय नायक होता है और स्वय सिपाही। सघर्ष से हट जाने के प्रलोभन उसके सामने अधिक होते है और हट जाने पर ससार उसे पारितोषिक देता है, दड नही देता। ऐसी अवस्था म अहिंसक सघर्ष के सिपाही का प्रशिक्षण अत्यत महत्वपूर्ण हो जाता है। यह प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए न कही कक्षाए चलाई जाती है और न कही शिविर खोले जाते है। अहिंसक सिपाही अपने जीवन-अनुभव और सत्याग्रही दृष्टि के सहयोग से अपने को प्रशिक्षण देता है। जिसको वह सत्य समझता है, उसके प्रति आग्रह करता है। इस आग्रह में विपक्ष का विनाश उसका ध्येय नही होता। विपक्ष भी उसका उतना ही अपना होता है जितना कि स्वपक्ष। उसका ध्येय होता है विपक्ष में स्थित उस असत्य का विनाश जिसके कारण विपक्ष, विपक्ष बनता है। सत्य का यह आग्रह वर्तमान के विरुद्ध और भविष्य के पक्ष में होता है। यह विकास के पक्ष में होता है। और उस न्याय के पक्ष में होता है जो मानव-इतिहास की गति के साथ जन-जन के अधिकाधिक निकट आता जा रहा है।

इस अहिंसक सिपाही को प्रेरणा चाहिए अपने भीतर से। शक्ति चाहिए अपने भीतर से। उसका मार्ग रक्त का नही, आसू का मार्ग है। उसका पथ मुजदडो का, मस्तिष्क का नही है, हृदय का है। वह पथ पर बना रहे। कदम आगे बढते रहे। इसके लिए चाहिए कि सत्य की मशाल उसके सामने जलती रहे और वह कर्म मे सत्य-रत रहे। प्रेमचन्द ने अपने साहित्य में वही मशाल हमें दी है। सत्य के प्रति आस्था और आग्रह उनका सदेश है।

प्रेमचद कलाकार थे। कला का एक माध्यम होता है। प्रेमचद का कला-माध्यम हिन्दी था। हिन्दी ने उनकी वाणी को लाखो करोडो तक पहुचाया और इस सेवा से उसमें बनाव तथा सिंगार आया। हिन्दी प्रेमचद को पाकर गौरवान्वित हुई।

कलाकार का प्रथम ध्येय है आनन्द की, सौंदर्य की, तीव्र चेतना की सृष्टि। यह सृष्टि अपनी उपज में वैयक्तिक होती है। इसका अधिकाश भाग ऐसा है जो प्रभाव में भी वैयक्तिक रहता है। उसका सामाजिक दान विशेष नही होता। पर एक सृष्टि होती है जो वैयक्तिक आनन्द के साथ सामाजिक चेतना भी प्रदान करती है। ऐसी सृष्टि के कर्ताओ में वाल्मीकि, व्यास, तुलसी आदि के नाम लिये जा सकते है। प्रेमचद इसी परम्परा में थे। तुलसी काव्य-रचना के लिए जब शारदा को बुलाते है तो उसके आने के श्रम निवारणार्थ उसे रामचरित्र के सर में अन्हवाते है। प्रेमचद भी जब शारदा का आवाहन करते है, तो उसे उस राम के चरित्र-सागर में स्नान कराते है जो जन-जन में रम रहा है और जन-जनार्दन के रूप में नवयुग का देवता बन रहा है।

प्रेमचद भारतीय ग्रामीणो के कलाकार थे। भारतीय ग्रामीण किसान है। प्रेमचद कला के क्षेत्र में किसान थे। धरती के बनाने-सुधारने में वे अथक थे। पसीने-परिश्रम से वे कभी मुह नही मोडते थे। वे उस धरती में बीज डालते थे। बीज, जो वाछनीय थे, स्वस्थ थे और गतिवान थे। उनकी उपज हमने देखी है। वह बढ और फैल रही है। हम अपने भीतर उसे फैलता हुआ अनुभव कर रहे है।

बाज और कबूतर

विष्णु प्रभाकर

स्थान—कलकत्ता।

समय—सितम्बर १९४७ के पहले चार दिन।

पात्र—गांधीजी, नेता लोग, गुण्डे और जनता।

(परदा उठने पर मंच पर अन्धकार है, फिर धीरे-धीरे प्रकाश उगता है। संध्या का प्रकाश है। उसमें दिखाई देता है, एक विशाल कमरा, जो निजी होकर भी सार्वजनिक है। अशोभनीय चरित्र के व्यक्ति वहां इकट्ठे होते हैं। बड़ी अस्तव्यस्तता है। तीन-चार मूढ़े और तीन-चार कुर्सियां पड़ी हैं। बीच में एक लम्बी मेज है जिसपर तीन-चार देसी शराब की बोतलें, पांच-छः गिलास और कई तश्तरियां पड़ी हैं। दीवारों पर कुछ चित्र व कलेण्डर भी हैं। मेज के पास तीन व्यक्ति बैठे दिखाई देते हैं। तीनों तीन प्रान्तों के हैं; पर तीनों की आकृति में आततायीपन है। रंग, कद, काठी में असमानता है पर उत्साह समान है। जोर-जोर से हंसकर बातें कर रहे हैं।)

क—(अट्टहास करता हुआ) पहले तो बुड्ढ़ा राजी ही नहीं होता था; पर जब मैंने उसे नोआखली और पंजाब की कहानी सुनाई, तो उसे कहना पड़ा कि वह ट्राम से नहीं गिरा, उसे मुसलमानों ने पीटा है। बस, फिर क्या था, फिर तो पन्द्रह दिन की शान्ति हवा में उड़ गई।

ख—(उसी तरह) शान्ति हवा में उड़ गई! ही ही ही, बड़ी बुजदिल है यार। लेकिन वह बुड्ढा गान्धी बड़ा भिन्ना रहा होगा? बड़ा खुश हो रहा था।

ग—(वही अट्टहास) उसी बुड्ढे ने तो सब गड़बड़ की है। इस बार इसे मजा चखाना है।

घ—हां, कोई बात है? मुसलमानों का जरा-सा नुकसान हुआ कि आ धमके और जब हमपर छुरी चलती थी तब आप कहां थे?

ख—मैंने तो उसी दिन, सबके सामने कह दिया था कि पिछले साल सोलह अगस्त को जब यहां भयंकर दंगे हुए, खून की नदियां वहीं तब मुसलमानों के मुहल्लों में हिन्दुओं को बचाने कौन हाजिर हुआ?

ग—कोई फिक्र नहीं यार, हम सबका बदला चुका लेंगे।

क—चुका क्या लेंगे, चुका रहे हैं। वह कत्लेआम शुरू किया है कि नामोनिशान तक नहीं बचेगा।

ख—कल सड़कों पर लाशें सड़ेंगी।

ग—और हमारे घर उनके माल और उनकी खूबसूरत औरतों से भर जायेंगे। ही, ही, ही।

क—(कड़क कर) बेशक भर जायंगे। हमें पंजाब का बदला लेना है। ऐसा बदला कि दुनिया हमेशा याद रखे। (भयंकर हंसी)

ख—बेशक हम बदला लेंगे और बदला तो हम उसी दिन ले लेते, पर न जाने उस बुड्ढे में क्या जादू है, जो सामने आया, भीगी बिल्ली बन गया। जब उसने कहा कि वह भी तो हिन्दू है, तो बस जो जरा-सी देर पहले उसे मारने को तैयार थे, वही पहरा देने लगे।

ग—(तेज) वे सब बुजदिल थे; लेकिन इस बार हम हैं। अब ऐसा नहीं होगा।

क—होगा कैसे? मैंने आग ही ऐसी लगाई है। कल किसी ने सुनी उसकी बात। वह चीखता रहा, 'क्या है? मुझे मारो, मुझे मारो, मुझे क्यों नहीं मारते?'

ख—सचमुच वह नजारा देखने लायक था। उसे जुनाम हो रहा था और वह पागलों की तरह बार-बार आगे बढ़ना चाहता था।

ग—और वे लड़कियां बार-बार उसके आगे आ जाती थीं।

ख—भीड़ में से कोई उसे मार देता तो...?

क—(चिढ़कर) तो ठीक होता। वह इसी तरह अड़ेगा, तो हमने कोई उसका ठेका लिया है।

ख—(धीरे से) ना, ना, उसे बचाना होगा यही तो बात है, तुम नहीं जानते।

(तेजी से एक और व्यक्ति 'च' का प्रवेश। वही रूपरंग)

च—(तेजी से) तुम लोग यहा बैठे हो। बाहर कत्लेआम शुरु हो चुका।

क, ख ग—(एक साथ) हो गया।

च—बडा बाजार, बाऊ बाजार सब जगह आग लग चुकी है। बलिया घाट जो मुसलमान लौटे थे, उनपर भी हमला किया गया।

क—शाबाश। उन्हे तो काट डाला होगा।

च—कहा काट सके? जैसे ही हमले की बात सुनी, गाधी महात्मा न अपने आदमी वहा भज दिए।

क—ओह यह बुड्ढा हमारा सबसे बडा दुश्मन है।

ख—इस महात्मा न तो नाक मे दम कर दिया।

ग—फिर, फिर क्या हुआ?

च—फिर? वे जब ट्रक में बैठकर जाने लगे, तो हमने उसपर बम फेंका और दो को वही गिरा दिया।

ग—बस दो।

च—दो भी बहुत थे। गाधी महात्मा की बगल में ही तो सबकुछ हुआ। जब उसने यह खबर सुनी तो दौडा हुआ लाशो को देखने आया।

क—(निश्वास) सच! यही कसर रह गई थी।

च—क्या बताऊं। तब तो एक बार मेरा मन भी हिल गया। मैं तो वहा से दौड़कर बाऊ बाजार गया और तीन चार शिकार करके तब इधर आया हू। लाओ, जरा गिलास दो न! ('ख' शराब उडेलकर देता है) कुछ भी हो हम पारसाल का बदला लेना है। (गिलास उठाता है)।

क—हम पजाब का बदला लेना है। (गिलास उठाता है)

ख—हम नोआखली का बदला लेना है। (गिलास उठाता है)

ग—हमें सरवर और सुहरावर्दी से बदला लेना है (वह भी गिलास उठाता है। सब पीते हैं)।

च—(घूट भरकर) यार, वह गुण्डा सुहरावर्दी वहीं नहीं दिखाई दिया।

ख—अब तो वह गांधी का चेला बन रहा है। कह रहा था, पारसाल के दगो के लिए मैं ही जिम्मेवार हू।

च—यह गाधी पता नहीं क्या करता है। सरवर और सुहरावर्दी-जैसे गुण्डो को फरिश्ते बनाने पर तुला है।

क—(एकदम) सब ढोंग है। सब बदमाशी है। हमपर उसका जादू नहीं चल सकता।

च—ठीक है हमपर वह क्या जादू करेगा? पर एक गलती हो गई। एक दिन रुक जाते तो गाधी नोआखली चला जाता।

ख—कैसे रुक जाते? ऐसे मौके क्या बार-बार आते हैं?

ग—यह फजूल की बहस है। चलो उठो, कहीं आग ठण्डी न पड जाय!

ख—हा, हा चलो! मेरे हाथ फडक रहे हैं।

क—और मेरा तो लाशें देखकर खून बढ़ता है। मुझे पजाब का बदला लेना है। आओ, देखें हमारी टोलिया क्या गुल खिला रही हैं?

(सबके सब तेजी से गिलास पटक और हथियार सभाल कर जाते हैं। एक-दो क्षण सन्नाटा रहता है? फिर मच पर रात्रि का आभास। अन्धेरा घिरता आता है। बल्ब जल उठता है। उस धुधले प्रकाश में 'च' एक दूसरे साथी के साथ वहा आता है। वह कुछ अनमना है। धुधले प्रकाश म वह अनमनापन और भी अधिक स्पष्ट है। दूर पृष्ठभूमि में रह-रहकर 'अल्लाहो अकबर' और 'हर हर महादेव' के नारे गूजते हैं। फिर गोलियो की आवाज उठती रहती है, उठती रहती है। वे दोनो मेज पर बैठकर पीने की चेष्टा करते हैं। एक घूट पीकर 'च' कुछ सोचता है, फिर बोलने लगता है।)

च—समझ में नही आता, उस वक्त मेरा मन क्यों हिलने लगा।

ट—तुम कच्चे हो यार।

च—सुनो तो, मुझे ऐसा लगा, जैसे गाधी महात्मा के साथ मैंने भी पहली बार उन लाशो को देखा—बहता हुआ खून। भिनभिनाती मक्खिया। फटी हुई आखें और इधर उधर बिखरे उनके चार आने के पैसे देख कर गाधी महात्मा बोला नहीं। बस उसके चेहरे पर दर्द की कुछ लकीरें खिच गई। वह एकटक देखता रहा, देखता रहा, तब न जाने क्या हुआ? मै वहा से भागा। मैंने कई बार छुरे मारे, आग लगाई, पर हर बार मेरी आखो के आगे उसका वह दर्द से पीला पडता चेहरा आ

जाता . . वे एकटक ताकती आंखें मुझे ही ताकने लगती।

ट—चुप रहो, चुप रहो। तुम इतने बुजदिल हो। जब हमारे भाइयों की लाशें गिरी तब तो वह देखने नहीं आया। नहीं, नहीं यह गलत है, ढोंग है। हम बदला लेंगे, जरूर लेंगे सोचो मत। पियो और बदला लो (पीता है)

च—बदला तो लेना है हो; पर . . .

ट—(शराब डालते हुए) पर-बर कुछ नहीं। बदला, केवल बदला। पियो और पीकर पागल हो जाओ। गवर्नर, वज़ीर, फ़ौज, गांधी किसी की मत सुनो, किसी की चिन्ता मत करो। ('ख' का तेजी से प्रवेश)।

च—(एकदम) क्यों तुम कैसे आये?

ख—मैं गांधीजी की तरफ़ गया था। वहां सुना ..

ट—क्या सुना? बुड्ढा शान्ति का भाषण देता होगा

ख—नहीं। वह कल से अनशन कर रहा है।

च—सच।

ट—(अट्टहास) अरे छोड़ो भी। ये उसकी चालें हैं; पर अब हम इनमें फंसने वाले नहीं हैं।

च—(चिन्तित स्वर) काशकि वह चला जाता काशकि . . .।

ट—(क्रुद्ध) ओफ़्फ़ो! जो अब नहीं हो सकता। उसकी चिन्ता क्या? हाजी अनशन की बात छोड़ो, और क्या खबरें हैं?

ख—बस और तो शोले भड़क रहे हैं। कत्लेआम और लूट जारी है। दूसरी ओर लीडर लोग बयान निकालने की होड़ लगा रहे हैं। जो देखो बयान निकालता है और गांधी के पास भागता है।

ट—गांधी नहीं वे ईश्वर के पास भागें। यह आग नहीं बुझेगी,। हमारा सोने का बंगाल बट गया है। अब उन लोगों को कलकत्ते में रहने का कोई हक नहीं है।

ख—बेशक कोई हक नहीं। जाय अपने पाकिस्तान और साथ में वे भी जायं जो उन्हें रखना चाहते हैं। (हंसता है और गिलास में शराब डालकर पीता है, 'च' मुस्कराता है। सहसा बिजली बुझ जाती है। भयानक अंधकार छा जाता है। भय और अट्टहास की आवाज़ें उठती हैं। छुरे चमकते हैं। फिर सन्नाटा, फिर धीरे-धीरे अन्धकार फीका पड़ता है। कुछ मूर्तियां आती-जाती हैं। फिर प्रकाश फूटता है, कमरे का अस्तव्यस्त रूप नज़र आता है। बोतलें, गिलास, लूट का माल बिखरा पड़ा है। कुछ क्षण बाद 'च' और 'ख' फिर वहां आते हैं। बड़ा अटपटा वेश है। गम्भीर चेहरा है। आकर चुपचाप बैठ जाते हैं। कई क्षण बैठे रहते हैं, फिर 'ख' बोलता है

ख—पियोगे?

च—ऐं . क्या कहा।

ख—पियोगे। (अलमारी से बोतल निकालता है)।

च—हां लाओ। बाहर बहुत तेज़ बारिश हो रही है। भगवान जैसे इस आग को बुझाना चाहते हैं।

ख—राजाजी कहते हैं, 'अगर आप सब शान्त रहेंगे तो महात्माजी का इरादा पंजाब जाने का है ही; लेकिन उनको पंजाब भेजना या न भेजना आपके हाथ में है।'

च—पंजाब तो उन्हें जाना ही चाहिए।

ख—और तुमने यह भी सुना? नेता लोग कहते हैं कि यह झगड़ा सिखों और बिहारियों ने किया है। बंगाली लोग उसमें बाद में शरीक हुए।

च—हूं, (पीता हुआ) तुम्हारा क्या ख्याल है?

ख—ठीक ही है, पर उससे क्या? वे लोग फूट डलवाना चाहते हैं, मगर हम सब एक हैं। बदला लेना हमारा काम है। रात भर शान्ति-सेनाएं शहर में घूमती रहीं, पर शहर तो जलता ही रहा और जलता रहेगा . . .।

च—जलता रहा तभी तो पानी बरस रहा है।

ख—(गौर से) तुम कुछ बहुत अनमने हो रहे हो।

च—(हंसकर) कहा, नहीं तो। मैंने किसी को नहीं छोड़ा। मैंने न जाने कितनी बार गांधी के छुरा मारा।

ख—(चकित) क्या मतलब?

च—मतलब मैं भी नहीं जानता, पर जिसके भी छुरा मारता उसका चेहरा गांधी का चेहरा बन जाता

('ग' तेजी से आता है)

ग—तुमने सुना 'क' मारा गया। उसके गोली लगी।

च—क्या?

ख—क्या सच!

ग—मैं उसके पास था, बिलकुल पास। वह लोगों को उकसा रहा था। शान्ति दल के प्राचीन मित्र को उसी

कहन पर लोगो ने छुरा मारा।

च—(चकित) प्राचीन मित्र के छुरा मार दिया ?

ग—हा, वह मर गया। 'क' भी मर गया।

च—ओह !

ख—और।

ग—और गोली भी चल रही है ?

ख—गोलिया ! हर कही गोलिया। एक तरफ शाति के लिए अपील करते हैं दूसरी तरफ गोलिया चलाते हैं।

च—गाधी महात्मा की क्या खबर है ?

ग—अनशन कर रहा है और लोग उसके बयान छपवाकर बाट रहे हैं। सुना है नेहरू का तार आया है कि जल्दी पजाब आओ।

च—और अब वह जायेगा नही। जबतक शान्ति नही होगी वह नही टलेगा।

ख—यही तो मुसीबत है।

ग—समझ में नही आता ? इस बुड्ढे की कोई बात पकड में नही आती। तुमने एक और बात सुनी ?

ख—क्या ?

ग—प्रफुल्ल बाबू हिन्दू महासभा के लीडरों और बाबू को गिरफ्तार करना चाहते थे, पर महात्मा न रुकवा दिया। कहा, 'उनपर जिम्मेदारी डाल दो। उनसे कहो तुम लडना चाहते हो या शाति फैलाना। हमें तो तुम्हारी मदद चाहिए।'

ख—बडा चालबाज है!

ग—पूछो मत। क्या हिंदू सभा वाले, क्या लीगी, क्या शरत बाबू का फारवड ब्लाक—सब दगे रोकने पर लगे है। सुहरावर्दी और श्यामा बाबू न भी अपील की है।

च—और सुना है उसने सबसे कह दिया है कि उन्हें *यहीं रहना चाहिए और कोई मारे तो मर जाना* चाहिए।

ग—यही नही उसने शरत बाबू से कहा है कि शाति जलूस में मैं और आप नगे पैर चलेगे।

च—सच ! मै कहता हू हमें अब सोचना चाहिए। कहीं गाधी को कुछ हो गया तो !

ख—(हसकर) तुम्हारा मतलब है कि हम भी शान्ति के लिए जलूस निकाले।

ग—(क्रुद्ध) नही, नही, यह नही होगा। हम बदला लेगे। पूरी तरह बदला लेगे। कुछ भी हो हम बदला लेगे।

('ट' का लडखडाते हुए प्रवेश)।

ट—बदला ! कैसा बदला ! किससे बदला ?

च—(एकदम) तुम्हें क्या हुआ ? अरे इसे सभालो

('ख' और 'ग' उसे पकडकर खाट पर लिटाते हैं)।

ख—क्या बात है ? क्या गोली लगी ?

ट—काशकि लग जाती!

(तभी पृष्ठभूमि में जलूस का शोर। धीरे धीरे शब्द पास आते हैं *'गुण्डाबाजी नहीं चाहिए'*)।

ग—ये कौन है ? क्या शान्ति-जलूस फिर निकला है ?

ट—सारी रात जलूस ही निकले। एक ओर लूट मची और दूसरी ओर जलूस निकले।

ख—लेकिन तुम्हें क्या हुआ ?

ट—कुछ हुआ ही तो नही। मै इन शान्ति के जलूसों से तग आ गया था। मने एक व्यक्ति को, जो बहुत तेज हो रहा था, पकड कर गली में घसीट लिया और जैसे ही उसके छुरा मारना चाहा, तो वह हस पडा।

ग—(चकित) हस पडा !

ट—हा, हस पडा और बोला—छुरा मारते हो मारो। डरो मत, मैं भागूगा नही। मुझे खुशी है कि मेरा खून शान्ति के लिए बह रहा है।

ख—(उत्सुक) फिर क्या हुआ ?

ट—हुआ यह कि मैने उसके छुरा मार दिया।

च—मार दिया।

ग—(हसकर) मारना तो था ही।

ट—मारना तो था ही, पर उसके बाद जैसे ही मैं भागने लगा उसने मुझसे कहा, मै तो एक साधारण आदमी हू। *मेरे मरने से कुछ नहीं होगा पर देखना महात्माजी* को कुछ न हो जाय। नही तो हमारे प्रात पर कलक लग जायगा और फिर वह कभी नही धुलेगा।

च—ओह ! ओह !!

ट—और यह कहकर वह गिर गया, लेकिन उसकी शात मुद्रा ! उसकी निडरता, उसका विश्वास !

ख—(तेज) ढोंग ! सब ढोग। सब कायरता !

ग—(तेज होकर) इसी कायरता ने हमें बार-बार

नीचा दिखाया।

ट—(एकदम) पता नहीं क्या है पर ...पर ... यह नजर !

च—(एक दम) सब बन्द होना चाहिए। यह सब रक्तपात बन्द होना चाहिए।

ग—(एकदम छुरा निकाल कर) हू, बन्द होना चाहिए। यह सब तुम्हारी शरारत है। तुम हमें बुज-दिल बना रहे हो। ठहरो, मैं तुम्हें बताता हूं ...।

स—(एकदम) क्या करते हो ? क्या करते हो ? (पकड़ता है)।

ट—(उठकर) सुनो ! सुनो !! यह क्या है। यहां भी छुरेबाजी ! रुको (पकड़ता है)।

ग—(चीखता हुआ) मैं तुम्हें खतम कर दूंगा। मैं तुम्हें खतम कर दूंगा।

(इसी झगड़े में कुछ मेज-कुरसियां गिरती हैं)।

स—अरे सुनो, सुनो तो (खींचकर बाहर ले जाता है) मेरे साथ चलो। छुरे की जरूरत वहां है, यहां नहीं।

ट—क्या हो गया ? यह क्या हो रहा है ? (गिर पड़ता है)।

च—समझ में मेरी भी नहीं आ रहा, पर यह बन्द होना चाहिए। (जाता है)।

ट—सुनो तो, सुनो तो ! मैं भी आता हूं।

(वह भी जाता है। फिर वहां कुछ देर सन्नाटा रहता है, फिर अंधकार बढ़ता है। उस अंधकार में आवाजें उठती हैं। 'हिन्दू-मुसलमान एक हैं'। 'गुण्डेबाजी बन्द करो' 'गांधीजी की रक्षा के लिए गुण्डागर्दी बन्द करो,' 'हिन्दू-मुसलमान भाई-भाई', 'गांधीजी को बचाना है' 'बचाव जाने दो।' धीरे-धीरे नारे बन्द होते हैं। प्रकाश उगने लगता है। वही काफी व्यवस्था है। ट और च शान्त भाव से आते हैं और बैठ जाते हैं।)

च—देखा तुमने। उस बुड्ढे को देखा। उसके सामने जाकर वे सब कैसे फूट-फूटकर रो रहे थे।

ट—हां। मुसलमानों ने कहा—'हम जिम्मेदारी लेते हैं कि इस मुहल्ले में कोई दंगा न करेगा।'

च—और हिन्दू बोले—'हम हिल-मिलकर रहेंगे।' अब तुम्हीं बताओ हम क्या करें।

ट—यही तो मैं भी सोचता हूं। मुझे तो महात्मा की वह बात रह-रहकर याद आ रही है कि 'जैसे विचार आपके हृदय में पैदा हुए हैं वैसे ही अगर गुण्डों के दिल में पैदा हो जाय तभी मेरे उपवास छूट सकते हैं ...।

च—उपवास तो छुड़ाने ही होंगे।

ट—हां छुड़ाने चाहिए।

च—मेरा खयाल है कि हम महात्मा के पास चलें।

ट—फिर !

च—फिर क्या, उनके सामने जाकर अपना कसूर मान लें।

ट—(कांपकर) कसूर मान लें ! नहीं, नहीं ...।

च—मैंने तो निश्चय कर लिया है।

ट—तुम मान लोगे कि तुमने छुरे मारे।

च—हां !

ट—आग लगाई।

च—हां !

ट—लूट-मार की।

च—हां, हां, मैं सब कुछ मान लूंगा।

ट—तुम ... तुम क्या कहते हो ?

च—तुम घबरा रहे हो, पर तुम नहीं जानते कि गांधी को कुछ हो गया तो हमारा मुंह काला हो जायगा। सोचो तो उस अकेले आदमी ने नोआखली में क्या कर दिखाया ! अब पंजाब उसे बुला रहा है। मुझे तो लगता है कि सब लोग उसकी सुनें तो सब झगड़े मिट जांय।

ट—उसके सामने आते ही न जाने क्या हो जाता है !

च—मैं तो जाता हूं (जाता है)।

ट—ठहरो, मैं भी आ रहा हूं। मैं भी आ रहा हूं। जिनको अबतक मारा था उन्हीं को बचाना होगा।

(वे दोनों जाते हैं। फिर अन्धकार बढ़ता है और शान्ति के नारे उठते हैं। प्रार्थना के मंत्र उठते हैं। फिर अन्धकार मिटता है। उज्ज्वल प्रकाश में रंगमंच चमक उठता है। दृश्य बिलकुल पलट गया है। न वहां मेज है, न बोतलें। वह 'हैदरी मैन्शन' का कमरा है। सुन्दर स्वच्छ और सादा। एक ओर चारपाई पर महात्माजी लेटे हैं—शान्त, विश्वस्त और उज्ज्वल प्रकाश से आलोकित। उनके सामने अनेक दंगाई सरदार हैं, क्रूर, पर इस समय

करणा के पात्र, हाथ जोडे बार-बार प्रार्थना करते हैं) ।

समवेत स्वर—हम सब अपराधी हैं बापू । हमने खून किये, आग लगाई, लूटपाट की, पर अब हम कुछ नहीं करेंगे । आप उपवास छोड दें ।

च—(रोता हुआ) बापू, आप उपवास छोड दें । मेरी सारी टोली मुसलमानों की रक्षा करेगी ।)

ट—(रोता हुआ) मुझे भी सजा दो बापू । मैं और मेरी सारी टोली आपकी सजा भोगने को तैयार हैं ; लेकिन उपवास छोड दीजिए । उपवास छोड दीजिए ।

समवेतस्वर—हा, बापू उपवास छोड दीजिए । हमें जो सजा देंगे, भुगतेंगे ।

(तभी एक स्वर गूजता है मानो बापू बोल रहे हैं) ।

स्वर—मेरी सजा यह है कि तुम मुसलमानों में जाओ और काम करने लगो । मुझे यकीन हो जायगा कि अब तुममें सचमुच परिवर्तन हो गया है तो मैं तुरन्त उपवास छोड दूंगा ।

समवेत स्वर—(हाथ जोडकर व सिर झुकाकर) हमें मजूर है । हमें मजूर है ।

स्वर—लेकिन यह काम तेजी से होना चाहिए, क्योंकि मुझे तुरन्त पजाब जाना है और पजाब की खातिर ही मुझे जीने की इतनी प्रबल इच्छा है । अगर तुम देर करोगे तो मैं अधिक दिन नहीं टिक सकूगा ।

समवेत स्वर—हम आज ही यह काम करेंगे । आज ही आप उपवास तोडेंगे । यह हमारा निश्चय है ।

(यह कहकर वे सिर झुका झुका कर बाहर जाते हैं । प्रकाश धीमा होता है । धुधलाता है । कुछ मूर्तिया आती-जाती हैं । एक स्वर उठता है ।)

एक नारी स्वर—बापूजी ! राजाजी ने लिखा है शहर में शाति है और वातावरण शान्त और प्रसन्न है ।

(अन्धकार फिर प्रकाश में पलटता है । वह सन्ध्या का प्रकाश है । बापू उसी तरह लेटे हैं । अनेक नेता आते हैं और बैठते हैं । वे आपस में बात करते हैं और फिर सब एक स्वर में बोलते हैं ।)

समवेत स्वर—हम गाधीजी के सामने प्रतिज्ञा करते हैं कि अब कलकत्ते में सम्पूर्ण शान्ति बनी रहेगी और अगर कुछ भी होगा, तो उसकी जिम्मेदारी हमारे सिर पर है । हम पहले मरेंगे ।

(स्वर मिटते हैं—प्रार्थना के स्वर उठते हैं । बिजली जल उठती है । सब प्रार्थना करते हैं, भजन गाते हैं । राम-धुन के बाद सुहरावर्दी साहब मोसबी के रस का प्याला बापू को देते हैं । फिर उनके पाव पकडकर रो पडते हैं । बापू का स्वर गूजता है ।)

स्वर—यहा जितने हिन्दू-मुस्लिम खडे हैं, उनसे मैं आशा करता हू कि मुझको दुबारा फाका नही करना पडेगा । ...कलकत्ता ही सारे हिन्दुस्तान की शांति की चाबी है । . ईश्वर सबको सन्मति दे . . . ।

(बापू रस पीते हैं । सब समवेत स्वर में 'नारायण', 'नारायण' बोलते हैं । प्रकाश चमकता है । फिर एक क्षण के लिए वह धीमा पडता है और फिर एक-एक करके दगाई लोग प्रवेश करते हैं । उनके पास हथियार हैं—बन्दूक, कारतूस, बम वगैरा । वे उन्हें बापू के सामने रखते हैं । प्रकाश फिर चमकता है । बापू के मुख पर उत्साह है और दगाई लोग घुटने टेके माथा झुकाये बैठे हैं ।

दगाई—(एक स्वर में) हम अपने हथियार आप को सौंपते हैं बापू ।

स्वर—इन्हे देने में जरा भी दुख न होना चाहिए ।

दगाई—(एक साथ) हमें जरा भी दुख नही है ।

स्वर—ईश्वर सबको सन्मति दे ।

(फिर प्रकाश तेज होकर फैल जाता है । एक ओर शान्ति के प्रतीक क्षीणकाय बापू हैं, दूसरी ओर बाज-जैसे खूखार कठोर बदन वाले व्यक्ति, जो अब हाथ जोडे एक-टक बापू को देख रहे हैं । उनके बीच में पडे हैं नाना प्रकार के हथियार—बम, बन्दूक, तलवारें और-चारों ओर खडे हैं अनेक नर-नारी हिन्दू-मुसलमान सिख नेता—सहसा सब एक स्वर में पुकार उठते हैं 'महात्मा गाधी की जय' तभी परदा गिरता है । जय-जयकार गूजती रहती है ।)

इस नाटक की मूल कथा, गाधीजी के वाक्य और घटनाक्रम का आधार कुमारी मनुबहन गाधी की पुस्तक 'कलकत्ते का चमत्कार' है । शेष कल्पना है ।

साहित्य और अहिंसा

गोपालकृष्ण कौल

गांधी ने लिखा है कि 'अहिंसा बिना सत्य की खोज असम्भव है।' सत्य और अहिंसा दोनों ही व्यापक अर्थ रखते हैं। भारतीय साहित्य में 'सत्य' और 'अहिंसा' धर्म के अंगों में थे; किन्तु गांधी ने उन्हें मात्र अंग नहीं रहने दिया, बल्कि उन्हें सर्वांग अर्थ देकर दार्शनिक दृष्टि से व्यापक बनाया। इसीलिए आज हिंसा-अहिंसा के शब्द एक सीमित अर्थ में नहीं प्रयुक्त होते। इन शब्दों के पीछे आज एक फिलासफी है, एक दृष्टिकोण है, मत-भेद की विविधता है और एक नई जीवन-व्यवस्था की वृत्ति छिपी हुई है। अहिंसा के इस व्यापक अर्थ के आधुनिक रूप की छाया में यदि साहित्य के विकास का अध्ययन किया जाय तो हम गांधी के इस विचार-सूत्र के गर्भित अर्थ को साहित्य में भी प्रतिबिम्बित देख सकते हैं। साहित्य में जीवन-सत्य की उपलब्धि अहिंसा के द्वारा ही होती है। यह अहिंसा मात्र एक भाव नहीं होता। क्योंकि भाव या वृत्ति की दृष्टि से साहित्य में अहिंसा का उतना ही महत्त्व रह जाता है जितना दूसरे मानसिक विकारों का होता है। साहित्य की परम्परा में अहिंसा का अर्थ है विराट सहानुभूति, जीवन के वैविध्य को एकता के सूत्र में पिरोकर देखने की वृत्ति, नाश से निर्माण की ओर और युद्ध से शान्ति की ओर प्रगति।

जीवन के द्वन्द्वात्मक विकास का क्रम भी यही है। बर्बरता से प्रेम की ओर, अव्यवस्था से व्यवस्था की ओर, अज्ञान से ज्ञान की ओर और हिंसा से अहिंसा की ओर—मानव-जीवन का ऐतिहासिक विकास होता रहा है। जीवन की ऐतिहासिक परिस्थितियों से प्रभावित होने-वाले साहित्य के विकास में भी जीवन का यह विकास-क्रम किसी-न-किसी रूप से मूल रूप में दिखाई देता है। गुहा-मानव और आज के मानव के बीच विकास-क्रम का कितना लम्बा इतिहास खड़ा है! यह इतिहास इस बात का साक्षी है कि हिंसा से अहिंसा की ओर ही जीवन की प्रगति हो रही है।

साहित्य विकसित मानव की रचना है; फिर भी उसके विकास में मानवीय भावों अर्थात् मानवता का आन्तरिक या मानसिक विकास पूरी तरह परिलक्षित होता है। पहले मनुष्य का प्रकृति से संघर्ष था, उसकी बुद्धि में भय था, आतंक था, इसीलिए हिंसा थी, युद्ध था और पौरुष अपनी प्रकृत अवस्था में था। किन्तु ज्यों-ज्यों मानव को इस संघर्ष में प्रकृति पर विजय प्राप्त होती गई, त्यों-त्यों अधिकार-भावना बढ़ती गई और वह सामाजिक बनता गया। अब प्रकृति के साथ-साथ पुरुष से उसका संघर्ष शुरू हुआ; स्वार्थों का संघर्ष। जाति के नाम पर, धर्म के नाम पर और वर्ग-स्वार्थ के नाम पर, आपस में संघर्ष करता हुआ मनुष्य उन तमाम विविधताओं और पृथक्ताओं में एकीकरण करने का प्रयत्न करता आ रहा है, जो उसे मानवता की एकता में, वर्ग-हीनता के निर्माण में बाधक दिखाई देती हैं। राजनीतिक दृष्टि से सामन्ती व्यवस्था से पूंजीवादी और पूंजीवादी-व्यवस्था से जनवादी व्यवस्था की ओर यह विकास-क्रम अग्रसर है। इस प्रगति के मूल में हिंसा से अहिंसा की ओर बढ़ने की ही भावना है। इसीलिए सामन्ती युग के और आज के साहित्य की मूल-भावना में भी बड़ा अन्तर है। वीरता के नाम पर उस युग में भयंकर मानवीय हिंसा की विरुदावली गाई गई है। आज भी वीरता की भावना साहित्य में व्यक्त होती है; किन्तु उसमें विनाश-कारी हिंसा की विरुदावली गाना श्रेष्ठ मानवीय साहित्य में नहीं गिना जाता है। विगत दो युद्धों के बाद के साहित्य में युद्ध के प्रति घृणा और शांति के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति—इस बात का प्रमाण है कि साहित्य की भावना अहिंसा की ओर विकसित हो रही है। इसीलिए आज के साहित्य और कला के मूल में युद्ध-विरोधी भावना व्याप्त हो गई है और उसमें जिस नव-मानव का निर्माण हो रहा है वह शान्ति और निर्माण के स्वप्न ले रहा है; वह युद्ध को हेय और आत्म-बलिदान को श्रेय समझ

रहा है। वह वर्तमान से असन्तुष्ट है, क्योंकि वर्तमान की हिंसा के निराकरण में उसे अपना सारा आत्मबल लगाना पड रहा है। उसके पास अतीत की परम्परा के अहिंसक (मानवीय) तत्वों का सहारा है और भविष्य के स्वप्न का आकर्षण। इसीलिए आज का साहित्य-मानव केवल वर्तमान पर ही नहीं जीवित है, वह त्रिकाल के तत्वों से अपने विकास को पुष्ट कर रहा है। उपन्यासकार शरद ने ठीक ही लिखा है कि "वर्तमान ही साहित्य का चरम हाईकोर्ट नहीं है।" वर्तमान तो अनन्त काल-प्रवाह की क्षणिक उपस्थिति मात्र है। इस उपस्थिति के आश्रम में साहित्य की यात्रा विश्राम नहीं कर सकती।

भारतीय साहित्य के मूल में अहिंसा की भावना सदा रही है। आदि काव्य का उद्भव ही अहिंसा की भावना से उत्प्रेरित हुआ था। वाल्मीकि ने प्रेम-रत क्रौंच पक्षी के जोड़े में से एक को शिकारी के बाण से मरते देखकर करुणा-विह्वल होकर, जो कहा, वही आदि काव्य 'रामायण' का आदिश्लोक बन गया। महाकवि कालिदास ने आदिकवि के इस आत्मोद्गार के विषय में लिखा

"निषाद विद्धाण्डज दर्शनोत्थ
श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोक ।"

क्रौन्च पक्षी के वध को देखकर वाल्मीकि के मन में उमडा हुआ शोक ही श्लोक बन गया। अर्थात् वाल्मीकि की करुणा ही छन्द में फूटकर कविता बन गई।

कालिदास के 'रघुवंश' महाकाव्य में महाराजा दिलीप का नन्दिनी गाय की रक्षा के लिए सिंह के सामने अपना आत्मसमर्पण कर देना अहिंसा की उस भावना का ही प्रतीक है, जो भारतीय साहित्य और संस्कृति के मूल में कार्य करती रही है। जिन महाकाव्यों में युद्धों के वर्णन हैं उनमें युद्ध के परिणाम में विजेता के वैराग्य का भी वर्णन है। उपलब्धि के बाद त्याग इन महाकाव्यों के नायकों की उस चारित्रिक विशेषता की ओर संकेत करता है, जो युद्ध को नहीं, वैराग्य और आत्मशांति को जीवन का अन्तिम लक्ष्य समझते हैं। 'रघुवंश' का रघु दिग्विजय करने के बाद अपना सर्वस्व-दान कर देता है और उसके पास केवल मिट्टी के भोजन-पात्र रह जाते हैं। इसी तरह 'महाभारत' के योद्धा नायकों के जीवन-पर्वों का अन्त शान्ति पर्व में होता है। भारत के प्राचीन रंगमंच पर हत्या, मौत और युद्ध दिखाना वर्जित था। शायद उस समय रंगमंच का इतना विकास न हुआ हो, इसलिए ऐसे दृश्य वर्जित हो, किन्तु संस्कृत के नाटकों में इस प्रकार का दृश्य गुणों में नहीं माना गया, इसका भी कम महत्व नहीं है।

हिन्दी-कविता का प्रारम्भ वीरगाथाओं से होता है। उस समय के सामन्ती समाज की परिस्थितियों में युद्धों का वर्णन और वीरता के नाम पर हिंसक पौरुष का बखान ही साहित्य की विशेषता समझी जाती थी। किन्तु मध्ययुग की भक्ति-भावना ने साहित्य की इस युद्धोन्मुखता को मानव-प्रेम की ओर मोड़ दिया। सन्त कवियों ने मनुष्य की उदात्त भावनाओं को साहित्य में प्रतिष्ठित किया। उन संकीर्णताओं और दम्भपूर्ण मिथ्या विश्वासों का उन्होंने विरोध किया, जिनके आधार मानवता के विकास को देखने के लिए युद्ध और संघर्ष होते थे। उन्होंने अपने साहित्य द्वारा उन उदात्त भावनाओं को जगाने का प्रयत्न किया जो मनुष्य को मनुष्य की तरह प्रेम करने की प्रेरणा देनेवाली थी। कबीर का विद्रोही व्यक्तित्व मध्ययुग के मिथ्या विश्वासों के अन्धकार में एक देदीप्यमान आलोक स्तम्भ है। उन्होंने संकीर्णताओं पर खुलकर जितना व्यंग कसा है उतना किसी दूसरे सन्त ने नहीं। वह उस समय आपस में लड़ने वाले हिन्दू-मुसलमानों से कहते हैं।—

हिन्दू तुरक कहा के आये
किन एह राह चलाई ?
दिल माहि सोच-विचारि कवादे
भिस्त दोजक किन पाई ?

(अर्थात् हिन्दू-मुसलमान अलग-अलग कहा से आए? यह रास्ता किसने चलाया? अरे बेवकूफ, अपने दिल में सोच-कर देख कि बहिश्त और दोजख किसने पाया है?)

कबीर की एक और उक्ति है —

"तुम कत ब्राह्मण हम कत सूद ?
हम कत लोहू तुम कत दूध ?"

(अर्थात् तुम कहा के ब्राह्मण हो? हम कहा से शूद्र

स्वराज्य और भूदान-यज्ञ

श्रीमती 'भावना'

सन् १९२२ की बात है। देश में सत्याग्रह का आन्दोलन छिड चुका था। विभिन्न प्रान्तों के नेताओं को बंद किया जा रहा था। मानवता के पुजारी महात्मा गाधी साबरमती जेल में नजरबंद कर लिये गये थे। चारो ओर उदासी फैल रही थी। विदेशी हुकूमत का आतंक छाया हुआ था। ऐसे समय में बापूजी के एक प्यारे और समर्पित सेवक ने उन्हें पत्र लिखकर जीवनदर्शन कराने वाली कुछ बातें पूछी थी। उसका जवाब बापूजी ने ता १७ मार्च १९२२ को भेजा था। उस पत्र के कुछ वाक्य बहुत महत्व के हैं -

'मैं सत्य की जितनी खोज करता जा रहा हू उतना ही मुझे यह महसूस होता है कि उसी में सब आ जाता है।"

" निर्मल अंतःकरण को जिस समय जो ठीक लगे वही सत्य, उसपर दृढ रहने से शुद्ध सत्य मिल जाता है।"

"सत्याग्रही को बहुत नम्र होना चाहिए। उसका सत्य जितना बढ़ उतना वह नम्र होता जाय। इसका मुझे प्रतिक्षण अनुभव मिल रहा है। मुझे इस वक्त सत्य का जितना ख्याल है उतना साल भर पहले नही था और इस वक्त मेरी अल्पता मुझे जितनी लगती है उतनी साल भर पहले नही लगती थी।"

"सत्य—धर्म का पालन करने के लिए ही मैं सारी प्रवृत्तिया में पड़ा हू। इसका बाहरी रूप 'हिंद-स्वराज्य' है। उसका सच्चा स्वरूप हर व्यक्ति का स्वराज्य है।"

यह अन्तिम वाक्य हम सबको चौंकाने वाला है। पू बापूजी के वियोग में इस वाक्य के शब्दों से अपार सात्वना प्राप्त हुई है।

अपने जीवनकाल में बापूजी ने 'हिंद-स्वराज्य' दिला दिया और उनकी सारी प्रवृत्तियो का बाहरी रूप मानो हमें हासिल हो गया। अब बाकी रहा 'हर व्यक्ति का स्वराज्य'। जिसे बापूजी ने अपनी प्रवृत्तियो का सच्चा स्वरूप बताया था। उसी को प्राप्त करने का अब हमें प्रयत्न करना है। उसके अर्थ को हमें समझना है।

हिंद को स्वराज्य मिला याने हमारी परतन्त्रता दूर हुई। हम स्वाधीन हुए याने अपने देश की व्यवस्था का तंत्र अपने हाथ में आ गया। अब हम चाहें सो कानून बनाए, जैसी चाहें योजनायें बनाए। जिस तरह ठीक समझें उस प्रकार अपने देश की सफाई करें, दुरुस्ती करें, सजावट करें, तरह-तरह के सुधार करें। शिक्षा में, स्वास्थ्य में, अनुभव प्राप्त करने में प्रगति करें। आपस में परस्पर पहचान करें। धनी-गरीब, शिक्षित-अशिक्षित, दुःखी-सुखी, सब एक-दूसरे से मिलें-जुलें। अपनी हालतों को व दिक्कतों को समझ-बूझें और उन्हें सुधारने का हम हिलमिल कर प्रयत्न करें।

अपने देश का उत्पादन बढ़े, दौलत बढ़े। जरूरत का सामान तैयार करके भले हम बाहर भेजें, पर बाहर का तैयार माल हम अपने देश में न आने देने में कामयाब हो, तभी हमारी हालत जल्दी सुधर सकती है।

हम सबको गुजारे लायक खाना, कपडा और काम मिले, इसका प्रयत्न सब से पहले कर लेना चाहिए। बाद में दूसरी योजनाओं और चर्चाओ की ओर हम ध्यान दें। यह है 'हिंद-स्वराज्य' का अर्थ।

इसके बाद हमें सोचना है कि 'हर व्यक्ति के स्वराज्य' का क्या मतलब हो सकता है? मेरी समझ में 'हर व्यक्ति के स्वराज्य' का मतलब कुछ गहरा है। रेंगता हुआ बालक अपने आप खड़ा होकर जब शान से चलने लगता है तब जो आनंद वह पाता है, वैसा ही गौरव इसमें भरा है।

स्वराज्य के जरिये अपने आप शासन चलाने का जो अधिकार हमको मिला है, उस अधिकार का हर व्यक्ति अच्छी तरह इस्तेमाल करने लगे, देश का हरेक नागरिक अपने जीवन का समुचित विकास स्वतंत्रता से कर सके, इतनी अनुकूलता हर व्यक्ति को प्राप्त कर लेनी चाहिए। इसमें जहा कुछ रुकावट, बंधन या दबाव मालूम दे, वही सावधान रहकर सारी स्थिति को अच्छी

तरह समझ लेना चाहिए । अपने अधिकारों के लिए और समुचित न्याय पाने के लिए प्रयत्नशील बन जाना चाहिए। ऐसा हर व्यक्ति समझने लग जाय तो फिर शासन-प्रणाली को अपने आप अपनी कमजोरियों को कम करना होगा । दोषों को दूर भगाना ही होगा और तब हमें बापू के राम-राज्य को पाने का सही रास्ता दिखाई देने लग जायेगा ।

तभी हम 'सर्वोदय' के विचार को ग्रहण कर सकेंगे। और तभी हम भूदान के कार्यक्रम को सहर्ष अपने आप अपनाने लग जाएंगे ।

आज सारी दुनिया का वातावरण अनेक प्रकार के भय और तरह-तरह की आशंकाओं से क्षुब्ध है। ऐसे समय में भूदान का विचार मानो मानवता की रक्षा के हित में दैवी वरदान के रूप में जागृत हुआ है ।

मालिक-मजदूर, सेवक-स्वामी, श्रमिक-श्रीमान एवं ऊंच और नीच, आदि जो अनेक प्रकार के भेद मानव के जीवन में दिखाई देते हैं उन्हें भुला देने का बड़ा आसान साधन है यह भूदान-यज्ञ का आयोजन । यह मानव के मन की कोरी कल्पना या योजना नहीं है, बल्कि ईश्वर के दरबार की एक सच्ची घटना है ।

सर्वोदय के विचार से और भूदान-यज्ञ के प्रचार से पू. विनोबाजी हमें स्वतन्त्रतापूर्वक जीने की कला सिखाना चाह रहे हैं ।

अपनी मेहनत की कमाई खाते हुए जन्म से लेकर मरण तक हम न जाने समाज की कितनी सेवाएं किस-किस रूप में लेते ही रहते हैं । उसके बदले में हम समाज को क्या दें ?

अपनी जमीन—जायदाद, कमाई एवं प्रेम, बुद्धि, विद्या-आदि सारी तन-मन-धन की ताकतों का छठा हिस्सा यदि हम समाज-सेवा के निमित्त अर्पण करें, तो आज हम सब लोगों के दिलों की अनेक चिंताएं सहज दूर हो सकती हैं । भारत के नवनिर्माण का कार्य जनता के स्नेह भरे सहयोग से बड़ी जल्दी सफल और सुशोभित हो सकता है और उसके सुख-सौंदर्य की सुगंध सारे संसार में शीघ्र फैल सकती है ।

साधारण रूप से एक परिवार पांच व्यक्तियों का माना जाता है। उसमें एक अधिक संख्या हम सबके परिवार में सदा शामिल रहती है। वह व्यक्ति हमें दिखाई नहीं देता; पर हमारी अनेक प्रकार के संकटों में तरह-तरह की मदद या रक्षा करता रहता है। उसे चाहे हम हनुमानजी समझ लें, चाहे लक्ष्मण समझें, चाहे हृदय व्यक्ति समझें, चाहे दरिद्रनारायण या जनता-जनार्दन के रूप में पहचान लें। वह कोई हमारे जीवन से सबंधित हमारे परिवार का एक साक्षी है जरूर। उसके सुख-दुःख का या राजी-नाराजी का हमारे मन पर गहरा असर होता रहता है। इसलिए हम अपने परिवार की गिनती में हर चीज का बंटवारा करते और हर बात का हिसाब लगाते समय सदा एक व्यक्ति को ज्यादा गिना करें, तो समाज के प्रति हम अपना फर्ज आसानी से अदा कर सकते हैं। इष्ट यह है कि हम अपनी जमीन, संपत्ति, चालू खर्च तथा प्रेम भरे अनुभवों का छठवां हिस्सा सदा अपने एक अज्ञात भाई-बहन या बेटा-बेटी की याद करके उसी की सहायता के लिए अर्पित करते रहें । फिलहाल तो भूदान के कार्य के निमित्त ही इष्ट अंश का उपयोग करना अधिक उपयुक्त है। 'इदं भूदानाय स्वाहा इदं न मम!' की भावना के साथ अपना एक हिस्सा अर्पण करने से हमें एक अज्ञात-सा सुख-संतोष अवश्य महसूस होगा, जो आगे चलकर हमारे बच्चों को सुखी करेगा व उनकी संकट समय में रक्षा भी कर सकेगा ।

कृत-कारित-अनुमोदित—मनसा-वाचा-कर्मणा प्राणीमात्र को कष्ट न पहुंचाना ही अहिंसा है ।

गांधीजी के साथ मुलाकात

नरेन बी जोशी

अल्पसंख्यक रक्षा-समिति के मंत्री की हैसियत से महात्मा गांधीके निकट सम्पर्क में आने का सौभाग्य मुझे १ फरवरी १९४७ को, पूर्वी बंगाल के आमिशपाड़ा नामक स्थान में प्राप्त हुआ था। इन दिनों महात्मा गांधी साम्प्रदायिक दंगों से विपद्ग्रस्त क्षेत्रों का दौरा कर रहे थे।

उस दिन आमिशपाड़ा में महात्माजी से बहुत देर तक बातचीत हुई। बापू ने क्षतिग्रस्त लोगों के प्रति हर तरह से सहानुभूति दर्शाई और उनसे शान्त रहने को कहा। आपने इस सम्बन्ध में हर तरह से मदद करने का आश्वासन दिया। उन्होंने कहा, "मैंने इस सिलसिले में पं० नेहरू, सरदार पटेल, डा खान साहिब तथा दंगों से ग्रस्त प्रान्तों के मुख्य मंत्रियों से पत्र-व्यवहार किया है और अल्पसंख्यकों की रक्षा के हेतु हर तरह से प्रयत्न किया जा रहा है। मैं इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए भगवान की प्रेरणा से इन स्थानों का दौरा कर रहा हूं।"

इसपर हमने भारत के उत्तर पश्चिमी प्रान्तों के अल्पसंख्यकों की रक्षा के निमित्त एक स्मृतिपत्र बापूजी को अर्पण किया। इसके प्रत्युत्तर में आपने एक पत्र गुजराती में लिखकर सरदार वल्लभभाई के नाम हमें दिया तथा हमें आश्वासन दिलाया कि वे स्वयं समस्त क्षतिग्रस्त स्थानों का दौरा करेंगे। आगे आपने कहा, "मुझे इन्हीं दिनों पहले बिहार तथा बाद में पंजाब अवश्य जाना है, परन्तु बंगाल का कार्य अधूरा ही छोड़कर आगे बढ़ना कोई बुद्धिमत्ता नहीं होगी।"

लगभग तीन घंटे तक हम महात्माजी के पास रहे, परन्तु एक घंटे के वार्तालाप के पश्चात गान्धीजी ने कहा। "अब मैं कुछ देर आराम करूंगा। आप यहीं पर रहें।"

इसके बाद वे लेट गये और कुमारी मनू गान्धी ने उनके माथे पर थोड़ी-सी मुलायम कच्ची मिट्टी से लेप किया। इसपर मैंने पूछा, 'क्या बापूजी की तबियत खराब है?' इसका उत्तर देते हुए कु मनू गान्धी ने कहा, 'नहीं बापूजी बिल्कुल स्वस्थ हैं। इस तरह की थोड़ी-सी मिट्टी का लेप उनकी मानसिक थकावट को दूर करने के लिए प्रतिदिन दोपहर के बाद उनके माथे पर किया जाता है।' बापूजी अपनी आखें बन्द किये यह बातें सुन रहे थे, कहने लगे, 'हम सब मिट्टी के ही बने हुए हैं और एक दिन सबको ही मिट्टी में मिल जाना है।'

मैंने महात्माजी से पूछा, 'आपके इस अथक परिश्रम तथा हर तरह प्रयत्न करने पर भी स्थान-स्थान पर दंगे क्यों होते हैं?' महात्माजी ने शांतिपूर्वक उत्तर दिया कि हम लोग अभी तक अपने सत्य, अहिंसा, प्रेम व शांति के अमर सन्देश को जनता तक पहुंचाने में सफल नहीं हुए हैं। इस दिशा में शान्ति की स्थापना-हेतु बिना कोई प्रयास किये दूसरों पर आरोप लगाना किसी भी प्रकार उचित व न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता। दरिद्रता, अनाचार, अत्याचार तथा अनैतिकता का सर्वथा परित्याग करके आचार, नैतिकता, सत्यता तथा लोकोपयोगी कार्य करके एवं प्रेम के उच्च मार्ग पर चलने ही से हरेक इन्सान का व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक हित निर्भर है। इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मैं इन आहत स्थानों का भ्रमण कर रहा हूं।

इसी दिन प्रातःकाल श्री अल्फजन्डु होरेस की महात्माजी से मुलाकात हुई थी और उस मुलाकात में महात्माजी ने विश्वशान्ति-स्थापना के हेतु एक शान्ति-सम्मेलन बुलाने का विचार प्रकट किया था। हमारे राष्ट्र का बड़ा दुर्भाग्य है कि यह सम्मेलन बापूजी के जीवन-काल में नहीं हो पाया। यद्यपि इस प्रकार के दो विश्वशान्ति-सम्मेलन १९४९ के अक्तूबर तथा दिसम्बर मास में वर्धा तथा शान्तिनिकेतन में हुए और बाद को भंग कर दिये गए।

हमारी मुलाकात के पश्चात गान्धीजी फिर प्रार्थना के लिए चल दिये। प्रार्थना-सभा में उस दिन १५००० के लगभग श्रोता उपस्थित थे। इनमें ९० प्रतिशत मुसलमान थे। महात्माजी की कुटिया के सामने एक खुल

मैदान और इसके एक छोर पर एक सुन्दर सरोवर था। मौसम सुहावना था। प्रार्थना के समय अस्ताचल के ओर जाते हुये भुवनभास्कर की किरणें ऊंचे-ऊंचे ताड की वृक्षो पर अपनी चित्ताकर्षक छटा का प्रदर्शन कर रही थी। वे ताड के गगनचुम्बी वृक्ष पुष्पीसाथे बिल्कुल शान्त, ऐसे प्रतीत होते थे मानो वे बापूजी के अमर उपदेश, सत्य-अहिंसा, प्रेम व शान्ति के पाठ को गंभीरतापूर्वक श्रवण कर रहे हो। उन्होने बताया कि दुनिया के सभी धर्म यथार्थ में एक ही हैं तथा मनुष्यों को परस्पर प्रेम-मित्रता व सद्भावना के साथ रहना चाहिए। हम सभी को जनकल्याण के हेतु कार्य करना चाहिए। इसके पूर्व लोकप्रिय गान और 'रामधुन' हुई। बापूजी के प्रवचन के पश्चात् सभा समाप्त हुई। उस दिन प्रार्थना-सभा में पूर्वी बंगाल तथा विदेशो के लब्धप्रतिष्ठ व्यक्ति उपस्थित थे।

हमारी दूसरी मुलाकात महात्माजी से ६ मार्च १९४७ को कलकत्ता के समीप सोदपुर में हुई, जिसमें उन्होंने हमें पटना आने का बुलावा दिया। महात्माजी के आदेशानुसार हम लोग ११ मार्च १९४९ को पटना पहुंचे। पटना में १३ मार्च १९४७ बृहस्पतिवार को गान्धीजी से हमें मुलाकात का समय दिया गया। हमने जिला हजारा तथा सीमाप्रान्त में हुई दुर्घटनाओ का तथा उत्तर पश्चिमी-भारत के अल्पसंख्यको की दुर्दशा का वर्णन करते हुए गान्धीजी से पंजाब व सीमाप्रान्त का दौरा करने का आग्रह किया। गान्धीजी ने हमारी बातें गंभीरतापूर्वक सुनकर उत्तर दिया, "मेरा विचार पंजाब, सीमाप्रान्त तथा उत्तर-पश्चिम-भारत के अन्य स्थानो का दौरा करने का तो अवश्य हैं; किन्तु बिहार का कार्य अपूर्ण छोड़कर आगे बढना नहीं चाहता।" आगे चलकर आपने कहा, "सरकार भी इस दिशा में शान्ति-स्थापना के हेतु हर तरह कोशिश कर रही है।"

जब मैंने गान्धीजी को उनके प्रस्तावित विश्वशान्ति सम्मेलन के सम्बन्ध में स्मरण कराया तो वह कहने लगे "मैं इस शांति के सम्मेलन में अवश्य भाग लूंगा; किन्तु मैं स्वयं इस प्रकार के सम्मेलन का कोई आयोजन नही कर रहा हू।"

उसी दिन पटना के समीप शाम को प्रार्थना-सभा में गान्धीजी ने बतलाया कि शान्ति की खोज तथा उसकी स्थायी रूप से स्थापना करने के हेतु हम सबको कार्य करना है। अन्यथा इस जीवन से क्या लाभ? मै चाहता हू कि बिहार और बंगाल मे सभी धर्मो के अनुयायी परस्पर मित्रता और प्रेमभाव से रहें। उन्होंने आगे कहा कि मुझे पंजाब में भी बुलावा आया है। किन्तु मैं यहा इस कार्य को अपूर्ण छोड़कर आगे नही जा सकता। मैं सभी स्थानों पर अकेला ही कैसे पहुच सकता हू। मैं तो अपने को ईश्वर का भेजा हुआ एक निमित्तमात्र समझता हू। मैं उस समय सहर्ष शीघ्र यहा से चला जाऊगा जबकि हिन्दू-मुस्लिम दोनों मतो के अनुयायी आपस मे प्रेम, मित्रता, सद्भावना के साथ रहने लगेंगे।

बिहार में सहस्रों व्यक्तियों का स्वय अपने अपराधो को स्वीकार करके आत्मसमर्पण करना गान्धीजी का शान्ति-प्रचार का एक चमत्कार था, जिसे उनके अमर सिद्धान्तों की इस काल में एक अपूर्व विजय माननी चाहिए।

इन मुलाकातों में गान्धीजी की जिस एक और बात का मुझे परिचय मिला, वह था उनका हिन्दी प्रेम। गान्धीजी सदैव ही हिन्दी तथा हिन्दुस्तानी के समर्थक रहे। इसका प्रमाण निम्न पत्र से स्पष्ट है:

नई दिल्ली २९.१०.४७

भाई जोशीजी,

आपकी रिपोर्ट मिली, अंग्रेजी में क्यो? हिन्दुस्तानी में क्यों नही? रिपोर्ट से पता नही चलता कि पक्का कार्य क्या हुआ। प्रस्ताव पास करने में ही,तो नतीजा नही निकल सकता है।

आपका

—मो० क० गांधी

इसके बाद देहली में भंगी कालोनी तथा बिरला हाउस में भी मुझे कई बार गान्धीजी से मिलने तथा उनकी प्रार्थना सभा में सम्मिलित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और सदा मुझपर यही प्रभाव पडा कि सत्य, अहिंसा और प्रेम का जो सन्देश वे संसार को दे रहे हैं उसीपर चलने पर मानव-समाज का कल्याण है। आज भी यह उतना ही सत्य है जितना १९४७ में था, और जितना यह सर्वकाल में रहने वाला है।

गांधीजी की सांस्कृतिक देन

माईदयाल जैन

प्रत्येक देश के महापुरुषों का उस देश की संस्कृति से बड़ा सम्बन्ध होता है। वे महापुरुष अपने महान व्यक्तित्व, तप, साधना और प्रयत्नों से अपने अपने समय में उस देश की संस्कृति में उन सब विकारों को दूर करते हैं जो समय-समय पर उसमें अनेक कारणों से आ जाते हैं। वे उस संस्कृति में परिस्थिति तथा आवश्यकता के अनुसार कुछ ऐसी नई बातों का समावेश करते हैं, जो बाद में उस संस्कृति के अंग बन जाते हैं। इस प्रकार इनकी साधना का फल एक महान सांस्कृतिक हलचल और परिमार्जन होता है। उनका यह प्रयत्न उनके स्वर्गवास के पश्चात् भी अपना काम करता रहता है और इस प्रकार देश की संस्कृति पर उनकी एक अमिट छाप लग जाती है। यदि हम किसी देश के सांस्कृतिक इतिहास पर सरसरी-सी भी दृष्टि डालें तो इस कथन की यथार्थता हमें मालूम हो जायगी

भारत के सांस्कृतिक इतिहास पर श्रीरामचन्द्र, महावीर स्वामी, महात्मा बुद्ध, शंकराचार्य, महाराजा अशोक, सम्राट् अकबर, नानकदेव, कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ इत्यादि का जो प्रभाव पड़ा है, उसे कौन नहीं जानता ? हिन्दी पर सन्त कवियों सूर, मीराबाई, कबीर, और तुलसीदास की जो छाप है, क्या वह मिट सकती है ? यूरोप में मार्टिन लूथर ने ईसाई धर्म का नक्शा ही पलट दिया और उसके रीति-रिवाजों तथा विचार धारा में एक क्रांति पैदा कर दी। तुर्की में कमाल-पाशा ने वहां की संस्कृति में बड़ी क्रांति की और उसे वह नई चेतना प्रदान की कि वहां की भाषा, साहित्य, रहन-सहन, रीति रिवाज, धार्मिक दृष्टिकोण और समस्त तुर्क जाति की संस्कृति ही पलट गई।

गांधीजी ने हमारे देश की स्वतन्त्रता के लिए राजनैतिक आन्दोलन को तीस वर्ष के लगभग सफल रूप से चलाया, पर राजनैतिक काम से भी अधिक महत्व का उनका वह काम है, जो उन्होंने उस स्वतन्त्रता को स्थिर रखने के लिए सांस्कृतिक क्षेत्र में किया।

इससे पहले कि हम गांधीजी की सांस्कृतिक देन को जानने का प्रयत्न करें, हमें गांधीजी के जीवन के मुख्य सिद्धान्तों को संक्षेप में समझ लेना चाहिए। उन के मुख्य सिद्धान्त अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, सत्याग्रह, सादगी, कार्यसिद्धि के वास्ते शुद्ध साधनों का उपयोग, विचार-सहिष्णुता, सर्वोदय-भावना, स्वदेशी प्रेम और अहिंसापूर्ण विकेन्द्रित अर्थनीति इत्यादि थे। महात्माजी के जीवन के समस्त काम इन्हीं तत्वों के आधार पर होते थे और वे इनको अपने जीवन का आदर्श मानकर मन, वचन और कर्म से व्यवहार करते थे। उनके कामों में मन, वचन और कर्म की एकता मुख्य बात थी। यद्यपि ये सभी सिद्धान्त भारतीय परम्परा के अंग थे और अब भी हैं फिर भी यह ग्रन्थों की बात ही अधिक रह गई थी। इसलिए इनकी जीवनदायिनी शक्ति बहुत कुछ लुप्त हो चुकी थी। महात्माजी ने इन सिद्धान्तों को न केवल अपने और अपने साथियों के जीवन का अंग बनाने का प्रयत्न किया, वरन उन्हें समस्त राष्ट्र को समझाने की चेष्टा भी की। इसी कारण उनके बड़े-से-बड़े शत्रु और उनसे मतभेद रखनेवाले भी उनकी मुक्त कंठ से प्रशंसा करते थे।

महात्मा गांधी की सबसे बड़ी देन यह है कि उन्होंने सहस्रों छोटे-बड़े नर-नारियों और प्रतिष्ठित व्यक्तियों को एक नई राष्ट्रीय चेतना दी, जिससे स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए तथा अन्य रचनात्मक कार्यों के लिए देशभक्त सेवकों तथा सेविकाओं का एक ऐसा समूह बन गया, जो महात्माजी के पीछे पीछे उनके अनुशासन में चलकर सर्वस्व त्याग कर चुका था और बड़े-से-बड़ा कष्ट-सहन करने को तैयार था। इस चेतना के कारण भारत के लाखों स्त्री-पुरुष मिट्टी से शेर बन गये और संसार के सबसे बड़े ब्रिटिश साम्राज्य से बिना किसी अस्त्र शस्त्र के टक्कर लेने लगे। यह चेतना देश के कोने-कोने

में आज भी अपना काम कर रही है और करती रहेगी।

दूसरी बात जो महात्माजी ने की, वह राजनीति और समस्त सार्वजनिक कार्यों में अहिंसा के सिद्धान्त का प्रयोग है। यों तो अहिंसा भारतीय संस्कृति का प्राचीन मूल सिद्धान्त है; पर उसका क्षेत्र धर्म और व्यक्ति के निजी काम थे। महात्मा गांधी ने अहिंसा की नई व्याख्या की और उसके नये प्रयोग किये। उनकी अहिंसक सेना के सामने भारत के अंग्रेज शासकों को कई बार झुकना पड़ा और गांधीजी को अपने आन्दोलनों में कई बार सफलता मिली। इससे पहले वे दक्षिणी अफ्रीका में इसका सफल प्रयोग सत्याग्रह के रूप में कर चुके थे। यह कहना तो इतिहास से अनभिज्ञता दिखाना है कि केवल महात्माजी ने ही अहिंसापूर्ण सत्याग्रह का उपयोग राजनैतिक समस्याओं को सुलझाने के लिए किया। गांधीजी से बहुत पहले सन् १९०१ से सन् १९०५ तक फिनलैंड निवासियों ने रूसियों के अत्याचारों के विरुद्ध अहिंसापूर्ण सत्याग्रह का प्रयोग किया और पूर्ण सफलता प्राप्त की, जिसका परिणाम यह हुआ कि रूस सरकार को अनिवार्य सैनिक भरती का कानून रद्द करना पड़ा। सन् १८६७ में हंगरी निवासियों ने डीक के नेतृत्व में सत्याग्रह और असहयोग-आन्दोलनों के द्वारा खून की एक बूंद बहाये बिना, आस्ट्रिया की सरकार से हंगरी का विधान फिर से चालू कराया। यह डीक इतना शांतिवादी और निस्वार्थी था कि उसने राजसत्ता लेने और व्यक्तिगत सम्मान स्वीकार करने से इन्कार कर दिया।

सन् १८७१ में जर्मनी में बिस्मार्क के विरुद्ध दो सत्याग्रह-आंदोलन सफल रूप से चले। मिस्र, ईरान, चीन और इंग्लैंड के इतिहास से भी अहिंसापूर्ण सत्याग्रहों और बाईकाट के उदाहरण दिये जाते हैं। इसलिए राजनीति में अहिंसक सत्याग्रह और बहिष्कार के प्रयोग का समस्त श्रेय गांधीजी को देना तो ठीक नहीं है, पर यह बात अवश्य है कि गांधीजी ने इस सिद्धान्त को पूर्ण किया, इसका दार्शनिक आधार ढूंढ निकाला और इसे उन्होंने एक नीति के रूप में नहीं, वरन् जीवन के सिद्धान्त के रूप में अपनाया और इसपर अमल किया। अहिंसा में उनका अचल और अटल विश्वास था। मन, वचन तथा कर्म की अहिंसा ही यह केन्द्र-बिन्दु थी, जिसके इर्द-गिर्द उनके समस्त काम, आन्दोलन और दिनचर्या चलती थी। उनकी इस देन का प्रभाव केवल भारत की राजनीति पर ही नहीं, बल्कि समस्त संसार की राजनीति पर पड़ रहा है और भविष्य में और भी अधिक पड़ेगा। इसके अतिरिक्त राजनीति में साधन-शुद्धि का प्रयोग करके महात्मा गांधी ने संसार के राजनीतिज्ञों के सामने नया आदर्श स्थापित किया। यही एक बात गांधीवाद को समस्त वादों में पृथक करती है।

भाषा, साहित्य और शिक्षा संस्कृति के विशेष अंग हैं। हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर पहुंचाने में महात्मा गांधी का बड़ा हाथ था। शिक्षा के क्षेत्र में नई तालीम और वर्धा स्कीम उनकी अनूठी देन है। रही साहित्य की बात, उन्होंने स्वयं जो-कुछ लिखा वह भारतीय संस्कृति को उनकी महान देन है; पर गांधी-युग में देश की अनेक भाषाओं में गांधीवाद, गांधी और भारतीयता पर जो कुछ लिखा गया था अब लिखा जा रहा है, उसकी महानता से कौन इन्कार कर सकता है? इस साहित्य से भारतीयों और मानव-जाति को नया जीवन और नई चेतना प्राप्त होती रहेगी।

हरिजनों, और दूसरे दलित तथा पिछड़े वर्गों को भारत की बड़ी जानेवाली दूसरी बड़ी जातियों के समान राजनीतिक तथा धार्मिक अधिकार दिलाकर भारत के करोड़ों इन्सानों को अपमान, तिरस्कार और अवनति के गढ़े से निकाल कर प्रगति के पथ पर खड़ा कर दिया, इन्सान की समानता के लिए इतना बड़ा प्रयत्न और काम संसार के किस देश में हुआ है? विचारों और हृदय की शुद्धि ही का नाम तो संस्कृति है। भारत के छः करोड़ से अधिक नर-नारियों को नैतिकता, चरित्रनिर्माण और उन्नति के मार्ग पर लगा देना और उनका भविष्य सब प्रकार से उज्ज्वल करा देना महात्माजी का ही काम था। भविष्य में इस सांस्कृतिक सुधार के फलस्वरूप इस कीचड़ से कितने कमल और इन जातियों से कितने नर रत्न पैदा होंगे, इसे कौन बता सकता है?

(शेष पृष्ठ ३९७ पर)

कसौटी पर

होटल के मालिक की आत्मकथा : लेखक—सत्यकेतु विद्यालंकार प्रकाशक—सरस्वती सदन मसूरी, पृष्ठ ३४४, मूल्य ३॥)

प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी में अपने ढंग का पहला प्रकाशन है। कतिपय कल्पित पात्रों को लेकर लेखक ने सन् १९४८ की विविध घटनाओं व व्यक्तियों की मनोवृत्ति का चित्रण किया है। होटल में बड़े-बड़े राजा, नवाब, पूंजीपति, व्यापारी, सत्ताधारी सरकारी अफसर, देशसेवी नेता, बड़े घर की नारियां आदि सब प्रकार के लोग ठहरते हैं। यदि किसी के पास तेज आंख है तो वह इंसानों के उस 'चिड़ियाघर' में बहुत कुछ अध्ययन कर सकता है। इस पुस्तक में लेखक ने होटल के मालिक के रूप में वहां ठहरनेवाले व्यक्तियों की गतिविधियों को ध्यानपूर्वक देखकर उनके मनोभावों, उनके व्यवहार, उनके रहन-सहन आदि का बड़ा ही सजीव वर्णन किया है और उन पात्रों के द्वारा वर्तमान समाज की अनेक महत्वपूर्ण समस्याओं को पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर दिया है।

समस्या प्रधान होते हुए भी पुस्तक भारी नहीं है। उसे पढ़ने में उपन्यास जैसा रस आता है। पात्रों का चित्रण इतना जानदार है कि पढ़ते-पढ़ते वे सामने आ खड़े होते हैं। उनकी मनोवृत्ति का लेखक ने तात्विक विश्लेषण नहीं किया है, बल्कि घटनाओं द्वारा अपनी बात बड़े ही सुन्दर ढंग से कह दी है।

पुस्तक में समाज के उस अंग के चित्र हैं, जिसकी मनोवृत्ति, भारत के स्वतन्त्र हो जाने के बाद, बदल जानी चाहिए थी, लेकिन दुर्भाग्य से वह अभी तक बहुत कुछ उसी रूप में बनी हुई है। परिवर्तन आवेगा, अवश्य आवेगा और उस परिवर्तन को जल्दी लाने के लिए इस पुस्तक के चित्र उपयुक्त वायुमण्डल उपस्थित करते हैं।

पुस्तक के विवरण कहीं-कहीं अधिक लम्बे हो गये हैं, इसलिए बिखर गये हैं। यदि विस्तार-दोष से बचा जा सकता तो पुस्तक कहीं अधिक उपयोगी बन जाती। फिर भी हम लेखक को बधाई दिये बिना नहीं रह सकते कि इतिहास और राजनीति के अपने प्रिय क्षेत्र में उन्होंने एक नये अंग का इतनी कुशलता से समावेश किया है।

मैं इनसे मिला : लेखक—पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' : प्रकाशक—आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, पृष्ठ २४६ मूल्य ३॥)।

इस पुस्तक माला को आरम्भ करके लेखक ने हिन्दी में एक आवश्यक परम्परा का श्रीगणेश किया है। वह चाहते हैं कि हिन्दी के साहित्यकारों को पाठक कुछ अधिक गहराई से जानें। इसलिए उन्होंने विविध प्रश्नों द्वारा उनसे नई-नई बातें जानने और इन पुस्तकों में पाठकों को देने का प्रयत्न किया है। पहले भाग में उन्होंने १२ लेखकों को लिया था। इस भाग में जिन १० को पकड़ा है, वे ये हैं : सर्वश्री प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति, रायकृष्णदास, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', जैनेन्द्रकुमार, यशपाल, दिनेशनंदिनी डालमिया, नगेन्द्र, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', प्रभाकर माचवे और विष्णु प्रभाकर।

इन सभी चित्रणों में पाठकों को कुछ जानी हुई बातें पढ़ने को मिलती हैं, तो बहुत-सी नई बातें भी मिल जाती हैं। अच्छी बात यह है कि लेखक ने वे बातें स्वयं उन साहित्यकारों के मुंह से कहलवाई हैं। इसलिए उनकी प्रामाणिकता के बारे में संदेह नहीं रहता।

साहित्यकारों के विषय में पर्याप्त जानकारी के अभाव में, अधिकांश पाठक बड़ी विचित्र धारणाएं बना लेते हैं, जिनमें कुछ सही होती हैं, तो कुछ गलत। इसका दुष्परिणाम यह होता है कि बहुत-से लेखकों के बारे में अनेक असत्य बातें फैल जाती हैं। लेखक की कृति को समझने में लेखक के परिचय से पर्याप्त सहायता मिलती है। इस दृष्टि से भाई 'कमलेश' ने इस परम्परा को हिन्दी में शुरू करके निस्संदेह एक अभिनंदनीय कार्य किया है। हम चाहते हैं कि यह परम्परा जारी रहे।

पहले खण्ड की भांति इसमें भी लेखक ने कहानी-लेखक, कवि, आलोचक, नाटककार आदि का सम्मिलित किया है। इस विभाजन के पीछे कोई सुनिश्चित योजना नहीं दिखाई देती। अच्छा तो यह होता कि कहानी लेखकों को एक भाग में ले लिया जाता, कविता का एक में, नाटककारों को एक में, आदि-आदि। पर लेखक को शायद जो-जो व्यक्ति सुलभ होते गये हैं उनका, इण्टरव्यू ले-लेकर उन्होंने मानुमती के इस कुनबे को जोड़ दिया है।

ये पुस्तकें आगे चलकर सन्दर्भ पुस्तकों का काम देंगी। हम इनका स्वागत करते हैं और चाहते हैं कि आगे के भाग जल्दी-से-जल्दी निकलें।

विजय-पथ : लेखक-रस्किन, अनुवादक—रामनारायण विजयवर्गीय, प्रकाशक—साधना सदन, इलाहाबाद, पृष्ठ १४६, मूल्य १॥)।

महान् चिंतक रस्किन से हिन्दी के पाठक भलीभांति परिचित हैं। उनकी सुविख्यात पुस्तक 'अन्टु दिस लास्ट' का युग-पुरुष गांधी के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा था, और उन्होंने उस अमर कृति का भावार्थ 'सर्वोदय' के नाम से हिन्दी के पाठकों के लिए प्रस्तुत किया था। इस छोटी-सी पर महान् पुस्तक ने लाखों व्यक्तियों को प्रेरणा दी है और आज भी दे रही है।

प्रस्तुत पुस्तक रस्किन की 'क्राउन ऑव वाइल्ड ओलिव' का अनुवाद है। इसमें भी उस चिंतक की गहरी चिंतनशीलता दृष्टिगोचर होती है। पुस्तक तीन भागों में विभाजित है—१. कर्म, २. व्यापार और ३. युद्ध। वस्तुतः यह उनके तीन भाषणों का संग्रह है। पहले में उन्होंने समाज की आर्थिक विषमता का उल्लेख किया है और कर्म की महत्ता बताई है। दूसरे में स्थापत्य-कला एवं उसके विकास पर अच्छा प्रकाश डाला है। तीसरे में उन्होंने युद्ध के गलत उपयोग की बात कही है। रस्किन के मत से "निर्माणकारी प्राण-संचारक युद्ध तो वह है, जिसमें मानव-स्वभावजन्य अशांति और संघर्ष का निग्रह सर्वसम्मति से सामाजिक पर सुन्दर खेल के रूप में होता है, जिसमें सर्वव्यापक बुराइयों पर एकांत विजय से शांति, प्रेम और लालसा का नियमन होता है और जिसमें आत्मरक्षा की स्वाभाविक भावनाओं की शुद्धि सम्पत्तियों की सत्ता एवं सुरक्षित परिवारों की पवित्रता पर निर्भर रहती है।" इसलिए उनका कहना है कि "इसी युद्ध के लिए प्राणिमात्र का जन्म हुआ है और हंसते-हंसते वह इसी में अपना जीवन-दान कर सकता है। इसी युद्ध से गत सम्पूर्ण युगों में मानवता के सारे सद्गुणों और सम्भावनाओं का आविर्भाव हुआ है।"

जो लोग वर्तमान समाज का नव-निर्माण नये और सही मूल्यों के आधार पर करने के आकांक्षी हैं, उनके लिए यह पुस्तक बहुत उपयोगी एवं दिशा-दर्शक सामग्री उपस्थित करती है। आज जिन मूल्यों को हम समाज का आधार मान बैठे हैं और जो समाज की जड़ खोखली कर रहे हैं, उनकी निरर्थकता बताते हुए, यह पुस्तक उन मार्गों की ओर इंगित करती है, जिनपर चलकर हमारा समाज सुखी और राष्ट्र समृद्ध हो सकता है।

समाज की उन्नति में अभिरुचि रखनेवाले प्रत्येक पाठक से हम अनुरोध करेंगे कि वे इस पुस्तक को पढ़ें, समझें और यदि लेखक के सिद्धान्तों में उन्हें सत्य की झलक मिले तो तदनुसार आज के समाज के ढांचे को बदलने में योग दें।

चक्की : लेखक—मन्मथनाथ गुप्त, प्रकाशक—ज्ञान प्रकाशन, हजारीबाग, पृष्ठ २०५, मूल्य ३।)

हिन्दी के सुपरिचित लेखक मन्मथनाथ गुप्त का यह नवीन उपन्यास है। इसमें उन्होंने साम्प्रदायिक दंगों का बड़ा ही रोमांचकारी वर्णन किया है। पाठक जानते हैं कि अंग्रेज यहां से हटे तो अपना आर्थिक साम्राज्य बनाये रखने के लिए इस देश में बड़ी ही विषम परिस्थिति पैदा कर गये। इस परिस्थिति के परिणामस्वरूप भाई ने भाई का गला काटा, स्त्रियों का सतीत्व नष्ट हुआ, बलात धर्म-परिवर्तन हुए। उन्हीं सब अत्याचारों की कहानी इस 'चक्की' में है। कहीं-कहीं तो चित्र इतने भयावह हैं कि उनपर सहज विश्वास नहीं होता; पर इस सचाई से इन्कार नहीं किया जा सकता कि उन्मादग्रस्त व्यक्ति कुछ भी कर सकता है। इसलिए कुछ घटनाएं अनहोनी मालूम होने पर भी असम्भव नहीं कही जा सकतीं।

उपन्यास रोचक है; पर कहीं-कहीं पाठक को ऐसा

लग सकता है, मानो वह कोई जासूसी उपन्यास पढ रहा हो।

उपन्यास घटनाप्रधान है। उसमें एक के बाद एक घटनाओ का चक्र चलता रहता है, पर कहीं-कही उनमें अस्वाभाविकता का दोष आ गया है। उपन्यास का कथानक जिस सहज गति से चलना चाहिए, उस सहज गति से चलता दिखाई नही पडता। ऐसा जान पडता है, मानो लेखक के आगे बहुत से चित्र हैं और वह यह निश्चय नही कर पाता कि वह किन चित्रो को रक्खे और किनको छोड दे। इसी से घटनाओं का इसमें बडा विचित्र जमघट हो गया है फिर भी इसकी रोमाचकारी घटनाओ से पाठक सोचने के लिए बाध्य होता है और यह उपन्यास की सबसे बडी विशेषता है। पुस्तक के अतिम पृष्ठो में किसान विद्रोह आता है और लोगो की शक्ति, जो पारस्परिक विनाश करने में लगी हुई थी, एक विधायक दिशा में मुड जाती है।

कुल मिलाकर उपन्यास अच्छा है और वह इसलिए कि उसे पढकर पाठक के मन पर यह प्रभाव पडता है कि मनुष्य की शक्तियो का उपयोग ध्वसात्मक कार्यो में नहीं, सृजनात्मक प्रवृत्तियो में लगना चाहिए।

पुस्तक की भाषा कहीं-कही पर अटपटी हो गई है और कहीं-कहीं पर अशिष्ट शब्दो का प्रयोग हुआ है। शायद उपन्यास की घटनाओ को यथार्थ रूप देने की दृष्टि से ऐसा किया गया है, पर वह वाछनीय नहीं है और उससे उपन्यास का स्तर कुछ नीचा हो जाता है।

उपन्यास एक घिनौने युग की स्मृति है। पर उस युग की पुनरावृत्ति न हो, इसलिए इस चित्र का सामने रहना हितकर ही कहा जा सकता है। —सव्यसाची

बलि का बकरा. ले० मन्मथनाथ गुप्त, प्र० आत्मा-प्रकाशन, ११ तीमारपुर रोड, दिल्ली ८। मूल्य डेढ रुपया। पृष्ठ ९६।

यह उपन्यास नहीं, दो कहानियो का एक सग्रह है। पहली कहानी है 'बलि का बकरा', दूसरी है 'मर्दुम खोर'। दूसरी की अपेक्षा पहली कहानी काफी लम्बी है—८५ पृष्ठ की। वैसे इतने कम पृष्ठो में उपन्यास के विराट् रूप को भी बाधा जा सकता है, किन्तु ऐसा प्रयत्न इस पुस्तक में नहीं है।

कहानिया घटनाप्रधान हैं। लगता है, लेखक कहानी के चरित्रो के आत्म विकास करने में अपने कला-चातुर्य को नही खर्च करता है बल्कि घटनाओ के सग्रह से ही कहानी में प्रभाव पैदा करना चाहता है। पहली कहानी के लघु आकार में इतने लम्बे समय की अनेक घटनाओ को सकलित करने का कष्टसाध्य प्रयत्न करके लेखक ने पात्रो को कम बोलने दिया है, स्वय ही ज्यादा बोला है।

'बलि का बकरा' कहानी भारतीय स्वाधीनता के काग्रेसी सूत्रधारो पर एक व्यग्य है। किन्तु साथ ही भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन की एक सजीव झाकी भी इसमें मिलती है। हजारीलाल का चरित्र ही कहानी में उभर सका है। रामचरित्र तो केवल अवसरवादी नेताओं की ओर सकेत मात्र है।

'मर्दुम खोर' भी आधुनिक न्याय-व्यवस्था पर करारी चोट है। अत्याचारो से पीडित व्यक्ति किस तरह उसी सभ्य और शक्तिशाली समाज की भाषा में 'मर्दुम खोर' बन जाता है, जो उसे इस स्थिति में लाने को खुद जिम्मेदार है—इस ओर यह कहानी अच्छा सकेत करती है।

'बलि के बकरे' को बलि होने से पहले पूजते है और जो किसी सामाजिक हित के लिए कुर्बानी करते है उनकी पूजा बलिदान के पहले भी और बाद में और ज्यादा होनी है। इसलिए क्या सामाजिक हित के लिए बलिदान करने वाले उपेक्षित व्यक्तियो को 'बलि का बकरा' कहना उचित है? जो कुछ भी हो, लेखक ने कहानी के माध्यम अपनी बात निर्भीकता से कही है।—बालकृष्ण कौल

क्या व कैसे ?

गांधी-जयंती

२ अक्तूबर युग-पुरुष गांधीजी की वर्षगांठ है। वह प्रतिवर्ष आती है और देश मे स्थान-स्थान पर उस दिन गांधीजी का स्मरण किया जाता है। इस देश के लिए और दुनिया के लिए इस महापुरुष ने क्या किया, यह बताने की आवश्यकता नही। मानव-स्मृति अल्पजीवी होती है, फिर भी शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो, जो गांधीजी को और उनके काम को भूल गया हो। उसके अनुसार न चल सके, वह बात अलग है।

गांधीजी की दीर्घकालीन साधना और तपश्चर्या से देश में एक अद्भुत चेतना उत्पन्न हुई। नये-नये अहिंसक अस्त्रों का उन्होंने आविष्कार ही नही किया, उनका सफल प्रयोग भी कर दिखाया। परिणाम यह हुआ कि विदेशी सरकार, जो डेढ सौ वर्ष से इस देश को दबाये बैठी थी, हिलकर उखड गई। राष्ट्र गुलामी से मुक्त हो गया। पर गांधीजी का काम यही नही रुक गया, मंजिल यही नहीं समाप्त हो गई। 'राम-राज्य' की कल्पना उनके सामने थी और उसको वह मूर्त्त रूप देना चाहते थे। उनके लिए राजनैतिक स्वतंत्रता का उतना महत्व न था, जितना कि नैतिक उच्चता का, जीवन की पावनता का। इसीलिए उन्होंने वैयक्तिक, सामाजिक और राष्ट्रजीवन में नये मूल्यों को स्थापित करने का प्रयत्न किया। अपने जीवन को उन्होंने शुद्ध बनाया और लोगों से कहा कि यदि तुम सच्ची स्वतंत्रता का उपभोग करना चाहते हो तो साधना के इस राजमार्ग पर चलो। उनकी मान्यता थी कि यदि व्यक्ति सुधर जायगा तो समाज और राष्ट्र अपने आप ऊंचे उठ जायंगे।

उनका भगीरथ प्रयत्न जारी था कि वह चले गये। काम अधूरा रह गया। जाते-जाते उन्होंने राम का नाम लिया और उसके द्वारा मानो कह गये कि राम का ही एकमात्र मार्ग है, जिसपर चल कर मानव सुख और शांति से रह सकता है।

गांधीजी के अधूरे काम को पूरा करने की जिम्मेदारी अब उन लोगो पर मुख्य रूप से आ पडी है, जो अपने को उस महापुरुष का अनुयायी कहते और मानते हैं। पिता का श्राद्ध करना पुत्र का पवित्रतम कर्तव्य होता है। श्राद्ध का अर्थ हम संकुचित अर्थ मे नही ले रहे हैं। गांधीजी का श्राद्ध उनके अपूर्ण कार्यों को पूरा करके ही सम्पन्न किया जा सकता है। गांधीजी अपनी महान विरासत छोड गये हैं। इससे बडी विरासत और क्या हो सकती है कि आज सारा संसार इस महापुरुष को स्मरण करता है और उनके बताये मार्ग को आशा की दृष्टि से देखता है। पर हम यह न भूलें कि जितनी बड़ी विरासत होती है, उसकी जिम्मेदारी भी उतनी ही बडी होती है।

गांधीजी की जयती मनाने का प्रयोजन यह नही होना चाहिए कि हम उनका नाम रटें; बल्कि चाहिए यह कि हम गंभीरतापूर्वक उनके सिद्धान्तो का अध्ययन करें, देखें कि क्या-क्या जिम्मेदारियां वह हमें सौंप गये हैं और उन्हें निष्ठापूर्वक पूरा करने का प्रयत्न करें। आज प्रवाह विपरीत है। लम्बी लडाई के बाद जैसे सैनिक कुछ थकान अनुभव करता है और विश्राम चाहता है, वैसी ही कुछ प्रवृत्ति हमारे अधिकांश राष्ट्रीय नेताओ में आज पाई जाती है। उनकी तपस्या महान रही है। विश्राम या कुछ सुविधाएं चाहना उनके लिए स्वाभाविक है, लेकिन इसका बुरा असर उस उगती पीढी पर पडेगा, जिसे कल देश की बागडोर अपने हाथ मे लेनी है। जबतक गांधीजी के स्वप्न पूरे नही हो जाते तबतक प्रत्येक राष्ट्रकर्मी जन को, भले ही वह नेता हो अथवा सामान्य कार्यकर्ता, अपनी साधना में शैथिल्य नही आने देना चाहिए। गांधीजी का मार्ग है रचनात्मक कार्यों द्वारा देश के लाखों गांवो को ऊंचा उठाना, वहा से गरीबी के भूत को भगाना, वहा के लोगो को शिक्षित करना, उन्हें रहना सिखाना, उन्हे स्वस्थ रखना। ये काम अभी होने को बाकी हैं। गांधीजी ने अपनी जयती को 'चर्खा-जयती' कहा था। इससे स्पष्ट है कि खादी

के प्रति उनकी निष्ठा कितनी गहरी थी। आज उनके प्रति सवत्र उपेक्षा दिखाई देती है।

गांधीजी का सर्वोत्तम स्मरण है उनके कामों को जीवित रखना उन्हें तेजी से आगे बढाना। उनके कामों को मारकर हम उन्हें कदापि जिन्दा नहीं रख सकते।

गांधी-जयंती की यह मूल भावना हम भूल जायग तो फिर उसमें रहेगा क्या? हमारी कामना है कि गांधी-जयन्ती का महान पर्व बापू की प्रवृत्तियों में हमारी डिगनी आस्था को मजबूत करे और उनके मार्ग पर चलने का हमें नया बल दे।

यह कैसा धर्म है?

भूदान-यज्ञ के प्रवर्तक आचार्य विनोबा इन दिनों बिहार में भ्रमण कर रहे हैं। पाठकों ने यह समाचार बड़े आश्चर्य और वेदना के साथ पढा होगा कि जब विनोबा और उनका दल जब देवघर के वैद्यनाथ मदिर में प्रवेश कर रहा था,वहा के पडो ने उनपर आक्रमण किया। उनके रोष का कारण यह बताया जाता है कि वे हरिजनों से अपने देवता को और अपने धर्म को बचाये रखना चाहते थे। कहा जाता है कि सन् १९३४ में गांधीजी के साथ भी उन्होंने ऐसा ही अनुचित व्यवहार किया था। धर्म के नाम पर इस प्रकार का अधर्म करनेवाले पडों के दुष्कर्म की हम घोर निंदा करते हैं। भगवान या धर्म की रक्षा इस प्रकार कदापि नही की जा सकती। धर्म वही जियेगा, जो सबके लिए अपनी बाहें फैलायगा। धर्म को सकुचित रख कर तो उसकी हत्या ही की जा सकती है।

धर्म का जीवन में भारी महत्व है। उससे मनुष्य को शक्ति प्राप्त होती है, पर रूढि के रूप में धर्म का पालन हमें अधिक दूर नहीं ले जा सकता। आचार्य विनोबा और उनके दल के साथ जो व्यवहार हुआ है, उससे हमारी आखें खुल जानी चाहिए।

प्रश्न विनोबाजी पर आक्रमण का नहीं, बल्कि एक प्रतिक्रियावादी मनोवृत्ति का है। कोई भी धर्म मानव मानव के बीच भेद कर के टिक नही सकता और न किसी धर्म की रक्षा बाहरी उपक्रमों से की जा सकती है। रक्षा का हिंसक ढग तो अपनी कमजोरी का द्योतक है और धर्म के मस्तक पर कलक का टीका लगाता है।

विनोबा से बढकर धर्मनिष्ठ व्यक्ति और कौन हो सकता है। उनका अबतक का समूचा जीवन भगवान के चरणों में और उनके कामों को करते बीता है। एकमात्र भगवान का सहारा लेकर ही उन्होंने वह काम कर दिखाया है, जिसे दुनिया याद करेगी। ऐसे व्यक्ति पर प्रहार करना धर्म की जड पर कुठाराघात करना है। इससे साफ है कि रूढिवादियों के हाथ में धर्म अनिष्टकारक बनता है, कल्याणकारी नहीं।

यह हर्ष की बात है कि विनोबा के अधिक चोट नहीं आई। उनके साथी भी जल्दी अच्छे हो जायगें। पर यह घटना ऐसी है कि जिसे उपेक्षा से देखकर दर गुजर नहीं कर देना चाहिए। भारत के कोने-कोने से इसका विरोध हो रहा है, पर इतना ही काफी नहीं है। हमारी निश्चित राय है कि धर्म-स्थानों का सचालन और व्यवस्था अब उन्हीं व्यक्तियों के हाथ में रहनी चाहिए जो वास्तविक रूप में धर्मनिष्ठ हों। आज जो व्यक्ति धर्म-क्षेत्रों में बैठे हैं, उन्हें प्रेमपूर्वक समझाया जाय कि वे अपनी रूढिवादिता को छोडकर अपने हृदय को विशाल बनावें और यदि वे न मानें तो उनके विरुद्ध अहिंसक सत्याग्रह प्रारभ कर देना चाहिए। मनुष्य मनुष्य के बीच भेद करना मानवीय नहीं है और नैतिक दृष्टि से उसका कदापि अनुमोदन नहीं हो सकता। अब तो कानून ने भी उसे अवैध बना दिया है।

हमें विश्वास है कि इस छोटी-सी पर महान घटना से हमारे धर्म के इतिहास में एक नया अध्याय खुलेगा। सभवत यह घटना ईश्वरीय प्रेरणा से हुई है, कारण कि हरिजनों के मदिर प्रवेश के विषय में हमारी चेतना कुछ जडवत् हो गई थी। यह धक्का उसे इसलिए लगा है कि वह पुन गतिशील हो और हरिजनों के प्रति अन्याय को अब अधिक सहन न किया जाय।

विनोबा ने अपने वक्तव्य में कहा है कि उनके मन में उन पर आक्रमण करनेवाले नादान पण्डों के प्रति कोई दुर्भावना नहीं है, न उनके साथियों के मन में है। उन्होंने यह भी कहा है कि वह नहीं चाहते कि उन लोगों को दण्ड मिले। विनोबा का यह कथन उनकी महानता के अनुरूप ही है। कानून अपना निर्णय स्वय करे, पर हम चाहते हैं कि इस सबध में अब छोटा-मोटा नहीं, भारी और ठोस

कदम उठे।

पुनश्च- हर्ष की बात है कि यह मंदिर उक्त घटना के बाद हरिजनों के लिए खोल दिया गया है।

खादी और कूप-दान

हमारे राष्ट्रपति डा. राजेन्द्रप्रसाद और प्रधान मंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने उपेक्षित खादी के उपयोग के बारे में इधर अपना स्वर ऊंचा किया है। खादी और ग्रामोद्योग बोर्ड के सदस्यों के समक्ष बोलते हुए राजेन्द्रबाबू ने अपनी आकांक्षा प्रकट की कि पुलिस और मिलिटरी को छोड़कर शेष सब सरकारी और गैर सरकारी लोग खादी का इस्तैमाल करें। इतना ही नहीं, उन्होंने कहा कि सरकारी दफ्तरों में भी मेजपोश, पर्दे, झाडन, तौलिया, मोढ़ाओं के आवरण आदि सब खादी के होने चाहिए। नेहरूजी ने भी कहा है कि देश की उन्नति और समृद्धि के लिए खादी का इस्तैमाल जरूरी है।

राजेन्द्रबाबू और नेहरूजी ने खादी पर भावनावश जोर नहीं दिया है, बल्कि इसलिए कि ये दोनों खादी के व्यापक महत्व को समझते हैं। खादी के पीछे उसका महान अर्थशास्त्र है। उसे गहराई से समझकर खादी का उपयोग होगा तभी उससे कुछ परिणाम निकलेगा।

क्या हम आशा करें कि हमारे दो महापुरुषों की आवाज व्यर्थ नहीं जायगी। सरकारी दफ्तरों में खादी के प्रति एक प्रकार की उपेक्षा-सी पाई जाती है। चपरासियों की वर्दियां, मेजपोश, पर्दे, तौलिया आदि सब मिल के कपड़े के दिखाई देते हैं। यदि वे खादी के रक्खे जायं तो खादी के धंधे को निश्चय ही बड़ा प्रोत्साहन मिलेगा। सरकार के तीन आने रुपये की छूट कर देने के बावजूद खादी भण्डारों में भरी पड़ी है। मुख्य प्रश्न खपत का है। उसकी सुविधा हो जाने से खादी का उद्योग बढ़ेगा और उसके साथ देश की समृद्धि में भी वृद्धि होगी।

एक और लोकहितकारी बात, जिसके लिए इन दोनों राष्ट्र-पुरुषों ने अपनी आवाज ऊंची की है, वह है कूप-दान। विनोबा देश में घूम-घूमकर भूमि एकत्र कर रहे हैं; लेकिन वह काम केवल भूमि मिल जाने से ही पूरा नहीं हो जायगा। वह पूरा होगा तब जब लोग उन पर बस जायेंगे और खेती-बारी होने लगेगी। खेती के लिए मुख्य वस्तु पानी है। यदि सिंचाई की सुविधा पर्याप्त रूप से न हो तो खेती का पूरा लाभ नहीं उठाया जा सकता। अतः विनोबाजी की ५९वीं जयन्ती के पवित्र दिन, ११ सितम्बर १९५३ से कूप-दान के आन्दोलन ने जोर पकड़ लिया है। पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि राजेन्द्रबाबू ने दो और नेहरूजी ने एक कुआं स्वयं दान में दिया है। अपने एक सन्देश में नेहरूजी ने कहा है—'देश भर में बड़ी-बड़ी यात्राएं करके विनोबाजी ने हमारी जनता में एक नई जान डाली। भूदान-यज्ञ के सिलसिले में उनकी आवाज देश भर में गूंजी, बहुतों ने उसे सुना और बहुतों ने उसका यथाशक्ति जवाब दिया। मैं आशा करता हूं कि आज के दिन इस महान कार्य को और भी बढ़ाने की हम सबका कोशिश करेंगे। विशेषकर कुएं बनवाने में मदद देंगे।' नेहरूजी का अर्थ होना चाहिए ३५ करोड़ व्यक्तियों की आवाज।

संगठित प्रयत्न की आवश्यकता

'जीवन-साहित्य' के पिछले अंक में हमने राजाजी की नवीन क्रान्तिकारी शिक्षा-योजना के बारे में लिखा था। पाठकों को यह जान कर आश्चर्य और खेद होगा कि विरोधी पक्ष ने उस योजना के अमल को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया है। उनकी आपत्ति है कि बहुसंख्यक लोगों के लिए यह योजना भारी पड़ेगी। क्या इससे यह समझा जाय कि योजना उपयोगी नहीं थी अथवा कि लोग वर्तमान शिक्षा-प्रणाली को इतना लाभदायक मानते हैं कि उसमें परिवर्तन नहीं चाहते। बात ऐसी नहीं है। योजना की उपयोगिता के बारे में दो मत नहीं हो सकते। यह भी सच है कि देश का शायद ही कोई ऐसा शिक्षित-अशिक्षित व्यक्ति होगा, जो मौजूदा शिक्षा-प्रणाली की अनुपयुक्तता और उसके हानिकारक प्रभाव को न जानता हो।

प्रश्न उठता है कि तब राजाजी की योजना, जो कि अगले वर्ष से मद्रास के स्कूलों में चालू होनेवाली थी, क्यों स्थगित हो गई?

उत्तर स्पष्ट है—आपसी झगड़ों के कारण। विरोधी लोगों का कहना है कि यह योजना गरीब लोगों के लिए भारी होगी। निश्चय ही यह गरीबों की सहानुभूति प्राप्त

करने का एक तरीका है। हम पूछते हैं कि आज जो शिक्षा-प्रणाली चल रही है, वह कम खर्चीली है? हमें यह देख कर भारी वेदना होती है कि आज के समय में पारस्परिक भेदभाव, ईर्ष्या-द्वेष एवं महत्वाकाक्षाए कुछ इतनी उभर आई है कि उनकी वेदी पर देश हित को न्यौछावर-सा कर दिया जाता है। वास्तविक विचार प्रेरक लोकोपयोगी योजनाए वैसे ही बहुत कम आती है, लेकिन कभी आती है तो आपसी झगडो में उपेक्षा कर दी जाती है। हम मद्रास की सत्तात्मक राजनीति के विवेचन मे नही पडना चाहते और न यह बताना उचित समझते है कि इस योजना को स्थगित करने में किसका कितना हाथ है, पर हम यह स्पष्ट कह देना चाहते हैं कि इन कार्रवाइयों से हमारा भला होनेवाला नहीं है। आज जिस शिक्षा प्रणाली के विषय में सब एक स्वर से कह रहे है कि निकम्मी है, उसमें बच्चो और युवको का समय और शक्ति तथा उनके अभिभावको का रुपया व्यर्थ जा रहा है, उस शिक्षा प्रणाली को चालू रखने में आखिर क्या लाभ है? हजारो ग्रेजुएट विश्वविद्यालयों से डिगरिया लेकर निकल रहे है और शासन के सामने विकट प्रश्न है कि उनका उपयोग कैसे हो? ऐसी स्थिति में क्या फायदा है इस शिक्षा-प्रणाली से चिपके रहने से? विनोबा ठीक कहते है कि यदि शिक्षा शास्त्रियों को कोई नई बात नही सूझती है तो कुछ समय के लिए कालेज और विश्वविद्यालय बद कर देने चाहिए। देश की जन शक्ति और धन शक्ति को, जबकि वह देश के नव निर्माण मे लगनी चाहिए, यो बर्बाद करना बुद्धिमत्ता-पूर्ण नही है।

राजाजी की योजना से हमें मोह नही है, लेकिन इसमे सदेह नहीं कि वह एक सूझभरी योजना है और यदि चालू की जाय तो उसका परिणाम अन्ततोगत्वा शुभ ही निकलेगा।

हम चाहते हैं कि शिक्षा के मामले में केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारें कान में तेल डाले न बैठी रहें। हम सरकारी तथा गैर-सरकारी प्रभावशाली व्यक्तियो से भी अपेक्षा रखते हैं कि वे आपसी झगडो में देश के व्यापक हित को आखो से ओझल न होने दें। देश की आजादी को सुरक्षित रखने के लिए जरूरी है कि जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं—भोजन, वस्त्र, शिक्षा और स्वास्थ्य—के विषय में सगठित रूप से प्रयत्न हो। यदि पहली तथा दूसरी इतनी ही जरूरी चीजो के बारे में मतभेद, खीचतान और एक-दूसरे को गिराने की भावना रही तो फिर इस देश का ईश्वर ही मालिक है।

सरकार का मुंह मत ताको

हमारे देश में समय-समय पर नये-नये नारो का स्वर सुनाई देता रहता है। उनमें बहुत-से काम कर जाते हैं, बहुत से बेकार चले जाते हैं। गाधीजी ने एक नारा दिया 'भारत छोडो'। वह देश के कोटि-कोटि जन का मूलमत्र बन गया। 'अधिक अन्न उपजाओ' का नारा लगा। उससे कितना प्रयोजन सधा, यह विचारणीय बात है। सभवत उससे लोगों को थोडी-बहुत प्रेरणा मिली होगी, लेकिन जितना धन उसपर व्यय हुआ, उतना फल नही मिला।

हमारी राय है कि अब एक नया नारा लगाना चाहिए—'सरकार का मुह मत ताको।' यह नारा और तदनुरूप भावना इसलिए आवश्यक है कि सरकार पर हर काम के लिए निर्भर रहने से अपने पैर कमजोर होते हैं। इधर जब से देश स्वतन्त्र हुआ है, लोगो में दूसरो का सहारा ताकने की एक विचित्र मनोवृत्ति पैदा हो गई है। इससे पहली हानि तो यह हुई है कि देश की काम करने की शक्ति क्षीण हो गई है, दूसरे यह कि सरकार से रक्खी आशाओ के पूर्ण न होने से लोगो में एक प्रकार की निराशा ने घर कर लिया है। इसका दुष्परिणाम यह हुआ है कि लोगो की कार्यक्षमता बहुत कुछ अशो मे कम हो गई है और जिसे देखिये, वही आलोचक बना हुआ है।

'सरकार का मुह मत ताको'—इस नारे का यह आशय नही है कि सरकार के कामो में हम मदद न दें। जो काम अच्छे हैं, लोकोपयोगी है, उनमें मदद देनी ही चाहिए। इस नारे का आशय यह है कि हम उन कामो को छोड कर, जो सरकार की सहायता से ही पूरे हो सकते हैं, शेष में सरकार से मदद की अपेक्षा न रक्खें। इसका मतलब सीधी-सादी भाषा में यह है कि जो काम हम स्वय कर सकते है, वह अपने आप ही करे।

'मण्डल' की ओर से

सहायक सदस्य योजना

'जीवन-साहित्य' के पिछले अंक में हमने अपनी सहायक-सदस्य योजना की मध्य भारत में प्रगति के विषय में सूचना दी थी। हमारा विचार था कि पंद्रह दिन राजस्थान को देते, लेकिन प्रधान कार्यालय में कार्य अधिक रहने तथा गंभीर पुस्तकें प्रकाशित करने की योजना कार्यान्वित करने में व्यस्त रहने के कारण वहां का कार्यक्रम स्थगित रहा। वैसे हमारे प्रतिनिधि उधर घूम कर कुछ क्षेत्र तैयार कर आये है।

अक्तूबर के मध्य में ग्वालियर तथा नवम्बर के प्रथम सप्ताह में इंदौर, रतलाम, उज्जैन, जावरा, मंदसौर आदि स्थानों में जाने का कार्य-क्रम है। मध्य-भारत से कम-से-कम १०१ सदस्य पूरे करने हैं।

इधर हमारे प्रतिनिधि बंबई और लखनऊ पर भी ध्यान दे रहे हैं। लखनऊ तो जाना-पहचाना क्षेत्र है और वहां पहले कुछ प्रयत्न भी हो चुका है।

नये प्रकाशन

उक्त योजना के साथ-साथ कुछ नई पुस्तकें शीघ्र ही निकालने का प्रयत्न किया जा रहा है। गांधीजी पर (२ अक्तूबर को) राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद की अत्यंत महत्वपूर्ण पुस्तक 'गांधीजी की देन' प्रकाशित हो रही है। इस पुस्तक में उनके चुने हुए भाषण हैं, जिनमें उन्होंने युगपुरुष को श्रद्धांजलि अर्पित की है, उनके सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला है और उनकी भारत और विश्व को देन का स्मरण किया है।

'संस्कृत साहित्य सौरभ' में 'कादम्बरी', 'वेणीसंहार' और 'उत्तररामचरित' के कथा सार प्रकाशित हो चुके हैं। 'शकुंतला' और 'मुद्राराक्षस' प्रेस में दिये गए हैं। ये पुस्तकें मूल संस्कृत ग्रंथों के कथा-सार हैं और उन्हें निकालने का उद्देश्य है संस्कृत के अपने महान् ग्रंथों से पाठकों का परिचय कराना और उनमें रुचि उत्पन्न करना।

'समाज विकास माला' में भी चार पुस्तकें निकल चुकी हैं—'बद्रीनाथ', 'जंगल की सैर', 'भीष्म पितामह' और 'शिवि और दधीचि'। इस माला में 'विनोबा और भूदान यज्ञ', 'चैतन्य महाप्रभु', 'हजरत उमर' आदि प्रेस में जा रही हैं। बारह किताबें जल्दी ही निकल जायगी।

महर्षि टाल्सटाय का 'धर्म और सदाचार' (रिलीजन एण्ड मोरेलिटी का अनुवाद) प्रेस में दे दिया गया है। रूसी कलाकार की यह महान कृति है।

श्री चक्रवर्ती राजाजी की 'शिशुपालन' प्रेस में चली गई है। पुस्तक है छोटी-सी, पर अपने विषय की बहुत सुन्दर पुस्तक है।

श्री वासुदेवशरणजी की 'कल्पवृक्ष' और श्री बनारसीदास चतुर्वेदी की 'जीवन और साहित्य' पहले ही प्रेस में जा चुकी है। ये दोनों सांस्कृतिक एवं साहित्यिक पुस्तकें तरुणों के लिए विशेष रूप से उपयोगी हैं।

श्री नारायणप्रसाद जैन द्वारा संकलित और अनूदित 'संततुकाराम-गाथा' संत-साहित्य की अनुपम कृति होगी। पाठकों को यह पुस्तक भी शीघ्र ही सुलभ होने जा रही है।

तीन और बड़ी पुस्तकें तैयार हो रही है। पहली है सुप्रसिद्ध अमरीकी पत्रकार लुई फिशर की 'महात्मा गांधीजी की जीवनी', दूसरी कैंपबेल जान्सन की 'भारत-विभाजन की कहानी', तीसरी है 'कानून का सामान्य ज्ञान'

सन् १९५४ की 'गांधी-डायरी' की छपाई तेजी से हो रही है। पाठकों की इच्छा है कि डायरी गांधी जयंती के अवसर पर, २ अक्तूबर को, तैयार हो जाय। इसके लिए प्रयत्न किया जा रहा है। डायरी दोनों आकार की होगी बड़ी और छोटी। दोनों की जिल्द मोटे गत्ते और कपड़े की होगी। बड़ी का मूल्य २), छोटी का १)।

हम चाहते हैं कि 'मण्डल' के प्रकाशनों के संबंध में पाठक अपनी राय भेजें। यह भी लिखें कि आगे लोकहित की दृष्टि से किस प्रकार की पुस्तकें और निकालनी चाहिए। इतना ध्यान में रहे कि हम लोक रुचि को ऊंचा उठाने के आकांक्षी हैं। जो भी साहित्य हम प्रकाशित करेंगे, वह जन-साधारण के वर्त्तमान स्तर को ऊपर उठावेगा। हम जानते हैं कि यह मार्ग कठिन है विशेषकर ऐसे समय में तो और भी जबकि ९९ फीसदी प्रकाशक पाठ्य पुस्तकों के फेर में पड़े हैं और आम पुस्तकों की बिक्री उत्तरोत्तर कम होती जा रही है। पर 'मण्डल' की परम्परा ही यह रही है कि वह सरल मार्ग पर नहीं चला। —मंत्री

Regd. No. D. 228

२ अक्तूबर

महात्मा गांधी

का

अवसर पर उनकी विचार-धारा का अध्ययन और मनन करना तथा उनके रचनात्मक कार्यों में मदद देना उनके प्रति सर्वोत्तम श्रद्धांजलि अर्पित करना है।

सस्ता साहित्य मण्डल

का

यह साहित्य इस पुनीत अवसर पर अवश्य पढ़िये

गांधीजी की लिखी पुस्तकें

१	प्रार्थना-प्रवचन (भाग १)	२)	१३	मंगल प्रभात	।≈)
२	प्रार्थना-प्रवचन (भाग २)	२॥)	१४	सर्वोदय	।≈)
३	गीता माता	४)	१५	नीति-धर्म	।≈)
४	पन्द्रह अगस्त के बाद	१॥), २)	१६.	आश्रमवासियों से	॥)
५	धर्म-नीति	१॥), २)	१७	राष्ट्रवाणी	१)
६	दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह	३॥)	१८	एक सत्यवीर की कथा	।)
७	मेरे समकालीन	५)	१९	संक्षिप्त आत्मकथा	१॥)
८	आत्मकथा	५)	२०	हिन्द-स्वराज्य	॥।)
९	आत्मसंयम (प्रेस में)		२१	बापू की सीख	॥)
१०	गीता बोध	॥)	२२	गांधी-शिक्षा (तीन भाग)	१≈)
११	अनासक्तियोग	१॥)	२३	आज का विचार	।≈), ॥≈)
१२	ग्राम-सेवा	।≈)	२४	गांधी डायरी	छोटी १), बड़ी २)

गांधीजी-विषयक पुस्तकें

१	राष्ट्रपिता (जवाहरलाल नेहरू)	२)	८	बापू	(घनश्यामदास बिड़ला)	२)
२	बापू की कारावास-कहानी (सुशीला नैयर)	१०)	९	डायरी के पन्ने	"	१)
३	स्वतन्त्रता की ओर (हरिभाऊ उपाध्याय)	४)	१०	गांधी-विचार-दोहन	(किशोरलाल मशरूवाला)	१॥)
४	बापू के आश्रम में "	१)				
५	श्रद्धाकण (वियोगी हरि)	१)	११	सत्याग्रह-मीमांसा	(रंगनाथ दिवाकर)	३॥)
६	बा, बापू और भाई (देवदास गांधी)	॥)	१२	अहिंसा की शक्ति	(रिचर्ड बी ग्रेग)	१॥)
७	सर्वोदय तत्त्वदर्शन (गोपीनाथ धावन)	७)	१३	बापू के चरणों में	(ब्रजकृष्ण चांदीवाला)	२॥)

'सस्ता साहित्य मण्डल'

नई दिल्ली

मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली में छपाकर प्रकाशित।

वम्बर १९५३

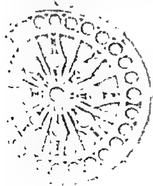
सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन



जुग-जुग जियो जवाहरलाल !
१४ नवम्बर को आप ६५वें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं ।

जीवन साहित्य

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय
यशपाल जैन



मूल्य
४)] : [एक प्रति ६ आना

'जीवन-साहित्य'

नवम्बर १९५३

लेख-सूची

'जीवन-साहित्य' की फाइलें

जीवन साहित्य' की नीचे लिखी फाइलों की बहुत थोड़ी प्रतियां हमारे स्टाक में बची हैं। जिन्हें लेनी हो तत्काल ले लेने की कृपा करें।

	अजिल्द	सजिल्द
१ १९४६ की	२)	३)
२ १९४८ की	३)	४)
३ १९४९ की (सर्वोदय विशेषांक सहित	३)	४)
४ १९५० की (विश्वशांति अंक सहित	४)	५)
५ १९५१ की (प्राकृतिक चिकित्सा अंक सहित	४)	५)
६ १९५२ की (भूदान-यज्ञ अंक सहित	४)	५)

विशेषांक

विश्वशांति अंक	१॥)
जमनालाल स्मृति अंक	॥)
प्राकृतिक चिकित्सा अंक	२।)

हमारे नये प्रकाशन

१ गांधीजी की देन (राजेन्द्र प्रसाद) १॥)

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के जीवन, उनके सिद्धान्त और उनके लोकहितकारी मार्ग पर राष्ट्रपति द्वारा प्रकाश।

२ पांचवें पुत्र को बापू के आशीर्वाद ६॥), ८)

स्व. जमनालाल बजाज तथा उनके परिवार को समय-समय पर गांधीजी द्वारा लिखे गये महत्वपूर्ण पत्र।

३ भारतीय संस्कृति (साने गुरुजी) ३॥)

सुप्रसिद्ध भारतीय चिंतक द्वारा प्राचीन भारतीय संस्कृति की नवीन व्याख्या।

४ शिशु-पालन (च. राजगोपालाचार्य) ॥)

बच्चों के मानसिक और शारीरिक विकास के लिए मनोवैज्ञानिक ढंग से लिखी पुस्तक।

५ ध्रुवोपाख्यान (घनश्यामदास बिड़ला) ।)

ध्रुव की सुप्रसिद्ध कथा की नई और रोचक व्याख्या।

६ शिष्टाचार (कमलता सब्बरवाल) ॥)

बालकों को दैनिक व्यवहार की उचित शिक्षा देने और अनुशासन का पाठ पढ़ाने वाली पोथी

७ विनोबा और भूदान (सुरेश रामभाई) ।=)

संत विनोबा और उनके नये कदम—भूदान-यज्ञ—की जानकारी देनेवाली पुस्तक। समाज विकास माला की पांचवीं किताब।

८. शकुंतला (कालिदास) ।=)

महाकवि कालिदास के सुविख्यात 'अभिज्ञान शाकुंतल' ग्रंथ का सरल-सुबोध भाषा में कथा-सार। 'संस्कृत साहित्य सौरभ' की चौथी पुस्तक।

उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, हिमाचल प्रदेश, मध्यभारत तथा विहार प्रादेशिक सरकारों द्वारा
स्कूलों, कालेजों व लाइब्रेरियों तथा उत्तरप्रदेश की ग्राम-पंचायतों के लिए स्वीकृत

जीवन-साहित्य

अहिंसक नवरचना का मासिक

वर्ष १४] नवम्बर १९५३ [अंक ११

देव दर्शन

स्वामी रामतीर्थ

मेरा यह हृदय देव मन्दिर इसके भीतर
जल रहा प्यार का दीप, रहा निज वैभव विखेर।
तीखे कांटों से घिरा भले ही प्यार-सुमन,
पर मुक्त भाव से लुटा रहा निज सौरभ-धन।
आनन्द तरंगित अमर ज्योति का यह निर्झर,
हो रहा प्रवाहित निज प्रकाश-वैभव लेकर।
स्वर्णिम पंखों वाले स्वतंत्र ये विहग मुखर!
हैं सुना रहे आनन्द-प्रशंसा के गायन।
रंगीन बनी मधुऋतु के ये लघु शिशु सुन्दर,
कर रहे मधुर कण्ठों से गाकर अभिनन्दन।
ऊषा फैला कर रंग गुलाबी मनभावन,
पर्वत-सर मैदानों को सजा रही शोभन।
करुणा का यह प्रकाश परिवेश अनन्त सघन,
कर रहा अमृत शीतल धारा का मृदु वर्षण।
सतरंगा इन्द्रधनुष नभ का ले आकर्षण,
रंग रहा क्षितिज विस्तार विखर, मुस्कान किरण!

अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय

विनोबा

आप सब जानते हैं कि अपना यह बहुत बड़ा देश है, लेकिन वह ऐसे ही बड़ा नही बना है। उसके पीछे एक महान सभ्यता और संस्कृति पड़ी है और बहुत दीर्घ प्रयत्न हुआ है, जिसके परिणामस्वरूप यह देश बड़ा बना है।

आप सब जानते हैं कि यहा एक सभ्यता बहुत प्राचीन जमाने से चली आई है और उस सभ्यता का पैगाम देश के इस सिरे से उस सिरे तक पहुचाया जा चुका है। उन दिनों जब कि इस तरह के संदेश पहुचाने के तीव्र साधन मौजूद नही थे, जिन दिनों पैदल ही घूमना होता और गाव-गाव जा कर और घर-घर जा कर जबान से सन्देश पहुचाना होता था, उन दिनों सब तरफ विचार से स्फूर्ति निर्माण हुई और यहा के कोने-कोने में विचार पहुचा।

एक जमाना था जब कि उत्तर हिन्दुस्तान में और दक्षिण हिन्दुस्तान में उतना सम्बन्ध नही था जितना आज के इस जमाने में है। यहा बुद्ध, महावीर निर्माण हुए हैं और उनका सन्देश दक्षिण भारत तक पहुचा और जिधर देखें उधर महान् सन्त निर्माण हुए। बुद्ध और महावीर प्रचार करते गये और उसके परिणामस्वरूप दक्षिण हिन्दुस्तान और उत्तर हिन्दुस्तान एक बन गया। बुद्ध और महावीर के जमाने के पहले यह सन्देश वैदिकों ने अपने ढग से फैलाया था, पर उसको व्यापक स्वरूप देने का काम बुद्ध और महावीर ने किया। वैदिक विचार-धारा उत्तर हिन्दुस्तान से निकली और दक्षिण में रामेश्वर जाकर मिल गई। उसके बाद विचार की दूसरी लहर दक्षिण से निकली और उत्तर हिन्दुस्तान में आने लगी। शंकराचार्य, रामानुज, माधव आदि प्रचारक निकले और जो सन्देश उत्तर से दक्षिण पहुचा था उसमें अपनी विशेषता डाल और वृद्धि कर वापस उत्तर हिन्दुस्तान पहुचा दिया। दक्षिण हिन्दुस्तान में आत्मज्ञान का विचार गया था। दक्षिणवालों ने उसमें भक्ति की वृद्धि की और भक्ति के साथ-साथ उसे उत्तर हिन्दुस्तान में वापस पहुचा दिया। परिणामस्वरूप उत्तर भारत और दक्षिण भारत वैचारिक दृष्टि से एक राष्ट्र बना। वैसे तो यहा अनेक प्रान्तों में अनेक राज्य थे, पर विचार का राज्य काश्मीर से कन्या-कुमारी तक एक ही चला और लोगों को उससे प्रेरणा मिली। काशी के लोग गंगा का पानी लेकर दक्षिण जाते थे और रामेश्वर में अभिषेक करते थे भगवान के मस्तक पर। दक्षिण के लोग समुद्र का पानी लेकर आते थे और विश्वनाथ पर अभिषेक करते थे। बुद्ध और महावीर ने गंगा का पानी दक्षिण हिन्दुस्तान तक पहुचाया तो शकराचार्य और रामानुज ने समुद्र का पानी उत्तर हिन्दुस्तान तक पहुचाया। इस तरह दक्षिण हिंदुस्तान में बहुत ही ज्ञानवान, भक्तिवान, आचार्य, सन्तपुरुष निकले और उन्होंने सारे हिन्दुस्तान में भक्ति-मार्ग को फैलाया।

कुछ लोगों का खयाल है कि अंग्रेजों ने इस देश को एकता प्रदान की, पर यह खयाल गलत है। अगरेजों की कोशिश तो यही रही कि इस देश के जितने टुकडे हो सकें उतने टुकडे किये जाय। परिणामस्वरूप आप देख रहे हैं—पाकिस्तान अलग हुआ, ब्रह्मदेश भी अलग हुआ और लका भी अलग हो गया। यह सब हमने देखा। अगरेजों की बदौलत यहा एकता स्थापित नही हुई, बल्कि यहा की एकता यहा के बुनियादी विचार पर स्थिर हुई है। अगरेजों ने और दूसरे देशों के इतिहासकारों ने भी यह जाना कि सारा हिन्दुस्तान एक है और इसलिए यहा जो मराठा, राजपूत के बीच लडाइया हुई वे सिविल वार कही गईं। ऐसी ही लडाइया यूरोप में होती है, पर वे सिविल वार नही मानी जाती हैं। इगलैंड की जर्मनी के साथ ये जो सारी लडाइया चलीं, वे सिविल वार थीं, हिन्दुस्तान के ख्याल से देखा जाय तो, पर वे राष्ट्रीय मानी गई और वैसी लडाइया हिन्दुस्तान में हुई, तो सिविल वार मानी गईं, याने हिंदुस्तान समूचा देश अगरेजों के यहा आने

के पहले ही एक हो चुका था। विचार का लेनदेन उत्तर हिन्दुस्तान से दक्षिण हिन्दुस्तान तक हुआ। इस तरह बहुत ही विशाल प्रयत्न और विचार-प्रचार के बाद हिन्दुस्तान एक हुआ है।

अब मौका आया है जब कि विचार के आन्दोलन एक देश तक ही सीमित नहीं रहेंगे, बल्कि पूरब से पश्चिम और पश्चिम से पूरब बहने लगेंगे। जैसे विचार उत्तर से दक्षिण और दक्षिण से उत्तर गये, वैसे ही सारी दुनिया से हिन्दुस्तान में विचार आयगे और हिन्दुस्तान से सारे देशों में जायगे। ऐसी हालत आज के विज्ञान ने लाई है। यह विज्ञान जबसे आया है तबसे देशव्यापी आन्दोलन के बजाय विश्वव्यापी आन्दोलन होने लगे हैं।

पूरब के देश विज्ञानहीन थे और पश्चिम में विज्ञान शुरू हुआ था। वहां से विज्ञान यहां पहुंच गया था। लाजमी था कि जिनके पास विज्ञान नहीं था वे जिनके पास विज्ञान था उनके वश हो गये, जैसे उत्तर हिन्दुस्तान से आत्म-ज्ञान दक्षिण पहुंचा तो दक्षिण भारत उत्तर भारत के वश हो गया। इसी तरह से दक्षिण भारत से भक्ति-मार्ग उत्तर भारत पहुंच गया। यह जो आदान-प्रदान हुआ, उसी तरह अब विश्व-व्यापक प्रचार का जमाना आया है। विज्ञान का प्रचार पश्चिम में हुआ, और वहां से बहता हुआ पूरब में आया, तो उसके वश दूसरे राष्ट्र हो गये, जो लाजिमी ही था। यह कोई दुःखदायी घटना नहीं है। हम जब निसर्ग को देखते हैं, तो इस तरफ एक देश का दूसरे देश पर जो आक्रमण हुआ है, उसे दूसरी तरह से देखते हैं, और इसलिए उसे दुःखदायी नहीं मानते, यद्यपि उसमें दुःखदायी बातें बहुत हुई हैं।

हिन्दुस्तान की आध्यात्मिक संस्कृति पर जहां पश्चिम के विज्ञान का रंग चढ़ गया वहां उसमें से एक नया विचार निर्माण हुआ, जिसे हम "सामूहिक अहिंसा" कहते हैं। यह हिन्दुस्तान के आध्यात्मिक विचार और पश्चिम के विज्ञान के संयोग से हुआ है।

जहां आत्मा के दर्शन होते हैं वहां हमारे जीवन में कम-बेश परिमाण में अहिंसा आती ही है, पर वह सामूहिक नहीं होती थी, क्योंकि विज्ञान के कारण आज मानव-समाज एक-दूसरे से जितना सम्बन्धित हो गया है, उतना उस जमाने में नहीं हुआ था। इसलिए अहिंसा के जो भी प्रयोग होते थे वे व्यक्ति-व्यक्ति के बीच ही होते थे। आज जो भी संघर्ष होते हैं और जो सम्पर्क आते हैं वे केवल व्यक्तियों के बीच के नहीं रहे, बल्कि सामाजिक हो गये हैं। एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र के साथ, एक समाज का दूसरे समाज के साथ सम्पर्क और संघर्ष हुआ है।

पश्चिम के विज्ञान और हिन्दुस्तान के अध्यात्म के संयोग से सामूहिक अहिंसा का आविर्भाव हुआ और हमने अहिंसा से स्वराज्य प्राप्त किया। अब पूरब की बारी आई है कि वे पश्चिम को सामूहिक अहिंसा का विचार पहुंचायें।

मनु ने जो कहा था —

"स्व स्व चरित्रं शिक्षेरन्,
पृथिव्यां सर्व मानवाः।"

"पृथ्वी के सर्व मानवों को चरित्र की शिक्षा मिलेगी हिन्दुस्तान के श्रेष्ठ जनों से।" यह जो मनु की भविष्यवाणी थी वह सफल हुई है महात्मा गांधी के आने से।

महात्मा गांधी को हम व्यक्ति नहीं मानते, विचार के प्रतिनिधि मानते हैं। जो विचार किसी जमाने में समाज के लिए अत्यन्त जरूरी होता है, उसका प्रचार करने के लिए जो निमित्त मात्र पुरुष होते हैं वे पुरुष नहीं नैमित्तिक विचारक होते हैं।

पश्चिम में कई महान वैज्ञानिक हुए। न्यूटन से पास्कल तक एक बड़ी भारी वैज्ञानिकों की परम्परा चली थी। यहां सन्तों की परम्परा चली, वैसे आधुनिक जमाने में वैज्ञानिक महापुरुषों की परम्परा जर्मनी, फ्रांस आदि देशों में चली।

प्रकृति में से संस्कृति और विकृति निर्माण होती है। विकृति निर्माण होती है तो बुरे काम होते हैं, संस्कृति बनती है, तो अच्छे काम होते हैं। प्रकृति वैज्ञानिकों के हाथ में थी और इस कारण कई पुरुष निर्माण हुए और उन्होंने प्रचार किया। क्या कोढ़ियों की सेवा करना वैज्ञानिक युग के पहले सोच सकते थे? पर ईसाइयों ने इस काम को उठाया। हिंदुस्तान में पश्चिम से कोढ़ियों की सेवा के लिए ये लोग आये और यहां काम शुरू हुआ। यह तो विज्ञान का ही परिणाम है। वे लोग चीन, जापान, अफ्रीका गये और जगह-जगह विज्ञान के आधार पर कई सेवा-कार्य

किये। उनका गुनगान हमें करना ही पड़ेगा। यह विज्ञान के जरिये जो संस्कृति का प्रदर्शन हुआ उसका परिणाम हुआ। विज्ञान का प्रचार जहा राजा, महाराजा और वीर पुरुषों के द्वारा हुआ वहा दूसरे देशों पर अधिकार करना, उनको गुलाम बनाना, भले-बुरे काम करना, यह सब विज्ञान की विकृति मानी जायगी।

मूल प्रकृति में से कुछ संस्कृति और कुछ विकृति पैदा हुई। उस संस्कृति का मूल और विकृति का दु:ख विज्ञान का पाप-पुण्य हो जाता है। उस तरह आप हिन्दुस्तान में देखेंगे कि दक्षिण से जो विचार पहुंचे हैं उनके साथ कई जुल्म भी हुए।

जो दृश्य हिंदुस्तान में एक देशव्यापी तौर पर उपस्थित हुआ था वह विश्वव्यापी तौर पर होने जा रहा है। अभी जो मैंने कहा कि पश्चिम को पूरब से सामूहिक अहिंसा का विचार जानेवाला है तो उसकी शुरुआत जो हमने अहिंसा से स्वराज्य प्राप्त किया उसीसे हो गई है। यह जो भूदान यज्ञ है इसमें कंजूस भी दान दे रहे हैं। यह विनोबा का पुण्य नहीं है। यह तो एक महान् विचार है जो विज्ञान के कारण पैदा हुआ है। उसे ही हम ईश्वरीय इच्छा मानते हैं। आप सब इतनी तादाद में भोग-परायण होने पर भी त्याग की बातें सुनने आये हैं। आज आप एक दूसरे के बारे में मानते हैं कि हम सब भोग-परायण हैं। जो लोग भोग-परायण और लोभी हैं वे ही हजारों की तायदाद में त्याग का सन्देश सुनने आये हैं। इसके माने यह है कि चेतन ही को जड और जड ही को चेतन, यह परमात्मा करा रहा है। इसका स्पष्ट दर्शन विनोबा को हो रहा है।

दो साल पहले २ अक्तूबर को हमारा निवास सागर में था तब केवल २०,००० एकड जमीन मिली थी और उसी दिन मैंने पहले जाहिर किया था कि हमें पाच करोड एकड जमीन हासिल करनी है। आज दो साल के बाद आप देखते हैं कि बीस हजार से बीस लाख बन गया है याने सौ गुना वृद्धि हो गई है। उन दिनों लोग गणित करते थे। मैं गणित हिसाब करते थे और कहते थे कि इस तरह तो इसे पूरा होने में पाच सौ साल लगेंगे। अब हिसाब लगावेंगे तो कहेंगे कि पाच सौ साल में नहीं, पाच साल में होगा। जो गणित पहले पाच सौ साल की बातें करता था और जो गणित आज पाच-पचीस साल की बात करेगा वह गणित गलत है। वह मानवीय गणित है। और यह जो काम हो रहा है वह ईश्वरीय गणित का है। इसमें आप देखेंगे कि कंजूस के जरिये बडे-बडे त्याग होने वाले हैं और डरपोक के जरिये हिम्मत के काम होनेवाले हैं, क्योंकि परमेश्वर जड को चेतन बनाता है।

आत्मज्ञान और विज्ञान मिलकर जो परिणाम हुआ है उसका प्रकाश सारी दुनिया में हिन्दुस्तान के जरिये फैले, यह परमेश्वर बोल चुका है, नहीं तो कौन थे पंडित नेहरू जिनकी आवाज कोरिया की शांति के लिए पहुंचे और कोरिया में शांति हो। परमेश्वर ने अहिंसा से हमें आजादी दिलाई, कमजोरों को बलवान बनाया, अहिंसक बनाया, चाहे यह नाटक के लिए ही क्यों न हो, पर बने तो सही। जिनके मन में द्वेष था वे भी लाठी के प्रहार सहन करते थे, और जिस हिन्दुस्तान में स्त्रियां परदे के बाहर नहीं आती थी वे भी शराब के पिकेटिंग के लिए दुकानों पर गईं। इस तरह ये दृश्य हुए। वह हिन्दुस्तान की अपनी ताकत नहीं थी। वह तो परमेश्वर ने हमसे कराया और उसीकी इच्छा है कि यह भूदान-यज्ञ का कार्य हो।

कम्युनिस्ट हमसे पूछते हैं कि क्या यह होगा? क्या आप विश्वास रखते हैं कि इतिहास में जो घटना नहीं हुई वह होगी? हम कहते हैं कि इतिहास में जो घटना नहीं हुई वह जरूर होगी, इसलिए कि वह इसके पहले कभी नहीं हुई है, और हम आपको निश्चित रूप से कहते हैं कि विनोबा मरने वाला है, क्योंकि वह जिन्दा है। जो घटना इतिहास में नहीं हुई होती है वह करनी होती है। इसलिए परमेश्वर नये-नये मनुष्यों को भेजता है और उनसे वह कार्य करवाता है।

ईश्वर जबतक है, जबतक यह दुनिया है। तबतक नित्य नये कार्य और उनको सम्पन्न करनेवाली पीढ़ियां नित्य नई होंगी। रामायण आपने सुना है। राम के पास कौन से बम थे? बन्दर और भालू ने रावण का काम तमाम कर दिया था। उसीके आधार पर हम कहते हैं कि हमारा यह काम आप सबसे होने ही वाला है। आप मानव नहीं, आप इतने देवता हैं, काम करने के लिए मानव रूप में प्रकट हुए हैं।

"मुझे अभी कई बरस जीना है"

जवाहरलाल नेहरू

[१४ नवम्बर को भारत के प्रधान मंत्री और राष्ट्र के लोकप्रिय नेता पं० जवाहरलाल नेहरू की वर्षगांठ है। इस अवसर पर हम उनके शतजीवी होने की कामना करते हुए उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। निम्नलिखित भावपूर्ण संस्मरण उनकी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'मेरी कहानी' से लिए गये हैं। पाठक देखेंगे कि इनमें उन्होंने जो भावनाएं व्यक्त की हैं वे आज भी कितनी ताजी हैं। —सम्पा०]

मैं ख्याल करता हूं कि अभी मुझे और भी कई बरस जीना है। कभी-कभी उम्र और थकान का ख्याल मन पर छा जाता है, लेकिन मैं फिर अपने को उत्साह और चैतन्य से भरपूर अनुभव करने लगता हूं। मेरा शरीर काफी गठीला है और मेरे मन में आघातों को झेल सकने की क्षमता है। इसलिए मैं समझता हूं कि मैं अभी काफी अर्से तक जिन्दा रहूंगा बशर्ते कि कोई अघटित घटना न घट जाय।

मैं जन-समूह का एक व्यक्ति रहा हूं, उसके साथ काम करता रहा हूं, कभी उसका नेतृत्व करके उसे आगे बढ़ाता रहा हूं, कभी उससे प्रभावित होता रहा हूं और फिर भी अन्य दूसरे व्यक्तियों की तरह एक-दूसरे से अलग, जन-समूह के बीच में अपना पृथक् जीवन व्यतीत करता रहा । अनेक बार हमने स्वप्न बांधा है और नाटक किया है, लेकिन हमने जो-कुछ किया उसमें बहुत सत्य वस्तु तथा तीव्र निष्ठा रही है और इसने हमें अपनी क्षुद्र अहंता से ऊंचा उठा दिया, हमें अधिक बल दिया और इतना महत्त्व दे दिया, जो अन्यथा हमें मिल नहीं सकता था। कभी-कभी हमें जीवन की उस पूर्णता को अनुभव करने का सौभाग्य मिला जो आदर्शों को कार्यरूप में परिणत करने से होती है और हमने समझ लिया कि इससे भिन्न कोई भी दूसरा जीवन, जिसमें इन आदर्शों का परित्याग करके, पशुबल के सामने दीनता ग्रहण करनी होती, व्यर्थ, संतोषहीन तथा अन्तर्वेदना से भरा होता।

इन वर्षों में मुझे बहुत-से लाभों के साथ-साथ एक अनमोल लाभ यह भी हुआ है कि मैं जीवन को अधिकाधिक एक रसमय महत्त्व का प्रयोग समझने लगा हूं। इसमें बहुत-कुछ सीखने को मिलता है, बहुत-कुछ करने को रहता है। क्रमोन्नति की भावना मुझमें हमेशा रही है और अब भी मुझ में है। इससे मुझे अपनी विविध प्रवृत्तियों में पुस्तकों के पठन-पाठन में रस मिलता है और जीवन जीने योग्य बनता है।

कुछ साल पहले एक सज्जन ने मेरे विषय में एक सार्वजनिक भाषण में कहा था कि मैं जनता की मनोदशाओं का प्रतिनिधि नहीं हूं; पर बहुत खतरनाक व्यक्ति हूं, कारण मैंने भारी त्याग किये हैं, मैं आदर्शवादी हूं, मुझमें दृढ़ आत्मविश्वास है। इस प्रकार, उनके विचारानुसार मुझमें 'आत्म-सम्मोहन' हो गया है।

निस्सन्देह, कभी-कभी मैं यह सोचने लगता हूं कि दर-असल क्या मैं किसी का भी प्रतिनिधि हो सकता हूं, और मैं इसी नतीजे पर पहुंचता हूं कि नहीं, मैं नहीं हो सकता। यह बात दूसरी है कि बहुत-से लोग मेरे प्रति कृपा और मैत्रीपूर्ण भाव रखते हैं। मैं पूर्व और पश्चिम का एक अजीब-सा सम्मिश्रण बन गया हूं, हर जगह बे-मौजूं, कहीं भी अपने को अपने घर में होने-जैसा अनुभव नहीं करता। शायद मेरे विचार और मेरी जीवन-दृष्टि पूर्वी की अपेक्षा पश्चिमी अधिक है, लेकिन भारतमाता अनेक रूपों में अपने अन्य बालकों की भांति, मेरे हृदय में भी विराजमान है और अन्तर के किसी अनजान कोने में, कोई सौ (या संख्या कुछ भी हो) पीढ़ियों के ब्राह्मणत्व के संस्कार छिपे हुए हैं। मैं अपने पिछले संस्कार और नूतन अभिज्ञान से मुक्त हो नहीं सकता। यह दोनों मेरे अंग हो गये हैं और जहां वे मुझे पूर्व और पश्चिम

दोनों से मिलने में सहायता करते हैं,वहां साथ ही न केवल सार्वजनिक जीवन में, बल्कि समग्र जीवन में एक मानसिक एकाकीपन का भाव पैदा करते हैं। पश्चिम में मैं विदेशी हूं—अजनबी हूं। मैं उसका हो नहीं सकता लेकिन अपने देश में भी मुझे कभी-कभी ऐसा लगता है मानों मैं देश-निर्वासित हूं।

सुदूरवर्ती पर्वत सुगम्य और उसपर चढ़ना सरल मालूम होता है, उसका शिखर आवाहन करता दिखाई देता है, लेकिन ज्यों-ज्यों हम उसके नजदीक पहुंचते हैं, कठिनाइयां दिखाई देने लगती हैं; जैसे-जैसे ऊंचे चढ़ते जाते हैं चढ़ाई अधिकाधिक मालूम होने लगती है और शिखर बादलों में छिपता दिखाई पड़ने लगता है। फिर भी चढ़ाई के प्रयत्न का एक अनोखा मूल्य रहता है और उसमें एक विचित्र आनन्द और एक विचित्र संतोष मिलता है। शायद जीवन का मूल्य पुरुषार्थ में है, फल में नहीं। अक्सर यह जानना मुश्किल होता है कि सही रास्ता कौन-सा है? कभी-कभी यह जानना ज्यादा आसान होता है कि कौन-सा रास्ता सही नहीं है, और उससे बचे रहना भी श्रेयस्कर होता है। अत्यन्त नम्रता के साथ मैं महान् सुकरात के अंतिम शब्दों का उल्लेख करना पसन्द करूंगा। उसने कहा था—"मैं नहीं जानता कि मृत्यु क्या चीज है—वह कोई अच्छी चीज हो सकती है, और मुझे उसका कोई भय नहीं है। लेकिन मैं यह जानता हूं कि मनुष्य का अपने भूतकर्मों से भागना बुरा है। इसलिए जिनके बारे में मैं जानता हूं कि वह खराब है उसकी अपेक्षा जो अच्छा हो सकता है वह काम करना मैं पसन्द करता हूं।"

बरसों मैंने जेल में बिता दिये। अकेले बैठे हुए, अपने विचारों में डूबे हुए, कितनी ऋतुओं को मैंने एक-दूसरे के पीछे आते-जाते और अन्त में विस्मृति के गर्भ में लीन होते देखा है। कितने चन्द्रमाओं को मैंने पूर्ण विकसित और क्षीण होते देखा है और कितने झिल-मिल करते तारा-मंडल को अबाध, अनवरत गति और भव्यता के साथ घूमते देखा है। मेरे यौवन के कितने बीते दिवसों की जलों में चिता-भस्म बनी हुई हैं, और कभी-कभी मैं इन बीते दिवसों की प्रेतात्माओं को उठते हुए, दुःखद स्मृतियों को जगाते हुए, पास के पास आकर यह कहते हुए सुनता हूं "क्या उसमें कुछ भलाई थी?" और इसका जवाब देने में मेरे मन में कोई शंका नहीं है। अगर अपने मौजूदा ज्ञान और अनुभव के साथ मुझे अपने जीवन को फिर से दुहराने का मौका मिले, तो इसमें कोई शक नहीं कि मैं अपने व्यक्तिगत जीवन में अनेक परिष्कार करने की कोशिश करूंगा, जो-कुछ मैं पहले कर चुका हूं, उसको कई तरह से सुधारने का प्रयत्न करूंगा, लेकिन सार्वजनिक विषयों में मेरे प्रमुख निर्णय ज्यों-के-त्यों बने रहेंगे। निस्संदेह मैं उन्हें बदल नहीं सकता, क्योंकि वे मेरी अपेक्षा कहीं अधिक बलवान हैं, और मेरे ऊपर रहने वाली एक शक्ति ने मुझे उनकी ओर ढकेला था।



देती रही रतन-धन जन के तू मुझको चिरकाल से,
देगी आज प्रसाद रूप क्या प्रभु-पूजा के थाल से।
पुण्य-भूमि यह सुन जगती से बोली वचन रसाल से—
"मेरा-सा तेरा आंचल भी भरे जवाहरलाल से।"

—मैथिलीशरण गुप्त

महावीर और उनके उपदेश

यशपाल जैन

आज से लगभग २५०० वर्ष पूर्व बिहार के ज्ञातृवंश के अधीनस्थ कुण्डलग्राम (कुण्डलपुर) के राजघराने में (ईसा से ५९९ वर्ष पूर्व) वर्द्धमान नामक एक बालक उत्पन्न हुआ। चैत्र का मास, ग्रीष्म ऋतु, शुक्ल त्रयोदशी का दिन और मध्य रात्रि की वेला। पिता सिद्धार्थ और मा त्रिशाला तो पुलकित हुए ही, सारा राज्य आनन्दित हो उठा। जबसे बालक मा के पेट में आया था तभी से कुल की सुख-समृद्धि और मान-मर्यादा में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई थी। स्वभावत बालक का नाम उसके गुणानुसार वर्द्धमान रक्खा गया।

वर्द्धमान का बचपन वैसे ही बीता जैसे अन्य बालकों का बीता करता है। वह उदार थे और उनका शरीर बलिष्ठ और कान्तिवान था। उन्हें सब प्यार करते थे।

बचपन से ही उनमे वैराग्य का बीज विद्यमान था और वह धीरे धीरे उनकी मानस-भूमि में जमता जा रहा था। ३० वर्ष की आयु तक वर्द्धमान घर में रहे, लेकिन अनासक्त रहकर। घर के किसी काम-काज अथवा राज-पाट में उन्हें रस न था। वैराग्य का बीज जो पनप रहा था। जब वह विकसित हुआ तब ३० वर्ष की भरी जवानी, भरा-पूरा घर-बार, विस्तृत राजपाट, कुछ भी उन्हें न रोक सका। सबको लात मारकर तपश्चर्या करने घर से निकल पड़े। उन्होने प्रतिज्ञा की—

"सव्वं मे अकरणिज्जं पावकम्मं"

अर्थात्—'आज से मैं कोई पाप नही करूंगा।" इतना ही नही, उन्होंने पचमहाव्रत के पूर्ण पालन की भी प्रतिज्ञा की।

आश्चर्य होता है कि उन्होने ऐसे कठोर मार्ग को कैसे चुना! आज के युग का बुद्धिवादी यह भी कह सकता है कि उन सबकी आवश्यकता ही क्या थी। भगवान ने उन्हें साधन दिये थे तो वे उनका उपयोग करते और उनके द्वारा दूसरो का कष्ट-निवारण करते, लेकिन वह वर्द्धमान का मार्ग नही था।

घर से बाहर निकलने के बाद उनके बारह वर्षों का जीवन इतना कठोर और रोमाचकारी है कि पढकर हृदय काप उठता है। न कोई शिष्य, न उपासक, मौन आत्मशोधन में लीन, उनकी कष्ट-सहिष्णुता, अडिग ब्रह्मचर्य-साधना, अहिंसा और त्याग के कठोर नियमो का पालन, शारीरिक अनासक्ति, वन्य जन्तुओं का उपद्रव लोगो का उत्पात, कभी खुले में तो कभी पेड की छाह में, कभी श्मशान में तो कभी सूने घर में उनका पडा रहना, खानपान का अद्भुत सयम, नींद पर विजय, आदि-आदि बातो के बडे ही विशद और रोचक वर्णन मिलते हैं। काया सूख गई, वस्त्र जीर्ण होकर नष्ट हो गये। उनकी वह दुर्द्धर्ष तपश्चर्या महीने-दो महीने अथवा साल-दो साल नही, बारह वर्ष तक निरन्तर चली। अनेक उपसर्ग हुए, अनेक प्रलोभन आये, परन्तु वर्द्धमान की तपस्या को कोई खण्डित न कर सका। अपनी इस निष्ठायुक्त साधना, असामान्य धैर्य, कष्ट-सहिष्णुता एव आत्म-सयम के कारण ही वह वर्द्धमान से महावीर बने।

तेरहवें वर्ष में उनकी तपश्चर्या पूर्ण हुई और वह 'केवली' पद को प्राप्त हुए। ससार के सुख-दु ख, मोह-माया, राग-द्वेष आदि से वह ऊपर उठ गये। तीर्थ का अर्थ होता है, जिसके द्वारा तिरा जा सके और चूकि महावीर ने अपनी वाणी द्वारा भवसागर को पार करने का मार्ग प्रशस्त किया, इसलिए वह तीर्थंकर कहलाये।

केवली पद प्राप्त कर लेने के बाद उन्होने धर्मोपदेश देना आरम्भ किया। उनके अनुयायियो में स्त्री-पुरुष सब थे। जो पूर्णव्रती थे, वे 'श्रमण' और जो स्थूलव्रती थे वे उपासक व 'श्रावक' कहलाये। श्रमण, श्रमणी, उपासक, उपासिका—यह चतुर्विध अनुयायी-समुदाय सघ कहलाया। भगवान महावीर की दृष्टि सम्पूर्णत आध्यात्मिक थी। आध्यात्मिक साधना द्वारा आत्म विजय करने का अभिलाषी कोई भी व्यक्ति सामर्थ्यानुसार व्रत ग्रहण कर सघ का अगी हो सकता था। सघ की नीव ■ तत्वो

पर आधारित थी-(१) आत्म-जय, (२) अहिंसा, (३) व्रत, (४) विनय, (५) शील, (६) मैत्री, (७) समभाव और (८) प्रमोद। जो पूर्णव्रती थे वे किसी भी सवारी का उपयोग नहीं कर सकते थे, वे पैदल चलते थे। पैरों में जूते नहीं पहन सकते थे और न खाट आदि आराम के उपकरण ही काम में ला सकते थे। सादे और स्वावलम्बी जीवन का उनके लिए विधान था। वे वाणिज्य-व्यापार भी नहीं कर सकते थे और अपना जीवन-यापन उन्हें भिक्षा माग कर करना पड़ता था।

महावीर ७२ वर्ष की आयु तक जीवित रहे। अनन्तर राजगृह में शरीर त्याग मोक्ष को प्राप्त हुए।

अपने उपदेशों में महावीर ने सभी विषयों का समावेश किया। वह जानते थे कि जीवन की छोटी-से-छोटी बातें भी महत्वपूर्ण होती है और तनिक सी असावधानी बड़ी-से-बड़ी साधना को विकृत कर सकती है। अत उन्होंने गृहस्थो के लिए नियमादिक बनाये तो साधु, भिक्षु आदि को भी बंधनमुक्त नहीं छोड़ा। वह यह भी जानते थे कि सबके लिए समान नियम नहीं बनाये जा सकते। कारण, सबकी अपनी-अपनी सीमाएं होती हैं। अत साधु के लिए जहा उन्होंने पचमहाव्रतो के सूक्ष्म पालन की शर्त रक्खी, वहा गृहस्थों को उपदेश दिया कि यदि वे कठोर नियमों का पालन नहीं कर सके तो कम-से-कम स्थूल रूप से तो उन पर चलें ही।

महावीर चाहते तो अपने प्रवचन पाडित्यपूर्ण भाषा में दे सकते थे, लेकिन इससे उनका सदेश पण्डित-वर्ग तक ही सीमित रह जाता। इसलिए उन्होंने लोक-भाषा को अपनाया और अपनी सिखाए इतनी सरल और बोध-गम्य भाषा और शैली में दी कि सामान्य व्यक्ति भी उन्हे बिना कठिनाई के समझ सकता था। उनके विचार बहुत स्पष्ट थे। कही भी उनमें उलझन न थी। इसीसे उनका सदेश व्यापक रूप से फैला। फिर एक बात यह भी थी कि उन्होंने अपने उपदेश किसी वर्ग-विशेष के लिए नहीं दिये, बल्कि बिना जातिपाति के भेदभाव के सबको उनसे लाभ पहुचे, यह दृष्टि रक्खी। जिस प्रकार उनके सघ का द्वार सबके लिए समान रूप से खुला था, उसी प्रकार उनके उपदेश भी सबके लिए कल्याणप्रद थे।

लगभग २५०० वर्ष बाद भी महावीर का सदेश कितना ताजा और कितना स्फूर्तिदायक है, इसके कुछ नमूने देखिये।

प्रमाद के विरुद्ध चेतावनी देते हुए वह कहते हैं :

—जैसे वृक्ष के पत्ते पीले पड़ते हुए समय आने पर पृथ्वी पर झड जाते है, उसी तरह जीवन भी (आयु शेष हो जाने पर समाप्त हो जाता है)। हे जीव, क्षण भर के लिए भी प्रमाद न कर।

एक छोटे से पद में उन्होंने जीवन का कितना बड़ा सत्य भर दिया है :

—उसने दुख का नाश कर दिया, जिसको मोह नहीं होता। उसका मोह नष्ट हो गया, जिसको तृष्णा नहीं होती। उसकी तृष्णा नष्ट हो गई, जिसके लोभ नहीं होता। उसका लोभ नष्ट हो गया, जो अकिंचन है।

वैर के दूषित परिणाम के सम्बन्ध में उनका विश्लेषण देखिये

—वैरी वैर करता है और फिर दूसरो के वैर का भागी होता है। इस तरह वैर से वैर आगे बढता है। पापोत्पन्न करनेवाले आरम्भ अन्त में दुखकारक होते हैं।

कितनी सुन्दर उपमा देकर उन्होंने अधर्म के भयकर चक्र से बचने की चेतावनी दी है :

—जिस तरह कोई जानकर गाडीवान समतल विशाल मार्ग को छोडकर विषम मार्ग मे पड जाता है और गाडी की धुरी टूट जाने से सोच करता है, उसी तरह धर्म को छोडकर अधर्म में पड़नेवाला मूर्ख मृत्यु के मुह मे पडा हुआ धुरी टूट जाने की तरह शोक करता है।

क्रोध, मान, माया और लोभ से मनुष्य किस प्रकार उत्तरोत्तर नीचे गिरता जाता है, इस सम्बन्ध में महावीर की व्याख्या देखिये :

—क्रोध से मनुष्य नीचे गिरता है, मान से अधोगति पाता है, माया से सद्गति का रास्ता रुकता है और लोभ से इहभव और परभव दोनों बिगड़ते हैं।

आज के युग की सबसे बडी बुराई यह है कि अधिकाश लोग स्पष्ट भाषा का प्रयोग नहीं करते। असत्य भाषा के विषय मे महावीर की सावधानता देखिये :

—भाषा चार प्रकार की होती हैं। उनमें झूठ से

मिली हुई भाषा तीसरी है। विवेकी पुरुष ऐसी मिश्र भाषा न बोले, न वैसी भाषा बोले, जिससे बाद में पश्चात्ताप करना पड़े और न प्रच्छन्न बात कहे। यही निर्ग्रन्थ ऋषियों की आज्ञा है।

जीवन की क्षणभंगुरता के विषय में

—निश्चय ही अन्तकाल में मृत्यु मनुष्य को वैसे ही पकड़कर ले जाती है, जैसे सिंह मृग को। अन्तकाल के समय माता पिता या भाई-बन्धु कोई उसके भागीदार नहीं होते।

भोगों की निस्सारता के बारे में उन्होंने कितने सुन्दर ढग से अपनी बात कही है

—काल बीता जा रहा है। रात्रियां भागी जा रही है। मनुष्यों के ये काम-भोग नित्य नहीं है। जैसे पक्षी क्षीण फलवाले द्रुम को छोड़कर चले जाते हैं, उसी तरह काम भोग क्षीणभागी पुरुष को छोड़ देते है।

दुनिया के सम्बन्धों के विषय में उनका सन्देश भी कितना ताजा है

—स्त्री और पुत्र, मित्र और बान्धव जीवनकाल में ही पीछे-पीछे चलते है, मरने के बाद वे साथ नहीं देते।

—जैसे अत्यन्त दुःखी पुत्र मृत पिता को घर से बाहर निकाल देते है, वैसे ही माता पिता भी मरे पुत्र को बाहर निकाल देते है। सगे-सम्बन्धियों के विषय में भी यही बात है। हे राजन्! यह देख कर तू तप कर।

आसक्त और अनासक्त व्यक्तियों की मनोभावनाओं का निरूपण उन्होंने कितनी सरल उपमा देकर किया है:

—जिस तरह सूखे और गीले दो मिट्टी के गोलों को फेंकने पर उनमें से गीला ही दीवार से चिपकता है और सूखा नहीं चिपकता, उसी प्रकार जो काम-लालसा में आसक्त और दुष्ट बुद्धि वाले मनुष्य होते हैं, उन्हींको संसार का बंधन होता है, पर जो काम-भोगों से विरत होते है, उनके ऐसा नहीं होता।

अधिकांश व्यक्ति सदाचारी जीवन के राजमार्ग को छोड़कर बुराई के मार्ग पर चल पड़ते हैं। उन्हें चेतावनी देते हुए वे कहते हैं

—हे पुरुष, पाप कर्मों से निवृत्त हो। यह मनुष्य-जीवन शीघ्रता से दौड़ा जा रहा है। जो लाभ लेना हो, वह ले लो। भोग-रूपी कादे (दलदल) में फंसा हुआ और काम-भोगों में मूर्छित अजितेन्द्रिय मनुष्य हिताहित विवेक को खोकर मोहग्रस्त होता है।

मानव के लिए सबसे महत्व की बात अपनी आत्मा पर विजय पाना है। वही सबसे कठिन काम भी है। इस सम्बन्ध में वे कहते हैं .

—हे प्राणी, अपनी आत्मा के साथ ही युद्ध कर। बाहरी युद्ध करने से क्या मतलब? दुष्ट आत्मा के समान युद्धयोग्य दूसरी वस्तु दुर्लभ है।

नीचे के पदों में उन्होंने सत्य-भाषण का कितना सूक्ष्म विवेचन किया है

—भाषा चार प्रकार की होती है—(१) सत्य, (२) असत्य, (३) सत्यासत्य और (४) न सत्य न असत्य।

—प्रज्ञावान उपरोक्त चार भाषाओं को अच्छी तरह जानकर सत्य और न सत्य-न-असत्य, इन दो भाषाओं से व्यवहार करना सीखे और एकांत मिथ्या या सत्यासत्य इन दो भाषाओं को कभी न बोले।

सामान्य उपमा देकर बड़ी-से-बड़ी बात समझा देने में तो महावीर को कमाल हासिल था। धन के मोह में फंसे लोगों के विषय में उन्होंने कितने तथ्य की बात कितने सरल ढंग से समझा दी है .

—प्रमत्त मनुष्य धन द्वारा न तो इस लोक में अपनी रक्षा कर सकता है और न परलोक में। हाथ में दीपक होने पर भी जैसे उसके बुझ जाने पर सामने का मार्ग नहीं दिखाई देता, उसी तरह धन के असीम मोह से मूढ़ मनुष्य न्याय-मार्ग को देखता हुआ भी नहीं देख सकता।

साधु पुरुषों के लिए उन्होंने कितने पते की बात कही है .

—साधु कानों से बहुत बातें सुनता है, आंखों से बहुत बातें देखता है, परन्तु देखी हुई, सुनी हुई सारी बातें किसी से कहना साधु को उचित नहीं।

साधु-असाधु की उनकी परिभाषा पर ध्यान दीजिये

—गुणों से साधु होता है और अवगुणों से असाधु। सद्गुणों को ग्रहण करो और दुर्गुणों को छोड़ो। जो अपनी ही आत्मा द्वारा अपनी आत्मा को जानकर राग और द्वेष

में समभाव रखता है, वह पूज्य है।

भगवान महावीर वास्तव में क्रान्तिकारी थे। सच बात निर्भीकतापूर्वक कहने से कभी नहीं चूकते थे

—सिर मुड़ा लेने मात्र से कोई 'श्रमण' नहीं होता, 'ओम्' के उच्चारण मात्र से कोई ब्राह्मण नहीं होता, अरण्यवास करने मात्र से कोई मुनि नहीं होता और न वल्कल चीर-धारण मात्र से कोई तापस (तपस्वी) होता है ?

उनकी दृष्टि से ब्राह्मण के रूप की कल्पना कीजिये

—जो तपस्वी है, कृश है, जितेन्द्रिय है, तप-साधना से जिसने रक्त-मास सुखा दिया है, जो सुव्रती है और जिसने क्रोध, मान, माया और लोभ से मुक्ति पाली है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

महापुरुष द्रष्टा होते हैं और वे ऐसे सनातन सत्यों का प्रतिपादन करते है, जो कभी बासी नहीं होते। उनके वचन प्रत्येक युग में स्फूर्ति और प्रेरणा देनेवाले होते हैं। भगवान महावीर के उपदेशों से ऐसा लगता है, मानो आज ही कोई महापुरुष अपनी बात कह रहा हो।

निश्चय ही यह हम सबका परम सौभाग्य है कि इस धरा पर महावीर का अवतरण हुआ। महापुरुष सहस्रों वर्षों में एक बार पैदा होते हैं, लेकिन जब पैदा होते हैं तो ससार को धन्य कर जाते है। भगवान महावीर ऐसे ही महापुरुष थे। अपनी कठोर तपश्चर्या और महान् व्यक्तित्व से उन्होंने विश्व के समक्ष एक ऐसा कल्याणकारी मार्ग प्रशस्त कर दिया, जिसपर चलकर प्रत्येक व्यक्ति अपना हित कर सकता है। वह किसी एक समाज या दल के नहीं थे, इसलिए सारी दुनिया उनकी और वे सबके थे। जीवन के जिन सनातन सत्यों का उन्होंने निरूपण किया, वे मानवता के लिए सदा दीप-स्तंभ का काम करेंगे।

आज भगवान महावीर के सिद्धान्तों के मूल तत्वों को बहुत कुछ अंशों में भुला दिया गया है। इतना ही नहीं, आज का युग उन सिद्धान्तों को भारी चुनौती दे रहा है। लगता है, जैसे आज की भौतिकता, मानवता और आध्यात्मिकता को लील जायगी। ऐसी अवस्था में भगवान महावीर के सिद्धान्तों को निःस्वार्थ भाव से जनसाधारण में प्रसारित करने की दृष्टि से जो भी कदम उठाया जायगा, वह न केवल सामयिक होगा, अपितु स्तुत्य भी। आज की सबसे बड़ी आवश्यकता लोगों में विचार-क्रान्ति उत्पन्न करने की है। उन्हें बताना है कि जीवन के सही मूल्य क्या हैं और किन-किन तत्वों पर चलकर जीवन सार्थक और कृतार्थ बन सकता है। इसके लिए बिना किसी भेद-भाव के उन महापुरुषों के सिद्धान्तों और विचारों का सीधी-सादी भाषा में व्यापक प्रसार करना अपेक्षित है, जिन्होंने 'प्रेय' से अधिक 'श्रेय' पर जोर दिया और जिन्होंने अपने आचरण से सिद्ध कर दिया कि आत्मिक बल का मुकाबिला ससार की कोई भी शक्ति नहीं कर सकती। ऐसे महापुरुष हमेशा जीवित रहेंगे और उनके महान वचन भूलीभटकी मानव-जाति का सदा मार्ग-दर्शन करेंगे। इन वचनों को समझने के साथ-साथ मुख्य बात निष्ठापूर्वक उनके अनुसार आचरण करने की है। वाणी के पीछे यदि कर्म का बल न हो तो वह विशेष लाभदायक नहीं होती। जीवन पूर्ण तभी बनता है जब मनुष्य की कथनी और करनी में सामंजस्य स्थापित हो जाता है। एक महापुरुष के कथनानुसार यदि विचारों के अनुरूप कार्य न हो तो वह गर्भपात करने के समान है।

महावीर शब्द का मूल अर्थ महान् योद्धा है। कहा जाता है कि एक दिन जब कि वे अपने मित्रों के साथ क्रीडा कर रहे थे, उन्होंने एक बड़े काले सर्प को उसके फन पर पैर रखकर बड़े गौरव से वश में किया और तभी से उन्हें यह विशेषण मिला। मुझे यह कथा एक रूपक मालूम पड़ती है क्योंकि महावीर ने सचमुच कषायरूपी सर्प को वश में किया था। वे दर-असल एक महान् वीर, महान् विजेता थे। उन्होंने राग और द्वेष को जीत लिया था। उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य चैतन्य था। वह जीवन परमशक्ति का था। आधुनिक भारत को भी महान् वीरों की आवश्यकता है, ऐसे पुरुषार्थी पुरुषों की, जो अपने हृदय से डर को निर्वासित कर स्वातंत्र्य की सेवा करें।

—टी० एल० वास्वानी

पहला एकता सम्मेलन

विष्णु-प्रभाकर

"हमने सुना है कि एक पापुलर मीटिंग देहली में हुई थी यानी प० दयानन्द सरस्वती के मकान पर एक कान्फ्रेन्स इसलिए हुई कि भारत के वर्तमान सुधारकों में परस्पर एकता का सम्बन्ध स्थापित किया जाय। हमारे मिनिस्टर (श्री केशवचन्द्र सेन) भी उसमें मौजूद थे। यदि भिन्न-भिन्न स्थानों के सुधारकों में एकता का सम्बन्ध सच्ची और व्यावहारिक नींव पर स्थिर हो जाय, तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि बहुत भारी और नेक परिणाम पैदा होंगे। हम इसकी सफलता की प्रार्थना करते हैं।"

ये शब्द १४ जनवरी १८७७ के इन्डियन मिरर* से उद्धृत किये जा रहे हैं। जनवरी १८७७ का महीना भारत के इतिहास में सदा याद रहेगा। उस महीने में भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल तथा वाइसराय लार्ड लिटन ने महान कैसरी दरबार किया था, जिसमें महारानी विक्टोरिया को भारत की राजराजेश्वरी की उपाधि दी गई थी। इस दरबार में राजकुल और शासन से सम्बन्ध रखनेवाले व्यक्तियों के अतिरिक्त भारत के प्रसिद्ध तत्ववेत्ता और सुधारक महापुरुष भी वहां आये थे। सबके आने के कारण अलग-अलग थे। उस समय ऐसा जान पड़ता था कि यह दरबार ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य के बल और वैभव का प्रदर्शन है। उस प्रदर्शन की बहुत बड़ी जरूरत थी। १८५७ की याद अभी लोगों को भूली नहीं थी, परन्तु उसके कारण जो स्वाभाविक एकता भारतीयों में पैदा हो गई थी, वह धीरे धीरे क्षीण होती जा रही थी। ब्रिटिश साम्राज्य के साथ ब्रिटिश धर्म (ईसाइयत) भी भारत में धीरे-धीरे फैल रहा था। जनता में अकर्मण्यता और आलस्य का जोर था, मानो १८५७ की पराजय के बाद उसने अपने को भाग्य के हाथों में सौंप दिया था। उसकी दशा उस रूपवती विधवा की तरह थी, जिसका स्वामी मर चुका है, परन्तु रूप के कारण अनेक लोलुप और कामी पुरुष उसपर अत्याचार करते हैं। वह व्यथा और पीड़ा के कारण किसी का सामना नहीं कर सकती और अपने को उनकी दया पर छोड़ देने को विवश हो जाती है।

परन्तु जहां अत्याचार होता है, वहां उसका विरोध करनेवाले भी पैदा हो जाते हैं। शुरू में उनका विरोध साधारण होता है। भारत में धीरे-धीरे सुधारक पैदा हुए। उनमें विदेशी शासन का विरोध करने की शक्ति तो नहीं थी, परन्तु मुरदा जाति में जान पैदा करने में उन्होंने बहुत मदद दी।

बंगाल में राजा राममोहन राय की परम्परा में ब्रह्म समाज के नेता महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर और ब्रह्मानन्द केशवचन्द्र सेन थे। बाकी उत्तर भारत में आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती की धूम थी। बम्बई प्रान्त में प्रार्थना समाज को लेकर श्री महादेव गोविन्द रानडे तथा रा० ब० भोलानाथ साराभाई आदि सुधारक पुरुष थे। श्री रामकृष्ण परमहंस भी इसी काल में स्वामी विवेकानन्द का निर्माण कर रहे थे। मुसलमानों में सर सैयद अहमद ने एक नया जीवन पैदा कर दिया था। यह सब लहरें भिन्न-भिन्न स्रोतों से होकर भारतीयों में आत्मसम्मान की भावना पैदा कर रही थीं। अलग अलग प्रान्तों में अलग-अलग कारणों से भारत का नवनिर्माण हो रहा था, परन्तु अखण्ड भारत की जो एकता थी वह अभी तक छिन्न भिन्न थी। यह बात नहीं थी कि ये सुधारक लोग भारत की एकता में विश्वास नहीं रखते थे। वे रखते थे और उन्होंने इस ओर अनेक प्रयत्न भी किये थे। यह अचरज की बात है कि इस ओर सबसे अधिक प्रयत्न करनेवाला व्यक्ति स्वामी दयानन्द सरस्वती था।

आरम्भ में हमने जिन पंक्तियों को उद्धृत किया है, उनका संकेत स्वामी दयानन्द के एक ऐसे ही प्रयत्न की ओर है। वे देहली दरबार में इसलिए आये थे कि किसी तरह हम सब मिलकर एक मार्ग पर चल सकें। उनका विचार था कि देश के सारे राजा लोग वहां इकट्ठे होंगे और यदि वे मेरी बात सुनेंगे, तो बहुत जल्दी देश में एकता

स्थापित हो जायगी। परन्तु इस ओर उन्हें कुछ भी सफलता नहीं मिली। राजराजेश्वरी के दरबार के अवसर पर राजाओं को अपना वैभव प्रदर्शित करने से अवकाश कहां था कि वे एक सन्यासी की बात सुनते, जो उस समय का सबसे बड़ा विद्रोही और नास्तिक था।

उनके दरबार में आने का दूसरा कारण भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों के सुधारकों से मन्त्रणा करना था। इसलिए दरबार में आये हुए समस्त सुधारकों को उन्होंने अपने निवासस्थान पर आमन्त्रित किया। आज के युग में एकता सम्मेलनों की धूम है, परन्तु उस समय इस प्रकार का आयोजन एक अनोखा प्रयत्न था। उसे भारत का सबसे पहला एकता सम्मेलन कह सकते हैं। उसमें भारत के सभी प्रसिद्ध सुधारक सम्मलित हुए थे। उनमें निम्न-लिखित प्रमुख थे।

१ ब्रह्मसमाज नव्य विधान के प्रवर्तक श्री केशव चन्द्र सैन, कलकत्ता, (२) लाहौर के प्रसिद्ध ब्रह्मसमाजी नेता श्री नवीनचन्द्र राय, (३) मुसलमानों के प्रसिद्ध नेता श्री सर सैयदअहमद, अलीगढ़, (४) रा ब., रा. रा., प. गोपालराव हरि देशमुख, पूना,* (५) प्रसिद्ध वेदान्ती नेता मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी, लुधियाना, (६) मुंशी इन्द्रमणि, मुरादाबाद, (७) बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि, और (८) प. मनफूल।

इसके अतिरिक्त स्वामी दयानन्द सरस्वती के साथ राजा जयकृष्णदास सी. आई. ई. आदि अनेक पुरुष थे, परन्तु यह ठीक-ठीक नहीं मालूम होता कि इस सभा में भी वे लोग आये थे। इनके सामने स्वामी दयानन्द सरस्वती ने एक प्रस्ताव रक्खा था। उसमें कहा था कि यदि हम सब लोग एक मत हो जावें और एक ही रीति से देश का सुधार करें, तो आशा है देश शीघ्र सुधर सकता है।

यद्यपि उस सभा का पूरा विवरण कहीं नहीं मिलता, परन्तु इतना निश्चय है कि उस विषय पर स्पष्टता और उदारता के साथ विचार हुआ था। देश की एकता और सुधार के सम्बन्ध में सब एक मत थे। देश का जो कुछ भी लोकमत था वह भी उनके साथ था कलकत्ते के 'इंडियन मिरर' की राय ऊपर आ चुकी है। लाहौर के 'बिरादरे हिन्द' ने इस बारे में लिखा था—'हम दिली मुस्सरत के साथ इस बात का इजहार करते हैं कि देहली दरबार की तकरीब में हिन्दुस्तान के मशहूर और लायक रिफार्मर्स (इसलाह कुनन्दगान) ने प दयानन्द सरस्वती के मकान पर एक जल्सा खास इस गरज से मुनकिद किया कि हमारी अमरल अलतगाई इन सब मजहब में एक हो है। बेहतर हो कि आइन्दा से बजाय अलहदा-अलहदा काम करने के कुल मुत्तफिक होकर कौम की इसलाह में मसरूफ हो और आपस में अगर उनके किसी किस्म का इख्तलाफ हो तो उसका भी बाहमी तसफीह के साथ फैसला करलें। इस जल्से में ब्रह्मसमाज के पेशवा बा. केशवचन्द्र सेन साहब भी शामिल थे।"[१]

इतना कुछ होते हुए भी यह सभा एकमत नहीं हो सकी। इसकी असफलता के बारे में इस सभा के एक सभासद श्रीयुत बा नवीनचन्द्र राय ने आठ वर्ष बाद अपने पत्र 'ज्ञानप्रदीप' में इस प्रकार लिखा—फिर दूसरी बार स्वामीजी की मुलाकात हम लोगों से दिल्ली में १८७७ में कैसरेहिन्द के दरबार के समय हुई थी। वहां उन्होंने हमें बा केशवचन्द्र सैन और श्री हरिश्चन्द्र चिन्तामणि को निमंत्रित किया और हम लोगों से यह प्रस्ताव किया कि हम लोग पृथक्-पृथक् धर्मोपदेश न करके एकता के साथ करें, तो अधिक फल होगा। इस विषय में बहुत बातचीत हुई। पर मूल विश्वास में उनके साथ हम लोगों का भेद था, इसलिए जैसा वह चाहते थे एकता न हो सकी।"[२]

इस असफलता का कारण क्या था और मूल-विश्वास में कितना भेद था इसका स्पष्ट उल्लेख बा. केशवचन्द्र सेन की जीवनी में आता है :

"बा केशवचन्द्र सेन जब फिर दिल्ली में स्वामी दयानन्द सरस्वती से मिले, तो उन्होंने कहा कि वे बहुत

*ये दोनों सज्जन दरबार में गये थे और स्वामीजी से मिले थे, परन्तु इस विशेष दिन सभा में उपस्थित थे या नहीं इसमें शंका है।

[१] 'बिरादरे हिन्द', लाहौर जनवरी १८७७।

[२] ज्ञान प्रदीप भाग ४ न. ३१–३२ जनवरी १८८५।

बातों में उनसे सहमत हूं, लेकिन एक बात उनकी समझ में नहीं आती कि बिना वेद का सहारा लिए धार्मिक शिक्षा कैसे दी जा सकती है।"[1]

ठीक यही बात थी। उन्होंने कहा था कि वेदों को आधार मानकर चलना ठीक होगा। इस बात पर मतभेद पैदा हुआ और सभा किसी निर्णय पर पहुंचे बिना भंग हो गई। यू बातचीत तो फिर भी कई दिन तक चलती रही थी। अचरज है, मर सैयद ने इस प्रस्ताव पर क्या कहा होगा? जरूर उन्होंने विरोध किया होगा, परन्तु यह बात माननेवाले हैं कि सर सैयद स्वामीजी का आदर ही नहीं करते थे बल्कि यह भी मानते थे कि जिस प्रकार स्वामीजी वेदों का अर्थ करते हैं, वही रीति ठीक है। स्वामीजी का अर्थ करने की रीति पर ही उन्होंने कुरान शरीफ के अर्थ करने पर जोर दिया है।

स्वामी दयानन्द जिस प्रकार की एकता चाहते थे वह नहीं हो सकती थी, क्योंकि वेदों को ईश्वरकृत मानना सबके लिए असम्भव था। इसमें स्वामीजी की एकता के लिए प्रबल इच्छा तो स्पष्ट है, परन्तु साथ ही यह भी स्पष्ट है कि वे व्यावहारिकता में बहुत निपुण नहीं थे, नहीं तो वेदों की मान्यता पर इतना जोर नहीं देते। लेकिन अचरज तो यह है कि उनके जीवन-काल में वह समय भी आया जब उन्होंने इस पर जोर नहीं दिया। तीन साल बाद दिसम्बर १८८० में उन्होंने मेंटगोमर्स चर्च आगरा के बिशप महोदय से कहा कि यदि हम और आप तथा अन्य धर्मों के बुद्धिमान नेता केवल उन बातों का प्रचार करें, जिन्हें सब मानते तो हैं तो एकता स्थापित हो सकती है और फिर मुकाबले पर नास्तिक ही रह जायगे। हमें विश्वास है, इसी बात पर यदि स्वामीजी १८७७ वाली सभा में जोर देते तो जरूर कामयाबी होती और यह देश साम्प्रदायिकता की खतरनाक चोटों से बच जाता।

अब तो यह कोरी कल्पना है और इसपर विचार करना व्यर्थ है। इन बिशप महोदय ने भी अन्य सुधारकों की भांति, स्वामी दयानन्द की बात स्वीकार नहीं की। स्वामीजी का यह प्रयत्न भी विफल गया। यह उनका अन्तिम प्रयत्न था, क्योंकि लगभग तीन साल बाद उनकी मृत्यु हो गई। लेकिन इस घटना से बहुत पहले उन्होंने इस प्रकार के प्रस्ताव ब्रह्मसमाज और प्रार्थना समाज के अधिकारियों के सामने रखे थे। रायबहादुर भोलानाथ साराभाई के जीवन-चरित में लिखा है :

"महान् सुधारक तथा आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती अपने विस्तृत प्रचार के सिलसिले में करीब सन् १८७४ के अन्त में अहमदाबाद पहुंचे। वहां के प्रार्थना समाज ने इस महापुरुष को अपनी वेदी पर से बहुत से धार्मिक तथा सामाजिक उपदेश करने का अवसर प्रदान किया। अपने अहमदाबाद के प्रवास-काल में स्वामीजी ने भोलानाथजी और महीपतरामजी के सामने यह प्रस्ताव रखा कि प्रार्थना समाज का नाम बदलकर आर्य समाज कर दिया जाय, क्योंकि दोनों संस्थाओं का अन्दरूनी उद्देश्य एक ही है। उदाहरण के तौर पर—दोनों ही मूर्तिपूजा के विरोधी हैं और अद्वैतवाद के समर्थक हैं, तो फिर नाम में क्या धरा है? भोलानाथजी ने इस बात पर गौर करने का वचन स्वामीजी को दिया। लेकिन उन्होंने अपनी सम्मति नहीं दी। वे सारी रात इस बात को घुमा फिरा कर सोचते रहे। अन्त में स्वामीजी के प्रस्ताव को अस्वीकार करने का ही निश्चय किया।"[1]

वह समय ऐसा विचित्र था कि स्वामीजी के अनेक बार इस प्रकार की बातें करने से अनेक पुरुषों को शंका पैदा हुई कि इसमें जरूर कोई चाल है। भोलानाथजी के जीवन चरित में आगे चलकर उन्हें डिप्ल मेटिक रिफार्मर कहा है। यहीं पर एक विचित्र बात भी लिखी है :

"एक समय भोलानाथ ने दयानन्द से कहा—स्वामीजी! आप वेद को ईश्वर-प्रणीत बताने का प्रयत्न करते हो, सो बुद्धिमान लोगों के सामने तो व्यर्थ

---

[1]श्री पी० एम० बसु द्वारा लिखित लाइफ एंड वर्क्स ऑव केशवचन्द्र सेन पृ० ३२८

[1]लाइफ ऑव रायबहादुर भोलानाथ साराभाई लेखक उनके पुत्र कृष्णराव भोलानाथ पृ० ७।

वार शास्त्रार्थ करने के कारण कटु है। कई स्थानों पर तो वे अस्वाभाविक रूप से उग्र हो उठे हैं, परन्तु साथ ही यह भी सत्य है कि ससार के लगभग सभी सुधारकों को तीव्र भाषा प्रयोग करनी पड़ी है। मध्य युग के सन्त भी अपवाद नहीं है। स्वामी दयानन्द जब बार-बार एकता के प्रयत्नों में असफल होते गये, तो स्वाभाविक रूप से उनका पक्ष वेद और वैदिक धर्म की ओर बढ़ता गया और जो कुछ भी उन्हें वेद के विरुद्ध लगा उसकी उन्होंने भरपूर कटु आलोचना की। परन्तु आलोचना करते समय उनमें द्वेष भाव नहीं था। उन्होंने प० हरिश्चन्द्र से कहा था— मेरा उद्देश्य सबको ऐसे आपस में मिलाना है जैसे जुड़े हुए हाथ। मैं चोर से लेकर ब्राह्मण में जातीयता की ग्लानि जगाना चाहता हू। मेरा खण्डन हित-सुधार के लिए है। [1]उन्होंने गिरजे में जाकर ईसाइयों का खण्डन किया था। कुरान का खण्डन करने के बावजूद अनेक मुसल्मान उनके अनन्य भक्त थे। लाहौर में आर्य समाज का जन्म एक मुस्लिम भद्र पुरुष के बगले पर हुआ था।

लेकिन फिर भी उन्हें गलत क्यों समझा गया? एक प्रसिद्ध महापुरुष से जब अन्तिम सदेश मागा गया, तो उसने यही कहा था कि 'मेरे अनुयायियों से खबरदार रहो।' इस वचन में बड़ा कटु सत्य है। किसी मत या धर्म के प्रवर्तक सत्य की खोज करनेवाले होते हैं, परन्तु उनके अनुयायी साप की तरह पृथ्वी में गड़े धन की रक्षा करते हैं। वे न स्वय महापुरुषों के सिद्धान्तों को परखते हैं, न दूसरों को परखने देते हैं। स्वय परखना विद्रोह है और दूसरों को परखने देना अधर्म का प्रचार है।

इसका परिणाम यह हुआ कि उनके अनुयायियों ने उनके उग्र स्वभाव और आलोचना शक्ति की नकल तो की, परन्तु इस बाहरी रूक्षता के पीछे जो प्रेम से छलकता हुआ कोमल हृदय, उदारता और चरित्र-बल था, उसे उन्होंने सदा के लिए स्वामी दयानन्द की चिता में जल जाने दिया।

और भी कारण हैं, परन्तु यहा उन कारणों पर विचार करना अप्रासंगिक है। यहा तो केवल यही दिखाना है कि किसी व्यक्ति और विचार को समझने के लिए उसे बार-बार हर पहलू से देखना उचित है। तब उसका वह रूप दिखाई देगा, जो एकदम नया है। वे देखेंगे कि पहले ही प्रस्तावित विचार और व्यक्ति से उनका मतभेद और विरोध है, परन्तु उसकी ईमानदारी और सचाई पर वे शका नहीं कर सकते।

टाल्स्टाय परम आस्तिक और गोर्की परम नास्तिक थे, परन्तु गोर्की ने टाल्स्टाय के लिए जो शब्द लिखे हैं, वे कितने सुन्दर और कितने सत्य हैं

"नास्तिक होते हुए भी मैंने किसी अज्ञात कारण वश खूब सावधान होकर लेकिन डरते-डरते उन्हें देखा और देख कर सोचा—यह मनुष्य तो परमात्मा जैसा है।"

[1]देखिये स्व० देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय रचित स्वामी दयानन्द का जीवन-चरित

हमें सब धर्मों के प्रति समभाव रखना चाहिए। इससे अपने धर्म के प्रति उदासीनता नहीं आती, बल्कि स्वधर्म विषयक प्रेम अधा न रहकर ज्ञानमय हो जाता है, अधिक सात्त्विक और निर्मल बनता है। सब धर्मों के प्रति समभाव आने पर ही हमारे दिव्य चक्षु खुल सकते हैं। धर्मांधता और दिव्यदर्शन में उत्तर-दक्षिण जितना अन्तर है। धर्मज्ञान होने पर अतराय मिट जाते हैं और समभाव उत्पन्न हो जाता है। इस समभाव के विकास से हम अपने धर्म को अधिक पहचान सकते हैं।

—मो० क० गांधी

राष्ट्र के नैतिक उत्थान में स्त्रियों का दायित्व

सुशीला नैयर

[महिलाओं के सर्वांगीण विकास को ध्यान में रख कर आज जो शिक्षा-संस्थाएं देश में चल रही हैं, उनमें हटूंडी (अजमेर) की 'महिला शिक्षा सदन' का अच्छा स्थान है। वहां बालिकाओं के जीवन में परिपूर्णता लाने के लिए ज्ञान, कर्म और कला का समन्वय साधने का प्रयत्न हो रहा है। इसी संस्था का आठवां वार्षिक अधिवेशन चर्खा-द्वादशी (४ अक्तूबर १९५३) को दिल्ली राज्य की स्वास्थ्य मंत्री डा. सुशीला नैयर की अध्यक्षता में हुआ था। यहां हम उनके महत्वपूर्ण अध्यक्षीय भाषण के कुछ अंश दे रहे हैं। —सम्पा०]

आज हमारे समाज में थोड़ी-सी स्त्रियों को शिक्षा का लाभ और सेवा के क्षेत्र में जाने का मौका मिला है। अधिकतर स्त्रियां आज भी काफी पिछड़ी हुई हैं। अगर हम लोग कुछ आगे बढ़ सके हैं तो उसका कारण यह था कि गांधीजी ने हमें यह सिखाया कि पशु-बल की नहीं, आत्म-बल की जरूरत है। गांधीजी ने स्वराज्य की लड़ाई में स्त्रियों को बराबर का स्थान दिया। स्वराज्य की लड़ाई चूंकि अहिंसा की लड़ाई थी, उसमें शस्त्र-बल की आवश्यकता न थी। इसका परिणाम यह हुआ कि स्त्रियों को भाइयों के साथ बाकायदा उस अहिंसा की लड़ाई में लड़ने का समान हिस्सा मिल सका और उनको कुर्बानियां भी उतनी ही हुईं, जितनी कि भाइयों की। परिणामस्वरूप हिन्दुस्तान आजाद हुआ। जब आजादी की लड़ाई में स्त्रियों ने बराबर का साथ दिया तो आजाद हिन्दुस्तान में स्त्रियों का स्थान आगे होना आवश्यक था। १९४४ के अन्त में जब गांधीजी जेल से रिहा हुए तो देश ने कस्तूरबा स्मारक फंड के लिए जो पैसा इकट्ठा किया था, वह भेंट किया। बापूजी ने वह सारी-की-सारी पूंजी स्त्रियों मुख्यत ग्रामीण स्त्रियों की सेवा, उनकी शिक्षा तथा उन्नति के अन्य साधनों पर खर्च करने का फैसला किया। बापूजी की यह भी इच्छा थी कि कस्तूरबा ट्रस्ट का काम जहां तक हो सके, बहनों के हाथ में हो, मगर उन्होंने यह भी कहा कि मैं नहीं चाहता कि बहनें, क्योंकि बहनें हैं इस नाते आगे आवें। मैं चाहता हूं कि बहनें काम करने के काबिल हों, जिम्मेदारी उठाने के लायक हों, इस नाते आगे आवें और अपना काम अपने कन्धों पर लें। पश्चिम में स्त्रियों की संस्थाएं स्त्रियों की संख्या के बल पर आगे बढ़ती हैं। लेकिन गांधीजी ने हमें सिखाया है कि नहीं, हम तो योग्यता के बल से आगे बढ़ेंगे। हम काम और जिम्मेदारी को अच्छी तरह से ले सकते हैं, और जब आप यह देख सकेंगे तभी हम उस जिम्मेदारी को उठाने के लिए आगे बढ़ेंगे और उसके अनुसार कदम रखेंगे।

स्त्रियों में कई एक गुण स्वाभाविक रूप से होते हैं, उनके अन्दर कई बातें रहती हैं। बापूजी ने इस पर बहुत ज्यादा जोर दिया है। उनका तो कहना था कि मैंने सत्याग्रह का पाठ बा से सीखा है। साथ ही वे यह भी कहा करते थे कि अहिंसा का बल स्त्रियों में कुछ अधिक स्वाभाविक रूप से आ जाता है। इसलिए जब हम नये हिन्दुस्तान की रचना कर रहे हैं और हम चाहते हैं कि हिन्दुस्तान की रचना प्रेम और सत्य पर आधारित हो जिससे कि हमारा जीवन-स्तर ऊंचा उठ सके तो आवश्यकता इस चीज की है कि हम अपने आपको इसके लिए पूरी तरह से तैयार करें। हिन्दुस्तान की स्त्रियों ने अपने स्वरूप और शक्ति को अपने सम्मुख रखा होता तो हिन्दुस्तान के टुकड़े होने के समय जो बुरे काम हुए, वे कभी न हो पाते। बुरा काम करने वाला आखिर किसी का भाई है, किसीका पति है। अगर वह बहन उसको रोकेगी, उसका हाथ पकड़ लेगी तो वह कभी ऐसा नहीं कर सकेगा, उसकी शक्ति ही नहीं रहेगी।

दो साल पहले मैं परदेश गई हुई थी। लौटते समय जर्मनी होकर आई। वहां एक किसान को मैंने हल चलाते हुए देखा। जो साहब मुझे दिखा रहे थे वह बताने लगे कि यह हमारे शहर में सबसे अधिक ईमानदार और सेवा-

भावी इसान है। मैं उससे बातें करने के लिए खडी हो गई। उन्होने बताया कि वह पहले नाजी फौज के सिपाही थे। फ्रास और दूसरे शहरो में वे विजयी नाजी फौजो के साथ गये थे मगर उनका मन टूट गया और वह वापस लौट कर, सिपाहीपन छोडकर, खेतीबाडी का काम करने लगे। मैंने मजाक में पूछा कि विजयी फौजें लूटमार किया करती हैं तो आपने भी खूब लूट-मार की होगी। वह समझ गये और बहुत गम्भीर होकर कहने लगे कि जब मैं पेरिस में गया तो हम लोगों को वहा एक बहुत बडे अमीर के घर में ठहराया गया। हम विजयी फौज के नौकर थे। उनकी अल्मारी वगैरा हमने खोल डाली और जिसके जो मन मे आया, लूट कर ले गया। मैंने बहुत खूबसूरत रूमालो का एक डिब्बा ले लिया और उसको अपनी मा के पास जर्मनी भेज दिया। लेकिन मा ने वह डिब्बा यह लिखकर वापस भेज दिया कि बेटा, तेरी मा चोरी का माल इस्तेमाल नही करती। मा के इस वाक्य ने मेरे मुह पर तमाचा-सा मारा। उसके बाद मैंने कभी कोई चोरी या लूट-खसोट नही की। मैं विजयी फौज के साथ तो जाता था, लेकिन मैंने सेवा करने का फैसला कर लिया था। कभी उपद्रवों में भाग नही लेता था। अब यहा हल चलाकर, खेती करके, रोटी खा रहा हू।

आज हम अपने देश में बहुत सुनते है और एक तरह की करुण आवाज निकल रही है कि देश का नैतिक स्तर नीचे गिर रहा है। हम जगह-जगह सुनते हैं कि जनता गाधीजी के मार्ग को भूल रही है। मैं ऐसा नही मानती। जनता कौन है? हम ही हैं और अगर हम ही गाधीजी के मार्ग को नही भूले तो कोई नही भूल सकता। लोग यह भी कहते हैं कि आज तो परिस्थिति कुछ प्रतिकूल है। गाधीजी के विचारो को अमल में लाने के लिए परिस्थिति अनुकूल नही है। यह भी एक सोचने जैसी बात है कि जब गाधीजी ने अपने विचारो को अमल मे लाना शुरू किया तो उस समय क्या परिस्थिति उनके अनुकूल थी? स्पष्ट है कि उस वक्त की निस्वत आज की परिस्थिति बहुत ज्यादा अच्छी है, बहुत ज्यादा अनुकूल है। मगर हमारे मन में दृढता होनी चाहिए और वह श्रद्धा और वह दृढता हमारी बहनो के मन में पैदा होना आवश्यक है।

आज जब हमारे यहा रिश्वतखोरी, कालेबाजारी होती है, बुरे काम होते है तो मैं अपनी बहनो से पूछती हू कि वे अपने भाई, अपने पति या अपने पुत्र को क्यो नही रोकती है, गलत काम करने से उनका हाथ क्यो नही पकडती हैं? वे उनसे क्यो नही पूछती कि यह पैसा किस तरह से, कैसे कमा कर लाये? इसके विपरीत वे सोचती हैं कि कोई बात नही, पैसा तो आ ही गया। अब इससे साडी खरीद लेंगे, जेवर बना लेंगे, शादी-व्याह में अच्छी तरह से खर्च करेंगे। उनको यह खयाल करना चाहिए कि यह पैसा किस तरह से आया है। अगर बहनें इस चीज पर कमर कस लें तो देश का नैतिक स्तर कभी नीचा नही होगा, सदा ऊचा ही रहेगा।

इसी तरह अगर वे इस बात पर कमर कस लें कि हम गाधीजी के विचारो को पीछे नही होने देंगी, हम देश के किसी नागरिक को गाधीजी के विचारों को भूलने नही देंगी, तो यह कभी हो नही सकता कि लोग गाधीजी के विचारो को भूल जायें।

●

स्त्रियो को हम पातिव्रत्य और सतीत्व का उपदेश देते आये है। सती स्त्रियों की हमने कितनी ही कथाएं गढ डाली हैं। सती की नामावली के श्लोक भी रचे गये हैं। परन्तु यह बात अच्छी तरह समझ लेने की जरूरत है कि यदि पुरुषो के बहुत बडे भाग में पत्नीव्रत की भावना शिथिल हो तो अत्यन्त सावधानी से सतीत्व की रक्षा करनेवाली स्त्रिया समाज में पैदा हो ही नही सकती।

—कि० घ० मशरूवाला

तीन जोगी

टाल्सटाय

एक धर्माचार्य जहाज पर कलकत्ते से जगन्नाथधाम की यात्रा को जा रहे थे। उस जहाज पर और बहुत से यात्री भी थे। समुद्र शांत था, वायु अनुकूल और मौसम सुहावना। यात्री लोगों को कुछ कष्ट नहीं था। मिल-जुलकर खाते-पीते, गीत गाते और चर्चा करते वह समय बिताते थे।

एक बार यह आचार्य डेक पर बाहर आये। वह इधर-उधर घूम रहे थे कि देखते हैं कि आगे जहाज के मुहाने पर कुछ लोग जमा हैं। बीच में उनके एक केवट समुद्र की तरफ इशारे से जाने क्या दिखाकर सुना रहा है। जिधर मछुए ने अंगुली उठाकर बताया था, धर्माचार्य भी ठहरकर उधर ही देखने लगे। लेकिन उन्हें कोई खास बात दिखाई नहीं दी। धूप से समुद्र की सतह ही चमकती दीखती थी। इसपर केवट की कहानी सुनने को वह पास आ गये। लेकिन उस आदमी ने उन्हें देखकर अपनी बात बंद कर दी और आदर भाव से प्रणाम किया। और यात्री भी संभ्रम से प्रणाम करके चुप हो गये।

"भाइयो," धर्माचार्य बोले, "मैं आपका कुछ हर्ज करने नहीं आया। यह भाई कुछ दिखाकर बतला रहे थे। सो मेरी भी सुनने की तबियत हुई कि क्या बात है?"

उनमें से एक यात्री जो औरों से साहसी थे, बोले "तीन साधुओं की बाबत यह हमें कह रहे थे।"

"कैसे तीन साधु?"

धर्माचार्य यह कहते हुए और आगे आ गये और वहां रक्खे एक बक्स पर बैठ गये।

"मुझे भी बताओ कैसे साधु? मैं जानना चाहता हूं। और तुम इशारे से दिखला क्या रहे थे?"

केवट ने आगे जरा दाहिनी तरफ इशारे से बतलाते हुए कहा "वह वहां छोटा टापू दीखता है न? जी, जरा दायें। जी, वही। वहां तीन जोगियों का वास है जो सदा आत्मा के उद्धार में लवलीन रहते हैं।"

"कहां, कौनसा टापू? मुझे तो कोई दीखता नहीं।" धर्माचार्य बोले।

"जी वह दूर। मेरे हाथ की तरफ देखिये। वह छोटा बादल दीखता है न, उसीके नीचे जरा दायें, एक बारीक लकीर-सी दिखाई देती है। जी, वही टापू है।"

धर्माचार्य ने ध्यान से देखा। पर आंखों को अभ्यास नहीं था, इससे धूप में चमकते पानी की सतह के सिवा उन्हें कुछ दिखाई नहीं दिया। बोले, "मुझे तो दिखाई नहीं दिया, पर खैर, वह साधु कौन हैं जो वहां रहते हैं?"

केवट बोला, "कोई संत लोग हैं, जोगी-ध्यानी। उनकी बाबत सुन तो मुद्दत से रक्खा था, पर दर्शन पारसाल से पहले नहीं किये।"

फिर केवट ने अपनी कथा सुनाई कि एक बार मैं नाव लेकर दूर निकल गया। इतने में रात हो गई। दिशा का ध्यान मैं सब भूल गया। आखिर उस टापू पर जाकर लगा। सवेरे का समय था। यहां-वहां भटक रहा था। इतने में मिट्टी की बनी हुई एक कुटिया मुझे मिली। उसके पास एक बूढ़े पुरुष खड़े हुए थे। तभी अन्दर से दो पुरुष और भी आ गये। सबने मिलकर वहां खिलाया-पिलाया और मेरी नाव ठीक करने में मदद की"।

धर्माचार्य ने पूछा "वे साधु दीखते कैसे हैं?"

"एक तो नाटे कद के हैं और कमर उनकी झुकी है। वह एक कफनी-सी पहने रहते हैं और बहुत बुड्ढे हैं। मैं समझूं, सौ से तो काफी ऊपर होंगे। उनकी इतनी उमर हो गई है कि सफेद दाढ़ी कुछ हरी पड़ती जा रही है। पर चेहरे पर सदा उनके मुस्कराहट रहती है। और चेहरा ऐसा है कि देवता-स्वरूप। दूसरे उनसे लंबे हैं। लेकिन उनकी भी अवस्था बहुत है। वह फटा-टूटा देहाती ढंग का कुर्ता पहने रहते हैं। दाढ़ी उनकी भरी है और कुछ पीले भूरे रंग की है। काया के खूब मजबूत। मैं उनकी भला क्या मदद कर सकता कि उन्होंने तो मेरी डोंगी को ऐसे पलट दिया जैसे वह

कोई ढोल्ची हो। वह भी हसमुख रहते हैं और चेहरे पर दयाभाव दीखता है। तीसरे का डील खासा है और दाढी बरफ सी सफद घुटनो तक आ रही है। सौम्य दीखते हे ओर सस्त। भव घनी, आखो पर झूल्ती मालूम होती है और वह बस कमर से एक चटाई का टुकडा ल्पेट रहते हैं।

'वे तुमसे कुछ बोले भी ?" धर्माचार्य ने पूछा।

अधिकतर तो वे सब काम चुप रहकर ही करते है आपस में भी बहुत ही कम बोल्ते हैं। देखकर ही तीनो एक-दूसरे को समझ जाते हे, जैसे आख से ही बोल लेते हैं। जो सबसे ज्यादा डील के हे उनमे मैंने पूछा कि आप क्या यहा बहुत काल से रहते हैं ? सुनकर उनकी भवो में सिकुडन आई और जैसे नाराजी में कुछ गुनगुनाया। लेकिन जो सबसे वृद्ध थे, उन्होंने उनका हाथ अपने हाथ मे लिया और मुस्कराने लगे। तब उनका गुस्सा भी एकदम शात हो गया। उन बूढों के मुह से इतना निकला, "हमपर दया रक्खो।' और कहकर मुस्करा दिये।

केवट यह कथा सुना रहा था कि टापू पास आने लगा।

उन साहसी आदमी ने उगली से दिखाकर कहा 'अब श्रीमान देखें तो टापू साफ नजर आ सकता है।"

धर्माचार्य ने देखा। सचमुच एक काली लकीर-सी दीखती थी। वही टापू। कुछ देर उधर देखते रहकर आचार्य वहा से आये और जहाज के बडे माझी से पूछा, "वह कौन टापू है ?"

"वह?" उसने कहा, "उसका कोई नाम तो नही है। ऐसे तो यहा बहुतेरे टापू हैं।"

"क्या यह सच है कि वहा अपनी आत्मा के उद्धार के लिए तीन फकीर रहते है ?"

"ऐसा सुनता तो हू महाराज। पर मालूम नही यह सच हैं या क्या। मल्लाह लोग कहते हैं कि उन्होंने उन्हे देखा है। पर कौन जाने कि अपना मनगढ़त उन्हें दीख तक भी जाता हो।"

"हम उस टापू पर जाना चाहते हैं और उन आदमियो को देखना चाहते हैं," धर्माचार्य ने कहा। "क्या यह हो सकता है ?"

उसने जवाब दिया कि ठेठ टापू तक तो जहाज जा नही सकता। हा, नाव से आप जा सकते हैं। उसके लिए कप्तान से बोल्ना होगा।

धर्माचार्य ने कप्तान को बुला भेजा। कप्तान के आने पर कहा, "मैं उन फकीरो को देखना चाहता हू। क्या मुझे किनारे पहुचाया जा सकता है ?"

कप्तान ने कहा, "जी हा, पहुच तो सकते हैं। पर इसमें देर हो जायगी और गुस्ताखी न हो तो मैं श्रीमान को कहू कि वे लोग एसे नही है कि श्रीमान उनके लिए कष्ट उठायें। सुना है, वे बुड्ढे एकदम नादान है। न कुछ समझते है, न जानते हैं और बेजुबान एसे है जैसे जलचर मछली।"

धर्माचार्य ने कहा, 'खैर, हम देखना चाहते हैं। देर की और कष्ट की चिन्ता न कीजिए। खर्च की भरपाई हमारे हिसाब से कर लीजियेगा। लाइए, मुझे एक नाव दीजिए।"

अब और क्या हो सकता था। लाचार वैसा ही हुक्म दे दिया गया। बादबान फिरे और जहाज को टापू की तरफ मोड दिया गया। आगे सामने कुर्सी ला रक्खी गई। धर्माचार्य वहा बैठकर आगे देखने लगे और यात्री भी आसपास इकट्ठे हो गये और टापू की तरफ ताकने लगे। आख जिनकी तेज थी उन्हें जल्दी ही टापू के किनारे के पेड-पहाडिया दीख आई। वहा एक मिट्टी की झोपडी भी दीखी। आखिर एक आदमी को खुद वह फकीर भी दिखाई दिये। कप्तान ने दूरबीन निकाली और उसमें से देखा। देखकर दूरबीन धर्माचार्य के हाथो में दी। बोला 'सचमुच तीन आदमी किनारे के पास खडे तो हैं। वहा, वह जरा चट्टान के बाई तरफ।"

धर्माचार्य ने दूरबीन लेकर ठीक-ठीक लगाकर उसे देखा कि हैं तो तीन आदमी। एक लबा है, दूसरा औसत कद का और एक नाटा, छोटा और कुबडा हुआ है। तीनो एक-दूसरे का हाथ पकडे किनारे खडे हैं।

कप्तान ने धर्माचार्य से कहा कि जहाज इससे आगे नही जा सकता। अगर श्रीमान किनारे जाना चाहते हैं तो नाव पर जा सकते हैं। हम यहीं लगर डाले रहेंगे।

लंगर डाल दिया गया। पाल ढीले हो गये और जहाज झटके के साथ रुक गया। फिर नाव नीचे उतारी गई और खेनेवाले मल्लाह पतवार लेकर उस पर तैयार हो बैठे। तब धर्माचार्य भी उतर कर वहां अपने आसन पर आ बैठे। मल्लाहों ने खेना शुरू किया और नाव किनारे की तरफ बढ़ चली। कुछ दूर से उन्हें तीनों आदमी साफ दिखाई दे आये। जो सबसे लंबा था, कमर से चटाई लपेटे था। उससे छोटा फटा-टूटा देहाती कुर्ता पहने था और नाटा जिसकी उम्र बहुत थी और कमर झुकी थी, सनातनी कफनी में था। तीनों हाथों में हाथ रक्खे खड़े थे।

मल्लाहों ने नाव किनारे लगाई और धर्माचार्य के उतरने तक उसे थामे रक्खा।

तीनों बुड्ढों ने आचार्य को झुककर नमस्कार किया। धर्माचार्य ने आशीर्वाद दिया। आशीर्वाद पाकर वे और भी नीचे झुक आये।

तब धर्माचार्य उन्हें कहने लगे "मैंने सुना है कि आप सज्जन पुरुष अपनी आत्मा के उद्धार के हेतु यहां रहते हैं और भगवान से स्व-पर कल्याण की प्रार्थना करते हैं। मैं भगवान का एक तुच्छ दास हूं। उनकी कृपा और आदेश से जगत के प्राणियों को सन्मार्ग बताने का काम करता हूं। मेरी इच्छा हुई कि आप भगवान के सेवक हैं, सो आपके पास आकर जो बने आपकी सहायता करूं और जनता को बताऊं।

वे तीनों वृद्ध इस पर मुस्कराकर एक-दूसरे को देखने लगे और चुप रहे।

धर्माचार्य ने कहा, "मुझे बताइये कि आप लोग अपनी आत्मा की रक्षा के निमित्त क्या करते हैं? और इस द्वीप पर परमात्मा की सेवा-साधना किस प्रकार करते हैं।"

इस प्रश्न पर दूसरा फकीर मंद भाव से अपने सबसे वृद्ध साथी को देख उठा। इसपर वह पुरातन पुरुष मुस्कराया और बोला, "ईश्वर की सेवा तो हमको मालूम भी नहीं है। ईश्वर के दूत, हम तो सब अपने को पाल लेते हैं और अपनी सेवा कर लेते हैं।"

"लेकिन ईश्वर की प्रार्थना आप किस प्रकार करते हैं?"

"प्रार्थना! हम तो इस तरह कहते हैं तीन—तुम, तीन हम। हमपर दया रखना मालिक।"

यह कहने के साथ तीनों ने आकाश की तरफ आंख उठाईं और एक आवाज से दुहराया—"तीन तुम, तीन हम। हम पर दया रखना मालिक।"

धर्माचार्य मुस्कराये, बोले, "मालूम होता है आपने त्रिमूर्ति और त्रिगुणात्मक की कोई बात सुनी है। लेकिन आपकी प्रार्थना सही नहीं है। आप सत पुरुषों ने मेरा प्रेम जीत लिया है। आप ईश्वर की प्रसन्नता चाहते हैं, किंतु ईश्वर की सेवा का मार्ग आपको ज्ञान नहीं है। प्रार्थना की वह विधि नहीं है। देखिये, सुनिए मैं आपको बताता हूं। मैं कोई अपनी विधि नहीं बतला रहा हूं। शास्त्रों में सब प्राणियों के मंगल के लिए प्रार्थना की जो विधि विहित है, वही मैं आपको सिखाना चाहता हूं।"

कहकर आचार्य ने धर्म का तत्व उन फकीरों को समझाना शुरू किया कि कैसे परम पुरुष एक है, वही द्विधा होता है। फिर किस प्रकार प्रकृति, पुरुष और आदि बीज पुरुष, यह त्रिविध रूप परमात्मा का संपूर्ण स्वरूप कहाता है।

ईश्वर ने पृथ्वी पर अवतार धारण किया कि धर्म की रक्षा हो। उन अवतारों की वाणी से हमें प्राप्त हुआ है कि ईश्वर की कैसे प्रार्थना करनी चाहिए। सुनिए, मेरे साथ साथ बोलिए

"हे परम पिता!"

"हे परम पिता!" पहले वृद्ध ने दोहराया।

"हे परम पिता!" दूसरे ने कहा।

फिर तीसरे ने कहा, "हे! हे परम पिता!"

"जिनका कि आकाश में वास है।"

"जिनका कि आकाश में वास है", पहले साधू ने दोहराया।

लेकिन दूसरा फकीर कहते-कहते भूल गया और तीसरे से उन शब्दों का उच्चारण ही ठीक नहीं बन पड़ा। उसके मुंह पर बाल बहुत घने थे, इससे आवाज साफ नहीं निकलती थी। सबसे वृद्ध वह पुरातन संत भी दांत न होने की वजह से शब्दों को पूरा-पूरा और सही नहीं बोल पाते थे।

धर्माचार्य ने प्रार्थना फिर दोहराई और फिर फकीरो ने उसे तिहराया। आचार्य वहा एक पत्थर पर बैठे थे, सामने तीनो बूढे जोगी खडे थे। वे आचार्य के मुह की हरकत को देख-देखकर उन्हीकी तरह प्रार्थना के शब्दो का ठीक-ठीक उच्चारण करने की कोशिश करते थे। धर्माचार्य ने दिन भर प्रयत्न किया। एक एक शब्द को बीस-बीस और कोई-कोई तो सौ-सौ बार दोहराया। पीछे-पीछे ये साधु बोलते थे। बार-बार वे लडखडाते, भूलते और गलत चलते। लेकिन हर बार धर्माचार्य उन्हे सुधार देते थे और फिर नई बार शुरू करते थे। आचार्य ने परिश्रम से जी नही मोडा। आखिर उस ईश-प्रार्थना को अब जोगी आचार्य के बिना भी पूरी-की-पूरी बोल सकते थे। सबसे पहले प्रार्थना उस मझले जोगी ने सीखी। उन्हे याद हुई कि फिर आचार्य ने उन्हीको बार-बार दोहराने को कहा। सो आखिर बाकी दोनो को भी वह कठ होती गई। प्रार्थना सीख गये, तब आचार्य ने शाति पाई।

अब अधियारा हो चला था और चाद ऊपर दीखने लगा था। अब धर्माचार्य ने अपने जहाज पर लौट चलने की सोची। चले उस समय उन बुड्ढो ने उनके सामने धरती तक झुककर दडवत किया। धर्माचार्य ने बडे प्रेम से उन्हे ऊपर उठाया और सबको गले लगाया। कहा कि आप लोग इसी तरह प्रार्थना किया कीजिएगा। अन्त में वह नाव पर सवार होकर अपने जहाज को लौट चले। नाव में बैठे थे और मल्लाह नाव को जहाज की तरफ खे रहे थे, तब भी उन्हें फकीरो की आवाज सुन पडती रही। वे आचार्य की सिखाई प्रार्थना जोर-जोर से दुहरा रहे थे। नाव जहाज से आकर लगी। उस समय उनकी आवाज तो नही सुन पडती थी। पर चाद की चादनी में वे ज्यो-के-त्यो खडे हुए वहां अब भी दिखलाई देते थे। सबसे छोटे बीच में थे, मझले बायें और लबे कद के जोगी दायें थे। धर्माचार्य के पहुचने पर जहाज का लगर उठा दिया गया। पाल खुल गये और जहाज उद्यत हो गया। बादबानो में हवा भरनी थी कि जहाज चल पडा। धर्माचार्य पीछे बैठकर जहा से आये थे, उस द्वीप के तट को देखते रहे। कुछ देर तक तो वे तीनो साधू निगाह में रहे। कुछ देर बाद वे ओझल हो गये। द्वीप का किनारा फिर भी कुछ काल दीखता रहा। फिर शनै-शनै वह भी मिट गया।। अब बस समुद्र की लहराती चादी की सतह चाद की चादनी में चमकती दीखती थी।

यात्री लोग जहाज पर सो गये थे। चारो ओर शाति थी। पर आचार्य की सोने की इच्छा नही हुई। वह अपनी जगह अकेले बैठे समदर में उसी तरफ देख रहे थे जहां पर वह टापू था, पर जो दीख नही रहा था। उन्हें उन जोगियों की याद आती थी—"कैसे सज्जन सत प्राणी थे वे और ईश प्रार्थना को सीखकर कैसे कृतार्थ मालूम होते थे।" उन्होंने प्रभु को धन्यवाद दिया कि प्रभु ने बडी कृपा की कि ऐसे सज्जन पुरुषो की सहायता का अवसर मुझे दिया और मुझे उन लोगो को वैदिक प्रार्थना सिखाने का सौभाग्य मिला।

आचार्य इस तरह सोचते हुए एकटक समुद्र की सतह पर निगाह डाले उस टापू की दिशा में मुह करके बैठे थे। चादनी चमक रही थी। लहरे यहा-वहा किल्लोले लेकर कभी धीमी आवाज से खिलखिला कर हस पडती थी। ऐसे ही समय अकस्मात क्या देखते है कि चाद की किरणो से समुद्र के पानी पर जो चमकीली राह-सी बन आई है, उसपर कोई सफेद झकझकाती वस्तु बढती आ रही है। क्या है? समुद्री कोई जतु है, या कि किसी किश्ती के छोर में लगी धातु ही ऐसी झलक रही है? अचरज से आचार्य की आखें उसपर गड गईं।

उन्होने सोचा कि जरूर यह कोई नाव हमारे पीछे आ रही है। लेकिन यह तो बडी तेजी से बढ़ी आ रही है। मिनट भर पहले वह जाने कितनी दूर थी अब कितनी पास आ गई है। नहीं, नाव नहीं हो सकती। पाल तो कही दीखते ही नही है। जो हो, वस्तुत वह कोई हमारे पीछे आ रही है और हमें पकडना चाह रही है।

लेकिन चीन्ह न पडता था कि क्या है। नाव नही, पक्षी नही, समुद्री कोई जन्तु नही। आदमी? लेकिन आदमी इतना बडा कहा होता है। फिर वहा समुद्र के बीच आदमी कहा से आ जाता? धर्माचार्य उठे और बडे माझी से बोले, "देखो तो भाई, वह क्या है?"

धर्माचार्य को मानो दीखा तो कि वे तो, तीनों ही साधु मालूम होते हैं और पानी पर दौड़ते चले आ रहे हैं। दाढ़ी उनकी चमक रही है और खुद चांदनी की भांति उज्ज्वल दीखते हैं।

पर देखकर भी, जैसे आंखों का भरोसा न हो, आचार्य ने दुहराया, "क्या है? क्या चीज है वह माझी?"

लेकिन साधु तो ऐसी तेजी से बढ़े आ रहे थे कि जहाज मानो चल ही न रहा हो, उनके आगे बिलकुल स्थिर पड़ गया हो।

माझी तो उन जोगियों को उस भांति पानी पर चला आता देखकर वहशत के मारे सब भूल गया और पतवार से हाथ छोड़ बैठा। बोला—

"बाबा रे, वे जोगी तो हमारे पीछे ऐसे भागे आ रहे हैं कि मानो पांव तले उनके सूखी धरती ही हो।"

माझी की आवाज सुनकर और यात्री भी जाग उठे और सब वहीं घिर आये। देखा तो तीनों साधु हाथ में हाथ डाले चले आ रहे हैं और उनमें आगे के दो जहाज को ठहरने को कह रहे हैं। अचभा देखो कि बिना पैर चलाये पानी की सतह पर वह तो चलते चले ही आ रहे हैं। जहाज ठहर भी न पाया था कि साधु आ पहुंचे। सिर उठाकर तीनों मानो एक स्वर से बोले, "हे उपकारक, ईश्वर के सेवक, हम लोगों को तुम्हारी सिखाई प्रार्थना याद नहीं रही है। जबतक दोहराते रहे, वह याद रही। जरा रुके कि एक शब्द ध्यान से उतर गया। फिर तो सारी कड़ी ध्यान से बिखर कर गिरती जा रही है। अब उसका कुछ भी ओर-छोर हमें याद में पकड़ नहीं आता। हे गुरुवर, हमें प्रार्थना फिर सिखाने की कृपा कीजिये।"

आचार्य ने सुनकर मन-ही-मन में राम-नाम का स्मरण किया और कहा, "हे सत पुरुषों, आपकी अपनी प्रार्थना ही ईश्वर को पहुंच जायगी। मैं आपको सिखाने योग्य नहीं हूं। मेरी विनय है कि मुझ पापी के लिए भी आप प्रार्थना कीजिएगा।"

कहकर आचार्य ने उन वृद्ध जनों के आगे धरती तक झुककर नमस्कार किया। वे जोगी फिर लौटकर समुद्र पार कर गये और जहां वे आंख से ओझल हुए, सवेरा फूटने तक वहां प्रकाश जगमगाता रहा।

अमर ज्योति

श्रीमन्नारायण अग्रवाल

हमारे देश में लड़कों के लिए तो काफी संस्थाएं हैं, लेकिन बच्चियों और बहनों के लिए बहुत कम अच्छी संस्थाएं हैं। जब हमको इस हिंदुस्तान को एक नया हिन्दुस्तान बनाना है, तो आधी से भी ज्यादा संख्या को अलग नहीं छोड़ सकते। मैं बहनों की शिक्षा को बहुत महत्व देता हूं। मुझे एक छोटा-सा किस्सा याद आता है। एक राजा था। उसका छोटा-सा राज्य था। उसके शहर में अन्धेरा रहता था। उसने एक दिन सभी पुरुषों को बुलाया और उनको एक-एक लालटेन दी कि तुम इसे अपने-अपने घर ले जाओ और जलाओ। मेरे शहर में अन्धेरा नहीं रहना चाहिए। सब लोग आए, खुशी से लालटेन ली और राजा को इसके लिए धन्यवाद दिया। उस शहर में कुछ दिन रोशनी रही। बाद में एक दिन राजा ने अपने महल से देखा कि शहर में फिर अन्धेरा है, सारे घरों में उजाला नहीं है तो उसने पूछा कि क्या बात है? मैंने तो हरएक को एक-एक लालटेन दी थी। फिर अन्धेरा कैसे? वजीर ने उत्तर दिया कि जितने पुरुष थे वे तो लड़ाई पर चले गये। बहनें लालटेन जलाना जानती नहीं। इस पर राजा ने सोचा कि उससे बड़ी गलती की कि जो बहनों को लालटेन देने के बजाय पुरुषों को दी। फिर उसने अपने यहां की जितनी बहनें थीं, उनको बुलाया और अपनी रानी से कहा कि इन बहनों को तुम लालटेन जलाना सिखाओ। ये सीख जायगी तो फिर हमारे शहर में अन्धेरा नहीं होगा। वैसा ही हुआ। बहनों ने वह ज्योति चलाई तो फिर वह नहीं बुझी। हरएक को समझना है कि जो शिक्षा बहनों को दी जाती है वही शिक्षा हमारे काम आयगी।

दो राष्ट्रपुरुष

अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार

आधुनिक भारत के निर्माताओं में जिन्होंने अपना जीवन पूर्णतः जनसेवा के लिए अर्पित कर दिया, उनमें महामना मदनमोहन मालवीय और पंजाबकेसरी लाला लाजपत राय के नाम सहसा सामने आ जाते हैं। तरुणाई से ही जिन्होंने सेवा को अपना 'जीवन धर्म' बना लिया और सरकारी नौकरी का जिन्होंने कभी स्वप्न भी नहीं लिया उनमें इन दोनों का नाम सबसे पहले लिया जायगा।

दोनों ने अध्यापक से अपना जीवन आरम्भ किया, दोनों संपादक हुए, वकील हुए, दोनों ने शिक्षणालय स्थापित किए, केन्द्रीय असेम्बली के सदस्य हुए और दोनों ने देश के सांस्कृतिक जीवन के पुनरुद्धार का सतत उद्योग किया। इस प्रकार दोनों ने अपना प्रत्येक पल देश की सेवा में उत्सर्ग किया। दोनों का जीवन त्याग और बलिदान का एक अनुपम उदाहरण है। किंतु दोनों सहयोगी होकर भी भिन्न-भिन्न मार्ग के पथिक थे। एक यदि समझौता करके कम-से-कम, विरोध जगाकर सबको साथ लेकर चलना पसन्द करता था, तो दूसरा निर्भयता और निडरता के साथ प्रतिपक्षियों को चुनौती देते हुए आगे बढ़ता था। एक पतित पावनी गंगा के समान शांत गम्भीर, पर प्रवाहमय था, तो दूसरा ब्रह्मपुत्र के समान उद्दामवेग से सबको आप्लावित करता हुआ आगे बढ़ता था।

वेद व्यास ने यदि 'महाभारत' लिखा है तो इस युग के व्यास ने हिन्दू विश्वविद्यालय रूपी महान् काव्य रचा है, जो एशिया भर में न केवल अनुपम और विशाल है, पर भारत के इस प्राचीन दावे की स्मृति दिलाता है कि भारत जगद्-गुरु है।

मालवीयजी की हार्दिक इच्छा थी कि विश्वविद्यालय की शिक्षा का माध्यम हिन्दी हो, पर विदेशी सरकार इस अवस्था में 'चार्टर' देने को तैयार नहीं थी। पंजाब केसर ने एक भाषण में कहा था, "चार्टर मिले या न मिले, पर हिन्दू विश्व विद्यालय अवश्य स्थापित होगा।" उसी सभा में महामना ने कहा, "'चार्टर' और चार्टर और हिन्दू विश्वविद्यालय अवश्य स्थापित होगा।" दोनों नेताओं की मनोवृत्ति और कार्यप्रणाली का अन्तर इससे स्पष्ट है।

दोनों की मूल प्रेरणा और शक्ति का स्रोत धर्म और भारत का प्राचीन गौरव था। यदि एक कुल-परम्परा और सदियों के चिरसंचित संस्कार के कारण हिन्दू समाज और हिन्दू जाति का उत्कर्ष चाहता था, तो दूसरा महर्षि दयानन्द सरस्वती से युवावस्था में प्रभावित हुआ और 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' उसका आदर्श वाक्य हुआ और ऋषि द्वारा स्थापित 'पाखण्ड खण्डिनी पताका' ने उसका मार्ग बनाया। दोनों ने स्वाधीनता संग्राम में अपने को होम दिया। परन्तु उनके सामने भविष्य का भारत नहीं था, बल्कि प्राचीन भारत था, जब तक्षशिला और नालन्दा आदि विश्वविद्यालय यहां थे, दूर-दूर देशों से छात्र यहां पढ़ने आते थे, घर-घर यज्ञ होते थे, वेदोपनिषदों का पठन-पाठन होता था और भारत का राज्य, भारत की सभ्यता और संस्कृति हिन्दू महासागर और अरब सागर की उत्तुंग लहरों को पारकर कार्पेज से लेकर फिलीपीन तक फैली हुई थी। प्राचीन भारत का यह चित्र उन दोनों को स्वाधीनता संग्राम के महान् यज्ञ में सर्वस्व स्वाहा करने की प्रेरणा देता था।

एक को महाभारत, भागवत और गीता का पाठ शक्ति और बल देते थे। विदेशी वातावरण में रहते हुए भी विदेशी प्रभाव से वह मुक्त था। इंग्लैंड में भी उसको भारत की मिट्टी और गंगा जल चाहिए था। स्वजाति के हाथ का बनाया भोजन चाहिए था। पूजा-पाठ और सन्ध्यावन्दन आदि धार्मिक नियमों का कड़ाई से पालन करता था।

इसके मुकाबले लालाजी वर्षों अमरीका रहे। गैरिबाल्डी और मेजिनी ने उनको प्रभावित किया और राष्ट्र

पूजा को ही अपना धर्म मानते थे। पजाब केसरी ने अपने को प्रभावित करनेवाले तीनों महापुरुषों का जीवन चरित लिखा और 'दयानन्द एंग्लो वैदिक कालेज' की स्थापना में योग दिया और इसके लिए भिक्षा की झोली गले में डाली।

दोनों ने हिन्दू महासभा की स्थापना की। दोनों चाहते थे—

१. हिन्दू-समाज के समस्त पंथों और वर्गों में पारस्परिक प्रेम बढ़ाना और सबको सगठित करके एक बनाना।

२ पर धर्मवालों से परस्पर सद्भाव बढ़ाकर भारत को एक स्वयशासित राष्ट्र बनाने का प्रयत्न करना।

३ हिन्दू-जाति के निम्न वर्गों को ऊंचा करना।

४ हिन्दुओं के हितों की जहा आवश्यकता पडे रक्षा करना।

५ हिन्दुओं का सख्या-बल कायम रखना और उसे बढ़ाना।

दोनो प्राचीनता की नीव पर नवीन भवन खड़ा करना चाहते थे। दोनों मानवता के सच्चे पुजारी थे। महामना ने कहा :

"मैं मनुष्यता का पूजक हूं, मनुष्यत्व के आगे मैं जात-पात नहीं मानता।

"मंदिर अथवा मसजिद नष्ट-भ्रष्ट करने से धर्म की श्रेष्ठता नहीं बढती। ऐसे दुष्कार्यों से परमेश्वर प्रसन्न नहीं होता।

"हिन्दू और मुसलमान दोनों में जबतक प्रेम भाव उत्पन्न न होगा, तबतक किसी का भी कल्याण नहीं होगा।"

परन्तु यह उनको शुद्धि करने से नहीं रोकता था, क्योंकि महामना का कहना था :

"क्रमशः घटते-घटते आज हम लोगों में से साढे छ करोड हिन्दू पर-धर्म में चले गए।

"प्राचीन काल में ऋषियों ने अनार्यों को आर्य और सभ्य बना लिया था। अतः जो लोग स्वेच्छा से हिन्दू-धर्म स्वीकार करना चाहें, उन्हें ऐसा करने का अधिकार है।"

दोनों समाज सुधारक थे। पर दोनों में एक अन्तर था। एक सारे हिन्दू समाज को अपने साथ लेकर आगे बढ़ता था। हरिजनों को महामना १९३० तक गायत्री मंत्र की दीक्षा देने को तैयार नहीं हुए। यदि वे दूसरी गोलमेज कान्फ्रेंस में न जाते और डा. अम्बेडकर का यह प्रश्न उनके सामने न आता—'मालवीयजी कहते हैं कि अम्बेडकर उनका भाई है। क्या वे मेरे हाथ का दिया पानी पीने को तैयार हैं," तो शायद ही वे रामनाम की दीक्षा देने से आगे बढ़ते। पर लालाजी को अछूतों को वेद पाठ करने का अधिकार देने और यज्ञोपवीत देने में कोई हिचक नहीं हुई। ऋषि दयानन्द के शिष्य और पजाब की हवा में पले व्यक्ति के लिए एक छलांग में सारी दूरी को पार करना सरल था। पर गंगा-यमुना के तट पर पले व्यक्ति के लिए सदियों के चिरसचित सस्कार, सामाजिक परम्पराओं और रूढ़ियों का तोड़ना एका-एक सभव नहीं था।

दोनों प्रथम श्रेणी के धर्म-प्रचारक थे। एक ने यदि भारत धर्म महामण्डल, सनातन धर्म सभा, महावीर दल की स्थापना की, तो दूसरे ने आर्य समाजों और डी. ए वी स्कूलों का जाल बिछाने में अपने जीवन का एक बड़ा भाग लगाया। वाणी और भाषण पर दोनों का एक समान अधिकार था। पर एक को अपने भाषण का उत्कर्ष प्रकट करने के लिये हजारों की सख्या में श्रोता चाहिए थे। पजाब केसरी की गर्जना उससे पहले अपने असल रूप में नहीं आती थी। कौंसिलों की दीवारों की सीमा उसमें बाधक थी। पर मधुर-भाषी महामना के लिए कौंसिल, कमेटी और त्रिवेणी तट की विशाल सभाएं सब एक समान थीं। उनके भाषणों में माधुर्य और सरसता भी होती थी। विरोधी का जी दुखाये बगैर वह उसके प्रहारों का उत्तर देते थे। लालाजी इसके विपरीत सारी शक्ति से विपक्षी पर प्रबल हमला करते थे। फलतः महामना दोनों पक्षों के एक समान विश्वासपात्र और स्नेहभाजन बने रहते थे।

कागड़ा में भूकम्प आने पर, गढ़वाल में दुर्भिक्ष पड़ने पर लालाजी ने विपत्तिग्रस्तों की जिस प्रकार की सेवा की थी, उससे जनता का हृदय उन्होंने जीत लिया था।

महामना ने तो 'सेवा समिति' की स्थापना कर और वाल्चर आदोन्न को जन्म देकर सेवा का क्षेत्र बहुत विस्तृत बना दिया था।

अदालतो में नागरी लिपि का प्रवेश कराने के लिए महामना न जो आदोल्न किया, ले गवर्नर को इस विषय में जो स्मृति पत्र तैयार करके दिया, वह आज भी एतिहासिक वस्तु है। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी और हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग महामना के प्रयत्नो एव प्ररणा के फल है। पजाब में उर्दू ने यदि हिन्दी को मिटा नही दिया और हिन्दी का पठन-पाठन स्कूलो में चलता रहा तो इसका कुछ श्रेय लालाजी को भी प्राप्त है।

राजनीति म दोनो एक सस्था म रहते हुए भी प्रारम्भ में दो पक्षो में थे। एक समय भारत का आकाश 'लाल-बाल-पाल' के नाम से गूजता था। पजाब जब 'पगडी सम्भाल जट्टा' के गीत से गूजता था, उस समय लाला-जी शिखर पर थ और सरकार ने केसरी को 'माण्डले के किले' म बन्द करके रखने में अपनी कुशल समझी। सूरत-काग्रस म झगडा इसी कारण हुआ कि काग्रेस का गरम दल लालाजी को सभापति बनाना चाहता था। महामना नरम दल के एक स्तम्भ थे।

महामना काग्रेस का विरोध करके भी सदा काग्रेस में रहे। प्रिंस आफ वेल्स का काग्रस ने बहिष्कार किया। परन्तु हिन्दू विश्व विद्यालय में उसका स्वागत हुआ। महामना कालेजो के बहिष्कार के विरोधी थे। वे कौंसिलो के बहिष्कार के भी विरोधी थे। पर जब १९३० में काग्रेस पार्टी एसेम्बली छोड गई तो महामना भी बाहर आ गए। काग्रेस कार्य समिति के सदस्य होकर जेल भी गए।

असहयोग आदोल्न जब ठण्डा पड गया, राष्ट्रीयता की भावना बन्द हो गई और उसका स्थान साम्प्रदायिकता ने ले लिया, मुस्लिम लीग ने साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की माग को छोडने से इकार किया, तब दोनो एक मच पर दिखाई दिए। इण्डिपेंडेण्ट काग्रेस पार्टी की दोनो ने स्थापना की, क्योकि दोनो का विश्वास था कि काग्रेस हिन्दू हितों की रक्षा करने में असमर्थ है।

पर साइमन कमीशन का बहिष्कार इन दोनो को पुन काग्रेस में ले आया। केन्द्रीय असेम्बली में साइमन कमीशन का बहिष्कार करने का प्रस्ताव लालाजी ने ही पेश किया था। उस समय उनका जो भाषण हुआ था, वह महामना द्वारा 'इम्पीरियल कौंसिल' में 'इडेमनिटी बिल' के विरोध में लगातार तीन दिन तक दिए गये ऐति-हासिक भाषण से कम महत्वपूर्ण नही। साइमन बहिष्कार में ही लालाजी ने लाहोर में छाती पर लाठिया खाई और भाटी दरवाजे के बाहर उसी रात को विशाल सभा में उनका यह गर्जन सुनाई दिया—"मेरे पर पडी एक-एक लाठी ब्रिटिश साम्राज्य के ताबूत की कील होगी।" पजाब केसरी ने इसको तीन बार दोहराया। उस समय की उत्तेजना का अनुमान इससे किया जा सकता है कि अताउल्ला शाह बुखारी ने उसी सभा में कहा था—"यदि यह घटना अमृतसर में होती तो वहा खून की नदिया बह जाती।" पजाब केसरी की गर्जना इसके बाद सुनाई नही दी। फिर तो रावी के तट पर उस हुतात्मा और अमर शहीद की चिता पर ही लाहौर और पजाब श्रद्धाजलि अर्पित करने को इकट्ठे हुए। उस समय मालूम होता था कि 'अनहैपी इडिया' का महान लेखक अपने स्वप्नो का भारत बनाने के लिए स्वर्ग का दौरा करने जा रहा है, पर वह लौटा नही।

महामना की जीवन-गगा अविश्रात रूप से प्रवाहित होती रही। नेहरू रिपोर्ट मान कर भी वे केन्द्र में मुसल-मानो को ३३ प्रतिशत स्थान सयुक्त निर्वाचन के आधार पर देने को तैयार नही हुए। वे जनगणना से एक भी प्रतिशत आगे बढने को तैयार नही थे। महामना और डा जयकर की इस घोषणा के बाद कि मुसल्मानों को १० प्रतिशत से एक भी अधिक जगह देने को तैयार नहीं, मि जिन्ना के साथ जब अली-बन्धु सर्वदल सम्मेलन से उठ कर चले गए और पडाल में गिने-चुने ही मुसलमान रह गए, उस समय किसी के ध्यान में यह नहीं आया कि भारत विभाजन की नीव पड रही है। पर वस्तुत उसकी नीव उसी समय पड गई थी।

रैम्जे मैकडानल्ड के साम्प्रदायिक निर्णय को जब काग्रेस

(शेष पृष्ठ ४३७ पर)

समर्पण

सन्त ज्ञानेश्वर

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥

हे वीर! अपने अन्तर्बाह्य सब व्यापारों का विषय मझ व्यापक को ही बना दो। वायु जैसे पूर्णत आकाश में मिली हुई रहती है वैसे ही तुम सब कर्मों के समय मुझमे ही मिले हुए रहो। बहुत क्या कहे, अपने मन के लिए मुझे ही एक स्थान बना लो और अपने श्रवण मेरे ही गुण-श्रवण से भर लो। जो आत्मज्ञान से निर्मल हुए है तथा जो मेरे ही स्वरूप है उन सन्तों पर ही तुम्हारी दृष्टि पड़े, जैसे कि कामी मनुष्य की दृष्टि उसकी इष्ट स्त्री पर ही पड़ती है। मैं सब संसार का वसतिस्थान हूं। मेरे जो कुछ नाम है उन्हे अन्तःकरण में आने के लिए वाचा के मार्ग से लगा दो। ऐसी चेष्टा करो कि हाथों का कर्म करना या पावों का चलना भी मेरे ही हेतु हो। हे पाण्डव! अपना हो या पराया, उसपर उपकार रूपी यज्ञ कर। मेरे उत्तम याज्ञिक बनो। एक-एक बात क्या सिखाऊं, अपनी ओर केवल सेवकाई रख, अन्य सबकुछ मद्रूप और सेव्य ही समझो तथा भूतद्वेष छोड़कर सर्वत्र एक मुझको ही नमन करो। ऐसा करने से तुम्हे मेरे आत्यन्तिक आश्रय का लाभ होगा और इस भरे हुए संसार में तीसरे की वार्ता मिटकर हमारा तुम्हारा ही एकान्त हो रहेगा। फिर चाहे जब मैं तुम्हारा और तुम मेरा उपभोग ले सकोगे। इस प्रकार स्वभावतः आनन्द की वृद्धि होगी। हे अर्जुन! जब प्रतिबंध करने वाली तीसरी वस्तु का नाश हो जावेगा तब तुम मद्रूप ही होने के कारण अन्त में मुझे प्राप्त कर लोगे। जल के प्रतिबिम्ब को, जल के नाश होने पर, बिम्ब में मिल जाने के लिए क्या कोई प्रतिबंध होता है? वायु को आकाश में मिलने के लिए, अथवा लहरों को समुद्र में मिलने के लिए किसका प्रतिबंध है? इसलिए तुम और हम रूपी द्वैत देहधर्म के कारण दिखाई देता है। देहधर्म के नाश के समय तुम मद्रूप हो जाओगे। इस बात में सन्देह मत करो। इसमें कुछ मिथ्या हो तो तुम्हारी ही शपथ। तुम्हारी शपथ उठाना आत्मस्वरूप को ही स्पर्श करना है, परन्तु प्रेम की जाति ही ऐसी है कि लज्जा का स्मरण नहीं होने देती. अन्यथा जिसके कारण प्रपंच-सहित यह विश्वाभास सत्य प्रतीत होता है, तथा जिसकी आज्ञा का प्रताप काल को भी लांघता है, वह मैं सत्य संकल्प ईश्वर हूं और जगत् का हितचिन्तक पिता हूं, फिर मुझे शपथ खाने की चेष्टा क्यों करनी चाहिए? परन्तु हे अर्जुन! तुम्हारे प्रेम के कारण मैंने ईश्वरत्व के चिन्हों का त्याग कर दिया है। अजी! तुम्हारी पूर्णता के सम्मुख मैं अपूर्ण हो रहा हूं। तथापि राजा जैसे अपने कार्य के हेतु अपनी ही शपथ लेता है वैसे ही इस ढंग को भी समझो। इस पर अर्जुन ने कहा, हे देव! ऐसे अद्भुत वचन न कहिए। वास्तव में हमारे सब कार्य केवल आपके एक नाम से ही सिद्ध हो जाते हैं। तिस पर आप स्वयं उपदेश कर रहे हैं और उसमें शपथ भी खाते हैं। आपके इस विनोद का कहीं ठिकाना है। कमलों के वन को सूर्य की एक किरण प्रकाशित कर सकती है, परन्तु वह उसे सदा अपना संपूर्ण प्रकाश दे देता है। पृथ्वी को शान्त कर जो सागर भी भर देती है वह वर्षा केवल एक चातक के मिस से ही होती है, वैसे ही हे दानियों के राजा, हे कृपानिधि! आपकी उदारता के लिए मैं एक निमित्त हुआ हूं। तब श्रीकृष्ण ने कहा, ठहरो, ऐसा कहने का कोई अवसर नहीं है। यह सच है कि उपर्युक्त उपाय से तुम मुझे प्राप्त कर सकोगे। हे धनंजय! जिस क्षण सैन्धव समुद्र में पड़ता है उसी क्षण वह गल जाता है, फिर शेष रहने का कारण ही कौनसा है? वैसे ही सब भावों से मेरी भक्ति करने से, सर्वत्र मुझे ही देखने से, संपूर्ण अहंकार का नाश हो जावेगा और तुम तत्वतः मद्रूप हो जाओगे। इस प्रकार कर्म से लेकर मेरी प्राप्ति तक उपायों का स्पष्ट रीति से वर्णन चुका है। अर्थात् हे

(शेष पृष्ठ ४२१ पर)

शिक्षा का एक प्रयोग

महिला-शिक्षा-सदन

आदर्शकुमारी

अजमेर का नाम तो बचपन से ही सुना था, परन्तु हटूडी का नाम कुछ वर्षों पहले ही सुनने में आया। मालूम हुआ कि वह एक छोटा-सा गांव है, अजमेर से छः मील दूर उसका छोटा-सा रेलवे स्टेशन है और उस सामान्य स्थान में शिक्षा का एक असामान्य प्रयोग चल रहा है। उस प्रयोग को देखने की इच्छा बहुत दिन से थी। वह पूरी हुई ४ अक्तूबर को उसके आठवें वार्षिकोत्सव के अवसर पर।

रात की गाडी से दिल्ली से रवाना हो कर हम लोग सवेरे आठ बजे के लगभग अजमेर और वहां से कार द्वारा साढ़े नौ बजे हटूडी पहुंचे। वहां का प्राकृतिक सौंदर्य देख कर मन प्रफुल्लित हो उठा। उत्सव की तैयारियां हो रही थीं। प्रार्थना-स्थल पर एक मंच बनाया गया था, जिसके आगे विशाल शामियाना लगा कर दर्शकों के बैठने की व्यवस्था की गई थी।

सदन में इमारतें अधिक नहीं हैं। संचालकों का निवास-स्थान और उससे सटा एक अतिथिगृह है। अध्यापिकाओं और अध्यापकों के रहने के कुछ कमरे हैं। कुछ कक्षाएं चलाने के लिए, एक छात्रावास, कोऑपरेटिव स्टोर, और मुख्य मंत्री का कार्यालय। पर जितनी भी इमारतें हैं, वे बडी साफ सुथरी दिखाई दीं।

अगले दिन प्रातःकाल भारत सरकार के संचार-मंत्री श्री जगजीवनरामजी के झंडारोहण से उत्सव का कार्य प्रारम्भ हुआ। विशिष्ट वक्ता ने बालिकाओं को संबोधन करते हुए कहा कि देश का भविष्य बच्चों पर ही निर्भर करता है। उन्होंने इस बात पर हर्ष प्रकट किया कि 'सदन' के स्वस्थ वायुमण्डल में उन व्यक्तियों की देख-रेख में शिक्षण चल रहा है जिन्होंने स्वतन्त्रता-संग्राम में त्याग ही नहीं किया, अपितु रचनात्मक प्रवृत्तियों में भी सक्रिय भाग लिया है।

झण्डाभिवादन के उपरान्त बालिकाओं के खेल-कूद, लेजिम, ड्रिल आदि के प्रदर्शन हुए। तत्पश्चात् अजमेर राज्य के मुख्य आयुक्त श्री अ० द० पंडित ने पारितोषिक वितरण किये। इसी समय कांग्रेस के प्रतिनिधि श्री कौशिकजी ने प्रदर्शनी का उद्घाटन किया।

शाम के कार्यक्रम में सर्वप्रथम प्रार्थना हुई, अनन्तर सामूहिक कताई। कताई का दृश्य देख कर राजघाट की याद हो आई। सूत्र-यज्ञ में 'सदन' की छात्राओं के साथ भाग लेने वालों में श्री जगजीवनरामजी, दा साहब (श्री हरिभाऊजी उपाध्याय), श्री जानकी देवी बजाज, आचार्य श्रीमन्नारायण अग्रवाल, डा० सुशीला नैयर, श्री बैजनाथजी महोदय आदि का नाम विशेष उल्लेख-योग्य है। सामूहिक कताई के बाद श्री जगजीवनरामजी ने समारोह का उद्घाटन किया। अपने ओजस्वी भाषण में उन्होंने इस बात पर खेद प्रकट किया कि आजकल की पढ़ी-लिखी लड़कियां प्रायः घर का काम-काज करना अपनी शान के विरुद्ध समझती हैं। उन्होंने बतलाया कि उपयुक्त शिक्षा वह है, जो लड़की को सफल पुत्री, सफल पत्नी और सफल माता बनाती है।

उद्घाटन के पश्चात 'सदन' की छात्राओं ने नृत्य आदि के प्रदर्शन किए। 'स्वप्न भंग' नाटक खेला। अंग्रेजी का एक 'टैब्लो' भी हुआ। यह सांस्कृतिक कार्यक्रम बड़े सुन्दर ढंग से किया गया था। राग-रागिनी, चरखा और अर्चना नृत्य आदि मुझे बहुत पसन्द आये। पर ऐसा लगा कि यदि सारे कार्यक्रम की व्यवस्था इस ढंग से की गई होती जिसमें महात्मा गांधी के सिद्धान्तों की, जिनको आधार बना कर यह संस्था चल रही है, झलक मिलती तो अधिक अच्छा था। नाटक का चुनाव उसी दृष्टि से किया गया था, लेकिन लम्बा हो जाने के कारण दर्शक उससे कुछ ऊब-से गए।

सांस्कृतिक कार्यक्रम के बीच कांग्रेस के महाभागी आचार्य श्रीमन्नारायण अग्रवाल ने 'सदन' के काम के प्रति हर्ष प्रकट करते हुए बालिकाओं को शिक्षा का वास्तविक ध्येय समझने और ग्रहण करने की प्रेरणा दी। बाद में अध्यक्ष-पद से बोलते हुए डा. सुशीला नैयर ने बड़ा ही शिक्षाप्रद और सुन्दर भाषण दिया। इसके पश्चात् दो-एक कार्यक्रम और हुए और 'जन गण-मन' राष्ट्र गान के साथ उत्सव समाप्त हुआ।

इस अवसर पर एक प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया था, जिसमें प्रमुख विभाग थे सिलाई कढ़ाई दस्तकारी, चित्रकला इत्यादि। इन सब विभागों की सामग्री बड़े परिश्रम और सूझबूझ के साथ सजाई गई थी। कढ़ाई के बारीक काम के साथ-साथ मुझे गिरियों से बनाई हुई मोटर और बांस की खपच्चियों और पत्री से बनाया हुआ वायुयान बड़ा अच्छा लगा। चित्रों का संग्रह भी आकर्षक था।

संक्षेप में, यह था समारोह का कार्यक्रम। नगर की तड़क-भड़क से भरे जीवन के अभ्यस्त लोगों को भले ही उसमें बहुत उत्कृष्टता न दिखाई दी हो, लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि इस समूचे आयोजन की अपनी विशेषता थी और उसके पीछे वहां के कार्यकर्ताओं और बालिकाओं का परिश्रम साफ दिखाई देता है।

'सदन' की बालिकाएं मुझे स्वस्थ और प्रसन्न दिखाई दीं। यह किसी भी संस्था के लिए बड़े गौरव की बात है। वैसे यह संस्था मुख्यतः राजस्थान की बालिकाओं की शिक्षा के लिए है, लेकिन वहां देश के विभिन्न भागों से लड़कियां पढ़ने आती हैं। अजमेर से हटूंडी तक पक्की सड़क हो जाने के कारण अब तो अजमेर तथा आसपास के अन्य स्थानों की बालिकाओं को भी इस संस्था के शिक्षण का लाभ मिल जाता है।

मुझे यह देख कर हर्ष हुआ कि इस संस्था में नारी-जीवन के सर्वतोमुखी विकास के लिए ज्ञान, धर्म और कला का समन्वय साधने का प्रयोग हो रहा है। मैं यह नहीं कहती कि यह प्रयोग पूर्णता को प्राप्त हो गया है, लेकिन मैंने यह देखा कि 'सदन' के संचालकों की दृष्टि इस सम्बन्ध में बहुत स्पष्ट है और वे अनेक कठिनाइयों के बावजूद इस प्रयोग को सफल बनाने के लिए प्रयत्नशील हैं।

'सदन' में हाई स्कूल तक की पढ़ाई होती है, लेकिन उसका वास्तविक महत्व उसकी इतर प्रवृत्तियों में है। वहां प्रातःकाल और सायंकाल नियमित रूप से प्रार्थना होती है। छात्रावास में बालिकाएं सामूहिक जीवन का क्रियात्मक पाठ पढ़ती हैं और अपने हाथों सफाई करना सीखती हैं। इसके अतिरिक्त कृषि, गोशाला, साइकिल चलाना, पुस्तकालय, बागवानी, कताई आदि ऐसी प्रवृत्तियां हैं, जो छात्राओं को जीवनोपयोगी व्यावहारिक शिक्षा देती हैं। वास्तव में यही चीजें हैं जो इस संस्था को अन्य संस्थाओं से विशेषता प्रदान करती हैं। ऐसी संस्थाओं में जो बहनें शिक्षा प्राप्त करती हैं, वे यदि उत्तरोत्तर प्रगति करती रहें तो अन्य शिक्षा-संस्थाओं की बालिकाओं की भांति परमुखापेक्षी और देश के लिए भारभूत नहीं हो सकतीं।

'सदन' का सबसे मनोहारी रूप मुझे वहां के प्राकृतिक सौन्दर्य में दिखाई दिया। पृष्ठभूमि में हरी-भरी पहाड़ियां, वहां की वृक्षराशि, देख कर ऐसा प्रतीत होता है, मानो रेगिस्तान में नखलिस्तान हो। जलवायु वहां की स्वास्थ्यवर्धक है और छात्राएं, अध्यापिकाएं तथा अन्य कार्यकर्ता ऐसे रहते हैं मानो एक बड़े कुटुम्ब के सदस्य हों। गरीबी-अमीरी का वहां भेद नहीं है, और सबके जीवन में सादगी है। पढ़ाई मुख्यतः पेड़ों के नीचे होती है।

'सदन' का यह प्रयोग अभी बाल्यावस्था में है, लेकिन सबसे अधिक संतोष और प्रसन्नता की बात यह है कि वह निरंतर सही दिशा में प्रगति कर रहा है। उसमें कमियां हैं। सुधार की गुंजाइश है, लेकिन मुझे विश्वास है कि पूज्य दादा साहब जैसे साधक की प्रेरणा एवं मार्गदर्शन में यह संस्था अपनी विशेषताओं को सामने रखती हुई बराबर आगे बढ़ेगी।

यह जान कर बड़ा खेद हुआ कि 'सदन' में सरकारी सहायता के बावजूद निरंतर आर्थिक कठिनाई रहती है। ऐसी संस्थाओं को आर्थिक कष्ट रहे, इससे सिद्ध होता है कि हम लोगों ने शिक्षा के वास्तविक महत्व और अपने कर्त्तव्य को पूरी तरह नहीं समझा है। मैं चाहती हूं कि इस संस्था के प्रयोग को सफल बनाने के लिए लोग उसके मार्ग को सरल करें। स्वतंत्र भारत की बुनियाद ऐसी संस्थाओं से ही मजबूत होगी।

मुहम्मद के जीवन से कुछ शिक्षाएं

देवेन्द्र गुप्ता

[सत्य के मित्रों का भाईचारा 'फेलोशिप ऑव फ्रेंड्स ऑव ट्रूथ' नामक संस्था, जिसे महात्मा गांधी का आशीर्वाद प्राप्त था, सर्वधर्म-समभाव के आदर्श को सामने रखकर काम कर रही है। उसके त्रैमासिक पत्र में श्री मुमताज अली का एक लेख प्रकाशित हुआ है, जिसके आधार पर यह उपयोगी संग्रह तैयार किया गया है।—लेखक]

अनास हज़रत मुहम्मद का नौकर था। उसका कहना है कि दस वर्ष तक मैं उस महापुरुष के पास रहा, पर कभी 'अबे!' शब्द तक उन्होंने मेरे लिए इस्तेमाल नहीं किया।

उनके छोटे-छोटे पौत्र हसन और हुसैन (जो बाद में शहीद हुए थे) उनके ऊपर चढ़ते, उनके बदन पर खेलते और दाढ़ी खींच कर तंग करते, लेकिन हज़रत मुहम्मद उन्हें कभी ज़रा भी नहीं धमकाते थे।

हज़रत का आदेश है—"सबसे अच्छा दान वह है जिसे दायां हाथ दे, पर बायें को पता तक न हो।"

× × ×

हज़रत मुहम्मद के जीवन में एक घटना का सुंदर वर्णन आता है। वे एक बार एक लुहार की स्त्री की धुआंभरी कजरायी झोंपड़ी में गये, उसका बच्चा मरणासन्न था। दयालु हज़रत सदा उसकी सेवा-शुश्रूषा करते रहे, छाती से लगाये रहे। आखिर वह बच्चा उन्हीं की गोद में मर गया।

× × ×

बच्चों से उनका स्वाभाविक प्रेम था। वह उन्हें मजेदार किस्से-कहानियां सुनाया करते थे। अक्सर इसी पर लेटे बच्चों से खेला करते थे। बच्चे उनके ऊपर और चारों ओर घिरे रहते और वे उनके खिलौनों से खेलते रहते। राह चलते बच्चों को देखते ही वह तुतलाकर बात करने और नादानी द्वारा खिलाने में चूकते न थे।

× × ×

बीमारों के पास जाना उनके दैनिक कामों का अंग हो गया था। अपने शिष्यों को उनकी सीख थी कि किसी की भी अर्थी निकलती हो तो उसे कंधा लगाने में मदद करना चाहिए और बहुत नहीं तो थोड़ी दूर तक ही के जाकर उनके दुःख के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करनी चाहिए।

× × ×

मुहम्मद साहब को बरसों इस बात की ग्लानि बनी रही कि उन्हें एक बार एक उद्दंड और अशिष्ट अंधे आदमी पर गुस्सा आ गया था और उसको उन्होंने भला-बुरा कह दिया था।

× × ×

वे सादा गरीब का भोजन करते थे। मामूली तौर पर उनकी खुराक खजूरें और बिना छने जौ के आटे की रोटियां ही होती थीं। भोजन के पहले वे ईश्वर की प्रार्थना करते और अन्त में प्रभु के गुण-गान करते और उसको धन्यवाद देते।

× × ×

कभी किसी बात के लिए किसी को कड़ा शब्द उपयोग करने का मौका आ ही जाता तो वे दिल न दुखे, इसलिए परोक्ष रूप से और इशारे से उस बात को कहते, सीधे कदापि नहीं।

× × ×

पहनने के लिए जो भी कपड़ा मिल जाता, पहन लेते, एक कमलिया थी, जिसे हमेशा ओढ़े रहते और जब बैठते तो वही नीचे भी बिछ जाती। सोने के लिए एक गुदड़ी थी। उसके अतिरिक्त दूसरा कोई बिस्तर उनके पास नहीं रहता था।

× × ×

अपने साथी और शिष्यों के साथ वह उनका-सा ही और इतना घुल मिलकर जीवन बिताते थे कि अगर कोई अनजान आदमी पहचानना चाहता कि हज़रत कौन-से हैं तो बिना पूछे जान नहीं सकता था।

× × ×

जब उन्हे कोई किसीको शाप देने को कहता तो बिला शुबहा वह उसके लिए आशीर्वाद के वचन कहते और जब भी उनके साथ कोई बुरा बर्ताव करता वे कभी उसके बदले की बात भी नहीं सोचते थे।

× × ×

जिस यहूदन ने उनके लिए जहर डालकर खाना बनाया था, जिसकी वजह से उनके एक साथी की मौत हो गई और जो आखिरकार बाद में उनकी खुद की मृत्यु का कारण हुआ, उसको भी उन्होंने क्षमादान दिया।

× × ×

दिन डूबने पर अपने पास जरा भी पैसा बचा रह जाय, यह उन्हें गवारा न था। अगर उनके पास कुछ भी बाकी रह जाता था और अंधेरा होने तक उसके योग्य पात्र न मिलता तो तबतक घर न लौटते जबतक किसी जरूरतमंद गरीब को उसे अर्पण न कर आते।

× × ×

साधु-सन्यासियों से वह खूब मिलते-जुलते थे और गुलामों तक का भोजन के लिए आमंत्रण बिलाहिचक स्वीकार कर लेते थे।

× × ×

वे अपनी जूतियां खुद ही गांठ लेते थे और अपने घर का काम भी अपने ही हाथो करते थे।

× × ×

तैफ नाम की एक जगह मक्का से थोडी दूर पर थी। वहा हजरत मुहम्मद प्रवचन दिया करते थे। शहर से उन्हें निकाल बाहर किया। सारे रास्ते तक गुंडों और गुलामों के झुंड उनके पीछे पड़े रहे। आवाजे कसते रहे, ढेले फेंकते रहे। उनके शरीर में जगह-जगह घाव हो गये थे। खून बह रहा था। पावो में छाले पड गये थे। थक कर चूर हो गये थे। उस समय उन्होंने प्रभु की प्रार्थना की। दुख और पीडा के उस क्षण मे उनके हृदय मे ये शब्द निकले

"हे प्रभो मैं अपनी विनय तुझतक पहुंचाता हू। अपनी कमजोरियो और इच्छाओं के अहंकार के कारण मैं मनुष्यो की निगाह में क्षुद्र हो गया हू। हे परम दयालु, दीन-हीनों के स्वामी, तू मेरा स्वामी है, मेरा त्याग न कर। मुझे अजनबियों या मेरे शत्रुओं का शिकार न बना। यदि तू मेरे से नाराज नही हुआ है तो मैं सुरक्षित हू। मैं तेरी ज्योति के प्रकाश में आश्रय मागता हू—जिस प्रकाश से सारे अंधकार नष्ट होते हैं और शाश्वत शांति प्राप्त होती है। हे प्रभो! मेरी कठिनाइयो को तू अपनी मर्जी के अनुसार हल कर और मेरे इन दुश्मनो को सच्ची राह दिखा, क्योंकि वे स्वयं नही जानते कि वे क्या कर रहे है?"

जब उनके जानी दुश्मन और आततायी कबारिश के घमडी सरदार पकड कर उनके सामने लाये गये तो उन्होने पूछा

"तुम मेरे हाथों क्या उम्मीद रखते हो?"
"हे विशाल हृदय भाई, दया की।"
"तथास्तु! तुम मुक्त हो।"

× × ×

ऐसे थे हजरत मुहम्मद, जिन्होंने इस्लाम धर्म का प्रवर्तन किया। हम सभी उस महापुरुष के जीवन और शिक्षाओ से सबक लें।

(पृष्ठ २७ का शेष)

पाडुपुत्र! प्रथम सब कर्मों को मुझे समर्पित कर सर्वत्र मेरा प्रसाद प्राप्त करना चाहिए। अनन्तर मेरे प्रसाद से मेरा ज्ञान सिद्ध होता है, और उसमे अवश्य ही मेरे स्वरूप की सायुज्यता प्राप्त हो सकती है। फिर हे पार्थ! उस समय साध्य और साधन नही रहते। अधिक क्या कहें कुछ भी शेष नही रहता। तुमने अपने सब कर्म सर्वदा मुझे समर्पित किये हैं, इसलिए आज मैं तुम पर प्रसन्न हुआ हू तथा इस प्रसन्नता के बल से मुक्त हो इस अपूर्व युद्ध के प्रतिबंध की परवाह न करके मैं एकदम तुम पर भूल गया हू, क्योंकि जिससे प्रपंच सहित अज्ञान का नाश होता है जिससे केवल मैं दृग्गोचर होता हू, जो गीतारूप है, उपपत्तिपूर्वक ऐसे आत्मज्ञान का मैंने तुम्हे नाना प्रकार से उपदेश दिया है जिससे कि तुम्हारे पाप-पुण्य रूपी संपूर्ण अज्ञान का नाश हो चुका।

कसौटी पर

राजस्थान नव निर्माण की रूप-रेखा—प्रकाशक—राजस्थान सर्वोदय साहित्य समिति, जयपुर।

भारत सरकार ने 'ख' राज्यों के विकास के लिए विशेष सहायता-सम्बन्धी आवश्यकताओं की जांच करने के लिए गाडगिल-समिति का निर्माण किया था। इस समिति के समक्ष 'सर्व सेवा संघ' द्वारा मान्य जयपुर की 'चर्खा परिषद' ने जो सुझाव प्रस्तुत किये, वे इस पत्रक में दिये गए हैं। इसमें बताया गया है कि केन्द्रीय सरकार द्वारा राजस्थान की किस प्रकार उपेक्षा होती है। यह भी मान्यता प्रकट की गई है कि राजस्थान के ३० हजार गावों के लाखों-करोड़ों व्यक्तियों को 'सर्वोदय-योजना' की बुनियाद पर व्यवस्था करके ही नव-जीवन प्रदान किया जा सकता है। इस बात की भी जानकारी दी गई है कि राजस्थान सरकार के सामान्य प्रशासनिक आय-व्यय कि वनिश्चय कितनों एवं आगामी वर्षों में कितना घाटा होगा तथा नव निर्माण-सम्बन्धी योजनाओं के कार्यान्वित करने में कितना खर्च आवेगा। नव निर्माण की संक्षिप्त रूप-रेखा भी इसमें मिल जाती है।

इसमें संदेह नहीं कि देश की उन्नति और समृद्धि के लिए पिछड़े प्रदेशों को उठाना होगा। राजस्थान के उत्थान के लिए जो सुझाव और योजनाएं इस पत्रक में दी गई हैं, वे राजस्थान के तथा केन्द्रीय सरकार के लिए विचारणीय हैं, विशेषकर इसलिए कि उनमें कम-से-कम खर्च में अधिक-से-अधिक काम करने की दृष्टि है।

स्त्री-रोगों की गृह चिकित्सा—लेखक—श्री कुलरंजन मुखर्जी, प्रकाशक—प्रकृति चिकित्सालय, कलकत्ता, पृष्ठ २०४, मूल्य २॥)

जैसा कि नाम से स्पष्ट है, इस पुस्तक में स्त्रियों के विविध रोगों की जानकारी और उनकी घरेलू चिकित्सा बताई गई है, घरेलू चिकित्सा माने प्राकृतिक चिकित्सा। हम जानते हैं कि आज जरा-जरा सी बात पर लोग डाक्टरों की शरण में दौड़ते हैं और अपने शरीर को बिगाड़ने के साथ-साथ अपनी जेब भी खाली कर देते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि प्रकृति सबसे बड़ी चिकित्सक है और जबतक रोग असाध्य न हो, इस महान आरोग्यदात्री का सहारा लेना ही सब दृष्टियों से श्रेयस्कर है।

इस पुस्तक के लेखक को प्राकृतिक चिकित्सा का अच्छा व्यावहारिक ज्ञान है। वह कलकत्ता के मारवाड़ी रिलीफ सोसायटी अस्पताल में प्राकृतिक चिकित्सा-विभाग के चिकित्सक हैं। इस पुस्तक में उन्होंने केवल स्त्रियों के रोगों को लिया है और उनकी चिकित्सा बताई है। पुस्तक की प्रामाणिकता के विषय में तो अनुभवी चिकित्सक ही कुछ कह सकेंगे, लेकिन उसे पढ़ने से मालूम होता है कि पुस्तक उपयोगी है। लेखक ने छोटे से बड़े तक, सभी रोगों पर प्रकाश डाला है और उनकी बड़ी ही सरल चिकित्सा बताई है। चिकित्सा में उन्होंने जिन उपकरणों का सहारा लिया है, वे ये हैं: जल, मिट्टी, भाप, हवा, धूप, भोजन-सुधार, व्यायाम, आसन, उपवास आदि। ये सब बातें ऐसी हैं, जिनपर न विशेष खर्च होता है, और न रोगी को तीव्र वेदना ही होती है।

हम प्रत्येक बहन से सिफारिश करेंगे कि वह इस पुस्तक को पढ़ें। जटिल रोग के लिए तो अनुभवी चिकित्सक के परामर्श से इलाज करना ठीक होगा, परन्तु अधिकांश छोटे-मोटे रोगों को तो घर बैठे बिना खर्च के दूर किया जा सकता है। इस उपयोगी पुस्तक का व्यापक प्रचार और प्रसार होना चाहिए।

जन्म की कहानी—लेखिका कृष्णाकुमारी सेठ, प्रकाशक—दीपक प्रकाशन, दिल्ली पृष्ठ ४८, मूल्य ॥।)

इस छोटी सी पुस्तक में माता के गर्भकालीन जीवन के विषय में आवश्यक जानकारी दी गई है। गर्भ के दिनों में बालक का विकास कैसे होता है, उसकी रक्षा कैसे की जाती है, माता को किस प्रकार की सावधानी

न कई श्रेणियों में विभाजित किया है। कुछ खेल ऐसे हैं, जिनसे बच्चों में निर्भीकता उत्पन्न होती है, कुछ से उनकी कल्पनात्मक शक्ति विकसित होती है और कुछ से ज्ञान-वृद्धि होती है।

हिंदी में इस साहित्य का बड़ा अभाव था और लेखिका ने निस्संदेह साहित्य के एक आवश्यक परन्तु उपेक्षित अंग की पूर्ति की है। इसके लिए हम उन्हें बधाई देते हुए आशा करते हैं कि यह इस दिशा में अपने प्रयत्न को जारी रखेंगी और बच्चों की अवस्था के अनुसार विभाजन करके इस प्रकार का और अधिक साहित्य निर्माण करेंगी। प्रस्तुत पुस्तक में खेलों के अनेक कलापूर्ण चित्र हैं, जिनसे उसकी उपयोगिता और बढ़ गई है।

दो भाई—लेखक सुमेरसिंह दइया, प्रकाशक—मंत्री निकेतन, बीकानेर, पृष्ठ १३६, मूल्य १।)

इस पुस्तक में लेखक की ११ कहानियां हैं, जिनमें उन्होंने वर्तमान सामाजिक विषमताओं को व्यक्त करने का प्रयत्न किया है। लगभग सभी चित्र शोषित और दलित वर्ग के हैं और उनके प्रति गहरी सहानुभूति रखकर पाठक के हृदय को द्रवित करने की चेष्टा की गई है। लेखक की भाषा और शैली अच्छी है पर उनके चित्र अधिक निखर नहीं पाये हैं। उनमें कहानी नहीं, लेखक बोलता है। हमें विश्वास है कि लेखक की प्रतिभा हमें भविष्य में अधिक कलापूर्ण चित्र देगी।

भूदान-यज्ञ—विनोबा भावे, प्रकाशक—नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद। पृष्ठ १४८, मूल्य १।)।

इस पुस्तक में विनोबाजी के साल्ह प्रवचन तथा कुछ चर्चाएं हैं। हम चाहते हैं कि इस पुस्तक का देशव्यापी प्रचार हो और इसके द्वारा जिन कोटि-कोटि भूमिहीनों को विनोबा ने वाणी प्रदान की है, उनकी आवाज घर-घर पहुंचे। विनोबा का मार्ग प्रेम का मार्ग है। उसमें न किसी के प्रति द्वेष है, न दुर्भावना। सबके लिए स्वागत है। इसलिए वह मार्ग सही है और देश के लिए कल्याणकारी है। पुस्तक की सामग्री का चुनाव अच्छा हुआ है। छपाई साफ तथा शुद्ध है।

इस पुस्तक में विनोबाजी के वे चुने हुए प्रवचन दिये गए हैं जो भूदान-यज्ञ की पृष्ठभूमि, उसकी कल्पना, उसके विकास और उसके दूरगामी प्रभाव पर प्रकाश डालते हैं। भूदान-यज्ञ की विकास प्रक्रिया में जो अन्य दान सम्मिलित हो गए हैं, उनपर भी इस पुस्तक में महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त होती है।

इस पुस्तक को पढ़कर भूदान यज्ञ और उसके विभिन्न पहलुओं को समझने में पर्याप्त सहायता मिलती रही है, साथ ही उसमें योग देने की भी प्रवृत्ति जाग्रत होती है। यज्ञ आज देश का स्वर बन गया है। लगभग दो वर्ष पूर्व जिस भूदान यज्ञ का श्रीगणेश ईश्वरीय प्रेरणा से हुआ था, वह अब देश के कोने-कोने में फैल गया है। उसके सम्बन्ध में तरह-तरह की आलोचनाएं हुईं, आशंकाएं की गईं और उसे क्रान्ति के लिए एक विघातक कदम बताया गया, लेकिन विनोबा अपने रास्ते पर दृढ़तापूर्वक चलते गए और अन्त में आज इस कदम को वर्तमानकालीन विषमताओं को दूर करने के एकमात्र अहिंसक उपाय के रूप में मान्यता मिल रही है।

पाकिस्तान : एक मृगतृष्णा—लेखक, स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, प्रकाशक सत्य ज्ञान प्रकाशन, ज्वालापुर, पृष्ठ ११०, मूल्य १)।

स्वामीजी के नाम से भारतीय पाठक अपरिचित नहीं है। वह कई पुस्तकों के प्रणेता हैं और उन्होंने देश-विदेश में काफी भ्रमण किया है। प्रस्तुत पुस्तक में उन्होंने बताया है कि भारत का विभाजन हमारे लिए तो वरदान सिद्ध हुआ है, लेकिन पाकिस्तान के लिए अभिशाप। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि स्वाधीन होने के पश्चात् इन छः वर्षों में भारत ने अपनी नींव सुदृढ़ बनाली है जबकि पाकिस्तान खोखला हो गया है। अतः लेखक के मतानुसार पाकिस्तान की धरती पर स्वर्ग उतारने की कल्पना मृग-तृष्णा है।

पुस्तक में भारत के विभाजन, काश्मीर की समस्या, भारत की नीति, आदि पर अच्छा प्रकाश डाला गया है।

—मध्यमाची

क्या व कैसे ?

भूदान-यज्ञ के प्रवर्त्तक का नया मोड़

जिनके हृदय मे देश-प्रेम की ज्योति प्रज्वलित रहती है, वे नित्यप्रति देश-सेवा के नये-नये मार्ग निकालते रहते हैं। विनोबा ऐसे ही मूर्द्धन्य व्यक्तियों मे से है। जबसे उन्होंने सक्रिय सेवा के क्षेत्र मे पदार्पण किया है उनके लोक-साधना का राजमार्ग उत्तरोत्तर विस्तृत होता जा रहा है। उन्होंने प्रारंभ किया भूदान से, फिर उसमें आकर मिले हलदान, बैलदान, कूपदान, श्रमदान, सम्पत्तिदान, बुद्धिदान, आदि-आदि। इस प्रकार भूदान की गंगा जो अपने उद्गम पर बहुत छोटी दीखती थी, अपने प्रवाह के साथ फैलती गई और उसके पावन जल की धाराएं नगरो और देहातो के घर-घर मे पहुची। आज हजारों-लाखो समाज और देश-सेवी अपनी झोली भर-भर कर दरिद्रनारायण के लिए भूमि ला रहे है। २२ लाख एकड भूमि एकत्र हो चुकी है। लेकिन विनोबा यही रुक जाय तो विनोबा कैसे। उन्होंने यज्ञ के आरभ मे ही कहा था कि भूमि तो मेरे लिए निमित्त-मात्र है। मै तो देश में एक 'हवा' पैदा करना चाहता हू। यही कारण है कि भूदान-यज्ञ इतना व्यापक होता गया।

अब विनोबा का नया निश्चय आया है कि आगे से वह भूदान के बजाय सर्वोदय के सिद्धान्तो के प्रसार पर अपनी शक्ति केन्द्रित करेंगे। उनका मानना है और वह ठीक भी है कि भूदान का काम अब इतना जम गया है कि उसे इस कार्य में सलग्न व्यक्ति भी उनके निर्देशन में चला सकते है। अत. वह अब अपनी शक्ति उस ध्येय की पूर्ति में लगावेंगे, जिसका भूदान-यज्ञ एक अग था।

विनोबा के इस नये मोड़ का हम हार्दिक अभिनदन करते हैं। हम जानते हैं कि विनोबा के कदम उस समय तक नही रुकेंगे जबतक कि उनके शब्दों में 'ग्रामराज्य' और गाधीजी के शब्दो मे 'रामराज्य' की स्थापना नही हो जायगी। वह तबतक चैन की सास नही लेगे जबतक कि सत्ता विकेन्द्रित न होकर गाव-गाव तक नहीं पहुच जायगी, अर्थात् जबतक प्रत्येक ग्राम एक स्वयपूरित इकाई नही बन जायगा और इस देश के निवासी एक कुनबे के भाई-भाई की तरह मिल-जुल कर नही रहने लगेंगे।

काम कठिन है, कारण कि मानव के अन्दर सद् के साथ-साथ असद् प्रवृत्तिया भी होती है और उनका प्रभाव अधिक तेजी से पड़ता है, पर विनोबा कठोर मार्ग पर ही चलने के लिए बने है। उनके लिए जीवन में विश्राम नही है। सूर्य की अखण्ड गति की भाति उनकी साधना बराबर चल रही है, चलती रहेगी।

सर्वोदय के सिद्धान्तों के प्रसार की दिशा में विनोबा अब क्या कदम उठावेंगे, यह कहना मुश्किल है, पर इतना निश्चित है कि उनका अगला कदम भूदान-यज्ञ से भी अधिक दूरगामी प्रभाव वाला होगा। सारे देश की निगाह आज विनोबा पर टिकी है। देश की ही क्यों, विदेश के लोग भी आशाभरी दृष्टि से उनकी ओर देख रहे हैं। किन्तु उनका स्वप्न तब पूरा होगा जब प्रत्येक राष्ट्रप्रेमी व्यक्ति उनके काम में कूद पड़ेगा। यह ठीक है कि विनोबा का व्यक्तित्व महान है, यह भी ठीक है कि उनमे अमर आशा और अनन्त विश्वास है, पर हमे यह नही भूल जाना चाहिए कि गोवर्धन पर्वत को उठाने मे हरेक ब्रजवासी ने सहारा दिया था। हम चाहते है कि जो विनोबा के कामो से सहमत हो, वे अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार निष्ठापूर्वक उनका हाथ बटावें।

भारत की आत्मा

कुछ वर्ष पूर्व एशियाई कान्फ्रेन्स के प्रतिनिधियो को सम्बोधन करते हुए गाधीजी ने कहा था कि वे अगर भारत की आत्मा के दर्शन करना चाहते है तो उन्हे यहा के देहातो मे जाना चाहिए। उन्होंने साफ कहा था कि भारत की आत्मा के दर्शन दिल्ली, कलकत्ता या बम्बई मे नही हो सकते। इसी बात को लक्ष्य में रख कर उन्होंने अपना ध्यान गावो को उठाने पर केन्द्रित किया था और उनकी समृद्धि के लिए रचनात्मक कार्यों का जाल गाव-गाव में

बिछा दिया था।

देश की आबादी से सम्बन्धित सन १९५१ के जो आंकड़े हाल ही मे प्रकाशित हुए है, उनसे ये तथ्य सामने आते हैं —

१ भारत की जनसख्या ३५,६८,७९,३०४ है, जिनम से २४,९०,७४,९०१ व्यक्ति कृषि से सम्बन्धित हे। अर्थात् देश की कुल आबादी का ७० प्रतिशत खेतीवाड़ी से सबध रखता है।

२ इनमें ३,१६,१८,०७२ व्यक्ति (परिवार सहित) ऐसे हे, जिनकी मुख्यत अपनी जमीन नही हैं।

३ ४,४८,०९,०१९ व्यक्ति खेती पर मजदूरी करनेवाले और उनके आश्रयी हैं।

४ देश मे ५,५९०८९ देहात और ३०१८ शहर है।

५ पूरी आबादी में से २९,५०,०४,२७१ व्यक्ति देहातो में रहते हैं।

इन आकडो से स्पष्ट है कि भारत गावो मे बसता है और भारत की आत्मा भी वही निवास करती हैं।

यह भी साफ हैं कि देश की उन्नति करनी है तो गावो की स्थिति को सुधारना होगा। भारत के स्वतन्त्र होने के बाद की गावो की हालत में विशेप परिवर्तन नही हुआ है। वहा आज भी गरीबी है, अशिक्षा हैं, गदगी है और स्वास्थ्य के साधनो का अभाव है। शहरों का आकर्षण इतना बढ रहा है कि लोग गाव छोड-छोड कर शहरो में इकट्ठे हो रहे हैं। परिणामत नगरो की जनसख्या और साथ ही नागरिकों की कठिनाइया बराबर बढ रही हैं और गाव पहले से भी अधिक उपेक्षित हो रहे है। हमें समझ लेना चाहिए कि ७० प्रतिशत आबादी की ओर से उदासीन होकर हम देश का भला नही कर सकते।

राष्ट्र की नीव को पुख्ता करने के लिए गावो की इकाइयों को मजबूत बनाने के अतिरिक्त और कोई चारा ही नहीं है। कहते हैं, चीन ने कुछ ही वर्षो में आश्चर्यजनक प्रगति की है तो केवल इसलिए कि उसने अपने गावो को खेती-बाड़ी, दस्तकारी, ग्रोमोद्योग आदि की दृष्टि से समृद्ध बना दिया है। हमारे देश के बहुसख्यक किसान आज भी खेती के मामले में लकीर के फकीर बने हुए हैं। खेती की उन्नति कैसे हो सकती है, खाली समय के उपयोग के लिए क्या धधा हो सकता है, यह सब सोचने की क्षमता उनमें नही है। शासन, सार्वजनिक नेताओ एव कार्यकर्ताओ का कर्तव्य है कि वे देश की सर्वतोमुखी उन्नति के लिए ग्रामोत्थान के कार्य को सर्वोपरि मानें और खेतीवाडी को उन्नत करने के साथ-साथ ऐसी व्यवस्था करें कि कोई भी व्यक्ति वहां खाली न रहे। गावो की आत्मा पुष्ट होगी तो देश की आत्मा अपने आप पुष्ट हो जायगी।

"यह दिया बुझने न पावे"

हमारे देश में लोकोपयोगी शिक्षा देनेवाली सस्थाओ की सख्या बहुत कम है, यही कारण है कि स्कूल और कालेजो की भरमार होते हुए भी हमारे युवको और युवतियो को वह चरित्रनिर्माणकारी शिक्षा नही मिल रही है, जो किसी भी स्वतत्र देश के नागरिकों को मिलनी चाहिए। सबसे पहले गाधीजी का ध्यान इस ओर गया था। उनकी प्रेरणा से नये ढग के विद्यापीठ स्थापित हुए थे और एक नई शिक्षा-पद्धति को उन्होने जन्म दिया था। लेकिन हम देखते हैं कि उसकी उपेक्षा करके हम आज भी उस पुरानी शिक्षा-पद्धति से चिपके हुए है, जिसका निर्माण और प्रचलन एक विदेशी सत्ता ने अपने लाभ के लिए किया था। दुर्भाग्य से उसी पद्धति को आज प्रोत्साहन दिया जा रहा है। नये प्रयोगो में शासन की कोई दिलचस्पी नही है। इसीलिए राष्ट्रनिर्माणकारी सस्थाए आज जैसे-तैसे टिमटिमा रही है। पता नही, कब कौन बुझ जाय!

सरकार उनकी ओर इसलिए ध्यान नही देती कि उनकी योजनायें सरकार द्वारा निर्धारित योजनाओ से पूरी तरह मेल नही खाती, और जनता इसलिए सहयोग नही देती कि इन सस्थाओ से निकलकर उनके बच्चो को नौकरी मिलेगी, इसका उसे भरोसा नही होता। हम पूछते हैं कि आखिर सरकारी स्कूलो, कालेजो और विश्वविद्यालयो से निकलनेवाले कितने युवको को नौकरी मिल पाती है? यदि नौकरी मिल जाती तो हजारों-लाखों युवको को काम की खोज में हम भटकते क्यो पाते?

हमारी राय में सरकार तथा जनता दोनों को इन

संस्थाओं के दीपक में भली प्रकार तेल डालकर उनकी ज्योति को हमेशा प्रकाशमान रखना चाहिए। हटूंडी के 'महिला शिक्षा सदन' के आठवें वार्षिकोत्सव की सफलता के लिए अपना संदेश भेजते हुए राष्ट्रपति डा. राजेन्द्रप्रसाद ने लिखा था।

"१९२३ या १९२४ की बात है। राजाजी बिहार विद्यापीठ में समावर्त्तन संस्कार के समय विद्यार्थियों को उपदेश देने के लिए निमंत्रित किये गए थे। उन्होंने विद्यापीठ के संबंध में कहा कि जो बहुत बड़ा कार्यक्रम हमने १९२१ में आरंभ किया था उसी के चिन्ह-स्वरूप इस प्रकार की संस्थाएं जहां-तहां दीप का काम कर रही हैं। उस समय में और आज में अन्तर बहुत पड़ गया है। पर यही वर्णन हटूंडी आश्रम के संबंध में भी ठीक जचता है। यह दिया बुझने न पावे और दिनोंदिन इसकी ज्योति अधिकाधिक चमकती जाए, यही मेरी लालसा और प्रार्थना है।"

हमें मालूम हुआ है कि इसी 'सदन' को अप्रैल १९५३ से लेकर अबतक की सरकारी सहायता केवल इसलिए प्राप्त नहीं हो सकी कि अजमेर राज्य की अन्य शिक्षा-संस्थाओं ने अपना सही हिसाब सरकार को नहीं दिया है। एक के दोष के लिए दूसरा दण्ड पावे, यह कहां तक उचित और न्याय-संगत है, यह समझ में नहीं आता।

हम चाहते हैं कि 'दीप की तरह काम करने वाली' ये संस्थाएं क्या सरकार और क्या जनता, सबसे प्रोत्साहन पावें। इतना ही नहीं, उन्हें इतने साधन भी मिलते रहें कि जिससे उनकी कार्यक्षमता और प्रगति में बाधा न पड़े। आज भले ही इन संस्थाओं का महत्व पूरी तरह से अनुभव न किया जाय लेकिन वह समय जल्दी ही आवेगा, जब कि ऐसी संस्थाओं का महत्व बढ़ेगा और शिक्षा की दृष्टि से मार्ग-दर्शन पाने के लिए लोग उनकी ओर आशा-भरी निगाह से देखेंगे।

—य०

(पृष्ठ ४२८ का शेष)

ने सामयिक हल के रूप में व्यवहारतः यह कह कर मान लिया कि न वह इसको स्वीकार करती है और न वह इसको अस्वीकार करती है, तब महामना ने लोकमान्य अणे के साथ मिलकर 'कांग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी' का संगठन किया। बंगाल में स्व. श्री शरतचन्द्र बोस का उनको समर्थन मिला और वहां वे निर्वाचन में सफल भी हुए। फैजपुर कांग्रेस में महामना सम्मिलित हुए। पर इसके बाद राजनीति से उन्होंने सन्यास ही ले लिया। बुढ़ापे के कारण उनके लिए यह संभव नहीं रहा था कि वे सक्रिय राजनीति में भाग ले सकते। मि. जिन्ना के साथ समझौता करने के इस समय किए गये प्रयत्न सफल नहीं हुए। राष्ट्रपति डा. राजेंद्रप्रसाद और मि जिन्ना के बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ था, आज वह इतिहास की वस्तु है। महामना की यदि सहमति उनको प्राप्त हो जाती तो भारत का राजनैतिक नक्शा कैसा बनता, यह आज कल्पना का विषय रह गया है।

दोनों महान् नेता अपने विश्वासों की दृढ़ मूर्ति थे। महामना को विश्वास था कि नास्तिक-से-नास्तिक को वे आस्तिक बना सकते हैं। ईश्वर में दृढ़निष्ठा और भक्ति ही उनको अपने विश्वास के अनुसार आचरण करने की शक्ति देती थी। स्व श्री गोखले ने ठीक ही कहा था, गरीब के घर जन्म लेकर, अध्यापकी और वकालत छोड़ कर, त्याग यदि किसी ने किया है तो मालवीयजी ने किया है।

दोनों महान् नेता लेखनी की शक्ति को मानते थे। मालवीयजी ने अभ्युदय, सनातन धर्म, लीडर आदि को जन्म दिया। लालाजी ने 'आर्य गजट' 'वन्दे मातरम' और 'पीपल' को जन्म दिया और स्वतः उसका संपादन किया। आधुनिक युग की इस कला को दोनों ने अपनी कला समझकर अपनाया और जनसेवा का इसको माध्यम बनाया।

महामना के पिछले दस वर्ष हिन्दू विश्वविद्यालय की चिन्ता ही में बीते। वह उनको अपनी सन्तान से भी अधिक प्रिय था। उनकी संपूर्ण जीवन की साधना का वह मूर्त रूप था।

'मण्डल' की ओर से

प्रकाशन-कार्य

इन दिनों हम लोगों ने पुस्तकों के प्रकाशन पर विशेष ध्यान दिया है। 'सस्कृत साहित्य सौरभ' के अतर्गत चार पुस्तकें निकल चुकी थी आगे की कई और पुस्तकें प्रेस म दे दी गई है। इसी प्रकार 'समाज विकास माला' की पाच से आगे की लगभग एक दर्जन पुस्तके तैयार होकर प्रस म जा रही है। इन दोना मालाओं की पुस्तको का चारो ओर से स्वागत हो रहा है। सामुदायिक योजना केन्द्रो और समाज-शिक्षा सस्थाओ ने समाज विकास माला के प्रकाशनो को अपन क्षेत्रो के लिए बडा उपयोगी बताया है।

अक्तूबर मास मे तीन महत्वपूर्ण प्रकाशन हुए हैं। पहली पुस्तक है राष्ट्रपति डा राजेन्द्रप्रसाद के गाधीजी-विषयक भाषणो का सग्रह 'गाधीजी की देन'। इसके सभी भाषण पठनीय और मननीय हैं। कई भाषण तो ऐसे है, जो अवतक कही भी प्रकाशित नही हुए। अवतक गाधीजी, उनके विचारो और सिद्धान्तो के विषय म जितनी पुस्तकें निकली है उनमें इस पुस्तक का विशिष्ट स्थान है। दूसरी पुस्तक है 'पाचवें पुत्र को बापू के आशीर्वाद।' इसमें श्री जमनालाल बजाज तथा उनके परिवार को समय समय पर लिखे गए गाधीजी के पत्र है। इन पत्रो को पढकर राष्ट्रीय जीवन के अनेक मूल्यवान पृष्ठ आखो के सामने खुल जाते है। पुस्तक सग्रहणीय है और बार बार पढने की चीज है। यह 'मण्डल' का प्रकाशन नही है। यह इसका मुख्य विक्रेता है। 'गाधी डायरी' से सभी पाठक परिचित हैं। सन् १९५४ की यह डायरी छोटे और बडे दोनो आकारो म प्रकाशित हुई है। इस बार पूरे कपडे की मोमी जिल्द रखी गई है और उसके आवरण पर चर्खा कातते हुए गाधीजी का बडा मनोहारी चित्र है।

अनेक पुस्तको के पुनर्मुद्रण हुए है।

अन्य प्रकाशनों के सबध में हम अगले अक मे लिखेंगे।

सहायक सदस्य योजना

हमारी सहायक सदस्य योजना की उपयोगिता अब चारो ओर अनुभव की जा रही है। जगह-जगह से लोग उसके बारे में उत्सुकता प्रकट कर रहे हैं, उसका साहित्य माग रहे है। इधर हमारे प्रतिनिधि बबई गये है। वहा श्री रामनाथजी पोद्दार, श्री कमलनयनजी बजाज आदि के सक्रिय सहयोग से उपयुक्त वायुमण्डल तैयार हो रहा है। कई सदस्य भी बने हैं। हमें पूर्ण विश्वास है कि बबई नगरी कलकत्ते से पीछे नही रहेगी। वहा हिन्दी और हिन्दी साहित्य के प्रति बडा प्रेम है और सत्साहित्य के अनुरागियो की सख्या काफी है।

दिवाली बाद हम लोगो को अपना ध्यान पुन मध्यभारत पर केन्द्रित करना है। हम लोग इदौर जायगे और वहा से उज्जैन, रतलाम, देवास, धार, जावरा, मदसौर, और निमाड के प्रमुख स्थानो की भी यात्रा करेंगे। मध्यभारत का १०१ का कोटा इस बार पूरा कर लेना है।

अभी राजस्थान, मध्यप्रदेश, बिहार, विंध्य प्रदेश आदि सब अछूते पडे है। वहा हिन्दी के प्रति विशेष अपनत्व है। उत्तर प्रदेश में लखनऊ और कानपुर पर कुछ ध्यान दिया गया था। वहा जमकर बैठने की बात है। हमारे प्रतिनिधि अब लखनऊ पर जोर लगा रहे हैं। वहा शासन का सक्रिय सहयोग मिल रहा है, जिसका परिणाम भविष्य में बहुत अच्छा निकलने की सभावना है।

प्रत्येक राष्ट्र-प्रेमी से हमारा अनुरोध है कि वे इस सत्साहित्य की प्रसारक योजना को देशव्यापी बनाने में सहयोग दे। जो स्वय सदस्य बन सकें वे स्वय बन जाय, जो न बन सकें, वे दूसरो को बनावें, जिनमें दोनो की क्षमता न हो, वे इस योजना को प्रचारित करने में योग दें।

—मत्री



हमारे राष्ट्रपति ३ दिसम्बर को ७०वें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय
यशपाल जैन

जीवन साहित्य

'जीवन-साहित्य'

लेख-सूची

दिसम्बर १९५३

आवश्यक सूचना

जीवन साहित्य के ग्राहक नं० १००१ से २३०० तक का वार्षिक शुल्क इस अंक के साथ समाप्त हो जाता है। डाकखाने के नये नियमों के अनुसार कार्ड अलग से आवश्यक सूचना अथवा मनीआर्डर फार्म नहीं रख सकते। ग्राहकों से हमारा अनुरोध है कि वे स्वतः ही अपना आगे के वर्ष का शुल्क ४) रु० दिसम्बर १९५३ के अन्त तक भेज देने की कृपा करें।

आगामी वर्ष का वार्षिक मूल्य भेजते समय अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें। नवीन ग्राहक मनीआर्डर कूपन पर 'नवीन ग्राहक' शब्द लिखने की कृपा करें।

वी० पी० से मंगाने का स्वीकृति-पत्र भेजते समय भी अपना ग्राहक नम्बर लिखना न भूलिए। अन्यथा भूल से आपका नाम नवीन ग्राहकों में भी लिखा जा सकता है और इस प्रकार दो स्थानों पर लिखे जाने से वी० पी० आपको दो बार भेजी जायगी। —व्यवस्थापक

उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, हिमाचल प्रदेश, मध्यभारत तथा बिहार प्रादेशिक सरकारों द्वारा
स्कूलों, कालेजों व लाइब्रेरियों तथा उत्तरप्रदेश की ग्राम-पंचायतों के लिए स्वीकृत

जीवन-साहित्य

अहिंसक नवरचना का मासिक

वर्ष १४] दिसम्बर १९५३ [अंक १२

भजन

नरसी मेहता

भूतळ भक्ति पदारथ मोटुं ब्रह्मलोक मा नाहि रे
पुण्यकरी अमरापुरी पाम्या, अन्ते चोराशी माहि रे,

हरिना जन तो मुक्ति न मागे, मागे जनमो-जनम अवतार रे;
नित सेवा, नित कीर्तन ओच्छव, नीरखवा नन्दकुमार रे ॥१॥

भरतखंड भूतळमां जनमी, जेणे गोविन्दना गुण गाया रे;
धन धन रे एनां मातपिता ने सफळ करी एणे काया रे ॥२॥

धन वृन्दावन, धन ए लीला, धन ए ब्रजनां वासी रे;
अष्ट महासिद्धि आंगणिये रे ऊभी, मुक्ति छे एमनी दासी रे ॥३॥

ए रसनो स्वाद शंकर जाणे, के जाणे शुक जोगी रे;
कंई एक जाणे ब्रजनी रे गोपी, भणे नरसैयो भोगी रे ॥४॥

नये समाज के लिए नया दृष्टिकोण

विनोबा

बहुत खुशी है कि आज मजदूरों के इस क्षेत्र में आप लोगों के मुझे दर्शन हो रहे हैं। सारी दुनिया मजदूरों के आधार पर बनी है। पौराणिकों ने कहा था यह पृथ्वी शेषनाग के मस्तक पर स्थिर है। अगर शेषनाग का आधार टूट जाय तो पृथ्वी स्थिर नहीं रह सकेगी, वह जर्रा-जर्रा हो जायगी। हमने सोचा यह शेषनाग कौन है ? ध्यान में आया दिनभर शरीर श्रम करने वाले मजदूर जो किस्म-किस्म की पैदावार करते हैं, वे ही ये शेषनाग हैं। सबका आधार उन मजदूरों पर है। इसलिए भगवान ने मजदूरों को कर्मयोगी कहा है। लेकिन सिर्फ कर्म करने से कोई कर्मयोगी नहीं होता। हिन्दुस्तान में कुछ मजदूर खेतों पर काम करते हैं। कुछ रेलवे में काम करते हैं। कुछ कारखानों में काम करते हैं। दिनभर मजदूरी करते हैं और अपने पसीने से रोटी कमाते हैं। जो खून-पसीने से रोटी कमाता है वह धर्म-पुरुष हो जाता है। उसके जीवन में पाप का आसानी से प्रवेश नहीं हो सकता। दिनभर काम कर लिया तो रात को गहरी नींद आती है। न दिन में पाप कर्म करने के लिए समय मिलता है, न रात को कुछ सूझ सकता है। क्योंकि थका मादा शरीर आराम चाहता है। उसे नींद की जरूरत होती है। जिस जीवन में पाप चिंतन की गुंजाइश ही न हो वह धार्मिक जीवन होना चाहिए।

पर ऐसा अनुभव नहीं आ रहा है। अनुभव तो यह है कि जो काम नहीं करते उनके जीवन में तो पाप है ही पर उन पापों ने मजदूरों के जीवन में भी प्रवेश कर लिया है। कई प्रकार के व्यसन उन्हें होते हैं। व्यभिचार भी करते हैं। माने केवल श्रम करने से कोई कर्मयोगी नहीं होता। हां, जो श्रम टालता है वह तो कर्मयोगी हो ही नहीं सकता। उसके जीवन में पाप है तो आश्चर्य नहीं, क्योंकि उनके पास समय फाजिल पड़ा है। जहां समय फाजिल पड़ा है वहां शैतान का काम शुरू होता है। इसलिए फुरसती लोगों के जीवन में पाप दिखता है तो आश्चर्य नहीं, पर मजदूरी करने वालों के जीवन में पाप दिखता है, तो सोचना चाहिए कि ऐसा क्यों होता है। ऐसा इसलिए होता है कि वे कार्य को पूजा नहीं समझते। कर्म लाचारी से करना पड़ता है इसलिए करते हैं। वे अगर काम से मुक्त हो सकें तो बहुत ही राजी हो जावेंगे। सच्चे कर्मयोगी की यह हालत नहीं होती है।

हम जेल गये थे। कुछ लोगों को सादी सजा थी। उन्हें मजदूरी करना लाजमी नहीं था। वे लोग ऐसे ही बैठे रहते थे। खाने को मिलता था, वह खा लेते थे पर उन्हें दूसरों से पाव तोला रोटी कम मिलती थी। उनकी शिकायत यह नहीं थी कि काम नहीं मिलता। वे तो खुश थे कि काम नहीं करना पड़ता। पर शिकायत यही थी कि दूसरों से पाव तोला रोटी कम क्यों मिलती है ? यह बात राजनैतिक कैदियों की कर रहा हूं। हमने उनके बीच निवास किया। उनके विचार समझ लिये और उन्हें समझाने की कोशिश की कि सरकार ने जो सादी सजा दी है वह सादी नहीं, भयंकर है। बिना काम किये खाना खुशकिस्मती नहीं है, बदकिस्मती है। अंगरेजों का राज है, पर यह जो खाते हैं वह अंगरेजों का नहीं खाते, वह तो अपने समाज का ही खाते हैं। उसके बदले में समाज को कुछ न दें यह गुनाह है। खुशी की बात है कि वे यह बात समझ गये और जब जेलर से काम मांगा, तो जेलर और सुपरिण्टेण्डेंट को आश्चर्य हो गया कि विनोबा ने यह क्या जादू किया।

जिन्हें काम दिया था वे काम टालने की कोशिश करते थे और जिन्हें काम नहीं दिया था वे मांग करने लगे। यह दृश्य देखकर चमत्कार-सा मालूम होने लगा। हमने, जो राजनैतिक कैदी थे, जेल का सारा आटा पीसने का जिम्मा ले लिया था। खुशी से काम होता था। फौरन जादू ऐसी चली कि जेल आश्रम बन गया। रोज शाम को चर्चा चलती और इतवार को धर्म-चर्चा चलती। गीता पर वहां मेरे प्रवचन हुए। वे ही आज किताब के रूप में छपे हैं और हजारों लोग उसे खरीदते हैं। उससे

लोगों के चित्त को समाधान मिलता है, शांति मिलती है, क्योंकि जेल में दोनों कर्मयोग में मग्न थे। एन जो कर्मयोग में मग्न होते हैं वे ही गीता का सार समझ सकते हैं। और उन्हींकी वाणी में ताकत आती है।

जहां कर्मयोग की भावना जेल में फैली वहां जेल, जेल नहीं रहा। या यूं कहिये जेल महल बन गया। वहां जो रूखा-सूखा मिलता था वह हराम का टुकड़ा नहीं, राम का टुकड़ा समझ कर खाते थे। जेल में जब बिदाई का समय आया तो सबको बहुत बुरा लगा। आज भी वे दिन स्मरण होते हैं और लगता है कि वैसा मौका वापस कब मिलेगा? अब तो स्वराज्य आ गया है। तो सिवा चोरी करने के जेल जाने का कोई उपाय ही नहीं है। या फिर कम्युनिस्ट बनो। बाहर वही खाना-पीना, वही काम करना चलता है, पर जहां कर्मयोग का विचार आया चित्त में यह बात बैठ गई कि बिना काम किये खाना पाप है, वहां सारा पाप मिट जाता है, और विष अमृत बनता है। हिन्दुस्तान में क्या, सारी दुनिया में फसल मजदूरों से ही होती है। इसलिए हर एक के लिए काम करना लाजमी है।

आज देहाती लोग भी कहते हैं कि हमारे बच्चों को तालीम मिलनी चाहिए। तालीम किसलिए मिलनी चाहिए। इसलिए नहीं कि लड़का ज्ञानी बनेगा, धर्मग्रन्थ पढ़ सकेगा और जीवन में हर एक काम विचारपूर्वक करेगा। पर इसलिए कि लड़के को नौकरी मिलेगी और हम जैसे दिनभर खटते हैं वैसे उन्हें खटना न पड़े। मजदूर भी ऐसा सोचते हैं। भाइयो, काम के प्रति ऐसी घृणा मजदूरों में भी है। काम न करनेवालों में तो है ही।

दिमागी काम करनेवाले लोग मजदूरों को नीच समझते हैं! ऐसी वृत्ति ही बन गई है। उन्हें तो काम से नफरत है ही पर मजदूरों को भी काम से नफरत है। वह मजदूरी तो करता है पर उसमें उसे गौरव नहीं लगता। किसी मेहतर को पूछो कि क्या करते हो तो वह बड़े दुःख से कहेगा कि मेहतर का काम करता हूं।

अच्छे माता-पिता चाहते हैं कि लड़की अच्छे घर में जाय। अच्छे घर के क्या लक्षण? जिस घर में पानी भी नहीं खींचना पड़े। जहां पानी भी नहीं खींचना पड़ता वहां उसे अनाज भी नहीं पचता और डाक्टरों के बिल भरने पड़ते हैं।

आपने सुना कि पार्वती ने कहा था कि मैं तो शंकर को ही वरूंगी। तो बड़े-बड़े ऋषि-महर्षियों ने कहा कि शंकर फकीर है, वहां जाकर क्या करोगी? किसी अच्छे घर में जाना। तो उसने कहा, मुझे उन्हीं के यहां जाना है।

रामायण में भी एक कहानी है। अच्छी है। सुनने लायक है। रामजी को वनवास हुआ, तो सीताजी ने कहा मैं भी आऊंगी। उसे आदत तो नहीं थी ऐसे जीवन की, पर उसने निश्चय किया था कि जहां रामजी वहां मैं। पर जब कौशल्या ने सुना तो कहा राम जायगा और सीता भी जायगी, तो सीता का कैसे होगा। मैंने तो उसे दीप की बाती भी जलाने नहीं दी। याने वहां भी काम की प्रतिष्ठा मानी नहीं गई। इसमें अच्छाई भी है कि श्वसुर के घर लड़की गई तो उसे बेटी के समान माना, पर मेहनत को हीन माना गया यह इसमें दिखता है।

कहते हैं लड़कों के खेलने का समय है, तो खेलने ही देना चाहिए। काम नहीं देना चाहिए। लड़कों की तालीम का समय है, तो तालीम ही लेने देनी चाहिए। काम नहीं देना चाहिए। तालीम के साथ-साथ काम देते हैं, तो वह फैक्टरी बन जाती है। मां भी अपने बच्चे से कहती है कि बेटा तू पढ़, अभ्यास कर। काम तो लड़की करेगी।

स्कूल में शिक्षक पढ़ायेंगे, विद्यार्थी पढ़ेंगे पर सफाई तो नौकर ही करेंगे। कचरा करने का काम अध्यापकों का और साफ करने का काम नौकर का।

धर्मराज ने राजसूय-यज्ञ किया था। कृष्ण भी वहां गये थे। कहने लगे, मुझे भी काम दो। धर्मराज ने कहा आपको क्या काम दें। आप तो हमारे लिए पूजनीय हैं। आदरणीय हैं। आपके लायक हमारे पास कोई काम नहीं है। भगवान ने कहा कि आदरणीय हूं तो क्या नालायक हूं? हम काम कर सकते हैं। तो धर्मराज ने कहा आप ही अपना काम ढूंढ लीजिये। तो भगवान ने क्या काम लिया? जूठी पत्तलें उठाने का और लीपने का।

यह उदाहरण हमारे सामने है, पर फिर भी विद्यार्थी-प्रोफेसर काम नहीं करेंगे, व्यापारी काम नहीं करेंगे। वह तो केवल लिखा-पढ़ी करेंगे। दस के सौ बनाना है तो दस गुना काम नहीं करता है, उसे तो केवल एक शून्य

उसपर रख देना है। और जो ज्ञानी हैं वे काम करेंगे तो बहुत बुरी बात है। ज्ञानी तो खा सकते हैं और आशीर्वाद ही दे सकते हैं। काम नहीं कर सकते। अगर कोई सवेरे उठकर पीसता है, तो वह ज्ञानी नहीं मजदूर कहलायगा। ज्ञानी को, योगी को, काम नहीं करना चाहिए। बूढ़ों को काम से मुक्त रखना ही चाहिए। बूढ़ों को काम देना निष्ठुरता मानी जायगी। याने बूढ़ा, बच्चा, योगी, ज्ञानी, व्यापारी, वकील, अध्यापक, विद्यार्थी किसी को काम नहीं करना चाहिए। इतना बेकार वर्ग खड़ा हो जायगा तो बेकारी बढ़ेगी। अगर ऐसा होता कि जो काम नहीं करता वह खाता ही नहीं, तो कुछ ठीक था पर वह तो अधिक खाने को मांगता है। ऐसी समाज-रचना जहां हुई है वहां मजदूर समझते हैं कि हमें भी काम करने से छुट्टी मिले तो अच्छा होगा। ऐसे समाज में जहां लोग लाचारी से काम करते हैं, वहां कर्मयोगी हो ही नहीं सकते। जो काम टालते हैं, जो काम नहीं करते हैं उनका जीवन धार्मिक होता ही नहीं। इस तरह अपना समाज दुराचारी बना है। इसका कारण अपने समाज में श्रम की प्रतिष्ठा नहीं रही।

ऐसे समाज में लोग जाकर समझाते हैं कि श्रम करना चाहिए, श्रम की बहुत प्रतिष्ठा है। लोग कहेंगे आप कहते हैं कि श्रम करना चाहिए, श्रम की प्रतिष्ठा है, तो आप क्यों श्रम नहीं करते? लोग कहते हैं हम दूसरा काम करते हैं इसलिए हमें श्रम नहीं करना चाहिए। तो भाइयो, यह सोचने की बात है।

शरीर-श्रम करनेवालों को हम नीच मानते हैं। उन्हें किसी प्रकार की छुट्टियां नहीं होतीं। मेहतर को अगर एक दिन की छुट्टी दें तो सारा गांव गन्दा हो जायगा। इतना जो उपकारी है, उसे हम नीच मानते हैं। उसे हम साफ रहने के लिए साबुन आदि भी नहीं देते। न उसे इज्जत है, न प्रतिष्ठा है, न सम्मान है। मेहतर याने क्या? मेहतर याने वो "महत्तर" ऐसा जो महत्तर है उसे हमने नीच माना।

महत्तर को तो नीच माना ही पर अपनी जो माता है उसे भी हमने नीच माना। शास्त्रों में आया है कि दस उपाध्याय के बराबर में एक शिक्षक और सौ शिक्षकों की बराबरी में एक पिता। और हजार पिताओं से भी एक माता बढ़कर है। माता का ऐसा गौरव दिया है। यह तो शास्त्र की बात है। पर हम स्त्रियों को हीन मानते हैं। स्त्रियां खेत पर मजदूरी के लिए जाती हैं, तो उन्हें मजदूरी कम देते हैं। स्त्रियों को तो ज्यादा देनी चाहिए क्योंकि उन्हें घर का भी सब देखना होता है। बच्चों का लालन-पालन करना होता है। ज्यादा तो नहीं देते, पर बराबरी का भी नहीं देते। हर जगह स्त्रियों को कम मजदूरी दी जाती है और स्त्रियों को भार समझते हैं। स्त्रियां तो रात-दिन काम करती हैं फिर भी उनका भार लगता है। क्योंकि श्रम की प्रतिष्ठा ही नहीं है। कहते हैं स्त्रियां उत्पादन का काम नहीं करतीं, सिर्फ रसोई करती हैं। सिर्फ रसोई क्या है यह हम समझते नहीं। रसोई उत्पादन का काम नहीं, तो क्या बढ़ई का उत्पादन का काम है? बढ़ई क्या करता है। काठ लेता है और उसमें नई चीज बनाता है। वैसे ही स्त्री आटा लेकर रोटी बनाती है। अगर नई चीज पैदा करने को उत्पादन कहो, तो ब्रह्मदेव के सिवा उत्पादन करने वाले और किसी को हमें पता नहीं है। किसान क्या करता है? परमेश्वर का पैदा किया बीज खेत में बोता है। उसमें हजार गुना बढ़ता है, तो वह भी तो परमेश्वर ही करता है। काठ की कुर्सी बनाना, चमड़े का जूता बनाना, याने एक चीज का दूसरी में रूपांतर करना है। हम नई चीज नहीं बना सकते। हम खुद ही बनाये गये हैं। हम कृति हैं, कर्ता नहीं हैं।

जैसे काठ की कुर्सी बनाना काठ का रूपांतर करना है वैसे ही गेहूं का आटा बनाना, रोटी बनाना रूपांतर है। इसे उत्पादन तब समझेंगे जब हमारी मातायें और बहनें कहेंगी कि हम रोटी बनायेंगे कहां, कि हमें अठारह आने रोज मिलें?

हम आरम्भ में शरणार्थियों में घूमते थे। सरकार ने पहले उन्हें कोई काम नहीं दिया था। आटा मिलता था और उसीकी रोटी बनाकर खाते थे। तो हमने क्या देखा? वहां के सारे लोग इधर-उधर बैठे हैं। हुक्का पी रहे हैं। मजा कर रहे हैं। पर स्त्रियां तो काम ही कर रही थीं। वे बेकार नहीं थीं। क्योंकि उन्हें पानी लाना, चूल्हा सुलगाना और रोटी बनानी पड़ती थी। याने स्त्रियां

कितनी भाग्यवान है। बेकार जमात की स्त्रियां भी बेकार नहीं है। पर स्त्रियां अपने को भाग्यवान नहीं समझती। वे तो यही कहती है कि पिछले जन्म में कोई पाप किये थे जो स्त्री का जन्म मिला।

पुराने जमाने में ब्राह्मण को और शूद्र को अलग-अलग पैसा मिलता था। दोनों के काम में भिन्नता थी। पर शास्त्रों में यह भेद नहीं था। शास्त्रों ने तो कहा कि दोनों को समान मोक्ष मिलेगा अगर प्रामाणिकता से अपना-अपना काम करेंगे।

आज तो प्रोफेसर को इज्जत भी ज्यादा और पैसा भी ज्यादा देते हैं। इसलिए दो बातें होनी चाहिए। हरएक को थोड़ा-थोड़ा श्रम करना चाहिये। अगर बिना काम किए खाते हैं, तो हमारा जीवन पापी बनता है। और दूसरी चीज, कामों का मूल्य समान होना चाहिए। यह जब होगा तब श्रम की प्रतिष्ठा होगी। आज तो श्रम करने वाले कहते हैं कि हमें ज्यादा छुट्टियां मिलनी चाहिए। आठ घंटे काम करना पड़ता है उसके बजाय सात घंटा काम होना चाहिए और छः घंटा हो जाय तो और भी अच्छा। ऐसा सब क्यों हो रहा है। इसलिए कि ऊपर के वैसा करते हैं। प्रोफेसर साल में ६ माह छुट्टी लेते हैं। मेहतर को तो छुट्टी दे ही नहीं सकते थे तो पोस्टमैन को छुट्टी देने लगे।

बेकारी बढ़ती है, तो उन्हें रिझाने के लिए सिनेमा शुरू हो गये। बेकारों को उद्योग तो नहीं मिला पर उनका तो वह मनोरंजन हुआ और सिनेमा वालों का उद्योग हो गया। और इतने बुरे-बुरे सिनेमा चले हैं कि पूछिए मत। पर कोई रोकता नहीं। कहते हैं कि रोकेंगे तो विधान के खिलाफ होगा। यह सब हमें मिटाना है और इसलिए हमने भूदान-यज्ञ और संपत्ति-दान शुरू किया है।

मुंगेर जिला के जमालपुर पड़ाव का प्रार्थना प्रवचन]

मृत्यु

देवराज 'दिनेश'

तुम्हारे साथ मानव ने सृष्टि के आदि से अटूट सम्बन्ध बनाए रक्खा, और अन्त तक उसे निभाना है।

जीवन के दुखों से ऊब कर उसने तुम्हारी शरण ली।

जीवन के सुखों में वह तुमसे भयभीत रहा।

ओह! और तुम उसके कितने निकट हो इसका उसने तनिक भी ज्ञान प्राप्त नहीं किया।

तुमने अंधकार की भांति व्यापक बन कर उसके जीवन को घेर रखा है।

चोरों ने तुम्हें मादक समझा।

विलासियों ने विष।

योगी तो तुमसे अठखेलियां करते रहे!

पर तुम क्या हो, इस रहस्य की खोज में रत मानव भी तुम्हें समझ न सका।

उसने तुमसे अधिक परिचय प्राप्त करना ठीक न समझा।

किन्तु तुम्हारे आने पर वह तुम्हारे साथ हो लिया!

तुम विषम समस्या हो। तुम्हें देख संसार चीत्कार कर उठता है। पर कलाकार मुस्करा पड़ता है। वह समझता है सृष्टि में मैं तो अमर हो चुका हूं।

तुम्हें अपनी हार पर खीझ तो होती होगी।

राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद

सावलियाविहारीलाल वर्मा

आत्मा की अमरता का ज्ञान कराने के पश्चात् जब भगवान ने अर्जुन के सुख और दुख को समान पल्डे पर रखकर, सफलता और असफलता का ख्याल न करते हुए, समत्व की भावना से प्रेरित होकर, युद्ध करने का आदेश दिया, तब अर्जुन ने स्वभावत यह जानने की जिज्ञासा की कि स्थित प्रज्ञ की पहचान किस भांति हो सकती है। उत्तर में भगवान ने जो स्थित प्रज्ञ की परिभाषा की वह सब समय और काल के लिए लागू है।

जो सब कामनाओ को त्याग कर अपनी आत्मा में सतुष्ट रहते हुए, न दुख में विह्वल हो जाता है और न सुख में आनन्द-मग्न, जो भय और क्रोध से शून्य है, जो मान अपमान में समभाव अनुभव करता है, वही स्थित-प्रज्ञ है।

प्राचीन भारतीय-साहित्य हमारे समक्ष स्थित-प्रज्ञ के अनेक उदाहरण उपस्थित करता है किन्तु वर्तमान काल में जब ससार भौतिक सुख साधनो को ही जीवन का चरम आदर्श समझता है, उस हालत में स्थित-प्रज्ञ का हमें विरले ही दर्शन होता है। आज ससार में कुछ ऐसी हवा सी बह चली है कि लोग ईश्वर का नाम लेने में सकोच करते है, शरमाते है। *भगवान में निष्ठा हुए बिना स्थित-प्रज्ञ होना सम्भव नही है।* चारवाक सिद्धान्त का अनुयायी वर्तमान सभ्य समाज, इसकी कल्पना भी नही कर सकता है कि स्थित प्रज्ञ की अवस्था प्राप्त करना सम्भव है और यदि सम्भव भी हो तो वे इसे प्रगति का चिन्ह नही मानते। वर्तमान सभ्य ससार स्थित प्रज्ञ की अवस्था को नपुसक की अवस्था मानता है। इसका विश्वास है कि यदि मनुष्य में आकाक्षा न होगी, सफलता पर आह्लादित होने की भावना न होगी तो प्रगति असम्भव है। क्योकि मनुष्य समृद्धि, मान, मर्यादा और उच्च पद प्राप्ति के लिए ही अनावरत प्रयत्न करता है।

किन्तु इस युग में भी महात्मा गाधी ने यह स्पष्टतया प्रमाणित कर दिया कि स्थित-प्रज्ञो की कहानिया जो हमारे प्राचीन ग्रन्थों में बिखरी पडी है वे कपोल कल्पित नही है और ईश्वर को पहचानने और याद रखने से मनुष्य का सारा जीवन शुद्ध, सुमस्कृत और पवित्र होकर गीता में वर्णित स्थित-प्रज्ञ की अवस्था प्राप्त कर सकता है।

गाधीजी तो चले गए किन्तु श्री विनोबा और राजेन्द्र बाबू को छोड गए जिन पर देश को अभिमान है। आज भी हम भौतिक सुख को ही जीवन की चरम परिणति समझने वालो को चुनौती दे सकते है। सयोग-वश भारत के इन दोनो महापुरुषो का स्थान और कार्य क्षेत्र जुदा-जुदा है और यह कम कौतूहल की बात नही है।

श्री विनोबा महात्मा गाधी के मार्ग पर चलते हुए जहा हमें कपिल और व्यास का स्मरण दिलाते है, वहा राजेन्द्रबाबू विदेह जनक का, जिनसे शुकदेव मुनि को भी पिता के आदेशानुसार ब्रह्म ज्ञान का उपदेश लेना पडा था।

लगभग ३५ वर्षो से मैं राजेन्द्र बाबू के परिवार में निकट सम्पर्क में रहा हू। आपके अग्रज महेन्द्र बाबू का तो मैं विशेष कृपापात्र था। इस प्रकार राजेन्द्रबाबू को सकट और सुख, दोनो समय निकट से देखने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हो चुका है। जब मैंने गीता का अध्ययन *करना आरम्भ किया तब दूसरे अध्याय में आते ही स्वत* राजेन्द्र बाबू हमारे सन्मुख आ गए और आज के चारवाक दर्शन के वस्तुत अनुयायी समाज में, हमें राजेन्द्र बाबू में स्थित-प्रज्ञ का प्रतीक पाकर स्वभावत सतोष हुआ।

राजेन्द्र बाबू ने राजनैतिक जीवन में अनेक कष्ट सहे किन्तु मैंने उन्हें कभी कष्टो से उद्विग्न होते न देखा। सौभाग्यवश मैं उस समय भी उनके पास था जब वे स्वतन्त्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति हुए। राजन्द्र परिवार से घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण स्वभावत हम आनन्द विह्वल हो गए थे। किन्तु उन्ही के भवन में एक साथ रहते हुए भी हम उनकी बातचीत, हावभाव, रहन-सहन से यह नही भाप सके कि वे भारत-गणतन्त्र में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने पर भी आनन्द अनुभव कर रहे है, अथवा नही। जनक

की कथा तो पुराणो के पन्नो मे भरी हुई है। कौन जाने वास्तव में विदेह जनक थे अथवा ग्रन्थकारो ने भावुक जनता के सन्मुख एक आदर्श प्रस्तुत कर दिया है, किन्तु वर्तमान जनक राजेन्द्र बाबू के सुख-दुःख की गाथा से जो निकट से परिचित है उन्हें विश्वास हुए बिना न रहेगा कि जनक की कथा कपोल कल्पित नहीं है। ऐसा महामानव वर्तमानयुग में भी पैदा हो सकता है।

राजेन्द्र बाबू से मैंने सन् १९५० मे एक बार प्रसगवश पूछा कि राष्ट्रपति के कार्यकाल के समाप्त होने पर आप क्या करेगे। उत्तर में स्वाभाविक रूप से आपने जो हृदयोद्गार व्यक्त किया कि वर्धा में रहूगा, वह हमारे कानो मे सदा सर्वदा गूजता रहेगा। उनके निश्छल भावसे कहने के ढग से यह स्पष्ट था कि राष्ट्रपति के जीवन और वर्धा आश्रम के जीवन मे उनको कोई अन्तर नही मालूम दे रहा था। दोनो स्थानो मे वे एक रूप से आनन्दानुभव कर सकते है।

भारत के सौभाग्य से गीता म दर्शाए स्थित-प्रज्ञ का ज्वलन्त उदाहरण, हमारे राष्ट्रपति ३ दिसम्बर को अपने ७०वें वर्ष मे पदार्पण कर रहे है। भगवान से प्रार्थना है कि वे उन्हे लम्बी आयु दें जिससे देश और समाज की सेवा के साथ-साथ हमारे सामने स्थित-प्रज्ञ का एक जीता जागता रूप उपस्थित रहे।

३ दिसम्बर हमारे राष्ट्रपति की जन्म तिथि है।

गांधीवाद और साम्यवाद

आचार्य विनोबा भावे भी बराबर हम लोगों से कहते रहे हैं कि "इन दोनों दृष्टिकोणों में कोई भी सामंजस्य सम्भव नहीं है और उनके मतभेद मौलिक हैं।" जब विनोबाजी से यह कहा गया कि गांधीवाद और साम्यवाद का मूल अन्तर यही है कि गांधीवाद बड़ी कड़ाई के साथ अहिंसा पर जोर देता है तो विनोबाजी ने कहा—"दो व्यक्ति एक दूसरे से इतना अधिक मिलते-जुलते थे कि किसी भी राजनीतिक जाल-बट्टे में एक दूसरे का स्थान ले सकता था। पर एक थोड़ा-सा फर्क था। वह यह कि एक सांस ले रहा था, तो दूसरे की सांस बन्द हो गई थी।" आचार्य विनोबा भावे ने कई मर्तबा कहा है कि "अन्ततोगत्वा यह गांधीवाद ही होगा जिससे साम्यवाद को अपनी ताकत आजमानी होगी।" उनकी तो राय वास्तव में यह है कि मार्क्सवाद और पूंजीवाद में अधिक समानता है, कारण दोनों भौतिक आवश्यकताओं और शारीरिक सुविधाओं को अधिक महत्व देते हैं, नैतिक स्तरों और आध्यात्मिक उत्थान को कम। महात्मा गांधी "बोलशेविज्म को आधुनिक भौतिकवादी सभ्यता का आवश्यक फल" मानते थे और उन्होंने कहा था "जहां तक यह (बोलशेविज्म) हिंसा और अनीश्वरवाद पर आधारित है वहां तक मैं उससे दूर भागता हूं।"

सर्वोदय और मार्क्सवाद म एक और महत्वपूर्ण अन्तर है। गांधीजी के ऐसे अहिंसक एवं सर्वोदयी समाज की बुनियाद ही जनतन्त्रवाद पर है। उनका यह भी निश्चित मत था कि एक सर्वोदयी शासन सत्ता के स्वास्थ्यकर विकास के लिए भी राजनीतिक और आर्थिक शक्तियों का केन्द्रित होना घातक है। पर मार्क्सवादियों की दृष्टि में "जनतन्त्रवाद एक पूंजीवादी धारणा है, जिसे क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग को उखाड़ फेंकना होगा" (लेनिन) ट्राट्स्की ने भी इसी विचार का प्रतिपादन किया। उसने कहा है, "जनतन्त्रवाद निर्लज्ज एवं वृथा ढोंग है"। अपनी पुस्तक "शासनसत्ता और क्रान्ति" में लेनिन ने स्पष्ट कर दिया है कि कम्युनिस्ट चाहते है कि "उन्हें ऐसा अवसर मिले कि वह पूंजीवादी शासनिक मशीनरी और उसके जनतान्त्रिक रूप को कुचल दें, टुकड़े-टुकड़े कर दें और पृथ्वी से उसका नामोनिशां मिटा दें।"

—श्रीमन्नारायण अग्रवाल

भूदान और विचार-क्रान्ति

श्री जयप्रकाशनारायण

इधर कई महीनो से मैं विविध प्रातो में घूम रहा हू। इस सिलसिले में मुझे कई तरह के अनुभव हुए है। शिक्षित लोगो से बात करने का जो मौका मिला, उससे मानना पड़ेगा कि विचार-क्रान्ति का हमारा काम पढ़े-लिखे लोगो के बीच जैसा होना चाहिए वैसा नही हो रहा है। मैंने प्रेस के प्रतिनिधियो से भी बाते की है उनसे भी प्रचार करने को कहा है। कार्यकर्ताओ की कमी की बात प्राय सभी लोगो ने कही है। यह तो सही है जो लोग अपने को गाधीजी के अनुयायी बताते है उनका भी सक्रिय सहयोग नही मिल रहा है। (आन्दोलन का समर्थन वे अवश्य करते है) दूसरे लोगों का तो कहना ही क्या है। इस बात की बहुत जरूरत है कि युवको को भूदान का क्रान्तिकारी विचार समझाकर इस काम की ओर आकर्षित किया जाय। इसके लिये शिविरों का आयोजन करना चाहिए। देहात के दाताओं में से भी कुछ कार्यकर्त्ता निकल सकते है। विनोबाजी ने तो कुछ राजाओ को भी कार्यकर्त्ता बना लिया है। यह तो एक चमत्कार ही है।

कोई-कोई राजनीतिक कार्यकर्त्ता ऐसा समझ सकते है कि दल से छुटकारा होना चाहिए पर मै एक नई सभावना देखता हू कि दल के बिना भी समाज का रूप बदल सकता है। पर प्रजा समाजवादी पार्टी के ही बहुत से लोग इस बात को स्वीकार नही करते है। वे ऐसा मानते है कि क्रांतिकारी परिवर्तन का साधन दल ही हो सकता है। मै अक्सर उनसे बहस करता हू पर मुझे इतनी सफलता नही मिली है। मार्क्सवाद तत्व में यह भी है कि जो दल होते है वे वर्गों से बनते है। अत जबतक वर्ग है तबतक दलो की जरूरत होगी। अगर हम भूदान के जरिये वर्ग खत्म कर दें, तो दल के माध्यम की जरूरत नही रहेगी।

हम कैसा समाज बनाना चाहते है, उसका विचार स्पष्ट होना चाहिए। सर्वोदय वादियो को प्रवाह के विरुद्ध काम करना पड रहा है। इसलिए विचार को सफाई की ओर भी अधिक जरूरत है। लोग यह भी समझना चाहते है कि उद्योग और व्यापार के क्षेत्र में सर्वोदय क्या करना चाहता है। कुछ पूजीपतियो से भी मेरी बातचीत हुई। उन्होंने मुझसे कहा कि आजकल राष्ट्रीयकरण की जो चर्चा होती है उससे भयभीत होकर पूजीपति नये उद्योगो में रुपया लगाना नही चाहते है। इससे औद्योगीकरण रुकता है, और देश का नुकसान होता है। मैंने उत्तर दिया कि मेरे ऐसे लोग यदि आपकी बात मान भी ले, तो जमाना तो रुकनेवाला नही है, इसलिए जैसे भूमिपति समझ रहे है कि जमीन रहनेवाली नही है, उसी तरह आपको भी समझना चाहिए कि यह सम्पत्ति जाने वाली है। यदि आप मुनाफे के बिना देश की सेवा नही कर सकते है तो यह आपके लिए शोभा की बात नही है। गाधीजी की ट्रस्टीशिप की बात भी मैंने इनसे कही। वे जवाब देते है कि यदि गाधीजी होते तो उनके पास हम पूजीपति जाते और वे जो कहते उसपर दस्तखत करके चले आते पर अब क्या करे। इसलिए यह जरूरी है कि गाधीजी के विचारो को अमल करने के लायक रूप में रखा जाय।

बेदखली के बारे में विनोबाजी ने जो कुछ कहा है, उससे अधिक करना भूदान कार्यकर्त्ताओ के लिए न उचित है और न सम्भव, पर एक दूसरा पहलू है उस आदमी के जीवन का, जो बेदखल हो रहा है। कचहरी में वे कुछ कर ही नही सकते, और ऐसी स्थिति पैदा हो सकती है जब हम उसके लिए कुछ अधिक न कर सके तब वे स्वय कुछ करने को उतारू हो जाय। ऐसी अवस्था में भूदान कार्यकर्त्ताओ का क्या रुख होगा और उनकी मदद हम कैसे कर सकेंगे यह जानना जरूरी है।

भूमि तो सबकी जननी है

नटवर लाल 'स्नेही'

नहीं दान का प्रश्न, भूमि तो सबकी जननी है।

दान नही, यदि स्वत्व किसी का कोई देता है,
दैन्य नहीं यदि वस्तु स्वयं की कोई लेता है।
मां का प्यार समान सभी पर रवि-किरणो जैसा,
वह तो सबका 'स्वत्व' सहज कवि के वरणों जैसा।

आज युगों से रूठी मन की सम्मति मननी है।
नही दान का प्रश्न भूमि तो सबकी जननी है।

नहीं शस्त्र से काट सका कोई रत्नाकर को,
काट सका कोई न सुविस्तृत नीले अम्बर को।
बांट सका कोई न जननि के ममतामय मन को,
बांट सका दुर्मानव केवल धरती के तन को।

दस्यु भावना यह जन-जन के मन की हननी है।
नही दान का प्रश्न भूमि तो सबकी जननी है।

जननी की ममता अपहृत है कुछ पुत्रों द्वारा,
कुछ पुत्रों तक पहुंच नहीं पाती ममत्व-धारा।
है कुछ गृह आलोक और कुछ गृह मे अंधियारा,]
इसीलिए तो गूंज रहा 'सम वितरण' का नारा।

मां की पावन गोद सभी को सुखकर बननी है,
नहीं दान का प्रश्न, भूमि तो सबकी जननी है।



भारत का देहाती बोला

गुरुदयाल मल्लिक

(१)

सुदूर *पश्चिम से आये हुए समाज-सुधारक और ग्राम-सेवक* से भारत के शाश्वत देहाती ने यों कहा :

"तुम्हारा स्वागत है परदेसी ! हमारे इस सूने अभावों से लदे और कर्ज़ से बोझिल गांव में, जिसे सरकारी सेक्रेटेरिएट और शहराती इन्सान दोनों ने बेगाना समझ कर छोड़ दिया है। मेहमान की जी से सेवा करना हमारा पुराना धर्म है। तुम सात समुन्दर लांघ कर हमारे पास आए हो, मगर हमारी आंखों की गंगा-जमना हमें अलग नहीं करेगी—बल्कि एक दूसरे से जोड़ने के लिए सेतु का काम देगी। इसलिए एक बार फिर तुम्हारा स्वागत है। परदेसी ! भरोसा रखो, हमारे दिल का प्यार तुम्हें जल्द ही अपने सगे भाई से बढ़ कर समझने लगेगा, क्योंकि आखिर हमारा हित करने के लिए ही तो तुम आए हो। और हमारे बाबा गोसाईं तुलसीदास कह गये हैं कि "पर-हित सरिस धरम नहिं भाई"। एक दिन अबेर-सबेर—सारी दुनिया को इसी धरम के मुताबिक ही तो चलना होगा।

"सो हे सुनहरी दुनिया के मेहमान ! हमपर दया करना ही काफी नहीं होगा, बल्कि हमारे सुख-दुख को तुम्हें खुद भी महसूस करना होगा। तभी तुम्हें मालूम होगा कि वह कौन-सी चोट है, जो हमें घायल कर रही है और वह कौनसा दर्द है जो हमारे दिलों में टीस रहा है। बाहर *और भीतर की गरीबी ने जुग-जुग से हमें जकड़ रखा है* और हम एक ऐसे बुरे सपने को कलेजा थामकर देख रहे हैं जिसमें निस्तार नहीं मिलता। नींद टूटे बिना निस्तार मिले भी तो क्योंकर ?

"मगर एक विनती है। हमारे दुख दूर करने के लिए जल्दबाजी से काम न लेना। प्रसव की पीड़ा से छटपटाने वाली नारी की सेवा करने के लिए जिस तरह कुशल धाय धीरज से काम लेती है, वैसे ही हमारी तकलीफों की तरफ तुम्हें धीरज रखना होगा। यकीन रखो, भाई हमारे, कि जहां इन्सान ने इन्सान की तरफ भाईचारे की भावना को *भुला दिया है, वहां भगवान् ने हमें अवश्य भी लाइलाज* समझ कर नहीं छोड़ा। इसलिए हमारी सबसे बड़ी सेवा यह है कि हमें इस सचाई में और भी भरोसा रखना सिखा दो कि हर इन्सान के दिल में भगवान् का निवास है। यह हकीकत कभी-कभी हमारी नजरों से ओझल हो जाती है या फिर उसकी सचाई में हमें शुबहा होने लगता है, जब हम देखते हैं, कि हमारा बोझ अब बर्दाश्त से बाहर हो गया है।

"अतएव हे धात्री देवता, नवजन्म-दान की हमारी प्रसव-वेदना को कुछ सहने योग्य बनाने के लिए तुम्हें असीम धैर्य से काम लेना होगा। अवश्य ही यदि हमारे हृदय में निवास करनेवाले परमात्मा में तुम्हारी श्रद्धा होगी, तो ऐसा करना तुम्हारे लिए सहज हो जायगा। कहते हैं, श्रद्धा-विश्वास में पहाड़ों को हिलाने की शक्ति होती है, यही नहीं; पहाड़ को राई में बदल देने की ताकत होती है। इसलिए आओ, हमारी इस दैनिक प्रार्थना में शामिल हो जाओ, "प्रभु, हमें जीवात्मा की एकता में जीना सिखा दो जिससे हम सदा ऊंचे चढ़ने की लौ जगाए रहें और निरन्तर उसे सच बनाने के लिए कर्म करते रहें।"

(२)

गांव में आने पर दूसरे ही दिन अजनबी ने गांववालों की प्रातःकालीन प्रार्थना में योग दिया। वे लोग पूरब की तरफ मुंह करके चुपचाप सूर्योदय की बाट जोह रहे थे। पोखर के किनारे के ताड़ के पेड़ों के पीछे जैसे ही निःशब्द सूर्योदय हुआ, सबके मस्तक बरबस झुक गए और हाथ अनायास नमस्कार की मुद्रा में जुड़ गए। कुछ क्षण इसी नीरव प्रार्थना में बीते। चारों ओर के सूने आकाश ने इस नीरवता को और भी गहरा कर दिया। अन्त में गांव के मुखिया ने गंभीर स्वर में प्रार्थना शुरू की और ग्रामवासियों ने उनके स्वर में स्वर मिलाया।

"हे प्रेममय प्रभु, हृदय के राजा, जिस तरह सूर्य का

प्रकाश संसार के अंधेरे को दूर करता है उसी तरह तुम हमारे मन के अंधेरे को दूर करो। जब तक तुम्हारा उज्ज्वल आलोक हमारे चित्त को प्रकाशित नही करता, तब तक हम अपने-आपको, तुम्हारे उद्देश्य को और इस सृष्टि को नही समझ सकते। जब हमारे मन का सुर तुम्हारे सुर से एक हो जायगा, तभी हम तुम्हारी योग्य सन्तान और सेवक के हृदय से अपना परिचय दे सकेंगे।"

ग्रामीणो के कंठ से निकली हुई ओंकार-ध्वनि मे सारा वातावरण गूंज उठा—उसकी प्रतिध्वनि सर्वत्र समा गई।

(३)

तीसरे दिन आगन्तुक गाववालो की साझ की प्रार्थना में शामिल हुआ। सूरज डूब रहा था और प्रकृति के रमणीक मन्दिर में ग्रामीणो का कण्ठ स्वर उद्घोषित हो रहा था :

"हे मंगलमय, जिस प्रकार तुम स्वयं सदा सर्वत्र विद्यमान हो, उसी प्रकार सूर्य भी हमारे बीच सदा-निवासी हो। तुम्हारी सत्ता का सूर्यालोक हमारे हृदय के गहनतम अन्तर में सर्वदा चमकता रहे और हमारे भावों, विचारो तथा कर्मों को उद्भासित करता रहे।"

प्रार्थना के उपरान्त सम्मिलित कंठो की ओंकारध्वनि ने वातावरण में फिर एक पवित्रता तथा आत्मा के मौनमय स्वर की लहर दौड़ा दी। तब गाव के मुखिया ने अतिथि से प्रार्थना की कि वे सामाजिक जीवन-प्रणाली के विषय में गाववालो को कुछ समझाए। सबको नमस्कार करके अतिथि ने कहना आरम्भ किया—

"प्रभु की प्रेममयी सत्ता में नेह के बन्धनो से बंधे मेरे बन्धुओ! सामाजिक जीवन-प्रणाली प्रभु के अस्तित्व का बाहरी प्रकाश है, जिस तरह प्रेम उनके आध्यात्मिक प्रकाश का परिचायक है। इस सबसे बड़े सत्य को हम सम्मिलित परिश्रम, सम्मिलित भोजन और सम्मिलित मनोरंजन के भीतर से व्यक्त करते है।

"हम उन्ही एक प्रभु की नीरव उपासना करते हैं जो नाम और रूप की सीमाओं में नही बंधे, जो आचार-विचार की जजीरो मे नही जकडे, जो शुद्ध और मुक्त हैं।

"हम सबकी भलाई के लिए अपनी-अपनी शक्ति और योग्यता के अनुसार पूरा परिश्रम करते हैं।

"हम जो भोजन करते हैं उसपर पशुता की स्थूल छाप नही होगी।

"हमारे मनोरंजन और मनोविनोद के साधन आत्मा की सहज प्रसन्नता को प्रकट करेंगे, इन्द्रियों की दासता को नही।

"संक्षेप में हमारा सम्मिलित समाज-जीवन पवित्रता को पाना चाहेगा; बाहरी तडक-भडक का दिखावा नही करना चाहेगा। हमारा बड़प्पन आत्मा का बड़प्पन है, स्थूलता का नही। हम पूर्णता को प्राप्त करना चाहते हैं—केवल सुख-समृद्धि और विलास-वैभव को नही।"

और तब भारत के शाश्वत देहाती तथा पश्चिम के समाज-सेवक ने मिलकर अपने खेत के हल को हाथ लगाया—इस भावना से कि प्रकृति के साथ जब वे सहयोग करेंगे और धरती माता को अपनी सेवा से प्रसन्न करेंगे तो भारत के सूने गावो में—नहीं, सारे पूरब के कर्ज मे बोझिल और अभावो से लदे ससारों मे सुख-शाति का साम्राज्य स्थापित होगा। उनका श्रम सुदूर भविष्य के सुनहले स्वप्न को निकट ला सकेगा। तथास्तु!

●

आलोक

एक सूरदासजी हाथ में लालटेन लिये हुए सबसे पुकार कर कह रहे थे – "दाहिनी ओर के भयंकर गड्ढे से बचना, भैया!"

एक राहगीर ने पूछा—"सूरदासजी! आपके लिए तो बाहर की दुनिया निपट अंधेरी है। फिर भला आप लालटेन दिखाकर क्यों पथ-प्रदर्शन करते हो?"

सूरदासजी ने हंसकर उत्तर दिया—"इसलिए कि मेरी भीतरी दुनिया में आलोक है।"

भगवान् बुद्ध की मानवता

भरतसिंह उपाध्याय

भगवान बुद्ध देव और मनुष्यो के शास्ता थे, देवातिदेव थे। परन्तु सबसे पहले वे मनुष्य थे। मनुष्य बढकर देवता बनता है—यह प्राचीन मान्यता थी। आज भी हम मनुष्यत्व के ऊपर देवत्व की बात कहते है। परन्तु तथागत ने इस क्रम को उल्ट दिया। उन्होने कहा, "यह जो *मनुष्यत्व है वही देवताओ का सुगति प्राप्त करना* कहलाता है।' "मनुस्सत्त खो भिक्खवे देवान सुगतिगमनसखात।" देवता जब सुगति प्राप्त करता है तब वह मनुष्य बनता है। देवताओ में विलास है। राग, द्वेष, ईर्ष्या और मोह भी वहा है। निर्वाण की साधना वहा नही हो सकती। इसके लिए देवताओ को मनुष्य बनना पडता है। मनुष्यो में ही बुद्ध-पुरुष का आविर्भाव होता है, जिसको देवता नमस्कार करते है। अत मनुष्य-धर्म देवता धर्म से उच्चतर है, जैसे कि विराग भोग से महत्तर है।

मानवता-धर्म का उपदेश देने वाले भगवान तथागत स्वय मानवता के मूर्तिमान रूप थे। यहा हम उनके जीवन से सबधित कुछ प्रसगो और घटनाओ का उल्लेख करेंगे ताकि उनके व्यक्तित्व में पैठी हुई गहरी मानवता के कुछ दर्शन हम कर सकें जो हमारे लिए कल्याणकारी हो।

भगवान का परिनिर्वाण होनेवाला है। रात का पिछला पहर है। भिक्षु भगवान की शय्या को घेरे हुए बैठे है। भिक्षु सघ को भगवान अन्तिम उपदेश दे रहे हैं। शास्ता कह रहे है, "भिक्षुओ! बुद्ध, धर्म और सघ के सम्बन्ध में यदि किसी भिक्षु को कुछ शका हो तो पूछ लो।! पीछे अफसोस मत करना—शास्ता हमारे सम्मुख थे, किन्तु हम भगवान से कुछ पूछ न सके।" कोई शिष्य नही बोलता, सब मौन है। तीन बार भगवान कहते है किन्तु कोई भिक्षु पूछने को नही उठता। भगवान को शका हो जाती है कि कही शास्ता के गौरव का विचार कर तो शिष्य पूछने में सकोच नही कर रहे। अत कारुणिक शास्ता फिर कहते है, "शायद भिक्षुओ! तुम शास्ता के गौरव के कारण नही पूछ रहे। तो भिक्षुओ! जैसे मित्र (सहायक) मित्र से पूछता है वैसे तुम मुझसे पूछो।" "सहायको पि भिक्खवे सहायकस्स आरोचेतूति।" शास्ता शिष्यो की समान भूमि पर आ जाते है। उन्हें चिन्ता है कि उनका विशाल लोकोत्तर व्यक्तित्व शिष्यो के कल्याण में बाधक न बने। अत वे उनके सखा बनते हैं ताकि शिष्य नि सकोच भाव से उनसे पूछ सकें। *धर्म-स्वामी की यह विनम्रता* मनुष्य-धर्म की आधार भूमि है। भगवान बुद्ध ने अपने को भिक्षुओ का 'कल्याण-मित्र' (आध्यात्मिक मित्र) कहा है जो उनकी मानवीय सहृदयता और विनम्रता को सूचित करता है। वे अपने शिष्यो के शास्ता है और उससे बढकर वे उनके मित्र या 'कल्याण मित्र' है।

एक दूसरा दृश्य भी भगवान के परिनिर्वाण के समय का है। चुन्द कर्मारपुत्र (सोनार) के यहा भगवान ने अन्तिम भोजन किया था। उसके बाद ही भगवान को खून गिरने की कडी बीमारी उत्पन्न हो गई थी, जो उनके शरीरान्त का कारण बनी। तथागत को चुन्द कर्मारपुत्र के हृदय का बडा ख्याल था। भक्त उपासक को यह अफसोस हो सकता था कि उसका भोजन करके ही भगवान परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। इसलिये शरीर छोडने से पूर्व भगवान आनन्द को आदेश देते है, "आनन्द! चुन्द कर्मारपुत्र की इस चिन्ता को तू दूर करना और कहना, आयुष्मान्! लाभ है तुझे, तूने बडा लाभ कमाया कि तेरे भोजन को कर तथागत परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। आनन्द! चुन्द कर्मारपुत्र की चिन्ता को तू दूर करना।" जिसके हृदय में अगाध करुणा का अधिवास था, वह ऐसा क्यो न कहता?

कितना क्रियाशील था तथागत का जीवन! जिस रात को उनका परिनिर्वाण हुआ और जब कि वे रुग्ण और क्लान्त शय्या पर पडे हुए थे उन्होने रात के पहले पहर में कुसीनारा (कुशीनगर) के मल्लो को उपदेश दिया, बीच के पहर में सुभद्र को और पिछले पहर में भिक्षु सघ को उपदेश देकर बहुत प्रात ही

महापरिनिर्वाण में प्रवेश किया। यह सुभद्र कौन था, जिसे मध्य रात्रि मे उपदेश देने के लिए भगवान ने उस अवस्था में समय निकाल लिया ? सुभद्र एक परिव्राजक था जो अपनी शंकाओं को लिए हुए उस विषम घडी में भगवान् गौतम बुद्ध से मिलने आ निकला। आनन्द ने उसे यह कहकर ठीक ही रोक दिया, "सुभद्र तथागत को तकलीफ मत दो। भगवान् थके हुए हैं।" भगवान् ने आनन्द की बात सुन ली। उन्होंने आनन्द से कहा, "नहीं आनन्द! सुभद्र को मत मना करो। सुभद्र को तथागत का दर्शन पाने दो। वह परम ज्ञान की इच्छा से पूछना चाहता है, तकलीफ देने की उसकी इच्छा नहीं है। पूछने पर जो मैं उससे कहूंगा, उसे वह जल्दी ही जान लेगा।" मध्य रात्रि मे उस अवस्था में, सुभद्र को भी तथागत से उपदेश सुनने का सौभाग्य मिला। अधिकारी शिष्य को उपदेश करने के लिए तथागत के पास कोई असमय न था।

वह एक बडी दुखियारी स्त्री थी। पति, पुत्र, परिवार सब उसका नष्ट हो गया था। शोकातिरेक में वह पागल हुई फिरती थी। कपडे पहनने का होश उसे कहां था ? वह नगी ही फिरती थी। नाम उसका पटाचारा था। एक दिन घूमती हुई जेतवन आराम मे ही आ निकली, जहां भगवान् ठहरे हुए थे। सीधी विहार की ओर आती हुई उस नग्न उन्मत्त स्त्री को देख पुरुषों ने कहा, "यह पागल है, इसे इधर मत आने दो।" परन्तु भगवान् ने उन्हें रोकते हुए कहा, "इसे मत रोको।" जैसे ही स्त्री समीप आई भगवान् ने कहा, "भगिनि! स्मृति लाभ कर।" स्त्री को कुछ होश आया, लोगो ने उस पर कपड़े डाल दिये जिन्हें उसने ओढ लिया। स्त्री फूट-फूट कर रोने लगी। भगवान् ने कहा, "पटाचारे! चिन्ता मत कर। शरण देने मे समर्थ व्यक्ति के पास ही तू आगई है।" भगवान् ने अपने उपदेशामृत से उसके शोक को दूर किया और वह एक प्रमुख साधिका हुई। करुणा, विशेषतः स्त्री जाति के प्रति करुणा, जिसके जीवन को भगवान् पुरुष के जीवन से अधिक दुःखमय मानते थे, तथागत के स्वभाव की एक प्रमुख विशेषता थी।

तथागत ने अपने व्यक्तित्व को धर्म के रूप में खो दिया था। यदि प्रसेनजित् तथागत के प्रति अपूर्व सत्कार प्रदर्शित करता था, यदि अनेक देश और विदेश के लोग तथागत की पूजा करते थे तो इसका कारण स्वयं भगवान् बुद्ध की मान्यता के अनुसार धर्म ही था। तथागत उत्पन्न हों या न हों धर्म-नियामता फिर भी रहती है, ऐसा उनका कहना था। इसलिए अपने बाद धर्म की शरण में ही उन्होंने भिक्षु-संघ को छोडा था। परिनिर्वाण प्राप्त करते समय उन्होंने भावनापूर्ण शब्दो मे आनन्द से कहा था "आनन्द! शायद तुमको ऐसा हो कि हमारे शास्ता तो चले गये। अब हमारे शास्ता नहीं हैं। आनन्द! ऐसा मत समझना। मैंने जो धर्म और उपदेश किये हैं वही मेरे बाद तुम्हारे शास्ता होंगे।" भगवान् नहीं चाहते थे कि उनके शिष्य उनसे चिपटे रहें। उनको 'आत्मदीप', 'आत्म शरण' बनने का उपदेश था। इसलिए जब आनन्द ने भगवान् के परिनिर्वाण के समय उनसे पूछा कि 'तथागत के शरीर के प्रति हम क्या करेंगे' तो उन्होंने यही उत्तर दिया, 'आनन्द! तथागत की शरीर पूजा से तुम बेपर्वाह रहो।' 'अब्यावटा तुम्हे आनन्द होथ तथागतस्स सरीरपूजाय'। तथागत अपनी शरीर-पूजा नहीं चाहते। वे चाहते हैं कि हम सच्चे अर्थ में लगे। तथागत ने अपने व्यक्तित्व को धर्म में खो दिया। यह उनकी अनासक्ति थी। परन्तु जब उन्होंने धर्म को बेड़े के समान तरने के लिए, न कि पकड़ रखने के लिए बतलाया तब तो उन्होंने धर्म से भी आसक्ति छोड़ देने का उपदेश दिया। सब धर्म की शरण में छोड़ा गया और धर्म से बुद्ध एकाकार किये गये। बाद में प्रयोजन पूरा हो जाने के बाद धर्म को भी छोड देने का आदेश दे कर भगवान् ने उस अनासक्ति योग का उपदेश दिया है जो इस लोक की सीमा के पार ही देखा जा सकता है।

महापुरुषों के जीवन-काल में ही उनके दैवीकरण की प्रवृत्ति प्रायः दिखाई पड़ने लगती है। भगवान् इसके प्रति बडे सचेत थे। वे नहीं चाहते थे कि लोकोत्तर दैवी पुरुष की तरह उनकी पूजा हो या गुरुवाद उनके धर्म में फैले। इसलिए जब एक बार उनके महाप्रज्ञ शिष्य धर्मसेनापति ने उनसे कहा, "भन्ते! मेरा ऐसा विश्वास है कि सबोधि मे भगवान् से बढ़कर कोई दूसरा श्रमण या ब्राह्मण न हुआ, न होगा, न इस समय है।" तो भगवान् ने उलटे हाथ लेते

हुए सारिपुत्र से कहा, "सारिपुत्र ! तूने बहुत उदार वाणी कही। बिलकुल सिंहनाद ही किया। सारिपुत्र! अतीतकाल में जो सब ज्ञानी पुरुष हुए है क्या तूने उन सबको अपने चित्त से जान लिया है ! " धीमे स्वर में सारिपुत्र ने उत्तर दिया, "नही भन्ते ।" इसी प्रकार वर्तमान और भविष्य के ज्ञानियो के सबध में पूछे जाने पर भी सारिपुत्र को 'नही भन्ते' कहना पड़ा। "तो सारिपुत्र जब तेरा अतीत, वर्तमान और भविष्य के ज्ञानियो के सबध में ज्ञान नही है, तो तूने यह उदार वाणी क्यो कही ?"

तथागत अपनी शरीर-पूजा नही चाहते थे। वे नही चाहते थे कि इष्टदेवकी तरह लोग उनकी पूजा करें। इसके सबध में एक महत्वपूर्ण प्रसग और है। वक्कलि नामक उनका एक अनुरक्त भिक्षु शिष्य था। एक बार वक्कलि बीमार पडा। उसने अपने एक साथी भिक्षु द्वारा इच्छा प्रकट की कि वह भगवान् के दर्शन करना चाहता है। भगवान् उसकी इच्छा को पूरी करने के लिये उसके पास गये। दूर से ही भगवान् को आता देखकर वक्कलि उनके सम्मानार्थ एव उनके लिए आसन देने के लिए चारपाई पर इधर-उधर हिलने लगा। भगवान् ने करुणापूर्वक उसे रोकते हुए कहा कि अलग आसन तैयार है, उसे हिलने-डुलने की आवश्यकता नही है। भगवान् बिछे आसन पर बैठ गये। वक्कलि ने भगवान् की वन्दना करते हुए उनसे निवेदन किया कि उसे उनके दर्शन की बडी इच्छा थी जिसे कृपापूर्वक उन्होने पूरा कर दिया है। भगवान् ने कोमल शब्दो में वक्कलि से कहा, "शात वक्कलि ! जैसी तेरी गन्दी काया है वैसी ही मेरी 'काया' है। वक्कलि ! इस गन्दी काया को देखने मे क्या लाभ ? वक्कलि ! जो धर्म को देखता है वह मुझे देखता है, जो मुझे देखता है वह धर्म को देखता है।" भगवान् बुद्ध का अपने शरीर के सबध में अपने शिष्य से यह कहना कि 'इस गन्दी काया के देखने से क्या लाभ ?' (किमिना पूतिकायेन दिट्ठेन), एक ऐसी साहसिक वाणी है, जिसे कोई धर्मशास्ता गुरु शिष्य या शिष्यो से आज तक नही कह सका है। रूप की आसक्ति तथागत की बिलकुल नष्ट हो गई थी। और उसे दूर किये बिना कोई बुद्ध शिष्य नही बन सकता।

भगवान् बुद्ध श्रमण थे, परन्तु गृहस्थो के प्रति सहानुभूति से रहित नही थे। कोलिय-दुहिता सुप्रवासा ने, जो गर्भ की असह्य वेदना से पीडित थी, जब अपने पति के द्वारा भगवान् के चरणो में अपना प्रणाम अर्पित कराया था, तो भगवान् ने उसे आशीर्वाद देते हुए कहा था, "कोलिय-पुत्री सुप्रवासा सुखी हो जाय, चगी हो जाय। सुखी और चगी होकर वह बिना किसी कष्ट के पुत्र प्रसव करे।" इसी प्रकार ब्राह्मणो के साथ भी जैसे कि विश्व के सब प्राणियो के साथ भी, भगवान् की पूरी सहानुभूति थी। बावरि ब्राह्मण के शिष्य ने जब अपने गुरु की ओर से भगवान् के चरणो में प्रणाम अर्पित किया तो भगवान् ने आशीर्वाद देते हुए कहा "शिष्य सहित बावरि ब्राह्मण सुखी हो। माणवक ! तुम भी सुखी हो, चिरजीवी हो।" इन आशीर्वचनो में झाकती हुई तथागत की करुणा के मानवीय स्वरूप को हम स्पष्टत देख सकते है।

तथागत स्वागतवादी थे। छोटा हो या बडा, सबसे उनका कहना होता था 'एहि सागत'। आओ स्वागत। उनकी वाणी मे लोकोत्तर श्लक्ष्णता थी। क्रोधपूर्ण शब्द कभी उनके मुख से नही निकला था। सकल्प उनके वश में थे। वे मनुष्य थे, परन्तु मनुष्य की दुर्बलताओ और असगतियो से ऊपर उठ चुके थे। इसीलिए वे पूर्ण पुरुष थे। न हम उन्हे अन्तत 'मनुष्य' कह सकते है (क्योंकि मनुष्य में स्वाभाविक दुर्बलताओ का रहना अनिवार्य है, जो तथागत में नष्ट हो चुकी थी) और न देवता। बुद्ध केवल बुद्ध है, जिनके जीवन और व्यक्तित्व में मानवता की शुभ्र ज्योत्स्ना, धर्म की स्थिति बन कर चमकी है।

भूदान-यज्ञ आन्दोलन द्वारा विनोबा देश की आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था में रक्तहीन क्रान्ति करने जा रहे हैं।

एक महत्वपूर्ण प्रश्न

सिद्धराज ढड्ढा

[निम्नलिखित लेख में बंधुवर सिद्धराज ढड्ढा ने वर्तमान समय की एक आवश्यक समस्या की ओर पाठकों, शासनाधिकारियों एवं सार्वजनिक व्यक्तियों का ध्यान आकर्षित किया है। इसमें संदेह नहीं कि हमारे आजके बहुत से शासनाधिकारियों का पर्याप्त समय शासनेतर प्रवृत्तियों में जाता है। उसके पीछे जो प्रवृत्तियां रहती हैं, उनके संबंध में मतभेद हो सकता है। लेकिन अधिकांश समय और शक्ति उन प्रवृत्तियों में जाती है, इसमें दो मत नहीं हो सकते।

निस्संदेह जिन पर शासन का दायित्व है, उनके लिए शासन से अधिक महत्व का दूसरा कोई कार्य नहीं हो सकता। इसका अर्थ यह नहीं है कि वे सार्वजनिक सभाओं में जाय ही नहीं। इसका अर्थ केवल इतना है कि उनके सार्वजनिक सभाओं में भाग लेने का प्रभाव उनके शासकीय दायित्व पर विपरीत रूप में नहीं पड़ना चाहिए। हमें विश्वास है कि हमारे शासक और कार्यकर्ता इस ओर ध्यान देंगे।] —सम्पादक

इन पंक्तियों के द्वारा हम एक महत्व के सार्वजनिक प्रश्न की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों में जो मंत्री हैं वे जनता के चुने हुए लोग हैं। जनता ने उन्हें इसलिए चुना था कि वे शासन का काम सुचारु रूप से जनता के हित में चलावें। इस कर्तव्य को अंजाम देने के लिए यह आवश्यक है कि इन मंत्रियों की सारी शक्ति, बुद्धि और समय शासन के काम में लगे। चूंकि शासन की जो परंपरा और उसका जो ढांचा हमें अंग्रेजी हुकूमत के जमाने से विरासत में मिला है, वह अधिकांश में जनहित-विरोधी है और जहां विरोधी नहीं, वहां कम-से-कम उसके प्रति उदासीन अवश्य रहा है। इसलिए शासन के काम में अपनी पूरी कुशलता और बुद्धि का उपयोग करना जनता के इन प्रतिनिधियों के लिए और भी ज्यादा जरूरी है। मंत्रित्व का पद एक पूरे समय का काम है। इसके लिए उन्हें माहवारी वेतन भी मिलता है। पर हम देखते हैं कि आज तो अधिकांश मंत्रियों का अधिकांश समय सभाओं में भाषण देने, किसी-न-किसी चीज का उद्घाटन या किसी समारोह की अध्यक्षता करने आदि में ही जाता है। इन कामों से इतना कम समय और शक्ति इन लोगों के पास बच पाती है कि उनके लिए शासन-सम्बन्धी मामलों में किसी नई नीति के बारे में सोच सकना तो दरकिनार, वे शासन के चालू कामों को कुशलता से कर सकने लायक समय भी कागजात को देखने आदि का नहीं निकाल पाते। ऐसा खुद कई मंत्रियों ने कई बार स्वीकार भी किया है।

साधारण तौर पर अगर हमारा कोई तनख्वादार नौकर अपनी नौकरी के काम के अलावा दूसरे कामों में ही अपना वक्त खर्च करे तो हम क्या करेंगे, यह कहने की जरूरत नहीं है। मंत्रियों की जिम्मेदारी एक साधारण नौकर से बहुत बढ़कर है, क्योंकि उनकी कर्मण्यता और अकर्मण्यता या कुशलता-अकुशलता का असर किसी खास मालिक के काम पर ही नहीं, बल्कि सीधे सार्वजनिक जीवन और सार्वजनिक हित पर पड़ता है। कोई भी विवेकशील या बुद्धिमान आदमी यह नहीं कह सकता कि आज जितने उद्घाटन सभा या समारोहों में हमारे मंत्री जाते हैं, उनमें से शायद ही कुछ को छोड़कर बाकी में जाना उनके जिम्मे सौंपे हुए शासन का काम का कोई अंग है। हम झूठी धारणाओं में न फंसें। सच तो यह है कि इनमें से अधिकांश समारोहों में मंत्री तो इसलिए जाते हैं कि उन्हें सार्वजनिक मान-सम्मान मिलता रहे, और उनके विचार से उनकी 'लोकप्रियता' बनी रहे और बुलानेवाले इसलिए बुलाते हैं कि समारोहों का आकर्षण बढ़ने के साथ-साथ मंत्रियों के सम्पर्क में आकर उन्हें अपने व्यक्तिगत स्वार्थ साधन का कुछ मौका मिल जाता है।

'गांधीजी की देन'

बनारसीदास चतुर्वेदी

महात्मा गांधी के जन्म-दिवस पर श्रद्धेय बाबू राजेंद्रप्रसाद जी के ग्रंथ "गांधीजी की देन" का प्रकाशन साहित्यिक दृष्टि से निस्सन्देह एक महत्वपूर्ण घटना है। गांधीजी की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उनका कार्यक्षेत्र बहुत विस्तृत था और छोटे-से-छोटे कामों से लेकर महान-से-महान कार्यों तक उनकी पैनी और व्यापक दृष्टि पहुंच जाती थी और कभी-कभी तो भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में कहे हुए उनके वचनों में परस्पर विरोध भी प्रतीत होता था। महात्माजी अन्तःप्रेरणा के अनुसार चलनेवाले व्यक्ति थे। अतएव विशुद्ध तर्क से काम लेनेवाले व्यक्तियों को उनकी बातों में पेचीदगी नजर आती थी। आज जब कि महात्माजी हमारे बीच में विद्यमान नहीं हैं, उनके गुणों, कार्यों तथा सिद्धांतों का विश्लेषण करना और भी कठिन हो गया है। कोरमकोर विद्वत्ता से यह कार्य संभव नहीं। उसके लिए अनन्य श्रद्धा की जरूरत है। सौभाग्य की बात है कि इस पुस्तक के सुयोग्य लेखक में वह श्रद्धा असाधारण रूप से विद्यमान है। अपने एक निबंध के अन्त में उन्होंने स्वयं लिखा है

"कुछ लोग गांधीजी में मेरी या औरों की अनन्य श्रद्धा और अंध-विश्वास की बात कहते हैं। हां, मैं भी कहता हूं कि उनमें मेरी अंध-श्रद्धा क्यों न हो? मेरी अंध श्रद्धा यों ही नहीं हो गई। वह तो तजुर्बे का फल है। कितने ही मरतबे उनके और मेरे विचारों में काफी भेद रहा है, किंतु पीछे चलकर मैंने महसूस किया है कि उनके ही विचार ठीक थे। ऐसा बहुत बार हुआ है, इसलिए अब तो मैं उनके विचारों को तुरन्त मान लेना ही अपना कर्तव्य समझता हूं।" इस श्रद्धा के कारण ही सुयोग्य लेखक महोदय अनेक गुत्थियों को सुलझाने में सफल हुए हैं।

एकसौ नौ पृष्ठ की यह छोटी-सी पुस्तक श्रद्धेय बाबू राजेंद्रप्रसादजी के व्याख्यानों का संग्रह है। इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण व्याख्यान 'गांधीजी की देन' इस पुस्तक के अन्त में दिया गया है। विलायत के एक सुप्रसिद्ध पत्र ने इस निबंध की मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हुए लिखा है :

"यह बड़े दुःख की बात है कि श्री राजेंद्रप्रसादजी के भाषणों के प्रचार की व्यवस्था संतोषजनक नहीं है, क्योंकि यदि उनके भाषण इतने ही सारगर्भित हुआ करते हैं जितना सारगर्भित उनका यह वर्तमान निबंध है तो संसार उनके विचारों को अवश्य सुनना चाहेगा।"

यह बात ध्यान देने योग्य है कि उस पत्र की गणना संसार के सर्वश्रेष्ठ पत्रों में की जाती है और जब वह लेखक के इस निबंध को "अत्यन्त स्पष्टतापूर्ण प्रभावोत्पादक और रचनात्मक व्याख्या" बतलाता है, तो हम गौरव के साथ-साथ कुछ लज्जा का भी अनुभव करते हैं। गौरव इस बात पर कि हमारे बीच एक ऐसा व्यक्ति विद्यमान है जो संसार के उस सर्वोच्च महापुरुष के विचारों की व्याख्या पाश्चात्य जगत के लिए प्रभावोत्पादक ढंग पर कर सकता है और लज्जा इसलिए कि हम लोगों की प्रसार प्रणाली कितनी त्रुटिपूर्ण है।

सरलता तथा स्पष्टवादिता के साथ-साथ विनम्रता इन व्याख्यानों का सबसे बड़ा गुण है। एक वाक्य सुन लीजिये।

"गांधीजी बहुत बड़े महापुरुष थे और उनके नजदीक रहकर भी मैं उतना लाभ न उठा सका, जितना उनके निकट रहनेवालों को उठाना चाहिए।....जिस तरह गंगा नदी हिमालय से लेकर समुद्र तक १५००-१६०० मील बराबर बहती है, उसी तरह महात्मा गांधी अपनी ८० वर्ष की अवस्था तक लोगों को सिखाते गये और हमारे ऐहिक-पारलौकिक जीवन से संबंध रखनेवाली बातें बताते गये। गंगा तो सब जगह होकर बहती है, मगर उससे किसी को ज्यादा

लाभ मिलता है और किसी को कम। सबको बराबर लाभ नही मिल पाता। जिसमें जितनी शक्ति होती है, वह उतना ही उससे लाभ उठाता है। कोई छोटे-से लोटे में उसका जल निकाल कर पी सकता है और किसी के लिए वह भी सभव नही होता। गाधीजी का जीवन ऐसा ही था। जिसकी जितनी शक्ति थी, वह उतना लाभ गाधीजी की जीवन-गगा से हासिल करता था। मैं उनके नजदीक रहकर उनकी जीवन-गगा से एक लोटा भर ही अमृत ले सका।"

इस महत्वपूर्ण वाक्य में कृत्रिमता का कोई नामो-निशान नही, वह लेखक के हृदय से निकला हुआ है और साधारण जनता के हृदय तक बडी आसानी से पहुच जायगा। पर श्रद्धेय लेखक से हमारी एक शिकायत है कि जब वे बापू की जीवन-गगा में अपने ३०-३१ वर्ष के अवगाहन से प्राप्त लाभ को एक लोटा भर ही बतलाते है, तो हम लोगो को यह मानने के लिए बाध्य होना पडेगा कि हम लोग तो शायद एक बूद भी नही ले सके।

इस पुस्तक के कई स्थल ऐसे है, जिन्हे प्रत्येक शासक अथवा साधन सपन्न कार्यकर्ता को नकल करके अपने कमरे में टाग देना चाहिए।

"हम यह भूल जाना चाहिए कि त्याग का समय चला गया और भोग का समय आ गया। जब हथकडियो, जेलखानो, लाठियो और गोलियो के सिवाय हमें कुछ दूसरा मिल ही नही सका था, तो हम त्याग क्या कर सकते थे? हा, अकर्मण्य बनकर कायरतापूर्वक हम भाग सकते थे। जब हमारे हाथो में कुछ-न-कुछ अधिकार हो, जब हमको इसका अवसर हो कि हम अपने हाथों को गरमा सके, अपनी प्रतिष्ठा को ससार की आखो में बहुत बढा सके और अपने को एक बडा अधिकारी दिखला सकें, फिर भी उस अधिकार की परवाह न कर, सेवा का ही खयाल रखें, धन के लोभ में न पडे और सादगी में बडप्पन देखें, तब हम कुछ त्याग दिखला सकते है। आज जब हम कुछ सासारिक वस्तुओ को प्राप्त कर सकते है, तो उनके त्यागने को ही त्याग कहा जा सकता है। जब वह प्राप्य नही था उस वक्त त्याग क्या हो सकता था?"

महात्मा गाधी से लेखक की जो बातचीत समय-समय पर हुई थी वह निस्सदेह महत्वपूर्ण थी और उनके उद्धरणो ने इस पुस्तक को सजीव बना दिया है।

"नमक-सत्याग्रह के समय जब महात्माजी सत्याग्रह के लिए रवाना हो रहे थे तो हम लोगो में से बहुतो ने महात्माजी का अन्तिम सदेश रेकार्ड करवा कर देश के शहरो और गावो में सहज ही प्रचलित करने की बात सोची। मुझसे इसके लिए कोशिश करने को कहा गया। लोगो का विश्वास था कि मेरा कहना गाधीजी अधिक सुनते है, शायद सुन ले। हम लोगो का एक तरह का डेपूटेशन गया, किंतु हम लोग ज्यो-ज्यो अनुरोध करते गये, गाधीजी अडते गये। जब हम लोगो ने बहुत जोर लगाया तो उन्होने कहा कि मुझे अपनी ध्वनि में अपना सदेश रेकार्ड करवा कर नही फैलाना है। यदि मेरे सदेश में सत्य है तो वह बिना रेकार्ड के ही घर-घर पहुच जायगा और अगर इसमें सत्य नही है तो इसे एक कान से दूसरे कान तक जाने की कोई जरूरत नही। हम लोग समझ गये।"

"एक बार मैने उनसे कहा था कि स्कूली पुस्तको की भाति अपने मोटे-मोटे सारे विचारो को यदि छोटी-सी पुस्तक के रूप में लिख देते तो बडा अच्छा होता। उन्होने यह स्वीकार नही किया और कहा,

'यह काम मेरा नही है और न मैं कर ही सकता हू, क्योकि मैं तो हमेशा ही सत्य के प्रयोग करता रहता हू, नित्य नई आगे आने वाली समस्याओ को सत्य की कसौटी पर कसता रहता हू। इसमें कुछ भूल की सभावना बनी रहती है। उनमें कल ही कुछ सुधार हो सकता है। वहा, फिर, मैं इस तरह की कोई पुस्तक कैसे लिख सकता हू।" इस पुस्तिका का 'गाधीजी की महानता' नामक अध्याय तो बहुत ही महत्वपूर्ण है।

इस पुस्तक से जहा गाधीजी की विचारधारा पर पर्याप्त प्रकाश पडता है, वहा लेखक की परिपक्व अनुभूतियो को जानने का भी अवसर मिलता है। थोडे में बडे पते की बात कह देना उनकी शैली का एक उल्लेख-योग्य गुण है। एक महत्वपूर्ण वाक्य सुन लीजिये।

"आज दुनिया में नये-नये आविष्कार हो रहे हैं, वैज्ञानिक आविष्कारों के फल आज हमको मिल रहे हैं, उनको देखकर हम लुभा जाते हैं, पर इस लोभ को देखकर मुझे अक्सर डर लगता है कि कहीं हम लोग गलत रास्ते पर न चले जायं। पहले भी ऐसा हुआ है। दूसरे देश के लोगों ने यहां की शिक्षा से फायदा उठाया और हम इस देश में रहते हुए भी उससे वंचित रहे। गांधीजी के जीवन से हमने लगभग कुछ नहीं सीखा। हो सकता है कि उन्होंने जो कुछ बताया उसको हम भूल जाय और दूसरे देश के लोग, जिन्होंने उनकी शिक्षा को अपनाया हो हमारे यहां आकर हमको उनकी शिक्षा का पाठ नये सिरे से पढ़ावें। भगवान बुद्ध भारत में पैदा हुए। हमने उनसे जो कुछ सीखा था, हम उसको भूल गये। देश के बाहर के लोगों ने उनके सिखाये हुए मार्ग पर चल कर बहुत-कुछ लाभ उठाया और वही लोग आज हमको उनका संदेश सुना रहे हैं"।

"गांधीजी के जीवन से हमने लगभग कुछ नहीं सीखा" इस वाक्य को कहते हुए वक्ता को कितनी हार्दिक वेदना हुई होगी, इसका अनुमान नहीं किया जा सकता। श्रद्धेय लेखक महोदय ने समस्त देश के लिए, एक गंभीर चेतावनी दी है, भयंकर खतरे की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है।

अपनी सरकार की स्पष्ट आलोचना करने से भी वे नहीं चूके, और सन १९४२ के आन्दोलन के विषय में उनका यह कहना कि वह रास्ता सिद्धान्तों, सच्चाई तथा अहिंसा का नहीं था, इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि वे अपने आराध्य गुरु की तरह अपनी अन्तरात्मा के प्रति वफादार हैं। गांधीजी के जीवन-दर्शन से भले ही कोई सहमत हो या न हो, पर उसकी सुलझी हुई व्याख्या की जितनी आवश्यकता आज है, उतनी पहले कभी नहीं थी, और यह बात निर्विवाद है कि उस व्याख्या के सर्वोच्च अधिकारी इस पुस्तक के लेखक महोदय ही हैं, क्योंकि उन्होंने गांधी-दर्शन को अपने जीवन में उतारने का निरन्तर प्रयत्न किया है।

'आल इंडिया रेडियो' के सौजन्य से]

●

नया आदर्श

रावी

एक व्यक्ति की किसी कृति से प्रसन्न होकर ईश्वर ने एक बार उसे अपने स्वर्गलोक के महल में निमन्त्रित किया। अपने महल के जिस बड़े हाल में उसने उस व्यक्ति का स्वागत-सत्कार किया, उसकी दीवारों पर सभी प्रसिद्ध मानव-महापुरुषों के तथा कुछ बड़े देवताओं के भी चित्र टंगे हुए थे। उनमें से कृष्ण, बुद्ध, शंकर, प्लेटो, पाइथागोरस, कनफ्यूशस, ईसा, सीजर, अशोक, शेक्सपियर, रवीन्द्र, गांधी आदि अनेक महापुरुषों के चित्र आसानी से पहचाने जा सकते थे।

चित्रों की इस गैलरी की ओर संकेत करके ईश्वर ने उस व्यक्ति से कहा—"तुम इनमें से किसे अपना आदर्श बनाना चाहते हो? तुम किसी को अपना आदर्श चुनो तो वैसे बनने में मैं तुम्हारी सहायता करना चाहता हूं।" उस व्यक्ति ने पूरी सावधानी के साथ उन चित्रों को एक-एक करके देखा, और जब सबको देख चुका तब उसने कहा:—

"मैं इसमें से किसी को भी अपना आदर्श बनाने का हौसला अपने भीतर नहीं देखता।"

उसी समय ईश्वर ने तुरन्त अपने चित्रकार को बुला कर उस व्यक्ति का एक छोटा-सा चित्र बनवाया और उसे भी उस गैलरी में एक जगह टंगवा दिया।

○

भारतीय दर्शन और अरविन्द

डा० इन्द्रसेन

श्री अरविन्द असाधारण रूप से गंभीर व्यक्ति थे। अपने विद्यार्थी जीवन में वे बड़े अध्ययनशील रहे। जब वे २१ वर्ष की अवस्था में शिक्षा समाप्त करके इंग्लैंड से लौटे, तब वे ग्रीक और लेटिन के विद्वान थे, अंग्रेजी साहित्य के अधिकृत पंडित तथा जर्मन, फ्रेंच और इटालियन साहित्यों के अच्छे जानकार। प्रवास के कुछ एक अन्तिम वर्षों में वस्तुतः वे अपने पढ़ाई के विषयों की कुछ उपेक्षा करके भी यूरोपीय सभ्यता, संस्कृति और विकास को समझने के लिए अन्य विषयों को स्वतन्त्र रूप में पढ़ते रहे। भारत में लौटने के बाद उन्हें भारतीय संस्कृति के मर्म को जानने की प्रबल इच्छा हुई और इसके लिये उन्होंने संस्कृत सीखी और संस्कृत साहित्य पढ़ा। उन्होंने अनुभव किया कि भारतीय जीवन का आधारभूत सत्य तथा उच्चतम ध्येय आध्यात्मिक रहा है। संयोगवश उन्हें एक योगी में आध्यात्मिक तत्व की विशेषता तथा उसकी विलक्षण शक्ति देखने का अवसर भी मिला। उन्हें विश्वास हो गया कि आत्म-तत्व ही सत्ता का अलौकिक तत्व है, वस्तुओं और घटनाओं का आधार है, और इसे जानने, इसे अनुभव करने, इस पर अधिकार प्राप्त करने की उनकी श्रद्धा उत्तरोत्तर प्रबल होती गई। वे शुरू से ही गंभीर थे, चिंतन मननशील थे, सार तत्व के जिज्ञासु थे, अब सजग रूप में सत्यान्वेषी और आत्मसाधक बन गये। परन्तु देश की स्वाधीनता, भारतमाता की विमुक्ति, उनका एक प्रकार 'पागलपन' था। अवसर आने पर वे बड़ौदा की प्रोफेसरी छोड़कर स्वदेशी आंदोलन में कूद पड़े। 'वंदे मातरम्' का संपादन किया और जनता में एक अपूर्व देशभक्ति तथा देश-सेवा की प्रगति चल पड़ी। परन्तु उन्हें एक और 'पागलपन' भी था —वह था ईश्वर का पाना, जगत् के सत्य आधार को उपलब्ध करना और एक समय आया जब यही उनके जीवन का पूर्ण विषय बन गया। उन्होंने अनुभव किया कि सत्य और सत्ता को जाने और अधिकृत किये बिना देश और जाति की वास्तविक सेवा और सहायता नहीं की जा सकती। अथवा इन्हें अधिकृत करके देश और जाति की सेवा और सहायता अधिक शक्तिशाली आध्यात्मिक साधनों से की जा सकती है। तब वे सामान्य व्यावहारिक कार्यों से पूर्णतया तटस्थ हो गये और गंभीर रूप में मानव, व्यक्ति और जगत् के मौलिक तत्व की खोज में निमग्न हो गये। सन् १९१० में, जब कि वे पांडिचेरी पधारे, उनकी यह खोज, उनकी पूर्ण व्यस्तता बन गई। चार वर्ष बाद उन्होंने एक पत्रिका निकाली और उसमें ६-७ वर्षों में अपनी खोज तथा उपलब्धि की देन प्रस्तुत कर दी। उनका दार्शनिक ग्रंथ The Life Divine (दिव्य जीवन) उन्हीं दिनों की उपज है, जो कि उनके दर्शन का विस्तार पूर्ण निरूपण है। इसमें जीवन तथा सत्ता के सभी महत्वपूर्ण विषयों पर प्रकाश डाला गया है और विचारणीय पाठक उसमें अपने विभिन्न दार्शनिक प्रश्नों का समर्थन प्राप्त कर सकता है। यह ग्रंथ भारतीय आध्यात्मिक जिज्ञासा की उपज होने से प्रेरणा और प्रवाह में भारतीय है तथा आधुनिक सजीव अनुभवों की सृष्टि होने से वर्तमान समय में समर्थ पथ प्रदर्शन प्रस्तुत करता है। श्री अरविन्द के व्यक्तित्व में पाश्चात्य और पूर्वीय संस्कृतियों के समुन्नत अनुभव की सृष्टि होने से आज के लिए एक विश्व-दर्शन का रूप है और यह वस्तुतः संसार के अनेक देशों में, व्यक्तियों तथा विश्वविद्यालयों के लिए, अध्ययन का विषय बनता जा रहा है और इसके समाधान उन्हें संतोष प्रदान कर रहे हैं।

परन्तु मूलतः, स्वभाव, प्रेरणा और स्वरूप से यह भारतीय है। प्राचीन भारतीय परम्परा की ही नवीनतम अभिव्यक्ति है और उसी परम्परा को ही अधिक समृद्ध बनाता है। शंकर, रामानुज, मध्व, वल्लभ आदि के वेदांत दर्शनों की शैली का ही यह वेदान्त दर्शन है। इसका अर्थ यह है कि इसके लिए भी अन्तिम सत्ता नित्य और अनन्त चेतन तत्व ब्रह्म है। परन्तु ब्रह्म के स्वरूप, ब्रह्म और जगत्

तथा ब्रह्म और मानव-व्यक्ति के संबंध में इसके विचार अपने हैं। कर्म-सिद्धांत और पुनर्जन्म के बारे में इसका दृष्टिकोण नया है। जगत् और मानवजाति के भविष्य के संबंध में इसका भाव विकासात्मक है। दुःख और ताप का इसका समाधान नया है। कर्म और व्यवहार को यह नई सार्थकता प्रदान करता है। जीवन के पक्ष पर, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय पर यह मौलिक दृष्टि प्रस्तुत करता है। मशीन और जीवन के संबंध तथा आधुनिक संकटमय अवस्था का यह एक विश्लेषण प्रस्तुत करता है तथा इसका समाधान देता है—ये सब इस दर्शन के स्वरूप के अनिवार्य अंग हैं। ये हमारा वर्तमान अवस्था में पथ-प्रदर्शन करते हैं। ये भारतीय दर्शन की नवीनतम अभिवृद्धियां हैं और यही प्रधान रूप में श्री अरविन्द की भारतीय दर्शन को देन है।

अब इसमें कुछ एक प्रधान देनों को हम कुछ व्याख्यापूर्वक समझने की कोशिश करेंगे। किसी भी संस्कृति के इतिहास में अनेक उतार-चढ़ाव आते हैं, सृजनात्मक युग आते हैं तथा परम्परा बद्ध और रूढ़ समय आते हैं। भारतीय जीवन में अनेक शताब्दियों से हमारा भाव सृजनात्मक न रहकर अधिकांश में रूढ़ तथा परम्परा-बद्ध रहा है। वेद और उपनिषदों के समय जहां हमारा भाव आत्मविश्वास और सृजन का था वहां पीछे वह वैसा नहीं रहा। हम तब ज्यादातर पहले की रचनाओं और आदर्शों की ओर देखते रहे तथा उनके अनुगामी बनने की कोशिश करते रहे। विशेषकर पिछली कुछ शताब्दियों में हम समझते रहे कि सृष्टि के प्रारम्भ में जीवन और जगत् बड़े सुन्दर थे, शुद्ध थे, उज्ज्वल थे और जैसे-जैसे समय बीतता गया मलिनता ही बढ़ती गई। सत्य, द्वापर, त्रेता और कलियुग ये चार युग इस विचार के पोषक माने जाते रहे हैं। कलियुग तो लोकोक्ति के रूप में भी अत्यन्त निंदित समय बन गया है। इसके साथ ही हमारा यह भी विश्वास रहा है कि जीव और प्राणियों की योनियां जिस रूप में आज हैं; उसी रूप में भगवान् ने शुरू में बनाईं तथा वे वैसी ही तब से चली आ रही हैं। इन दोनों भावनाओं का अर्थ यह है कि जगत् तथा मानव में विकास नहीं और न ही इनका कोई विशालतर भविष्य है! परिवर्तन, केवल आवृत्ति मात्र है, वस्तुओं तथा घटनाओं का बार-बार उपस्थित होना मात्र है।

ये व्यापक लोक-विश्वास वास्तव में दार्शनिक विचारों पर प्रतिष्ठित तथा उनसे पोषित हैं। शंकर, रामानुज आदि आचार्यों के वेदान्त विचार में व्यक्ति अज्ञान से मुक्त होकर ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है, परन्तु जगत् में कोई व्यापक विकास भी चल रहा है—यह उन्हें स्वीकार नहीं।

श्री अरविन्द इस विचार और भावना में एक शोधन और परिवर्तन प्रस्तुत करते हैं। वे कहते हैं कि जगत् ब्रह्म की वर्द्धनशील अभिव्यक्ति है। जड़, प्राण और मन इस अभिव्यक्ति की क्रमिक अवस्थाएं हैं। इनमें हम चेतना की उत्तरोत्तर वृद्धि देखते हैं और क्योंकि मन पूर्ण चेतना नहीं है, वह द्वंद्वग्रस्त है, बहिर्मुख है, आत्म-अनभिज्ञ है, अज्ञान युक्त है, अतः इसमें उच्चतर चेतनाएं प्रकट होंगी। ये चेतनाएं प्राकृतिक विकास के रूप में चरितार्थ होंगी। मन के बाद की चेतना को वे आतरात्मिक चेतना कहते हैं—जो कि द्वंद्व-ग्रस्त नहीं बल्कि समग्र भावापन्न है, दुःख और ताप-पीड़ित नहीं बल्कि सहज रूप में आनन्दपूर्ण है, इसमें द्वेष और विभाजन नहीं बल्कि प्रेम और एकत्व है।

इस चेतना को विकसित करने के लिए प्रकृति सतत प्रयत्नशील है, और अपने सब प्रकार के उतार-चढ़ाव द्वारा इस ध्येय की ओर अग्रसर हो रही है। इस विचार को श्री अरविन्द भारतीय दर्शन के प्राचीन तथा विस्मृत सत्य के रूप में प्रस्तुत करते हैं। वे कहते हैं कि उपनिषदों में अन्न, प्राण और मन की क्रमिक अवस्थाओं का बार-बार उल्लेख है। यह उल्लेख मानवीय व्यक्तित्व के संबंध में है तथा जगत् के संबंध में भी। फिर दशावतार का विचार विकास का अपूर्व दृष्टांत है। विभिन्न अवतार चेतना के विकास की उत्तरोत्तर अवस्थाओं को ही प्रदर्शित करते हैं। श्री अरविन्द के अनुसार चतुर्युग भी वैसे ही बार-बार नहीं आते-जाते। विभिन्न युग, मानव और जगत् के लिए अपने-अपने अनुभव प्रदान करते हैं जिनसे विकास सदैव आगे बढ़ता है।

ये विकासात्मक भाव श्री अरविन्द की भारतीय दर्शन को अपूर्व देन है। यह मानव को एक अनिवार्य उज्ज्वल भविष्य की आशा दिखाता है, अन्यजन बुरी-से-बुरी अवस्था में भी निहित लाभ का दर्शन कराता है, उसे यह दृढ़ आशावादी बना देता है। इस विकासात्मक गति को द्रुततर बनाने और उच्चतर चेतना को शीघ्र प्राप्त करने का मार्ग भी यह दर्शन बतलाता है। प्रकृति बड़ी धीमी गति से विकसित हो रही है किन्तु व्यक्ति अपनी अभीप्सा और प्रयत्न से, योग और साधना द्वारा इस विकास को तेज गति दे सकता है और इस प्रकार वह केवल अपना ही हित साधन नहीं करता, बल्कि मानव समाज के लिए भी चेतना के स्तर को ऊंचा उठा सकता है। श्री अरविन्द का कहना है कि यदि ऐसे विकास द्वारा कोई व्यक्ति आत्मरात्मिक चेतना से अन्य उच्चतर चेतनाओं का अधिगम करता हुआ अतिमानस की महान् आध्यात्मिक, शुद्ध सत्-चित् सत्यमय चेतना को प्राप्त कर लेता है और फिर उसे अपने शरीर, प्राण और मन में व्यावहारिक बना लेता है, तो उससे वह मानवमात्र की चेतना में अपूर्व अन्तर ला सकता है। इसी कार्य को सिद्ध करना, वस्तुतः उनके आश्रम का ध्येय है। इस प्रकार श्री अरविन्द भारतीय दर्शन को एक अपूर्व नई दृष्टि प्रदान करते हैं। वह यह कि अध्यात्म जीवन व्यक्तिगत ही नहीं है बल्कि इसका एक अनिवार्य सामाजिक पक्ष भी है। वैयक्तिक विकास से सामाजिक लाभ सिद्ध होता है और व्यक्ति अपने विकास के लिए सामाजिक अवस्था से सीमित भी रहता है। जैसे-जैसे सामाजिक चेतना का स्तर ऊंचा उठता है वैसे वैसे व्यक्ति भी अधिक ऊंचा उठ सकता है। ये सामाजिक भाव, व्यक्ति और समाज का अन्योन्याश्रित भाव, हमारे वर्तमान जीवन के लिए हमारे सामाजिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय विकास के लिए विशेष रूप से सहायक है।

जहां भारतीय दर्शन काफी समय से विकासात्मक नहीं था वहां यह जगत् और जीवन के संबंध में नकारात्मक भी था। जगत् और जीवन माया है, त्याज्य है, तुच्छ है—यह विचार हमारी सामान्य मानसिकता में भी गहरा उतर गया है और इसके राजनीतिक परिणाम हमारे लिए विशेष दुःखद रहे हैं। राजपाट कुछ नहीं, धन-सम्पत्ति कुछ नहीं, अधिकार और सत्ता कुछ नहीं। भला फिर राजनीतिक स्वतन्त्रता की जाति कैसे सुरक्षित रख सकती। अब स्वतन्त्रता प्राप्त होने के बाद भी हमने अनुभव किया है कि पराधीनता की अवस्था में हम त्याग कर सकते थे, निःस्वार्थ रह सकते थे, परन्तु सत्ता और ऐश्वर्य को प्राप्त करके हम विचलित हो गये हैं। हम अपने त्याग और निःस्वार्थ भाव को बनाये नहीं रख सके हैं। कारण, हमारी मानसिकता मायावादी थी। त्याग की अवस्था में हम स्वस्थ रह सकते हैं, परन्तु ऐश्वर्य का यथार्थ उपयोग कठिन पाते हैं।

श्री अरविन्द बलपूर्वक कहते हैं कि जगत और जीवन माया नहीं, बल्कि सर्वव्यापक भगवान् की विकासमान् अभिव्यक्ति है, यह क्षेत्र है भगवान् को चरितार्थ करने का। भगवान् जड़, प्राण, और मन द्वारा उच्चतर चेतनाओं को विकसित करते हुए अपनी पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए यत्नशील है। युगों के उतार-चढ़ाव, देशों और जातियों के संघर्ष तथा सहयोग इसी पूर्ण अभिव्यक्ति के उपक्रम हैं। मनुष्य को चाहिए कि वह इस निहित आशय को देखे तथा अनुभव करे और इसे जगत् और जीवन में चरितार्थ करने का यत्न करे।

दार्शनिक विचार सदा ही देश और जाति के स्वभाव और समय की सांस्कृतिक अवस्था से प्रभावित रहता है और इसे परिवर्तित अवस्थाओं के साथ नए समाधान प्रस्तुत करने होते हैं। सब सजग जातियां आत्मविश्वास पूर्वक इन समाधानों को खोजा करती हैं तथा नए दर्शन रचा करती हैं। श्री अरविन्द का दर्शन भारतीय दर्शन का नवीनतम स्वरूप है, इसमें भारतीय दर्शन ने नए सृजनशील भाव को प्राप्त किया है और यह हमारे वर्तमान जीवन का वास्तविक पथ-प्रदर्शन कर सकता है।

नागपुर रेडियो के सौजन्य से]

●

ग्रामीण समाज के मानस का विश्लेषण

श्रद्धा पाराशर तथा रामकृष्ण पाराशर

यदि हम स्थायी भावों को मानव का शक्ति स्रोत कहे तो अतिशयोक्ति न होगी क्योंकि उनके द्वारा उसे विशेष प्रकार के कार्यों को करने की प्रेरणा मिलती है। मानवी कार्यों में उनकी प्रधानता रहती है। एक ही व्यक्ति के प्रति अनेक प्रकार के भावों और प्रवृत्तियों को बार-बार उत्तेजित करने से स्थायी भाव उत्पन्न होता है। जब हम किसी वस्तु के प्रति बार-बार अभिरुचिपूर्ण या द्वेषयुक्त भावों का अनुभव करते हैं तो हमारे मन में उस वस्तु या व्यक्ति के प्रति विशेष प्रकार के राग या द्वेष के स्थायी भाव उत्पन्न हो जाते हैं। जिस व्यक्ति के प्रति हमारे मन में प्रेम के स्थायी भाव होते हैं उसके प्रति कल्याण की भावना मन में लाने से हमें प्रसन्नता होती है। स्थायी भावों के अनुसार काम करने से मनुष्य की मानसिक शक्तियों का विकास होता है और उनके प्रतिकूल काम करने से उसकी शक्तियों का ह्रास होता है। वह पागल भी हो सकता है। पागलपन, बुद्धि और हृदय के विरोध का नाम है।

मनुष्य के मन में दो प्रकार के स्थायी भाव होते हैं। एक वे जिन्हें वह स्वीकार करके गर्व का अनुभव करता है और दूसरे वे जिनकी उपस्थिति को स्वीकार ही करना नहीं चाहता। कितनी ही कुलीन घर की स्त्रियों में अपने पति के प्रति द्वेष का स्थायी भाव रहता है। यह स्थायी भाव उनके विवेक के प्रतिकूल होता है। इस प्रकार के स्थायी भावों को मानसिक ग्रंथि कहा जाता है। जो कभी-कभी मनुष्य के विवेक को बिल्कुल हर लेता है और रोगी और निकम्मा बना देता है।

जो बातें हमारे व्यक्तिगत मन के सम्बन्ध में ठीक हैं, वे सामाजिक मन के विषय में भी सही हैं। जिस प्रकार एक मनुष्य के स्थायी भाव उसका विकास करते हैं और उसकी मानसिक ग्रंथियां उसमें रुकावट डालती हैं उसी प्रकार समाज के स्थायी भाव उसके सामाजिक जीवन का विकास करते हैं और मानसिक ग्रंथियां जीवन में रुकावट डालती है।

ग्रामीण जीवन का नवनिर्माण करने के लिए ग्रामीण-जनों के स्थायी भावों के अनुसार कार्य करना चाहिए। उनकी मानसिक ग्रंथियों को सुलझाना आवश्यक है। गांव के लोगों के स्थायी भाव स्थिर वस्तु के प्रति होते हैं। मनुष्य का मन स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाता है। शहर के लोग नये विचारों की ओर जल्दी आकर्षित होते हैं परन्तु गांव के लोग इतनी जल्दी नहीं। ग्रामीण जनता देरी से चीजों को पकड़ती है और देरी से छोड़ती है। वह अपने धर्म तथा नेता के प्रति अपने जीवन की भी बाजी लगा देती है। वे लोग अपने इस प्रकार के स्थायी भावों के कारण ही अपने व्यक्तिगत स्वार्थ त्याग और कष्ट भोगने को तैयार हो जाते हैं। सच्चा धर्म गांवों में रहता है इसका कारण यह है कि धर्म को स्थायी बनाने की शक्ति ग्रामीण मन में रहती है। गांव के उत्सवों तथा त्यौहारों में हमें उनके हृदय की श्रद्धा तथा विश्वास का साक्षात्कार होता है।

कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि भारतीय गांवों में जो जागृति हुई है वह पूज्य गांधीजी के महात्मा के रूप में गांव के जीवन में प्रवेश करने से हुई है। ग्रामीण जनता का धर्म के प्रति दृढ़ स्थायी भाव है। इसी स्थायी भाव का सहारा लेकर गांधीजी अपने नव-जागृति के कार्य में इतनी जल्दी सफल हुए। गांव की जनता आर्थिक और राजनैतिक बातों से उतनी जल्दी प्रभावित नहीं होती जितनी धार्मिक स्थायी भावों से। ग्रामीण जनता के स्थायी भाव उन वस्तुओं के प्रति होते हैं जिन्हें वे प्रति दिन देखते हैं, सुनते हैं और समझते हैं अथवा जो उन्हें सदा लाभ पहुंचाती रही हैं। जिस भूमि पर वे रहते हैं उसे वे धरती माता कहते हैं। ये भाव दूसरे लोगों में होना सम्भव नहीं है। उनके अपने घर, अपने गांव, अपने समाज अथवा परिवार के प्रति स्थायी भाव होते हैं। यही स्थायी भाव ग्रामीण समाज को संगठित बनाये हुए हैं। ग्रामीण जनता

रूढिवादी है। उसकी रूढिवादिता ने उसे हानि पहुचाने के साथ-साथ उसके अस्तित्व को जीवित भी रखा है। जिन लोगो में किसी प्रकार की रूढिवादिता नही होती उनमें चरित्र बल भी कम होता है। परम्परा और रीति समाज की आदतें है। यही आदतें उस समाज और सस्कृति की रक्षा करती है। उनमें विकास होना आवश्यक है। जब कोई समाज सर्वथा रीतियो और परम्पराओ से मुक्त होने का प्रयत्न करता है तो वह सस्कृति विहीन हो जाता है। एसा समाज प्राकृतिक प्रवृत्तियो में प्रवाहित होने लगता है। इस प्रवाह से रुकने की उसमें शक्ति नही रहती। मानव *जीवन के सचालन मे प्रकृति और सस्कृति का विशष* महत्व है। मनुष्य की मूल प्रवृत्तिया और उससे सम्बन्धित समवेग प्रकृति है और मनुष्य के स्थायी भाव और आदतें सस्कृति के परिणाम है। सस्कृति वह तत्व है जो प्रवृत्ति के प्रवाह को रोक कर उसे समाजोपयोगी बनाती है। सामाजिक जीवन में प्रकृति और सस्कृति दोनो ही कार्य करते है। प्रकृति के कार्य मनुष्य के आर्थिक जीवन में बाल-बच्चो के पालन-पोषण और लडाई-झगडो में देख जाते है और सस्कृति सम्बन्धी कार्य उसकी आदतो और स्थायी भावो में देख जाते है। सगीत कला, देव देवियो की उपासना भजन, कथा आदि सस्कृति है। समाज के त्योहार, धर्म सम्मेलन और सामाजिक वार्ताए उसे दृढ बनाते है। ग्रामीण जनता जिस उत्साह से त्योहार मनाती है जिस प्रकार की श्रद्धा से कथा में भाग लेती है और जिस जोश से मेले में जाती है वैसा शहर के लोग नही कर पाते। ग्रामीण जनता के इन स्थायी भावों को समाप्त कर देना उनके साथ बडा अन्याय होगा। उनमें नवनिर्माण करने के लिए इन भावों से लाभ उठाना आवश्यक है। समय परिवर्तन के साथ इनमें भी परिवर्तन आवश्यक होगा परन्तु *यहा पर मार्गान्तरीकरण पर्याप्त होगा।*

गाव के लोगो में बहुत-सी रूढिया पाई जाती है जिनके अत्यधिक प्रबल होने के कारण ग्रामीण जीवन में तरह-तरह की रुकावटें पैदा हो जाती है। शादी-विवाह तथा मृत्यु आदि के समय ग्रामीण जन इतना खर्च कर डालते है कि उन्हें कर्ज लेकर अपनी आवश्यकता पूरी करनी पडती है। इस तरह के उनके रीति रिवाज उन्हे पतन की ओर ले जाते है। इसी प्रकार दहेज की प्रथा, स्त्रियो के पर्दे की प्रथा, जाति-पाति की प्रथा, छुआछूत आदि की प्रथाए सामाजिक विकास में बाधक है। इनमें सुधार की नितान्त आवश्यकता है। जो मानसिक शक्ति इन प्रथाओ में फस गई है उसमें परिवर्तन करके ही हम ग्राम्य समाज में सुधार कर सकते है।

मानव-जीवन मे आत्म-हीनता और काम-वासना की मानसिक ग्रथियो से अनेक प्रकार के मानसिक विकार उत्पन्न हो जाते। आज हमारे ग्रामीणो के मस्तिष्क इस *प्रकार की मानसिक ग्रथियो से ग्रसित है जिससे वे अपना* आत्म विश्वास खो चुके है। उनके जीवन मे अनेक प्रकार के आतरिक सघर्ष आरम्भ हो गये है। काम-वासना जिन लोगो म अधिक प्रबल होती है वे अपनी वासना से बदला लेने के बदले अपनी स्त्रियो से बदला लेने लगते है। इस प्रकार की मनोवृत्ति चरित्र हीनता और इच्छा शक्ति की निर्बलता का परिणाम है। आत्म हीनता की ग्रथि के कारण मनुष्य दूसरे से अपने को सम्मानित प्रमाणित करने के लिए थोथी टीप-टाप में बडा खर्च करता है और थोडे से अपमान से आपे से बाहर हो जाता है और मरने-मारने को तैयार हो जाता है। ग्रामीण समाज में इस प्रकार की आत्म-हीनता पग-पग पर पाई जाती है। मुकदमेबाजी, लडाई-झगडे, छूत-अछूत आदि के भाव इसी ग्रथि की उपज है। ग्राम्य समाज को विकसित करने के लिए ग्रामीणो के मस्तिष्क से इन दोनो हानिकारक ग्रथियो का निराकरण आवश्यक है।

आत्म-हीनता से मुक्ति पाने के लिए दृष्टिकोण में परिवर्तन, साहस और धैर्य की आवश्यकता है। रचनात्मक कार्य करने, व्यक्तियो अथवा ग्रामीण समाज को विकसित *करने के लिए कार्यकर्त्ताओ को चाहिए कि वे उनके* निवास, भोजन, रोजगार की समस्या का व्यावहारिक दृष्टि से सुलझाकर अपने में विश्वास पैदा करें। फिर उन्हे चिन्ता, भय और निराशा से मनोवैज्ञानिक प्रयोगो द्वारा मुक्त करने का प्रयत्न करें। ऐसा होगा तो ग्रामीण समाज का विकास जल्दी हो सकता है।

एक जैन ग्रन्थ में क़ुरान की कथा

भंवरलाल नाहटा

विश्वप्रेम और मैत्रीभाव के लिए जैन धर्म का औदार्य्य गुण खूब प्रसिद्ध है। अपने से विरोधी विचार वाले दर्शनों के प्रति भी जैनधर्मावलम्बियों व जैनाचार्यों ने कभी घृणा के भाव न रखकर उनके गुणों का आदर करके अपनाया है। जैन धर्म-गुरुओं को स्वसमय व पर समय का पारगत होना आवश्यक माना जाता है। यही कारण है कि उनकी दार्शनिक भित्ति बड़ी सुदृढ़ रही है। उन्होंने सभी जैनेतर धर्म व सभी विषय के ग्रंथों का तलस्पर्शी अध्ययन किया। जो जितना अधिक उदार होता है दार्शनिक विचार धारा का उतना ही आदान-प्रदान कर अपनी लोकप्रियता एवं हार्दिक निर्मलता में अभिवृद्धि कर सकता है। स्वयं भगवान महावीर ने वैदिक धर्मानुयायी ११ महादिग्गज पण्डितों को उन्हींके वेदोक्त ऋचाओं द्वारा प्रतिबोध देकर सहस्रों शिष्य परिवार के साथ अपने प्रधान शिष्य बनाये थे। गणधरवाद इस बात का ज्वलंत उदाहरण है। किसी भी प्रतिस्पर्द्धी को समझाने के लिए उसके मान्य धर्मग्रंथों के उदाहरण दिये जाय तो वह शीघ्र समझ लेगा। जैनाचार्यों ने जैनेतर पौराणिक दृष्टान्तों व लोक-कथाओं का प्रचुरता से उपयोग किया है। यह बात निर्विवाद है कि घृणा से घृणा बढ़ेगी और प्रेम व्यवहार से प्रेम। किसी भी भाषा से घृणा करना ठीक नहीं, वह तो विचार प्रकाश का माध्यम है। Water और पानी में जितना अन्तर है उतना ही खुदा और परमेश्वर में, तब फिर इसके पीछे झगड़ा क्यों? जैन मनीषियों ने इस वास्तविकता को समझा और फारसी आदि यवन भाषाओं का उन्होंने अध्ययन किया और उन भाषाओं में स्तवन-छंद आदि नाना कृतियां रचीं। जैन विद्वानों ने जैनेतर ग्रंथों के पठन-पाठन और लेखन व संग्रह आदि तक ही सीमित न रहकर जैनेतर ग्रंथों पर पर्याप्त जैन टीकाएं रचीं। जिस जमाने में कुरान शरीफ जैसे यवनों के पवित्र ग्रंथों को छूना धर्मभ्रष्ट हो जाना माना जाता था, जैनाचार्यों ने गुणानुरागवश उसमें से भी कथाओं को अपने धर्मग्रंथों में स्थान दिया। आलोच्य कथा कुरान-शरीफ से ही उद्धृत है। जैन धर्म का अपरिग्रहवाद सर्व विदित है। गृहस्थ के लिए आवश्यकता से अधिक संग्रह करना ही जहां पाप माना जाता है वहां अपने साहित्य में सैकड़ों उदाहरण रहते हुए भी वाचक सूरचन्द्र ने यवन कथा को अपने 'पदैकविंशति' ग्रंथ में संस्कृत के ३४ श्लोकों में गुम्फित किया है। "मीयां सिलेमा धोबी फत्तू उदाहरण" के द्वारा जनसाधारण को अल्प परिग्रह में संतोष रखने का उपदेश दिया गया है। इस ग्रंथ में संस्कृत श्लोकों में निम्नोक्त फारसी शब्दों का प्रयोग किया गया है—तसलीम, मूसा, खुदा, अरज, पैगंबर, दरवेश, खालिक, मुलुक दुनीया, सोदागर, खाना, भिस्ति (बिहिश्त), दोजक मुर्दार और रूई। अन्त में "इतिश्री पदैकविंशती संतोषा संतोषांतरि सद्वस्तु निषेध का तत्त्वार्थकसिलेमा फत्तू नाम्नो कौराणिको दृष्टान्त ॥—ऐसा लिखा है।

सिलेमा और फत्तू की कथा

जिसको परिग्रह में वांछा नहीं उसके घर लक्ष्मी आती है और जो धन की वांछा करता है उसके मूल से ही चली जाती है। जैसे मियां सिलेमा और धोबी फत्तू के वृत्तानुक्रम से जानना।

एक बार खुदा ने बिहिश्त में मूसा पैगंबर से कहा—मूसा! तुम दुनिया का आचरण देखने के लिए जाओ! मूसा ने खुदा से तस्लीम करके विदा ली और चराचर मनुष्य लोक को देखने चला। रास्ते में एक जगह फत्तू नाम की बुढ़िया मिली जो वस्त्राभाव में अपने अंग धूलि में अच्छादित किये बैठी थी और मुख से बोल रही थी 'खुदा देवो, दिलावो!' मूसा को देखकर उसने कहा—"हे मूसा" तुम खुदासे अरज करके मुझेएक वस्त्र दिलाओ! जो गुह्यांग ढंकने के काम आवे, चाहे पुराना ही हो! मेरी उदर पूर्ति के लिए भी प्रार्थना करना!"

इसके बाद मूसा आगे चला और सिलेमा के घर के समुख पहुचा । द्वार पर मूसा को खडा देख कर वह अभिवादनपूर्वक अपने घर में ले गया । उसके आदर सत्कार से सतुष्ट होकर जब मूसा चलने लगा तो उसने कहा—"हे पैगंबर मूसा! खुदा से मेरी अरज करना कि सिलेमा के घर कृपा कर धन की कमी कर दो ताकि निश्चित होकर वह आपकी सेवा कर सके !" मूसा उससे 'अच्छा!' कह कर आगे बढा तो दरवेशो को देखा । उसने दरवेशो से कहा, "तुम खुदाई के खासे सेवक हो यदि खुदा से कुछ कहना हो तो कहो !" दरवेश लोग भूखे थे उन्हाने कहा, 'हमारे लिए दो बकरी व डेढमन घृत व चीनी दिलाओ अन्यथा हम तुम्हे छोड़ेंगे नही और तुम्हारा मस्तक कुत्तो से छेदेंगे।"

इस प्रकार लोगो का स्वरूप देखकर मूसा खुदा के पास आया और प्रणाम करके उठा तो खुदा ने पूछा, "दुनिया कैसी है ?" मूसा ने कहा 'देव! सब आपके सेवक हैं। मैं इस बार तीन व्यक्तियो से मिला।" खुदा के पूछने पर फत्तू आदि से जो बात हुई वह उसने क्रमश बतलाई। खुदा ने कहा, 'वृद्धा के लिए तुमने अधिक कहा तो मैं धूलि भी नही दूगा!' मूसा ने कहा, 'क्यो स्वामिन्! उसका क्या अपराध है?' खुदा ने कहा, 'उसने सुखी अवस्था में कभी मेरा नाम भी नही लिया। अपनी लिप्सा और लोभ के मारे अब मेरा नाम याद करती हैं। वह स्वार्थिनी है, उसका नाम भी मत लो। सिलेमा सौदागर के धन-सकोच की बात ही मुह से मत निकालो। यदि फिर कहोगे तो मैं उसका धन दस गुणा से सौ गुणा बढा दूगा!' मूसा ने कहा, 'प्रभो! जो नही चाहता, क्यो उसे विपुल धन देते हो?' खुदा ने कहा, 'इससे पहले उसने मेरी बहुत भक्ति की है। फिर भी खुदा ने कहा, 'दरवेशो ने जो मागा है, भर देना।' मूसा ने कहा, 'आपने सिलेमा और वुढिया के प्रति अयुक्त किया, एव दरवेश जो अनौचित्यवादी है उन्हे कैसे छोड दिया?' खुदा ने कहा, 'मूसा! बिहिस्त और दोजख नामक जो दो खाने हैं, मुझे भक्त और धर्म साधको से बिहिस्त का तथा देव-गुरु निन्दक, द्रोही और धर्म विरोधक लोगों से दोजख का खाना पूर्ति करना है। दरवेश पृथ्वी पर वेषधारी हैं। ये अकर्मण्य, क्षुद्र और मद्यप है, दुराचारी महाद्रोही और घमण्डी हैं। अत मेरे द्वारा ये दोजख भेजने योग्य हैं।' धन्य-धन्य कहनेवाले मूसादि सर्व पार्षद खुदा की आज्ञा को शिरोधार्य करके स्वस्थचित से खडे रहे।

हे मनुष्यो! इस प्रकार सिलेमा और फत्तू बुढिया के सबध को मनन करके अल्प परिग्रह में रुचि रखो, जिससे सिलेमा की तरह धन बढेगा।

यह कथा जिस पदैकविंशति ग्रथ से ली गई है उसमें महाभारत आदि की कई पौराणिक कथाए भी है। इस ग्रथ की अभी तक अपूर्ण प्रति ही प्राप्त हुई है। इसके रचयिता वा सूरचन्द्र गणि खरतरगच्छीय सुकवि १७ वी शती म हुए। आपके रचित जैनतत्व सार सटीक, स्थूलिभद्र चरित महाकाव्य, पचतीर्थी श्लेषालकार चित्रस्तव आदि बडे विद्वत्तापूर्ण ग्रथ हैं। आप का ग्रथ रचनाकाल १६५९ से १६९४ का है।

हिरा ठेविता ऐरणी, वाचे मारिता तो घणी ।
तोचि मोल पावे खरा, करणीचा होय चुरा ॥

तुकाराम

हीरे को निहाई पर रख कर उस पर घन मारे जायं तो भी यह साबुत रहता है। वही असली कीमत पाता है, नकली हीरा चूर चूर हो जाता है ।

गुणातीत

व्रजकृष्ण चांदीवाला

गुणों के भेद को समझाते हुए भगवान ने उद्धव से कहा था :

हे उद्धव ! जुदा-जुदा गुणों में से जिस गुण के कारण पुरुष जैसा हो जाता है वह अब मैं तुम्हें बताता हूं । शम (मनो निग्रह) दम (बाह्य इन्द्रियों का निग्रह) तितिक्षा (सहनशीलता) विवेक, तप, सत्य, दया, स्मृति (पूर्वापर का विचार रखना) सन्तोष, त्याग (धनादि का यथोचित खर्च करने का स्वभाव), अस्पृहा (विषयों में अनिच्छा), श्रद्धा, लज्जा, आत्म स्वरूप के ऊपर प्रीति, वैराग्य, दान, सरलता और विनय यह सब सत्व गुण की प्रवृत्तियां हैं ।

कामना (इच्छा), कर्म (व्यापार), मद (अभिमान) तृष्णा (असंतोष) दम्भ (गर्व), धनादि की कामना से देवताओं का यजन, भेद-बुद्धि विषय-भोग सुख-मद में युद्ध वगैरा का आवेश, स्व-प्रशंसा में प्रीति, हास्य भाव, पुरुषार्थ, बल और उद्यम यह सब रजोगुणी वृत्तियां हैं ।

क्रोध, लोभ, मोह, असत्य, हिंसा, याचना, दम्भ श्रम, कलह, शोक, क्लेश, दीनता, निद्रा, आशा, भय और उद्यम न करना यह सब तमोगुणी वृत्तियां है । २५ १ ४. ॥

हे उद्धव ! सत्व रज और तम यह बुद्धि के गुण हैं, आत्मा के नहीं । सत्व के द्वारा रज और तम दोनों को जीते और फिर सत्व की वृत्ति को भी सत्व (विचारादि) के द्वारा शान्त कर दे । वृद्धि पाया हुआ सत्व गुण मेरी भक्ति रूप धर्म प्राप्त करने में कारण भूत होता है । पीछे वह भक्ति रूपी धर्म रजोगुण तथा तमोगुण का नाश करता है और उन दोनों का नाश हुआ कि तुरन्त ही उन दोनों गुणों रूपी मूल वाला अधर्म भी नाश हो जाता है ।

आगे भगवान फिर कहते हैं :

हे उद्धव ! यह सत्व, रज और तम, तीनों गुण चित्त के हैं, आत्मा के नहीं है । चित्त के उन गुणों से देहादि पंच भूतों में आसक्त होनेवाला जीव बन्धन में पड़ता है । प्रकाशक, स्वच्छ और शान्त ऐसा सत्व गुण जब दूसरे दोनों गुणों को जीत लेता है तब पुरुष सुख, धर्म तथा ज्ञान वगैरा से युक्त होता है उसका चित्त प्रसन्न होता है, उसकी इन्द्रियां शान्त होती है, उसके शरीर में निर्भयता प्रतीत होती है और उसका मन संग रहित बनता है । जब संग करने में कारण रूप और प्रवृत्ति के स्वभाव वाला रजोगुण बाकी के दो गुणों को अभिभाव करके बढ़ता है तब पुरुष दुःख, कर्म यश तथा लक्ष्मी से युक्त बनता है उसकी बुद्धि चारों ओर विक्षिप्त बनती है । उसकी ज्ञानेन्द्रियां तथा कर्मेन्द्रियां अस्वस्थ बन जाती हैं और उसका मन चंचल बन जाता है । जब विवेक का नाश करनेवाला आवरण रूप तथा अनुद्यम स्वरूप तमोगुण बाकी दोनों को दबा कर बढ़ता है तब पुरुष शोक, मोह, निद्रा, हिंसा तथा आशा से युक्त होता है । उसका चित्त भ्रान्त बनता है, उसका अज्ञान और खेद बढ़ जाता है । उसका चित्त चिदात्मा के ग्रहण में खिन्न और असमर्थ बन कर लय हो जाता है वैसे ही संकल्पात्मक मन भी शून्यवत् हो जाता है । २५ १२–१८. ॥

हे उद्धव ! आत्मा की असंगता का ज्ञान सात्विक है, उसको कर्ता भोक्ता जानना राजस है तथा साधारण सांसारिक ज्ञान तामस है और मेरे स्वरूप का ज्ञान निर्गुण है । २५ २४ ॥

हे उद्धव ! जीव को देव, मनुष्य आदि सब जन्म गुण तथा कर्म से प्राप्त होते हैं और चित्त में ही प्रकट होते हैं । जिन जीवों ने इन गुणों को जीता है वह जीव भक्ति-योग द्वारा मेरे में निष्ठावान बन कर मुझको प्राप्त करने योग्य बन जाते हैं । मनुष्य शरीर प्राप्त करके, मनुष्य गुण संग का त्याग करके मेरा भजन करे और सत्व गुण के सेवन से रजोगुण तथा तमोगुण को जीते । उसके पीछे सावधान बन कर, उपशम रूप उस सत्व गुण से ही, शान्त बुद्धि वाला वह मुनि, सत्व गुण को भी जीत लेवे । इस प्रकार गुणों से मुक्त बना जीव, जीवपन के कारण रूप लिंग शरीर का

त्याग करके मुझे प्राप्त होता है। इसके पीछे अन्तःकरण में उत्पन्न होनेवाले गुणों से तथा लिंग शरीर से मुक्त बना वह जीव ब्रह्मस्वरूप ऐसा, मेरे से ही पूर्ण बन कर बाहर या अन्दर किसी प्रकार की आकांक्षा नहीं रखता। २५ ३१–३६ ॥

भगवान गीता में यही बात इस प्रकार कहते हैं :

ज्ञानी जब ऐसा देखता है कि गुणों के सिवा और कर्ता कोई नहीं है और जो गुणों से परे है उसे जानता है तब वह मेरे भाव को पाता है। १४ १९ ॥

देह के संग से उत्पन्न होनेवाले इन तीनों गुणों को पार करके देहधारी जन्म, मृत्यु और जरा दुःख से छूट जाता है और मोक्ष पाता है। १४ २० ॥

संसार में यह जो कुछ दौड़-धूप है, जो कुछ किया है, यह इन तीनों गुणों का ही खेल है जिनके आधीन हो कर जीव मरने जीने के, धर्माधर्म के, पाप-पुण्य के चक्कर में पड़ा रहता है। सत्व गुण भले ही सबसे ऊंचे दर्जे का हो मगर जीव को बांधने में वह भी तो कारण है। जंजीर चाहे सोने की हो, चाहे लोहे की, बांध रखने में दोनों समान हैं, अन्तर इतना अवश्य है कि लोहे की जंजीर कठिनाई से टूटेगी, सोने की आसानी से टूट जायगी। और बाज दफा यह सोने की जंजीर बांधने में अधिक मजबूत हो जाती है, क्योंकि बंदी यह महसूस करना भूल जाता है कि वह बंधा है, उसको अपने बन्धनों से ही मोह होने लगता है। इसीलिए जबतक तीनों गुणों से छुटकारा न हो, चाहे वह सत्व हो, चाहे रज और तम, जीव चक्कर में ही रहेगा। लेकिन जिसने इन गुणों से छुट्टी पाली है, जो इन्हें तर गया है, वह बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

बन्धनों से मुक्त होने का अर्थ क्या? गुण तो रहेंगे, लेकिन उनका प्रभाव न पड़ सकेगा, उनकी क्रियात्मक शक्ति जाती रहेगी। अर्थात् वह साम्यावस्था में आ जायगे। जहां पलड़ा बराबर हुआ कि बन्धनों की जंजीर टूटी। उसी साम्यावस्था को गुणों से छूटना कहते हैं। इसी अवस्था को जानने के लिए अर्जुन ने भगवान से पूछा :

हे प्रभो! इन गुणों को तरने वाला किन लक्षणों से जाना जाता है। उसके आचार क्या होते हैं? और वह तीनों गुणों को किस प्रकार पार करता है। १४ २१ ॥

उत्तर देते हुए भगवान कहने लगे :

हे पांडव! प्रकाश, प्रवृत्ति और मोह, सत्व, रज और तम प्राप्त होने पर जो दुःख नहीं मानता और इनके प्राप्त न होने पर इनकी इच्छा नहीं करता, उदासीन की भांति जो स्थिर है, जिसे गुण विचलित नहीं करते, गुण ही अपना काम कर रहे हैं, यह मान कर जो स्थिर रहता है, ऐसा बुद्धिमान जिसे अपनी निन्दा या स्तुति समान है, जिसे मान और अपमान समान है, जो मित्रपक्ष और शत्रुपक्ष में समान भाव रखता है और जिसने समस्त आरम्भों का त्याग कर दिया है, वह गुणातीत कहलाता है। १४ २३ २५ ॥

महात्मा गांधी लिखते हैं :

'जो गुणों को पार कर गया है, उस पर गुणों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। पत्थर प्रकाश की इच्छा नहीं करता, न प्रवृत्ति या जड़ता से द्वेष करता है, उसे बिना चाहे शान्ति है। उसे कोई गति देता है, तो वह उसका द्वेष नहीं करता, गति दिये पीछे उसे ठैरा करके रख देता है। तो इससे प्रवृत्ति-गति बन्द हो गई, मोह-जड़ता प्राप्त हुई, ऐसा सोच कर वह दुःखी नहीं होता, वरन तीनों स्थितियां में वह एक समान बर्तता है। पत्थर और गुणातीत में अन्तर यह है कि गुणातीत चेतनमय है और उसने ज्ञानपूर्वक गुणों के परिणामों का, स्पर्श का त्याग किया है और जड़ पत्थर-सा बन गया है। पत्थर गुणों का अर्थात प्रकृति के कार्यों का साक्षी है, पर कर्ता नहीं है। वैसे ही ज्ञानी के सम्बन्ध में यह कल्पना की जा सकती है कि वह, २३वें श्लोक के अनुसार गुण अपना काम किया करते हैं, यह मानता हुआ विचलित नहीं होता, और अचल रहता है, उदासीन-सा रहता है, अडिग रहता है। यह स्थिति गुणों में तन्मय हुए हम लोग, धैर्यपूर्वक केवल कल्पना करके समझ सकते हैं, अनुभव नहीं कर सकते। परन्तु उन कल्पनाओं को दृष्टि में रखकर हम 'मैं' पन को दिन दिन घटाते जाय, तो अन्त में गुणातीत की अवस्था के समीप पहुंच कर उसकी झांकी कर सकते हैं। गुणातीत अपनी स्थिति अनुभव करता है। उसका वर्णन नहीं कर

सकता। जो वर्णन कर सकता है वह गुणातीत नही है, क्योंकि उसमें अहभाव मौजूद है। जिसे सब लोग सहज मे अनुभव कर सकते है वह शान्ति, प्रकाश, चाचल्य अर्थात प्रवृत्ति और जडता-मोह है। गीता मे स्थान-स्थान पर इसे स्पष्ट किया है कि सात्त्विकता गुणातीत से समीप-से-समीप की स्थिति है। इसलिए मनुष्य मात्र का प्रयत्न सत्व गुण का विकास करना है। वह यह दृढ विश्वास रखे उसे कि गुणातीतता अवश्य प्राप्त होगी।'

ऊपर यह बताया गया है कि जिसे 'मै' पन का भान है, वह गुणातीत तो हो नहीं सकता। इस अहभाव से छूटने के लिए ही भगवान ने कहा है :

सब कर्म प्रकृति के गुणो द्वारा किये हुए होते है। अह-कार से मूढ बना हुआ मनुष्य 'मै कर्ता हू', ऐसा मानता है। लेकिन गुण और कर्म के विभाग का रहस्य जाननेवाला पुरुष गुण गुण में बर्त रहे है ऐसा मान कर उसमें आसक्त नही होता। ३.२७-२८. ॥

इसी बात को अधिक स्पष्ट करते हुए भगवान कहते है :

हे महाबाहो ! सब कर्मो की सिद्धि के लिए पाच कारण बताये गये है : १. अधिष्ठान (स्थान) २ कर्ता ३. करण (विभिन्न साधन) ४. कर्ता की अनेक प्रकार की पृथक-पृथक चेष्टाए अर्थात व्यापार और ५. दैव। शरीर से, वाणी से, अथवा मन से मनुष्य जो-जो कर्म करता है वह न्याय हो या विपरीत उसके उक्त पाच साधन है। वास्तविक स्थिति ऐसी होने पर भी जो सस्कृत बुद्धि न होने के कारण यह समझे कि मै ही अकेला कर्ता हू, समझना चाहिए वह दुर्मति कुछ भी नही जानता। लेकिन जिसे यह भावना नही है कि मै कर्ता हू तथा जिसकी बुद्धि अलिप्त है, वह यदि इन लोगो को मार भी डाले तथापि (समझना चाहिये) उसने किसी को नही मारा और यह कर्म उसे बन्धनकारक नही होता।' १८. १३-१७ ॥

जैसे मनुष्य खेत जोतता है, बीज उसमें डालता है। क्षेत्र है, किसान है, हल जोता, बीज डाला, पानी दिया, यह साधन और चेष्टा हुई तो खेती लहलहाने भी लगी मगर ओले पड गये और खेती नष्ट हो गई तो उसमें कर्ता का क्या ?

गुणो को पार करने का साधन बताते हुए भगवान आगे कहते है हे अर्जुन ! जो एकनिष्ठ भक्ति द्वारा मेरी सेवा करता है वह इन गुणो को पार करके ब्रह्म रूप बनने योग्य होता है। ब्रह्म की स्थिति मै ही हू, शाश्वत मोक्ष की स्थिति मै ही हू। वैसे ही सनातन धर्म की और उत्तम सुख की स्थिति भी मै ही हू। १४. २६-२७. ॥

यहा तक गुणो का, स्वभाव का, सहज कर्म का, श्रद्धा का, विवेचन हो चुका और यह बता दिया गया कि स्वभाव ही सब कुछ करवाता है। जैसे 'स्वभाव नियत कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्।' स्वभाव नियत कर्म करने से मनुष्य को पाप नही लगता।

और अन्त मे यह भी बता दिया कि गुणातीत अवस्था प्राप्त करने से देहधारी जन्म, मृत्यु और जरा के दुख से छूट जाता है और मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

गुणो को पार करने के लिए अन्त मे दो साधन बताये है १ साम्यावस्था की प्राप्ति अथवा २. भक्ति योग। या तो समता प्राप्त कर लो, तो तीनो गुणो के चक्कर में से छूट जाओगे या भक्ति योग द्वारा ईश्वर को प्राप्त करने के प्रयत्न मे लग जाओ, तो वह अपनी असीम कृपा से इन तीनो गुणो के जाल में से तुम्हे निकाल देगा, क्योंकि भगवान ने कहा है

'इन त्रिगुण भावो से सारा ससार मोहित हो रहा है और इसलिए उनसे उच्च और भिन्न ऐसे मुझ को— गुणातीत को वह नही पहचानता। इस मेरी तीन गुण वाली दैवी माया से तरना कठिन है पर जो मेरी ही शरण लेते है वे इस माया से तर जाते है।'

सफलता के तीन मूलमंत्र

'भारती'

प्रभावशाली जीवन के लिए हमें सबसे पहले जिस चीज की आवश्यकता है, वह यह कि हमें अपना कोई लक्ष्य चुन लेना चाहिए। बिना लक्ष्य निश्चित किए हम कदापि सफलता नहीं प्राप्त कर सकते। सामान्य रूप से हम कह सकते हैं कि एक सफल व असफल व्यक्ति में सबसे बड़ा व पहला अंतर यह है कि सफल व्यक्ति यह जानता है कि वह क्या चाहता है और उसमें सफलता प्राप्त करने के लिए—उसे पूर्ण करने के लिए अंत तक सभी संभव प्रयत्न करता है। जब कि असफल व्यक्ति जो-कुछ वह करना चाहता है उसका एक संदिग्ध और अनिश्चित विचार मात्र रखता है। ऐसा व्यक्ति दिन में भी सपने देख सकता है, किसी भी प्रकार के कार्य की योजना बना सकता है (यद्यपि उसके सभी कार्य संदिग्ध एवं अनिश्चित होते हैं।)

अपको अधिक दूर जाने की आवश्यकता नहीं। अपने परिचितों से ही पूछिए—उनके जीवन का उद्देश्य और लक्ष्य क्या है? आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि अधिकांश लोग इस प्रश्न पर मुंह फाड़कर देखने लग जायेंगे और आपके इस प्रश्न का निश्चित उत्तर देने में काफी परेशानी अनुभव करेंगे, पर इससे भी अधिक महत्वपूर्ण एवं मनोरंजक बात यह कि अपने आपसे यह प्रश्न पूछिए।

आपके अपने जीवन का प्रधान व निश्चित उद्देश्य क्या है? आप क्या करना और क्या बनना चाहते हैं? किसी भी अन्य कार्य की अपेक्षा वह ऐसा कौन-सा कार्य है जो आपको सबसे अधिक प्रिय है। जबतक इस प्रश्न का उत्तर आप तुरन्त ही निश्चित रूप से नहीं दे सकते, यह समझिए कि अभी आपने जीवन की सफलता के मार्ग पर पहला चरण भी नहीं रखा है।

उद्देश्य के लिए, तकदीर आजमाने के समान किसी आश्चर्यजनक चीज की आवश्यकता नहीं और न इसके लिए किसी भी देशव्यापी व्यापार की ही आवश्यकता है। सुनिश्चित व नियमित पठन द्वारा आपकी सामान्य संस्कृति का विस्तार हो सकता है। वह किसी भी प्रकार का कैसा भी कार्य हो सकता है, जिसे आप संभाव्य रूप से अपना सकते हैं, भले ही वह कार्य किसी सीमा में बंधा हो। वह किसी प्रकार की सामाजिक व सैनिक सहायता भी हो सकती है। वह किसी रूप में धार्मिक भावना भी हो सकती है।

इनमें से कोई भी उद्देश्य संतोषजनक एवं एकाग्रता वाला हो सकता है, जो आपके स्वर्णमय जीवन को कसौटी पर कसकर उसे उज्ज्वलतर बना सकता है, आपकी प्रतिभा का विकास कर उसे प्रकाश में ला सकता है और उस समाज में आपकी प्रतिष्ठा बढ़ा सकता है जिसमें कि आप रहते हैं।

जबतक आपने अपने लिए यह पहला मूलमंत्र नहीं सीख लिया है, तबतक आपका यह लेख पढ़ने का श्रम व्यर्थ ही होगा। इसके आगे पढ़ना तो समय का अपव्यय ही होगा। यदि आपने जीवन-निर्वाह अथवा कार्य करने के लिए कोई निश्चित उद्देश्य चुन लिया है अथवा आप इस स्थिति में हैं कि अपना उद्देश्य निश्चित कर सकें तो भी आपका इतना परिश्रम व्यर्थ गया नहीं समझिए।

मानवात्मा प्रायः अकल्पनीय विजयों को प्राप्त करने योग्य है। हम अपने आपको अनावश्यक निराशाओं और हृदय की गति बन्द होने आदि से बचा सकते हैं, यदि हमारा चुना हुआ लक्ष्य हमारी प्राप्त शक्तियों के अन्तर्गत हो।

एक बार उद्देश्य निश्चित कर लेने के पश्चात् हमें उसके लिए निर्दिष्ट आवश्यक नियमों का पालन करना चाहिए और उसे पूरा करने के लिए अपेक्षित ज्ञान तथा योग्यता प्राप्त करनी चाहिए।

किसी विद्वान ने कहा है कि कल्पना-शक्ति १ प्रतिशत ईश्वरीय प्रेरणा व ९९ प्रतिशत श्रम का फल है। बहुत से व्यक्ति अपनी उद्देश्य-पूर्ति में इसलिए असफल

रहते हैं, क्योंकि वे उद्देश्य में तो काफी अनुरक्त रहते हैं, पर उसकी पूर्ति के लिए जिन प्रयत्नों की आवश्यकता होती है, उनकी ओर बहुत ही कम ध्यान देते हैं। वे किसी सफल व्यक्ति के समान बनना तो पसंद करते हैं; पर उस व्यक्ति को वैसा बनने के लिए क्या-क्या करना पड़ा, कितना श्रम करना पड़ा, इस ओर ध्यान नहीं देते। वे बड़े भारी लेखक बनना चाहते हैं, अपने नाम को रवीन्द्रनाथ ठाकुर अथवा प्रेमचन्द के समान प्रकाशित देखना चाहते हैं पर रवीन्द्र व प्रेमचन्द को रवीन्द्र अथवा प्रेमचन्द बनने के लिए क्या करना पड़ा, कितने देशों व प्रान्तों की धूल छाननी पड़ी, अपने जीवन के कितने वर्ष अपने उद्देश्य के लिए खपाने पड़े, इसकी ओर वे ध्यान नहीं देते। वे तो केवल यही कल्पना करते हैं कि केवल साधारण रूप से विचार करते रहने से, ख्याली पुलाव पकाते रहने से ही वैसा बना जा सकता है।

हमारा उद्देश्य चाहे जो हो, हममें उसके ज्ञान की अतृप्त तृष्णा होनी चाहिए। एक प्रसिद्ध विद्वान की कब्र के पत्थर पर ये शब्द लिखे हुए हैं :—"अध्ययन में ही उसने अपना सारा जीवन खपा दिया।" वह काफी विद्वान था। तरह-तरह की पुस्तकें पढ़ने का उसे व्यसन था पर उसने कभी अपने मन में यह भावना तक न आने दी कि जो कुछ वास्तव में जानना चाहिए, जो कुछ जानने की आवश्यकता है, उसका वह शतांश भी जानता है (यद्यपि वह पूर्ण पण्डित था)।

पर केवल सैद्धान्तिक ज्ञान ही उद्देश्य की सफलता के लिए पर्याप्त नहीं है। जो व्यक्ति दौड़ में विजयी होना चाहता है, उसे दौड़ शुरू करने के तरीके, भारतुल्यता एवं सांस लेने-छोड़ने के संबन्ध में पर्याप्त जानकारी होना आवश्यक है। पर वह दौड़ने के अभ्यास से ही दौड़ सीख सकता है। इसी प्रकार कलाकार, चित्रकार, दृश्यरूपों, शरीर-विज्ञान, रंग मिलाना आदि का ज्ञान रखता है; पर इन सबके अतिरिक्त जो महत्वपूर्ण चीज होती है, वह है अभ्यास। अपनी कला में वह व्यावहारिक ज्ञान से चित्रकारी करके ही पूर्णता प्राप्त करता है।

असीम दृढ़निश्चय के बिना किसी भी उद्देश्य में सफलता प्राप्त नहीं की जा सकती। कठिनाइयां, जिनपर विजय प्राप्त की जा सकती है और समस्याएं जो हल की जा सकती हैं तथा सफलताएं जो इच्छाशक्ति के अभ्यास द्वारा प्राप्त की जाती हैं, साधारणतः आश्चर्यजनक होती हैं। यहां मानवात्मा की वास्तविक शक्तियों का पता चलता है।

पर इच्छा-शक्ति के साथ ही भावमय कल्पना का मिश्रण भी आवश्यक है। हमारी रुचि और उत्साह जिसे कि हम किसी काम में हाथ डालते हैं, हमारे द्वारा प्राप्त की जाने वाली सफलता की सीमा का बहुत हद तक निर्धारण करते हैं। हम उन्हीं कार्यों को सबसे अधिक अच्छे रूप में व सफलता से कर पाते हैं, जो हमें प्रिय होते हैं, जिन्हें करने में हमारी आन्तरिक प्रेरणा होती है।

और सबसे अन्त में हमें जो बात कहनी है और जो इन सबकी भित्ति है—वह है विश्वास। विश्वास—अपने आपमें विश्वास, उस कार्य की महानता, उसके मूल्य में विश्वास, जो कि हम कर रहे हैं, अथवा करने जा रहे हैं। कोई भी मनोवैज्ञानिक गहरी धर्म-श्रद्धा एवं विश्वास के विश्वसनीय प्रभाव से इन्कार नहीं कर सकता। मनुष्य की असफलता पर यही सबसे बड़ी विजय होती है। उसने अपने अल्पशक्ति साधनों को इसी विश्वास के बल पर अपने से बाहर उन असंख्य शक्तिशाली साधनों में परिवर्तित कर लिया है, जो सफलता की रीढ़ का काम करते हैं। और जिनकी सहायता के बिना वह कभी सफल नहीं हो सकता था।

●

इस संसार के अहंकारियों से कह दो कि अपनी पूंजी को कम कर दें। हानि और लाभ यहां समान हैं।

—हाफिज

कसौटी पर

१ तीर्थंकर वर्द्धमान ले—श्रीचन्द्र रामपुरिया : प्रकाशक—हमीरमल पूनमचन्द रामपुरिया, सुजानगढ़ (बीकानेर) पृष्ठ सख्या लगभग ५०० बडा साइज। मूल्य ५) मात्र।

प्रस्तुत पुस्तक में जैन-धर्म के अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामी का जीवन तथा उनके प्रवचन दोनो है। जीवन को यथाशक्ति प्रामाणिक बनाने का प्रयत्न उसमें प्रत्यक्ष है। हर तथ्य के लिए मान्य जैन ग्रन्थो के प्रमाण प्रस्तुत किये गये है। इस ग्रन्थ के पीछे एक योजना है और है अपूर्व श्रद्धा जिसके कारण इसमें रस है और शाति भी है। ज्ञान तो है ही। इस पुस्तक से जैन-धर्म को समझने में निःसदेह सहायता मिलेगी और जन-साधारण में जो अनकानेक भ्रम फैले हुए है उनका निराकरण होगा। यद्यपि इस ग्रन्थ के पीछे जैन-धर्म के सम्प्रदाय विशेष की दृष्टि है, तो भी कुछ मतभेद की बातो को छोड कर यह वर्द्धमान के जीवन और तत्वज्ञान का प्रामाणिक कोष है। भाषा सरल और मजी हुई है। हा, प्राकृत से अनुवाद करते समय उसका प्रभाव स्पष्ट है। 'प्रवचन' के अन्तर्गत जो वर्गीकरण हुआ है वह पाठक के लिए बडा उपयोगी है।

पुस्तक एक बडे अभाव की पूर्ति है। यह जैनधर्म की सूक्तियो की एक प्रामाणिक चयनिका है। धार्मिको के लिए ही नही दूसरो के लिए भी इसका मूल्य है। बल्कि उन्हीके लिए यह उपादेय है। मूल्य बहुत कम है। रूप-रग सुन्दर है।

२. सम्मेलन पत्रिका : लोक सस्कृति अक सम्पादक-रामनाथ सुमन प्रकाशक—हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग मूल्य ६)

सम्मेलन पत्रिका वैसे तो सदा ही अच्छा साहित्य देती है, पर इस बार उसने लोक सस्कृति अक निकाल कर बहुत ही सुन्दर और ठोस साहित्य दिया है। लोक सिद्धान्त, लोक-गीत, लोक-कला और लोकायन स्तम्भो के अन्तर्गत प्रामाणिक विद्वानों ने जो लेख लिखे है वे लोक सस्कृति और लोक मानस का सम्पूर्ण और स्पष्ट चित्र उपस्थित करते है। सम्पूर्ण यहा 'अन्तिम' और 'इससे अधिक नहीं' अर्थों में नही है बल्कि भावना की सम्पूर्णता से यहा तात्पर्य है। लोक साहित्य में जो मासल जीवन छलछलाता है, प्रेम और करुणा की जो रसवती धारा बहती है, अनुभव और ज्ञान की जो सूक्तिया सचित है, वे सब इस अक में सम्पादक ने सजोयी है। इसके पीछे योजना है और है परिश्रम की विपुलता। इसमें इतिहास है, काव्य है और सम्पूर्ण मानव का अध्ययन है। इसके लेखक भारत के वे विद्वान है जो इस विषय पर साधिकार लिख-बोल सकते है। कुछ सामग्री हल्की पड सकती है पर ठेठ दक्षिण को छोड कर शेष भारत के लोक-जीवन का पूरा अध्ययन प्रस्तुत करने का नियोजित प्रयत्न इसमें है। उसका वर्तमान साहित्य और कला पर क्या प्रभाव पडा है यह भी बताया है। यह अक साहित्यिक के लिए साकार प्रेरणा है।

सम्पादन ही सुन्दर नही है — छपाई, सफाई, रूप रग सब कलात्मक है।

३. द्रौपदी-विनय अथवा करुण-बहत्तरी · ले— श्री रामनाथ कविया : सम्पादक—प्रो कन्हैयालाल सहल। प्रकाशक—बगाल हिन्दी-मण्डल, कलकत्ता। पृष्ठ स ६० मूल्य ॥।)

द्रौपदी विनय के लेखक चारण रामनाथ जी अपने युग के प्रतिभाशाली वीर पुरुष थे। वे लेखनी और कटार दोनो का प्रयोग समान रूप से कर सकते थे। आज से लगभग २०० वर्ष पूर्व जेल में ही उन्होंने यह पुस्तक लिखी थी। यह कहानी पुस्तक की भूमिका में दी हुई है। पुस्तक की कविता बडी ओजपूर्ण है। द्रौपदी की विनय में कातरता नही है, आक्रोश है और है अधिकार। चीर-हरण की कथा लोक-प्रसिद्ध है। उसीको कवि ने अपनी स्वाभाविक ओजपूर्ण वाणी में कहा है। ये सोरठे पढ कर मन फड़क उठता है और रोमाच हो आता है।

द्रौपदी ने जिस प्रकार पाण्डवों पर, भीष्म-द्रोण पर, कौरवों पर आक्षेप किये हैं वे सती के आन्तरिक आक्रोश को स्पष्ट करते हैं। कवि जैसा स्वाभिमान, वीर और दृढ प्रतिज्ञ था वैसी ही है उसकी कविता। उसमें से वीरता और स्वाभिमान बहे पडते हैं। वैसे उसमें कुछ ऐतिहासिक भूलें रह गई हैं। सम्पादक ने भी उन्हें नहीं देखा। द्रौपदी का भाई 'धृष्टद्युम्न' था 'प्रद्युम्न' नहीं। सम्भवत. यह छापे की भूल है। कवि ने कर्ण को द्रौपदी से अपना जेठ कहलवाया है। (सोरठा ४६) वह गलत है। कर्ण कुन्ती-पुत्र है यह सबको महाभारत के युद्ध के बाद पता लगा। पहले तो भीष्म, कृष्ण, कुन्ती आदि दो-चार व्यक्ति ही जानते थे। फिर कवि का यह कहना कि चीर बढ जाने के बाद वसुदेव का पुत्र यमुना के किनारे 'रास में रम गया' भी गलत है। तब तो कृष्ण द्वारका में रहते थे। एकबार ब्रज छोड कर कृष्ण फिर वहा नहीं गये। सम्पादक इन बातों की ओर संकेत करते तो अच्छा था। शेष सब प्रयत्न स्तुत्य है।

पुस्तक की छपाई, सफाई, रूप-रग मूल्य ये सब भी उचित हैं।

४. साहित्य के पथ पर . ले.—रवीन्द्रनाथ ठाकुर अनुवादक सर्वश्रीधन्यकुमार जैन तथा हसकुमार तिवारी प्रकाशक—रवीन्द्र साहित्य मन्दिर, पी १५, कलाकार स्ट्रीट, कलकत्ता ७। पृष्ठ संख्या लगभग १५०, मूल्य २।)

प्रस्तुत पुस्तक रवीन्द्र साहित्य का २४ वा भाग है। इसमें कवि के 'साहित्य सम्बन्धी' ११ निबन्धों का सकलन है। इन निबन्धो में साहित्य की मूलात्मा 'मानवता' का जयघोष हुआ है। आन्तरिक अनुभूति और आत्म प्रसाद ही कवि का अवलम्बन है (पृष्ठ १७) खेल छुट्टी और आनन्द उसका सदेश (२१) श्रद्धा और प्रेम के सयोग से जैसे दान सुन्दर होता है वैसे ही साहित्य भी। मनुष्य के साथ मनुष्य का जो सम्बन्ध बाह्य प्रकृति के तथ्य-राज्य को अतिक्रम करके आत्मा के सम्बन्ध में ले जाता है जो सौन्दर्य का सम्बन्ध है, प्रेम का सम्बन्ध है, कल्याण का सम्बन्ध है उसीमें। वही मनुष्य का सृष्टि का राज्य है। (पृष्ठ ५७) साहित्य का विचार साहित्य की व्याख्या है, साहित्य का विश्लेषण नहीं। यह व्याख्या प्रधानत. साहित्य विषय के 'व्यक्ति' को लेकर होनी चाहिए उसके जाति कुल को लेकर नहीं।' (७७) मन को वे कला का वाहन मानते थे विज्ञान का भी। साहित्य का सहज अर्थ उनकी राय में था नैकट्य अर्थात् सम्मिलन। (२२९) उन्होंने स्पष्ट कहा है—'जो साहित्य समग्र रूप से मनुष्य की महिमा को प्रकाशित नहीं कर सकता उस पर गौरव नहीं किया जा सकता'। (१३४) कवि के ये सूत्र-वाक्य आत्मा में उतारने योग्य हैं।

प्रसगवश कवि ने हिन्दी की प्राचीन कविता की प्रशसा भी की है पर वह गौण है मुख्य, तो साहित्य का विवेचन ही है। उसे हिन्दी-पाठकों को भेंट करके अनुवादक ने निस्सदेह प्रशसनीय कार्य किया है। इन निबन्धों को पढने पर कविता का रस, कथा का कौतूहल और विज्ञान का ज्ञान सहज ही पाठक के मन में उतरता चला जाता है। जिस मानव के साहित्य का लक्ष्य मान कर रवीन्द्र विश्व कवि हुए, उसी 'मानव' की साहित्य के माध्यम द्वारा कवि ने इस पुस्तक में व्याख्या की है।

५ गृह-दाह . शरत साहित्य भाग १६-१८: अनुवादक—धन्यकुमार जैन : प्रकाशक—हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई। पृष्ठ स. ३०० । मूल्य ३)

प्रस्तुत उपन्यास शरत के अति प्रसिद्ध उपन्यासों में से न होकर भी लोकप्रिय काफी हुआ है। इसका फिल्म चित्र भी बन चुका है। इस पुस्तक का भी यह तीसरा सस्करण है। तीसरा सस्करण कोई गौरव की बात नहीं, पर हिन्दी पाठकों की जो दशा है उसको देखते हुए इसे लोकप्रियता का प्रमाण माना जा सकता है। शरत की लोकप्रियता का कारण उसकी नारी का चले आये अर्थात् रूढिगत प्रेम के प्रति विद्रोह है। वे उच्छृखल नहीं है। उनके प्रेम में मूक बलिदान कूट-कूट कर भरा है। वे मात्र विद्रोहिणी नहीं है। उनका विद्रोह बलिदान की आभा से दमकता है। 'गृहदाह' की 'मृणाल' उस मूक बलिदान का गौरवपूर्ण चित्र है पर वह उपन्यास की नायिका नहीं है। नायिका है अचला जो प्रेम करना जानती है, विद्रोह करना जानती है पर बलिदान करते-करते रह जाती है। इसी शक्ति के अभाव में वह दो प्रेमियोंके बीच टूटती रहती है। एक है महिम—"तीक्ष्ण बुद्धिमान,अल्पभाषी, जो सुख-दुख कुछ भी हो अपने प्राप्य के सिवा तिलमात्र भी अधिक पान

की आशा नहीं करता, पाने पर भी लेता नहीं।" दूसरा है उसका धनी मित्र सुरेश—'किसी का दुख कष्ट, किसी की आफत-विपत उससे सही नहीं जाती। अपने प्राणों की आशा छोड़ कर वह विपत्ति में कूद पड़ता है।' जो पाप-पुण्य कुछ नहीं मानता। दोनों अभिन्न हैं। रूपवती अचला उनमें भिन्नता का कारण बनती है। वह महिम की है पर सुरेश के गुण, उसका पौरुष उसे उसकी ओर खींचते हैं। या कहे सुरेश जब अन्याय से उसे अपनी ओर लुभाता है और उडा कर ले जाता है, तो भी वह विद्रोह नहीं कर पाती। महिम भी कुछ नहीं कहता। वही मूक स्वीकारोक्ति जैसे दोनों को बेचैन करती रहती है। सुरेश अपने को सेवा के लिए होम देता है। वह आत्महत्या-जैसी बात है। अचला अपने ही पति से किसी आश्रम का पता पूछती है। वह आश्रम बताने का भार मृणाल पर छोड कर वहा से हट जाता है। कथा इतनी है। वैसे उसमें अचला के ब्रह्मसमाजी पिता है जो पैसे को प्यार करते है। रूढियों में फसे हुए निश्छल हृदय रामबाबू भी है। ममतामयी 'राक्षसी' भी है। पर वे सब गौण है। मुख्य तो मानव के मन का अध्ययन है। शरत न गृहदाह में उसके भीतर के पर्त खोल कर रख दिये है। शिव में शैतान और शैतान में शिव के जो दर्शन इस उपन्यास में हुए है वे अपूर्व है। कोई मानव शिल्पी ही इन मूर्तियों में प्राण डाल सकता था। सघर्ष और फिर उसका शमन, रूढियों का प्रहार और फिर उनका दमन, और फिर न चाह कर भी उनका शिकार हो जाना यह मानव की विवशता है, पर मृणाल का चरित्र और उसके द्वारा केदार बाबू का परिवर्तन ये उस विवशता को चुनौती देनेवाले हैं, ये मानव की चिर विजय के प्रतीक है। अपनी अनेक दुर्बलताओं के बावजूद शरत का यह उपन्यास उनकी कला का विजय स्तम्भ है।

हमारे सहयोगी

सदा की भाति इस वर्ष भी अनेक पत्र पत्रिकाओ ने दीपावली के अवसर पर अपने विशेषाक निकाले हैं। उनमें कुछ उल्लेखनीय ये हैं—

१. मध्यभारत सन्देश, ग्वालियर। अवसरानुकूल कविताओ और लेखो से सज्जित यह अक सुन्दर बना है।

२ योगी पटना। 'दिनकर' के रूपक से आरम्भ करके सम्पादक ने सर्वश्री राधाकृष्ण, बेनीपुरी, राधाकृष्ण प्रसाद, जगन्नाथप्रसाद मिश्र, केसरी, आरसी, विश्वनाथ प्रसाद, नलिनी विलोचन तथा शिवसागर मिश्र की रचनाओं से इस अक को सजाया है। सामग्री सुन्दर और सामयिक ही नही ठोस भी है।

३ सन्मति—(मराठी), पूना। ४ फूलछाब, (गुजराती) ५ व्यापार (उर्दू) ६ कर्मवीर, खण्डवा, ७ रामराज्य, कानपुर ८ प्रजासेवक, जोधपुर ९ नई दुनिया, इदौर के अक भी सुन्दर बने हैं। अतिम पत्र ने एक अच्छा सुझाव दिया है कि लक्ष्मी-पूजा युग के अनुसार होनी चाहिए। इसका आवरण पृष्ठ बड़ा सुन्दर और प्रभावपूर्ण है। वह अकेला चित्र बहुत कुछ कह देता है।

इनके अतिरिक्त 'भूदान-यज्ञ बिहार' का गांधी जयन्ती अक भी उपादेय सामग्री से पूर्ण है। अपने नाम के अनुरूप उसने भूदान पर जोर दिया है। वह युग की माग है। ब्रेजबन्धु, मथुरा का 'ब्रज सस्कृति अक' ब्रज भाषा, साहित्य और सस्कृति का अच्छा परिचय देता है। अक के पीछे काफी परिश्रम है। लेखकों में अधिकारी विद्वान हैं। किशोर, पटना ने श्री रामदहन मिश्र की स्मृति में श्रद्धाक निकाला है। उनके जीवन और कार्य का पूरा लेखा-जोखा इसमें है। वे स्वय एक सस्था थे। यह अक निकाल कर 'किशोर' ने अच्छा ही किया है। दूसरे लोग भी मिश्र जी के शक्तिशाली व्यक्तित्व की झाकी देख सकेंगे।

उद्योग व्यापार पत्रिका—भारत सरकार की *पत्रिका है। जुलाई १९५३ से प्रकाशित हो रही है।* यह पत्रिका प्रकाशित कर सरकार ने एक कमी दूर की है। इस क्षेत्र में सरकार क्या कर रही है, देश की क्या स्थिति है—यह जानकारी तो इसमें है ही अनेक उद्योगो पर जानकारी से भरे लेख भी हैं। हम इसका स्वागत करते हैं। इसका चन्दा ६) वार्षिक है।

क्या व कैसे ?

रोग का स्थाई इलाज

पिछले दिनों लखनऊ विश्वविद्यालय के छात्रों और उत्तरप्रदेश के शासन के बीच जो संघर्ष हुआ और जिसके फलस्वरूप अन्य स्थानों पर भी छात्रों ने रोषपूर्ण प्रदर्शन और उपद्रव किये, वह एक आम सोच देनेवाली घटना है। इसमें किसका कितना दोष है, इसका निर्णय करना कठिन है, पर इसमें शक नहीं कि छात्रों ने कानून हाथ में लेकर और असामाजिक तत्वों को मनमानी करने का अवसर देकर, छात्र धर्म की मर्यादा का उल्लंघन किया। उधर शासन ने गोली चलाकर, भले ही वह कैसी ही विषम परिस्थिति में क्यों न चलाई गई हो, अनुचितवीय कार्य नहीं किया।

हर्ष की बात है कि अब स्थिति काबू में आ गई है और सब कुछ पूर्ववत् चलने लगा है, लेकिन इतने से इस घटना की ओर उपेक्षा की दृष्टि से देखकर भविष्य के लिए आंखें मूद लेना बुद्धिमानी नहीं होगी। बुराई की जड़ में जाने और उसे समझ कर दूर करने की आवश्यकता है।

मुख्य प्रश्न यह उठता है कि क्या इतनी बड़ी घटना, जिसने सारे देश को चिंतित कर दिया, विद्यार्थियों या अधिकारियों के तनिक उत्तेजनमात्र से घट गई ? हमारा जोरदार उत्तर है—नहीं। हमारी निश्चित राय है कि इसके पीछे एक गहरी बुराई है और जबतक वह दूर नहीं होती, इस प्रकार के उपद्रव आये दिन होते रहेंगे।

और वह बुराई है कालेजों और विश्वविद्यालयों की शिक्षा-पद्धति की अनुपयुक्तता और निरर्थकता। हम पूछते हैं कि जो शिक्षा हमारे युवकों में कर्तव्य-भावना, शील और श्रद्धा का उदय नहीं करती, जो उन्हें स्वावलम्बी नहीं बनाती और जो लोकहित के लिए बलिदान होना नहीं सिखाती, वह उपयोगी और कल्याणकारी कैसे कही जा सकती है ?

हमारा सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि हम आज भी उस निकम्मी शिक्षा-प्रणाली से चिपके हुए हैं, जिसको एक विदेशी सरकार ने इस देश की नींव को कमजोर करने के लिए जन्म और पोषण दिया था। देश के शासन की बागडोर अपने हाथ में आ जाने पर भी हम उसीका अन्धानुकरण किये जा रहे हैं। शिक्षा किसी भी देश के नागरिक जीवन की रीढ़ होती है, लेकिन इसके महत्त्व को हमारे शासकों ने अभी तक नहीं समझा या समझ कर भी उस दिशा में कोई ठोस कदम नहीं उठाया है। हां, कमीशन-पर-कमीशन बैठे हैं, कान्फ्रेंस-पर-कान्फ्रेंस हुई हैं, पर हम जहां-के-तहां हैं।

विनोबा के शब्दों में "हमें तो आश्चर्य इस बात का होता है कि हमारे छात्र अपना समय, शक्ति और मां-बाप का रुपया बर्बाद करने के लिए विद्यालयों में जाते क्यों हैं ?"

यदि हम चाहते हैं कि हमारे युवक कर्तव्यपरायण नागरिक बनें, उनमें जिम्मेदारी आये, देश के भार को उठाने के लिए उनके कंधे मजबूत हों, तो उन्हें वैसी ही शिक्षा देनी होगी। आज तो हम बबूल का पेड़ लगा कर आम पाने की व्यर्थ आशा कर रहे हैं।

हम शिक्षा-शास्त्री नहीं हैं, पर परलोक-हित की दृष्टि से हमें स्पष्ट दिखाई देता है कि हमारी उच्च शिक्षा में मूलभूत परिवर्तन होना चाहिए। मैट्रिक तक भले ही शिक्षा अनिवार्य रहे, लेकिन उससे ऊपर की शिक्षा विद्यार्थियों को किसी विषय में पारंगत करनेवाली होनी चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि उच्च शिक्षा पाकर युवक को नौकरी के पीछे भटकना न पड़े, बल्कि शिक्षण पूरा करने के बाद तत्काल उसकी व्यवस्था हो जाय। इससे त्रिविध लाभ होगा : (१) विद्यार्थी बेकार नहीं रहेंगे, (२) विविध विषयों के विशेषज्ञ बनेंगे, (३) उनकी विशेषज्ञता से देश की समृद्धि बढ़ेगी।

केन्द्रीय शिक्षामंत्री मौलाना आजाद ठीक ही इस बात पर जोर दे रहे हैं कि नौकरी के लिए उच्च शिक्षा की—बी. ए. या एम. ए.—की कैद नहीं होनी चाहिए। हम

इसके साथ इतना और जोड़ देना चाहते हैं कि वर्तमान रूप में उच्च शिक्षा रहनी ही नहीं चाहिए।

युवकों में कार्य शक्ति होती है, उत्साह और उमंग है। यदि हम चाहते हैं कि उस शक्ति, उत्साह और उमंग का उपयोग समाज और राष्ट्र के सृजनात्मक कार्यों में लगे, ध्वंसात्मक कार्यों में नहीं, तो उन्हें वैसा ही शिक्षण मिलना चाहिए। आज नैतिक शिक्षा की जितनी उपेक्षा हमारे शिक्षालयों में हो रही है, उतनी शायद ही और किसी चीज की होती हो।

विद्यार्थियों और उनके अभिभावकों को हमारी सलाह है कि वे जोरदार शब्दों में मांग करें कि मौजूदा शिक्षा हमें नहीं चाहिए और यदि उनकी सुनवाई न हो, तो शांतिपूर्ण ढंग से उन्हें उच्च शिक्षालयों का बहिष्कार कर देना चाहिए। शिक्षाधिकारियों से हमारा अनुरोध है कि वे ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होने देने से पहले ही सावधान हो जायं और शिक्षा में बुनियादी परिवर्तन करके उसे राष्ट्रोपयोगी बना दें। बिना ऐसा किये हम बुराई का स्थायी हल कदापि नहीं निकलने का। शिक्षा-विभागों का आज जैसा रवैया है, उससे तो मर्ज दिनादिन बढ़ेगा और एक दिन असाध्य हो जायगा। आज भी वह काफी पुराना हो गया है। उसकी और अधिक उपेक्षा देश के लिए विनाशकारी ही होगी।

दिल्ली-शासन का सूझ भरा काम

दिल्ली शासन की प्रेरणा से पिछले वर्ष की भांति इस वर्ष भी पं. नेहरू की वर्षगांठ के अवसर पर, १४ नवम्बर को, बच्चों द्वारा जो खेल-कूद और प्रदर्शन किये गये, वह निस्संदेह एक बड़ी सूझभरी चीज थी। सब जानते हैं कि नेहरूजी को बच्चे बहुत प्रिय हैं और उनके बीच वह बड़ा सुखद आनन्द प्राप्त करते हैं। सम्भवतः इसी कारण शिक्षा-विभाग ने विभिन्न स्कूलों के छात्र और छात्राओं के मनोरंजक खेल-कूदों और सांस्कृतिक कार्यक्रमों की एक ऐसी अभिनन्दनीय परिपाटी का श्रीगणेश किया है, जो आगे बराबर चलनी चाहिए। नेशनल स्टेडियम में उक्त अवसर पर आयोजित प्रदर्शनों में, बच्चों के सुसंगठित व्यायाम, बच्चियों के लोक-नृत्य तथा अन्य खेल-कूद देखकर न केवल नेहरूजी का मनोरंजन हुआ, अपितु हजारों दर्शकों और उनके अभिभावकों को भी रोमांच हो आया। बच्चों का अनुशासन तो देखने योग्य था। धूप और प्यास की चिंता न करके वे मंत्रमुग्ध से अपने संगी-साथियों के खेल-कूद देखने और उनकी सराहना करते रहे।

बच्चों के शिक्षण की दृष्टि से भी इन प्रदर्शनों का बड़ा महत्व था। यदि छोटी आयु में ही उन्हें अनुशासन की शिक्षा मिले और उनका चरित्र-गठन हो, तो वह दुर्दिन क्यों देखने को मिले, जो आज प्रायः दिखाई देता है।

अपनी वर्षगांठ के अवसर पर नेहरूजी ने कहा था, "आज के बच्चों की आंखों में मैं कल का हिंदुस्तान देखता हूं। यह सच है कि आज के बच्चे कल के भारत हैं। इसलिए बच्चे जैसे अब मिल-जुल कर खेलते हैं, वैसे ही बड़े होकर भी आपस में मिल कर रहें। उनमें ऊंच-नीच नहीं होनी चाहिए। जो लोग धर्म और मजहब के नाम पर आपस में लड़ते हैं, वे देश की सेवा नहीं करते। उन्हें बड़े होकर भी बराबर के बनकर रहना है और देश का नाम करना है। अगर यह भावना उनमें बनी रही तो देश मजबूत होगा और तरक्की करेगा।"

इन उद्गारों की सचाई से कौन इन्कार कर सकता है?

'जीवन-साहित्य' के ग्राहकों से

'जीवन साहित्य' के अंक न मिलने की इधर हमें कई शिकायतें प्राप्त हुई हैं। वैसे प्रत्येक अंक यहां से देख भाल कर भेजा जाता है, फिर भी भूल हो सकना असम्भव नहीं है। लेकिन यदि पाठक हमें सीधा लिखने की बजाय पहले अपने डाकखाने से पता लगा लें और डाकखाने के उत्तर के साथ हमें लिखें, तो कार्रवाई करने में हमें विशेष सुविधा होगी। प्रत्येक अंक रजिस्ट्री से नहीं भेजा जा सकता। फिर कुछ ग्राहक बन्धु तो अपना पता इतनी अस्पष्ट लिखावट में लिखते हैं कि पूरी सावधानी के बावजूद सहज ही भूल हो सकती है। हमारा निवेदन है कि जिन ग्राहकों के नाम या पते में कोई अशुद्धि रहती हो, वे उसकी सूचना देकर ठीक करा लें। फिर भी अंक मिलने में गड़बड़ हो, न मिले या समय पर न मिले तो पहले, अपने डाकखाने से जांच करें। तत्पश्चात् डाकखाने के

पत्र के साथ हमारे कार्यालय को लिखें। प्रत्येक ग्राहक को अपनी ग्राहक-संख्या हर हालत में लिखनी चाहिए, अन्यथा कार्रवाई करने में विलम्ब हो जायगा।

पाठकों से निवेदन—

'जीवन-साहित्य' के पिछले अंकों में हमने अपने पाठकों से अनुरोध किया था कि वे पत्र की वर्तमान सामग्री के विषय में लिखने की कृपा करें कि उसमें क्या परिवर्तन-परिवर्द्धन चाहते हैं। हम चाहते हैं कि 'जीवन साहित्य' अधिक-से-अधिक प्रचारित और प्रसारित हो। यह तभी सम्भव हो सकता है जब उसे सामान्य पाठकों का सहयोग मिले।

इधर तीन सुझाव हमारे पास आये हैं। एक बन्धु का कहना है कि पत्र में भूदान-यज्ञ की प्रगति का संक्षिप्त विवरण रहना चाहिए। दूसरे बन्धु की राय है कि पत्र में ग्रामोपयोगी रचनाएं अवश्य रहें। उनका तात्पर्य यह है कि कुछ ऐसी रचनाएं भी दी जाय, जिनका ग्रामों और उनकी समस्याओं से सीधा सम्बन्ध हो। तीसरे भाई का कहना है कि प्रत्येक अंक में एक लेख विद्यार्थियोपयोगी रहना चाहिए। यह सुझाव अध्यापकों की ओर से आया है। उनका कहना है कि 'जीवन-साहित्य' बहुत से स्कूलों में जाता है। अतः वे चाहते हैं कि कुछ सामग्री छात्रों के लिए भी रहे।

'जीवन-साहित्य' की रचनाओं का चुनाव बहुत सोच-समझ कर किया जाता है। इतना ही नहीं, उसमें विविध रुचियों का भी ध्यान रक्खा जाता है। एक दृष्टि यह भी रहती है कि उसे पढ़ कर पाठकों की रुचि और नैतिक धरातल ऊंचा उठे।

ऊपर के तीनों सुझावों का हम स्वागत करते हैं। उन्हें कार्यान्वित करने का यथावसर प्रयत्न करेंगे। लेकिन हम चाहते हैं कि कुछ सामग्री अपने पाठकों से भी प्राप्त हो। पत्र की नीति के अनुसार किसी भी जीवनोपयोगी विषय पर यदि वे संक्षेप में और साफ अक्षरों में विचारपूर्ण सामग्री भेजेंगे तो हम उसका उपयोग करने का प्रयत्न करेंगे। अस्वीकृत होने पर यदि वे रचना को वापस चाहते हैं तो उसके लिए आवश्यक टिकट आने चाहिए।

—सं०

यह मास

दिसम्बर का महीना यू तो कई कारणों से महत्वपूर्ण है। हमारी राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म इसी मास की २५ तारीख को बम्बई में हुआ था। इसी मास में हमारे वर्तमान राष्ट्रपति का जन्म हुआ। उन पर एक लेख इस अंक में जा रहा है। उन जैसे साधुमना और सजग प्रहरी के कारण ही भारत की स्वतंत्रता आशामय भविष्य की ओर संकेत कर रही है। वे चिरायु हों। ईसा जयन्ती भी इसी मास में पड़ती है। क्षमा और अहिंसा का जयघोष करने वाले उस महापुरुष की वाणी आज यद्यपि क्षीण है, फिर भी भविष्य की आशा वही है।

इसी मास में भारत के दो महाप्राण मानवों ने पार्थिव शरीर से मुक्ति पाई थी। वे थे योगी अरविन्द और सरदार पटेल। अरविन्द उन योगियों में से थे जिन्होंने योग को व्यक्ति के चक्रव्यूह से निकाल कर समाज के मुक्त प्रांगण में प्रतिष्ठित किया था। वे अपनी मुक्ति में विश्वास नहीं करते थे। मानव मात्र का त्राण उनका लक्ष्य था। एक वैज्ञानिक की भांति इसी शोध में उन्होंने प्राणों की आहुति चढ़ा दी। उनसे गम्भीर बहुतों को हो सकता है पर अतिमानस की खोज करके उन्होंने मनुष्य को शक्ति का वह अक्षय भंडार सौंपा है जिसका सदुपयोग करके वह अजेय हो सकता है।

सरदार पटेल हमारी आजादी की नींव ही नहीं थे उसके संरक्षक भी थे। उनकी दृढ़ता, निस्पृहता और कार्यक्षमता अनुपमेय है। भारत की एकता के वे अमर शिल्पी थे और जब नव जात स्वतंत्रता तूफानों के भंवर में फंसकर सांस तोड़ने वाली थी, तब उन्होंने अद्भुत दृढ़ता और सतर्कता से अपने साथियों के साथ कन्धे से कन्धा भिड़ा कर, उसका उद्धार किया। [illegible] उन्होंने भारत को खण्ड-खण्ड होने से ही नहीं बचाया बल्कि आनेवाली गुलामी से भी उसकी रक्षा की। पिछले ६ महीने से फिर भारत की बन्दरबांट करने का स्वप्न ले रहा था। उसको उन्होंने अंगूठा दिखाया और बताया कि जो आजादी ले सकते हैं वे उसकी रक्षा भी कर सकते हैं। मन की गुलामी ने भारत को गुलाम नहीं बना दिया है। इन महामानवों के प्रति हमारा मस्तक नत है।

'मण्डल' की ओर से

सहायक सदस्य योजना

'जीवन-साहित्य' के पिछले अंकों में हम निवेदन करते रहे हैं कि 'मण्डल' की सहायक सदस्य-योजना को देश के विभिन्न स्थानों में कितनी लोकप्रियता प्राप्त हुई है और वह किस गति से आगे बढ रही है। अभी हाल में हमें उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री गोविन्दवल्लभ पन्त का पत्र मिला है जो उन्होंने श्री हरिभाऊजी उपाध्याय को लिखा था। उसका निम्नलिखित अंश 'मण्डल' की इस योजना की लोकप्रियता और उसके सम्बन्ध में 'मण्डल' के हितैषियों की सहयोगात्मक सदाकांक्षा पर प्रकाश डालता है

"मण्डल ने हिन्दी जगत की प्रशंसनीय सेवा की है और उसके द्वारा उच्च विचारों का और शुद्ध साहित्य का प्रसार हुआ है।"

पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इस योजना की उपयोगिता सभी क्षेत्रों में स्वीकार कर ली गई है। अब प्रश्न व्यक्तियों और संस्थाओं के पास पहुंचने का है। कलकत्ते का कार्यक्रम पूरा हो जाने के बाद अब हम लोगों ने इन दिनों तीन क्षेत्रों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया है (१) उत्तरप्रदेश (२) मध्यभारत और (३) बम्बई। उत्तरप्रदेश में श्री ब्रह्मानन्दजी और बम्बई में श्री जयगोविन्द जोशी काम कर रहे हैं। हमारे इन दोनों प्रतिनिधियों का कहना है कि इन्हें प्रत्येक वर्ग का हार्दिक सहयोग प्राप्त हो रहा है। मध्यभारत में भी हमें अच्छी सफलता प्राप्त हो रही है। वहां के कई व्यक्ति, शिक्षा-संस्थाएं, मण्डल-संचालक तथा मिलें सदस्य बन गई हैं। अभी बहुत-से सदस्य बनने शेष हैं।

हम चाहते हैं कि ५०० सदस्य बनाने का हमारा सकल्प १९५४ के अंत तक पूरा हो जाय। पर यह तभी सम्भव होगा जब हमारे अबतक के बने हुए सदस्य तथा अन्य हितैषी जी खोलकर हमें सहयोग देंगे। यदि प्रत्येक सदस्य पांच-पांच सदस्य बना दें तो यह काम और भी जल्दी पूरा हो जायगा।

सदस्यों को अबतक लगभग २००) मूल्य की पुस्तकें पहुच चुकी हैं। हमें इस बात से बड़ा हर्ष है कि सदस्यों ने पुस्तकों को पसन्द किया है और जिन घरों में हिंदी की पुस्तकों के लिए एक प्रकार की उपेक्षा-सी थी, वहां प्रेम पैदा हो गया है। इसे हम योजना की अद्भुत सफलता मानते हैं और उसकी सार्थकता भी।

प्रकाशन-प्रगति

इधर जो पांडुलिपियां प्रेस में गई हैं, उनका विवरण इस प्रकार है :

१—समाज विकास-माला

(१) गांधीजी का विद्यार्थी-जीवन (२) कबीर के बोल (३) गौतमबुद्ध (४) गंगाजी (५) निषाद और शबरी।

इनके अतिरिक्त गांधीजी और सरदार पटेल के जीवन की कुछ मार्मिक एवं शिक्षाप्रद घटनाएं दो पुस्तिकाओं के लिए तैयार की गई हैं। बाहुबली, द्वारिका, चैतन्य महाप्रभु आदि भी शीघ्र ही प्रेस में चली जायगी।

२—संस्कृत साहित्य सौरभ

'मृच्छकटिक' प्रेस में गई। 'स्वप्न-वासवदत्ता' तथा 'मुद्राराक्षस' प्रेस में जा रही है। 'महावीरचरित','रघुवंश' तथा 'नागानन्द' तैयार हो रहे हैं।

३—गांधी विचार-धारा के चिन्तक दादा धर्माधिकारी के भूदानयज्ञ सम्बन्धी लेखों का संग्रह 'मानवीय क्रान्ति' प्रेस में गया। पाठकों को जल्दी मिलेगा।

इनके अलावा और भी कई महत्वपूर्ण पुस्तकें शीघ्र ही आ रही हैं। उनकी सूचना अगले अंक में देंगे।

४—पुनर्मुद्रण—इधर निम्नलिखित पुस्तकों के पुनर्मुद्रण हुए हैं।

१ पुरुषार्थ, २ शान्तियात्रा, ३ स्त्री और पुरुष, ४ हमारे जमाने की गुलामी, ५ नवयुवकों से दो बातें, ६ बा-बापू और भाई, ७ काश्मीर पर हमला, ८ पशुओं का इलाज, ९ स्वतंत्रता की ओर और १० सर्वोदय योजना।

इस प्रकार ज्यों-ज्यों सहायक सदस्य योजना प्रगति करती आ रही है, प्रकाशनों की गति भी बढ़ती जा रही है।

—मंत्री